बुद्धकालीन भारतीय भूगोल

(पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर)

लेखक
डॉ० भरतसिंह उपाध्याय

२०१८
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग

प्रकाशकीय

इतिहास अथवा भूगोल तभी सम्पन्न और प्रामाणिक हो सकते हैं जब वाङ्मय के आधार पर लिखे जाएँ। परतंत्रता के युग में पाश्चात्य मनीषियों ने इतिहास और भूगोल के निर्माण में जिस पद्धति को हमारे देश के इतिहास एवं भूगोल लिखने के लिए अपनाया था उस पद्धति में वाङ्मय की प्रधानता न होने से हमारे देश का इतिहास और भूगोल पूर्णतया प्रामाणिक नहीं बन सका, जिसका अनुभव सभी करते हैं।

स्वतंत्रता प्राप्ति के उत्तर काल में इस दिशा में भारतीय विद्वानों का ध्यान आकृष्ट हुआ है। फलतः वाङ्मय के आधार पर इतिहास तो लिखे जाने लगे, किन्तु भूगोल विषय अभी तक ज्यों का त्यों पड़ा रहा।

भारतीय सामाजिक, राजनैतिक, ऐतिहासिक एवं भौगोलिक आदि अनेक पक्षों को प्राणवान् बनाने में बौद्ध वाङ्मय मे से विपुल सामग्री संगृहीत की जा सकती है। बौद्ध वाङ्मय एवं पालि भाषा के मननशील मनीषी डॉ० भरतसिंह उपाध्याय ने 'बुद्धकालीन भारतीय भूगोल' विषय पर शोध-प्रबंध लिख कर प्राचीन भारतीय भूगोल का उद्धार कर हिन्दी भाषा और उसके साहित्य की अपूर्व सेवा की है। इससे पूर्व डॉ० विमलाचरण लाहा ने इस विषय पर 'ज्योग्रेफ़ी ऑव अर्ली बुद्धिज़्म' नाम की पुस्तक लिखी थी जो सन् १९३२ ई० में लन्दन से प्रकाशित हुई थी। इसके अतिरिक्त किसी भी देशी, विदेशी भाषा में बुद्धकालीन भूगोल पर अन्य कोई पुस्तक प्रकाशित नहीं हुई है।

डॉ० उपाध्याय ने पालि त्रिपिटक-अट्ठकथाओं के अगाध सागर को मथ कर और चीनी बौद्ध यात्रियों के यात्रा-विवरणों को सोपान बना कर बौद्ध कालिक भारतीय भूगोल उदधि का अवगाहन कर यह अनवद्य ग्रंथ-रत्न प्रस्तुत किया है।

पाँच परिच्छेदों के इस ग्रंथ में बौद्ध कालिक भूगोल और उससे संबंधित सामाजिक, राजनैतिक इतिहास की सुन्दर झाँकी मिलती है।

अनुसन्धायकों, इतिहासकारों, भूगोलवेत्ताओं सब के लिए यह ग्रंथ महान् उपकारी है—ऐसा हमारा विश्वास है।

रामप्रताप त्रिपाठी
सहायक मंत्री

चैत्री पूर्णिमा, २०१८

प्राक्कथन

प्रस्तुत पुस्तक आज से करीब छह वर्ष पूर्व एक शोध-प्रबन्ध के रूप में लिखी गई थी। अब कुछ परिवर्तनों और परिवर्द्धनों के सहित वह प्रकाशित हो रही है। इसके विषय की प्रेरणा मुझे बौद्ध साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् और लेखक डॉ० विमलाचरण लाहा महोदय से मिली। अतः मैं सर्व प्रथम उनके प्रति हृदय से कृतज्ञ हूँ। रूपरेखा बनाने के पश्चात् मैंने उसे आगरा विश्वविद्यालय के कला-संकाय के भूतपूर्व प्रधान डॉ० धर्मेन्द्रनाथ जी शास्त्री, एम० ए०, डी. लिट्० की सेवा में भेजा, जिसे उन्होंने पसन्द किया और अपने निर्देशन में मुझे कार्य करने की सहर्ष अनुमति भी दे दी। तब से लेकर अन्त तक न जाने कितनी बार मैं उनके घर पर मेरठ में गया और सदा नये विचार-सूत्र और प्रेरणा लेकर लौटा। कुछ दुर्लभ ग्रन्थों से भी उन्होंने मेरी सहायता की, मित्रवत् आतिथ्य भी किया और विषय के स्वरूप और प्रक्रिया के सम्बन्ध में भी ऐसे महत्वपूर्ण सुझाव दिये जिनसे मुझे वास्तविक मानसिक आह्लाद मिला। ऐसे अनुकम्पक आचार्य के प्रति शब्दों में कृतज्ञता प्रकट कर सकना सम्भव नहीं है।

हिन्दी में बौद्ध साहित्य सम्बन्धी जो कार्य हुआ है, उसका यदि आकलन किया जाय तो उसमें तीन रत्न मिलेंगे। वे हैं महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन और भिक्षु जगदीश काश्यप जी। इन तीन रत्नों से मैंने जो कुछ पाया, उसी से मेरे मन में भी कुछ चमक उठी और मुझे लिखने की इच्छा हुई। मेरे सब प्रमाद और स्खलन मेरे अपने हैं, परन्तु यदि कहीं कोई अच्छाई है तो वह इन तीन रत्नों का अनुभाव ही है। मेरे हृदय में इनके प्रति सदा गहरे कृतज्ञता के भाव हैं।

आज हिन्दी में ऐसी स्थिति है कि गम्भीर साहित्य के प्रकाशन का भार कोई व्यावसायिक प्रकाशक नहीं ले सकता। मैं तो हिम्मत हार बैठा था और सोचता था कि राम की कृपा जब होगी तभी अन्य भी कृपा करेंगे। सो वह कृपा श्री रामप्रतापजी

त्रिपाठी के माध्यम से मुझे प्राप्त हुई। हिन्दी साहित्य सम्मेलन के आदाता महोदय श्री जगदीश स्वरूप जी से मेरा साक्षात् परिचय नहीं है और न मैंने उन्हें इस सम्बन्ध में कभी लिखा ही। उनके द्वारा इस पुस्तक को प्रकाशन के लिए स्वीकार किया जाना उनकी गुणग्राहकता और निष्पक्ष हिन्दी सेवा का एक उदाहरण है, ऐसा मैं मानता हूँ। मैं उनके और हिन्दी साहित्य सम्मेलन के सहायक मन्त्री श्री रामप्रताप जी त्रिपाठी के प्रति अपनी हार्दिक कृतज्ञता अर्पित करता हूँ।

सम्मेलन मुद्रणालय के सुयोग्य व्यवस्थापक श्री सीताराम जी गुण्ठे एवं उनके स्थानापन्न श्री बाबू जालिमसिंह जी तथा उनके सब सहयोगियों के प्रति कृतज्ञता प्रकट करना मैं अपना पवित्र कर्तव्य मानता हूँ। "पालि साहित्य का इतिहास" के समान इस पुस्तक को भी उन्होंने बड़ी सावधानी और निर्दोषता के साथ छापा है। मैं उनका हृदय से आभारी हूँ।

दिल्ली
१०–३–६१

भरतसिंह उपाध्याय

वस्तुकथा

प्रस्तुत पुस्तक का उद्देश्य पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर बुद्धकालीन भारत के भूगोल का अध्ययन प्रस्तुत करना है। इस प्रकार का अध्ययन भारतीय साहित्य की आज एक बड़ी आवश्यकता है। न मालूम हमारे कितने विस्मृत ऐतिहासिक नगर और गाँव पालि तिपिटक के पृष्ठों में साँसें ले रहे हैं। पालि तिपिटक ऐसे विवरणों से भरा पड़ा है जिनका भौगोलिक महत्व अत्यन्त उच्च कोटि का है और जो हमारे अतीत जीवन के कई अन्धकारावृत पक्षों को उद्घाटित करने वाला है। वे असंख्य नगर, निगम और गाँव जहाँ तथागत ने पदयात्रा की, वे नदियाँ, पर्वत, झीलें और भूमियाँ जो उनकी चरण-धूलि से पवित्र हुईं, वे हमारे मगध और कोसल जैसे राज्य, अंग, काशी, चेदि और कुरु जैसे जनपद और शाक्य, कोलिय और लिच्छवि जैसे गण-तन्त्र जिनमें होकर तथागत ने अपनी चारिकाएँ कीं, वे सड़कें और मार्ग जिन्होंने नमित होकर तथागत के चरणों को छुआ, वे असंख्य जन-समूह जो नाना जनपदों से भगवान् शाक्यमुनि की शरण में आये और उनके उपदेशामृत से तृप्त हुए, वे जन-जातियाँ और वे उद्योग-केन्द्र, वे हमारी स्थलीय और सामुद्रिक व्यापारिक परम्पराएँ, जिन सब का विवरण पालि तिपिटक में है, उस भौगोलिक चित्र की ओर इंगित करती हैं जो हमारे देश का करीब २५०० वर्ष पूर्व था। पालि तिपिटक की इसी सूचना पर आधारित और प्रामाण्य में उस के अधीन वह सूचना का आगार है जो उसके उपकारी साहित्य, विशेषतः उसकी अट्ठकथाओं, में निहित है। सूचना के इस अगाध महासागर की अभी पूरी खोज नहीं हुई है। अट्ठकथाओं के सहित पालि तिपिटक के अनुशीलन से और उसमें से भौगोलिक सूचना के सावधानीपूर्वक निकालने और संग्रह करने से एक ऐसी महत्वपूर्ण सामग्री हमारे हाथ लग सकती है जिसके आधार पर बुद्धकालीन भारत के भूगोल का पुनर्निर्माण किया जा सकता है। इस प्रकार के पुनर्निर्माण की कितनी बड़ी आवश्यकता है, यह इसी बात से जाना जा सकता है कि इस

दिशा में अब तक जो काम किया गया है, वह अत्यन्त अल्प और नगण्यप्राय ही है।

पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर बुद्धकालीन भारत के भूगोल का कोई परिपूर्ण और शृंखलाबद्ध अध्ययन अभी अंग्रेजी या अन्य किसी विदेशी भाषा में प्रकाशित नहीं हुआ है। हिन्दी या किसी अन्य भारतीय भाषा की तो कोई बात ही नहीं, जहाँ पालि का अनुशीलन अभी अपनी शैशवावस्था में ही है। अंग्रेजी में इस विषय पर लिखी जाने वाली प्रथम पुस्तक डॉ० विमलाचरण लाहा-कृत "ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म" है, जो लन्दन से सन् १९३२ में प्रकाशित हुई थी। डॉ० लाहा ने यह पुस्तक पूर्वकालीन पालि ग्रन्थों के आधार पर लिखी है, परन्तु जिन स्रोतों से सामग्री संकलन का उन्होंने प्रयत्न किया है, उनका एक अत्यन्त अल्प अंश ही वे यहाँ उपस्थित कर सके हैं। न तो पालि तिपिटक का ही और न विशाल अट्ठकथा-साहित्य का ही परिपूर्ण और समुचित उपयोग डॉ० लाहा इस ग्रन्थ में कर सके हैं। ऐसा लगता है कि इस कमी की सम्यक् अनुभूति उन्हें स्वयं रही है और उसकी पूर्ति की निरन्तर चेष्टा उन्होंने अपने "हिस्ट्री ऑव पालि लिटरेचर", दो भाग, लन्दन, १९३३, के परिशिष्ट "ए" में, "ज्योग्रेफीकल एसेज़", प्रथम भाग, कलकत्ता, १९३८, में, "इण्डिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म", लन्दन, १९४१, के प्रथम परिच्छेद में, "इण्डोलॉजीकल स्टडीज़", भाग द्वितीय, कलकत्ता १९५२, और भाग तृतीय, इलाहाबाद, १९५४, में तथा अन्य कई स्फुट निबन्धों में की है, जहाँ एक ही सामग्री को अनेक जगह संकलित करने की पुनरुक्ति भी काफी की गई है। फिर भी पालि स्रोतों से बुद्धकालीन समाज, इतिहास, भूगोल और आर्थिक जीवन सम्बन्धी जितनी सामग्री संकलित करने का प्रशंसनीय उद्योग डॉ० लाहा ने अपने विभिन्न ग्रन्थों और स्फुट निबन्धों में किया है, उतना सम्भवतः किसी एक विद्वान् के विषय में नहीं कहा जा सकता। अतः उनकी "ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म" भी एक प्रेरणाप्रद रचना अवश्य है, परन्तु जैसा हम अभी कह चुके हैं, वह एक अपूर्ण अध्ययन है और उसमें पूर्वकालीन पालि ग्रन्थों का अधूरा ही उपयोग किया गया है। अनेक ग्राम, नगर आदि ऐसे हैं जो बुद्ध-काल में प्रसिद्ध थे और जहाँ की यात्रा भगवान् बुद्ध ने की थी, परन्तु इस ग्रन्थ में उनका नामोल्लेख तक नहीं है। इस प्रकार के स्थानों में उजुञ्ञा, उत्तर, उत्तरका,

ओपसाद, कक्करपत्त, किम्बिला, चण्डलकप्प, आतुमा, तोदेय्य, भद्दवती, मेदलुम्प (मेतलूप), मातुला, वेधञ्ञा, साधुक, सालवतिका और सज्जनेल जैसे बीसों नाम गिनाये जा सकते हैं। मंकुल पर्वत पर भगवान् ने अपना छठा वर्षावास किया था और बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद की दसवीं वर्षा उन्होंने पारिलेय्यक वन में बिताई थी। इन दोनों स्थानों का इस पुस्तक में नामोल्लेख तक नहीं है। सुह्म (सुम्भ) जनपद और उसके प्रसिद्ध कस्बे सेतक, सेदक या देसक तक का उल्लेख नहीं किया गया है। इसी प्रकार अन्य कई जनपद और उनके नगर भी रह गये हैं। जिन नगरों, निगमों, ग्रामों, नदियों, पर्वतों, आरामों और चेतियों (चैत्यों) के विवरण डॉ० लाहा ने दिये भी हैं, उनको भी अंग्रेजी वर्णमाला के क्रम से कोश-रूप में सूचीबद्ध कर दिया है। (देखिये पृष्ठ २३–४७, ५१–५५, ५६–५९, ६१–६७)। इसलिये उनकी भौगोलिक रूपरेखा स्पष्ट नहीं हो पाई है। कुछ स्थल इस पुस्तक के चिन्त्य भी हैं, जिन पर हम अपने विषय का विवेचन करते समय प्रकाश डालेंगे। फिर भी हमें यह अवश्य कह देना चाहिये कि "ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म' एक स्थायी महत्व की रचना है और डॉ० मललसेकर ने उसे अपनी "डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स" में अनेक जगह उद्धृत किया है।

डॉ० लाहा के प्राचीन भारतीय भौगोलिक अध्ययन की चरम परिणति उनके अभी हाल में प्रकाशित "हिस्टोरिकल ज्योग्रेफी ऑव एन्शियण्ट इण्डिया" (पेरिस, १९५४) ग्रन्थ के रूप में हुई है। इस ग्रन्थ का विषय सम्पूर्ण प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक भूगोल का विवेचन करना है और स्रोतों का क्षेत्र भी विस्तृत और व्यापक है। अतः जहाँ तक पालि साहित्य के आधार पर बुद्धकालीन भूगोल का सम्बन्ध है, उसे एक गौण और अनुपात के अनुसार ही स्थान यहाँ मिल सका है। इसलिये इस ग्रन्थ के सम्बन्ध में भी बुद्धकालीन भूगोल के विषय को लेकर सामग्री की अपूर्णता की वही बात कही जा सकती है, जो 'ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म' के सम्बन्ध में। कुछ असंगतियाँ भी यहाँ चली आई हैं। उदाहरणतः इस एक ही पुस्तक में "प्राचीन भारत" और "प्राचीन भारत के महाजनपद" के शीर्षकों से जो भारत के दो मानचित्र दिये गये हैं, उनमें कम्बोज और वाह्लीक जनपदों की इतनी विभिन्न स्थितियाँ दिखा दी गई हैं कि उनमें कुछ साम्य ही नहीं है, और इन दोनों जनपदों के विवरण जो पुस्तक में दिये गये हैं (क्रमशः पृष्ठ ८८-

८९ तथा १३३) उनसे एक ही स्थिति का मेल खा सकता है, दोनों का बिलकुल नहीं। इसी प्रकार की असंगतियों के कुछ अन्य उदाहरण भी इस पुस्तक से दिये जा सकते हैं।

डॉ० विमलाचरण लाहा के उपर्युक्त ग्रन्थ या ग्रन्थों के अलावा अन्य कोई स्वतन्त्र विवेचनात्मक ग्रन्थ बुद्ध के जीवनकालीन भारतीय भूगोल पर अंग्रेजी या अन्य किसी विदेशी भाषा में, जहाँ तक लेखक को मालूम है, लिखा हुआ नहीं मिलता। हाँ, कुछ ग्रन्थ ऐसे अवश्य हैं जिनका दूर का सम्बन्ध बुद्धकालीन भूगोल से है, परन्तु जो स्वयं न तो पालि तिपिटक या उसके अट्ठकथा-साहित्य के आधार पर लिखे गये हैं और न बुद्ध के जीवनकालीन भूगोल से सम्बन्धित हैं। ऐसे ग्रन्थों में सबसे अग्रणी स्थान जनरल कनिंघम-लिखित "एन्शियण्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया", प्रथम खण्ड, बौद्ध युग, का है, जो सन् १८७१ में लन्दन से प्रकाशित हुआ था। इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ में, जो वास्तविक समालोचनात्मक अनुसन्धान पर आधारित है, लेखक ने अलक्षेन्द्र के भारत-आक्रमण (चतुर्थ शताब्दी ईसवी-पूर्व) के ग्रीक विवरणों और चीनी यात्री यूआन् चुआङ् के यात्रा-विवरण (सातवीं शताब्दी ईसवी) के आधार पर प्राचीन भारतीय भूगोल का विवरण दिया है। अतः जिस काल के भूगोल की रूपरेखा कनिंघम ने अपने उपर्युक्त ग्रन्थ में प्रस्तुत की है, वह चतुर्थ शताब्दी ईसवी-पूर्व से लेकर सातवीं शताब्दी ईसवी तक का है। चूँकि चीनी यात्री यूआन् चुआङ् मुख्यतः एक बौद्ध भिक्षु था और उसने प्रधानतः उन स्थानों की यात्रा की थी जो भगवान् बुद्ध के जीवन और कार्य से सम्बन्धित थे, अतः उसके विवरण के आधार पर तत्कालीन भारतीय भूगोल का विवेचन करते हुए जनरल कनिंघम ने अनिवार्य रूप से अनेक बौद्ध स्थानों की खोजें की हैं, जिनका स्थायी और आधारभूत महत्व है। यद्यपि जनरल कनिंघम के द्वारा की हुई अनेक बौद्ध स्थानों की आधुनिक पहचानें बाद की खोजों के द्वारा अप्रामाणिक सिद्ध कर दी गई हैं और कनिंघम का मनमाने ढंग से भारतीय स्थानों के चीनी रूपान्तरों को तोड़ना-मरोड़ना और अपनी मान्यता के अनुकूल लाने के लिये यूआन् चुआङ् के यात्रा-विवरण के पाठ के उत्तर-पश्चिम को उत्तर-पूर्व पढ़ लेना[1]

---

१. देखिये एन्शियण्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५६६।

या पूर्व को पश्चिम पढ़ लेना[1], ठीक वैज्ञानिक मार्ग नहीं माना जा सकता, परन्तु फिर भी यह निश्चित है कि भारतीय पुरातत्व और विशेषत: प्राचीन भारतीय भूगोल के सम्बन्ध में जनरल कनिंघम एक मार्ग-निर्माता थे और उनके सामने वे सब कठिनाइयाँ थीं जो एक मार्ग-निर्माता के सामने आया करती हैं। एक सबसे बड़ी कमी जो कनिंघम के अध्ययन में है, वह यह है कि उसे पालि साहित्य का सहारा प्राप्त नहीं है। इस प्रकार उनके अध्ययन की पृष्ठभूमि ही लुप्त है। हम जानते हैं कि पालि टैक्स्ट् सोसायटी, जिसने सर्वप्रथम रोमन लिपि में पालि ग्रन्थों के प्रकाशन और उनके अंग्रेजी अनुवादों का कार्य हाथ में लिया, सन् १८८१ में लन्दन में रायस डेविड्स् के द्वारा स्थापित की गई थी और उसका सर्वप्रथम प्रकाशन सन् १८८२ में निकला था। अत: पालि स्रोतों का उपयोग "एन्शियण्ट ज्योग्रेफ़ी ऑव इण्डिया" (लन्दन, १८७१) के लेखक के लिये स्वाभाविक तौर पर सम्भव नहीं हो सकता था। यह खेद की बात है कि जनरल कनिंघम के इस ग्रन्थ के द्वितीय संस्करण (कलकत्ता, १९२४) के सम्पादक श्री सुरेन्द्रनाथ मजूमदार शास्त्री ने अपनी "टिप्पणियों" में कहीं-कहीं पौराणिक उद्धरण तो अनावश्यक रूप से काफी दिये है, परन्तु ग्रन्थ के मौलिक विषय से सम्बन्धित जिन पालि विवरणों की आवश्यकता थी उनकी नितान्त उपेक्षा कर दी गई है। सम्भवत: श्री मजूमदार शास्त्री यह भूल गये हैं कि जिस ग्रन्थ का वे सम्पादन कर रहे हैं और जिस पर "नोट्स्" लिख रहे हैं, उसका सम्बन्ध मुख्यत: बौद्ध स्थानों के भूगोल से है, पौराणिक भूगोल के विवेचन से नहीं।

चीनी यात्रियों के यात्रा-विवरण विशेषत: बौद्ध स्थानों के वर्णनों से सम्बन्धित हैं। उनके विदेशी भाषाओं में अनुवाद हुए हैं, जिन्हें हम बुद्धकालीन भूगोल पर विवेचनात्मक ग्रन्थ तो नहीं कह सकते, क्योंकि वे काफी उत्तरकालीन हैं और फिर अनुवादकों का मुख्य उद्देश्य अनुवाद करना रहा है, भौगोलिक विवेचन नहीं। फिर भी इन अनुवादों का हमारे अध्ययन की दिशा में एक मूल्य अवश्य है, क्योंकि वे अन्ततः उन स्थानों का ही विभिन्न युगों में वर्णन उपस्थित करते हैं जो मूलत:

---

१. देखिये वाटर्स की भी इस सम्बन्ध में शिकायत, औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०८।

भगवान् बुद्ध के जीवन और कार्य से सम्बन्धित रहे थे। अतः विषय से दूरतः सम्बन्धित होने पर भी उनका उल्लेख यहाँ कर देना अनावश्यक न होगा। इस प्रकार के अनुवादों में जे० लेज्जे कृत "दि ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान", जो फा-ह्यान (३९९-४१४ ई०) के यात्रा-विवरण "फो-क्यू-की" का अनुवाद है, सन् १८८६ में ऑक्सफर्ड से प्रकाशित हुआ था। इसी यात्रा-विवरण का एक दूसरा अनुवाद एच० ए० गाइल्स ने "दि ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान ऑर रिकार्ड ऑव बुद्धिस्ट किंग्डम्स" शीर्षक से किया है, जो केम्ब्रिज से सन् १९२३ में प्रकाशित हुआ है। इसी की द्वितीय आवृत्ति अभी हाल में सन् १९५६ में रटलेज एण्ड केगन पॉल, लन्दन, द्वारा की गई है। चीनी यात्री सुंग्-युन् और हुइ-सेंग् (६०० ई०) के यात्रा-विवरणों का अनुवाद एस० बील ने "बुद्धिस्ट रिकार्ड्स् ऑव दि वेस्टर्न वर्ल्ड" के प्रथम भाग में किया है और ओ-कुंग् नामक चीनी यात्री (८०० ई०) का यात्रा-विवरण सन् १८७५ के "जर्नल एशियाटीक" में अनुवादित किया गया है। प्रसिद्धतम चीनी यात्री यूआन् चुआङ् (६२९-६४५ ई०) का यात्रा-विवरण, जिसका मौलिक चीनी नाम "सि-यु-कि" है, प्रथम बार फ्रेंच विद्वान् एम० स्टेनिसलेस जुलियन द्वारा फ्रेंच भाषा में अनुवादित किया गया, जो सन् १८५७-५८ में पेरिस से प्रकाशित हुआ। बाद में अंशतः इस फ्रेंच अनुवाद के आधार पर और अंशतः चीनी मूल का भी आश्रय लेकर एस० बील ने इस महत्वपूर्ण यात्रा-विवरण का "बुद्धिस्ट रिकॉर्ड्स् ऑव दि वेस्टर्न वर्ल्ड" शीर्षक से अंग्रेजी भाषा में अनुवाद किया, जो दो भागों में सन् १८८४ में लन्दन से प्रकाशित हुआ। सर्वाधिक प्रामाणिक और व्याख्या-सहित अनुवाद इस यात्रा-विवरण का थॉमस वाटर्स ने "औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया" शीर्षक से किया, जिसे टी० डब्ल्यू० रायस डेविडस् और एस० डब्ल्यू० बुशल ने योग्यतापूर्वक सम्पादित कर रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन से सन् १९०४–१९०५ में, दो भागों में, प्रकाशित करवाया है। इ-त्सिङ् (६७३ ई०) के यात्रा-विवरण का अंग्रेजी अनुवाद जापानी विद्वान् जे० तकाकुसु ने "ए रिकार्ड ऑव दि बुद्धिस्ट रिलिजन ऐज़ प्रेक्टिज्ड इन इण्डिया एण्ड दि मलाया आर्कीपेलेगो" शीर्षक से किया है, जो सन् १८९६ में ऑक्सफर्ड से प्रकाशित हुआ। हम यहाँ इन चीनी यात्रियों में से किसी के भी यात्रा-विवरण के हिन्दी अनुवाद का सहर्ष उल्लेख करते, परन्तु खेद है कि हममें से फ्रेंच विद्वान् एम० स्टेनिसलेस जुलियन के समान कोई ऐसा सुकृती नहीं है जिसने

पूरे बीस वर्ष तक चीनी (और संस्कृत) भाषा का एकनिष्ठ अध्ययन केवल यूआन् चुआङ् के यात्रा-विवरण का अनुवाद करने के लिये किया हो। हमारे अधिकतर हिन्दी अनुवाद अंग्रेजी अनुवादों के ही अनुवाद हैं। अतः वस्तुतः उल्लेखनीय कुछ नहीं है।

कुछ ऐसे सन्दर्भ ग्रन्थों का भी उल्लेख हमें यहाँ कर देना चाहिये जो प्रस्तुत विषय पर विवेचनात्मक ग्रन्थ तो नहीं कहे जा सकते, परन्तु जिनका इस प्रकार के अध्ययन में मूल्य और उपयोग अवश्य है। इस श्रेणी के ग्रन्थों में श्री नन्दोलाल दे-कृत "दि ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियण्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया" (द्वितीय संस्करण, लन्दन, १९२७) एक उल्लेखनीय रचना है। परन्तु जहाँ तक बुद्धकालीन भौगोलिक स्थानों का सम्बन्ध है, उनका एक काफी कम अंश ही यहाँ आ सका है और जो लिया भी गया है उस पर भी अत्यन्त संक्षेप में निर्णय दे दिया गया है (जैसा एक कोश-ग्रन्थ में अनिवार्य है) और पहचानों के सम्बन्ध में सकारण विवेचन प्रस्तुत नहीं किये गये हैं। इस भौगोलिक कोश से अधिक उपयोगी और स्थायी मूल्य वाली एक दूसरी संकलनात्मक रचना है। प्रसिद्ध सिंहली विद्वान् डॉ० जो० पी० मललसेकर-कृत "डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स", जो सन् १९३७ में लन्दन से प्रकाशित हुई। पालि टैक्स्ट सोसायटी द्वारा प्रकाशित मूल पालि ग्रन्थ और उनके अंग्रेजी अनुवादों की अनुक्रमणिकाओं के आधार पर यह नाम-कोश तैयार किया गया है और पालि अनुशीलन में इसका वही महत्व है जो वैदिक साहित्य के स्वाध्याय में मेकडोनल और कीथ द्वारा संकलित "दि वैदिक इण्डेक्स ऑव नेम्स एण्ड सब्जैक्ट्स्" का या महाभारत के सम्बन्ध में सोरेन्सेन-कृत "इण्डेक्स टू महाभारत" का। फिर भी, जैसा हम कह चुके हैं, यह एक नाम-कोश ही है, किसी एक विषय पर विवेचनात्मक ग्रन्थ नहीं। रतिलाल मेहता ने केवल जातकों में उल्लिखित भौगोलिक नामों की एक सूची, जो स्वयं एण्डरसन-कृत जातकों के "इण्डेक्स" (जातक, जिल्द सातवीं, पालि टैक्स्ट् सोसायटी, लन्दन, १८९७) पर आधारित है, कोश रूप में ही अपने ग्रन्थ "प्री-बुद्धिस्ट इण्डिया" (बम्बई, १९३९) के पृष्ठ ३६८-४५५ में दी है, जो उस रूप में उपयोगी है, परन्तु पूर्ण नहीं कही जा सकती। हिंगुल पब्बत का उल्लेख कुणाल जातक (जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ४१५—पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण; हिन्दी अनुवाद, पञ्चम

खण्ड, पृष्ठ ५०१) में है और इसी प्रकार धोनसाख जातक (जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १५७—पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण; हिन्दी अनुवाद, तृतीय खण्ड, पृष्ठ ३२०–३२१) में सुंसुमारगिरि का। परन्तु इन दोनों नामों का रतिलाल मेहता द्वारा प्रस्तुत सूची में उल्लेख नहीं हैं। इसी प्रकार असातरूप जातक (जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ४०७—पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण; हिन्दी अनुवाद, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ५७४) मे (कोलिय जनपद के) कुण्डिय नामक नगर तथा उसके पास के कुण्डधान वन का उल्लेख है, जिसे श्री रतिलाल मेहता द्वारा प्रस्तुत सूची में कोई स्थान नहीं मिल सका है। अन्य कई महत्वपूर्ण स्थानों के नाम भी इसी प्रकार छूट गये हैं।

बुद्धकालीन भूगोल के कतिपय अंशों से सम्बन्धित कुछ स्फुट अध्ययन का भी हमें यहाँ उल्लेख कर देना चाहिए, जो निबन्धों या पुस्तिकाओं आदि के रूप में विकीर्ण रूप से प्रकाशित हुआ है। विशेषतः पालि टैक्स्ट् सोसायटी, रॉयल एशियाटिक सोसायटी, एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल और बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी (बाद में बिहार रिसर्च सोसायटी) के जर्नलों में, आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया की वार्षिक रिपोर्टों और मिमोयर्स में, ऑल इण्डिया ऑरियन्टल कान्फ्रेंस के वार्षिक विवरणों में, इण्डियन एण्टिक्वेरी में, इण्डियन हिस्टोरिकल क्वार्टरली में और महाबोधि सभा के अंग्रेजी मासिक "दि महाबोधि" में कुछ स्फुट विवेचन हमें कभी-कभी बुद्धकालीन भूगोल के कुछ पक्षों से सम्बन्धित भी मिल जाते है, जिनमें कहीं-कहीं पालि स्रोतों का भी आश्रय लिया गया है। इसी प्रकार इम्पीरियल और डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियरों का भी प्राचीन स्थानों की खोज में अपना महत्व है। इम्पीरियल गज़ेटियर ऑव इण्डिया (नया संस्करण, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७६-८७) में फ्लीट ने जो भौगोलिक टिप्पणी दी है, वह महत्वपूर्ण है। विभिन्न डिस्ट्रिक्ट गज़ेटियरों से भी आवश्यकतानुसार कुछ सहायता ली जा सकती है,- यद्यपि मेरठ, मुरादाबाद, बरेली, इटावा और एटा जैसे हमारी दृष्टि से कई महत्व पूर्ण जिलों के विवरणों में बुद्धकालीन भौगोलिक इतिहास के सम्बन्ध में प्रायः कुछ नहीं कहा गया है। हमें यह ध्यान में रखना ही चाहिये कि ये गज़ेटियरें काफी समय पूर्व लिखी गई सरकारी रिपोर्टें हैं और प्राचीन इतिहास या भूगोल का विवेचन करना उनका मुख्य प्रयोजन नहीं है।

बिहार सरकार के जन-सम्पर्क विभाग ने नालन्दा, राजगृह, वैशाली और बोध-गया जैसे बुद्धकालीन प्रसिद्ध स्थानों पर कुछ विवरण-पुस्तिकाएँ प्रकाशित की हैं, जिन्हें निराशाजनक ही कहा जा सकता है। पालि विवरणों के आधार पर उनमें पुनर्जीवन के संचार का कोई प्रयत्न उपलक्षित नहीं होता।

डॉ० विमलाचरण लाहा ने "आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया" के विभिन्न मिमोयरों में तथा 'इण्डोलोजीकल स्टडीज़' (भाग तृतीय) में, अयोध्या, कपिलवस्तु, मथुरा, चम्पा, मिथिला, वैशाली, श्रावस्ती, कौशाम्बी, राजगृह, तक्षशिला और पाटलिपुत्र आदि बुद्धकालीन नगरों पर सुन्दर लेख लिखे हैं, जो पालि तथा अन्य भारतीय साहित्य सम्बन्धी स्रोतों पर आधारित हैं। इन विवरणों में भिन्न-भिन्न परम्पराओं को बिना काल-क्रम का ध्यान किये मिलाकर डॉ० लाहा ने कहीं-कहीं उसी प्रकार की अस्तव्यस्तता और गड़बड़ी पैदा की है, जिस प्रकार की बुद्ध-जीवनी के सम्बन्ध में भिन्न-भिन्न परम्पराओं को बिना विवेक के मिलाकर उनमे पूर्व एच० कर्न और रॉकहिल ने की थी, जिसे विद्वानों ने ठीक नहीं समझा है।

डॉ० वेणीमाधव बड़ुआ लिखित "गया एण्ड बुद्धगया" (संशोधित संस्करण, कलकत्ता, १९३५) अपने विषय पर एक विशद और विद्वत्तापूर्ण रचना है, जो पालि साहित्य की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

बाबू पूर्णचन्द्र मुखर्जी लिखित "ए रिपोर्ट औन् ए टूर ऑव एक्सप्लोरेशन ऑव दी एंटीक्विटीज़ इन दि तराई, नेपाल, एण्ड दि रिजन ऑव कपिलवस्तु" (कलकत्ता, १९०१) अपने विषय की एक अत्यन्त प्रामाणिक रचना है। इसमें जो निष्कर्ष निकाले गये है, वे आज भी मान्य हैं। शाक्य और कोलिय गणतन्त्रों के अनेक बुद्ध-कालीन स्थानों की आधुनिक पहचान के सम्बन्ध में इस खोजपूर्ण 'प्रतिवेदन' से अधिक अभी कुछ नहीं कहा जा सकता। और न तब तक सम्भवतः कहा जा सकेगा जब तक इस क्षेत्र की खुदाई का काम अग्रसर नहीं होता।

श्री नगेन्द्रनाथ घोष-लिखित "अर्ली हिस्ट्री ऑव कौशाम्बी" (इलाहाबाद, १९३५) कौशाम्बी के ऐतिहासिक भूगोल पर एक सुन्दर रचना है और इसके दो परिच्छेद (द्वितीय और तृतीय) बुद्धकालीन कौशाम्बी से सम्बद्ध हैं, जहाँ पालि स्रोतों से भी कुछ (केवल कुछ) सामग्री संकलित की गई है। यह खटकने वाली बात ही मानी जायगी कि कौशाम्बी के इतिहास पर लिखी जाने वाली इस पूरी पुस्तक में कहीं भी कौशाम्बी

के प्रसिद्ध बदरिकाराम नामक विहार का उल्लेख तक नहीं है और न कौशाम्बी और उसके घोषिताराम के समीप स्थित प्लक्षगुहा (पिलक्खगुहा) का ही। लेखक ने कौशाम्बी की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पुराणों के आधार पर तो कुछ लिखा है, परन्तु पालि परम्परा के आधार पर कुछ नहीं कहा है, जब कि बुद्धघोष द्वारा प्रदत्त प्रभूत सामग्री उसे इस सम्बन्ध में उपलब्ध हो सकती थी और उसका तुलनात्मक उपयोग भी लाभदायक हो सकता था।

ए० फुशेर की पुस्तक "नोट्स् ऑन दि एन्शियण्ट ज्योग्रेफी ऑव गन्धार" (अंग्रेजी अनुवाद, कलकत्ता, १९१५) युआन् चुआङ् के इस प्रदेश-सम्बन्धी यात्रा-विवरण पर टिप्पणी के रूप में है और गन्धार के प्राचीन भूगोल पर आज भी एक प्रामाणिक रचना मानी जा सकती है। इस पुस्तक में पुरुषपुर (पेशावर) और पुष्करावती तथा उनके अनेक स्तूपों के भग्नावशेषों के जो मानचित्र दिये गये हैं, वे यह बतलाते हैं कि यूरोपीय विद्वान् चाहे जितनी अल्प मात्रा में काम करें फिर भी उसमें उनकी अपनी एक अलग छाप रहती है।

साँची और तक्षशिला पर दो पुस्तकें सर जोन्ह मार्शल ने लिखी थीं, "गाइड टू साँची" (द्वितीय संस्करण, दिल्ली, १९३६) और "गाइड टू टेक्सिला" (तृतीय संस्करण, दिल्ली १९३७) जिनके आधार पालि विवरण न होकर प्राचीन वास्तु-कला सम्बन्धी भग्नावशेष ही हैं। कहने की आवश्यकता नहीं कि ये सब निबन्ध और पुस्तिकाएँ बुद्धकालीन भूगोल के स्वतन्त्र और व्यवस्थाबद्ध अध्ययन के स्थान को नहीं ले सकतीं।

पालि स्रोतों के आधार पर जो अत्यन्त अल्प और स्फुट कार्य बुद्धकालीन भूगोल के सम्बन्ध में अंग्रेजी में किया गया है, उसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। अब हम हिन्दी की ओर दृष्टिपात करते हैं। हिन्दी में यद्यपि एक भी स्वतन्त्र ग्रन्थ इस विषय पर नहीं है, परन्तु महापण्डित राहुल सांकृत्यायन द्वारा तैयार की गई सूचियों में, जो उनके ग्रन्थ "बुद्धचर्या" के द्वितीय परिशिष्ट में, विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद) के अन्त में तथा दीघ-निकाय के हिन्दी अनुवाद (जिसमें उन्हें भिक्षु जगदीश काश्यप का भी सहयोग मिला है) के अन्त में परिशिष्ट के रूप में तथा इसी प्रकार मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद) के परिशिष्ट के रूप में, संलग्न हैं, हमें उनकी सूक्ष्म सूझ-बूझ और बुद्धकालीन भूगोल के अगाध ज्ञान के ऐसे साक्ष्य मिलते हैं, जिनका परिचय इस

क्षेत्र में काम करने वाले किसी आधुनिक विद्वान् ने प्रायः नहीं दिया है। उदाहरणत. किम्बिला, कीटागिरि, एरकच्छ या एरककच्छ, मच्छिकासण्ड, सेतकण्णिक, कजंगल, भग्ग देश और उसके सुंसुमारगिरि जैसे कई स्थानों, नगरों और प्रदेशों के सम्बन्ध में उन्होंने नई बातें कही हैं, जो पहले के विद्वानों के द्वारा नहीं कही गई हैं। अपने विस्तृत पालि साहित्य के अध्ययन के आधार पर और एक चिरन्तन प्रवासी की तरह स्वयं स्थानों की यात्रा कर और उनका निरीक्षण कर महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने अनेक स्थानों की पहचान के सम्बन्ध में ऐसे सहेतुक और अन्तर्दृष्टिपूर्ण सुझाव दिये हैं, जो भारतीय मनीषा के लिये गौरव-स्वरूप हैं। यही कारण है कि हिन्दी ग्रन्थ "बुद्धचर्या" को डॉ० विमलाचरण लाहा के प्रसिद्ध खोजपूर्ण ग्रन्थ "ट्राइब्स इन एन्शियण्ट इण्डिया" (पूना, १९४३) में भग्ग देश और उसके सुंसुमारगिरि के सम्बन्ध में उद्धृत किया गया है, जिससे स्वयं डॉ० लाहा के अध्ययन को महत्व मिला है। हम अपने अध्ययन में यथास्थान राहुल जी के अनेक निष्कर्षों और भौगोलिक मन्तव्यों का उल्लेख करेंगे और कहीं-कहीं आवश्यकतानुसार उनसे अपना मतभेद भी प्रकट करेंगे। भिक्षु जगदीश काश्यप ने "उदान" के हिन्दी अनुवाद के अन्त में तथा भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य के सहयोग से संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद) के दो भागों के अन्त में जो नाम-सूचियाँ दी हैं, वे बुद्धकालीन भूगोल के अध्ययन में उपयोगी हैं।

डॉ० राजबली पाण्डेय ने "गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास" (गोरखपुर, सं० २००३ वि०) में बुद्धकालीन महाजनपदों और विशेषतः कपिलवस्तु के शाक्यों, रामग्राम के कोलियों, पिप्पलिवन के मौर्यों और कुशीनगर और पावा के मल्लों के गणतन्त्रों के भौगोलिक पक्षों पर अच्छा प्रकाश डाला है, यद्यपि पालि स्रोतों का पूर्ण और विधिवत् उपयोग नहीं किया गया है। कहीं-कहीं असावधानी और अवैज्ञानिक अध्ययन के भी लक्षण दिखाई पड़ते हैं। उदाहरणतः पृष्ठ ६८ पर महावस्तु को पालि ग्रन्थ के रूप में निर्दिष्ट कर दिया गया है। पृष्ठ ७८ पर मल्ल राष्ट्र के दक्षिण में मौर्य राज्य को बताया गया है और पृष्ठ ७४ पर मौर्यों के राज्य के दक्षिण-पश्चिम में कोलियों के राज्य को। यदि ये दोनों बातें ठीक हैं तो कोलियों का राज्य मल्ल राष्ट्र के पश्चिम में किस प्रकार हो सकता है ? परन्तु यही बात लेखक ने पृष्ठ ७८ पर लिखी है। दीपवंस और महावंस में न कही गई बातों

का इन ग्रन्थों पर आरोप लेखक ने किया है (पृष्ठ ७८)। इसे अवैज्ञानिक ही कहा जा सकता है। फिर भी साक्षात् अवेक्षण से प्राप्त ज्ञान और अपने विषय के साथ आत्मीयता, इस ग्रन्थ की अपनी विशेषताएँ हैं जो इस प्रकार के अध्ययन-ग्रन्थों में प्रायः नहीं मिलतीं।

भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य-लिखित "कुशीनगर का इतिहास" (द्वितीय संस्करण, बुद्धाब्द २४९३) कुशीनगर के भौगोलिक इतिहास पर एक प्रामाणिक रचना है जो पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं पर आधारित है। विशेषतः कुछ नदियों और तराई के कुछ स्थानों के सम्बन्ध में भिक्षु धर्मरक्षित जी ने नई बातें कही हैं, जिनकी प्रामाणिकता अभी सिद्ध होना बाकी है। एक संक्षिप्त लेख भी "बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय" शीर्षक भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य ने लिखा है, जो संयुत्त-निकाय के हिन्दी अनुवाद के पहले भाग की भूमिका के रूप में भी निकला था और अलग पुस्तिका के रूप में भी प्राप्त है। अत्यन्त संक्षिप्त होते हुए भी यह लेख महत्वपूर्ण है।[1]

"वैशाली अभिनन्दन ग्रन्थ" (श्री जगदीशचन्द्र माथुर आई० सी० एस० तथा योगेन्द्र मिश्र द्वारा सम्पादित, वैशाली संघ, वैशाली, बिहार, १९४८) वैशाली के सम्बन्ध में कई अधिकारी विद्वानों के लेखों और भाषणों का संग्रह है। इसके कुछ अंश अंग्रेजी में हैं और कुछ हिन्दी में और इसी प्रकार स्रोत भी विभिन्न हैं। महाबोधि सभा के हिन्दी मासिक "धर्मदूत" में वैशाली, पावा, देवदह और राजगृह आदि बौद्ध स्थानों के सम्बन्ध में खोजपूर्ण लेख प्रकाशित हुए हैं।

बुद्धकालीन भूगोल के सम्पूर्ण पूर्वगत अध्ययन की पृष्ठभूमि में इस प्रस्तुत निबन्ध का क्या स्थान है, यह कहना लेखक के लिये अत्यन्त कठिन है। इतना अवश्य विनम्रता-

---

१. यद्यपि दो-एक बातें चिन्त्य हैं, जैसे कि अम्बाटक वन के मच्छिका-वनसण्ड को वज्जि जनपद में दिखाना (पृष्ठ १२)। वस्तुतः मच्छिकासण्ड एक नगर था और इसके समीप अम्बाटक वन था, तथा ये दोनों स्थान, विनय-पिटक के स्पष्ट साक्ष्य पर, काशी जनपद में स्थित थे। इसी प्रकार तेलवाह नदी के तट पर स्थित अन्धपुर को मज्झिम देस में दिखाना (पृष्ठ ६) चिन्त्य है। इसे असन्दिग्ध रूप से दक्षिणापथ में होना चाहिये।

पूर्वक कहा जा सकता है कि पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर बुद्धकालीन भूगोल का यह प्रथम पूर्ण और शृंखलाबद्ध अध्ययन है, जिसे प्रस्तुत करने का लेखक ने प्रयत्न किया है। इसमें उसे कहाँ तक सफलता मिली है, इसका निर्णय तो अधिकारी विद्वान् ही कर सकते हैं। पालि तिपिटक और उसकी अट्ठ-कथाओं में जो भौगोलिक सामग्री मिल सकती है, उस सब का यथासम्भव संकलन कर मैंने यहाँ व्यवस्थित अध्ययन के रूप में उसे प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। किसी पूर्वगामी विवेचनात्मक ग्रन्थ के सम्बन्ध में ऐसा नहीं कहा जा सकता। भूगोल-विज्ञान का जो रूप मैंने यहाँ लिया है और जो शैली स्वीकार की है, वह भी मेरे पूर्वगामी विद्वानों से भिन्न प्रकार की है। आधुनिक भूगोल-शास्त्र केवल पृथ्वी के धरातल, जलवायु आदि का विवरण मात्र नहीं है। वह पृथ्वी का अध्ययन है, परन्तु मानव और उसके सम्पूर्ण वातावरण के सम्बन्ध के साथ, जो उतना ही सांस्कृतिक भी है जितना कि भौतिक। अतः आधुनिक भूगोल के महत्वपूर्ण अंग हैं, प्राकृतिक भूगोल, राजनैतिक भूगोल, मानव-भूगोल, और आर्थिक और व्यापारिक भूगोल, जिन सब का प्रतिनिधित्व इस पुस्तक के परिच्छेद करते हैं। किसी पूर्वगामी ग्रन्थ में भूगोल-विज्ञान के सम्बन्ध में इतनी व्यापक दृष्टि को लेकर विवेचन नहीं किया गया है। जहाँ तक स्वीकृत विवेचन-शैली का सम्बन्ध है, मैंने स्रोतों के उपयोग और उनके समालोचनात्मक परीक्षण में द्विविध ढंग को अपनाया है। पहले मैंने उस सब भौगोलिक सामग्री को संकलित और व्यवस्थित ढंग से प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है जो पालि तिपिटक और उसके अट्ठकथा-साहित्य में उपलब्ध है। फिर इस सब सामग्री की समीक्षा इस दृष्टि से की गई है कि अनेक बुद्धकालीन स्थानों की वर्तमान स्थितियों पर प्रकाश पड़े। बुद्धकालीन भूगोल की सबसे बड़ी समस्या वस्तुतः उन अनेक स्थानों की आधुनिक पहचान करना है जो अभी अन्धकारावृत हैं। कनिंघम और उनके बाद के पुरातत्व-विभाग के विद्वानों के प्रयत्नों के परिणाम-स्वरूप उन बौद्ध स्थानों की तो काफी खोज हो चुकी है जो यूआन् चुआङ के यात्रा-विवरण से सम्बद्ध है। परन्तु इनके अलावा अन्य ऐसे अनेक स्थान हैं जो बुद्ध-काल में प्रसिद्ध थे, परन्तु जिनकी यात्रा यूआन् चुआङ या अन्य चीनी यात्री नहीं कर सके थे। उनकी भी आधुनिक पहचान की पूरी खोज होनी चाहिये। मैंने भरसक प्रयत्न किया है कि इस सम्बन्ध में आवश्यक सामग्री पालि

विवरणों के आधार पर प्रस्तुत करूँ। इस प्रकार के प्रयत्नों से अनेक स्थानों की आधुनिक पहचान के सम्बन्ध में काफी अधिक प्रकाश पड़ा है, ऐसा मेरा विश्वास है। परन्तु इस विषय का परिपूर्ण अध्ययन तो तभी सम्भव हो सकेगा जब न केवल प्राचीन बौद्ध स्थानों का खनन-कार्य, जो अभी अत्यन्त प्रारम्भिक अवस्था में है, पूरा हो जायगा, बल्कि जब प्राचीन जैन साहित्य और बौद्ध संस्कृत साहित्य का भी अधिक परिपूर्ण पर्यवेक्षण इस दृष्टि से कर लिया जायगा और उनके तुलनात्मक साक्ष्य को न केवल रामायण, महाभारत और पुराणों के वर्णनों से बल्कि विदेशी स्रोतों से भी यथासम्भव मिला लिया जायगा। प्रस्तुत निबन्ध का विषय चूँकि पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर बुद्ध के जीवनकालीन भूगोल का विवेचन करना ही है, अतः उसका क्षेत्र सीमित है। फिर भी इस युग के स्थानों की वर्तमान पहचान करने के लिये कहीं-कहीं लेखक को अनिवार्यतः विस्तृत विवेचन में भी जाना पड़ा है और दूसरे स्रोतों का भी साक्ष्य लेना आवश्यक हो गया है। ऐसे स्थलों में लेखक ने यह प्रयत्न किया है कि केवल उन तथ्यों का ही साक्ष्य लिया जाय जिनसे (१) या तो विवेचित बौद्ध स्थानों की आधुनिक पहचान करने में सहायता मिलती हो, या (२) जो विवेचित विषय के किसी अंग पर अधिक प्रकाश डालते हों, या (३) जो पालि स्रोतों में प्राप्त सूचना का समर्थन करते हों या उसे पूर्णता प्रदान करने में सहायक हों। इस प्रकार पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं पर आधारित इस अध्ययन में विशेषतः चीनी यात्रियों के विवरणों और आधुनिक पुरातत्व सम्बन्धी खोजों का भी विधिवत् उपयोग किया गया है। बुद्धकालीन जनपदों, नगरों, निगमों और ग्रामों के पूर्ण विस्तृत विवरण उपलब्ध करने के अतिरिक्त यहाँ प्रथम बार भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के भूगोल को स्पष्टतापूर्वक निरूपित करने का प्रयत्न किया गया है, जिसे भी इस अध्ययन की एक विशेषता माना जा सकता है।

यद्यपि यह पुस्तक बुद्धकालीन भारत के सर्वाङ्गीण भौगोलिक अध्ययन के रूप में ही लिखी गई है, फिर भी इसके विषय के अनेक महत्वपूर्ण पक्ष बुद्ध-पद-अंकित भूमि से ही सम्बद्ध हैं। अतः इसे यदि बुद्ध के जीवन की भौगोलिक भूमिका भी समझा जाय तो इसमें मुझे कोई आपत्ति नहीं। फा-ह्यान ने गृध्रकूट पर्वत-शिखर

पर रात भर दीपक जलाते हुए किसी प्रकार अपने आँसुओं को रोककर कहा था, "मैं, फा-ह्यान, इतनी देर बाद पैदा हुआ हूँ कि मैं बुद्ध से नहीं मिल सकता। मैं सिर्फ उनके चिन्हों और वास-स्थान को एकटक होकर निहार सकता हूँ।" इस पुस्तक के वर्णनों ने यदि बुद्ध के चिन्हों और वास-स्थानों के सम्बन्ध में कुछ भी इस प्रकार की छटपटाहट हमारे अन्दर पैदा की या उसकी शान्ति का उपाय किया, तो इससे बढ़कर कृतार्थता लेखक और पाठकों के लिए भी और क्या होगी ?

मुझे आशा है कि पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं पर आधारित बुद्ध-कालीन भूगोल का यह अध्ययन अपने विषय सम्बन्धी ज्ञान की वृद्धि करेगा और उस विस्तृत और समृद्ध विरासत की अधिकाधिक खोज की ओर विद्वानों को प्रवृत्त करेगा जो पालि परम्परा में निहित है।

विषय-सूची

पहला परिच्छेद

स्रोत : उनका प्रामाण्य और भौगोलिक महत्व

अभिधम्म-पिटक के ग्रन्थों की अट्ठकथाओं में... भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण कुछ अन्य पालि और संस्कृत बौद्ध साहित्य का संक्षिप्त निर्देश.... प्रस्तुत अध्ययन केवल पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं पर आधारित।

पृष्ठ १–५२

दूसरा परिच्छेद

जम्बुद्वीप : प्रादेशिक विभाग और प्राकृतिक भूगोल

पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में बुद्धकालीन भारत का नाम "जम्बु-दीप" है......जम्बुद्वीप की सीमा, विस्तार और आकार के सम्बन्ध में पालि विवरण......चार महाद्वीप......जम्बुदीप......पुब्ब-विदेह......उत्तरकुरु......अपरगोयान.....प्रत्येक की पारस्परिक स्थिति और विस्तार के सम्बन्ध में विवेचन......जम्बुद्वीप की सीमा और विस्तार के सम्बन्ध में पालि विवरण और उनका आधुनिक भौगोलिक अर्थ......पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के "जम्बुदीप" का पौराणिक जम्बुद्वीप और जैन "जम्बुदीव" से भेद......जम्बुद्वीप के आकार के सम्बन्ध में पालि साक्ष्य......"उत्तरेण आयतं दक्खिणेन सकटमुखं" ......जम्बुद्वीप के सम्बन्ध में कुछ अन्य पालि विवरण......पुब्बविदेह के सम्बन्ध में पालि विवरण और उसकी आधुनिक पहचान.....उत्तरकुरु के सम्बन्ध में पालि विवरण और उसकी आधुनिक पहचान......अपर-गोयान के सम्बन्ध में पालि विवरण और उसकी आधुनिक पहचान...... जम्बुद्वीप के प्रादेशिक विभाग के तीन प्रकार......सोलह महाजनपद ......तीन मण्डल.....महामण्डल, मज्झिम मण्डल और अन्तिम मण्डल या अन्तो मण्डल......पाचीन, अवन्ती और दक्खिणापथ......पाँच प्रदेश......मज्झिम देस, पुब्बन्त, पुरत्थिम या पाचीन देस, उत्तरापथ, अपरन्त और दक्खिणापथ......अन्तिम विभाजन भौगोलिक दृष्टि से अधिक उपयोगी......मज्झिम देस......बौद्ध दृष्टि से उसका

तीसरा परिच्छेद

बुद्धकालीन भारत का राजनैतिक भूगोल

चौथा परिच्छेद

मानव-भूगोल

पाँचवाँ परिच्छेद

आर्थिक और व्यापारिक भूगोल

परिशिष्ट

पहला परिच्छेद

स्रोत : उनका प्रामाण्य और भौगोलिक महत्व

जिन स्रोतों के आधार पर बुद्धकालीन भारत के भूगोल का यह अध्ययन प्रस्तुत किया गया है, उनका रूप दो प्रकार का है। (१) मौलिक और आधारभूत स्रोत, जिनका प्रतिनिधित्व पालि तिपिटक के विभिन्न ग्रन्थ करते हैं। (२) सहायक और गौण स्रोत, जिनके अन्तर्गत पालि तिपिटक की अट्ठकथाएँ सम्मिलित है। बुद्ध-काल की भौगोलिक अवस्थाओं को प्रकट करने में इनका प्रामाण्य क्या है, यह अब हमें देखना है।

पालि तिपिटक (सं० त्रिपिटक) भगवान् बुद्ध के उपदेशों और संवादों का प्राचीनतम संकलन है जो आज हमें प्राप्त है। बुद्ध-वचनों का यह प्रामाणिकतम लेखबद्ध रूप मध्य-देश के जन-साधारण के व्यवहार में आने वाली उस (पालि) भाषा में लिखा गया है, जिसमें भगवान् बुद्ध ने अपने उपदेश दिये थे। अतः बुद्ध के देश और काल को समझने के लिए पालि तिपिटक के समान अन्य कोई साधन हमारे पास नहीं है। पालि तिपिटक में आने वाला प्रत्येक शब्द चाहे भगवान् बुद्ध के द्वारा भले ही उच्चरित न किया गया हो, परन्तु यह निर्विवाद सत्य है कि उसका अधिकतर भाग छठी-पाँचवीं शताब्दी ईसवी-पूर्व बुद्ध-मुख से ही निःसृत हुआ था और उसी रूप में वह ग्राह्य है।

पालि तिपिटक तीन पिटकों या पिटारियों का संग्रह है, जिनके नाम हैं सुत्त-पिटक, विनय-पिटक और अभिधम्म-पिटक, जो पुनः अनेक ग्रन्थों में विभक्त हैं। पालि तिपिटक के सभी ग्रन्थ एक युग के नहीं हैं। उनका संकलन विभिन्न समयों में और विभिन्न स्थानों पर किया गया। अतः पालि तिपिटक की प्रमाणवत्ता निश्चित होते हुए भी सीमित और आपेक्षिक है। डा० गायगरने भाषा-विज्ञान की

दृष्टि से विवेचन करते हुए सिद्ध किया है कि चूँकि पालि भाषा ही, जो मागधी का एक रूप थी, वह मूल भाषा थी जिसमें भगवान् बुद्ध ने अपने उपदेश दिये थे, अतः पालि तिपिटक को हमें बुद्ध-वचनों का मौलिक और प्रामाणिकतम लेखबद्ध रूप मानना पड़ेगा।[१] ऐतिहासिक आधार पर विचार करते हुए भी हम इसी निष्कर्ष पर पहुँचते हैं कि पालि तिपिटक के जो प्राचीनतम अंश हैं उनकी उत्पत्ति शास्ता के जीवन-काल में ही हुई और जो अंश अपेक्षाकृत अर्वाचीन माने जा सकते हैं, वे भी सम्राट् अशोक के समय (ईसवी-पूर्व २७३ से ईसवी-पूर्व २३६ तक) तक अपना अन्तिम और निश्चित रूप प्राप्त कर चुके थे। बौद्ध संगीतियों के इतिहास में बिना विस्तार-पूर्वक गये[२] हम यह कह सकते है कि पालि तिपिटक के स्वरूप का क्रमशः निर्माण और विनिश्चय उन तीन संगीतियों के परिणाम-स्वरूप हुआ जो बुद्ध-परिनिर्वाण (पाँचवीं शताब्दी ईसवी-पूर्व) के बाद प्रायः दो शताब्दियों में सम्पन्न हुई। इनमें से पहली संगीति मे, जो बुद्ध-परिनिर्वाण के कुछ सप्ताहों बाद ही राजगृह की सप्तपर्णी नामक गुफा में हुई, शास्ता के द्वारा सिखाये गये धम्म और विनय का संगायन किया गया। दूसरी संगीति, जो वैशाली की संगीति थी, इसके करीब १०० वर्ष बाद हुई और उसने कुछ विवादग्रस्त विनय-सम्बन्धी नियमों का निपटारा किया। तृतीय संगीति सम्राट् अशोक के शासन-काल मे पाटलिपुत्र मे हुई और पालि तिपिटक को इस संगीति में अन्तिम विनिश्चित स्वरूप प्रदान किया गया। अभिधम्म-साहित्य के विकास की दृष्टि से इस संगीति का विशेष महत्व है, क्योंकि इसी समय कथावत्थुप्पकरण को, जो इस संगीति के सभापति स्थविर मोग्गलिपुत्त तिस्स की रचना थी, अभिधम्म-पिटक में सम्मिलित कर लिया

१. पालि लिटरेचर एण्ड लेंग्वेज, पृष्ठ ४-७।

२. पालि साहित्य के विकास की दृष्टि से तीन बौद्ध संगीतियों का विस्तृत विवेचन लेखक ने "पालि साहित्य का इतिहास" के दूसरे अध्याय (पृष्ठ ७४-९०) में किया है। पिष्टपेषण के भय से और अपने प्रकृत विषय से दूर जा पड़ने की सम्भावना से यहाँ इस विषय का विस्तृत विवेचन उपस्थित नहीं किया गया है।

गया। इसी संगीति के परिणामस्वरूप अशोक-पुत्र महिन्द (सं० महेन्द्र) अपने अन्य स्थविर साथियों के सहित धर्म-प्रचारार्थ लंकाद्वीप गये और अपने साथ अन्तिम रूप से परिपूर्ण और पाटलिपुत्र की संगीति में विनिश्चित पालि तिपिटक को भी लेते गये। यह निर्विवाद सत्य है कि आज जिस रूप में पालि तिपिटक हमें मिलता है, वह अपने अधिकांश रूप में बिलकुल वही है जिसका विनिश्चय पाटलिपुत्र की संगीति ने किया था। अशोक के भाब्रू शिलालेख का साक्ष्य भी यही है[1] और इसी तथ्य की ओर संकेत भरहुत और साँची के अभिलेख और उनकी पाषाण-वेष्टनियों पर अंकित जातकों के अनेक चित्र करते हैं।[2] उनका अन्तिम साक्ष्य यही है कि तीसरी शताब्दी ईसवी-पूर्व पालि तिपिटक प्रायः उसी रूप में और अपने विभिन्न धम्म-परियायों या धर्मोपदेशों के प्रायः उन्हीं नामों के सहित विद्यमान था, जिनमें वह आज पाया जाता है। स्थविर महेन्द्र और उनके साथी भिक्षुओं के द्वारा ले जाये गये पालि तिपिटक को प्रथम बार लेखबद्ध रूप सिंहली राजा वट्टगामणि के शासन-काल में लंका में प्रथम शताब्दी ईसवी-पूर्व में दिया गया, जब से वह उसी रूप में चला आ रहा है।

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पालि तिपिटक के संकलन की उपरली

---

१. इस शिलालेख में अशोक ने कुछ धम्म-परियायों या धम्म-पलियायों के सतत अध्ययन और मनन की प्रेरणा भिक्षु-भिक्षुणियों और उपासक-उपासिकाओं को दी है। ये सभी धम्म-पलियाय पालि तिपिटक के अंगों के रूप में आज भी विद्यमान हैं, जिनकी पहचान के सम्बन्ध में विद्वानों में कहीं कुछ अल्प मतभेद भी हैं। लेखक ने इस विषय सम्बन्धी विस्तृत विवेचन "पालि साहित्य का इतिहास" (पृष्ठ ६२७-६३१) में किया है।

२. भरहुत और सांची के स्तूपों में बुद्ध-जीवन के अनेक चित्र अंकित हैं। भरहुत स्तूप की पाषाण-वेष्टनियों पर अंकित जातक-कहानियों की सूची के लिए देखिए रायस डेविड्स्: बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ १३८ (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०); मिलाइये लाहा: हिस्ट्री ऑव पालि लिटरेचर, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६६७ (परिशिष्ट 'बी'); विण्टरनित्ज: हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७-१८।

काल-सीमा बुद्ध-परिनिर्वाण अर्थात् पाँचवीं शताब्दी ईसवी-पूर्व है और निचली काल-सीमा प्रथम शताब्दी ईसवी-पूर्व, यद्यपि उसके मुख्य ग्रन्थों का संकलन अशोक के काल तक सम्पन्न हो चुका था। वस्तुतः सर्वांश में 'बुद्धवचन' होने के रूप में तो पालि तिपिटक के प्रामाण्य की कुछ आपेक्षिकता भी कही जा सकती है. क्योंकि संगीतिकारों का भी उसके निर्माण में कुछ न कुछ हाथ हो सकता है, परन्तु इससे हमारे वर्तमान उद्देश्य में कोई हानि नहीं आती। संगीतिकारों ने भी कोई योगदान पालि तिपिटक के स्वरूप-निर्माण में दिया हो, परन्तु वह योगदान भी अन्तिम रूप से अशोक के काल तक दे दिया गया था, जिसे पालि तिपिटक के संकलन की अन्तिम तिथि माना जा सकता है।[1]

भौगोलिक दृष्टि से भी पालि तिपिटक की प्राचीनता सिद्ध की जा सकती है। सुत्त-पिटक के प्रथम चार निकायों और विनय-पिटक के प्राचीनतम

---

१. बुद्ध-काल से लेकर अशोक-काल तक के संकलित या रचित पालि साहित्य के काल-क्रम का विवरण (जो अधिकतर अनुमानाश्रित और अनिश्चित ही हो सकता है) देने का सर्वप्रथम प्रयत्न डॉ० टी० डब्लू० रायस डेविड्स् ने किया था। उनके निष्कर्षों के लिये देखिये "बुद्धिस्ट इण्डिया", पृष्ठ १२१-१२२ (प्रथम भारतीय संस्करण, १९५०)। डॉ० विमलाचरण लाहा ने इस अध्ययन को विकसित करने का प्रयत्न "हिस्ट्री ऑव पालि लिटरेचर" जिल्द पहली, पृष्ठ १-४२ में किया है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने "बुद्धचर्या" में पालि तिपिटक के कुछ सुत्तों और अंशों को काल-क्रम के अनुसार ग्रथित करने का प्रयत्न किया है, परन्तु यह कार्य अपनी समग्रता में असम्भव है, ऐसा उन्होंने स्वीकार किया है। "सभी के लिये तो उसी वक्त आशा छूट गई, जबकि पिटक को कंठस्थ करने वाले, काल-परम्परा को लिपिबद्ध न कर ही, इस लोक से चले गये।" बुद्धचर्या, पृष्ठ २ (प्राक्कथन)। पालि तिपिटक के काल-क्रम के सम्बन्ध में कुछ विचार के लिये देखिए "हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑव दि इण्डियन पीपुल", जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४०७-४०९ भी। पालि तिपिटक के विभिन्न ग्रंथों का विवेचन करते हुए प्रस्तुत लेखक ने उनके काल-क्रम का विस्तृत विवेचन "पालि साहित्य का इतिहास" में किया है।

अंशों में पूर्व दिशा में कलिंग से परे और दक्षिण में गोदावरी से परे किसी स्थान का निर्देश नहीं किया गया है। परन्तु अशोक के द्वितीय शिलालेख में सुदूर दक्षिण के चोल, पाण्ड्य, सत्यपुत्र, केरलपुत्र (चोला पण्डिया सतियपुत्तो केललपुत्तो) जैसे जनपदों के उल्लेख हैं। इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि सुत्त-पिटक के प्रथम चार निकायों के भूगोल का युग अशोक के युग से पूर्वकालीन होना चाहिए। यही बात लंका के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है। सुत्त-पिटक के प्रथम चार निकायों मे लंकाद्वीप का कोई उल्लेख नहीं है, परन्तु अशोक के युग में वह एक सुविज्ञात द्वीप था, जहाँ उसके प्रव्रजित पुत्र और पुत्री धर्म-प्रचारार्थ गये थे। अशोक और उसके समकालीन सिंहली राजा देवानं पिय तिस्स के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध का उल्लेख मिलता है। तंबपंनि (ताम्रपर्णि—श्रीलंका) का उल्लेख अशोक के द्वितीय शिलालेख में भी आया है। अतः सामान्यतः सुत्त-पिटक के प्रथम चार निकायों और विनय-पिटक के अधिकांश भाग को हमें तीसरी शताब्दी ईसवी-पूर्व में पहले संकलित मानना पड़ेगा।

पालि तिपिटक के अन्तः साक्ष्य से भी यह बात स्पष्ट होती है। विनय-पिटक के चुल्लवग्ग में प्रथम दो संगीतियों का तो उल्लेख है, परन्तु तृतीय संगीति का वहाँ उल्लेख नहीं है। अतः स्पष्टतः वह अशोक-पूर्व युग में संकलित किया गया था। चूंकि इसी चुल्लवग्ग में सुत्त-पिटक के पाँच निकायों और (विनय-पिटक के) सुत्त-विभंग का उल्लेख है, अतः इन ग्रन्थों को निश्चयतः चुल्लवग्ग से अधिक प्राचीन संकलन होना चाहिये। कथावत्थु, जो अशोककालीन रचना है, सुत्त-पिटक, विनय-पिटक और अभिधम्म-पिटक के शेष ग्रन्थों की विद्यमानता की सूचना देती है। अतः इस सब साहित्य को अशोक-पूर्व युग का होना चाहिए। वस्तुतः पालि तिपिटक का मूल बुद्ध-जीवन में ही है और इसी कारण उसे छठी और पाँचवीं शताब्दी ईसवी-पूर्व के भारत के चित्र को जानने का एक विश्वसनीय साधन माना जा सकता है। बुद्ध के जीवन-काल की परिस्थितियों का वह प्राचीनतम लेखबद्ध विवरण है और इस रूप में उसका प्रामाण्य न केवल निर्विवाद है बल्कि सम्पूर्ण भारतीय साहित्य में इस दृष्टि से उसका अपना एक अलग स्थान ही है।[1]

---

१. "बुद्ध-वचनं" के रूप में पालि तिपिटक की प्रामाणिकता का विस्तृत विवेचन लेखक ने "पालि साहित्य का इतिहास" पृष्ठ १११–१२१ में किया है।

पालि तिपिटक, जैसा हम अभी कह चुके हैं, तीन पिटकों में विभक्त है, जिनके नाम हैं सुत्त-पिटक, विनय-पिटक और अभिधम्म-पिटक। अभिधम्म-पिटक का विषय बौद्ध तत्वज्ञान की सूक्ष्म नैतिक और मनोवैज्ञानिक समस्याओं का गहनता-पूर्वक विवेचन करना है, अतः उसके सात ग्रन्थों में स्फुट और प्रासंगिक रूप से भले ही कहीं कुछ अल्प भौगोलिक सूचना मिल जाय, परन्तु इस दृष्टि से उसका कोई उल्लेखनीय महत्व नहीं कहा जा सकता। भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण सुत्त-पिटक और विनय-पिटक ही हैं, जिनके इस सम्बन्धी महत्व पर कुछ प्रकाश हम 'वस्तुकथा' में भी डाल चुके हैं। यहाँ उनके विभिन्न ग्रन्थों का उल्लेख करते हुए उनमें प्राप्त भौगोलिक निर्देशों का कुछ संक्षिप्त विवरण देना उचित होगा।

सुत्त-पिटक पाँच निकायों या शास्त्र-समूहों में विभक्त है, जिनके नाम हैं दीघ-निकाय, मज्झिम-निकाय, संयुत्त-निकाय, अंगुत्तर-निकाय और खुद्दक-निकाय। *दीघ-निकाय में दीर्घ आकार के सुत्तों का संकलन है। ऐसा जान पड़ता है कि* इस निकाय का संग्रह अत्यन्त प्राचीन काल में कर लिया गया था, क्योंकि इसके प्रथम सुत्त, ब्रह्मजाल-सुत्त, का उद्धरण संयुत्त-निकाय में इन शब्दों मे दिया गया है, "ब्रह्मजाल-सुत्त में जो बासठ मिथ्या दृष्टियाँ कही गई है. . ."।[1] दीघ-निकाय में कुल ३४ सुत्त हैं, जिन्हें तीन वग्गों में इस प्रकार विभक्त किया गया है : (१) सीलक्खन्ध वग्ग, जिसमें सुत्त-संख्या १–१३ संगृहीत है। (२) महावग्ग, जिसमें सुत्त-संख्या १४–२३ संगृहीत हैं और (३) पाथेय या पाटिक वग्ग, जिसमें चौबीसवीं संख्या से लेकर चौंतीसवीं संख्या तक के सुत्त संकलित हैं।

दीघ-निकाय के प्रथम सुत्त, ब्रह्मजाल-सुत्त, में हम भगवान् बुद्ध को राजगृह और नालन्दा के बीच लम्बे रास्ते पर जाते देखते हैं। "भगवा अन्तरा च राजगहं अन्तरा चा नालन्दं अद्धान-मग्ग-पटिपन्नो होति"। इस सुत्त में अनेक प्रकार की जीविकाओं का भी उल्लेख किया गया है, जिनके द्वारा उस समय लोग जीवन यापन करते थे। दीघ-निकाय के द्वितीय सुत्त, सामञ्ञफल-सुत्त का उपदेश राजगृह में जीवक के आम्रवन में भगवान् के दर्शनार्थ गये राजा अजातशत्रु वैदेहिपुत्र के

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५७२।

प्रति दिया गया था। इस सुत्त में अनेक प्रकार के शिल्पस्थानों (सिप्पायतनानि) का वर्णन किया गया है, जिनसे उस समय की दस्तकारी की अवस्था और व्यापारिक भूगोल पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। दीघ-निकाय के तृतीय सुत्त, अम्बट्ठ-सुत्त, में हम भगवान् को कोसल देश में इच्छानंगल नामक ब्राह्मण-ग्राम के समीप इच्छानंगल वनखण्ड में विचरते देखते हैं। यहीं ब्राह्मण पण्डित पौष्करसाति का शिष्य अम्बट्ठ माणवक भगवान् से मिलने गया था। पौष्करसाति ब्राह्मण के सम्बन्ध में कहा गया है कि उसे कोसल देश में उक्कट्ठा नामक नगरी की सारी आय दान के रूप में कोसलराज प्रसेनजित् की ओर से मिली हुई थी। "उस समय पौष्करसाति ब्राह्मण कोसलराज प्रसेनजित् द्वारा प्रदत्त राजभोग्य, राजदाय, ब्रह्मदेय, जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्य-सम्पन्न उक्कट्ठा का स्वामी था।" इस सुत्त में हिमालय के समीप (हिमवन्तपस्से) सरोवर के किनारे स्थित एक बड़े शाक (सागौन) के वनखण्ड (महासाकवनखण्डो) का भी उल्लेख है, जहाँ राजा इक्ष्वाकु (ओक्काको) के चार निर्वासित पुत्रों ने अपना निवास बनाया था। इस सुत्त में शाक्य (सकिय) जाति की उत्पत्ति और शाक्यों के कपिलवस्तु-स्थित संस्थागार (सन्थागार) का भी उल्लेख है, जिससे उस समय के राजनैतिक भूगोल पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। दीघ-निकाय के चतुर्थ सुत्त, सोणदण्ड-सुत्त, में हम भगवान् बुद्ध को अंग देश में चारिका करते हुए उसकी चम्पा नामक नगरी में पहुँचते देखते हैं। "भगवा अंगेसु चारिकं चरमानो येन चम्पा तदवसरि।" यहाँ भगवान् ने गग्गरा पोक्खरणी नामक पुष्करिणी के तीर पर विहार किया था। "भगवा चम्पायं विहरति गग्गराय पोक्खरणिया तीरे।" जिस प्रकार गत सुत्त से हमें पता चलता है कि उक्कट्ठा नामक नगरी कोसल राज्य में थी और उसकी आय कोसलराज प्रसेनजित् की ओर से ब्राह्मण पौष्करसाति को दान के रूप में दी गई थी, उसी प्रकार इस सुत्त का साक्ष्य यह है कि चम्पा नगरी, जो अङ्ग जनपद का एक अंग थी, उस समय मगधराज बिम्बिसार के राज्य में सम्मिलित थी और उसकी सारी आय दान के रूप में मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार के द्वारा (रञ्जा मागधेन सेनियेन बिम्बिसारेन) सोणदण्ड नामक ब्राह्मण को दी गई थी। "उस समय सोणदण्ड ब्राह्मण, मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार द्वारा प्रदत्त, जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्य-सहित राजभोग्य,

राजदाय, ब्रह्मदेय, चम्पा का स्वामी था।" सम्पूर्ण अंग जनपद बुद्ध के जीवन-काल में मगध राज्य में सम्मिलित था, ऐसा इस सुत्त का साक्ष्य है । कूटदन्त-सुत्त (५) हमारा परिचय खाणुमत नामक ब्राह्मण-ग्राम से कराता है, जो मगध देश में था। यहीं के समीप अम्बलट्ठिका (आम्रयष्टिका) नामक बाग में भगवान् ने विहार किया था। महालि-सुत्त (६) में हम भगवान् बुद्ध को वैशाली के समीप महावन की कूटागारशाला में विहरते देखते है। "भगवा वेसालियं विहरति महावने कूटागारसालायं"। इस सुत्त में कौशाम्बी के प्रसिद्ध बौद्ध विहार घोषिताराम का भी उल्लेख है। "कोसम्बियं...... घोसितारामे"। जालिय-सुत्त (७) का भी उपदेश भगवान् ने कौशाम्बी के घोषिताराम में ही दिया था। इसीलिये इस सुत्त के आरम्भ में कहा गया है "एकं समयं भगवा कोसम्बिय विहरति घोसितारामे।" कस्सप-सीहनाद-सुत्त (८) का उपदेश उजुञ्ञा के समीप कण्णकत्थल नामक मिगदाय (मृगदाव) में दिया गया। पोट्ठपाद-सुत्त (९) में हम भगवान् को श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मित जेतवनाराम में निवास करते देखते हैं। "भगवा सावत्थियं विहरति जेतवने अनाथिपिण्डिकस्स आरामे"। इस सुत्त में तिन्दुकाचीर नामक एक आराम का भी उल्लेख है, जिसे कोसलेश्वर-महिषी मल्लिका ने श्रावस्ती के समीप बनवाया था। यहीं पोट्ठपाद नामक परिव्राजक रहता था। सुभ-सुत्त (१०) में हम भगवान् बुद्ध के निर्वाण के कुछ दिन बाद ही आनन्द को श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में विहार करते देखते है। केवट्ट-सुत्त, केवड्ड-सुत्त या केवद्ध-सुत्त (११) में हम भगवान् को नालन्दा के समीप पावारिक आम्रवन में विहार करते देखते है। "भगवा नालन्दायं विहरति पावारिकम्बवने।" इस सुत्त में नालन्दा के सम्बन्ध में कहा गया है कि "यह नालन्दा समृद्ध, धनधान्यपूर्ण और बहुत घनी बस्ती वाली है" (नालन्दा इद्धा चेव फीता च बहुजना आकिण्णमनुस्सा)। लोहिच्च-सुत्त (१२) में हम भगवान् को कोसल देश में चारिका करते हुए उसकी सालवनिका नामक नगरी में पहुँचते देखते हैं। "भगवा कोसलेसु चारिकं चरमानो...... येन सालवतिका तदवसरि।" इस सुत्त से हमें यह भी पता चलता है कि कोसलराज प्रसेनजित् (पसेनदि) कोसल और काशी दोनों देशों का स्वामी था और इन दोनों देशों की आय का उपभोग करता था। तेविज्ज-सुत्त (१३) में हम भगवान् बुद्ध को

कोसल देश के मनसाकट नामक ब्राह्मण-ग्राम के उत्तर में अचिरवती नदी के किनारे एक आम्रवन में विचरते देखते हैं। महापदान-सुत्त (१४) में हम भगवान् को श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन की करेरी नामक कुटी में (करेरि-कुटिकायं) विहार करते देखते हैं। इस सुत्त में कुछ प्राचीन नगरियों के उल्लेख हैं जो अज्ञात बुद्ध-पूर्व युग में भारत की राजधानी रही थी, जैसे कि बन्धुमती (जहाँ के खेमा मृगदाव का भी इस सुत्त में उल्लेख है), अरुणवती, अनोमा, खेमवती, सोभवती और बाराणसी। कपिलवस्तु का भी इस सुत्त में उल्लेख है और उक्कट्ठा के समीप सुभगवन का भी। इस सुत्त में भगवान् ने एक उपमा का प्रयोग किया है, जिसमें काशी के सुन्दर वस्त्र का उल्लेख है "भिक्षुओ! जैसे मणिरत्न काशी के वस्त्र से लपेटा हुआ हो, तो न वह मणिरत्न काशी के वस्त्र में चिपट जाता है और न काशी का वस्त्र मणिरत्न में चिपट जाता है। सो क्यों? दोनों की शुद्धता के कारण"[१]। इस सुत्त में हिमालय पर्वत पर रहने वाले एक मंजु स्वर वाले, मनोज्ञ करविंक नामक पक्षी का भी वर्णन है। महानिदान-सुत्त (१५) में हम भगवान् को कुरु देश में कुरुओं के निगम कम्मासदम्म (कल्माषदम्य) में विहार करते देखते हैं। महापरिनिब्बाण-सुत्त (१६) दीघ-निकाय का सम्भवतः सबसे अधिक महत्वपूर्ण सूत्र है और यह बात भौगोलिक दृष्टि से भी सर्वथा ठीक है। यहाँ हमें भगवान् बुद्ध की अन्तिम यात्रा का, जो उन्होंने राजगृह से कुशीनगर तक की, परिपूर्ण वर्णन, रास्ते में पड़ने वाले पड़ावों के विस्तृत विवरण के सहित, मिलता है। सुत्त के प्रारम्भ में हम भगवान् बुद्ध को राजगृह के समीप गृध्रकूट पर्वत (गिज्झकूट पब्बत) पर विहार करते देखते हैं। यहीं मगधराज अजातशत्रु का महामात्य वर्षकार ब्राह्मण भगवान् से मिलने आया और उसने उन्हें बताया कि मगधराज अजातशत्रु वज्जियों पर आक्रमण करना चाहता है। भगवान् ने बिना वर्षकार से बातें किये आनन्द की ओर अभिमुख होकर (जो उस समय तथागत पर पंखा झल रहे थे) कहा कि जब तक वज्जी सात अपरिहानिय धर्मों का पालन करते रहेंगे, उनकी कोई हानि नहीं होगी। राजगृह के गृध्रकूट पर्वत से चलकर भगवान् अम्बलट्ठिका आये और राजागारक (राजकीय भवन) नामक स्थान में ठहरे। अम्बलट्ठिका

---

१. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९९

राजगृह और नालन्दा के बीच में आम्रवन के रूप में स्थान था। अम्बलट्ठिका से चलकर भगवान् नालन्दा आये, जहाँ वे प्रावारिक आम्रवन में ठहरे। नालन्दा से प्रस्थान कर भगवान् पाटलिगाम आये और यहाँ उन्होंने गंगा नदी को पार किया। जिस समय भगवान् पाटलिगाम में थे, उसी समय मगधराज अजातशत्रु वैदेहिपुत्र के दो महामात्य सुनीघ (सुनीथ) और वस्सकार (वर्षकार) भगवान् से फिर मिलने आये। इस सुत्त मे हमें यह सूचना मिलती है कि राजा अजातशत्रु उस समय वज्जियों को जीतने के लिए नगर को बसा रहा था। पाटलिगाम के जिस द्वार से भगवान् निकले, उसका नाम उनके सम्मान में मगधराज के उक्त दो महामात्यों द्वारा "गौतम द्वार" रक्खा गया और जिस घाट से उन्होंने गगा को पार किया, उसका "गौतम तीर्थ"। गंगा को पार कर भगवान् कोटिग्राम आये और वहाँ से नादिका (नातिका) नामक ग्राम में पहुँचे। यहाँ भगवान् गिंजकावसथ नामक स्थान में ठहरे। नादिका से चलकर भगवान् बुद्ध वैशाली आये और यहाँ पहले वे अम्बपाली के आम्रवन में ठहरे और अम्बपाली के आतिथ्य को स्वीकार किया। तदनन्तर भगवान् समीप के बेलुव नामक एक छोटे से ग्राम में गये और वहीं उन्होंने स्वयं वर्षावास करने का विचार किया और भिक्षुओं को आदेश दिया कि वे वैशाली के आसपास विहरें। परन्तु इसी समय भगवान् को कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई जिसे उन्होंने यह सोचकर दबा दिया कि बिना भिक्षु-सघ को अवलोकन किये और सेवकों को जतलाये वे परिनिर्वाण में प्रवेश नही करेंगे। वर्षावास के बाद एक दिन वे वैशाली में भिक्षार्थ आये और ध्यान के लिये आनन्द के साथ चापाल चैत्य में बैठे। यहीं उन्होंने कहा कि वे तीन मास बाद महापरिनिर्वाण में प्रवेश करेंगे। तदनन्तर भगवान् वैशाली की महावन कूटागारशाला में चले गये और वैशाली के आसपास विहरने वाले सब भिक्षुओं को आमंत्रित करते हुए भगवान् ने उनसे कहा कि जिस धर्म का उन्होंने उन्हें उपदेश दिया है उसका बहुजन-हितार्थ उन्हें ज्ञानपूर्वक पालन करना चाहिये, ताकि यह ब्रह्मचर्य (बुद्ध-धर्म) चिरस्थायी हो। इसी दिन वैशाली में भिक्षाचर्या करने के बाद भगवान् भण्डगाम की ओर चल पड़े। भण्डगाम से तथागत हत्थिगाम, अम्बगाम और जम्बुगाम नामक स्थानों पर रुकते हुए भोगनगर पहुँचे। भोगनगर में भगवान् ने आनन्द चेतिय नामक स्थान मे निवास किया। भोगनगर से चलकर भगवान् पावा पहुँचे, जहाँ उन्होंने चुन्द सुनार

के आम्रवन में विहार किया। इसी सुनार के यहाँ अन्तिम भोजन किया और बीमार पड़ गये। पावा से चलकर भगवान् ने एक छोटी नदी (नदिका) का, जिसका नाम नहीं दिया गया है, जल पिया। इस नदी का पानी उस समय गंदा हो रहा था, क्योंकि पाँच सौ गाड़ियाँ वहाँ होकर थोड़ी ही देर पहले निकली थीं। भगवान् के कई बार के आग्रह पर आनन्द वहाँ जल लेने गये और उसके जल को स्वच्छ पाया। इसी समय मल्लपुत्र पुक्कुस ने भगवान् को एक दुशाला भेंट किया, जिसके एक भाग को भगवान् के आदेशानुसार उसने भगवान् को उढ़ा दिया और दूसरे को आनन्द को। इस छोटी नदी से आगे चलकर भगवान् ककुत्था नामक नदी पर आये जहाँ उन्होंने जल पिया और स्नान किया। ककुत्था नदी को पार कर भगवान् ने एक आम्रवन (अम्बवन) में विश्राम किया, जो (दीघनिकाय की अट्ठकथा के अनुसार) इसी नदी के दूसरे किनारे पर स्थित था। यहाँ से चलकर भगवान् ने एक और नदी को पार किया जिसका नाम हिरण्यवती था और तब वे कुसिनारा के समीप, मल्लों के उपवत्तन (उपवर्तन) नामक शाल-वन में आये, जहाँ उन्होंने रात्रि के अन्तिम याम में महापरिनिर्वाण में प्रवेश किया।

भगवान् बुद्ध की इस अन्तिम यात्रा का पूर्ण विवरण देने के अलावा महापरिनिब्बाण-सुत्त का अन्य भी प्रभूत भौगोलिक महत्व है। उदाहरणतः बुद्ध के जीवन-कालीन भारत के छह प्रसिद्ध नगरों (महानगरानि) का इस सुत्त में उल्लेख है। भगवान् के इस निर्णय को सुनकर कि वे कुसिनारा में परिनिर्वाण प्राप्त करेंगे, आनन्द ने उनसे प्रार्थना की कि वे इस क्षुद्र नगले में परिनिर्वाण प्राप्त न करें। "भन्ते, और भी महानगर हैं, जैसे कि चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी और वाराणसी। वहाँ भगवान् परिनिर्वाण प्राप्त करें।" (सन्ति हि भन्ते अञ्ञानि महानगरानि सेय्यथीदं चम्पा, राजगहं, सावत्थि, साकेतं, कोसम्बि, बाराणसी। एत्थ भगवा परिनिब्बायतु)। भगवान् आनन्द को यह कहकर चुप कर देते है कि कुसिनारा क्षुद्र नगरी नहीं है, क्योंकि प्राचीन काल में कुशावती नाम से महासुदस्सन नामक चक्रवर्ती राजा की राजधानी रह चुकी है और उस समय इसका विस्तार लम्बाई में पूर्व से पश्चिम तक १२ योजन और चौड़ाई में ७ योजन उत्तर से दक्षिण तक था। "रञ्ञो आनन्द महासुदस्सनस्स अयं कुसिनारा कुसावती नाम राजधानी अहोसि, पुरत्थिमेन च पच्छिमेन च द्वादसयोजनानि आयामेन उत्तरेण

च दक्खिणेन च सत्त योजनानि वित्थारेण।" इस पुरातनकालीन कुशावती नगरी के सम्बन्ध में ही इस सुत्त में कहा गया है "आनन्द ! कुशावती राजधानी समृद्ध, बहुजनाकीर्ण और सुभिक्ष थी। आनन्द ! कुशावती राजधानी दिन-रात हस्ति-शब्द, अश्व-शब्द, रथ-शब्द, भेरी-शब्द, मृदंग-शब्द, वीणा-शब्द, गीत-शब्द, शंख-शब्द, ताल-शब्द और 'खाइये-पीजिये', इन दस शब्दों से शून्य न होती थी।" इस सुत्त में राजगृह के उन अनेक स्थानों का उल्लेख है जहाँ भगवान् ने अपने जीवन में किसी न किसी समय निवास किया था, जैसे कि गौतम न्यग्रोध, चोर प्रपात, वैभार गिरि की बगल में सत्तपण्णि गुहा (सप्तपर्णी गुफा), इसिगिलि (ऋषिगिरि) पर्वत की बगल में कालशिला, सीतवन में सप्पसोण्डिक, (सर्पशौण्डिक), तपोदाराम, वेणुवन में कलन्दक निवाप, जीवकम्बवन (जीवकाम्रवन) और मद्रकुक्षि मगदाव। इसी प्रकार वैशाली के इन चैत्यों का भी इस सुत्त में उल्लेख है, जैसे कि, उदयन चैत्य, गौतमक चैत्य, सत्तम्ब (सप्ताम्र) चैत्य, बहुपुत्रक चैत्य और सारन्दद चैत्य। इन सब स्थानों में भगवान् ने किसी न किसी समय निवास किया था। भगवान् बुद्ध ने इस सुत्त में नेरंजरा नदी के समीप उरुवेला में बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद अपने निवास का निर्देश किया है। इसी प्रकार आतुमा नामक गाँव के भुसागार में अपने निवास का भी। हम पहले उल्लेख कर चुके है कि जब भगवान् पावा से कुशीनगर की ओर जा रहे थे तो मार्ग में पुक्कुस नामक मल्ल व्यापारी माल लदी पाँच सौ गाड़ियों के सहित कुशीनगर से पावा की ओर आ रहा था और बीच में पड़ने वाली नदी को उसने पार किया था। इससे उस समय के व्यापारिक भूगोल पर पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। भगवान् बुद्ध के धातुओं के अंशों पर स्तूप-निर्माण के सम्बन्ध में इस सुत्त में उस समय के सात गणतन्त्रों का उल्लेख किया गया है, जैसे कि, पावा के मल्ल, कुसिनारा के मल्ल, पिप्पलिवन के मोरिय, वैशाली के लिच्छवि, कपिलवस्तु के शाक्य, अल्लकप्प के बुलिय और रामग्राम के कोलिय। महासुदस्सन-सुत्त (१७) का उपदेश कुशीनगर के समीप मल्लों के उपवर्तन नामक शालवन में दिया गया था। महापरिनिब्बाण-सुत्त के समान इस सुत्त में भगवान् के अन्तिम दिनों की जीवनी का वर्णन है और बुद्धकालीन भारत के छह महानगरों तथा पुरातन काल की कुशावती राजधानी का भी उसी के समान वर्णन है। जनवसभ-सुत्त (१८) का भौगोलिक महत्व इस बात के कारण है कि यहाँ बुद्ध-

कालीन भारत के दस जनपदों का दो-दो के जोड़ों के रूप में वर्णन है, जैसे कि, काशी और कोसल, वज्जी और मल्ल, चेति और वंस (वत्स), कुरु और पञ्चाल तथा मच्छ (मत्स्य) और सूरसेन। इस सुत्त में अंग और मगध राष्ट्रों का भी साथ-साथ मिला कर उल्लेख किया गया है। महागोविन्द-सुत्त (१९) में हम भगवान् को राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर विहार करते देखते हैं। इस सुत्त में अति प्राचीन-कालीन राजा रेणु के समय के जम्बुद्वीप (भारतवर्ष) के राजनैतिक भूगोल का विवरण है। इस सुत्त के अनुसार राजा रेणु के ब्राह्मण मन्त्री महागोविन्द ने सम्पूर्ण जम्बुद्वीप को सात राजनैतिक भागों में बाँट कर प्रत्येक राज्य की अलग-अलग राजधानी स्थापित की थी, जैसे कि :

	राज्य	राजधानी
१	कलिंग	दन्तपुर
२	अस्सक	पोतन
३	अवन्ती	माहिस्सति (माहिष्मती)
४	सोवीर	रोरुक
५	विदेह	मिथिला
६	अंग	चम्पा
७	काशी	वाराणसी

महासमय-सुत्त (२०) में हम भगवान् को शाक्यों के देश में कपिलवस्तु के महावन में विहार करते देखते हैं। सक्कपञ्ह-सुत्त (२१) में अम्बसण्ड नामक ब्राह्मण-ग्राम का उल्लेख है, जो राजगृह के पूर्व में अवस्थित था। इसी प्रकार इन्दसाल गुहा का भी यहाँ उल्लेख है, जो अम्बसण्ड ब्राह्मण-ग्राम के उत्तर में वेदियक (वेदिक) पर्वत की एक गुफा थी। महासतिपट्ठान-सुत्त (२२) में कुरुओं के निगम कम्मासदम्म का उल्लेख है, जिसका निर्देश एक गत सुत्त में भी आ चुका है। पायासि राजञ्ञ-सुत्त (२३) में कोसल देश के सेतव्या (श्वेताम्बी) नामक नगर का उल्लेख है, जिसके उत्तर में सिंसपावन नामक वन था। पाटिक-सुत्त या पाथिक सुत्त (२४) में हम भगवान् को मल्लों के निगम अनूपिया में विहरते देखते हैं। इस सुत्त में वैशाली के महावन में स्थित कूटागारशाला में भी भगवान्

के निवास का उल्लेख है और थुलू (बुमू, खुलू) लोगों के उत्तरका नामक कस्बे का भी। उदुम्बरिक-सीहनाद-सुत्त (२५) में हम भगवान् को राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर बिचरते देखते हैं। इस सुत्त से हमें पता चलता है कि राजगृह और गृध्रकूट के बीच में परिव्राजकों का एक आराम था, जिसका नाम उदुम्बरिका था। इस उदुम्बरिका के समीप, गृध्रकूट पर्वत के नीचे, सुमागधा नामक सरोवर के तट पर, मोर निवाप नामक स्थान का भी इस सुत्त में उल्लेख है। चक्कवत्ति-सीहनाद-सुत्त (२६) में हम भगवान् को मगध के मातुला नामक स्थान में विहरते देखते हैं। इस सुत्त में जम्बुद्वीप के भावी चक्रवर्ती राजा शंख और उसकी राजधानी केतुमती के सम्बन्ध में भविष्यवाणी है। अग्गञ्ञ सुत्त (२७) में हम भगवान् बुद्ध को श्रावस्ती में मृगारमाता के प्रासाद पूर्वाराम में विहार करते देखते हैं। इसी प्रकार सम्पसादनिय-सुत्त (२८) में नालन्दा के प्रावारिक आम्रवन में भगवान् के जाने का उल्लेख है और पासादिक-सुत्त (२९) में शाक्य देश में वेधञ्ञा नामक नगर के आम्रवन-प्रासाद में जाने का। (शाक्य जनपद के) सामगाम नामक ग्राम का भी इस सुत्त में उल्लेख है। पावा में जैन तीर्थकर निगण्ठ नाटपुत्त (निर्ग्रन्थ ज्ञातृपुत्र) की मृत्यु का भी इस सुत्त में उल्लेख है। लक्खण-सुत्त (३०) का उपदेश भगवान् ने श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में दिया। सिगालोवाद-सुत्त या सिगालोवाद-सुत्त (३१) में राजगृह के वेणुवन और कलन्दक निवाप का निर्देश है। आटानाटिय-सुत्त (३२) में उत्तरकुरु देश का विस्तृत पौराणिक वर्णन उपलब्ध है। इस सुत्त में उसकी राजधानी आलकमन्दा का तथा आटानाटा, कुसिनाटा, परकुसिनाटा आदि नगरों का विवरण मिलता है। इस सुत्त के अनुसार उत्तर-कुरु के राजा का नाम कुबेर है और इस देश में एक सुन्दर पुष्करिणी है जिसका नाम धरणी है। संगीति-परियाय-सुत्त (३३) में मल्लों के नगर पावा का उल्लेख है। यहाँ भगवान् ने चुन्द कर्मारपुत्र के आम्रवन में विहार किया था। इस सुत्त में मल्लों के नवीन संस्थागार (प्रजातन्त्र भवन) में काफी रात गये तक मल्लों और भिक्षुओं को उपदेश करते हम भगवान् को देखते है। दसुत्तर-सुत्त (३४) मे हम भगवान् बुद्ध को चम्पा में गग्गरा पोक्खरणी के तीर पर विहार करते देखते हैं। हम पहले देख चुके हैं कि सोणदण्ड-सुत्त का भी उपदेश भगवान् ने इस पुष्करिणी के तीर पर निवास करते समय ही दिया था।

मज्झिम-निकाय में मध्यम आकार के १५२ सुत्त संकलित हैं। प्रत्येक सुत्त अलग-अलग नाम देकर उसके भौगोलिक महत्व का विवेचन करना यहाँ इष्ट का न होगा, क्योंकि इससे विस्तार बढ़ जायगा और पुनरुक्ति की भी आशंका है। अतः समग्र रूप में मज्झिम-निकाय के १५२ सुत्तों का उपदेश जिन स्थानों पर दिया गया, उनका इस निकाय के सुत्तों की संख्या के अनुसार विवरण देना उचित होगा, जो इस प्रकार है :

स्थान	जिन संख्याओं के सुत्तों का उपदेश वहाँ दिया गया
उक्कट्ठा के सुभगवन में	१
श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में	२,३,४,५,९,११,१३,१६,१७,१९–२३, २५–२८,३०,३३,३८,४२,४३,४५–४७,४९,५९,६२–६५,७२,७८,८०,८६–८८,९३,९६,९९,१०२,१११–११५,११७, ११९,१२०,१२३,१२७,१२९–१३२,१३४, १३५,१३७–१३९,१४३,१४५–१४९
श्रावस्ती में मृगारमाता के प्रासाद पूर्वाराम में	३७,१०७,१०९,११०,११८,१२१
कुरुओं के निगम कम्मासदम्म मे	१०,७५,१०६
कुरुओं के निगम थुल्लकोट्ठित में	८२
वैशाली के अवरपुर वनखण्ड में	१२
वैशाली के महावन की कूटागारशाला में	३५,३६,७१,१०५
वैशाली के वेलुवगामक में	५२
शाक्य जनपद में कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में	१४,१८,५३,१२२,१४२

स्थान	जिन संख्याओं के सुत्तों का उपदेश वहाँ दिया गया
शाक्य जनपद के मेतलुम्प या मेदलुम्प (मेतलूप) नामक निगम में	८९
देवदह निगम में (शाक्य जनपद)	१०१
सामगाम में (शाक्य जनपद)	१०४
सुंसुमारगिरि के भेसकलावन मृगदाव में	१५,५०,८५
राजगृह के वेणुवन कलन्दकनिवाप में	२४,४४,५८,६१,६९,७३,७७,७९,९७,१०८,१२४-१२६,१३६,१४४,१५१
राजगृह के गृध्रकूट पर्वत पर	२९,७४
राजगृह में जीवक कौमारभृत्य के आम्रवन में	५५
राजगृह में इसिगिलि (ऋषिगिरि) पर्वत पर	११६
राजगृह के तपोदाराम में	१३३
राजगृह में एक कुम्हार के घर पर	१४०
(वज्जी देश में) नादिका के गिंजकावसथ में	३१
(वज्जी देश में) नादिका के गोसिंग सालवन में	३२
(वज्जी देश में) उक्काचेल नामक स्थान पर गंगा के किनारे	३४
अंग देश की चम्पा नगरी में, गग्गरा पुष्करिणी के तीर पर	५१
अंग देश के अस्सपुर नगर में	३९,४०

स्थान	जिन संख्याओं के सुत्तों का उपदेश वहाँ दिया गया
अंगुत्तराप के आपण नामक कस्बे में	५४,६६,९२
कोसल देश में (स्थानों के नाम निर्दिष्ट नहीं)	८१,१००
कोसल देश में शाला (साला) नामक ब्राह्मण-ग्राम में	४१,६०
कोसल देश में नलकपान के पलासवन में	६८
कोसल देश के ओपसाद नामक ब्राह्मण-ग्राम में	९५
कोसल देश के नगरविन्देय्य नामक ब्राह्मण-ग्राम में	१५०
(कोसल देश के) इच्छानंगल वनखण्ड में	९८
कौशाम्बी के घोषिताराम में	४८,७६,१२८
नालन्दा के प्रावारिक आम्रवन में	५६
कोलिय जनपद के हलिद्दवसन नामक निगम में	५७
चातुमा के आमलकीवन (आँवलों के वन) में	६७
विदेह देश में (स्थान का निर्देश नहीं है)	९१
(विदेह देश में) मिथिला के मखादेव आम्रवन में	८३
मथुरा (मधुरा) के गुन्दवन या गुन्दावन में	८४
उजुञ्ञा (उरुञ्जा) के कण्णकत्थलं[1] नामक मृगदाव में	९०
काशी प्रदेश में (स्थान का उल्लेख नहीं है)	७०

१. बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित मज्झिम-निकाय (मज्झिम-पण्णासक) के देवनागरी संस्करण (पृष्ठ ३२९) में कण्णकत्थल पाठ है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने कण्णत्थलक पाठ भी दिया है और उस का संस्कृत प्रतिरूप कर्णस्थलक सुझाया है। देखिये उनका मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३६८; वहीं पृष्ठ ६१५ में उन्होंने इसका संस्कृत प्रतिरूप गण्णत्थलक भी सुझाया है। दीघनिकाय-हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ६१, में महापण्डित राहुल सांकृत्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप ने कण्णकत्थल पाठ ही स्वीकार किया है। परन्तु श्री नालन्दा से भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित दीघ-निकाय के संस्करण में स्वीकृत पाठ "कण्णकथल" है। देखिये दीघ-निकाय पालि, जिल्द पहली (सीलक्खन्धवग्गो), पृष्ठ १३८।

स्थान	जिन संख्याओं के सुत्तों का उपदेश वहाँ दिया गया
(काशी प्रदेश में) वाराणसी के खेमिय अम्बवन में	९४
(काशी प्रदेश में) वाराणसी के इसिपतन मिगदाय में	१४१
कुसिनारा के बलिहरण वनखण्ड में	१०३
कजंगला के सुवेणुवन या मुखेलुवन में	१५२

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट होगा कि मज्झिम-निकाय के ७० सुत्तों का उपदेश केवल श्रावस्ती के जेतवनाराम में दिया गया और ५ का वहीं मृगारमाता के प्रासाद पूर्वाराम में। इस प्रकार मज्झिम-निकाय के कुल ७५ सुत्तों का उपदेश केवल श्रावस्ती में दिया गया। श्रावस्ती के इन दो स्थानों के अतिरिक्त वहीं के अन्धवन (वम्मिक-सुत्तन्त), राजकाराम (नन्दकोवाद-सुत्तन्त), रम्मकाराम (पासरासि या अरियपरियेसन सुत्तन्त), पूर्वकोष्ठक (पासरासि या अरियपरियेसन सुत्तन्त) और तिन्दुकाचीर मल्लिकाराम (समणमण्डिक-सुत्तन्त) के भी इस निकाय में उल्लेख हैं। श्रावस्ती के बाद जो दूसरा मुख्य स्थान इन सुत्तों में दृष्टिगोचर होता है, वह है राजगृह। जैसा ऊपर के विवरण से स्पष्ट है, यहाँ के वेणुवन कलन्दक निवाप, गृध्रकूट पर्वत, जीवक कौमारभृत्य के आम्रवन, इसिगिलि पर्वत, तपोदाराम और एक कुम्भकार के घर में, कुल मिला कर २२ सुत्तों का उपदेश दिया गया। उपर्युक्त स्थानों के अतिरिक्त राजगृह के इन स्थानों का भी इस निकाय में वर्णन है, जैसे कि, इसिगिलि की कालशिला (चूल-दुक्खक्खन्ध-सुत्तन्त), वैभार पर्वत, वैपुल्य पर्वत, पाण्डव पर्वत (इसिगिलि-सुत्तन्त), गृध्रकूट पर शूकरखाता (दीघनख-सुत्तन्त), राजगृह के समीप दक्षिणागिरि (धानंजानि-सुत्तन्त) और मोरनिवाप परिब्राजकाराम (महासकुलुदायि-सुत्तन्त)। वस्तुतः मगध और कोसल देशों के जितने नगरों और ग्रामों आदि का उल्लेख इस निकाय मे है, उतना अन्यत्र नहीं। जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, कुरु, शाक्य, वज्जी, अंग, कोलिय, विदेह और काशी प्रदेशों के कुछ स्थानों का ही उल्लेख इस निकाय में हुआ है। मगध देश के जिन स्थानों का उल्लेख ऊपर हो चुका है, उनके अतिरिक्त इन स्थानो का भी उल्लेख है जैसे कि, उरुवेला और उसमें स्थित सेनानीनिगम (पासरासि या अरियपरियेसन सुत्तन्त, महासच्चक-सुत्तन्त और बोधिराजकुमार-सुत्तन्त) गया और बोध-

गया (पासरासि या अरियपरियेसन सुत्तन्त) तथा पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम (अट्ठक नागर-सुत्तन्त) और वहीं घोटमुखी उपस्थानशाला, जो बुद्ध-परिनिर्वाण के बाद बनी (घोटमुख-सुत्तन्त)। इसी प्रकार कोसल देश के इन स्थानों का भी उल्लेख है, जैसे कि, देववन नामक शालवन जो ओपसाद नामक ब्राह्मण-ग्राम के उत्तर में था (चंकि-सुत्तन्त), नगरक कस्बा जो श्रावस्ती के पास था और जहाँ से शाक्यों मेतलुम्प या मेतलूप नामक कस्बे की दूरी ३ योजन थी (धम्मचेतिय-सुत्तन्त), नलकार गाम, जो श्रावस्ती के समीप था (सुभ-सुत्तन्त), चण्डलकप्प नामक गाँव जहाँ बुद्ध की उपासिका धानंजानी ब्राह्मणी रहती थी (संगारव-सुत्तन्त) और साकेत, जो श्रावस्ती से रथविनीत (डाक) के सातवें पड़ाव पर स्थित था (रथविनीत-सुत्तन्त)। इसी प्रकार अन्य देशों में, कुरु प्रदेश के थुल्लकोट्ठित में मिगाचीर नामक उद्यान का वर्णन है (रट्ठपाल-सुत्तन्त), काशी में कीटागिरि का उल्लेख है (कीटागिरि-सुत्तन्त), पावा का उल्लेख है (सामगाम-सुत्तन्त), प्रयाग का उल्लेख है (वत्थ-सुत्तन्त) और कौशाम्बी की प्लक्ष गुहा का उल्लेख है (सन्दक-सुत्तन्त)। इस निकाय में यवन और कम्बोज जैसे सीमान्त देशों का भी वर्णन है, और कहा गया है कि वहाँ भारतीय समाज के चार वर्णों के स्थान पर केवल दो ही वर्ग होते हैं, आर्य और दास। आर्य होकर दास हो सकता है, दास होकर आर्य हो सकता है। (अस्सलायण सुत्तन्त)। वाहीत (वाह्लीक) राष्ट्र में बनाये गये वाहीतिक नामक वस्त्र का भी इस निकाय में उल्लेख है (वाहीतिय सुत्तन्त) और इसी प्रकार सूनापरान्त जनपद का भी (पुण्णोवाद-सुत्तन्त)। जिन विभिन्न नदियों का इस निकाय के सुत्तों में उल्लेख हुआ है, उन के नाम हैं अचिरवती, गंगा, बाहुमती, बाहुका, बाहुलिका, यमुना, सरभू (सरयू) सुन्दरिका और सरस्वती। दण्डकारण्य, कलिङ्गारण्य मेघ्यारण (मेज्झारञ्ञ) और मातङ्गारण्य, जैसे अरण्यों का भी उल्लेख इस निकाय के एक सुत्त (उपालि-सुत्तन्त) में हुआ है। लिच्छवि, वज्जी, मल्ल (चूलसच्चक-सुत्तन्त) और शाक्य (चातुम-सुत्तन्त), जैसे गण-तन्त्रों या संघ-राज्यों का भी इस निकाय में उल्लेख है।

संयुत्त-निकाय ५ वग्गों (वर्गों) में विभक्त है, जिनमें क्रमशः ११,१०, १३,१०, और १२ अर्थात् कुल मिला कर ५६ संयुत्त हैं। इन संयुत्तों में भिन्न-भिन्न संख्याओं के सुत्त हैं। बुद्धकालीन भारतीय ग्रामीण जीवन का इस

निकाय में बड़ा सुन्दर चित्र मिलता है। भौगोलिक दृष्टि से भी संयुत्त-निकाय का प्रभूत महत्व है। संयुत्त-निकाय के अनेक सुत्तों की भौगोलिक पृष्ठभूमि प्रायः वही है जो दीघ और मज्झिम निकायों की। संयुत्त-निकाय के सर्वाधिक सुत्तों का उपदेश श्रावस्ती के जेतवनाराम में दिया गया, जिनकी संख्या ७२७ है। ९ सुत्तों का उपदेश श्रावस्ती में मृगारमाता के पूर्वाराम प्रासाद (जटिल-सुत्त, पवारणा-सुत्त, पुण्णमा-सुत्त, जरा-सुत्त, पठम पुब्बाराम-सुत्त, मोग्गल्लान-सुत्त आदि) में दिया गया। इस प्रकार संयुत्त-निकाय के कुल सुत्तों में से ७३६ का उपदेश केवल श्रावस्ती में दिया गया। कुछ अन्य सुत्त ऐसे भी हैं जिनका उपदेश श्रावस्ती के आसपास ही दिया गया, परन्तु निश्चित स्थान का उल्लेख नहीं किया गया है। श्रावस्ती के जिन अन्य स्थानों का निर्देश इस निकाय में मिलता है, उनमें राजकाराम (सहस्स-सुत्त), पुब्बकोट्ठक (पुब्बकोट्ठक-सुत्त), अन्धकवन या अन्धवन (सोमा-सुत्त, किसा-गोतमी सुत्त, विजया-सुत्त, उप्पलवण्णा-सुत्त, चाला-सुत्त, उपचाला-सुत्त, सिसूपचाला-सुत्त, सेला-सुत्त, वजिरा-सुत्त, बाल्हगिलान-सुत्त) और सललागार नामक विहार (सललागार-सुत्त) के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। श्रावस्ती और साकेत के बीच में स्थित तोरणवत्थु नामक एक गाँव का भी उल्लेख इस निकाय के खेमा-थेरी-सुत्त मे है। श्रावस्ती के बाद जिस नगर का उल्लेख इस निकाय के विभिन्न सुत्तों की भौगोलिक पृष्ठभूमि के रूप में बहुल रूप से मिलता है, वह है राजगृह। इस नगर के प्रसिद्ध वेणुवन कलन्दकनिवाप में जिन सुत्तों का उपदेश दिया गया या जिनमें इसका उल्लेख है, उनके नाम हैं, दीघलट्ठि-सुत्त, नाना तित्थिय-सुत्त, सोप्पसि-सुत्त, आयु-सुत्त, गोधिक सुत्त, धनञ्जानि-सुत्त, असुरिन्द-सुत्त, बिलङ्गिक-सुत्त कोण्डञ्ञ-सुत्त, सुक्का-सुत्त, चीरा-सुत्त, दलिद्द-सुत्त, अक्कोस-सुत्त, अचेल-सुत्त, अञ्ञतित्थिय-सुत्त, सुसीम-सुत्त, गंगा-सुत्त, तिंसति-सुत्त, जिण्ण-सुत्त, पठम-ओवाद-सुत्त, दुतिय-ओवाद-सुत्त, ततिय-ओवाद-सुत्त, घट-सुत्त, पठम सोण-सुत्त, दुतिय-सोण-सुत्त, वक्कलि-सुत्त, अस्सजि-सुत्त, सूचीमुखी-सुत्त, ञानाभिञ्ञा-सुत्त, चीवर-सुत्त, अट्ठिपेसि-सुत्त, अन्धभूत-सुत, समिद्धि-सुत्त, छन्न-सुत्त, सोण-सुत्त, सीवक-सुत्त, पुत्त-सुत्त, मणिचूल-सुत्त, पठम गिलान-सुत्त, दुतिय गिलान-सुत्त, ततीय गिलान-सुत्त, सिरिवड्ढ-सुत्त, मानदिन्न-सुत्त, किम्बिल-सुत्त, दीघायु-सुत्त और चिन्ता-सुत्त। राजगृह के इन

अन्य स्थानों का भी इस निकाय में उल्लेख है, जैसे कि, गृध्रकूट पर्वत (पासाण-सुत्त, देवदत्त-सुत्त, यजमान-सुत्त, चंकमं-सुत्त, पुग्गल-सुत्त, वेपुल्लपब्बत-सुत्त, पक्कन्त-सुत्त, अट्ठिपेसि-सुत्त, कूपनिमुग्ग-सुत्त, वक्कलि-सुत्त, सक्क-सुत्त, दुतिय गिलान-सुत्त, अभय-सुत्त, सूकरखाता-सुत्त, पपात सुत्त), सूकरखाता, जो गृध्रकूट पर एक स्थान था (सूकरखाता-सुत्त), वेपुल्ल पब्बत (पुग्गल-सुत्त, वेपुल्ल-पब्बत-सुत्त), सप्पसोण्डिक पब्भार (उपसेन-सुत्त), सीतवन (सुदत्त-सुत्त, उपसेन-सुत्त), प्रतिभानकूट (पपात-सुत्त), काल शिला (गोधिक-सुत्त, मोग्गल्लान-सुत्त, गोधिक-सुत्त), दक्षिणागिरि (कसि-सुत्त), तपोदाराम (समिद्धि-सुत्त), मद्दकुच्छि मिगदाय (सकलिक-सुत्त, जो कुछ परिवर्तन से दो बार इस निकाय में आया है), पिप्फलि गुहा (पठम गिलान सुत्त) और काश्यपकाराम (अस्सजि-सुत्त)। इस निकाय के कसि-सुत्त में राजगृह के समीप दक्षिणागिरि पर स्थित एकनाला नामक ब्राह्मण-ग्राम का उल्लेख है और एक दूसरे सुत्त (अन्धकविन्द-सुत्त) में राजगृह के समीप अन्धकविन्द नामक ग्राम का। चिन्ता-सुत्त में राजगृह के समीप सुमागधा नामक पुष्करिणी का वर्णन है। अन्य नगरों में, जिनका प्रमुख रूप से इस सुत्त में उल्लेख है, वैशाली, कौशाम्बी, वाराणसी, साकेत और कपिलवस्तु अधिक महत्वपूर्ण हैं। वैशाली की प्रसिद्ध महावन कूटागारशाला का वर्णन पज्जुन्नधीतु-सुत्त, चुल्लपज्जुन्नधीतु-सुत्त, आयतन-सुत्त, ततिय वत-सुत्त, कलिङ्गर-सुत्त, विसाख-सुत्त, महालि-सुत्त, अनुराध-सुत्त, वेसालि-सुत्त, पठम गेलञ्ज-सुत्त, चेतिय-सुत्त, लिच्छवि-सुत्त और पठम छिग्गल-सुत्त में है। अम्बपाली-सुत्त तथा सब्ब-सुत्त में वैशाली-स्थित अम्बपाली के आम्रवन का उल्लेख है। वैशाली के चापाल चैत्य, गौतमक चैत्य, सप्ताम्र चैत्य, बहुपुत्रक चैत्य और सारन्दद चैत्य का उल्लेख इस निकाय के चेतिय-सुत्त में है। इसी निकाय के चीवर-सुत्त में भी बहुपुत्रक चैत्य का उल्लेख है। वैशाली के समीप वेलुव ग्राम का उल्लेख इस निकाय के गिलान-सुत्त में है। कौशाम्बी और उसके प्रसिद्ध घोषिताराम का उल्लेख संयुत्त-निकाय के अनेक सुत्तों में हुआ है, जैसे कि कोसम्बी-सुत्त, पारिलेय्य-सुत्त, खेमक-सुत्त, छन्न-सुत्त, भरद्वाज-सुत्त, घोसित-सुत्त, कामभू-सुत्त, उदायी-सुत्त, पठम-दारुक्खन्ध-सुत्त, उपवान-सुत्त, पिण्डोल-सुत्त, और सेख-सुत्त। कौशाम्बी के समीप बदरिकाराम नामक विहार का वर्णन खेमक-सुत्त में

है। सिसपा-सुत्त के साक्ष्य पर सिसपा वन कौशाम्बी से कुछ दूर पर स्थित था। वाराणसी और उसके समीप इसिपतन मिगदाय (ऋषिपतन मृगदाव) का उल्लेख पास-सुत्त, नलकलाप-सुत्त, अनोत्तापी-सुत्त, परम्परण-सुत्त, पञ्चवग्गिय-सुत्त, छन्न-सुत्त, सील-सुत्त, कोट्ठित-सुत्त, सारिपुत्त-कोट्ठित-सुत्त, धम्मदिन्न-सुत्त और धम्मचक्कपवत्तन-सुत्त में हुआ है। साकेत के अंजनवन मृगदाव का उल्लेख इस निकाय के ककुध-सुत्त, कुण्डलि-सुत्त और साकेत-सुत्त में हुआ है तथा इसी नगर के समीप स्थित कंटकीवन (जिसे अट्ठकथा में महाकरमण्ड वन भी कहा गया है) पदेस-सुत्त तथा पठम कण्टकी-सुत्त में उल्लिखित है। कपिलवस्तु के महावन (वैशाली के महावन का उल्लेख पहले किया जा चुका है) का उल्लेख इस निकाय के समय-सुत्त में तथा न्यग्रोधाराम का पिण्डोल-सुत्त, अवस्सुत-सुत्त, कङ्खेय्य सुत्त, पठम महानाम-सुत्त, दुतिय महानाम-सुत्त, महानाम-सुत्त और गिलान-सुत्त में है। अन्य नगरों, निगमों और ग्रामों में इस निकाय के गग्गरा-सुत्त में चम्पा नगरी और वहाँ की प्रसिद्ध गग्गरा पुष्करिणी का उल्लेख है। नालन्दा और उसके प्रावारिक आम्रवन का उल्लेख चीवर-सुत्त, नालन्दा-सुत्त, पच्छाभूमक-सुत्त, देसना-सुत्त, सङ्ख-सुत्त में मिलता है। पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम नामक विहार का परिचय हम पठम कुक्कुटाराम-सुत्त, सील-सुत्त तथा परिहान-सुत्त में प्राप्त करते हैं। पञ्चाल देश के आलवी नामक नगर और उसके अग्गालव चैत्य का उल्लेख निक्खन्त-सुत्त, अतिमञ्जना-सुत्त और आलवक-सुत्त में है। अंग जनपद और उसके आपण नामक कस्बे का उल्लेख आपण-सुत्त में है। इस निकाय के परिनिब्बान-सुत्त में हम भगवान् बुद्ध को, दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त के समान, परिनिर्वाण के समय कुमिनारा में मल्लों के उपवर्तन (उपवत्तन) नामक शालवन में दो शाल-वृक्षों के नीचे विहार करते देखते हैं। मल्ल जनपद के उरुवेलकप्प कस्बे से भद्द-सुत्त और मल्लिक-सुत्त हमारा परिचय कराते हैं। कोसल देश के इच्छानंगल नामक गाँव और उसके समीप इसी नाम के वन से हमारा परिचय इच्छानंगल-सुत्त कराता है। कोसल देश के ही एकशाला नामक ब्राह्मण-ग्राम का परिचय हम पतिरूप-सुत्त में और इसी देश के शाला नामक ब्राह्मण-ग्राम का परिचय हम साला-सुत्त में प्राप्त करते हैं। वेलुद्वारेय्य-सुत्त में कोसल देश के वेलुद्वार नामक ब्राह्मण-ग्राम का उल्लेख है। वज्जी जनपद के उक्काचेल नामक ग्राम का उल्लेख हमें निब्बान-सुत्त और चेल-सुत्त में

मिलता है। इसी जनपद के कोटिग्राम नामक ग्राम का उल्लेख हमें पठम विज्जा-सुत्त में मिलता है। वज्जी देश के आतिका, नादिका या नातिका नामक नगर के पास गिञ्जकावसथ नामक स्थान का उल्लेख हमें आतिका-सुत्त, गिञ्जकावसथ-सुत्त और पठम गिञ्जकावसथ-सुत्त में मिलता है। वज्जी जनपद के पुब्बविज्झन नामक एक गाँव का परिचय हमें छन्न-सुत्त में मिलता है। यह गाँव भिक्षु छन्न की जन्मभूमि बताया गया है। काशियों के एक गाँव मिगपत्थक का उल्लेख हमें सञ्ञोजन-सुत्त में मिलता है। यह गाँव मच्छिकासण्ड में अम्बाटक वन के पीछे था। वज्जियों के हत्थिगाम नामक गाँव का परिचय हमें वज्जि-सुत्त में मिलता है। कुरु जनपद के प्रसिद्ध कस्बे कम्मासदम्म का उल्लेख निदान-सुत्त और सम्मसन-सुत्त में हुआ है। कोलिय जनपद के उत्तर नामक कस्बे का वर्णन हमें पाटलि-सुत्त में मिलता है। कोलियों के एक अन्य कस्बे हलिद्दवसन का उल्लेख मेत्त-सुत्त में हुआ है। शाक्यों के कस्बे के रूप में देवदह का उल्लेख देवदह-खण-सुत्त में है। शाक्य जनपद के सिलावती (शिलावती) नामक कस्बे या प्रदेश का उल्लेख सम्बहुल-सुत्त और समिद्ध सुत्त में है। मगध देश के गया का उल्लेख सूचिलोम तथा आदित्त सुत्तों में है। आदित्त-सुत्त में गया के समीप गयासीस पर्वत का भी उल्लेख है। पिण्ड-सुत्त में मगध के पंचशाल नामक ब्राह्मण-ग्राम का उल्लेख है, जहाँ से बिना भिक्षा प्राप्त किये भगवान् बुद्ध रीता भिक्षापात्र लेकर लौट आये थे। उरुवेला के समीप सेनानीगाम का उल्लेख पास-सुत्त में है। उरुवेला का उल्लेख इस निकाय के अन्य अनेक सुत्तों में भी पाया जाता है। गंगा नदी के किनारे किम्बिला नामक नगर का उल्लेख हमें दुतिय दारुक्खन्ध-सुत्त में मिलता है। किम्बिल-सुत्त से हमें सूचना मिलती है कि इस नगर में भी (राजगृह के समान) एक वेणुवन था। वेरहच्चानि-सुत्त में कामण्डा नामक एक ग्राम का उल्लेख है और उदायी-सुत्त, सेदक-सुत्त और जनपद-सुत्त में सुम्भ (सं० सुह्म) जनपद के एक कस्बे का उल्लेख है, जिस का नाम सेदक, सेतक या देसक था। बुद्ध-पूर्व युग के पुरातन कालीन नगरों कुशावती और अरुणवती का क्रमशः गोमय-सुत्त और अरुणवती-सुत्त में विवरण है। संयुत्त-निकाय के विभिन्न सुत्तों में अंग, मगध, अवन्ती, वज्जी, कुरु, काशी, कोलिय, लिच्छवि, मल्ल, शाक्य और सुम्भ आदि जनपदों के उल्लेख बिखरे पड़े हैं। सूनापरान्त जनपद का उल्लेख पुण्ण-

सुत्त में है और ओकिलिनी-सुत्त में हम कलिंग-राजा का निर्देश पाते हैं। नदी, पर्वत और वनों के सम्बन्ध मे हम इस निकाय में महत्वपूर्ण सूचना पाते हैं। पठम-सम्बेज्ज-सुत्त में पाँच महा नदियों का उल्लेख है, यथा गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभू और मही। अन्य अनेक सुत्तों में गंगा का पूर्व की ओर बहना बताया गया है। किम्बिला और उक्काचेल में होकर गंगा के बहने का विभिन्न सुत्तों में वर्णन किया गया है।[1] अन्य नदियों में, जिनका इस निकाय के सुत्तों में उल्लेख है, उरुवेला के समीप बहने वाली नेरंजरा (तपोकम्म-सुत्त, नाग-सुत्त, सुभ-सुत्त, सतवस्सानि-सुत्त, आयाचन-सुत, गारव-सुत्त, ब्रह्म-सुत्त और मग्ग-सुत्त), कोसल जनपद की सुन्दरिका नदी (सुन्दरिका-सुत्त), श्रावस्ती में बहने वाली सुतनु नदी (सुतनु-सुत्त) और राजगृह के समीप की सप्पिणी नदी (सनंकुमार-सुत्त) के नाम उल्लेखनीय है। हिमवन्त या हिमालय पर्वत का उल्लेख नाना तित्थिय-सुत्त, रज्ज-सुत्त, नाग-सुत्त, हिमवन्त-सुत्त, मक्कट-सुत्त और पठम पब्बतुपमा सुत्त में है। नकुलपिता-सुत्त में भग्ग देश के सुंसुमार गिरि का उल्लेख है। श्रावस्ती जनपद के कुररघर नामक पर्वत का उल्लेख पठम हालिद्दिकानि

---

१. संयुत्त-निकाय के पठम-दारुक्खन्ध-सुत्त (संयुत्त-निकाय, हिन्दी अनुवाद, दूसरा भाग, पृष्ठ ५२५) में कहा गया है, "एक समय भगवान् कौशाम्बी में गंगा नदी के तीर पर विहार करते थे।" कौशाम्बी, जैसा हम उसे पुरातत्व सम्बन्धी खनन कार्य के ठोस साक्ष्य पर जानते हैं, गंगा नदी के किनारे पर नहीं है। इसी प्रकार इसी निकाय के फेण-सुत्त के आरम्भ में कहा गया है, "एक समय भगवान् अयोध्या में गंगा नदी के तट पर विहार करते थे।' (हिन्दी अनुवाद, पहला भाग, पृष्ठ ३८२)। निश्चयतः अयोध्या भी गंगा नदी के तट पर नहीं है। डॉ० ई० जे० थॉमस ने इन कठिनाइयों का अनुभव (दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ १५) में किया है, परन्तु "समझ में न आने वाली परम्परा" से अधिक वे इस सम्बन्ध में कुछ नहीं कह सके हैं। कौशाम्बी के सम्बन्ध में मिलाइये हेमचन्द्र रायचौधरी: पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एशियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १३१, पद-संकेत २ तथा वहीं देखिये मललसेकर-सम्पादित डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स" का निर्देश भी।

सुत्त, दुतिय हालिद्दिकानि-सुत्त तथा हलिद्दिक-सुत्त में है। अवन्ती के मक्करकट नामक अरण्य का उल्लेख लोहिच्च-सुत्त में है और भग्ग देश के भेसकलावन का नकुलपिता-सुत्त में। पारिलेय्य-सुत्त में हमें पारिलेय्यक वनखण्ड का उल्लेख मिलता है। (काशी जनपद के) मच्छिकामण्ड में अम्बाटक वन का उल्लेख हम सञ्जोजन-सुत्त, पठम इसिदत्त-सुत्त, दुतिय इसिदत्त-सुत्त, कामभू-सुत्त, महक-सुत्त और गोदत्त-सुत्त में पाते हैं। इस प्रकार बुद्धकालीन भूगोल सम्बन्धी प्रभूत सामग्री हमें संयुत्त-निकाय में मिलती है।

भौगोलिक दृष्टि से सर्वाधिक महत्वपूर्ण सूचना जो हमें अंगुत्तर-निकाय में मिलती है, सोलह महाजनपदों सम्बन्धी विवरण है। अंग, मगध, काशी, कोसल, वज्जी, मल्ल, चेति, वंस, (वत्स) कुरु, पंचाल, मच्छ, (मत्स्य) सूरसेन, अस्सक, अवन्ती, गन्धार और कम्बोज, इन सोलह जनपदों का एक साथ उल्लेख प्रथम बार अंगुत्तर-निकाय मे हुआ है।[1] राजगृह के गृध्रकूट पर्वत का कई बार उल्लेख इस निकाय में हुआ है। राजा अजातशत्रु का ब्राह्मण मंत्री वर्षकार यहीं भगवान् बुद्ध से मिलने आया था।[2] (बाद में जैसा हमने दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में देखा है, वह अपने साथी मन्त्री सुनीध (सुनीथ) के सहित पाटलिग्राम में भी भगवान् से मिला था)। अंगुत्तर-निकाय में उल्लेख है कि एक बार भगवान् कोसल देश के पंकधा नामक नगर में गये थे और वहाँ से लौट कर वे राजगृह आये थे, जहाँ उन्होंने गृध्रकूट पर्वत पर विहार किया था।[3] एक अन्य अवसर पर भी हम उन्हें गृध्रकूट पर्वत पर विहार करते देखते हैं।[4] इसी निकाय में हम बुद्ध-शिष्य स्थविर महाकच्चान (महाकात्यायन) को मथुरा (मधुरा) के गुन्दावन में विहार करते देखते हैं।[5] कोसल के अनेक ग्रामों और नगरों का इस

---

१. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द पहली, पृष्ठ २१३; जिल्द चौथी, पृष्ठ २५२ (पालि टैक्सट् सोसायटी संस्करण)

२. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ १७-२१

३. वहीं जिल्द पहली, पृष्ठ २३६-२३७

४. वहीं जिल्द तीसरी, पृष्ठ १

५. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ ६७

निकाय में उल्लेख है। एक बार भगवान् ने कोसल देश के वेनागपुर नामक ब्राह्मण-ग्राम में विहार किया था और वहाँ के ब्राह्मणों ने त्रिरत्न की शरणागति प्राप्त की थी।[१] उनके पंकधा जाने का उल्लेख हम पहले कर ही चुके हैं। कोसल देश के इच्छानंगल नामक ब्राह्मण-ग्राम में भी भगवान् के जाने का इस निकाय में उल्लेख है।[२] भगवान् कोसल देश के नलकपान नामक कस्बे में भी गये और उसके समीप पलासवन में ठहरे।[३] श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में भी भगवान् के ठहरने का अनेक जगह उल्लेख इस निकाय में है। इसी प्रकार महावन कूटागारशाला में हम भगवान् को विहार करते इस निकाय में कई बार देखते हैं। एक अवसर पर वैशाली के सारन्दद चैत्य में भी हम भगवान् को निवास करते देखते हैं। यहीं लिच्छवियों को भगवान् ने उन्नति के लिए सात बातों के पालन करने का उपदेश दिया था।[४] वैशाली के महावन में तरुण लिच्छवियों को धनुष-बाण और कुत्ते लिए हुए घूमते और शिकार खेलते इस निकाय में हम देखते है।[५] इस निकाय से हमें मालूम पड़ता है कि वज्जियों के भण्डगाम नामक ग्राम में भगवान् ने विहार किया था,[६] और कोलियों के कक्करपत्त नामक नगर में भी।[७] मल्लों के कुसिनारा-स्थित उपवत्तन नामक शालवन में भगवान् को विहार करते हम इस निकाय में भी देखते है,[८] और एक अन्य अवसर पर उन्हीं के उरुवेलकप्प नामक कस्बे में भी।[९] इस निकाय में हम भगवान् को मधुरा (मथुरा)

---

१. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ १८०।
२. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३०; जिल्द चौथी, पृष्ठ ३४०।
३. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १२२
४. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ १६
५. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ७५।
६. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १।
७. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ २८१।
८. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७९।
९. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ ४३८।

और वेरंजा में भी विहार करते देखते हैं।[1] वेरंजक-ब्राह्मण-सुत्त में हम उन्हें मथुरा और वेरंजा के रास्ते में जाते देखते हैं। वेरंजा में निवास करते समय ही भगवान् ने वेरंज या वेरंजक नामक ब्राह्मण को उपदेश दिया था।[2] भग्ग देश के भेसकलावन मिगदाय में भी भगवान् ने विहार किया था,[3] और विभिन्न अवसरों पर अंग देश के भद्दिय नगर में भी[4] और आलवी के अग्गालव चैत्य में भी।[5] कुरु देश के प्रसिद्ध कस्बे कम्मासदम्म में गम्भीर उपदेश करते भगवान् को हम इस निकाय में भी देखते हैं।[6] स्थविर नारद को हम इस निकाय में पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम नामक विहार में निवास करते देखते हैं।[7] इस निकाय से हमें सूचना मिलती है कि भगवान् ने एक बार कालामों के केसपुत्त नामक निगम की भी यात्रा की थी।[8] उन्होंने चेति जनपद के सहजाति नगर में भी विहार किया था।[9] एक अन्य अवसर पर भगवान् कजंगल गये थे और वहाँ के वेणुवन में ठहरे थे।[10] वाराणसी के समीप इसिपतन का भी इस निकाय में उल्लेख है,[11] और उत्तर नामक स्थविर के संखेय्य पर्वत पर महिसवत्थु नामक स्थान पर निवास करने का भी।[12] संयुत्त-निकाय के समान इस निकाय में भी पाँच महानदियों का विवरण है, जैसे कि, गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभू

---

१. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५७।
२. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ १७२।
३. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६१।
४. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३६।
५. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ २१८।
६. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २९-३०।
७. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ५७।
८. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ १८८।
९. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ४१।
१०. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ५४।
११. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३२०।
१२. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ १६२।

और मही।[1] इस निकाय में दसम नामक गृहस्थ के अट्ठकनगर से पाटलिपुत्र आने का उल्लेख है, जहाँ के कुक्कुटाराम में वह स्थविर आनन्द के दर्शनार्थ गया था। यह जानकर कि आर्य आनन्द वैशाली के वेलुवगाम में गये हुए हैं, वह वहाँ उनके दर्शनार्थ गया।[2] इस निकाय से हमें यह सूचना मिलती है कि इस समय काशी ग्राम कोसलराज प्रसेनजित् (पसेनदि) के अधिकार में था।[3]

खुद्दक-निकाय के १५ ग्रन्थों में से वैसे तो प्रायः प्रत्येक में ही कुछ न कुछ भौगोलिक सूचना मिलती है, परन्तु विस्तार-भय से हम यहाँ उनमें से केवल कुछ में प्राप्त भौगोलिक निर्देशों का उल्लेख करेंगे। खुद्दक-निकाय के जिस ग्रन्थ में सर्वाधिक महत्वपूर्ण भौगोलिक सूचना मिलती है, वह जातक या ठीक कहे तो जातकट्ठकथा है।

अंग और मगध जनपदों का विस्तृत विवरण जातक में उपलब्ध होता है। जातक की एक कथा के अनुसार अंगराजा (अंगराज) ने मगध को जीत लिया था।[4] ब्रह्मवड्ढन (वाराणसी) के राजा मनोज के द्वारा अंग और मगध को भी जीतने का उल्लेख है।[5] बुद्ध-पूर्व काल में एक समृद्ध राज्य के रूप में काशी का उल्लेख जातक में है।[6] कोसलराज प्रसेनजित् के पिता महाकोसल ने अपनी कन्या कोसलादेवी का विवाह मगधराज बिम्बिसार से किया था और काशी ग्राम को, जिसकी आय एक लाख थी, अपनी कन्या के स्नान और सुगंध के व्यय के लिए दिया था, इसका उल्लेख हरितमात जातक और वड्ढकिसूकर जातक में है। काशी प्रदेश की राजधानी वाराणसी का उल्लेख कई जातकों में है और उसका विस्तार बारह योजन बताया गया है।[7] रुक्खधम्म जातक और फन्दन जातक में, जहाँ शाक्यों और कोलियों के झगड़े का विवरण दिया गया है, रोहिणी नदी

---

१. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ १०१।
२. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३४२।
३. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ५९।
४. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ २७२।
५. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३१२-३१६।
६. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ११५; जिल्द पहली, पृष्ठ २६२।
७. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ १६०।

को दोनों जनपदों की सीमा बताया गया है। जातक के वर्णनानुसार अंग जनपद की राजधानी चम्पा मिथिला से ६० योजन की दूरी पर थी।[1] सिवि जातक में सिवि राज्य की राजधानी अरिट्ठपुरनामक नगर बताया गया है। तिलमुट्ठि जातक में तक्कसिला (तक्षशिला) का एक विशाल शिक्षा-केन्द्र के रूप में वर्णन है। अस्सक जातक में अस्सक राज्य और उसकी राजधानी पोतलि का उल्लेख है। चेतिय जातक में कहा गया है कि चेति (चेदि) देश के राजा के पाँच पुत्रों ने हत्थिपुर, अस्सपुर, सीहपुर, उत्तरपंचाल और दद्दरपुर, इन पाँच नगरों को बसाया था। इसी जातक में उल्लेख है कि चेति राज्य की राजधानी सोत्थिवति नगरी थी। बावेरु जातक में बावेरु (बेबीलान) नामक विदेशी राज्य का वर्णन है, जहाँ कुछ भारतीय व्यापारी सामुद्रिक यात्रा करते हुए गये थे। सुसन्धि जातक में तत्कालीन भारत के प्रसिद्ध बन्दरगाह भरुकच्छ (भड़ोंच) का उल्लेख है। गंगमाल जातक में गन्धमादन पर्वत का उल्लेख है। एक अन्य जातक-कथा में हिमवन्त पदेस के अन्तर्गत हिंगुल पब्बत का भी उल्लेख है। गन्धार जातक में हमें कस्मीर-गन्धार का उल्लेख मिलता है और विदेह राज्य का भी। कलिंगबोधि जातक में मद्द रट्ठ का उल्लेख है। कुम्भकार जातक से हमें सूचना मिलती है कि उत्तर-पंचाल की राजधानी कम्पिल्ल नामक नगरी थी। कण्ह जातक में संकस्स का उल्लेख है। सरभंग जातक में सुरट्ठ नामक देश का निर्देश है और एक अन्य जातक में कम्बोज देश का। नालिकेर जातक और कुरुधम्म जातक से हमें पता लगता है कि अचिरवती नदी श्रावस्ती में होकर बहती थी। बक ब्रह्मा जातक में एणी नामक नदी का उल्लेख है। चम्पेय्य जातक से हमें सूचना मिलती है कि चम्पा नदी अंग और मगध जनपदों की सीमा के बीच में होकर बहती थी। सरभंग जातक में गोदावरी नदी का उल्लेख है और उसे कविट्ठ वन के समीप बताया गया है। इसी जातक में मज्झिम देस का उल्लेख है। महाटवी में स्थित अंजन पर्वत तथा साकेत के समीप अंजन वन का भी उल्लेख विभिन्न जातक-कथाओं में है। जातक की विभिन्न कथाओं में हिमवन्त, उत्तर हिमवन्त, मल्लगिरि, अहोगंग (अधोगंग), इसिधर, उदक पब्बत, नंदमूलक, निसभ, नेरु, पण्डरक, मणिपस्स, मनोसिला, युगन्धर, यामुन

---

१. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ३२।

गिज्झकूट, चित्तकूट, तिकूट, जैसे अनेक पर्वतों और पहाड़ियों; अग्गिमाल समुद्द, खुरमाल, दधिमाल, वलभामुख, जैसे समुद्रों, अनोतत्त, कण्णमुण्डा, खेम, चक्कदह, छद्दन्त, संखपाल, और सिंवली जैसी अनेक झीलों; गंगा, यमुना, हेमवता, केबुक, कोसिकी, सोटुम्बरा, नम्मदा, नेरंजरा, सीदा, मिगसम्मता, वेत्तवती, भागीरथी, सातोडिका जैसी अनेक नदियों और करंडक, कविट्ठ, दण्डकारण्य, नारिवन, मेज्झारञ्ञ जैसे अनेक वनों और अरण्यों के निर्देश हैं। इसी प्रकार नगरों में, ऊपर निर्दिष्ट नगरों के अलावा, अयोज्झा, अस्सपुर, इन्दपत्त, उज्जेनी, गया, कजंगल, किम्बिला, केतुमती, कुशावती, जेतुत्तर, मोलिनी, पुप्फवती, पयाग तित्थ (प्रयाग तीर्थ), भोगवती, रोरुव, मिथिला, द्वारका (द्वारवती), दन्तपुर, कोसम्बी, वेतवती, सीहपुर, हिरण्यवती जैसे नगरों के उल्लेख विभिन्न जातक-कथाओं में हैं। तत्कालीन राज्यों में अवन्ती, पंचाल, उत्तर-पंचाल, उत्तरापथ, कोसल, कुरु, गन्धार, अस्सक, मेज्झ, मल्ल, सिवि, विदेह, महिसक, वंस, कोकनद, कोटुम्बर आदि के विवरण विभिन्न जातक-कथाओं में पाये जाते हैं। जातकों में अनेक ग्रामों के भी विवरण हैं, जैसे कि थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम, गंगा नदी के किनारे गग्गलि गाँव, मगध का मचल नामक गाँव और राजगृह के समीप सालिन्दिय नामक ब्राह्मण-ग्राम, आदि। राजा चण्ड प्रद्योत के राज्य में लम्बचूलक नामक एक कस्बे का भी उल्लेख एक जातक-कथा में है।

मगध जनपद के गिरिव्रज में स्थित गृध्रकूट पर्वत तथा उसके उत्तर में स्थित वेपुल्ल पर्वत का उल्लेख इतिवुत्तक के वेपुल्ल पब्बत-सुत्त में है। "सो खो पनायं अक्खातो वेपुल्लो पब्बतो महा। उत्तरो गिज्झकूटस्स मगधानं गिरिब्बजे।"

"उदान" के बोधि-वग्ग मे हम भगवान् बुद्ध को उरुवेला में नेरंजरा नदी के बोधि-वृक्ष के नीचे बुद्धत्व-प्राप्ति के तुरन्त बाद ही विहार करते देखते है। उसके बाद हम उन्हें अजपाल नामक बरगद के पेड़ (अजपाल न्यग्रोध) की छाया में विहार करते देखते हैं। श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवन आराम में तथा वहीं स्थित मृगारमाता के पूर्वाराम प्रासाद में 'उदान' के कई ऊर्ध्वगामी उद्गार भगवान् के मुख से निकले। उसके कई अंश राजगृह के वेणुवन कलन्दकनिवाप में भी भगवान् के मुख से निःसृत हुए। 'उदान' से हमें पता चलता है कि भगवान् ने गया के गयासीस (गयाशीर्ष) पर्वत पर भी विहार किया था। कुण्डिया नगर के

कुण्डिधानं बन में विहार करते समय भगवान् के पास कोलियपुत्री सुप्रवासा का पति अपनी पत्नी के लिए भगवान् का आशीर्वाद लेने आया था। अनूपिया के आम्रवन में भी भगवान् को विहार करते हम 'उदान' में देखते हैं। वज्जी जनपद और वहाँ की वग्गुमुदा नामक नदी का उल्लेख 'उदान' के नन्दवग्ग में है। इसी वग्ग में हम भगवान् को वैशाली की महावन कूटागारशाला में विहार करते देखते हैं। मेघिय-वग्ग के आरम्भ में हम भगवान् को चालिका नामक नगर में चालिक (चालिय) नामक पर्वत पर विहार करते देखते हैं। इस वर्ग से हमें यह भी पता चलता है कि चालिय पर्वत के समीप ही जन्तुगाम नामक एक गाँव था, जिसके समीप किमिकाला नदी थी। आगे चलकर इसी वग्ग में हम भगवान् को कुसिनारा में उपवत्तन नामक मल्लों के शालवन में विहार करते देखते हैं। कोसल देश में, राजगृह के वेणुवन कलन्दक निवाप में, कौशाम्बी के घोषिताराम में, पालिलेय्यक के रक्षितवन में तथा श्रावस्ती में अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में भी भगवान् को विहार करते हम इस वग्ग में देखते हैं। अवन्ती के कुररघर नामक पर्वत का उल्लेख सोग स्थविर सम्बन्धी वर्ग में है। मल्लों के राष्ट्र में भी थूण नामक एक ब्राह्मण-ग्राम था, इसका पता हमें 'उदान' के चूलवग्ग से लगता है। भगवान् की अन्तिम यात्रा के सम्बन्ध में कुसिनारा और ककुत्था नदी का उल्लेख 'उदान' के पाटलिगामिय वग्ग में है। इसी वग्ग में हम भगवान् को मगध के पाटलिग्राम में चारिका करते देखते हैं। वज्जियों के आक्रमण को रोकने के लिए मगधराज के मंत्री सुनीध और वस्सकार पाटलिग्राम में नगर को बसा रहे थे, ऐसी सूचना हमें महापरिनिब्बाण-सुत्त के समान इस वग्ग में भी मिलती है। भगवान् पाटलिग्राम के जिस द्वार से निकले उसका नाम "गौतम द्वार" और जिस घाट से उन्होंने गंगा को पार किया उसका "गौतम तीर्थ" नाम रक्खा गया। वैशाली के चापाल चैत्य, उदयन चैत्य, गौतमक चैत्य, सप्ताम्र चैत्य, बहुपुत्रक चैत्य और सारन्दद चैत्य की रमणीयता की प्रशंसा भगवान् बुद्ध ने अपने मुख से 'उदान' के जात्यन्ध वग्ग में की है। 'उदान' के बोधिवग्ग और नन्दवग्ग में राजगृह की पिप्पलिगुहा का उल्लेख है, जहाँ आर्य महाकाश्यप अधिकतर निवास करते थे।

सुत्त-निपात में हम अंग, मगध, कोसल, और अवन्ति-दक्षिणापथ के कई प्रसिद्ध नगरों, नदियों, और ग्रामों आदि के उल्लेख पाते हैं। वंगीस-सुत्त में हम भगवान्

को आलवी के अग्गालव चैत्य में विहार करते देखते हैं। "भगवा आलवियं विहरति अग्गालवे चेतिये।" सेल-सुत्त में हम देखते हैं कि भगवान् अंगुत्तराप में चारिका करते हुए जहाँ अंगुत्तरापों का आपण नामक कस्बा था, वहाँ पहुँचे। "भगवा अंगुत्तरापेसु चारिकं चरमानो......येन आपणं नाम अंगुत्तरापानं निगमो तदवसरि"। वासेट्ठ-सुत्त का उपदेश भगवान् ने इच्छानंगल ग्राम के इच्छानंगल वन-खण्ड में विहार करते समय दिया था। ५०० हल चलवाते हुए कसि भारद्वाज नामक ब्राह्मण के पास भगवान् मगध के दक्षिणागिरि जनपद में स्थित एकनाला नामक ब्राह्मण-ग्राम में, विहार करते हुए, गये थे। पब्बज्जा-सुत्त में हम भगवान् को प्रव्रजित होने के बाद कपिलवस्तु से आकर मगध की राजधानी गिरिव्रज अर्थात् प्राचीन राजगृह में भिक्षार्थ चारिका करने और नगर के बाहर पाण्डव (पण्डव) पर्वत पर विहार करते देखते हैं, जहाँ बिम्बिसार उनसे मिलने गया। राजगृह के वेणुवन कलन्दक-निवाप, कपिलवस्तु, कौशाम्बी, श्रावस्ती के पूर्वाराम प्रासाद और जेतवनाराम, भोगनगर, लुम्बिनी, गया और पावा आदि नगरों के उल्लेख सुत्त-निपात के कई सुत्तों में हैं। पारायणवग्गो की वत्थुगाथा में गोदावरी नदी का उल्लेख है और अन्य सुत्तों में गंगा, नेरंजरा और सुन्दरिका नदियों के उल्लेख हैं। बावरि ब्राह्मण के सम्बन्ध में सुत्तनिपात में जो सूचना दी गई है, वह भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। कहा गया है कि कोसलदेशवासी "बावरि ब्राह्मण, जो मंत्रपारगत था, आकिंचन्य (-ध्यान) की कामना करता हुआ, कोसलवासियों के रम्य नगर (श्रावस्ती) से दक्षिणापथ में गया। अलक नामक स्थान के निकट, अस्सक प्रदेश के मध्य, गोदावरी के तट पर, वह उंछ तथा फल से जीवन यापन करता था।" "कोसलानं पुरा रम्मा अगमा दक्खिणापथं। आकिंचञ्ञं पत्थानो ब्राह्मणो मन्त-पारगु। सो अस्सकस्स विसये अलकस्स समासने। वसी गोधावरी कूले उञ्छेन च फलेन च"। बावरि ब्राह्मण ने जब सुना कि इक्ष्वाकुवंशज, शाक्यपुत्र कपिलवस्तु से निकल कर प्रव्रजित हुए हैं और उन्होंने परम ज्ञान प्राप्त किया है, तो उसने उनकी परीक्षार्थ अपने सोलह शिष्यों को आदेश दिया कि वे श्रावस्ती जाकर उनके दर्शन करें। ये सोलह शिष्य अपने गुरु के आश्रम से चलकर श्रावस्ती आये और फिर वहाँ भगवान् को न पाकर श्रावस्ती से राजगृह गये, जहाँ के पाषाण-चैत्य में उस समय भगवान् ठहरे हुए थे। यहाँ उनका भगवान् से मिलना हुआ। बावरि के इन सोलह

शिष्यों ने गोदावरी तट पर स्थित अपने आश्रम से श्रावस्ती तक जिस मार्ग का अनुगमन किया, उसके बीच के पड़ाव के स्थानों का उल्लेख सुत्त-निपात में है, जिससे विदित होता है कि दक्षिण में पतिट्ठान (पैठन) से लेकर उत्तर में श्रावस्ती तक एक सड़क जाती थी, जिस पर पड़ने वाले मुख्य स्थान थे, पतिट्ठान, माहिस्सति (माहिष्मती), उज्जेनी, गोनद्ध, वेदिस (विदिशा), वनसाह्वय या वनसह्वय, कोसम्बी (कौशाम्बी), साकेत और सावत्थि (श्रावस्ती)। बावरि के शिष्यों ने इसी मार्ग का अनुगमन किया था। "बावरिं अभिवादेत्वा कत्वा च नं पदक्खिणं। जटाजिनधरा सब्बे पक्कामुं उत्तरामुखा। अलकस्स पतिट्ठानं पुरिमं माहिस्सतिं तदा। उज्जेनिं चापि गोनद्धं वेदिसं वनसव्हयं। कोसम्बिं चापि साकेतं सावत्थिं च पुरुत्तमं।" श्रावस्ती से जिस सड़क को इन शिष्यों ने राजगृह के लिए लिया, उसके मुख्य पड़ाव इस प्रकार दिये गये हैं—श्रावस्ती, सेतव्या, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा, भोगनगर, वैशाली और मागधं पुरं (राजगृह) जहाँ के रमणीय पाषाण चैत्य में बावरि के शिष्य पहुँचे। "सेतव्यं कपिलवत्थुं कुसिनारं च मन्दिरं। पावं च भोगनगरं वेसालिं मागधं पुरं। पासाणकं चेतियं च रमणीयं मनोरमं।" इस प्रकार सुत्त-निपात में हमें बुद्धकालीन भारत के दो मुख्य मार्गों, एक श्रावस्ती से प्रतिष्ठान जाने वाले और दूसरे श्रावस्ती से राजगृह जाने वाले का, उनके बीच में पड़ने वाले स्थानों के उल्लेख के साथ, विवरण मिलता है, जो भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

"पटिसम्भिदामग्ग" में श्रावस्ती का उल्लेख है और वाराणसी के समीप इसिपतन मिगदाय में भगवान् के विहार का भी। इस ग्रन्थ में हम स्थविर आनन्द को कौशाम्बी में विहार करते देखते हैं।

"विमानवत्थु" में चित्तलतावन का उल्लेख है और "पेतवत्थु" में वैशाली और श्रावस्ती जैसे कई नगरों के उल्लेख पाये जाते हैं।

"बुद्धवंस" में अमरावती नगरी का उल्लेख है। रम्मवती नामक नगरी का भी इस ग्रन्थ में उल्लेख है। कुसिनारा, वैशाली, कपिलवस्तु, अल्लकप्प, रामग्राम, पाटलिपुत्र, अवन्तिपुर और मिथिला का भी इस ग्रन्थ में निर्देश है।

"चरियापिटक" में कुशावती (कुसावती) और इन्द्रप्रस्थ (इन्दपत्त) नगरों का उल्लेख है। पंचाल और कलिंग देश का भी इस ग्रन्थ में निर्देश है।

"अपदान" में हमें सूचना मिलती है कि हंसवती नामक नगरी फूलों के लिए प्रसिद्ध थी। इस ग्रन्थ में बन्धुमती, अरुणवती और केतुमती नामक नगरियों का भी उल्लेख है और गंगा, यमुना, सिन्धु, चन्दभागा, सरयू और मही नदियों का भी। हिमालय (हिमवन्त) पर्वत का भी इस ग्रन्थ में कई जगह उल्लेख है।

"निद्देस" में गुम्ब, तक्कोल, तक्कसीला, कालमुख, मरणपार, वेसुंग, वेरापथ, वंग, योन, अलसन्द, अजपथ, मण्डपथ जैसे अनेक स्थानों और प्रदेशों के उल्लेख, हैं। इस ग्रन्थ में बावरि ब्राह्मण के प्रसंग को लेकर वह सब भौगोलिक सूचना दी गई है, जिसका उल्लेख सुत्त-निपात के भौगोलिक महत्व का विवेचन करते समय हम पहले कर चुके हैं।

भौगोलिक दृष्टि से विनय-पिटक पालि तिपिटक का अत्यन्त महत्वपूर्ण अंश है। उसके अनेक नियमों का विधान भगवान् के द्वारा कपिलवस्तु, श्रावस्ती, राजगृह, वाराणसी, पाटलिपुत्र, कोटिग्राम, वैशाली, चम्पा, कौशाम्बी, कीटागिरि, आलवी और अनूपिया जैसे नगरों और कस्बों में किया गया। विनय-पिटक में भगवान् बुद्ध की प्रथम यात्रा का, जो उन्होंने उरुवेला से वाराणसी के समीप इसिपतन मिगदाय तक की, उल्लेख है। एक अत्यन्त महत्वपूर्ण भौगोलिक सूचना, जो हमें विनय-पिटक मे मिलती है, मज्झिम देस की सीमाओं के सम्बन्ध में है। यहाँ मध्य-देश के पूर्व में कंजगल नामक निगम, पूर्व-दक्षिण में सललवती नामक नदी, दक्षिण में सेतकण्णिक नामक निगम और पश्चिम में थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम बताया गया है।[1] राजगृह के चारों ओर एक प्राकार था और उसमें एक विशाल दरवाजा था जो रात को बन्द कर दिया जाता था और निश्चित समय के बाद एक बार राजा बिम्बिसार को भी नगर के अन्दर प्रवेश की अनुमति नहीं मिली थी और रात भर बाहर एक धर्मशाला में ही उसे निवास करना पड़ा था। जीवक और आकासगोत्त जैसे वैद्य राजगृह के निवासी थे। राजगृह के अनेक श्रेष्ठियों का विवरण विनय-पिटक में मिलता है। राजगृह के कई महत्वपूर्ण स्थानों का विनय-पिटक में उल्लेख है, जैसे कि, इसिगिलि पर्वत,[2] काल-

१. विनय-पिटक (हिन्दी-अनुवाद), पृष्ठ २१३।
२. वहीं, पृष्ठ ३९६।

शिला,[1] चोर प्रपात,[2] जीवकाम्रवन,[3] वेणुवन कलन्दक निवाप,[4] दक्षिणागिरि,[5] मद्रकुक्षि मृगदाव[6], लट्ठिवन में सुप्रतिष्ठ चैत्य[7], और सर्पशौण्डिक प्राग्भार[8]। इसी प्रकार वैशाली की महावन कूटागारशाला[9], गौतमक चैत्य[10], और बालुकाराम[11] के, कौशाम्बी के घोषिताराम[12], बोध-गया के रत्नघर चैत्य[13], आलवी के अग्गालव चैत्य[14] और पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम[15], के उल्लेख विनयपिटक में मिलते हैं। भद्दिय नगर के समीप जातियावन[16], श्रावस्ती के पास अन्धवन[17], वाराणसी-उरुवेला के मार्ग

१-३. वहीं, पृष्ठ ३९६।

४. वहीं, पृष्ठ ९७, ९८, १७१।

५. वहीं, पृष्ठ १२०, २७९।

६. वहीं, पृष्ठ १४०, ३९६।

७. वहीं, पृष्ठ ९५। मूल पालि शब्द 'सुप्पतिट्ठ चेतिय' है। अतः इसका संस्कृत प्रतिरूप 'सुप्रतिष्ठ चैत्य' ही ठीक है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने 'सुप्रतिष्ठित चैत्य' (विनय-पिटक, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ९५) किया है। चूंकि 'सुप्रतिष्ठित' नामक तीर्थ (सुप्पतिट्ठित तित्थं) उरुवेला से नेरंजरा नदी के तट पर था। (देखिये तीसरे परिच्छेद में उरुवेला का विवरण), अतः दोनों में गड़बड़ी न होने देने के लिये हमें राजगृह के लट्ठिवन में स्थित चैत्य को 'सुप्रतिष्ठ चैत्य' कहकर ही पुकारना चाहिये।

८. वहीं, पृष्ठ ३९६।

९. वहीं, पृष्ठ ५१९।

१०. वहीं, पृष्ठ २८०

११. वहीं, पृष्ठ ५५६।

१२. वहीं, पृष्ठ ३२२, ३५८, ३६१, ४८०, ५४७।

१३. वहीं, पृष्ठ ७७।

१४. वहीं, पृष्ठ ४७२।

१५. वहीं, पृष्ठ २८९।

१६. वहीं, पृष्ठ २०७।

१७. वहीं, पृष्ठ २८९।

पर कम्मासिय वनखण्ड[1] और पारिलेय्यक वन के रक्षित वनखण्ड[2] के उल्लेख भी विनय-पिटक में हैं। अवन्ती[3], उज्जेनी[4], सहजाति[5], नालन्दा[6], कुसिनारा[7], अम्मलपुर[8] जैसे नगरों के उल्लेख भी विनय-पिटक में हैं। चम्पा नगरी के समीप की प्रसिद्ध गग्गरा पुष्करिणी भी विनय-पिटक में निर्दिष्ट है।[9] राजगृह के समीप सड़क से जुड़े हुए अन्धकविन्द नामक ग्राम का भी उल्लेख विनय-पिटक में पाया जाता है[10]। और अवन्ती के पास कुररघर नामक पर्वत का भी।[11] अवन्ति-दक्षिणापथ प्रदेश का विनय-पिटक में उल्लेख है[12] और दक्षिणापथ के व्यापारी पूर्वदेश में व्यापारार्थ जाते थे, इसका भी साक्ष्य है[13]। बुद्धकालीन भारत के राजनैतिक भूगोल पर भी विनय-पिटक के विवरणों से पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। मगधराज अजातशत्रु द्वारा वज्जियों को अपने राज्य में मिलाने की चेष्टा का विनय-पिटक में विवरण है। साकेत से श्रावस्ती जाने वाले मार्ग का विनय-पिटक में उल्लेख है[14], और इसी प्रकार राजगृह से तक्षशिला को जाने वाले मार्ग का भी, जिस पर भी साकेत

१. वहीं, पृष्ठ ८९।
२. वहीं, पृष्ठ ३३३।
३. वहीं, पृष्ठ २११-२१५, ५५१।
४. वहीं, पृष्ठ २७१।
५. वहीं, पृष्ठ ५५१
६. वहीं, पृष्ठ ५४३।
७. वहीं, पृष्ठ ५४१।
८. वहीं, पृष्ठ ५५१।
९. वहीं, पृष्ठ २९८।
१०. वहीं, पृष्ठ १४३, २८३।
११. वहीं, पृष्ठ २११।
१२. वहीं, पृष्ठ ५५१।
१३. वहीं, पृष्ठ ३५४।
१४. "उस समय साकेत से श्रावस्ती जाने वाले मार्ग पर बहुत सी भिक्षुणियाँ आ रही थीं।" विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १२७।

पड़ता था।[1] राजगृह से वैशाली जाने वाले मार्ग का भी उल्लेख विनय-पिटक में है[2]।

अभिधम्म-पिटक के सात ग्रन्थों में, विशेषतः विभंग और कथावत्थु में, कहीं-कहीं कुछ अल्प भौगोलिक सूचना मिल जाती है, परन्तु उसमें कोई नवीनता नहीं है। अतः उसका उल्लेख करना यहाँ आवश्यक न होगा।

पालि तिपिटक, विशेषतः सुत्त-पिटक और विनय-पिटक, के भौगोलिक महत्व का किञ्चित् निर्देश करने के पश्चात् अब हम उसकी अट्ठकथाओं के भौगोलिक महत्व पर आते हैं। वस्तुतः इस सम्बन्ध में पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के बीच विभाजक रेखा नहीं खींची जा सकती। इसका कारण यह है कि अट्ठकथाएँ पालि तिपिटक की पूरक ही हैं, उनका स्वतन्त्र महत्व नहीं है। यह ठीक है कि अट्ठकथाओं का काल पालि तिपिटक के संकलन-काल से काफी बाद का है। पालि तिपिटक के संकलन की निचली काल-सीमा, जैसा हम पहले देख चुके हैं, प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व है और मुख्य अट्ठकथाओं का रचना-काल चौथी-पाँचवीं शताब्दी ईसवी है। अतः वे काफी बाद की हैं, परन्तु हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि जिस परम्परा पर वे आधारित हैं, वह अत्यन्त प्राचीन है। पालि अट्ठकथाएँ प्राचीन सिहली अट्ठकथाओं पर आधारित हैं, जो आज अभाग्यवश प्राप्त नहीं हैं। पालि अट्ठकथाओं की पूर्वभूमि के सम्बन्ध में यहाँ कुछ कहना आवश्यक होगा।

बौद्ध अनुश्रुति के अनुसार स्थविर महेन्द्र और उनके साथी भिक्षु पालि तिपिटक के साथ-साथ उसकी अट्ठकथा को भी अपने साथ लंका में ले गये थे।[3] यह निश्चित है कि जिस रूप में यह अट्ठकथा लंका ले जायी गई होगी, वह पालि तिपिटक के समान मौखिक ही रहा होगा। प्रथम शताब्दी ईसवी पूर्व जब लंकाधिपति वट्टगामणि अभय के समय में पालि तिपिटक लेखबद्ध किया गया, तो उसकी उपर्युक्त अट्ठकथा के भी लेखबद्ध होने की कोई सूचना हम नहीं पाते। अतः महेन्द्र द्वारा लंका में पालि तिपिटक की अट्ठकथा को भी ले जाये जाने का कोई

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २६७।
२. वहीं, पृष्ठ ४२८-४२९।
३. देखिए समन्तपासादिका की बाहिरनिदानवण्णना।

ऐतिहासिक आधार हमें नहीं मिलता। इन अट्ठकथाओं का कोई अंश आज किसी रूप में सुरक्षित भी नहीं है। हाँ, एक दूसरे प्रकार की अट्ठकथाओं के अस्तित्व का साक्ष्य हम सिंहल के इतिहास में अत्यन्त प्रारम्भिक काल से ही पाते हैं। ये प्राचीन सिंहली भाषा में लिखी हुई अट्ठकथाएँ थीं। जैसा हम अभी इसी परिच्छेद में देखेंगे, आचार्य बुद्धघोष इन्हीं प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं का पालि या मागधी रूपान्तर करने के लिए लंका गये थे। चौथी-पाँचवीं शताब्दी ईसवी में न केवल बुद्धघोष, बुद्धदत्त और धम्मपाल आदि के द्वारा रचित विस्तृत अट्ठकथा-साहित्य बल्कि प्राग्बुद्धघोषकालीन लंका का इतिहास ग्रन्थ दीपवंस और बाद में उसी के आधार पर रचित महावंस भी, अपनी विषय-वस्तु के मूल आधार और स्रोतों के लिए इन्हीं प्राचीन सिंहली अठ्ठकथाओं के ऋणी हैं। महावंस-टीका (६३।५४९-५५०) के आधार पर गायगर ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि ये प्राचीन सिंहली अट्ठकथाएँ बारहवीं शताब्दी ईसवी तक प्राप्त थीं।[1] आज इनका कोई अंश सुरक्षित नहीं है।

जैसा अभी कहा गया, बुद्धघोष महास्थविर प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं का पालि रूपान्तर करने के लिए ही लंका गये थे। उन्होंने अपनी विभिन्न अट्ठकथाओं में जिन प्राचीन सिंहली अट्ठ कथाओं का निर्देश किया है, या उनसे उद्धरण दिये हैं, उनमें मुख्य ये हैं, (१) महा अट्ठकथा (२) महापच्चरी या महापच्चरिय, (१) कुरुन्दी या कुरुन्दिय, (४) अन्धट्ठ कथा, (३) संखेप अट्ठकथा, (६) आगमट्ठकथा और (७) आचरियानं समानट्ठकथा। दीघ, मज्झिम, सयुत्त और अंगुत्तर, इन चार निकायों की अपनी अट्ठकथाओं के अंत में आचार्य बुद्धघोष ने अलग-अलग कहा है "सा हि मया अट्ठकथाय सारमादाय निट्ठिता एसा" अर्थात् "इसे मैंने महाअट्ठकथा के सार को लेकर पूरा किया है।" इससे निश्चित है कि बुद्धघोष-कृत सुमंगलविलासिनी, पपञ्चसूदनी, सारत्थप्पकासिनी और मनोरथपूरणी (क्रमशः दीघ, मज्झिम, संयुत्त और अंगुत्तर निकायों की अट्ठकथाएँ) प्राचीन सिंहली अट्ठकथा, जिसका नाम महा अट्ठकथा था, पर आधारित हैं। उपर्युक्त कथन के साक्ष पर सद्धम्म-

---

१. पालि लिटरेचर एण्ड लेंग्वेज, पृष्ठ २५।

संगह (चौदहवीं शताब्दी) का यह कहना कि महा अट्ठकथा सुत्त-पिटक की अट्ठकथा थी,[1] ठीक मालूम पड़ता है। इसी प्रकार सद्धम्मसंगह के अनुसार महापच्चरी और कुरुन्दी क्रमशः अभिधम्म और विनय की अट्ठकथाएँ थीं।[2] कुरुन्दी विनय-पिटक की ही अट्ठकथा थी, इसे आचार्य बुद्धघोष की अट्ठकथाओं से पूरा समर्थन प्राप्त नहीं होता, क्योंकि विनय-पिटक की अट्ठकथा (समन्तपासादिका) के आरम्भ में उन्होंने अपनी इस अट्ठकथा के मुख्य आधार के रूप में कुरुन्दी का उल्लेख नहीं किया है। वहाँ उन्होंने केवल यह कहा है कि ये तीनों अट्ठकथाएँ (महाअट्ठकथा, महापच्चरी एवं कुरुन्दी) प्राचीन अट्ठकथाएं थीं और सिंहली भाषा में लिखी गई थीं। 'गन्धवंस' में भी उपर्युक्त तीनों अट्ठकथाओं का उल्लेख किया गया है। वहाँ महाअट्ठकथा (सुत्त-पिटक की अट्ठकथा) को इन सब में प्रधान बताया गया है और उसे पुराणाचार्य (पोराणाचरिया) की रचना बतलाया गया है, जब कि अन्य दो अट्ठकथाओं को ग्रन्थाचार्यों (गन्धाचरिया) की रचनाएँ बतलाया गया है।[3] इससे स्पष्ट है कि गन्धवंस के अनुसार महाअट्ठकथा की प्राचीनता और प्रामाणिकता अन्य दो की अपेक्षा अधिक थी। अन्धट्ठकथा और संखेपट्ठकथा तथा इनके साथ-साथ चूलपच्चरी और पण्णवार नाम की प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं का उल्लेख समन्तपासादिका की दो टीकाओं वजिरबुद्धि और सारत्थदीपनी में भी किया गया है।[4] किन्तु इनके विषय में भी हमारी कोई विशेष जानकारी नहीं है।[5] "आचरियानं समानट्ठकथा", जिसका उल्लेख बुद्धघोष ने अट्ठसालिनी के

१-२. सद्धम्मसंगह, पृष्ठ ५५ (जर्नल ऑव पालि टैक्सट् सोसायटी, १८९० में प्रकाशित संस्करण)।

३. पृष्ठ ५९ एवं ६८ (जर्नल ऑव पालि टैक्सट् सोसायटी, १८८६, में प्रकाशित संस्करण)।

४. गायगर: पालि लिटरेचर एण्ड लेंग्वेज, पृष्ठ २५।

५. इनके कुछ अनुमानाश्रित विवरण के लिए देखिए लाहा: हिस्ट्री ऑव पालि लिटरेचर, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३७६; श्रीमती सी० ए० एफ० रायस डेविड्स् : ए बुद्धिस्ट मेनुअल ऑव साइकोलोजीकल एथिक्स, पृष्ठ २२ (भूमिका)।

आदि में किया है, किसी विशेष अट्ठकथा का नाम न होकर केवल अनेक अट्ठकथाओं के सामान्य सिद्धान्तों की सूचक है, यही मानना अधिक समीचीन जान पड़ता है। "आगमट्ठकथा" जिसका उल्लेख आचार्य बुद्धघोष ने अट्ठसालिनी और समन्तपासादिका के आदि में किया है, सम्पूर्ण आगमों या निकायों की एक सामान्य अट्ठकथा ही रही होगी। कुछ भी हो, बुद्धघोष ने जिन प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं का उल्लेख किया है, वे किन्हीं लेखकों की व्यक्तिगत रचनाएँ न होकर महाविहारवासी भिक्षुओं की परम्परा-प्राप्त कृतियाँ थीं, जो उनकी सामान्य सम्पत्ति के रूप में चली आ रही थी। आचार्य बुद्धघोष ने महाविहारवासी भिक्षुओं की आदेशना-विधि को लेकर ही अपनी समस्त अट्ठकथाएँ और विसुद्धिमग्ग लिखे, यह उन्होंने अनेक जगह स्पष्ट कर दिया है। समन्तपासादिका और अट्ठसालिनी के आरम्भ में उन्होंने कहा है :

महाविहारवासीनं दीपयन्तो विनिच्छयं।
अत्थं पकासयिस्सामि आगमट्ठकथासु पि।

यहाँ यह भी कह देना अप्रासंगिक न होगा कि महाविहार के अलावा उत्तर विहार नामक एक अन्य विहार के भिक्षुओं की परम्परा भी उस समय सिंहल में प्रचलित थी। बुद्धदत्त का उत्तर-विनिच्छय उसी पर आधारित है।

प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं को अपनी रचनाओं का आधार स्वीकार करने के अतिरिक्त आचार्य बुद्धघोष ने प्राचीन स्थविरों (पोराणकत्थेरा) या पुराने लोगों (पोराणा) के मतों के उद्धरण अनेक बार अपनी अट्ठकथाओं में दिये हैं।[1] ये प्राचीन स्थविर या पुराण लोग कौन थे? "गन्धवंस" के मतानुसार प्रथम तीन धर्म-संगीतियों के आचार्य भिक्षु, आर्य महाकात्यायन को छोड़ कर, पोराणा या पुराने लोग कहलाते हैं।[2] सम्भवतः प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं में इन प्राचीन आचार्यों के मतों का उल्लेख था। वहीं से उनका पालि

---

१. पोराणों के कुछ उद्धरणों के लिये देखिये विमलाचरण लाहा : दि लाइफ एंड वर्क ऑव बुद्धघोष, पृष्ठ ६५-६७।

२. "पालि साहित्य का इतिहास" के नवें अध्याय में "गन्धवंस" की विषय-वस्तु का विवेचन करते हुए लेखक ने इस विषय को स्पष्ट किया है।

रूपान्तर कर आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथाओं में ले लिया है। इन पोराणों के उद्धरणों की एक बड़ी विशेषता यह है कि ये प्रायः गाथात्मक हैं और अनेक उद्धरण जो बुद्धघोष की अट्ठकथाओं में मिलते हैं, बिलकुल उन्हीं शब्दों में "महावंस" में भी मिलते हैं। इससे इस मान्यता को दृढ़ता मिलती है कि बुद्धघोष की अट्ठकथाएँ और "महावंस" दोनों के मूल स्रोत और आधार प्राचीन सिंहली अट्ठकथाएँ ही हैं। "यथाहु पोराणा" (जैसा पुराने लोगों ने कहा है) या "तेने वे पोराणकत्थेरा" (इसी प्रकार प्राचीन स्थविर) आदि शब्दों से आरम्भ होने वाले इन "पोराण" आचार्यों के उद्धरणों को बुद्धघोष की अट्ठकथाओं और विसुद्धिमग्ग से यदि संग्रह किया जाय और "दीपवंस" आदि के इसी प्रकार के साक्ष्यों से उनका मिलान किया जाय, तो प्राचीन बौद्ध परम्परा सम्बन्धी एक व्यवस्थित और अत्यन्त मूल्यवान् सामग्री हमारे हाथ लग सकती है, जिसका ऐतिहासिक महत्व भी अल्प न होगा।

पालि साहित्य में अट्ठकथा-साहित्य का प्रारम्भ चौथी-पाँचवीं शताब्दी ईसवी से होता है। इस प्रकार बुद्ध-काल से लगभग एक हजार वर्ष बाद ये अट्ठकथाएँ लिखी गईं। निश्चय ही काल के इस इतने लम्बे व्यवधान के कारण इन अट्ठकथाओं की प्रामाणिकता उतनी सबल नहीं होती, यदि ये परम्परा से प्राप्त प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं पर आधारित नहीं होतीं। चूँकि ये उनकी ऐतिहासिक परम्परा पर आधारित हैं, अतः इतनी आधुनिक होते हुए भी बुद्ध-युग के सम्बन्ध में उनका प्रामाण्य मान्य है, यद्यपि स्वयं तिपिटक के बाद ही। चौथी-पाँचवीं शताब्दी में प्रायः समकालिक ही तीन बड़े अट्ठकथाकार पालि साहित्य में हुए हैं, जिनके नाम हैं, बुद्धदत्त, बुद्धघोष और धम्मपाल।

भौगोलिक दृष्टि से आचार्य बुद्धघोष-रचित अट्ठकथाएँ सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। उनकी लिखी हुई अट्ठकथाएँ इस प्रकार हैं :

१. समन्तपासादिका........विनय-पिटक की अट्ठकथा।
२. कंखावितरणी........पातिमोक्ख की अट्ठकथा।
३. सुमंगलविलासिनी........दीघ-निकाय की अट्ठकथा।
४. पपंचसूदनी........मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा।
५. सारत्थप्पकासिनी........संयुत्त-निकाय की अट्ठकथा।

६. मनोरथपूरणी........अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा।
७. परमत्थजोतिका........खुद्दक-निकाय के खुद्दक-पाठ और सुत्त-निपात की अट्ठकथा।
८. अट्ठसालिनी........धम्मसंगणि की अट्ठकथा।
९. सम्मोहविनोदनी........विभंग की अट्ठकथा।
१०. १४. पंचप्पकरणट्ठकथा........कथावत्थु पुग्गल-पञ्ञत्ति, धातुकथा, यमक, और पट्ठान, इन पाँच ग्रन्थों की अट्ठकथा।

इनके अतिरिक्त जातकट्ठकथा, धम्मपदट्ठकथा और अपदान-अट्ठकथा भी बुद्धघोष-रचित बताई जाती हैं, परन्तु इनके बुद्धघोष-कृत होने में कई विद्वानों ने संदेह प्रकट किये हैं। आचार्य बुद्धदत्त ने विनय-पिटक पर विनय-विनिच्छय और उत्तर-विनिच्छय नामक दो अट्ठकथाएँ लिखी, जो बुद्धघोष-कृत समन्तपासादिका के पद्यबद्ध संक्षेप हैं। उन्होंने बुद्धवंस पर मधुरत्थविलासिनी नामक अट्ठकथा भी लिखी, जिसका भौगोलिक महत्व है। बुद्धदत्त-कृत अभिधम्मावतार और रूपारूपविभाग, जो अभिधर्म दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थ है, हमारी दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है। आचार्य धम्मपाल ने अन्य ग्रन्थों के अलावा खुद्दक-निकाय के उदान, इतिवुत्तक, विमानवत्थु, पेतवत्थु, थेरगाथा, थेरीगाथा और चरियापिटक, इन सात ग्रन्थों पर परमत्थदीपनी नामक अट्ठकथा लिखी, जो भौगोलिक निर्देशों की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। अब हम कुछ प्रमुख अट्ठकथाओं के भौगोलिक महत्व का विवेचन करेंगे।

सुमंगलविलासिनी (दीघ-निकाय की अट्ठकथा) में, जैसे कि अन्य अट्ठकथाओं में, जो भौगोलिक सूचना हमें मिलती है, वह पालि तिपिटक के विवरणों की पूरक या सहायक ही कही जा सकती है। जिन स्थानों, देशों या जनपदों का विवरण मूल तिपिटक में आया है, उन्हीं का प्राचीन परम्परा पर आधारित अधिक विस्तृत विवरण प्रस्तुत करना अट्ठकथाओं का लक्ष्य है। दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में मगधराज अजातशत्रु के वज्जियों पर चढ़ाई करने के इरादे को हम देखते हैं। इसी सम्बन्ध में सुमंगलविलासिनी हमें यह बतलाती है कि गंगा के घाट के पास आधा योजन अजातशत्रु का राज्य था और आधा योजन लिच्छवियों का। वहाँ पर्वत की जड़ से बहुमूल्य पदार्थ उतरता था। उसी पर झगड़ा था। इसी प्रकार महापरिनिब्बाण-सुत्त में भगवान् की राजगृह से कुसिनारा तक की जिस

यात्रा का विवरण है, उसी का अधिक विस्तृत विवरण देते हुए सुमंगलविलासिनी में राजगृह से कुसिनारा तक की दूरी पच्चीस योजन बताई गई है। यह सहायक और पूरक सूचना है, जो भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। इसी प्रकार महासतिपट्ठान-सुत्त की व्याख्या करते हुए सुमंगलविलासिनी में कुरुदेश के सम्बन्ध में महत्वपूर्ण भौगोलिक सूचना दी गई है। महामण्डल, मज्झिममंडल और अंतो-मंडल या अन्तिम मंडल, इन तीन मंडलों के रूप में जम्बुद्वीप का विभाजन भी सुमंगल-विलासिनी में किया गया है।[१] अनेक देशों, नगरों और स्थानों के नामकरण के हेतु बुद्धघोष ने इस अट्ठकथा में दिये हैं। इस प्रकार उन्होंने हमें बताया है कि अंग देश का यह नाम क्यों पड़ा,[२] कोसल देश क्यों 'कोसल' कहलाता था,[३] कौशाम्बी के घोषिताराम, कुक्कुटाराम और प्रावारिक आम्रवन किस प्रकार बने,[४] इसिपतन मिग-दाय,[५] गिज्झकूट,[६] गन्धार[७] और सालवतिका[८] ने ये नाम किस प्रकार प्राप्त किए? आदि। सुमंगलविलासिनी में जम्बुद्वीप का विस्तार दस हजार योजन बताया गया है और उसके अन्तर्गत मज्झिम देस का भी उल्लेख है, जिसकी पूर्वी सीमा पर कजंगल नामक निगम बताया गया है।[९] जम्बुद्वीप के साथ-साथ अपरगोयान और उत्तर कुरुद्वीपों के भी विवरण दिये गये हैं। दक्षिणापथ को सुमंगलविलासिनी में गंगा के दक्षिण का प्रदेश बताया गया है।[१०] उजुञ्ञा, कण्णकत्थल, मनसाकट और नादिका जैसे नगरों और ग्रामों; खरस्सरा, खण्डस्सरा, काकस्सरा और भगस्सरा जैसी झीलों

---

१. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २३९-२४२।
२. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ २७९।
३. वहीं, पृष्ठ १३२।
४. वहीं, पृष्ठ ३१७-३१९।
५. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३४९।
६. वहीं, पृष्ठ ५१६।
७. वहीं, पृष्ठ ३८९।
८. वहीं, पृष्ठ ३९५।
९. वहीं, पृष्ठ ४२९।
१०. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ २६५।

और मुकुट-बन्धन और सारन्दद जैसे चैत्यों के विस्तृत विवरण इस अट्ठकथा में दिये गये हैं। शाक्यों और कोलियों के द्वारा रोहिणी नदी का बाँध बाँधने और उसके द्वारा अपने खेतों की सिंचाई करने का भी उल्लेख इस अट्ठकथा में है। रोहिणी नदी शाक्य और कोलिय जनपदों की सीमा पर होकर बहती थी, ऐसा यहाँ कहा गया है।[1] श्रावस्ती के जेतवनाराम के अन्दर चार कुटियाँ बनी हुई थीं, जिनके नाम इस अट्ठकथा के अनुसार करेरिकुटि, कोसम्बकुटि, गन्धकुटि और सललधर या सललागार थे। प्रथम तीन कुटियाँ अनाथपिण्डिक ने बनवाई थीं और सललधर या सललागार कुटी राजा प्रसेनजित् के द्वारा बनवाई गई थी, ऐसा इस अट्ठकथा का साक्ष्य है।[2]

पपञ्चसूदनी (मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा) में कुरुराष्ट्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विस्तृत विवरण है और जम्बुद्वीप के अलावा पुब्बविदेह, अपरगोयान और उत्तरकुरु द्वीपों का भी उल्लेख है। किस प्रकार जम्बुद्वीप के कुरु, विदेह और अपरान्त जनपद बसाये गये, इसका यहाँ चक्रवर्ती राजा मन्धाता (मान्धाता) के दिग्विजय से सम्बन्धित विवरण है।[3] इसका उल्लेख हम द्वितीय परिच्छेद में करेंगे। सुमंगलविलासिनी के समान पपञ्चसूदनी में भी बुद्धकालीन नगरों, ग्रामों और स्थानों के नामों की व्याख्याएँ दी गई हैं, जो मनोरंजक होने के साथ-साथ प्राचीन भारतीय ऐतिहासिक भूगोल पर पर्याप्त प्रकाश डालती हैं। इस प्रकार श्रावस्ती,[4] गिरिव्रज[5], वैशाली[6], उक्कट्ठा[7], कपिलवस्तु[8], गिज्झकूट[9], सुसुमार-

१. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६७२।
२. वहीं, पृष्ठ ४०७।
३. पपञ्चसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २२५-२२६।
४. वहीं, पृष्ठ ५९।
५. वहीं, पृष्ठ १५१।
६. वहीं जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९।
७. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ ११।
८. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६१।
९. वहीं, पृष्ठ ६३।

गिरि[1], इसिपतन मिगदाय[2], राजगृह[3], कलन्दक निवाप,[4] गोसिंग सालवन,[5] अंग,[6] कोसल[7], कौशाम्बी[8], शाक्य[9], कोलिय[10], हलिद्दवसन[11], और चम्पा[12] आदि ने ये नाम कैसे प्राप्त किये, इसके विस्तृत और मनोरंजक वर्णन इस अट्ठकथा में दिये गये हैं, जो प्राचीन परम्पराओं पर आधारित हैं। पपञ्चसूदनी में राजगृह की दूरी कपिलवस्तु से ६० योजन और श्रावस्ती से १५ योजन बताई गई है।[13] हिमवन्त पदेस का विस्तार इस अट्ठकथा में तीन हजार योजन बताया गया है[14]। जेतवन, वेणुवन, अन्धवन, महावन, अञ्जनवन और सुभगवन के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी भी इस अट्ठकथा में दी गई है। मज्झिम देस की लम्बाई ३०० योजन, चौड़ाई २५० योजन और घेरा ९०० योजन इस अट्ठकथा में बताया गया है।[15]

सारत्थप्पकासिनी (संयुत्त-निकाय की अट्ठकथा) भौगोलिक सूचना की दृष्टि से एक अत्यन्त समृद्ध अट्ठकथा है। अंग और मगध देशों के विस्तृत विवरण यहाँ उपलब्ध हैं, राजगृह और उसके आसपास के तपोदाराम, सीतवन, सप्प-

---

१. वहीं, पृष्ठ ६५।
२. वहीं, पृष्ठ ६५।
३. वहीं, पृष्ठ १५२।
४. वहीं, पृष्ठ १३४।
५. वहीं, पृष्ठ २३५।
६. वहीं, पृष्ठ ३१२।
७. वहीं, पृष्ठ ३२६।
८. वहीं, पृष्ठ ३८९-३९०।
९. वहीं, पृष्ठ ६१।
१०. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १००।
११. वहीं, पृष्ठ १००।
१२. वहीं, पृष्ठ १।
१३. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५२।
१४. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ ६।
१५. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ १७२।

सोण्डिक पब्बत, मद्दकुच्छि मिगदाय, वेभार पब्बत और सप्पिणी नदी; दक्खिणा-गिरि, एकनाला गाँव जैसे अनेक स्थानों के विस्तृत और स्पष्ट विवरण इस अट्ठकथा में मिलते हैं। इसी प्रकार श्रावस्ती के जेतवनाराम, आलवी के अग्गालव चेतिय, कौशाम्बी के घोसिताराम और उसके एक गावुत के फासले पर स्थित बदरिकाराम के सम्बन्ध में विस्तृत सूचना हमें इस अट्ठकथा में मिलती है। पपञ्चसूदनी के समान इस अट्ठकथा में भी सुंसुमारगिरि के नाम की व्याख्या की गई है और बताया गया है कि उसका यह नाम क्यों पड़ा।[१] इसी प्रकार अञ्जनवन नाम पड़ने का भी कारण इस अट्ठकथा में बताया गया है,[२] और सललागार विहार,[३] वैशाली[४] और इसिपतन[५] के नामकरण का भी। रोहिणी नदी के बाँध को लेकर शाक्य और कोलियों के विवाद का सुमंगलविलासिनी के समान इस अट्ठकथा में भी विवरण है[६]। इस अट्ठकथा में मन्दाकिनी पोक्खरणी का भी उल्लेख है, जिसका विस्तार ५० योजन बताया गया है।[७]

मनोरथपूरणी (अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा) में हमें कभी गर्म न होने वाली 'अनोतत्त' (अनवतप्त) दह का वर्णन मिलता है।[८] पुब्बविदेह महाद्वीप तथा अन्य तीन महाद्वीपों का भी वर्णन इस अट्ठकथा में आचार्य बुद्धघोष ने किया है।[९] एक महत्वपूर्ण सूचना जो हमें मनोरथपूरणी में मिलती है, भगवान् बुद्ध के वर्षावासों के सम्बन्ध में है। भगवान् ने ज्ञान-प्राप्ति के बाद अपने ४६ वर्षावास किन-किन स्थानों पर बिताये, इसका पूरा ब्योरा देते हुए मनोरथपूरणी में कहा गया

---

१. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २४९।
२. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २४७।
३. वहीं, पृष्ठ २६३।
४. वहीं, पृष्ठ २६५।
५. वहीं, पृष्ठ २९६।
६. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ ६८।
७. वहीं, पृष्ठ २८१।
८. मनोरथपूरणी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७५९।
९. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ २६४।

है, "तथागत प्रथम बोधि में बीस वर्ष तक अस्थिर वास हो, जहाँ-जहाँ ठीक रहा, वहीं जाकर वास करते रहे। पहली वर्षा में इसिपतन में धर्म-चक्र प्रवर्तन कर. . . वाराणसी के समीप इसिपतन में वास किया। दूसरी वर्षा में राजगृह वेणुवन में, तीसरी और चौथी भी वहीं। पाँचवीं वर्षा में वैशाली में महावन कूटागारशाला में, छठी वर्षा मंकुल पर्वत पर। सातवीं त्रायस्त्रिंश भवन में। आठवीं भग्ग देश में सुंसुमार गिरि के भेसकलावन में, नवीं कौशाम्बी में। दसवीं पारिलेय्यक वन-खंड में। ग्यारहवीं नाला ब्राह्मण-ग्राम में। बारहवी वेरंजा में। तेरहवीं चालिय पर्वत पर। चौदहवी जेतवन में। पन्द्रहवीं कपिलवस्तु में। सोलहवीं आलवी में। सत्रहवीं राजगृह में। अठारहवीं चालिय पर्वत पर और उन्नीसवीं भी वहीं। बीसवीं वर्षा में राजगृह में बसे। इस प्रकार बीसवीं तक अनिबद्ध वर्षावास करते, जहाँ-जहाँ ठीक हुआ वही बसे। इससे आगे दो ही शयनासन (निवास-स्थान) ध्रुव परिभोग (सदा रहने) के किये। कौन से दो? जेतवन और पूर्वाराम।"[१] खुद्दक-निकाय के ग्रन्थ बुद्ध-वंस की अट्ठकथा (मधुरत्थविलासिनी) में भी इसी प्रकार की सूचना मिलती है।

वैशाली के संबंध में विनय-पिटक पर आधारित यह महत्वपूर्ण सूचना हमें मनोरथपूरणी में मिलती है कि उस समय वैशाली ऋद्ध, स्फीत, बहुजनाकीर्ण अन्न-पान-सम्पन्न नगरी थी। उसमें ७७०७ प्रासाद, ७७०७ कूटागार, ७७०७ आराम और ७७०७ पुष्करिणियाँ थी। अन्य नगरों और स्थानों आदि के सम्बन्ध में इस अट्ठकथा में बहुत कुछ वही सूचना दी गई है, जिसका उल्लेख हम अन्य अट्ठ-कथाओं के सम्बन्ध में कर चुके हैं। भगवान् बुद्ध के प्रमुख शिष्यों, भिक्षु-भिक्षुणी और उपासक-उपासिकाओं, के जन्मस्थान आदि के प्रसग में महत्वपूर्ण भौगोलिक सूचना इस अट्ठकथा में दी गई है।

खुद्दक-निकाय की अट्ठकथाओं में जिनका महत्व भौगोलिक दृष्टि से अधिक है, मुख्यतः खुद्दक पाठ की अट्ठकथा, धम्मपदट्ठकथा, सुत्त-निपात की अट्ठकथा (परमत्थजोतिका) और थेर-थेरी-गाथाओं पर अट्ठकथा (परमत्थदीपनी)

---

१. महापण्डित राहुल सांकृत्यायन द्वारा "बुद्धचर्या", पृष्ठ ७०-७१ में अनुवादित।

हैं, यद्यपि कुछ न कुछ सूचना इस निकाय के प्रायः सभी ग्रन्थों की अट्ठकथाओं में मिलती है।

खुद्दकपाठ की अट्ठकथा में श्रावस्ती के जेतवनाराम का उल्लेख है और राजगृह के १८ विहारों का विवरण दिया गया है। कपिलवस्तु और वैशाली का भी इस अट्ठकथा में उल्लेख है और गंगा नदी और गयासीस पर्वत जैसे कई प्राकृतिक स्थानों के विवरण हैं।

धम्मपदट्ठकथा में हमें बुद्धकालीन भूगोल सम्बन्धी महत्वपूर्ण सूचना बिखरी हुई मिलती है। तक्षशिला, कपिलवस्तु, कौशाम्बी, वाराणसी, सोरेय्य, राजगृह सावत्थी, वैशाली जैसे अनेक नगरों, हिमवन्त, सिनेरु (सुमेरु), गन्धमादन और गिज्झकूट जैसे पर्वतों, वेणुवन, महावन, जेतवन जैसे वनों, मंगलपोक्खरणी जैसी पुष्करिणियों, अनोतत्त और छद्दन्त जैसी झीलों और गंगा और रोहिणी जैसी नदियों के प्रभूत वर्णन मिलते हैं। धम्मपदट्ठकथा के अनुसार कोसलराज प्रसेनजित् की शिक्षा तत्कालीन प्रसिद्ध शिक्षा-केन्द्र तक्षशिला में हुई थी और महालि नामक लिच्छवि राजकुमार और बन्धुल मल्ल उसके सहपाठी थे।[1] कोसलराज प्रसेनजित् ने अपनी पुत्री वजिरा का विवाह अजातशत्रु के साथ किया था और कासी ग्राम उसके सुगन्ध और स्नान के व्यय के लिए दिया था।[2] वाराणसी के एक व्यापारी का गधे की पीठ पर माल लादकर तक्षशिला व्यापारार्थ जाने का भी उल्लेख यहाँ है।[3] इसी प्रकार लाल वस्त्र से लदी पाँच सौ गाड़ियों को लेकर वाराणसी के एक व्यापारी का सावत्थी (श्रावस्ती) जाने का उल्लेख है।[4]

सुत्त-निपात की अट्ठकथा में प्रभूत भौगोलिक सामग्री भरी पड़ी है। श्रावस्ती, कपिलवस्तु, वाराणसी और राजगृह जैसे अनेक नगरों का इस अट्ठकथा में विस्तृत विवरण है और नेरंजरा जैसी नदियों और गंधमादन और चण्डगब्भ जैसे पर्वतों और पर्वत-गुफाओं के भी विवरण हैं। मगध और कोसल

---

१. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ३३७-३३८।
२. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २६६।
३. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ १२३।
४. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४२९।

राज्यों के सम्बन्ध में प्रभूत सामग्री इस अट्ठकथा से संकलित की जा सकती है। इस अट्ठकथा में उल्लेख है कि वाराणसी का एक व्यापारी पाँच सौ गाड़ियाँ लेकर सीमान्त देश में गया और वहाँ उसने चन्दन खरीदा।[1]

थेर-थेरी-गाथाओं की अट्ठकथा (परमत्थदीपनी) में, जो आचार्य धम्मपाल की रचना है, अनेक बुद्धकालीन भिक्षु और भिक्षुणियों की जीवनियों के सम्बन्ध में भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण विवरण दिये गये हैं, और इसी प्रकार इन्हीं आचार्य के द्वारा रचित विमानवत्थु और पेतवत्थु की अट्ठकथाओं में भी, जिनका उपयोग हम अपने अध्ययन में करेंगे।

विनय-पिटक की अट्ठकथा (समन्तपासादिका) भौगोलिक दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है। लिच्छवियों की शासन-विधि पर इस अट्ठकथा में विस्तृत विवरण प्रस्तुत किया गया है।[2] अन्ध और दमिल लोगों का वर्णन इस अट्ठकथा में म्लेच्छ (मलिक्खा) या अपरिचित लोगों के रूप में किया गया है।[3] इस अट्ठकथा में बौद्ध परम्परा के अनुसार चार महाद्वीपों का भी वर्णन है।[4] मगध की राजधानी राजगृह के नामकरण का कारण और बुद्ध-काल में उसकी जनसंख्या और विस्तार आदि के सम्बन्ध में इस अट्ठकथा में विस्तृत विवरण है।[5] जेतवन और अशोकाराम के सम्बन्ध में इसी प्रकार विस्तृत सूचना दी गई है।[6] राजगृह के चारों ओर स्थित पाँच पहाड़ियों और विशेषतः गिज्झकूट पब्बत का भी विस्तृत विवरण इस अट्ठकथा में है।[7] इसी प्रकार इसिगिलि पर्वत के नाम पड़ने का कारण इस अट्ठकथा में बताया गया है।[8] वैशाली के समीप स्थित

१. परमत्थजोतिका (सुत्त-निपात की अट्ठकथा), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५२३।
२. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ २१२।
३. वहीं, पृष्ठ २५५।
४. वहीं, पृष्ठ ११९।
५. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६१४।
६. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ ४८-४९।
७. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २८५।
८. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ ३७।

महावन और कपिलवस्तु के समीप महावन का यहाँ स्पष्ट विवरण है।[१] वेभार पर्वत के नीचे, राजगृह के समीप, तपोदा नामक गरम सोते का यहाँ उल्लेख है।[२] सुत्त-पिटक की अट्ठकथाओं के समान इस अट्ठकथा में भी आचार्य बुद्धघोष ने विभिन्न नगरों और स्थानों के नाम पड़ने के कारण बताये हैं। इस प्रकार राजगृह के वेणुवन कलंदक निवाप[३] श्रावस्ती[४] और वैशाली[५] के सम्बन्ध में उसी प्रकार की सूचना दी गई है जिसका उल्लेख हम सुत्त-पिटक की अट्ठकथाओं के सम्बन्ध में पहले कर चुके हैं। वैशाली के गोतमक चैत्य[६], राजगृह के समीप लट्ठिवन[७], कौशाम्बी के घोषिताराम[८] और विन्ध्याटवी (विञ्झाटवी)[९] के सम्बन्ध में प्रभूत सूचना इस अट्ठकथा में मिलती है, जिसका उपयोग हम अपने अध्ययन में करेंगे।

अट्ठसालिनी (धम्मसंगणि की अट्ठकथा) का मुख्य विषय यद्यपि अभिधम्म-दर्शन की व्याख्या करना है, परन्तु यहाँ भी चार महाद्वीपों के वर्णन और बन्धुमती, भरुकच्छ (भारुकच्छक) साकेत और श्रावस्ती जैसे नगरों; कोसल, मगध, और काशी (कासिपुर) जैसे जनपदों तथा अचिरवती, गंगा, गोदावरी, नेरंजरा, अनोमा, मही और सरभू जैसी नदियों के उल्लेख मिलते हैं, जो भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। कैलाश पर्वत-शिखर (केलासकूट) और अनोतत्त दह का भी इस अट्ठकथा में उल्लेख है और इसी प्रकार मंगलपोक्खरणी का भी। इसी प्रकार की कुछ अन्य भौगोलिक सूचना यत्र-तत्र बिखरी हुई अभिधम्म पिटक के ग्रन्थो की अन्य अट्ठकथाओं में भी हमें मिल सकती है।

---

१. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३९३।
२. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५१२।
३. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ५७५।
४. वहीं, पृष्ठ ६१४।
५. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३९३।
६. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६३६।
७. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ९७२।
८. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ५७४।
९. वहीं, पृष्ठ ६५५।

ऊपर पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं की बुद्ध के जीवनकालीन भूगोल के सम्बन्ध में प्रमाणवत्ता और उनके भौगोलिक महत्व का कुछ विवेचन हम कर चुके हैं। अब हम यहाँ कुछ ऐसे पालि और संस्कृत बौद्ध साहित्य का संक्षिप्त निर्देश करेंगे जो यद्यपि हमारे अध्ययन के आधार के रूप में यहाँ ग्राह्य नहीं है, परन्तु प्रासंगिक रूप से जिसका उपयोग सहायक साक्ष्य के रूप में अथवा किन्हीं विशेष तथ्यों के समर्थन प्राप्त करने के लिए, करना कभी-कभी आवश्यक हो गया है। इस प्रकार के साहित्य में, जहाँ तक पालि का सम्बन्ध है, अशोक के अभिलेख, मिलिन्दपञ्हो, दीपवंस और महावंस उल्लेखनीय हैं। अशोक के अभिलेख भारत के जिस भौगोलिक चित्र को उपस्थित करते हैं, वह ईसवी-पूर्व तीसरी शताब्दी का है, अतः हमारे अध्ययन से, जिसका सम्बन्ध भगवान् बुद्ध के जीवनकालीन भूगोल से है, सम्बद्ध नहीं है। परन्तु फिर भी यहाँ कुछ ऐसी सूचना अवश्य मिलती है जिसका पालि तिपिटक के विवरणों से मिलान करने पर हम बुद्धकालीन जम्बुद्वीप के चित्र को अधिक ठीक तरह समझ सकते हैं। जैसा हम इस परिच्छेद के आरम्भ में दिखा चुके हैं, जम्बुद्वीप के विस्तार का जो चित्र अशोक के अभिलेखों में मिलता है और उसका जो चित्र पालि तिपिटक से विदित होता है, उनका मिलान करने से पालि तिपिटक की प्राचीनता पर प्रकाश पड़ता है। मिलिन्दपञ्हो, जो ईसवी सन् के करीब की रचना है, अपने इसी समय के भारतीय भौगोलिक चित्र को उपस्थित करती है, जिससे तुलनात्मक दृष्टि से कभी-कभी सहायता ली गई है। दीपवंस और महावंस लंका के इतिहास से सम्बन्धित ग्रन्थ हैं। इनमें से प्रथम ग्रन्थ का रचना-काल अनुमानतः ३५२-४५० ईसवी के बीच में है और दूसरे का सम्भवतः छठी शताब्दी ईसवी का आदि भाग। चूँकि अट्ठकथाओं के समान ये दोनों वंस-ग्रन्थ प्राचीन परम्परा पर, जैसी कि वह प्राचीन सिंहली अट्ठकथाओं में निहित थी, आधारित हैं, अतः उनके उन अंशों का, जो बुद्ध के जीवन-काल से सम्बन्धित हैं, कुछ साक्ष्य आवश्यकतावश यहाँ ले लिया गया है।

बौद्ध संस्कृत साहित्य में महावस्तु (ईसवी-पूर्व दूसरी शताब्दी से चौथी शताब्दी ईसवी तक), ललितविस्तर (ईसवी-पूर्व दूसरी शताब्दी से दूसरी शताब्दी ईसवी तक), अवदानशतक (दूसरी शताब्दी ईसवी) और दिव्यावदान (तीसरी-

चौथी शताब्दी ईसवी) जैसे ग्रन्थों में प्रभूत महत्वपूर्ण भौगोलिक सामग्री मिलती है, जिससे बुद्धकालीन भारतीय भूगोल पर भी पर्याप्त प्रकाश पड़ता है। इसी प्रकार महाकवि अश्वघोष की रचनाएँ, विशेषतः बुद्ध-चरित और सौन्दरनन्द, भी कुछ हद तक महत्वपूर्ण हैं। इन सब के सहयोगी साक्ष्य की प्रस्तुत अध्ययन में उपेक्षा नहीं की गई है। परन्तु यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि यह अध्ययन केवल पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर भगवान् बुद्ध के जीवनकालीन भूगोल से सम्बन्धित है।

दूसरा परिच्छेद

जम्बुद्वीप : प्रादेशिक विभाग और प्राकृतिक भूगोल

पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में बुद्ध-काल में ज्ञात भारत देश के लिए जम्बुदीप (सं० जम्बुद्वीप) नाम का प्रयोग किया गया है।[1] कहा गया है

---

१. पुराणों में भी जम्बुद्वीप नाम का प्रयोग किया गया है, किन्तु एक विभिन्न अर्थ में। पुराणों के अनुसार पृथ्वी सप्त द्वीपों जम्बु, शाक, कुश, शाल्मल, क्रौंच, गोमेद और पुष्कर में विभक्त है, जिनमें एक जम्बुद्वीप है। इस जम्बुद्वीप के नव वर्ष हैं, जिनमें एक भारतवर्ष है। इस भारतवर्ष के भी नव भेद, खण्ड या द्वीप बताये गये हैं, जिनमें आठ के नाम तो हैं इन्द्र द्वीप, कशेरुमान्, ताम्रपर्ण, गभस्तिमान्, नागद्वीप, सौम्य, गन्धर्व और वरुण और नवम के सम्बन्ध में केवल इतना कहा गया है "अयं तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः"। "सागरसंवृतः" नवम द्वीप का नाम राजशेखर-कृत "काव्यमीमांसा" (दसवीं शताब्दी ईसवी) में "कुमारी द्वीप" बताया गया है। "कुमारीद्वीपश्चायं नवमः"। विद्वानों का अनुमान है कि यह नवम द्वीप (कुमारी या कुमारिक द्वीप) ही वास्तविक भारत देश है और शेष आठ भाग बृहत्तर भारत के हैं। देखिए कनिंघम-कृत "एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया" (सुरेन्द्रनाथ मजूमदार-सम्पादित) में प्रथम परिशिष्ट के रूप में संलग्न श्री मजूमदार द्वारा लिखित "पुराणिक नाइन डिविजनस् ऑव ग्रेटर इण्डिया" शीर्षक लेख, पृष्ठ ७४९-७५४। आवश्यक पौराणिक उद्धरण वहाँ दे दिये गये हैं, जिनके लिए देखिए कनिंघम का विवरण भी, वहीं, पृष्ठ ६-८। कुमारी द्वीप को छोड़कर, शेष आठ उपर्युक्त भाग बृहत्तर भारत के ही हैं, इस मत से डा० लाहा भी सहमत हैं। देखिये उनका "इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्सट्स् ऑव

कि बुद्ध केवल जम्बुद्वीप में ही उत्पन्न होते हैं।[१] सिंहल के पालि इतिहास-ग्रन्थों,

---

बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म", पृष्ठ १५। इस प्रकार ज्ञात होगा कि पुराणों का जम्बुद्वीप तो बौद्ध परम्परा के जम्बुद्वीप से अधिक विस्तृत है ही, पौराणिक भारतवर्ष भी, जिसका केवल एक नवम खंड ही प्रकृत भारत देश है, बौद्धों के जम्बुद्वीप से अधिक विस्तृत है। वस्तुतः पुराणों ने "भारतवर्ष" शब्द का प्रयोग कहीं तो बृहत्तर भारत के विस्तृत अर्थ में किया है और कहीं केवल भारत देश के अर्थ में भी। इस प्रकार पौराणिक विवरणों में पर्याप्त भ्रामकता है और अव्यावहारिकता भी। इसके विपरीत पालि के जम्बुद्वीप का भारतीय उप-महाद्वीप के अर्थ में, जैसा कि वह बुद्ध के जीवन-काल में विदित था, एक सुनिश्चित अर्थ है और उसमें भौगोलिक व्यावहारिकता भी है। जैन ग्रन्थ 'जम्बुदीवपण्णत्ति' (१-१०) में जम्बुद्वीप (प्राकृत जम्बुदीव) को एक महाद्वीप माना गया है और (पुराणों के ९ वर्षों के स्थान पर) उसके सात वर्षों या क्षेत्रों का वर्णन किया गया है, यथा भरह, हेमवय, हरि, विदेह, रम्मग, हेरण्णवय और एरावय। जैन परम्परा के अनुसार जम्बुद्वीप के मध्य में मेरु (सुमेरु) पर्वत स्थित है। इससे विदित होता है कि जम्बुद्वीप को यहाँ प्रायः एशिया के समान माना गया है। इसके विपरीत पालि का जम्बुद्वीप सुमेरु (सिनेरु) पर्वत के दक्षिण में स्थित है और उससे स्पष्ट अभिप्राय भारत-देश से लिया गया है। जैन परम्परा में जम्बुद्वीप के अंगभूत भरहवास (भारतवर्ष) के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह चुल्ल हिमवन्त के दक्षिण में और पूर्वी और पश्चिमी समुद्रों के बीच में स्थित है। अतः जैन साहित्य के इस भरहवास (भारतवर्ष) से ही हम साधारणतः पालि के जम्बुद्वीप को मिला सकते हैं। बौद्ध संस्कृत साहित्य में जम्बुद्वीप या भारत का एक नाम इन्द्रवर्द्धन भी है। जम्बुद्वीप का चीनी रूपान्तर "चम्पु" है और इस नाम का प्रयोग चीनी यात्री यूआन् चुआङ्ग ने किया है। देखिये थॉमस वाटर्स: औन् यूआन् चुआङ्गस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३२-३३। तिब्बती परम्परा में भी भारत के लिए जम्बुद्वीप नाम का प्रयोग मिलता है। देखिए विन्टरनित्ज़ : हिस्ट्री ऑव इण्डियन लिटरेचर, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३६३, पद-संकेत ३। हमारा देश द्वितीय शताब्दी ईसवी-पूर्व चीनियों को "युआन्-तु" या "यिन्-तु" अर्थात् हिन्दु या शिन्तु (सिन्धु)

विशेषत: महावंस[1] और चूलवंस,[2] में जम्बुद्वीप को सीहल दीप (सिंहल द्वीप) और

के नाम से विदित था। बाद में वे इसका उच्चारण "थियन्-तु" करने लगे। देखिये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया (सुरेन्द्रनाथ मजूमदार-सम्पादित) पृष्ठ ११। ऐसा माना जाता है कि चीनी शब्द "यिन्-तु" या "युआन्-तु" संस्कृत शब्द "इन्दु-देश" का रूपान्तर है। वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १३२। चीनी लोग भारतवर्ष को "इन्दु-देश" क्यों कहते थे, इसका कारण बताते हुए यूआन् चुआङ ने लिखा है कि बुद्ध रूपी सूर्य के अस्त हो जाने के बाद इस देश के महात्मा ही सारे संसार के देशों के लिए इन्दु (चन्द्रमा) का काम करते हैं, जब कि अन्य देशों में जहाँ-तहाँ तारागणों के समान महापुरुष उत्पन्न होते रहते हैं। देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १३८। यूआन् चुआङ ने भारतवर्ष के लिये जम्बुद्वीप (चीनी चम्पु) और "यिन्-तु", दोनों नामों का प्रयोग किया है। वहीं जिल्द पहली, पृष्ठ ३२-३३, १४०, पहले शब्द को भारतीय उप-महाद्वीप के अर्थ में और दूसरे को सिन्धु नदी से परे देश के अर्थ में, जिसका विभाजन उसने पाँच प्रदेशों के रूप में किया है, यथा, उत्तर, पूर्व, पश्चिम, मध्य और दक्षिण यिन्-तु। भारतवर्ष के प्राचीन चीनी नामों के विस्तृत विवेचन के लिये देखिए वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया : जिल्द पहली, पृष्ठ १३१-१४०। चूँकि मगध देश बौद्धों का पवित्रतम स्थान था, अतः कभी-कभी चीनी लोग सम्पूर्ण भारतवर्ष के लिए "मगध" नाम का भी प्रयोग करते थे। कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ १२। यह उल्लेखनीय है कि सम्राट् शीलादित्य (हर्षवर्द्धन) ने तत्कालीन चीनी सम्राट् के पास भेंटें भेजते हुए अपना परिचय "मगध" के राजा के रूप में ही दिया था। वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १३२। भारतीय समाज में ब्राह्मणों की प्रमुखता होने के कारण चीनी लोग "ब्राह्मण-देश" (पो-लो-मेन् कु-ओ) के नाम से भी भारतवर्ष को जानते थे। वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविलस इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १४०। यह ध्यान में रखना आवश्यक है कि वैदिक सूत्र-ग्रन्थों का आर्यावर्त (आर्य देश) और मनुस्मृति का मध्य-देश, जो दोनों प्रायः समान हैं, जम्बुद्वीप के

तम्बपण्णि दीप (ताम्रपर्णि द्वीप) से, जिन दोनों से तात्पर्य वर्तमान लंकाद्वीप से है, अलग देश बताया गया है। "जम्बुद्वीप" नाम पड़ने का यह कारण बताया गया है कि यहाँ जम्बु (जामुन) नामक वृक्ष, जिसके बृहदाकार का अतिशयोक्ति-मय वर्णन किया किया गया है, अधिकता से पाया जाता है।[५] इसी कारण इसे "जम्बुसण्ड"[६] या "जम्बुवन"[७] भी कहा गया है।

जम्बुद्वीप के रूप में भारत-सम्बन्धी बौद्ध विचार को समझने के लिए और उसकी सीमा, विस्तार और आकार के सम्बन्ध में ठीक धारणा निर्माण करने के लिये यह आवश्यक है कि पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में निहित

अंगभूत हैं। मिलाइये वाटर्स: औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १३२।

२. जम्बुदीपे येव बुद्धा निब्बत्तन्तीति। ज्ञातकट्ठकथा, पठमो भागो, पृष्ठ ३८ (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी), मिलाइये बुद्धवंस-अट्ठकथा, पृष्ठ ४८; पपञ्चसूदनी (मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ९१७; महाबोधिवंस, पृष्ठ १२; अभिधर्मकोश (राहुल सांकृत्यायन द्वारा सम्पादित) ४।१०९।

३. ५।१३; १४।८, देखिए परिच्छेद १५ भी।

४. ३७।२१६, २४६।

५. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९२; परमत्थजोतिका (सुत्त-निपात की अट्ठकथा), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४४३; विसुद्धिमग्ग ७।४२ (धर्मानन्द कोसम्बी द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण); समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ११९; मिलाइये अट्ठसालिनी, पृष्ठ २४१ (देवनागरी संस्करण); महावंस-अट्ठकथा, पृष्ठ ३३१; महाभारत में "जम्बुद्वीप" नाम की व्याख्या के लिये देखिये भीष्मपर्व ७।१९-२६।

६. जम्बुसण्डस्स इस्सरो, सेल-सुत्त (सुत्त-निपात), थेरगाथा, गाथा ९१४; मिलाइये परमत्थजोतिका (सुत्त-निपात की अट्ठकथा), जिल्द पहली, पृष्ठ १२१; अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ ९०।

७. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४२३।

सृष्टि-विज्ञान सम्बन्धी बौद्ध विचार को हम देखें। बौद्ध परम्परा के अनुसार, जिसका उल्लेख विशेषतः अंगुत्तर-निकाय,[१] कई जातकों,[२] मनोरथपूरणी,[३] अट्ठसालिनी,[४] सारत्थप्पकासिनी[५] और विसुद्धिमग्ग[६] में हुआ है तथा जिसे बौद्ध संस्कृत साहित्य का भी समर्थन प्राप्त है[७] और यूआन् चुआङ ने भी अंशतः जिसका अनुवर्तन किया है,[८] इस महाशून्य रूपी अन्तरिक्ष में अनन्त चक्कवाल (चक्रवाल) या गोलाकार सृष्टियाँ, जिन्हें लोक-धातुएँ, भी कहा गया है, अवस्थित हैं। "विसुद्धिमग्ग" में कहा गया है "अनन्त चक्रवालों और अनन्त लोक-धातुओं को भगवान् (बुद्ध) ने अपने अनन्त बुद्ध-ज्ञान से जाना, विदित किया, समझा।"[९] प्रत्येक चक्रवाल का विस्तार बारह लाख, तीन हजार, चार सौ पचास योजन है और प्रत्येक का अपना अलग-अलग सूर्य है, जो उसे प्रकाश देता है। हमारी पृथ्वी, जो इन्ही अनन्त चक्रवालों में से एक है, चौबीस नहुत अर्थात् २ लाख ४० हजार योजन (एक नहुत बराबर दस हजार) मोटी है और चारों ओर समुद्र से घिरी हुई है।[१०] यह चार महाद्वीपों (चतुन्नं महादीपानं) से युक्त

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ २२७; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ५९।

२. देखिये विशेषतः जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३१३; जिल्द तीसरी, पृष्ठ २३९, ४८१; जिल्द छठी, पृष्ठ ३, ४३२।

३. पृष्ठ ४४०।

४. पृष्ठ २४०–२४३ (देवनागरी संस्करण)।

५. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४४२।

६. ७।४०-४५ (पृष्ठ १३९-१४०)।

७. देखिये विशेषतः दिव्यावदान, पृष्ठ २१४।

८. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०-३५।

९. अनन्तानि चक्कवालानि अनन्ता लोकधातुयो भगवा अनन्तेन बुद्धञाणेन अवेदि अञ्ञासि पटिविज्झि। विसुद्धिमग्ग ७।४४।

१०. सागरेण परिक्खित्तं चक्कं च परिमण्डलं। जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४८४; मिलाइये वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ २१४।

है, जिनके नाम हैं जम्बुदीप (जम्बुद्वीप), पुब्बविदेह (पूर्वविदेह), उत्तरकुरु और अपरगोयान। ये चारों महाद्वीप सुमेरु (सिनेरु) पर्वत के चारों ओर अवस्थित हैं।[१] सुमेरु पर्वत की ऊँचाई १६८ योजन बताई गई है। सुमेरु के चारों ओर सात पर्वत-श्रेणियाँ फैली हुई है, जिनके नाम हैं, युगन्धर, ईसधर, करवीक, सुदस्सन, नेमिन्धर, विनतक और अस्सकण्ण।[२] पूर्व विदेह (पुब्बविदेहो) के सम्बन्ध में बताया गया है कि यह सुमेरु पर्वत के पूर्व में स्थित है। "पुरतो विदेहे पस्स।"[३] इसका विस्तार सात हजार योजन बताया गया है। उत्तरकुरु सुमेरु के उत्तर में अवस्थित है। इसका विस्तार आठ हजार योजन है और यह समुद्र से घिरा है।[४] उत्तरकुरु को दीपवंस[५] में "कुरु दीप" (कुरु द्वीप) कहकर पुकारा गया है। अपरगोयान (अपरगोयानं) जिसे महावस्तु[६] मे अपरगोदानिक या अपरगोदानिय, ललितविस्तर[७] में अपरगोदानीय और तिब्बती दुल्व में अपरगौदनि कहा गया है[८], सुमेरु के पश्चिम में (गोयानिये च पच्छतो-विधुरपण्डित जातक) अवस्थित बताया गया है। इसका विस्तार ७००० योजन है। "सत्तयोजनसहस्सप्प-

---

१. महाभारत के भीष्म-पर्व में भी सुमेरु के चारों ओर स्थित चार महाद्वीप बताये गये हैं, जिनमें से दो उत्तरकुरु और जम्बुद्वीप, के नाम तो पालि परम्परा के समान हैं, परन्तु पालि के अपरगोयान के स्थान पर केतुमाल और पुब्बविदेह के स्थान पर भद्राश्व नाम का प्रयोग किया गया है।

२. युगन्धरो ईसधरो करवीको सुदस्सनो।
नेमिन्धरो विनतको अस्सकण्णो गिरि ब्रहा।
एते सत्त महासेला सिनेरुस्स समन्ततो। विसुद्धिमग्ग ७।४२।

३. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ २७८ (विधुर पण्डित जातक)

४. सुमंगलविलासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६२३; बुद्धवंस-अट्ठकथा, पृष्ठ ११३।

५. पृष्ठ १६।

६. जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५९, ३७८।

७. पृष्ठ १९।

८. देखिये रॉकहिल : दि लाइफ ऑव दि बुद्ध, पृष्ठ ८४।

माणं अपरगोयानं" ।[१] जम्बुद्वीप सुमेरु पर्वत के दक्षिण में अवस्थित है और इसका विस्तार दस हजार योजन बताया गया है। "दससहस्सयोजनप्पमाणं जम्बुदीपं" ।[२] इस दस सहस्र योजन विस्तार में से चार सहस्र योजन विस्तार समुद्र का है, तीन सहस्र हिमालय पर्वत का और शेष तीन सहस्र योजन में मनुष्य बसे हुए हैं[३]। यह भी कहा गया है कि चार महाद्वीपों में से प्रत्येक पाँच-पाँच सौ लघु द्वीपों से घिरा हुआ है। "एकमेको 'चेत्थ महादीपो पंचसत-पंचसत-परित्तदीप-परिवारो"[४]। यह ध्यान में रखना चाहिए कि दीप (सं० द्वीप) से तात्पर्य यहाँ चारों ओर जल से घिरे टापू से नहीं है, बल्कि केवल दो ओर जल से घिरे (द्वीप) स्थल अथवा दोआब से है[५]। चारों महाद्वीपों की आपेक्षिक स्थिति के सम्बन्ध में पालि विवरणों में कहा गया है कि "जब जम्बुद्वीप में सूर्योदय होता है, तो अपरगोयान में रात का बीच का पहर होता है। अपरगोयान में जब सूर्यास्त होता है, तो जम्बुद्वीप में अर्धरात्रि होती है। अपरगोयान में जब सूर्योदय होता है, तो जम्बुद्वीप में दोपहर होता है, पूर्वविदेह में सूर्यास्त और उत्तरकुरु में अर्द्धरात्रि।"[६]

---

१. सुमंगलविलासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६२३; मिलाइये जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ २७८; परमत्थजोतिका (सुत्त-निपात की अट्ठकथा), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४४३।

२. सुमंगलविलासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६२३; मिलाइये "जम्बुदीपो नाम महा, दसयोजनसहस्सप्परिमाणो"। जातकट्ठकथा, पृष्ठ ३८ (भारतीय ज्ञान-पीठ, काशी)।

३. परमत्थजोतिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४३७; उदान-अट्ठकथा, पृष्ठ ३००; मिलाइये महाबोधिवंस, पृष्ठ ७३।

४. विसुद्धिमग्ग ७।४४; मिलाइये परमत्थजोतिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४४२।

५. मिलाइये कनिंघम : एन्शियण्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ सैंतीस (भूमिका)।

६. मललसेकर : डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ११७।

चारों महाद्वीपों के उपर्युक्त पालि विवरण आधुनिक भौगोलिक परिभाषा में समझने में कठिन जान पड़ते हैं। फिर भी उनमें बहुत कुछ स्पष्ट सूचना भी है, जिसके आधार पर हम उनकी आधुनिक पहचान का कुछ अनुमान कर सकते हैं। उदाहरणतः, जम्बुद्वीप के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह सुमेरु पर्वत के दक्षिण में है और उसमें हिमालय पर्वत सम्मिलित है। चौरासी हजार चोटियों से युक्त हिमालय (हिमवा) जम्बुद्वीप में है।[1] इस बात से स्पष्ट होता है कि पालि तिपिटक में जिस जम्बुद्वीप का उल्लेख किया गया है, वह हिमालय के दक्षिण में अवस्थित है। महा-उम्मग्ग-जातक में कहा गया है कि जम्बुद्वीप सागर से परिवृत (परिब्बत) है। इसका अर्थ यह है कि सम्पूर्ण दक्षिण भारत, जो उस समय की तरह आज भी सागरसंवृत है, पूर्व में बंगाल की खाड़ी और पश्चिम में अरब सागर से घिरा है, जम्बुद्वीप के अंग के रूप में पालि परम्परा को ज्ञात था। परन्तु उसका साक्षात् अवेक्षण से प्राप्त ज्ञान उसे था, ऐसा नहीं कहा जा सकता। जैसा हम पहले देख चुके हैं, बुद्ध के जीवन-काल में, जैसा निकायों मे प्रकट होता है, दक्षिणापथ के रूप में दक्षिण भारत के केवल उस भाग का ज्ञान प्रारम्भिक पालि परम्परा को था, जो गोदावरी और अस्सक-अलक जनपदों से ऊपर का था। इस प्रकार अवन्ती जनपद की उज्जेनी (उज्जयिनी) और माहिस्सति (माहिष्मती) नगरियों से वह सुपरिचित थी। "अपदान" में दक्षिण भारत के अन्धका (आन्ध्र), सबरा (शबर), दमिला (तमिल) और कोलका (चोल) जैसे लोगों के उल्लेख अवश्य है और इसी प्रकार "जातक" में दमिल रट्ठ और चोल रट्ठ के भी। परन्तु गोदावरी से परे दक्षिणी प्रदेश के साथ सम्पर्क के साक्ष्य बुद्ध के जीवन-काल में नहीं मिलते। अवन्ति-दक्षिणापथ में भी बुद्ध के जीवन-काल में बहुत कम भिक्षु थे, ऐसा विनय-पिटक[2] में स्पष्टतः कहा गया है। हाँ, अशोक के काल में महारट्ठ या महाराष्ट्र (शिलालेख पंचम और त्रयोदश) के साथ-साथ दक्षिण भारत के सत्यपुत्र, केरलपुत्र, चोल और पाण्ड्य (शिलालेख

---

१. परमत्थजोतिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४४३; समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ११९; मिलाइये विसुद्धिमग्ग ७।४२।

२. पृष्ठ २१३ (हिन्दी अनुवाद)

द्वितीय) जैसे प्रदेश भी सुविज्ञात थे, ऐसा उसके अभिलेखों से प्रकट होता है। इसी प्रकार पालि तिपिटक के प्रथम चार निकायों में लङ्का का उल्लेख नहीं है, परन्तु अशोक के समय में वह एक सुविज्ञात द्वीप था, जहाँ उसके प्रव्रजित पुत्र और पुत्री धर्म-प्रचारार्थ गये थे। "महावंस"[१] में कहा गया है कि राजकुमार विजय ने उसी दिन लङ्का में पैर रक्खे जिस दिन भगवान् बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ। इससे यह ज्ञात होता है कि लङ्का में भारतीयों का आना-जाना भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण या उसके कुछ समय बाद और अशोक के समय के पूर्व कभी आरम्भ हुआ। "जातक" के आधार पर मालूम पड़ता है कि ताम्रपर्णि द्वीप के साथ भारत के व्यापारिक सम्बन्ध बुद्ध-काल में भी थे। परन्तु समुद्री मार्ग से ही आना जाना होता था, दक्षिण भारत में होकर स्थलीय मार्ग से जाने का वहाँ भी उल्लेख नहीं है।

मज्झिम-निकाय के उपालि-सुत्तन्त में कलिंगारण्य का उल्लेख है। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त में कलिंग राज्य और उसकी राजधानी दन्तपुर का उल्लेख है और इसी प्रकार दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त तथा सयुत्त-निकाय के ओकिलिनी-सुत्त में कलिंग राजा के देश का उल्लेख आया है। कई जातक-कथाओं में भी कलिंग राज्य और उसकी राजधानी दन्तपुर का उल्लेख है। जातकट्ठकथा में उत्कल (उक्कल) जनपद से मध्यदेश की ओर आते हुए दो व्यापारियों (तपस्सु और भल्लिक) का उल्लेख है। यद्यपि सोलह महाजनपदों की पालि सूची में वंग जनपद का उल्लेख नहीं है, परन्तु अंगुत्तर-निकाय[२] में एक अन्य जगह उसका उल्लेख है और इसी प्रकार खुद्दक-निकाय के ग्रन्थ महानिद्देस[३] में भी। संयुत्त-निकाय के उदायि-सुत्त, सेदक-सुत्त और जनपद-सुत्त में सुम्भ (सुह्म) जनपद का उल्लेख है, जिसे हम आधुनिक हजारीबाग और सथाल परगने के जिलों से मिला सकते हैं। इस प्रकार ऊपर के विवेचन से स्पष्ट है

---

१. ६।४७ (हिन्दी अनुवाद)

२. जिल्द पहली, पृष्ठ २१३।

३. जिल्द पहली, पृष्ठ १५४; मिलाइये मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ ३५१। (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

कि पूर्व में वंग और उसके नीचे सुह्म जनपद तो पालि परम्परा को विदित थे ही, सुह्म के नीचे उत्कल (उक्कल) और उससे भी नीचे महानदी और गोदावरी के बीच का प्रदेश, जो कलिंग कहलाता था, उसे विदित था। कलिंग ठीक अन्धक राज्य के उत्तर में था, जिसके सम्बन्ध में पालि परम्परा की अभिज्ञता के सम्बन्ध में हम पहले कह चुके हैं।

जहाँ तक भारत या जम्बुद्वीप की पश्चिमी सीमा का सम्बन्ध है, पालि तिपिटक में 'अपरन्त' (अपरान्त) का वर्णन तो है ही, सुसन्धि जातक में भरुकच्छ (भड़ौंच) का स्पष्टतः उल्लेख है और रायस डेविड्स् के मतानुसार भरुकच्छ की ओर संकेत विनय-पिटक में भी है,[1] (यद्यपि स्पष्टतः भरुकच्छ नाम का निर्देश यहाँ नहीं आया है)। भगवान बुद्ध के कई शिष्य, जैसा हमें थेरगाथा की अट्ठकथा से विदित होता है, भरुकच्छ के निवासी थे। "उदान"[2] में सुप्पारक (वर्तमान सोपारा) का उल्लेख है। "अपदान"[3] में सुरट्ठ, अपरन्तक और सुप्पारक जनपदों का उल्लेख है। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त में सोवीर देश का वर्णन है और उसकी राजधानी रोरुक नामक नगरी बताई गई है। सूनापरान्त जनपद (कोणकन प्रान्त या ठाणा और सूरत जिलों के कतिपय अंश) बुद्ध के जीवन-काल मे न केवल ज्ञात था, बल्कि बुद्ध-शिष्य स्थविर पूर्ण (जो वहाँ के निवासी थे और पहले व्यापारार्थ श्रावस्ती तक आते-जाते थे) वहाँ धर्म प्रचार करने के लिए भी गये थे, जिसका मज्झिम-निकाय के पुण्णोवाद-सुत्तन्त और सयुत्त-निकाय के पुण्ण-सुत्त मे उल्लेख है। सिन्धु-सोवीर देश के साथ व्यापारिक सम्बन्धों का उल्लेख हम तृतीय और पञ्चम परिच्छेदों में करेंगे।

जम्बुद्वीप की उत्तर-पश्चिमी सीमा के सम्बन्ध में हमें यह जानना चाहिए कि गन्धार और कम्बोज नामक जनपद जम्बुद्वीप के सोलह महाजनपदों में सम्मिलित बताये गये हैं, जिसका आधुनिक तात्पर्य यह होगा कि अफगानिस्तान और कश्मीर का काफी भाग उस समय जम्बुद्वीप की सीमा के अन्तर्गत माना जाता था। जैसा

---

१. बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ २३ (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०)
२. पृष्ठ ११ (हिन्दी अनुवाद)
३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३५९।

पुक्कुसाति और महाकप्पिन की कथाओं से[1] तथा बुद्धकालीन व्यापारिक सम्बन्धों के विवरण से[2] स्पष्ट होगा, गन्धार और कम्बोज जनपद व्यापारिक सम्बन्धों द्वारा मध्यदेश और उसके श्रावस्ती नगर के साथ संयुक्त थे और बुद्ध की कीर्ति उनके जीवन-काल में ही इन जनपदों तक पहुँच चुकी थी, जहाँ से कुछ संवेगापन्न व्यक्ति उनके दर्शन करने मगध देश तक आये भी थे। पुक्कुसाति और महाकप्पिन के अलावा सुहेमन्त नामक एक अन्य बुद्ध-शिष्य स्थविर भी सीमान्त के निवासी थे। उत्तर-पश्चिम सीमा-प्रान्त के इन जनपदों के साथ प्रत्यक्ष सम्पर्क की यह परम्परा आगे भी चलती रही। अशोक के शिलालेखों में गन्धार (शिलालेख पञ्चम) और यवन (शिलालेख पञ्चम और त्रयोदश) जनपदों का तो उल्लेख है ही, उसने अपने तेरहवें शिलालेख में सिरिया के तत्कालीन राजा अन्तियोकस को अपना पड़ोसी राजा (प्रत्यन्त नरपति) बताया है। अतः यह निश्चित है कि अफगानिस्तान और बलोचिस्तान उसके राज्य में, जो उस समय जम्बुद्वीप कहलाता था, सम्मिलित थे। इस प्रकार उपर्युक्त विवेचन के आधार पर हम कह सकते हैं कि बुद्ध-कालीन जम्बुद्वीप, जैसा कि वह पालि तिपिटक को ज्ञात था, उत्तर में हिमालय (हिमवा) से लेकर दक्षिण में समुद्र-तट तक (यद्यपि केवल गोदावरी के तट तक के स्पष्ट वर्णन निकायों में प्राप्त हैं और उससे परे दक्षिण भारत के साथ सम्पर्क के साक्ष्य केवल अशोक के युग में मिलते हैं) और पूर्व और दक्षिण-पूर्व में वंग, सुह्म, उत्कल और कलिंग से लेकर पश्चिम में सिन्धु-सोवीर और उत्तर-पश्चिम में अफगानिस्तान और कश्मीर तक फैला हुआ प्रदेश माना जाता था। कई विद्वानों ने पौराणिक जम्बुद्वीप का उल्लेख करते हुए उसके प्रभूत विस्तार का उल्लेख किया है। इस प्रकार डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने पौराणिक जम्बुद्वीप को समग्र एशिया से मिलाया है।[3] डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने भी उसके विस्तृत रूप का उल्लेख किया है।[4] इसी प्रकार सुरेन्द्रनाथ मजूमदार ने पौराणिक

---

१. देखिये आगे तृतीय परिच्छेद में गन्धार और कम्बोज जनपदों का विवरण।
२. देखिये आगे पाँचवाँ परिच्छेद।
३. इण्डियन एण्टीक्वेरी, जिल्द बासठवीं, पृष्ठ १७०।
४. स्टडीज इन इण्डियन एंटिक्विटीज, पृष्ठ ७१।

जम्बुद्वीप के अंगभूत भारतवर्ष के नव खण्डों को वृहत्तर भारत के नव खण्ड बताने का प्रयत्न किया है और उसके केवल एक खण्ड या द्वीप (कुमारी द्वीप) को ही वास्तविक भारत देश माना है।[1] हमें यह ध्यान रखना चाहिए कि इस अति विस्तृत पौराणिक जम्बुद्वीप का पालि तिपिटक के जम्बुद्वीप से कोई सम्बन्ध नहीं है। पालि परम्परा के जम्बुद्वीप की सीमायें भारतीय उप-महाद्वीप के रूप में अत्यन्त सुनिश्चित है, जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं।

जम्बुद्वीप के आकार के सम्बन्ध में पालि तिपिटक में जो वर्णन मिलता है, उससे यह स्पष्ट होता है कि जम्बुद्वीप के दक्षिण में समुद्र-तट तक का ज्ञान बुद्ध के जीवन-काल में लोगों को था। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त में "महापठवी" जिससे वहाँ जम्बुद्वीप से तात्पर्य है, उत्तर की ओर चौड़ी या विस्तृत (आयत) और दक्षिण की ओर बैलगाड़ी (शकट) के अग्र भाग (मुख) की शक्ल की कही गई है। "उत्तरेण आयत दक्खिणेन सकटमुखं"। जम्बुद्वीप के रूप में भारत के आकार का भौगोलिक दृष्टि से कितना सही वर्णन है! जम्बुद्वीप, जो उत्तर में गन्धार-कश्मीर से लेकर असम तक फैले हिमालय के कारण "आयत" है और दक्षिण में कुमारी अन्तरीप, जो पहले के समान आज भी "शकट मुख" है। यहाँ यह कह देना अनावश्यक न होगा कि पालि परम्परा का अनुसरण करते हुए ही यूआन् चुआङ ने सातवीं शताब्दी ईसवी में जम्बुद्वीप को अर्द्ध चन्द्र या "इन्दुकला" के आकार का बताया था,[2] अर्द्ध चन्द्र, जिसका व्यास उत्तर की ओर है और अर्द्धवृत्त दक्षिण की ओर। इसी प्रकार एक दूसरे चीनी लेखक ने, जिसने "फह्-के-लि-तु" नामक ग्रन्थ लिखा है, भारत देश के आकार को उत्तर मे चौड़ा और दक्षिण मे सॅकरा बताया है और

---

१. देखिये उनके द्वारा सम्पादित कनिंघम की "एन्शियण्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया" परिशिष्ट प्रथम, पृष्ठ ७४५-७५४; मिलाइये लाहा: इण्डिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स ऑव बुद्धिज़्म एन्ड जैनिज़्म, पृष्ठ १७; ज्योग्रेफीकल ऐसेज़, पृष्ठ १२०।

२. बील: बुद्धिस्ट रिकार्ड्स् ऑव दि वेस्टर्न वर्ल्ड, जिल्द पहली, पृष्ठ ७०; वाटर्स: ऑन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १४०।

विनोदपूर्वक कहा है "इस देश के निवासियों के मुख भी उसी शक्ल के हैं जिस शक्ल का उनका देश है"[१]।

जम्बुद्वीप के सम्बन्ध में पालि विवरणों में कहा गया है कि उसमें चौरासी हजार नगर हैं।[२] इसे हम एक मोटी संख्या मात्र मान सकते हैं। दीपवंस[३] और महावंस[४] में कहा गया है कि अशोक ने इनमें से प्रत्येक में एक बौद्ध विहार बनवाया। अंगुत्तर-निकाय[५] में भगवान् बुद्ध ने जम्बुद्वीप के लोगों की प्रशंसा करते हुए कहा है कि वे साहस, मानसिक जागरूकता और धार्मिक जीवन, इन तीन बातों में उत्तरकुरु और तावतिंस लोक के मनुष्यों से श्रेष्ठ होते हैं। कथावत्थु[६] में भी उनके आचरण की प्रशंसा की गई है। जम्बुद्वीप के सम्बन्ध में भगवान् ने एक भविष्यवाणी भी की थी। दीघ-निकाय के चक्कवत्ति-सीहनाद-सुत्त का उपदेश देते समय उन्होंने कहा था कि जिस समय भगवान् मेत्तेय (मैत्रेय) बुद्ध का आविर्भाव होगा, उस समय "यह जम्बुद्वीप सम्पन्न और समृद्ध होगा। ग्राम, निगम, जनपद, और राजधानी इतने संनिकट होंगे कि एक मुर्गी भी कूद कर एक स्थान से दूसरे स्थान तक पहुँच जाय। सरकंडे के वन की तरह जम्बुद्वीप मनुष्यों की आबादी से भर जायगा।" काकाति जातक में जम्बुदीप समुद्द (जम्बुद्वीप समुद्र) का उल्लेख है और कहा गया है कि उसके परे केबुक नामक नदी है,[७] जिसकी आधुनिक पहचान आज तक कोई विद्वान् नहीं कर सका है।

अब हम शेष तीन महाद्वीपों के विवरण पर आते हैं। पालि परम्परा के अनुसार चक्रवर्ती राजा चारों महाद्वीपों पर राज्य करता है। पहले वह पूर्व दिशा

---

१. देखिये कनिंघम: एन्शियण्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ १२-१३।

२. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ८४; सुत्त-निपात की अट्ठकथा (परमत्थजोतिका), जिल्द पहली, पृष्ठ ५९; मिलाइये चक्कवत्ति-सीहनाद-सुत्त (दीघ० ३।३)

३. पृष्ठ ४९।

४. ५।१७६ (हिन्दी अनुवाद); मिलाइये महाबोधिवंस, पृष्ठ १०२।

५. जिल्द चौथी, पृष्ठ ३९६।

६. पृष्ठ ९९।

७. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ९१।

में पुब्बविदेह (पूर्वविदेह) की विजय करता है, उसके बाद दक्षिण दिशा में जम्बुद्वीप पर विजय प्राप्त करने के पश्चात् वह पश्चिम में अपरगोयान और उत्तर में उत्तरकुरु की विजय-यात्रा के लिये प्रस्थान करता है।[1] अत्यन्त अज्ञात प्राचीन काल में, बल्कि कहना चाहिए कि प्रथम कल्प में ही (पठमकप्पे) चक्रवर्ती राजा मन्धाता (सं० मान्धाता) ने इसी क्रम से चारों महाद्वीपों की दिग्विजय की थी। संसार विजय करने के पश्चात् राजा मान्धाता जम्बुद्वीप में आये। उनके साथ शेष तीन महाद्वीपों से भी कुछ लोग चले आये, जो यहीं जम्बुद्वीप में बस गये। पुब्बविदेह से आने वाले लोग जिस प्रदेश में बसे, उसका नाम उन्हीं के नाम पर विदेह रट्ठं (विदेह राष्ट्र) पड़ गया। इसी प्रकार उत्तरकुरु और अपरगोयान से आने वाले लोग जिन स्थानों पर बसे, उनके नाम क्रमशः कुरु रट्ठं (कुरु राष्ट्र) और अपरन्त रट्ठं (अपरान्त राष्ट्र) पड़ गये।[2]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि पूर्व-विदेह के लोगों ने भारत के विदेह राष्ट्र को बसाया। पूर्व-विदेह महाद्वीप कहाँ था, इसके सम्बन्ध में इसके अतिरिक्त पालि विवरणों में और कोई सूचना नहीं मिलती कि वह सुमेरु पर्वत के पूर्व में स्थित था। उत्तरकालीन पुराणों में इसे पूर्व द्वीप के नाम से पुकारा गया है, जिसे आधार मानकर डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने इसे वर्तमान पूर्वी तुर्किस्तान या उत्तरी चीन बताने का प्रयत्न किया है।[3] पालि विवरणों में इसके विपरीत जाने वाली कोई बात दिखाई नहीं पड़ती।

---

१. महाबोधिवंस, पृष्ठ ७३-७४, बुद्धवंस-अट्ठकथा, पृष्ठ ११३।

२. सुमंगल विलासिनी, जिल्द दूसरी पृष्ठ ४८२; पपञ्चसूदनी जिल्द पहली, पृष्ठ ४८४; मिलाइये दिव्यावदान, पृष्ठ २१५-२१६ (मान्धातावदानम्)। मन्धातु जातक में चक्रवर्ती राजा मान्धाता की विजयों और उसकी अतृप्त अभिलाषाओं का वर्णन है। ऋग्वेद और शतपथ-ब्राह्मण में भी मान्धाता का उल्लेख है, जिसके लिए देखिये वैदिक इंडेक्स, जिल्द दूसरी पृष्ठ १३२-१३३। मान्धाता सम्बन्धी पौराणिक विवरणों के लिए देखिये पार्जिटर: एन्शियन्ट इण्डियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन, पृष्ठ २६।

३. स्टडीज इन इण्डियन एंटिक्विटीज, पृष्ठ ७५-७६।

उत्तरकुरु महाद्वीप के सम्बन्ध में जो सूचना हमें पालि विवरणों में मिलती है, वह इतने पौराणिक ढंग की है कि उसकी आधुनिक पहचान करने में हमारी अधिक सहायता नहीं करती। दीघ-निकाय के आटानाटिय-सुत्त में उत्तर-कुरु का विस्तृत विवरण हमें पौराणिक भाषा में मिलता है। उत्तरकुरु के लोगों के बारे में कहा गया है कि वे व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं रखते और न उनके अपनी अलग-अलग पत्नियाँ होती हैं। उन्हें अपने जीवन-निर्वाह के लिए परिश्रम नहीं करना पड़ता और अनाज अपने आप उग आता है। वहाँ के आदमियों का जीवन निश्चिन्त और सुखमय है। उनके राजा का नाम कुबेर है, जिसका दूसरा नाम वेस्सवण भी है, क्योंकि उसकी राजधानी का नाम विसाण है। उत्तरकुरु के प्रसिद्ध नगरों के नाम हैं, आटानाटा, कुसिनाटा, नाटापुरिया, परकुसिनाटा, कपीवन्ता, जनोघ, नवनतिया, अम्बर, अम्बखतिय और आलकमन्दा। उत्तरकुरु के निवासी यक्ष (यक्ख) कहे गये हैं। उनके देश में एक झील भी है, जिसका नाम धरणी है। इन लोगों का मंगलवती नामक एक विशाल भवन है, जहाँ वे अपनी सभाएँ करते हैं। अगुत्तर-निकाय और मज्झिम-निकाय की अट्ठकथाओं[1] में कहा गया है कि उत्तर-कुरु में एक कप्परुक्ख (कल्प वृक्ष) है, जो एक कल्प पर्यन्त रहता है। एक अन्य विवरण के अनुसार इस देश के निवासियों के घर नहीं होते और वे भूमि पर सोते हैं। इसलिये वे "भूमिसया" अर्थात् भूमि पर शयन करने वाले कहलाते है।[2] कहा गया है कि वे निर्लोभ (अममा) होते हैं, उनमें सम्पत्ति का परिग्रह नहीं होता (अप्परिग्गहा), उनकी आयु नियत होती है (नियतायुका) और वे विशेष सौजन्य से युक्त होते हैं (विसेसभुनो)। बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ 'दिव्यावदान' (पृष्ठ २१५) में भी प्रायः इन बातों को दुहराया गया है। उपर्युक्त बातों में उत्तरकुरु के लोग संस्कृत और पालि दोनों ही परम्पराओं में जम्बुद्वीप तथा अन्य महाद्वीपों के लोगों से श्रेष्ठ बताये गये हैं। आचार्य बुद्धघोष ने कहा है—"उत्तर-कुरु के मनुष्य प्राकृतिक शील के कारण सदाचार-नियमों को भंग नहीं करते"।

---

१. मनोरथपूरणी (अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा), जिल्द पहली, पृष्ठ २६४; पपञ्चसूदनी (मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ९४८।

२. थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८७-१८८।

"उत्तरकुरुकानं मनुस्सानं अवीतिक्कमो पकतिसीलं।"[१] दूसरे देशों के लोगों के लिए सदाचार के नियम उनके परम्परागत रीति-रिवाजों और स्थानीय विश्वासों पर आधारित होते हैं, परन्तु उत्तरकुरु के मनुष्य स्वाभाविक रूप से ही शीलवान् होते हैं, यही आचार्य बुद्धघोष को यहाँ कहना है। इस प्रकार पालि विवरण के अनुसार उत्तरकुरु के मनुष्य प्रारम्भिक युग के सरल और नैसर्गिक रूप से शीलवान् मनुष्य थे, जो व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं रखते थे, सादा और सुखी जीवन बिताते थे और जो स्वस्थ और चिरंजीवी होते थे।

पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में उत्तरकुरु द्वीप के सम्बन्ध में अनेक निश्चित विवरण भी मिलते हैं, जिनसे विदित होता है कि वह एक दूरस्थ किन्तु निश्चित देश के रूप में बुद्ध और उनके शिष्यों को विदित था। सोणनन्द जातक में उसे स्पष्टतः हिमालय के उत्तर में स्थित बताया गया है। भगवान् बुद्ध अनेक बार उत्तरकुरु में भिक्षाचर्या करने के लिए गये, ऐसा उल्लेख है। विनय-पिटक में कहा गया है कि तीन जटिल साधुओं को बुद्ध-धर्म में विनीत करने के लिए जब भगवान् उरुवेला में गये तो उस समय उरुवेल काश्यप एक महान् यज्ञ कर रहा था और उसकी आन्तरिक इच्छा यह थी कि महाश्रमण बुद्ध वहाँ उस समय न रहें, क्योंकि इससे उसे अपनी प्रतिष्ठा जाने का भय था। उसकी यह इच्छा देखकर भगवान् उत्तरकुरु चले गये, जहाँ उन्होंने भिक्षा की और अनोतत्त दह (मानसरोवर) पर भोजन कर वहीं दिन का विहार किया।[२] भगवान् बुद्ध ही नहीं, अन्य अनेक भिक्षु भी उत्तरकुरु गये, ऐसे अनेक वर्णन मिलते हैं।[३] एक बार जब वेरंजा मे अकाल पड़ा तो स्थविर महामोग्गल्लान ने भगवान् से प्रार्थना की कि वे

---

१. विसुद्धिमग्ग १।४१।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९१; मिलाइये धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २२२; अट्ठसालिनी, पृष्ठ १४ (देवनागरी संस्करण); महावंस १।१८ (हिन्दी अनुवाद)।

३. देखिये जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३१६; जिल्द छठी, पृष्ठ १००; पपञ्चसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३४०; परमत्थजोतिका (सुत्त-निपात की अट्ठकथा), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४२०।

उत्तरकुरु में चलें। "साधु भन्ते, सब्बो भिक्खुसंघो उत्तरकुरुं पिण्डाय गच्छेय्याति।"[1] दीर्घायु उपासक के पिता राजगृहवासी जोतिक (ज्योतिष्क) की पत्नी उत्तरकुरु की बताई गई है।[2] अनोतत्त दह पर अशोक के काल तक स्थविरों के जाने के उदाहरण मिलते हैं।[3]

ज़िमर ने उत्तरकुरु को कश्मीर बताया है[4]। परन्तु यह बात पालि साहित्य में निर्दिष्ट उत्तरकुरु के सम्बन्ध में ठीक नहीं जान पड़ती। जैसा हम पहले देख चुके हैं, पालि विवरणों में उत्तरकुरु को सुमेरु पर्वत के उत्तर में बताया गया है और कहा गया है कि वह समुद्र से घिरा है। यह बात कश्मीर के सम्बन्ध में ठीक नहीं बैठती। ऐतरेय-ब्राह्मण (८।१४।४) में कहा गया है कि उत्तरकुरु हिमालय के परे है। "परेण हिमवन्तं" और वाल्मीकि-रामायण (४।४३, ५६) में कहा गया है कि उसके उत्तर में समुद्र है "उत्तरः पयसां निधिः"। ये दोनों बातें पालि विवरण से मेल खाती हैं। जिस समुद्र से उत्तरकुरु घिरा है उसे हम आर्कटिक महासागर ही मान सकते हैं। इस प्रकार डा० काशीप्रसाद जायसवाल ने जो उत्तरकुरु को वर्तमान साइबेरिया से मिलाया है[5], उसे हम ठीक मान सकते हैं। इसी प्रकार का मत डा० हेमचन्द्र रायचौधरी का भी है।[6] डा० मललसेकर का कहना है कि पालि का उत्तरकुरु प्रायः ऋग्वेद के उत्तरकुरु के समान ही है।[7] अतः हम उपर्युक्त पहचान को आसानी से प्रामाणिक मान सकते

---

१. विनयपिटक, पाराजिक पालि, पृष्ठ १० (भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित)।

२. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द चौथी, पृष्ठ २०९।

३. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ४२; महावंस ५।२४ (हिन्दी-अनुवाद); मिलाइये दिव्यावदान, पृष्ठ ३९९; वाटर्स: औन् युआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३५।

४. देखिये वैदिक इण्डेक्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ८४।

५. इण्डियन एंटिक्वेरी, जिल्द बासठ, पृष्ठ १७०।

६. स्टडीज इन इण्डियन एंटिक्विटीज, पृष्ठ ७१।

७. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ३५६।

हैं। बल्कि कुछ बातें तो इस पहचान की आश्चर्यजनक रूप से विचारोत्तेजक ही हैं। पालि विवरणों में उत्तरकुरु के लोगों को लोभ और व्यक्तिगत सम्पत्ति से मुक्त बताया गया है। उन्हें स्वस्थ, निश्चिन्त और चिरायु बताया गया है और उनके नैसर्गिक शील की प्रशंसा की गई है। इससे तो यही प्रकट होता है कि उत्तरकुरु के लोगों में एक प्रकार का प्रारम्भिक साम्यवादी समाज प्रचलित था। क्या वे सचमुच आधुनिक साइबेरिया के लोगों के पूर्वज थे?

अपरगोयान, जैसा हम पहले कह चुके है, सुमेरु पर्वत के पश्चिम में स्थित था। इसके निवासियों के सम्बन्ध में भी यह कहा गया है कि उनके घर नहीं होते और वे भूमि पर शयन करते हैं।[1] "अपरगोयान" का चीनी रूपान्तर यूआन् चुआङ ने "निउ-हुओ" किया है, जिसका एक संस्कृत प्रतिरूप "अपरगोधन", "अपरगोदान" या "अपरगोधान" भी होता है, जिससे यह निष्कर्ष निकाला गया है कि इस देश में सम्भवतः गाय ही विनिमय का साधन मानी जाती थी।[2] डा० रायचौधरी ने अपरगोयान को वर्तमान पश्चिमी तुर्किस्तान से मिलाया है[3], जिससे हम सहमत हो सकते हैं।

अब हम जम्बुद्वीप के प्रादेशिक विभाग पर आते हैं। पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में हमें जम्बुद्वीप के प्रायः तीन प्रकार के प्रादेशिक विभाजन मिलते हैं। पहला विभाजन सोलह महाजनपदों के रूप में है, जिसका विवेचन हम तीसरे परिच्छेद में करेंगे। दूसरा विभाजन तीन मंडलों के रूप में है, जिनके नाम हैं, महामंडल, मज्झिम मंडल, और अन्तिम मंडल या अन्तो मंडल। यह विभाजन भिक्षुओं की चारिकाओं की सुविधा के लिए किया गया था, जिसका अनुगमन स्वयं भगवान् बुद्ध भी करते थे। किस समय प्रारम्भ करके कितने दिनों में उक्त तीनों प्रदेशों की यात्रा समाप्त करनी चाहिए, इसका पूरा विवरण दिया गया है। समन्तपासादिका में कहा गया है कि भगवान् महापवारणा (आश्विन पूर्णिमा)

---

१. थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८७-१८८।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३३।

३. स्टडीज इन इण्डियन एंटिक्विटीज़, पृष्ठ ७५।

के दिन निकल कर महामंडल के ग्राम, निगमों आदि में चारिका करते हुए नौ मास में अपनी यात्रा को समाप्त करते थे। महामंडल का विस्तार यहाँ ९०० योजन दिया गया है। मज्झिम मंडल, जिसे ही मध्य देश कहा जाता है, विस्तार में ६०० योजन था और इसकी यात्रा में भी भगवान् को नौ मास ही लगते थे। अन्तिम मंडल या अन्तो मंडल का विस्तार ३०० योजन था और इस मंडल की यात्रा करने में भगवान् को केवल सात मास लगते थे।[१] बाद के साहित्य में पाचीन, अवन्ती और दक्खिणापथ, इन तीन मण्डलों का भी उल्लेख मिलता है। तीसरा विभाजन, जो हमें पालि साहित्य में मिलता है, जम्बुद्वीप के पाँच प्रदेशों के रूप में है, यथा, (१) मज्झिम देस, (२) पुब्ब, पुब्बन्त, पाचीन या पुरत्थिम देस, (३) उत्तरापथ, (४) अपरन्त (सं० अपरान्त), और (५) दक्खिणापथ। यद्यपि पालि तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओं में इस विभाजन का स्पष्टतः उल्लेख नहीं है, परन्तु बौद्ध परम्परा को यह विभाजन आदि से ही ज्ञात था और उसने इसका आश्रय लिया है, यह इस बात से ज्ञात होता है कि बीच के प्रदेश को उसने मज्झिम देस (मध्यदेश) कहकर पुकारा है और बाकी चार दिशाओं के अनुसार शेष प्रान्तों को क्रमशः पुब्ब या पाचीन (पूर्व), उत्तरापथ (उत्तर), अपरन्त (पश्चिम) और दक्खिणापथ (दक्षिण) कहकर पुकारा है। यह कहना यहाँ अप्रासंगिक न होगा कि चीनी यात्रियों की परम्परा में जो भारत के पाँच प्रदेशों अर्थात् उत्तरी, पश्चिमी, मध्य, पूर्वी और दक्षिणी भारत का उल्लेख किया गया है,[२] और जिसका अनुगमन यूआन् चुआङ् ने भी अपने यात्रा-विवरण में किया है,[३] वह सम्भवतः इसी बौद्ध परम्परा पर आधारित है। भारतीय साहित्य के अन्य अंगों में भी उपर्युक्त पाँच प्रकार के वर्गीकरण का उल्लेख पाया जाता है।[४] चूंकि बुद्ध-

---

१. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ १९७।

२. देखिये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ११-१४।

३. देखिये बील : बुद्धिस्ट रिकार्ड्स् ऑव दि वैस्टर्न वर्ल्ड, जिल्द पहली, पृष्ठ ७०; वाटर्स : औन् यआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १४०।

४. अथर्ववेद (३।२७, ४।४०, १२।३ और १९।१७) में इस विभाजन की स्वीकृति है और शतपथ-ब्राह्मण (१।७।३।८) में 'प्राच्य' तथा वहीं ११।४।१।

कालीन भूगोल के विवेचन में यह विभाजन ही सर्वाधिक वैज्ञानिक है, अतः हम यहाँ इसका ही आश्रय लेंगे।

पालि तिपिटक में मज्झिम देस को जम्बुद्वीप का सर्वश्रेष्ठ प्रदेश बताया गया है। जम्बुद्वीप में जन्म लेने का संकल्प करने के पश्चात् बोधिसत्व उसके प्रदेशों के विषय में सोचते हुए मध्यम देश को ही अपनी जन्मभूमि के रूप में चुनते हैं। "किस प्रदेश में बुद्ध जन्म लेते हैं, इस पर विचार करते हुए उन्होंने मध्यम देश

में 'उदीच्य' का उल्लेख है। परन्तु इसका स्पष्टतम निर्देश तो ऐतरेय-ब्राह्मण (८।१४) में ही है, जहाँ स्पष्टतः प्राच्या (पूर्वी), दक्षिणा (दक्षिणी), प्रतीची (पश्चिमी), उदीची (उत्तरी) और ध्रुवा मध्यमा दिक्, ("अस्यां ध्रुवायां मध्यमायां प्रतिष्ठायां दिशि") इन पाँच दिकों या दिशाओं के रूप में भारत के प्रदेशों का विभाजन किया गया है। देखिए वैदिक इण्डेक्स जिल्द दूसरी, पृष्ठ १२५-१२७। पुराणों के भुवन-कोश में सामान्यतः ये पाँच प्रदेश गिनाये गये हैं, मध्यदेश, उदीच्य, प्राच्य, दक्षिणापथ और अपरान्त। मार्कण्डेय पुराण में इनके अलावा दो और का उल्लेख किया गया है, यथा विन्ध्य और पर्वताश्रयी। महाभारत के भीष्म-पर्व में इन पाँच प्रदेशों का उल्लेख है, जैसे कि, प्राच्य, उदीच्य, दक्षिण, अपरान्त और पार्वतीय। राजशेखर-कृत "काव्यमीमांसा" (दसवीं शताब्दी ईसवी) में भारत के इन पाँच प्रदेशों का उल्लेख है, जैसे कि पूर्व-देश, दक्षिणापथ, पश्चाद्देश, उत्तरापथ और अन्तर्वेदी। (पृष्ठ ९३)। इनकी सीमाओं का उल्लेख भी यहाँ किया गया है, जिनके तुलनात्मक महत्व का उपयोग हम आगे अपने अध्ययन में करेंगे। यूआन् चुआङ्ग ने अपने यात्रा-विवरण में मध्यवर्ती देश के लिये आर्यावर्त या अन्तर्वेदी शब्द का प्रयोग न कर मध्यदेश (पालि के मज्झिम देश) का ही प्रयोग किया है। देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्गस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १३२, १५६, ३४२। इससे यह स्पष्ट होता है कि चीनी परम्परा ने अपने भारत के पाँच विभागों के वर्गीकरण को बौद्ध परम्परा से ही लिया है। यूआन् चुआङ्ग के मध्यदेश की सीमा पालि के मज्झिम देस की सीमाओं से अधिक मेल खाती है, अपेक्षाकृत मनु० २।२१ के मध्यदेश से, जिसके विवेचन के लिये देखिये आगे मज्झिम देस की सीमाओं का विवेचन।

को देखा।"[1] विनय-पिटक के महावग्ग में मध्यम देश की सीमाओं का स्पष्ट उल्लेख है,[2] जिसका अक्षरशः उद्धरण देते हुए जातकट्ठकथा में कहा गया है, "मध्यम देश की पूर्व दिशा में कजंगल नामक कस्बा है। उसके बाद बड़े शाल के वन हैं और फिर आगे सीमान्त प्रदेश। पूर्व-दक्षिण में सललवती नामक नदी है, उसके आगे सीमान्त देश। दक्षिण दिशा में सेतकण्णिक नामक कस्बा है, उसके बाद सीमान्त देश। पश्चिम दिशा में थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम है, उसके बाद सीमान्त देश। उत्तर दिशा में उशीरध्वज नामक पर्वत है, उसके बाद सीमान्त देश।"[3] इस विवरण

---

१. कतरस्मिं नु खो पदेसे बुद्धा निब्बत्तन्तीति ओकासम्पि विलोकेन्तो मज्झिमं देसं पस्सि। जातकट्ठकथा, पठमो भागो, पृष्ठ ३८ (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी)। मिलाइये "बोधिसत्वा मध्यमेष्वेव जनपदेषूपपद्यन्ते।" ललितविस्तर, पृष्ठ १९; देखिये अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता, पृष्ठ ३३६ भी (बिबलियोथेका इण्डिका)।

२. देखिये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २१३।

३. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ६४ (हिन्दी अनुवाद)। मूल पालि इस प्रकार है "मज्झिमदेसो नाम पुरत्थिमदिसाय कजंगलं नाम निगमो, तस्स अपरेन महा-साला, ततो परं पच्चन्तिमा जनपदा ओरतो मज्झे, पुब्बदक्खिणाय दिसाय सललवती नाम नदी, ततो परं पच्चन्तिमा जनपदा ओरतो मज्झे, दक्खिणाय दिसाय सेत-कण्णिकं नाम निगमो, ततो परं पच्चन्तिमा जनपदा ओरतो मज्झे, पच्छिमाय दिसाय थूनं नाम ब्राह्मणगामो, ततो परं पच्चन्तिमा जनपदा ओरतो मज्झे, उत्तराय दिसाय उसीरद्धजो नाम पब्बतो, ततो परं पच्चन्तिमा जनपदा ओरतो मज्झे ति।" जातकट्ठकथा, पठमो भागो, पृष्ठ ३८-३९ (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी)। पालि तिपिटक के मज्झिम देस की सीमाओं का तुलनात्मक अध्ययन विशेषतः मनुस्मृति के "मध्य देश" और उत्तरकालीन काव्यमीमांसा के "अन्तर्वेदी" से किया जा सकता है। मनु० । २।२१ में मध्यदेश की सीमाओं का उल्लेख इस प्रकार किया गया है "हिमवद् विन्ध्ययोर्मध्यं यत् प्राग् विनशनादपि। प्रत्यगेव प्रयागाच्च मध्यदेशः प्रकीर्तितः।" काव्यमीमांसा (पृष्ठ ९३) में अन्तर्वेदी प्रदेश की सीमाओं का उल्लेख इस प्रकार किया गया है "तत्र वाराणस्याः परतः पूर्वदेशः, माहिष्मत्याः परतः दक्षिणापथः, देवसभायाः परतः पश्चाद्देशः, पृथूदकात् परतः उत्तरापथः।

से स्पष्ट है कि बुद्ध के जीवन-काल में मध्य देश की पूर्वी सीमा कजंगल नामक कस्बे तक मानी जाती थी। दीघ-निकाय की अट्ठकथा (सुमंगलविलासिनी)[1] में भी इस बात का समर्थन है और कुछ जातकों[2] में भी। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में कजंगल एक धन-धान्य-सुलभ (दब्बसम्भारसुलभा) समृद्ध कस्बा था और सुन्दर कुश के लिए प्रसिद्ध था।[3] कजंगल में एक वेणुवन या सुवेणुवन नामक सुरम्य स्थान था और एक दूसरा वन भी जिसका नाम मुखेलुवन था। कजंगल के वेणुवन में जब भगवान् निवास कर रहे थे, तभी कजंगल के निवासी कुछ उपासकों ने भिक्षुणी कजंगला से कुछ प्रश्न पूछे थे जिनके उत्तरों की भगवान् ने स्वयं अपने मुख से अंगुत्तर-निकाय के कजंगला-सुत्त में प्रशंसा की है।[4] मज्झिम-निकाय के इन्द्रिय-भावना-सुत्त का उपदेश भगवान् ने कजगल के मुखेलुवन में दिया था, जिसका एक पाठान्तर सुवेणुवन भी है।[5] मिलिन्दपञ्हो में कजंगल को एक ब्राह्मण-ग्राम कहा गया है।[6] बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ "अवदानशतक"[7] में कजंगल का नाम "कचंगला" दिया गया है।

विनशनप्रयागयोश्च गंगायमुनयोश्च अन्तरम् अन्तर्वेदी।" इस प्रकार ज्ञात होगा कि मनुस्मृति और काव्यमीमांसा में मध्यदेश या अन्तर्वेदी प्रदेश की पूर्वी सीमा क्रमशः प्रयाग और वाराणसी बताई गई हैं, जब कि पालि परम्परा में उसे मगध के कजंगल नामक निगम तक बताया गया है, जिसके सांस्कृतिक अभिप्राय के लिये देखिये आगे का विवेचन।

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४२९।

२. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २२६, २२७; जिल्द चौथी, पृष्ठ ३१०।

३. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ३१०।

४. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ५४; महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इस सुत्त का अनुवाद बुद्धचर्या, पृष्ठ २७१-२७२ में किया है।

५. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ६०७।

६. कजंगलं नाम ब्राह्मणगामो। मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ ९ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)

७. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४१।

कजंगल की यात्रा करने के लिए चीनी यात्री यूआन् चुआङ सातवीं शताब्दी ईसवी में गया था। उसने उसे चम्पा के पूर्व में ४०० 'ली' अर्थात् करीब ६७ मील की दूरी पर अवस्थित देखा था और उसके नाम का चीनी रूपान्तर उसने "क-चु-वेन्-कि-लो"[१] अथवा "कि-चु-खि-लो"[२] किया है। उन्नीसवीं शताब्दी में पालि ग्रन्थों का प्रकाशन और अनुवाद प्रायः नहीं के बराबर हुआ था, अतः उसके ज्ञान के अभाव में फ्रैञ्च विद्वान् एम० स्टेनिसलेस जुलियन ने यूआन् चुआङ के "क-चु-वेन्-कि-लो" या कि-चु-खि-लो" का संस्कृत रूपान्तर "किजुघिर" किया था, जिसका अनुगमन कनिंघम ने भी किया।[३] परन्तु यह गलत है। आज हम कह सकते हैं कि यूआन् चुआङ ने जिस "क-चु-वेन्-कि-लो" या "कि-चु खि-लो" को देखा था, वह बुद्धकालीन "कजंगल" ही था।[४] कनिंघम ने यूआन् चुआङ के "क-चु-वेन्-कि-लो" या "कि-चु-खि-लो" की पहचान वर्तमान कंकजोल नामक स्थान से की है,[५] जो राजमहल से अठारह मील दक्षिण में बिहार राज्य के जिला संथाल परगना में है। बुद्धकालीन कजंगल भी यही स्थान है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन[६] ने कनिंघम की इस पहचान को स्वीकार किया है।

---

१. थॉमस वाटर्स के अनुसार, औन् युआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८२।

२. एम० जुलियन और कनिंघम के अनुसार, देखिए एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इन्डिया, पृष्ठ ५४८।

३. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ दस (भूमिका-सुरेन्द्रनाथ मजूमदार-लिखित); पृष्ठ ७२३ "नोट्स" (सुरेन्द्रनाथ मजूमदार-लिखित); देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८३।

४. देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी पृष्ठ १८३

५. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५४८-५४९।

६. बुद्धचर्या, पृष्ठ २७१; विनय-पिटक (हिन्दी-अनुवाद), पृष्ठ २१३, पद-संकेत १।

मध्य देश के दक्षिण-पूर्व में सललवती नामक नदी बहती थी। इस नदी का वर्तमान नाम सिलई है, जो हजारीबाग और मेदिनीपुर जिलों में होकर बहती है।[1]

मज्झिम देस की पूर्वी सीमा जो कजंगल नामक कस्बे तक पालि तिपिटक के प्राचीनतम अंश विनय-पिटक के महावग्ग में बतायी गयी है, उसमें आर्य संस्कृति के प्रसार की एक कथा निहित है। वह एक ऐसी छिपी हुई कहानी को कहती है जिसका पूरा सांस्कृतिक मर्म अभी नहीं समझा गया है। जैसा हम अभी देख चुके हैं, कजंगल मध्य-देश की पूर्वी सीमा पर स्थित था। यद्यपि मललसेकर और लाहा ने इस बात का उल्लेख नहीं किया है कि कजंगल निगम किस जनपद में था, परन्तु महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने मज्झिम-निकाय के हिन्दी-अनुवाद के आरम्भ में जो मानचित्र दिया है, उसमें उन्होंने कजंगल को सुह्म जनपद में दिखाया है, जो बिलकुल ठीक जान पड़ता है। कजंगल अंग-मगध के पूर्व में, सुह्म जनपद में, स्थित था। इसका अर्थ यह है कि पालि तिपिटक में मध्यदेश की जो पूर्वी सीमा निश्चित की गई है, उसमें मगध (पटना और गया जिलों) को भी सम्मिलित कर लिया गया है। भारतीय इतिहास के लिए यह एक सर्वथा नई और युगान्तकारी घटना उस समय थी। ऋग्वेद की एक ऋचा (३।५३।१४)

---

१. मिलाइये राहुल सांकृत्यायन : विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २१३, पद-संकेत २; बुद्धचर्या, पृष्ठ १, पद-संकेत ३; पृष्ठ ३७२, पद-संकेत ४; पृष्ठ ५६७। डा० लाहा के अनुसार भी इस नदी की यही आधुनिक पहचान है, परन्तु एक दूसरा विकल्प उपस्थित करते हुए उन्होंने सललवती को वर्तमान सुवर्ण-रेखा या स्वर्णरेखा नदी से मिलाने का भी सुझाव दिया है, जो मानभूम और मेदिनीपुर जिलों में होकर बहती है। देखिये उनका "इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म", पृष्ठ ५९। सुरेन्द्रनाथ मजूमदार (देखिये उनके द्वारा सम्पादित कनिंघम की एंशियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया में उनके द्वारा लिखित भूमिका का पृष्ठ तैंतालीस) और लाहा (ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ २; इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, पृष्ठ ५९) ने सललवती का संस्कृत प्रतिरूप सरावती दिया है।

में कीकट प्रदेश का उल्लेख है। इस प्रदेश को मगध देश से मिलाया गया है। यास्क ने अपने "निरुक्त" (६।३२) में कीकट प्रदेश को अनार्यों का निवासस्थान बताया है। "कीकटो नाम देशोऽनार्यनिवासः"। अथर्ववेद के व्रात्य-कांड में मगध के साथ अंग देश के लोगों को व्रात्य अर्थात् वैदिक संस्कृति के बहिर्भूत बताया गया है और उनकी भर्त्सना की गई है। मगध देश के निवासियों के प्रति आर्यों के मन में कितने अवमानना के भाव थे, इसे वैदिक साहित्य और उसकी परम्परा के ग्रन्थों के अनेक उद्धरणों से समझा जा सकता है।[१] वस्तुतः बात यह थी कि उस समय तक मगध में आर्य संस्कृति का पूर्णरूपेण प्रसार नहीं हुआ था और वह मुख्यतः आर्य सभ्यता के क्षेत्र से बहिर्भूत माना जाता था। यही कारण है कि मगध देशीय ब्राह्मण भी श्रौत परम्परा के लिए "ब्रह्मबन्धु" ही था। सम्पूर्ण प्राचीन साहित्य में इस हद तक मगध-निवासियों को आर्य संस्कृति के बहिर्भूत बताने का प्रयत्न किया गया है कि पार्जिटर जैसे विद्वान् ने उन्हीं के आधार पर विचार करते हुए उन्हें वास्तविक रूप से अनार्य जाति ही मान लिया है और उनके समुद्री मार्ग द्वारा पूर्वी भारत में आकर बस जाने या विदेशियों से मिल जाने तक की भी अनैतिहासिक कल्पना कर डाली है,[२] जिसका समर्थन पालि परम्परा के आधार पर, जैसा हम अभी देखेंगे, नहीं किया जा सकता।

मगध के प्रति उपर्युक्त अवमानना के कारण ही धर्मसूत्रकारों ने उसे पवित्र आर्यावर्त से कभी नहीं मिलने दिया। बौधायन के धर्मसूत्र में आर्यावर्त की जो पूर्वी सीमा निर्धारित की गई है, वह कालक वन तक ही है,[३] जिसे प्रयाग

---

१. जिनके कुछ संकलन और विवेचन के लिए देखिये महामहोपाध्याय हर-प्रसाद शास्त्री : मगधन लिटरेचर, पृष्ठ १-२१; हेमचन्द्र रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १११-११३; मेकडोनल और कीथ : वैदिक इण्डेक्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ११६।

२. जर्नल ऑव रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १९०८, पृष्ठ ८५१-८५३; मिलाइये वैदिक इण्डेक्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ११।

३. बौधायन धर्मसूत्र १।१।२।९।

या उसके किसी समीपवर्ती स्थान से मिलाने का प्रयत्न किया गया है।[1] इसी प्रकार मनुस्मृति में भी, जिसने आर्यावर्त देश के लिए "मध्य देश" नाम का प्रयोग किया है, "प्रत्यगेव प्रयागाच्च" कह कर प्रयाग को ही मध्य-देश की पूर्वी सीमा ठहराया गया है।[2] बहुत पीछे आकर कहीं दसवीं शताब्दी में राजशेखर-कृत काव्यमीमांसा में "वाराणस्याः परतः पूर्वदेशः," कहकर "अन्तर्वेदी" देश, जिस नाम का प्रयोग वहाँ मध्य-देश के लिये किया गया है, की पूर्वी सीमा वाराणसी तक लाई गई है।[3] बुद्ध के काल में जब हम पालि तिपिटक के साक्ष्य पर स्पष्टतः देखते हैं कि मगध में उरुवेला जैसे स्थान में तीन जटिल साधु उरुवेल काश्यप, नदी काश्यप, और गया काश्यप, प्रति वर्ष एक महान् यज्ञ करते थे और उरुवेला के चतुर्दिक् फैले हुए अंग और मगध राष्ट्रों के सहस्रों लोग प्रभूत मात्रा में खाद्य और भोज्य लेकर उनकी सेवा में, यज्ञ के पुण्य का लाभ प्राप्त करने के लिये, उपस्थित होते थे,[4] इतना ही नहीं, जब हम देखते है कि अंग और मगध के लोग महाब्रह्मा की पूजा के उत्सव मे ६० गाड़ियाँ ईंधन की जला डालते थे[5], जब कूटदन्त, सोणदण्ड और भारद्वाज जैसे ब्राह्मण-महाशाल मगध देश में बुद्ध-काल में विद्यमान थे और एकनाला, पञ्चशाल, अम्बसण्ड, सालिन्दिय और खाणुमत जैसे स्वतन्त्र ब्राह्मण-ग्राम भी उस समय मगध में विद्यमान थे, तो हमें इस बात पर आश्चर्य और खेद हुए बिना नहीं रहता[6] कि सूत्र और ब्राह्मण युग के वैदिक परम्परा

---

१. देखिये कनिंघम कृतः "एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया" में सुरेन्द्रनाथ मजूमदार-लिखित भूमिका, पृष्ठ इकतालीस, पद-संकेत १; लाहा : इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली ऑव टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज्म, पृष्ठ २०, पद-संकेत १; ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ १, पद-संकेत १।

२. मनु०। २।२१। पूरा उद्धरण पहले दिया जा चुका है।

३. पूरा उद्धरण पहले इसी परिच्छेद में दिया जा चुका है।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९१।

५. सारत्थप्पकासिनी (संयुत्त-निकाय की अट्ठकथा), जिल्द पहली, पृष्ठ २६९।

६. जैसा कि सिंहली विद्वान् डा० जी० पी० मललसेकर को भी हुआ है। देखिए उनकी डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४०४।

के लोग फिर भी क्यों मगध जनपद के प्रति ऋग्वेदकालीन अवमानना की भावनाओं को ही प्रश्रय देते रहे और उसे आर्य संस्कृति के क्षेत्र से बहिर्भूत मानते रहे जब कि उसमें आर्य संस्कृति का एक विकसित रूप बुद्ध-काल और उसके कुछ पूर्व से ही दृष्टि-गोचर हो रहा था। क्यों यह परम्परा समय के साथ चलकर अपने ज्ञान का विकास नहीं कर सकी? क्यों मगध के प्रति उसी घृणा-भाव को अपनाती रही जो ऋग्वेद के काल में प्रचलित था? यहीं हमें तथागत के गौरव का इस क्षेत्र में भी अनुभव होने लगता है, जिन्होंने इसका सम्यक् प्रतिकार किया। जिस प्रकार बौद्ध धर्म के आविर्भाव ने पूर्व काल से चली आई हुई अनेक निर्जीव और अर्थहीन रूढ़ियों और अन्धविश्वासों को तोड़ा, उसी का एक प्रभावशाली उदाहरण हम इस भौगोलिक क्षेत्र में भी मध्य-देश की पूर्वी सीमा के विस्तार के रूप में देखते हैं। आर्य संस्कृति के लिए तथागत के धर्म की यह एक महान् देन थी। जिस प्रकार भगवान् बुद्ध ने प्राचीन आर्य आदर्शों को अपने व्यक्तित्व से पूर्णता प्रदान की, वही बात बौद्ध परम्परा ने मध्य देश की सीमा का सार्थक विस्तार करके की। डा० लाहा ने यह दिखाने का प्रयत्न किया है कि चूँकि मगध बौद्धों का पवित्र देश था, अतः उनका यह स्वाभाविक और परिस्थितिओं के तर्क के अनुकूल ही प्रयत्न था कि वे मध्य देश की सीमा को इतना बढ़ायें कि उसमें मगध भी सम्मिलित हो जाय।[1] बौद्ध धर्म, जिसने परम्परागत धर्म की कतिपय अज्ञानजनित मान्यताओं पर निर्मम प्रहार किये और सत्य की खोज में किसी की अपेक्षा नहीं रक्खी, इस प्रकार मध्य देश की सीमा बढ़ाकर अपने गौरव की रक्षा और वृद्धि करता, यह बात बौद्ध धर्म

१. "The ancient Magadhan country including Banaras and Buddha-Gaya was the land par excellence of Buddha and Buddhism. It was, therefore, quite in the logic of circumstances that the Buddhist writers would extend the boundary of the Madhyadesa (Majjhimadesa) further towards the east so as to include the Buddhist holy land." Geography of Early Buddhism, Page 1; Compare, India as described in Early Texts of Buddhism and Jainism, Pages 20-21.

को ठीक प्रकार से समझने का साक्ष्य नहीं देती। बौद्ध परम्परा ने जो मध्यदेश की सीमा को बढ़ाया है, वह आर्य संस्कृति को उसका प्रकृत गौरव देने के लिये ही किया है। जो सत्य आँखों के सामने उपस्थित था, उसे स्वीकार करने के लिये और पूर्व परम्परागत द्वेषबुद्धि को हटाने के लिये ही किया है। हाँ, बौद्ध धर्म के कारण मगध को विशेष गौरव मिला और प्रसन्नता की बात है कि प्रकारान्तर से बौद्ध धर्म के अज्ञात प्रभाव के परिणामस्वरूप ही बाद में पौराणिक परम्परा ने उस मगध की भूमि को, जिसे प्राचीन वैदिक परम्परा ने "पाप-भूमि" माना था, पवित्र और पुण्यमयी बताया और उसका माहात्म्य गाते हुए कहा, "कीकटेषु गया पुण्या पुण्य राजगृहं वनम्"। यह बौद्ध धर्म द्वारा किये गये महत् कार्य की पौराणिक ढंग से स्वीकृति ही तो है, जिस ढंग को पौराणिक परम्परा ने बौद्ध धर्म की देन को स्वीकार करते हुए अक्सर अपनाया है। मगध को तो विशेष गौरव बौद्ध धर्म ने दिया ही, मध्य मडल की सीमा में उसे सम्मिलित कर प्रथम बार उसने सम्पूर्ण आर्य संस्कृति की विकासगामी परम्परा को भी अग्रसर किया। यहाँ यह कह देना अनावश्यक न होगा कि बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ "दिव्यावदान"[1] में बाद मे मध्य देश की सीमा पुण्ड्रवर्द्धन तक बढ़ा दी गई है, जो सम्भवतः उत्तरी बगाल (वरेन्द्र) में कोई स्थान था।[2] इस प्रकार आर्य संस्कृति के प्रसार की कहानी हमे मध्य देश की पूर्वी

---

१. पृष्ठ २१-२२ "पूर्वेण पुण्ड्रवर्द्धनं नाम नगरम्।"

२. पुण्ड्रवर्द्धन की यात्रा यूआन् चुआङ ने भी की थी और उसने उसे "पुन-न-फ-तन-न" कह कर पुकारा है, जिसका संस्कृत रूपान्तर अनेक विद्वानों ने 'पुण्ण-वर्द्धन', 'पुण्यवर्द्धन' या 'पौण्ड्रवर्द्धन' किया है, परन्तु ठीक रूप वस्तुतः 'पुण्ड्रवर्द्धन' ही है। यूआन् चुआङ ने इसे चम्पा से ६०० 'ली' अर्थात् करीब १००मील पूर्व में गंगा के उस पार बताया है। देखिये वाटर्स :ऑन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८४; मिलाइये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५४९। डा० लाहा ने पुण्यवर्द्धन को कजंगल से १०० 'ली' अपने ग्रन्थ "इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टेक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज़्म एंड जैनिज़्म" पृष्ठ ६० में यूआन् चुआङ् के अनुसार बताया है, जो गलत है। एम० विवियन डे सेंट मार्टिन ने पुण्यवर्द्धन को वर्तमान वर्दवान से मिलाया था, जिसे कनिंघम ने स्वीकार नहीं

सीमा के निरन्तर विकास के रूप में दिखाई पड़ती है, जिसे बौद्ध परम्परा ने पहले कजंगल नामक निगम तक बढ़ाया और फिर पुण्ड्रवर्द्धन या उत्तरी बंगाल तक। पौराणिक परम्परा अधिक से अधिक वाराणसी तक दसवीं शताब्दी ईसवी में जा सकी!

मज्झिम देस की पूर्वी सीमा के परे पालि विवरण में "महासाला" कहे गये हैं। "महासाला" का अर्थ विनय-पिटक के हिन्दी-अनुवाद में महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने और "जातक" के हिन्दी-अनुवाद में भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने "बड़े शाल के वन" किया है। परन्तु इन ग्रन्थों के अंग्रेजी अनुवादकों ने "महासाला" का अर्थ "महासाला" नामक ग्राम किया है, जिसका ही अनुसरण मलल्सेकर[1] और लाहा[2] जैसे विद्वानों ने किया है। चूँकि "महासाला" का ग्राम के अर्थ में अन्यत्र कहीं भी पालि तिपिटक में उल्लेख नहीं है, साला नामक ब्राह्मण-ग्राम का है, परन्तु वह कोसल देश में था और इससे नहीं मिलाया जा सकता, इसलिए "महासाला" को ग्राम मानने का कोई स्पष्ट आधार मिलता दिखाई नहीं पड़ता। सातवीं शताब्दी ईसवी के चीनी यात्री यूआन् चुआङ के यात्रा-विवरण में निर्दिष्ट "महाशाल" या "महासार" ब्राह्मण-ग्राम को भी हम पालि का "महासाला" नहीं मान सकते। यूआन् चुआङ वाराणसी से ३०० 'ली' (करीब ५० मील) पूर्व में चलकर

किया है। कनिंघम के मतानुसार पुण्ड्रवर्द्धन वर्तमान पबना है, जो कंकजोल (कजंगल) से ठीक १०० मील पूर्व में गंगा के उस पार है। देखिये उनकी : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ५४९-५५०। परन्तु बाद में कनिंघम ने अपने द्वारा लिखी हुई आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया की रिपोर्ट, जिल्द पन्द्रहवीं, पृष्ठ १०४-१११ में पुण्ड्रवर्द्धन को बंगाल के बोगरा नामक नगर से मिलाने का प्रयत्न किया। पुण्ड्रवर्द्धन की आधुनिक पहचान सम्बन्धी विस्तृत विवेचन के लिये देखिये कनिंघम-कृत "एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया" में सुरेन्द्रनाथ मजूमदार-लिखित "नोट्स" पृष्ठ ७२३-७२५।

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५६९।

२. ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज़्म, पृष्ठ २; इंडिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज़्म एंड जैनिज़्म, पृष्ठ २०-२१।

"चन्-चु" (गाजीपुर) प्रदेश में गया था और फिर वहाँ से २०० 'ली' (करीब ३३ मील) पूर्व में चलकर "अ-पि-ते-क-ल-न" (अविद्धकर्ण) संघाराम में पहुँचा था, जहाँ से १०० 'ली' अर्थात् करीब १६ या १७ मील दक्षिण-पूर्व में "मो-हो-शो-लो" या महाशाल नामक गाँव स्थित था, जिसमें सब ब्राह्मण ही रहते थे। यह "महाशाल" या "महासार" गाँव आधुनिक मसार है, जो आरा के ६ मील पश्चिम में है।[1] इसकी स्थिति को देखते हुए इसे मज्झिम देस की पूर्वी सीमा पर स्थित कजंगल के परे किसी प्रकार नहीं माना जा सकता। अतः यह "महाशाल" या "महासार" ब्राह्मण-ग्राम पालि साहित्य का "महासाला" नहीं हो सकता, जो अंग-कजंगल के परे पूर्व में स्थित था।

अब हम मध्यदेश की दक्षिणी सीमा पर आते हैं। जैसा हम देख चुके है, वह सेतकण्णिक नामक निगम तक थी। सेतकण्णिक की आधुनिक पहचान करने का प्रयत्न किसी विद्वान् ने नही किया है। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने भी इसके सम्बन्ध में केवल यह लिखा है, "हजारीबाग जिले में कोई स्थान था।"[2] डा० लाहा ने इसे वैसे ही छोड़ दिया है, विवेचन के योग्य भी नही समझा है।[3] सम्भवतः सेतकण्णिक भारत के सुह्म (पालि सुम्भ) नामक जनपद का एक कस्बा था, जो पूर्व देश में था। सुह्म नामक जनपद मे, महापंडित राहुल सांकृत्यायन के अनु-

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५९-६१; कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ५०४, देखिये वहीं पृष्ठ ७१६ में सुरेन्द्रनाथ मजूमदार-लिखित "नोट्स" भी; लाहा इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्टस् ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज्म, पृष्ठ ५७।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ २१३, पद-संकेत ३; बुद्धचर्या, पृष्ठ ३७१, पद-संकेत ५।

३. ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ २,६०; इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज्म, पृष्ठ २१; सुरेन्द्रनाथ मजूमदार ने भी सेतकण्णिक के सम्बन्ध में कोई टिप्पणी नहीं दी है और केवल नाम निर्देशन करके छोड़ दिया है। देखिए कनिंघम-कृत 'एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया' में उनकी भूमिका, पृष्ठ तेतालीस।

सार, वर्तमान हजारीबाग और संथाल परगना जिलों का कितना ही अंश सम्मिलित था।[१] डा० लाहा के मतानुसार सुह्म जनपद का विस्तार आधुनिक मेदिनीपुर जिले के प्रायः समान था।[२] सुह्मों के कस्बे सेतक, सेदक या देसक में भगवान् ने विहार किया था और यहीं उन्होंने संयुत्त-निकाय के उदायि-सुत्त[३], सेदक-सुत्त[४] और जनपद-सुत्त[५] का उपदेश किया था। तेलपत्त जातक का उपदेश भी यहीं दिया गया था। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने "बुद्धचर्या" में संयुत्त-निकाय के उदायि-सुत्त का अनुवाद करते हुए "सेतक" के स्थान पर "सेतकण्णिक" पाठ दिया है।[६] इससे यही जान पड़ता है कि उनके मतानुसार सम्भवतः सेतक, सेदक, देसक या सेतकण्णिक एक ही कस्बे का नाम था। यहाँ यह कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि मललसेकर और लाहा ने सेतक, सेदक या देसक का सेतकण्णिक से अलग उल्लेख किया है और दोनों को भिन्न स्थान माना है। सिवाय मज्झिम देस की दक्षिणी सीमा पर स्थित होने के अन्य कोई महत्वपूर्ण उल्लेख सेतकण्णिक कस्बे के सम्बन्ध में पालि तिपिटक में नहीं है। अतः नाम-साम्य के आधार पर हम चाहें तो उसे सुह्म जनपद के सेतक, सेदक या देसक नामक कस्बे से मिला सकते हैं। युआन् चुआङ्‌ ने अपने यात्रा-विवरण में श्वेतपुर नामक नगर का उल्लेख किया है, जिसे उन्होंने वैशाली से करीब ९० 'ली' या करीब १५ मील दक्षिण में स्थित बताया है।[७] डा० लाहा ने इस श्वेतपुर नगर को सुह्म जनपद के सेतक, सेदक या देसक

---

१. बुद्धचर्या, पृष्ठ २७४, पद-संकेत १; वहीं पृष्ठ ५७१ भी।

२. इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्टस् ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज्म, पृष्ठ ५१।

३. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ६६१।

४. वहीं, पृष्ठ ६९५-६९६।

५. वहीं, पृष्ठ ६९६।

६. बुद्धचर्या, पृष्ठ २७५।

७. वाटर्स : औन् युआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७९-८१।

नामक कस्बे से मिलाने का प्रस्ताव किया है।[1] इस प्रकार डा० लाहा के इस प्रस्ताव के अनुसार हमें पालि के "सुम्भ" जनपद को महाभारत के सुह्म जनपद से, जिसे हम वंग और उत्कल के बीच मान सकते हैं, न मिलाकर उसकी स्थिति को वज्जि जनपद के समीप लाना पड़ेगा। चूंकि डा० लाहा का श्वेतपुर नगर को पालि के सेदक कस्बे से मिलाना केवल नाम-साम्य पर आधारित है, अतः उसके कारण हम पालि के सुम्भ जनपद को वंग और उत्कल के बीच से लाकर वैशाली के करीब १५ मील दक्षिण में, जो श्वेतपुर की स्थिति है, लाने को प्रस्तुत नहीं हैं। मज्झिम देश की दक्षिणी सीमा के सम्बन्ध में तुलनात्मक दृष्टि से यहाँ यह कह देना आवश्यक होगा कि बौधायन धर्म-सूत्र में आर्यावर्त की दक्षिणी सीमा पारिपात्र या पारियात्र (विन्ध्य पर्वत-श्रेणी का कोई भाग, सम्भवतः अरावली पर्वत) निर्धारित की गई थी, जब कि मनुस्मृति में मध्यदेश को "हिमवद्-विन्ध्ययोर्मध्यम्" कहा गया था। काव्यमीमांसा के "अन्तर्वेदी" की दक्षिणी सीमा माहिष्मती नगरी थी। माहिष्मती (माहिस्सति) का नाम पालि तिपिटक को भी ज्ञात है और उसे दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त में अवन्ति-दक्षिणापथ की राजधानी बताया गया है। माहिष्मती को नर्मदा नदी पर स्थित आधुनिक मान्धाता नामक नगर से मिलाया गया है[2] या उसे महेश्वर (इन्दौर) भी बताया गया है।[3] वस्तुतः माहिष्मती नामक अनेक नगरियाँ प्राचीन भारत में थीं, जिनके विवेचन में यहाँ जाना उचित न होगा।

---

१. इण्डिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्टस् ऑव बुद्धिज़्म एंड जैनिज़्म, पृष्ठ ६०।

२. विशेषतः पार्जिटर और फ्लीट द्वारा। उद्धरणों के लिये देखिये हेमचन्द्र रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १४५, पद-संकेत २, जहाँ डा० रायचौधरी ने इस सम्बन्ध में कुछ आपत्तियाँ उठाई हैं। डा० लाहा ने मान्धाता की पहचान को स्वीकार किया है। देखिये उनकी "ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज़्म", पृष्ठ ६१।

३. इण्डियन एंटिक्वेरी, १८७५, पृष्ठ ३४६; महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इस पहचान को स्वीकार किया है। देखिए दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १७१, पद-संकेत १; पृष्ठ ३२६; बुद्धचर्या, पृष्ठ ५६१।

हमारे इस समय के उद्देश्य के लिये यह जानना पर्याप्त है कि जहाँ तक मध्य देश की दक्षिणी सीमा का सम्बन्ध है, बौद्ध और वैदिक परम्पराओं में विशेष अन्तर नहीं है, क्योंकि दोनों उसे किसी न किसी प्रकार विन्ध्य-पर्वत-श्रेणी तक ही मानने को प्रवण दिखाई पड़ती हैं।

मध्य देश की पश्चिमी सीमा पालि विवरण में थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम बतायी गयी है। दिव्यावदान[1] में इसे "स्थूण" कहकर पुकारा गया है। यह "थूण" या "स्थूण" नामक ब्राह्मण-ग्राम क्या स्थान हो सकता है, इसका कोई विद्वान् अभी समाधानपूर्वक निर्णय नहीं कर सका है। सुरेन्द्रनाथ मजूमदार ने इसे स्थाण्वीश्वर या वर्तमान थानेश्वर (जिला करनाल) से मिलाया है।[2] डा० विमलाचरण लाहा[3] और महापण्डित राहुल सांकृत्यायन[4] का भी इसी प्रकार का मत है। यूआङ् चुआङ् ने मथुरा से उत्तर-पूर्व ५०० 'ली' की यात्रा के पश्चात् "स-त-नि-स्सु-फ-लो" या "स्थाणेश्वर" प्रदेश में प्रवेश किया था। कनिंघम ने इसे वर्तमान थानेश्वर से मिलाया था,[5] परन्तु थॉमस वाटर्स ने सहेतुक ढंग से इसे स्वीकार नहीं किया है। उनकी आपत्ति है कि स्वयं यूआन् चुआङ् के वर्णनानुसार, जैसा हम अभी कह चुके हैं, स्थाणेश्वर मथुरा से ५०० 'ली' (करीब ८३ या ८४ मील) उत्तर-पूर्व में था, जब कि वर्तमान थानेश्वर मथुरा से १८० मील उत्तर-पश्चिम में है।[6] कुछ भी हो, पालि के थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम को नाम-साम्य के कारण तो हम वर्तमान थानेश्वर से मिला ही सकते हैं, मध्य देश की पश्चिमी सीमा

---

१. पृष्ठ २२ "पश्चिमेन स्थूणोपस्थूणकौ ग्रामकौ।"

२. देखिये कनिंघम-कृत एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया में श्री सुरेन्द्रनाथ मजूमदार-लिखित भूमिका, पृष्ठ तेतालीस, पद-संकेत २।

३. ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ २, पद-संकेत २; इंडिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज़्म एंड जैनिज़्म, पृष्ठ २१, पद-संकेत १।

४. बुद्धचर्या, पृष्ठ १, पद-संकेत ५; पृष्ठ ३७१, पद-संकेत ६; विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २१३, पद-संकेत ४; पृष्ठ ५६३।

५. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ३७६।

६. औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इंडिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३१६।

की दृष्टि से भी यह स्थान पालि विवरण के अत्यन्त अनुकूल दिखाई पड़ता है और यह आवश्यक नहीं है कि पालि का थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम यूआन् चुआङ के द्वारा यात्रा किया हुआ "स-त-नि-स्सु-फ-लो-" या "स्थाणेश्वर" ही हो। थूण की स्थिति के सम्बन्ध में एक भ्रम में डालने वाली बात हमें जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ६२ (पालि टैक्स्ट सोसायटी संस्करण) में मिलती है। यहाँ भी थूण नामक एक ब्राह्मण-ग्राम का निर्देश किया गया है, परन्तु इसकी स्थिति को मिथिला और हिमवन्त (हिमालय) प्रदेश के बीच में बताया गया है। इस प्रकार यह थूण ब्राह्मण-ग्राम कहीं मिथिला के उत्तर और हिमालय के दक्षिण में होना चाहिए। सम्भवतः यह थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम वही था जिसका उल्लेख 'उदान'[1] में भी किया गया है और जिसे वहाँ मल्ल जनपद में स्थित बताया गया है। बुद्ध-काल में एक ही नाम के कई नगर और ग्रामों के उदाहरण हमें मिलते हैं। उदाहरणतः कुण्डी या कुण्डिया नामक एक ग्राम कोलिय जनपद में था और कुण्डी, कुण्डिय या कुण्डिकोल नामक एक अन्य ग्राम कुरु जनपद में भी। इसी प्रकार वेलुव गाम नामक एक गाँव वज्जि जनपद में था और इसी से मिलते-जुलते नाम का वेलुगाम नामक एक दूसरा ग्राम अवन्ती राज्य में भी था। (उत्तर) मधुरा और (दक्षिण) मधुरा तो प्रसिद्ध ही हैं। इस प्रकार जातक और उदान के थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम को हमे मल्ल राष्ट्र में मानना पड़ेगा, जिसका मज्झिम देस की पश्चिमी सीमा पर स्थित थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम से कोई सम्बन्ध नहीं हो सकता। मध्य देश की पश्चिमी सीमा के रूप में बौधायन धर्म-सूत्र और मनुस्मृति में सरस्वती नदी के लुप्त होने के स्थान (क्रमशः अदर्शन तथा विनशन) का उल्लेख किया गया है, जिसकी ठीक पहचान करना मुश्किल है। परन्तु इसे सम्भवत. सिरसा नामक स्थान से मिलाया जा सकता है, जो राजपूताना मरुस्थल के उत्तर में स्थित है। इसी प्रकार काव्यमीमांसा में देवसभा के पश्चिम में पश्चिमी देश बताया गया है। "देवसभायाः परतः पश्चाद्देशः"। अर्थात् अन्तर्वेदी देश की पश्चिमी सीमा 'देवसभा' बताई गई है। देवसभा को अक्सर आधुनिक देवास से मिलाया जाता है।[2]

---

१. पृष्ठ १०६ (हिन्दी अनुवाद)।

२. देखिये हिस्ट्री एंड कल्चर ऑव दि इंडियन पीपुल, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १०१

मध्य देश की उत्तरी सीमा पर पालि विवरण के अनुसार उसीरद्धज (उशीर-ध्वज) पर्वत अवस्थित था। हल्श ने इसे हरिद्वार के समीप कनखल के उत्तर में उशीरगिरि नामक पर्वत से मिलाया था,[1] जिसे ठीक माना जा सकता है। यूआन् चुआङ ने मथुरा के समीप उरुमुण्ड पर्वत के पास "शीर" या "उशीर" पर्वत का उल्लेख किया है,[2] परन्तु नाम-साम्य होने पर भी इसका हमारे "उशीरध्वज" से कोई सम्बन्ध नहीं है। बौधायन धर्म-सूत्र और मनुस्मृति में हिमालय को मध्य देश की उत्तरी सीमा बताया गया है, जिससे पालि विवरण का कोई विभेद नहीं जान पड़ता। काव्यमीमांसा में अवश्य उत्तरापथ और अन्तर्वेदी के बीच में पृथूदक नामक स्थान को सीमा के रूप में बताया गया है। "पृथूदकात् परतः उत्तरापथः"। कनिंघम ने पृथूदक को वर्तमान थानेश्वर के १४ मील पश्चिम में स्थित पहोआ नामक स्थान से मिलाया है।[3] इस प्रकार काव्यमीमांसा के अनुसार यही अन्तर्वेदी प्रदेश की उत्तरी या ठीक कहें तो उत्तरी-पश्चिमी सीमा होगी। इस प्रकार मोटे तौर पर हम देखते हैं कि पालि तिपिटक में निर्दिष्ट मज्झिम देस उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षिण में विन्ध्याचल तक फैला था और पूर्व में अंग जनपद से लेकर पश्चिम में कुरु राष्ट्र तक। जातकट्ठकथा में मध्य देश के विस्तार के सम्बन्ध में कहा गया है, "यह मध्य देश लम्बाई में तीन सौ योजन, चौड़ाई में ढाई सौ योजन और घेरे में नौ सौ योजन है।"[4]

---

१. इंडियन एंटिक्वेरी, १९०५, पृष्ठ १७९; मिलाइये कनिंघम-कृत "एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया" में सुरेन्द्रनाथ मजूमदार-लिखित भूमिका, पृष्ठ तैतालीस, पद-संकेत ३; लाहा : ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज़्म, पृष्ठ २, पद-संकेत ३; इंडिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्टस् ऑव बुद्धिज़्म एंड जैनिज़्म, पृष्ठ २१, पद-संकेत २; राहुल सांकृत्यायन : बुद्धचर्या, पृष्ठ ५४६।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ स् ट्रैविल्स इन इंडिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०८

३. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ३८५।

४. जातक प्रथम खंड, पृष्ठ ६४ (हिन्दी अनुवाद)। मूल पालि इस प्रकार है, "सो आयामतो तीणि योजनसतानि वित्थारतो अड्ढतिययोजनानि परिक्खेपतो नव योजन सतानीति", जातकट्ठकथा, पठमो भागो, पृष्ठ ३९ (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी)।

मध्य देश को भगवान् ने अपने आविर्भाव से तो गौरवान्वित किया ही, सबसे बड़ा गौरव जो मध्य देश को भगवान् तथागत से मिला, भौगोलिक दृष्टि से यह था कि उन्होंने अपनी चारिकाएँ प्रायः इसी देश के अन्तर्गत कीं। यद्यपि संयुत्त-निकाय की अट्ठकथा (सारत्थप्पकासिनी)[१] में हम यक्ष आलवक को कैलाश (केलास) पर्वत की चोटी से भगवान् बुद्ध के अपने निवासस्थान पर आने की प्रसन्नता में आत्म-परिचय देते हुए चिल्लाते देखते हैं और स्वयं विनय-पिटक के महावग्ग[२] में हम पढ़ते हैं कि भगवान् बुद्ध उत्तरकुरु में भिक्षार्थ गये थे और अनोतत्त दह (मानसरोवर झील) में स्नान कर उन्होंने उसके तट पर विश्राम किया था, जिससे लगेगा कि भगवान् साइबेरिया (उत्तरकुरु) और तिब्बत के समीप मानस-सरोवर झील तक गये थे। पुनः यदि मनोरथपूरणी[३] में दी गई महाकप्पिन की कथा को हम प्रामाणिक मानें तो हमें मानना पड़ेगा कि उत्तर-पश्चिम में भगवान् चन्दभागा (चन्द्रभागा—चिनाब) नदी के तट तक गये थे और इसी प्रकार यदि सारत्थप्पकासिनी[४] के अनुसार सूनापरान्त जनपद में स्थित मंकुलकाराम नामक विहार में भगवान् के जाने और वहाँ से लौटते हुए नर्मदा को पार करने की बात को हम मानें तो हमें अनिवार्य रूप से यह मानना ही पड़ेगा कि भगवान् बम्बई और सूरत के प्रदेश तक भी गये थे। इतना ही नहीं, दीपवंस[५] में और महावंस के "तथा-गतागमन" शीर्षक प्रथम परिच्छेद में, भगवान् के तीन बार लंकागमन की बात कही गई है। इस विवरण के अनुसार प्रथम बार भगवान् बुद्ध पौष (फुस्स) मास की पूर्णिमा के दिन, बुद्धत्व-प्राप्ति के नवें महीने में लंका गये। दूसरी बार वे

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ २४८।

२. महावग्गो (विनयपिटकं) पठमो भागो, पृष्ठ ४१ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

३. जिल्द पहली, पृष्ठ १७५। मिलाइये धम्मपदट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ११६; सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७७; जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ १८०।

४. जिल्द तीसरी, पृष्ठ १५।

५. १।४५; २।१।

बुद्धत्व-प्राप्ति के पन्द्रहवें वर्ष में चैत्र (चित्त) मास की पूर्णिमा के दिन वहाँ गये। इसके तीन वर्ष बाद भगवान् बुद्ध ५०० भिक्षुओं के सहित वैशाख मास की द्वितीया के दिन फिर तीसरी बार लंका गये। इस बार वे कल्याणी भी गये और उसके बाद सुमन-कूट-पर्वत (आदम की चोटी) पर उन्होंने अपना चरण-चिह्न अंकित किया, जो आज "श्रीपाद" के नाम से प्रसिद्ध है। नर्मदा (नम्मदा) नदी के तट पर भी भगवान् ने अपने चरण-चिन्ह छोड़े। लंका की इस तीसरी बार की यात्रा के बाद भगवान् लौटकर जेतवन आये। बरमी लोगों का विश्वास है कि भगवान् उनके देश में भी गये और वहाँ उन्होंने "लोहित-चंदन-विहार" में निवास किया।[1]

इस प्रकार यद्यपि पूर्ववर्ती और उत्तरवर्ती पालि विवरणों में भगवान् बुद्ध के उत्तरकुरु द्वीप, कैलाश, मानसरोवर, चन्द्रभागा (चिनाब) नदी के तट, नर्मदा नदी को पार कर सूनापरान्त जनपद, लंका और बरमा तक जाने की बात मिलती है, परन्तु इस सम्बन्ध में न तो उनकी यात्रा का कहीं वर्णन किया गया है और न उसमें लगे समय का या रास्ते में पड़ने वाले पड़ावों का कही निश्चित उल्लेख ही है। अक्सर वायु-मार्ग से या ऋद्धि-बल-से ही उन्हें वहाँ पहुँचा दिया गया है, जिसे पौराणिक विवरण ही कहा जा सकता है। जो बात निश्चित रूप से ऐतिहासिक तथ्य के रूप में कही जा सकती है, वह यह है कि भगवान् बुद्ध ने अपनी चारिकाएँ प्रायः मध्य-देश या मध्य-मंडल की सीमाओं के भीतर अर्थात् "कोसी-कुरुक्षेत्र और हिमालय-विन्ध्याचल के बीच"[2] के प्रदेश में कीं। उत्तर में वे हिमालय के पार्श्व में स्थित कोलिय जनपद के निगम सापुग और हरिद्वार के समीप उशीरध्वज पर्वत तक गये और दक्षिण में सुंसुमारगिरि (चुनार) और विन्ध्याटवी (विञ्झाटवी) तक, जिसे सम्भवतः उन्होंने पार नहीं किया। पूर्व में भगवान् मध्य देश की पूर्वी सीमा पर स्थित कजंगल नामक निगम तक गये, जहाँ के वेणुवन या सुवेणुवन और मुखेलुवन में वे ठहरे। अंगुत्तराप के आपण नामक कस्बे तक भगवान् गये,

---

१. बरमी परम्परा सम्बन्धी उद्धरणों के लिये देखिये मललसेकर : डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ८०४, पद-संकेत ६४।

२. बुद्धचर्या, पृष्ठ ५ (भूमिका); मिलाइये मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ छह (प्राक्कथन)।

परन्तु उन्होंने कोसी नदी को पार किया हो, ऐसा उल्लेख नहीं मिलता। पश्चिम में भगवान् मथुरा तक तो गये ही[1], कुरु देश के थुल्लकोट्ठित[2] और कम्मासदम्म[3] नामक निगमों तक भी हम उन्हें जाते देखते हैं।

शाक्य कुमार गौतम ने २९ वर्ष की अवस्था में गृह-वास छोड़ा। उसके बाद छह वर्ष तक उन्होंने कड़ी तपस्या की और बोध प्राप्त किया। फिर ग्राम से ग्राम, निगम से निगम और नगर से नगर घूमते हुए भगवान् ने सद्धर्म का उपदेश दिया। वे निरन्तर धर्मोपदेश करते हुए चारिका करते रहते थे। केवल वर्षा के तीन मास (श्रावण, भाद्रपद और आश्विन, या भाद्रपद, आश्विन और कार्तिक)[4] एक स्थान पर निवास करते थे। इस प्रकार भगवान् ने ४६ वर्षावास अपने जीवन-काल में बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद किए, जिनका विवरण अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा (मनोरथपूरणी) और बुद्धवंस-अट्ठकथा (मधुरत्थविलासिनी) के अनुसार इस प्रकार ग्रथित किया जा सकता है :—

वर्षावास	स्थान जहाँ बिताया गया
१	ऋषिपतन मृगदाव
२—४	राजगृह
५	वैशाली
६	मकुल पर्वत
७	त्रायस्त्रिंश
८	सुंसुमारगिरि
९	वैशाली

---

१. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५७।

२. रट्ठपाल-सुत्त (मज्झिम, २।४।२)।

३. महासतिपट्ठान-सुत्त (दीघ० २।९); महानिदान-सुत्त (दीघ० २।२); निदान-सुत्त (संयुत्त-निकाय); सम्मसन सुत्त (संयुत्त-निकाय); सतिपट्ठान-सुत्त (मज्झिम, १।१।१०); मागन्दिय-सुत्त (मज्झिम २।३।५); आनञ्जसप्पाय-सुत्त (मज्झिम० ३।१।६)।

४. विनय-पिटक (हिन्दी-अनुवाद), पृष्ठ १७१-१७२।

वर्षावास	स्थान जहाँ बिताया गया
१०	पारिलेय्यक वन
११	नाला ब्राह्मण-ग्राम
१२	वेरंजा
१३	चालिय पर्वत
१४	श्रावस्ती
१५	कपिलवस्तु
१६	आलवी
१७	राजगृह
१८—१९	चालिय पर्वत
२०	राजगृह
२१—४५	श्रावस्ती (अनाथपिण्डिक द्वारा निर्मित जेतवनाराम और मृगारमाता के पूर्वाराम प्रासाद में)
४६	वैशाली के समीप वेलुव गाम में।[1]

चूँकि पालि तिपिटक के विभिन्न सुत्तों का संकलन काल-क्रम की दृष्टि से नहीं हुआ है और अट्ठकथाओं में भी सभी आवश्यक सूचना नहीं दी गई है, अतः भगवान् बुद्ध की चारिकाओं का परिपूर्ण कालक्रमानुपरक भौगोलिक विवरण देना हमारे वर्तमान ज्ञान की अवस्था में सम्भव नहीं है। हम कालक्रम के अनुसार एक स्थान से दूसरे स्थान तक भगवान् के चरणों का अनुगमन नहीं कर सकते। संगीतिकारों ने काल-परम्परा को पूर्णतः ग्रथित न कर हमें इसके लिये अवकाश नही दिया है। यह एक दुःखद अभाव है, परन्तु फिर भी पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं से बहुत कुछ सामग्री संकलित कर हम टूटे हुए सूत्रों को मिला सकते हैं और खाली जगहों को भर सकते हैं। इस प्रकार के प्रयत्न के द्वारा हम भगवान्

---

१. तिब्बती परम्परा के अनुसार भगवान् बुद्ध ने १७ वर्षावास जेतवनाराम में किये, आठ राजगृह में और शेष अन्य स्थानों में। देखिए ई० जे० थॉमस : दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ ९७, पद-संकेत १।

बुद्ध की चारिकाओं के भूगोल को यहाँ प्रस्तुत करेंगे, बुद्धत्व-प्राप्ति से पूर्व उनकी यात्रा को भूमिका के रूप में रखते हुए।

आषाढ़ मास की पूर्णिमा के दिन, मध्य रात्रि के समय, राहुल के जन्म के सात दिन बाद,[1] कन्थक की पीठ पर सवार होकर, जिस पर उनके पीछे पूँछ से लगा हुआ छन्दक (छन्न) भी बैठा था, शाक्य कुमार ने कपिलवस्तु के दरवाज़ों को छोड़ा। कपिलवस्तु से निकल कर जिस जगह उन्होंने घोड़े को, कपिलवस्तु के अन्तिम दर्शन करने के लिये, मोड़ा, वहाँ "कन्थक-निवत्तन-चेतिय" (कन्थक निवर्तन चैत्य) बाद में बनवाया गया। इस चैत्य को पाँचवीं शताब्दी ईसवी में फा-ह्यान ने देखा था और जनरल कनिंघम ने इस चैत्य के स्थान को वर्तमान चंदावली नामक गाँव से मिलाया है, जो औमी नदी के पूर्वी किनारे पर, गोरखपुर से दस मील दक्षिण में, स्थित है।[2] उस रात शाक्य कुमार ने ३० योजन यात्रा की और उन्होंने तीन राज्यों, शाक्य, कोलिय और मल्लब को पार किया। प्रातःकाल होते-होते वे अनोमा नदी के किनारे पर आये और सारथी से पूछा, "यह कौन सी नदी है?" "देव, अनोमा है।" "हमारी प्रव्रज्या भी अनोमा होगी", ऐसा कहकर शाक्य कुमार ने घोड़े को एड़ लगाई और वह छलाँग मारकर नदी के दूसरे किनारे पर जा खड़ा हुआ। कनिंघम ने अनोमा नदी को वर्तमान औमी नदी से मिलाया है,[3] जो ठीक जान पड़ता है। कारलाइल ने अनोमा नदी को वर्तमान कुडवा नदी से मिलाया था। परन्तु इस समस्या में हम यहाँ नहीं पड़ेंगे। अनोमा नदी को पार कर शाक्य कुमार ने जिस स्थान पर अपने जूड़े (चूड़ा) को अपनी तलवार से काटा, वहाँ बाद में "चूडामणि चैत्य" की स्थापना की गई। "चूडामणि चैत्य" को कनिंघम ने वर्तमान चुरेय नामक गाँव से मिलाया है, जो चन्दावली से तीन मील उत्तर में है। आगे चलकर शाक्य कुमार ने राजसी वस्त्रों को फेंककर काषाय वस्त्र

---

१. "तदा सत्ताहजातो राहुलकुमारो होती ति"। जातकट्ठकथा, पठमो भागो, (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी); देखिये जातक, प्रथम खंड, पृष्ठ ८१ (हिन्दी अनुवाद)।

२. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ४९०।

३. वहीं, पृष्ठ ४८५-४९०।

ग्रहण किये। जिस स्थान पर उन्होंने ये वस्त्र पहने, वहाँ पर "काषाय ग्रहण" नामक चैत्य स्थापित किया गया, जिसे जनरल कनिंघम ने वर्तमान कसेयर नामक गाँव से मिलाया है, जो चन्दावली से साढ़े तीन मील दक्षिण-पूर्व में है।[1] अनोमा नदी के पूर्वी प्रदेश में यात्रा करते हुए गौतम अनूपिया के आम्रवन (अनूपियम्बवन) में पहुँचे और वहाँ सात दिन तक उन्होंने ध्यान किया। यह अनूपिया मल्लों का एक कस्बा था और राजगृह से तीस योजन दूर था। यहाँ से चलकर शाक्य कुमार ने एक दिन में तीस योजन की यात्रा की और राजगृह आ गये। इस प्रकार पालि विवरण के अनुसार कपिलवस्तु से राजगृह तक की दूरी साठ योजन थी।[2] अनूपिया निगम दोनों के बीच में स्थित था। कपिलवस्तु से राजगृह की इस यात्रा की दिशा सामान्यतः दक्षिण-पूर्व-दक्षिण की ओर रही होगी और कनिंघम का अनुमान है कि अनूपिया से वैशाली होते हुए शाक्य कुमार राजगृह पहुँचे थे।[3] हम आगे चलकर देखेंगे कि बुद्ध-काल में एक प्रसिद्ध स्थल-मार्ग कपिलवस्तु से भी और ऊपर उत्तर में श्रावस्ती से चलकर सेतव्या, कपिलवस्तु, कुसिनारा, पावा, हत्थिगाम, भण्डगाम, वैशाली, पाटलिपुत्र और नालन्दा होता हुआ दक्षिण-पूर्व में राजगृह तक आता था, जिसका कुछ अनुगमन तथागत ने अपनी अन्तिम यात्रा में, जो उन्होंने राजगृह से कुसिनारा तक की, किया था। इस मार्ग के पड़ाव, जिन पर तथागत रुके, राजगृह से प्रारम्भ कर इस प्रकार थे, राजगृह, अम्बलट्ठिका, नालन्दा, पाटलिगाम, कोटिगाम, नादिका, वैशाली, भण्डगाम, हत्थिगाम, अम्बगाम, जम्बुगाम, भोगनगर, पावा और कुसिनारा। यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि इस अन्तिम यात्रा के पड़ावों में वज्जि जनपद के हत्थिगाम, अम्बगाम और जम्बुगाम तथा मल्ल राष्ट्र के भोगनगर का तो उल्लेख है, परन्तु मल्ल राष्ट्र के ही अनूपिया निगम का उल्लेख नही है। इसका अर्थ यह है कि इस अन्तिम यात्रा में वैशाली से कुसिनारा के लिये जिस मार्ग को भगवान् ने लिया था, वह अनूपिया के पूर्व में

---

१. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ४८८-४९१।
२. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ११३, (हिन्दी अनुवाद)।
३. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ४८६

होकर जाता था।[१] शाक्य कुमार ने इस प्रथम यात्रा में अनूपिया के बाद राजगृह के लिये किस मार्ग को ग्रहण किया, इसका कोई स्पष्ट उल्लेख पालि तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओं में नहीं है। परन्तु महावस्तु[२] में शाक्य कुमार का वैशाली होकर राजगृह जाना दिखाया गया है। अतः कनिंघम के पूर्वोक्त अनुमान को कि शाक्य कुमार वैशाली होकर राजगृह गये, महावस्तु से समर्थन प्राप्त होता है, जिसका पता सम्भवतः उन्हें नहीं था। मगध की राजधानी गिरिव्रज अर्थात् प्राचीन राजगृह में पाण्डव पर्वत (पण्डव पब्बत) पर, जिसे वर्तमान रत्नकूट या रत्नगिरि से मिलाया गया है, बिम्बिसार इस आश्चर्यमय तरुण संन्यासी से मिलने गया और उसके समझाने-बुझाने पर भी जब शाक्य कुमार सांसारिक जीवन बिताने के लिये तैयार न हुए, तो उसने उनसे यह प्रार्थना की कि वे ज्ञान प्राप्त करने के बाद राजगृह अवश्य पधारें।[३] राजगृह से शाक्यकुमार उरुवेला की ओर चल दिये और मार्ग में उन्होंने पहले आलार कालाम (अराड या आराड कालाम) और फिर उद्दक रामपुत्त (उद्रक या रुद्रक रामपुत्र) के पास साधना की, जिन दोनों के आश्रम राजगृह और उरुवेला के बीच इस मार्ग में ही अवस्थित थे।[४]

---

१. ई० जे० थॉमस : दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ १४८, पद-संकेत १।

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ११७-१२०।

३. पब्बज्जा-सुत्त (सुत्त निपात); जातकट्ठकथा, पठमोभागो, पृष्ठ ५०। (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी); जातक, प्रथम खंड, पृष्ठ ८७। (हिन्दी अनुवाद); मिलाइये ललितविस्तर, पृष्ठ २४३; बुद्धचरित ११।७२; महावस्तु, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९८-२००

४. यह विवरण जातक, प्रथम खंड, पृष्ठ ८७ (हिन्दी अनुवाद) तथा पासरासि (अरिय-परियेसन) सुत्त (मज्झिम १।३।६) पर आधारित है। बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ महावस्तु (जिल्द दूसरी, पृष्ठ ११७-१२०) के अनुसार शाक्यकुमार पहले कपिलवस्तु से सीधे वैशाली गये जहाँ आलार कालाम से उनकी भेंट हुई और फिर राजगृह में वे उद्दक रामपुत्त से मिले। इस प्रकार इस विवरण के अनुसार आलार कालाम का आश्रम वैशाली में और उद्रक रामपुत्र का राजगृह में मानना पड़ेगा। 'बुद्धचरित' महाकाव्य (७।५४) में विन्ध्यकोष्ठ नामक स्थान में अराड का

आलार कालाम और उद्दक रामपुत्त के पास क्रमशः शिक्षा प्राप्त कर गौतम उरुवेला में सेनानी-ग्राम नामक स्थान पर पहुँचते हैं। इस स्थान को उन्होंने ध्यान के योग्य समझा और बैठ गये। यहीं कौण्डिन्य आदि पांच परिव्राजक, जो पंचवर्गीय भिक्षु कहलाते हैं, गौतम को मिले और तब तक उनके पास रहे जब तक गौतम ने कठिन तपश्चर्या की। जब गौतम ने स्थूल आहार ग्रहण करना शुरू किया, तो उन्हें पतित समझ ये पञ्चवर्गीय भिक्षु उन्हें छोड़कर अपने पात्र-

---

आश्रम बताया गया है, जहाँ राजगृह में बिम्बिसार से मिलने (दसवाँ सर्ग) के बाद गौतम बोधिसत्व जाते हैं (बारहवाँ सर्ग)। इसके बाद गौतम का उद्रक रामपुत्र के आश्रम में जाना (१२।८४) तथा तदनन्तर नैरंजना के तट पर जाना (१२।९०) दिखाया गया है। अतः इस वर्णन से भी अराड के विन्ध्यकोष्ठ आश्रम का तथा उसके बाद उद्रक रामपुत्र के आश्रम का राजगृह और उरुवेला के बीच ही कहीं होना सिद्ध होता है। ललितविस्तर, पृष्ठ २४३-२४८ के अनुसार गौतम पहले वैशाली आये और आलार कालाम से मिले (तेन खलु पुनः समयेनाराडः कालामो वैशालीमुपनिसृत्य प्रतिवसतिस्म) और फिर राजगृह में बिम्बिसार से मिलने के बाद उद्रक रामपुत्र (रुद्रको रामपुत्रो) से मिले जो राजगृह में ही रहता था। इस प्रकार इस वर्णन के अनुसार 'महावस्तु' के समान ही आलार कालाम का आश्रम वैशाली में और उद्रक रामपुत्र का राजगृह में मानना पड़ेगा, जो पालि परम्परा से नहीं मिलता। परन्तु बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ 'दिव्यावदान' (पृष्ठ ३९२) में पालि विवरण के अनुसार ही बिम्बिसार से मिलने के बाद गौतम का क्रमशः आराड और उद्रक रामपुत्र के पास जाना दिखाया गया है। अतः पालि परम्परा को ही हम प्रामाणिक मान सकते हैं। गौतम बोधिसत्व ने बाल्यावस्था में ही अपने पिता के खेत के पास जामुन के वृक्ष के नीचे प्रथम ध्यान प्राप्त किया था। इस तथ्य को अपने मन के अनुसार व्याख्या करते हुए आचार्य धर्मानन्द कोसम्बी ने यह सिद्ध करने का प्रयत्न किया है कि बोधिसत्व ने सम्भवतः यह ध्यान कोसल-निवासी आलार कालाम से ही सीखा होगा, जिसका आश्रम उनके मतानुसार कपिलवस्तु के कहीं आसपास या कोसल देश में होगा। उद्रक रामपुत्र के आश्रम को भी आचार्य कोसम्बी जी ने आलार कालाम के आश्रम के आसपास

चीवर ले इसिपतन चले गये। उरुवेला के सेनानी-गाम से इसिपतन की दूरी जातकट्ठकथा में १८ योजन बताई गई है।[1]

छह वर्ष की कड़ी तपस्या के बाद एक दिन, वैशाख-पूर्णिमा के दिन, जिस दिन उन्हें बुद्धत्व-प्राप्ति होने वाली थी, प्रातःकाल गौतम ने समीप बहती हुई नेरंजरा (नीलाजन) नदी के सुप्पतिट्ठित तित्थं (सुप्रतिष्ठित तीर्थ) में स्नान किया और सुजाता-प्रदत्त खीर का भोजन किया। इसके बाद ४९ दिन तक उन्होंने कुछ नहीं खाया।

वैशाख (विसाख) पूर्णिमा के दिन, रात्रि के अन्तिम याम में, गौतम ने ज्ञान प्राप्त किया और वे बुद्ध बने। ज्ञान-प्राप्ति के बाद भगवान् ने सात सप्ताह बोधिवृक्ष और कुछ अन्य वृक्षों के नीचे समाधि-सुख में बिताये। बोधिवृक्ष के नीचे और उसके पास चार सप्ताह ध्यान करने के पश्चात् भगवान् अजपाल नामक बरगद के वृक्ष के नीचे गये। वहाँ एक सप्ताह तक उन्होंने ध्यान किया। इसके बाद भगवान् मुचलिन्द नामक वृक्ष के नीचे गये, जहाँ भी उन्होंने एक सप्ताह तक ध्यान किया।

तदनन्तर भगवान् ने राजायतन नामक वृक्ष के नीचे एक सप्ताह तक ध्यान किया। इस प्रकार बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद सात सप्ताह तक भगवान् ने बोधि-वृक्ष

कहीं माना है। इन दोनों ध्यान-गुरुओं से भेंट करने के बाद बोधिसत्व राजगृह गये, ऐसी नई कल्पना आचार्य कोसम्बी ने की है। देखिये उनकी पुस्तक 'भगवान् बुद्ध' (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ १०६-११७; 'भारतीय संस्कृति और अहिंसा', पृष्ठ ५२-५३। आदि से अन्त तक ऊलजलूल कल्पनाओं और निराधार तर्कों पर आश्रित होने के कारण आचार्य कोसम्बी जी का मत ग्राह्य नहीं हो सकता। पालि और अधिकांश बौद्ध संस्कृत साहित्य की परम्परा के स्वीकृत इस तथ्य को मानने में हमें कोई असंगति दिखाई नहीं पड़ती कि आलार कालाम और उद्दक रामपुत्त के आश्रम राजगृह और उरुवेला के बीच कहीं स्थित थे और वहीं, राजगृह में बिम्बिसार राजा से भेंट करने के पश्चात्, गौतम बोधिसत्व गये और उन गुरुओं से योग सीखा।

१. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ८९ (हिन्दी अनुवाद)।

और उसके पास विभिन्न वृक्षों के नीचे ध्यान किया। सातवें सप्ताह की समाप्ति पर उन्होंने मुंह धोया और दाँतौन की। इसी समय उत्कल जनपद से (उक्कला जनपदा) मध्यम देश की ओर जाते हुए (मज्झिमदेसं गच्छन्ता) तपस्सु और भल्लिक नामक दो व्यापारियों (वाणिजा) ने, जो पाँच सौ गाड़ियों के साथ (पञ्चहि सकटसतेहि) चले जा रहे थे, भगवान् को राजायतन वृक्ष के नीचे बैठे देखा और मट्ठे (मन्थं) और लड्डू (मधुपिण्डिकं) से भगवान् का सत्कार किया, जिसे उन्होंने कृपापूर्वक स्वीकार किया। तदनन्तर हम भगवान् को फिर अजपाल नामक बर्गद के पेड़ के नीचे जाते देखते हैं। यहीं पर उन्होंने धर्म-प्रचार का संकल्प किया और सम्भवतः इसी समय कहा, "रट्ठा रट्ठं विचरिस्सं सावके विनयं पुथु"[१] अर्थात् "अब मैं बहुत से शिष्यों को विनीत करते हुए एक राष्ट्र से दूसरे राष्ट्र में विचरूँगा।" इस संकल्प के पश्चात् ही भगवान् वाराणसी के इसिपतन मिगदाय (ऋषिपतन मृगदाव) की ओर चल पड़ते हैं, जहाँ पंचवर्गीय भिक्षु उस समय निवास कर रहे थे। उरुवेला से काशियों के नगर वाराणसी को जाते हुए बोधगया

इसी प्रकार अंगुत्तर-निकाय के भरण्डु-कालाम-सुत्त से भी आचार्य धर्मानन्द कोसम्बी ने यही निष्कर्ष निकालने का प्रयत्न किया है कि आलार कालाम का आश्रम कपिलवस्तु के समीप था। इस सुत्त में एक बार भगवान् बुद्ध के कपिलवस्तु में आने का उल्लेख है, जहाँ उन्हें कहीं उपयुक्त वास न मिलने के कारण एक रात के लिये अपने पूर्व के सब्रह्मचारी भरण्डु कालाम के आश्रम में टिकना पड़ा। इस भरण्डु कालाम के साथ उन्होंने आलार कालाम के आश्रम में योग सीखा था और अब यह भरण्डु कालाम आश्रम बनाकर यहाँ कपिलवस्तु के समीप निवास कर रहा था। चाहे भरण्डु कालाम उसी गोत्र का रहा हो जिसका आलार कालाम था और यह निश्चयतः ऐसा था भी। पर इससे यह तो निष्कर्ष नहीं निकाला जा सकता कि आलार कालाम का भी आश्रम कपिलवस्तु में रहा होगा। एक गुरु के कई शिष्य भिन्न-भिन्न स्थानों में आश्रम बनाकर रह सकते हैं और ऐसा ही एक भरण्डु कालाम था, जो कपिलवस्तु में रह रहा था। इससे आलार कालाम के आश्रम के कपिलवस्तु में होने की बात कहाँ से आती है ?

१. पधान-सुत्त (सुत्त-निपात)।

और गया के बीच रास्ते में भगवान् को उपक नामक आजीवक मिला और उससे उन्होंने कहा, "मैं जिन हूँ।"

क्रमशः चारिका करते हुए भगवान् वाराणसी के समीप ऋषिपतन मृगदाव में पहुँचे।[१] यहाँ उन्होंने आषाढ़ पूर्णिमा को धम्मचक्कपवत्तन-सुत्त का उपदेश दिया और पञ्चवर्गीय भिक्षुओं को त्रिरत्न-शरणागति प्राप्त हुई। इसके पाँच दिन बाद अनत्तलक्खण-सुत्तन्त का उपदेश दिया गया। इसके दूसरे दिन वाराणसी के प्रसिद्ध श्रेष्ठि-पुत्र यश की प्रव्रज्या हुई। इसके बाद यश के कई गृहस्थ मित्र भिक्षु बने और क्रमशः अर्हतों की संख्या, भगवान् बुद्ध को छोड़कर, ६० हो गई।

ऋषिपतन मृगदाव में भगवान् ने अपना प्रथम वर्षावास किया, जिसके बाद वे आश्विन पूर्णिमा (महापवारणा) के दिन ६० भिक्षुओं को भिन्न-भिन्न दिशाओं में धर्म-प्रचारार्थ जाने का आदेश देकर, स्वयं उरुवेला के सेनानीगाम की ओर चल पड़े। वाराणसी होते हुए वे पहले कप्पासिय-वनखण्ड में पहुँचे जहाँ भद्रवर्गीय नामक तीस व्यक्तियों को प्रव्रजित किया और फिर उरुवेला पहुँच कर भगवान् वहाँ तीन मास ठहरे। उरुवेला के तीन प्रसिद्ध जटाधारी साधु-बन्धुओं (तेभातिक जटिले), उरुवेल काश्यप, नदी काश्यप और गया काश्यप, को, उनके विशाल साधु-संघ के सहित भगवान् ने उपसपादित किया। अपने इन अनुगामियों को साथ लेकर भगवान् उरुवेला से गया के गयासीस पर्वत पर गये जहाँ उन्होंने आदित्त-परियाय-सुत्त का उपदेश दिया। तदनन्तर भिक्षु-संघ-सहित भगवान् चारिका करते हुए पौष (फुस्स) मास की पूर्णिमा को राजगृह पहुँचे। यहाँ भगवान् लट्ठि-वनुय्यान (यष्टिवन उद्यान—वर्तमान जेठियन) के सुप्रतिष्ठ चैत्य मे ठहरे। यहीं मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार उनसे मिलने आया। दूसरे दिन भोजनोपरान्त

---

१. बीच की यात्रा का विवरण पालि तिपिटक में नहीं है। परन्तु ललित-विस्तर, पृष्ठ ४०६-४०७, में बीच के पड़ावों का भी उल्लेख है। उदाहरणतः वहाँ कहा गया है कि बीच में गंगा नदी को पार करने में भगवान् को कठिनाई हुई, क्योंकि उनके पास नाव वाले को देने के लिये पैसे नहीं थे। बाद में बिम्बिसार को जब यह बात मालूम पड़ी तो उसने सब साधुओं को निःशुल्क पार उतारने की आज्ञा दी।

बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को उसने वेणुवन उद्यान अर्पित किया। इसके बाद भगवान् दो मास तक और राजगृह में ठहरे और फिर इसी वर्ष, वर्षावास से पूर्व, लिच्छवियों की प्रार्थना पर, जो उन्होंने महालि के द्वारा भेजी थी, भगवान् वैशाली गये। इस समय वैशाली नगरी भयंकर महामारी से पीड़ित थी। भगवान् ने वहाँ जाकर रतन-सुत्त का उपदेश दिया और वैशालीवासियों के सब रोग-दुःख दूर हुए।[1] वैशाली से लौटकर भगवान् फिर राजगृह आ गये जहाँ वे वेणुवन में ठहरे। परन्तु शीघ्र ही फाल्गुण (फग्गुण) की पूर्णिमा को उन्होंने अपने पिता और परिजनों के अनुकम्पार्थ, अपने बाल्यावस्था के मित्र काल उदायी की प्रार्थना पर, जिसे शुद्धोदन ने उन्हें कपिलवस्तु लाने के लिये भेजा था, कपिलवस्तु के लिये प्रस्थान कर दिया। जातकट्ठकथा की निदान-कथा में राजगृह से कपिलवस्तु की दूरी ६० योजन बतायी गई है।[2] भगवान् दो मास में कपिलवस्तु पहुँचना चाहते थे। इसलिये धीमी चाल से चले। भगवान् के साथ अंग-मगध जनपदों के अनेक निवासी भी थे। निश्चित समय पर भगवान् कपिलवस्तु पहुँचे, जहाँ उन्हें न्यग्रोधाराम में निवास प्रदान किया गया। मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा के अनुसार भगवान् बुद्ध की कपिलवस्तु की इस प्रथम यात्रा के अवसर पर ही उनकी मौसी महापजावती गोतमी ने अपने हाथ से काते, बुने, नये दुस्स (धुस्से) के जोड़े को भगवान् को भेंट करने की इच्छा प्रकट की, जिसका वर्णन मज्झिम-निकाय के दक्खिणा-विभंग-सुत्त में है। नन्द और राहुल की प्रव्रज्या इसी समय हुई और उसके थोड़े समय बाद ही भगवान् कपिलवस्तु से चल दिये और मल्लों के देश में चारिका करते हुए अनूपिया के आम्रवन में पहुँचे, जहाँ भद्दिय, अनुरुद्ध, आनन्द, भृगु, किम्बिल, देवदत्त और उपालि की प्रव्रज्या हुई। आगे चलते हुए भगवान् राजगृह लौट आये, जहाँ के सीतवन में (जो एक श्मशान-वन था) उन्होंने अपना दूसरा वर्षावास किया।

इसी स्थान पर श्रावस्ती का श्रेष्ठी सुदत्त (अनाथपिण्डिक), जो राजगृह में अपने किसी काम से आया था, भगवान् से मिला और उनसे प्रार्थना की

---

१. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४३६-४४०।

२. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ११३ (हिन्दी अनुवाद)।

कि भगवान् अपना अगला वर्षावास कृपा कर श्रावस्ती में करें। भगवान् ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया और राजगृह से चलकर पहले वैशाली पहुँचे, जहाँ की महावन कूटागारशाला में उन्होंने विहार किया और फिर आगे चारिका करते हुए श्रावस्ती पहुँचे। यहाँ अनाथपिण्डिक ने ५४ कोटि धन से जेतवनाराम बनवा कर आगत-अनागत चातुर्दिश भिक्षु-संघ को अर्पित किया। डा० ई० जे० थॉमस[1] और मललसेकर[2] ने दिखाया है कि इसी समय विशाखा मृगारमाता ने पूर्वाराम नामक विहार बनवाकर बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-सघ को दान किया। परन्तु महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इस घटना को भगवान् बुद्ध के बाईसवें वर्षावास के समय घटित बताया है।[3] चूंकि घटनाओं का कालानुक्रम-परक वर्णन पालि तिपिटक में नहीं है और अट्ठकथाओं का भी इस विशिष्ट घटना के सम्बन्ध में कोई स्पष्ट साक्ष्य नहीं है, अतः निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। विनय-पिटक के चुल्लवग्ग में जेतवन-स्वीकार के बाद विहार की चीजों के उपयोग सम्बन्धी कुछ नियमों का विधान है और उसके बाद ही विशाखा मृगार-माता द्वारा हस्तिनख प्रासाद बनवाने की इच्छा का उल्लेख है।[4] परन्तु, जैसा हम अभी कह चुके हैं, यह कालानुक्रम का सूचक नहीं माना जा सकता।

इसी प्रकार सन्देहास्पद बात यह है कि भगवान् ने अपनी तृतीय वर्षा (वस्सा) श्रावस्ती में ही बिताई या वे लौटकर राजगृह आये। जैसा हम पहले देख चुके है, अनाथपिण्डिक ने प्रथम बार राजगृह में भगवान् से यह प्रार्थना की थी कि वे अपना अगला वर्षावास श्रावस्ती में करने की कृपा करें। विनय-पिटक के चुल्लवग्ग के वर्णनानुसार उसने भगवान् से कहा था, "भन्ते ! भिक्षु-संघ के साथ भगवान् श्रावस्ती में वर्षावास स्वीकार करें।" भगवान् ने इसके उत्तर में कहा था, "शून्य आगार में गृहपति ! तथागत अभिरमण (विहार) करते हैं।"[5] तथागत के इस अभिप्राय को

१. दि लाइफ ऑव बुद्ध ऐज़ लीजेण्ड एण्ड हिस्ट्री, पृष्ठ १०५-१०७।

२. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ७९६।

३. बुद्धचर्या, पृष्ठ ३१४-३१९।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४६५-४७०।

५. वहीं, पृष्ठ ४६१।

समझकर ही अनाथपिण्डिक ने जेतवनाराम को शान्त, एकान्त स्थान में, न गाँव से बहुत दूर, न बहुत समीप, बनवाया था। अतः विनय-पिटक के इस प्रसंग से तो यही जान पड़ता है कि भगवान् जब श्रावस्ती गये और जेतवन उन्हें दान किया गया तो वे उस वर्षा, जो उनकी बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद की तृतीय वर्षा थी, श्रावस्ती में ही रहे।[1] परन्तु विनय-पिटक के चुल्लवग्ग के इसके ठीक आगे के विवरण में हम भगवान् को श्रावस्ती से क्रमशः कीटागिरि (काशी जनपद) और आलवी (पञ्चाल राज्य) होते हुए राजगृह पहुँचते देखते हैं,[2] जिससे यह प्रकट होता है कि उन्होंने वर्षावास राजगृह में ही किया। यह भी सम्भव है कि विनय-पिटक के ये दोनों विवरण विभिन्न समयों से सम्बन्धित हों और एक साथ लगातार क्रम से रख दिये गये हों। विनय-पिटक के समान अट्ठकथाओं का साक्ष्य भी इस विषय में हमारी सहायता नहीं करता। इस घटना को लेकर उनमें भी वैमत्य दिखाई पड़ता है। अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा और बुद्धवंस की अट्ठकथा के अनुसार, जिनके साक्ष्य को हम पहले देख चुके हैं, भगवान् ने तृतीय वर्षावास राजगृह में ही किया। परन्तु यदि हम विशाखा मृगारमाता के पूर्वाराम प्रासाद के दान को भगवान् की इस यात्रा से सम्बन्धित मानें, जैसा महामति राहुल सांकृत्यायन ने नहीं माना है, तो धम्मपदट्ठकथा के अनुसार हमें मानना पड़ेगा कि जब पूर्वाराम प्रासाद बन चुका था तो विशाखा ने भगवान् से प्रार्थना की थी, "भन्ते, भगवान् इस चातुर्मास में भिक्षु-संघ को लेकर यहीं वास करें। मैं प्रासाद का उत्सव करूँगी।"[3] जिसे भगवान् ने स्वीकार कर लिया था। इस प्रकार तथागत का तृतीय वर्षावास श्रावस्ती के पूर्वाराम प्रासाद में मानना पड़ेगा और अंगुत्तर-निकाय और बुद्धवंस की अट्ठकथाओं से स्पष्ट विरोध होगा। अतः ऐसा लगता है कि

---

१. तिब्बती दुल्व (विनय-पिटक) भी भगवान् बुद्ध का तृतीय वर्षावास श्रावस्ती में बिताना ही मानती है। देखिए रॉकहिल : दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ ६२, पद-संकेत १।

२. विनय-पिटक, पृष्ठ ४७१-४७४।

३. बुद्धचर्या, पृष्ठ ३२७ में उद्धृत।

पूर्वाराम प्रासाद का दान जेतवन-दान से काफी बाद की घटना है और भगवान् ने अपना तृतीय वर्षावास राजगृह में ही किया।

भगवान् ने अपना चतुर्थ वर्षावास राजगृह के वेणुवन कलन्दक निवाप में किया। यहीं उन्होंने राजगृह के एक श्रेष्ठि-पुत्र को, जिसका नाम उग्गसेन (उग्रसेन) था और जो रस्सी पर नाच दिखाने वाली एक नटिनी के प्रेम में पड़कर स्वयं इस काम को करने लगा था, बुद्ध-धर्म में दीक्षित किया।[1]

बुद्धत्व-प्राप्ति के पाँचवें वर्ष में भगवान् के पिता शुद्धोदन की मृत्यु हो गई। इसी समय शाक्यों और कोलियों में रोहिणी नदी के पानी को लेकर झगड़ा हुआ।[2] भगवान् इस समय वैशाली की महावन कूटागारशाला में विहर रहे थे। वे वहाँ से कपिलवस्तु गये और वहाँ के न्यग्रोधाराम में ठहरे। यह भगवान् के द्वारा की गई कपिलवस्तु की दूसरी यात्रा थी। इसी समय महापजावती गोतमी ने भगवान् से प्रार्थना की कि वे उन्हें भिक्षुणी बनने की अनुमति दे दें। भगवान् ने उसकी प्रार्थना स्वीकार नहीं की और वैशाली लौट आये, जहाँ उन्होंने अपना पाँचवाँ वर्षावास किया। यहीं पर फिर महापजावती गोतमी ने आकर आनन्द की सहायता से भगवान् से भिक्षुणी बनने की अनुमति प्राप्त कर ली और भिक्षुणी-संघ का प्रारम्भ हुआ।

---

१. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द चौथी, पृष्ठ ५९।

२. डा० ई० जे० थॉमस (दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ १०७) और मललसेकर (डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ७९६) ने इस घटना को बुद्धत्व-प्राप्ति के पाँचवें वर्ष में ही दिखाया है, जब कि उसके शमनार्थ भगवान् वहाँ वैशाली से कुछ समय के लिये गये। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने उक्त घटना को भगवान् बुद्ध के पन्द्रहवें वर्षावास के समय घटित दिखाया है जिसे उन्होंने कपिलवस्तु में किया। देखिये बुद्धचर्या, पृष्ठ २३३-२३५। यहाँ यह उल्लेखनीय है कि थेरीगाथा-अट्ठकथा, सुत्त-निपात-अट्ठकथा और अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा में शाक्य और कोलियों के विवाद का वर्णन है, परन्तु वहाँ इसके निश्चित समय का उल्लेख नहीं है। अतः दोनों ही मत अवकाश प्राप्त कर सकते हैं।

छठी वर्षा भगवान् ने मंकुल पर्वत पर बिताई, जिसकी स्थिति अभी निश्चित नहीं हो सकी है। डा० मललसेकर ने मंकुल पर्वत को सूनापरान्त जनपद के मंकुलकाराम नामक विहार से मिलाया है, जहाँ स्थविर पूर्ण (पुण्ण) धर्म प्रचार करते हुए निवास करते थे।[1] इस प्रकार उनके मतानुसार इसे सूनापरान्त जनपद में होना चाहिए। परन्तु यह पहचान सर्वथा असन्दिग्ध नहीं है।[2] मंकुलकाराम में

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४०७।

२. सबसे बड़ी बात तो यह है कि बुद्धत्व-प्राप्ति की छठी वर्ष में ही बुद्ध-धर्म का सूनापरान्त जनपद अर्थात् ठाणा और सूरत के जिलों तथा उनके आसपास के प्रदेश तक इस हद तक प्रचार, जो हमें मंकुलकाराम को मंकुल पर्वत मानने पर मानना पड़ेगा, पालि विवरणों के आधार पर संगत नहीं जान पड़ता। पूर्ण का एक व्यापारी के रूप में सूनापरान्त जनपद से श्रावस्ती आना और भगवान् बुद्ध के दर्शन कर स्थविर हो जाना और फिर अपनी जन्म-भूमि सूनापरान्त में जाकर विहार स्थापित करवाना और बुद्धत्व-प्राप्ति की छठी वर्ष में ही भगवान् बुद्ध को वहाँ आने के लिये निमन्त्रित कर देना, यह सब कुछ अल्प समय में अधिक काम कर लिया गया जान पड़ता है, यद्यपि नितान्त असम्भव तो नहीं कहा जा सकता। फिर भी, जब तक मंकुल पर्वत की अन्य ठीक स्थिति निर्धारित न हो जाय, निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने 'महामानव बुद्ध', पृष्ठ १०, में मंकुल पर्वत को बिहार का कोई पहाड़ माना है, परन्तु अपनी मान्यता का उन्होंने कोई कारण नहीं दिया है। डा० नलिनाक्ष दत्त और श्रीकृष्ण दत्त बाजपेयी ने (उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास, पृष्ठ ७५, टिप्पणी) में मंकुल पर्वत के सम्बन्ध में इतना तो (सम्भवतः मललसेकर के उपर्युक्त मत को ध्यान में रखते हुए) कह दिया है कि "यह सूनापरान्त का मंकुलकाराम नहीं है", परन्तु निश्चित रूप से वे इसकी अन्य कोई स्थिति नहीं बता पाये हैं, सिवाय इसके कि "यह श्रावस्ती के निकट का कोई एकान्त स्थान हो सकता है", जिसके लिये भी उन्होंने कोई कारण नहीं दिया है। जब तक किसी ठीक स्थिति का पता नहीं लगता, हम मललसेकर के मत को मानना ही अधिक समीचीन समझते हैं।

स्थविर पूर्ण की प्रार्थना पर भगवान् बुद्ध गये थे, परन्तु वहाँ वर्षावास के केवल सात दिन ठहरे थे।[१] स्थविर पूर्ण के उपासको ने यहाँ भगवान् के लिए एक "गन्धकुटी" और "चन्दनशाला" (चन्दनसाला) बनवाई थीं। भगवान् श्रावस्ती से मंकुल-काराम को जाते हुए मार्ग में सच्चबन्ध (सच्चबद्ध भी पाठान्तर) नामक पर्वत पर ठहरे थे और वहाँ से वापस आते हुए उन्होंने पहले नम्मदा (नर्मदा) नदी के तट पर विहार किया था और फिर सच्चबन्ध पर्वत पर होते हुए श्रावस्ती लौटे थे। बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद छठे वर्ष में ही श्रावस्ती में ऋद्धि-प्रातिहार्य का प्रदर्शन किया गया।

सातवाँ वर्षावास भगवान् ने त्रायस्त्रिंश लोक के पाण्डु-कम्बल-शिला नामक स्थान में किया और पवारणा (आश्विन पूर्णिमा) के दिन संकस्स (संकाश्य—वर्तमान संकिसा बसन्तपुर, जिला फर्रुखाबाद, काली नदी के पास, उत्तरी रेलवे के मोटा स्टेशन के समीप) नामक स्थान पर उतरे, जिसकी दूरी धम्मपदट्ठकथा[२] तथा जातक[३] में श्रावस्ती से ३० योजन बताई गई है। कण्ह जातक के अनुसार भगवान् संकाश्य से श्रावस्ती चले गये, जहाँ वे अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में ठहरे। डॉ० ई० जे० थॉमस का अनुमान है कि श्रावस्ती की चिंचा माणविका ने इसी समय अपना निन्दित काण्ड रचा[४]। परन्तु महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने इसे बुद्धत्व-प्राप्ति के इक्कीसवें वर्ष में रक्खा है।[५] धम्मपदट्ठकथा में इस काण्ड के काल के सम्बन्ध में केवल इतनी ही सांकेतिक सूचना दी गई है कि जब "प्रथम बोधि में (बोधि के बाद के बीस वर्षों में) दशबल (बुद्ध) को महालाभ-सत्कार उत्पन्न हुआ",[६] तो उस समय चिंचा ने तैथिकों की अभिसन्धि से उक्त काण्ड रचा। अतः यह

---

१. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १५।
२. जिल्द तीसरी, पृष्ठ १९९।
३. जिल्द चौथी, पृष्ठ २६५।
४. दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ ११४।
५. बुद्धचर्या, पृष्ठ ३१६।
६. बुद्धचर्या, पृष्ठ ३१६ में उद्धृत; मिलाइये जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ १८७ भी।

काण्ड बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद छठे वर्ष से लेकर (जब भगवान् ने ऋद्धि-प्रातिहार्य किया) इक्कीसवें वर्ष तक कभी भी रक्खा जा सकता है।

आठवीं वर्षा भगवान् बुद्ध ने भग्गों के देश में सुंसुमार गिरि के समीप भेसकला-वन मृगदाव में बिताई, जहाँ वे वैशाली से गये थे।[१] आदर्श वृद्ध दम्पती नकुल-पिता और नकुल-माता, जो भग्ग देश के सुंसुमार-गिरि-नगर के निवासी थे, यहीं भगवान् से मिले। एक अत्यन्त आश्चर्यजनक व्यवहार, अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा के अनुसार, इन वृद्ध व्यक्तियों ने इस समय दिखाया। जैसे ही उन्होंने भगवान् को देखा वे उनसे लिपट गये और कहने लगे, "यह हमारा पुत्र है।" और फिर वात्सल्य स्नेह से अभिभूत होकर भगवान् के चरणों में गिर गये और रोकर कहने लगे, "पुत्र, तुम इतने दिनों से हमें छोड़कर कहां चले गये थे ? तुम इतने दिन तक कहाँ रहे ?" बुद्ध ने उनके इस व्यवहार की ओर ध्यान नहीं दिया और उन्हें धर्मोपदेश किया। वस्तुतः बात यह थी कि नकुल-पिता और नकुल-माता भगवान् बुद्ध के पूर्व जन्मों में अनेक बार पिता-माता, दादा-दादी आदि रहे थे। भगवान् के सुंसुमार-गिरि में निवास करने के समय नकुल-पिता और नकुल-माता ने अनेक बार उन्हें भोजन के लिये निमन्त्रित किया और उन्हें बताया कि उन्होंने अपने जीवन में कभी एक दूसरे पर क्रोध नहीं किया है और उनकी इच्छा है कि वे इसी प्रकार परस्पर प्रेमपूर्वक दूसरे जन्म में भी रहें। भगवान् ने इन दोनों उपासकों को विश्वासकों में श्रेष्ठ बताया था।

नवीं वर्षा भगवान् बुद्ध ने कौशाम्बी में बिताई। इसी वर्ष वे कुरु देश में चारिका के लिये भी गये और उसके कम्मासदम्म नामक प्रसिद्ध निगम मे मागन्दिय ब्राह्मण द्वारा अपनी सुवर्णवर्णा कन्या मागन्दिया को उन्हें प्रदान करने का प्रस्ताव किया गया, जिसके उत्तर में भगवान् ने ब्राह्मण से कुछ न कहकर किसी दूसरे से बोलने की भाँति कहा, "तृष्णा, रति और राग को देखकर मैथुन-भाव में मेरा विचार नहीं हुआ। यह मल-मूत्र-पूर्ण क्या है, जिसे कोई पैर से भी न छूना चाहे।"[२]

बुद्धत्व-प्राप्ति के दसवें वर्ष में कौशाम्बी के भिक्षु-संघ में एक कलह उत्पन्न

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४३६।
२. मागन्दिय-सुत्त (सुत्त-निपात)।

हो गया। किसी भिक्षु को उत्क्षेपण का दण्ड दिया गया था। उसी की वैधता या अवैधता को लेकर यह झगड़ा हुआ, जिसके शमन का प्रयत्न भगवान् ने किया, परन्तु सफल न हुए। खिन्न होकर भगवान् एकान्तवास की इच्छा करते हुए कौशाम्बी के घोषिताराम से, जहाँ यह विवाद चल रहा था, चल दिये और क्रमशः बालकलोणकार गाम और पाचीनवंस (मिग) दाय में चारिका करते हुए पारिलेय्यक वन में पहुँचे,[१] जहाँ के रक्षित वनखण्ड में उन्होंने अपना दसवाँ वर्षावास किया। बालकलोणकार गाम कौशाम्बी के पास एक गाँव था जिसे हम वंस या चेदि जनपद में मान सकते हैं। पाचीनवंस (मिग) दाय के सम्बन्ध में, जैसा हम चेदि राष्ट्र के विवेचन में देखेंगे, हमें यह निश्चित रूप से मालूम है कि वह चेदि राष्ट्र में था। पारिलेय्यक वन और उसके रक्षित वनखण्ड को सम्भवतः चेदि राष्ट्र में ही होना चाहिए। पारिलेय्यक वन के रक्षित वनखण्ड में वर्षावास करने के बाद भगवान् श्रावस्ती चले गये और वहाँ अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में विहार करने लगे।[२] इस समय तक कौशाम्बी के भिक्षुओं को सुबुद्धि आ चुकी थी। वे श्रावस्ती गये और शास्ता से क्षमा-याचना की। संघ में फिर एकता आ गई।

ग्यारहवाँ वर्षावास भगवान् ने मगध देश के नाला नामक ब्राह्मण-ग्राम में किया, जो बोधिवृक्ष के समीप एक गाँव था। अंगुत्तर-निकाय और बुद्धवंस की अट्ठकथाओं के अनुसार भगवान् बुद्ध ने अपना ग्यारहवाँ वर्षावास नाला नामक ग्राम में ही किया, परन्तु डॉ० ई० जे० थॉमस ने भगवान् बुद्ध को अपना ग्यारहवाँ वर्षावास एकनाला नामक ग्राम मे करते दिखाया है,[३] जिसका अनुगमन मलल्सेकर ने भी किया है।[४] एकनाला ग्राम मगध के दक्षिणागिरि जनपद में था, जो राजगृह के दक्षिण मे स्थित था। नाला और एकनाला गाम को एक ही गाँव माना जाय या वे भिन्न-भिन्न गाँव थे, इस समस्या के समाधान का प्रयत्न हम तृतीय परिच्छेद में मगध राज्य का विवेचन करते समय करेंगे। नाला और एक-

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३३१-३३३।
२. वहीं, पृष्ठ ३३३–३३४।
३. दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ ११७।
४. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ७८८।

नाला को भिन्न-भिन्न गाँव मानते हुए भी यह कहा जा सकता है कि नाला में ग्यारहवाँ वर्षावास करने के समय के आसपास ही भगवान् ने दक्षिणागिरि जनपद के एकनाला ब्राह्मण-ग्राम में विहार किया और इसी समय सुत्त-निपात के कसिभारद्वाज-सुत्त में वर्णित कसि भारद्वाज से उनका संलाप हुआ।

बारहवीं वर्षा भगवान् ने वेरंजा[1] में बिताई। यह स्थान मथुरा और सोरेय्य (सोरों, जिला एटा) के बीच में था। अतः इसे सम्भवतः सूरसेन या पंचाल जनपद में होना चाहिए। भगवान् बुद्ध वेरंजा में श्रावस्ती से आये थे और वेरंजा में वर्षावास करने के उपरान्त, वे क्रमशः सोरेय्य, संकस्स और कण्णकुज्ज नामक स्थानों में होते हुए पयागपतिट्ठान (प्रयाग प्रतिष्ठान) पहुँचे, जहाँ उन्होंने गंगा को पार किया। आगे बढ़ते हुए भगवान् वाराणसी पहुँचे, जहाँ कुछ दिन विहार करने के पश्चात् वे वैशाली की महावन कूटागारशाला में चले गये।[2] वहाँ से भगवान् श्रावस्ती गये, जहाँ पहुँचकर उन्होंने चुल्लसुक जातक और बालोदक

---

१. सर्वास्तिवादी परम्परा में इस स्थान का नाम वैरम्भ बताया गया है। महाकवि अश्वघोष ने वैरंजा या बेरंजा ही नाम दिया है और यहाँ भगवान् के द्वारा विरिच नामक एक महासत्व को दीक्षित किये जाने का उल्लेख किया है। बुद्ध-चरित २१।२७।

२. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ २०१; सर्वास्तिवादी परम्परा के अनुसार भगवान् बुद्ध वेरंजा में आये तो श्रावस्ती से ही थे और पालि परम्परा के समान इस परम्परा के अनुसार भी वे लौटकर वैशाली गये। परन्तु सर्वास्तिवादी परम्परा के अनुसार वैरम्भ (बेरंजा) से लेकर वैशाली तक की यात्रा में भगवान् बुद्ध ने एक भिन्न मार्ग का अनुसरण किया। इस परम्परा के अनुसार वे वैरम्भ से अयोध्या गये, अयोध्या से साकेत, साकेत से श्रावस्ती, श्रावस्ती से कोसल देश के नगरबिन्द नामक ब्राह्मण-ग्राम में और वहाँ से वैशाली। इस प्रकार ज्ञात होगा कि सर्वास्तिवादी परम्परा के अनुसार भगवान् श्रावस्ती होते हुए वैशाली पहुँचे जबकि पालि परम्परा में, जैसा हम पहले लिख चुके हैं, वैशाली जाने के बाद उनका श्रावस्ती पहुँचना सिद्ध होता है। वेरंजा की स्थिति के सम्बन्ध में विस्तृत विवेचन के लिये देखिये आगे पंचाल जनपद का विवेचन।

जातक का उपदेश दिया। चुल्लसुक जातक में कहा गया है कि भगवान् वेरंजा में वर्षावास कर क्रमशः चारिका करते हुए श्रावस्ती पहुँचे, अतः उपर्युक्त मार्ग से वैशाली आने के पश्चात् ही भगवान् श्रावस्ती गये, ऐसा मानना यहाँ ठीक होगा। धम्मपदट्ठकथा के वर्णनानुसार भगवान् जब वेरंजा में वर्षावास कर रहे थे तो वहाँ भयंकर दुर्भिक्ष पड़ रहा था। उत्तरापथ के ५०० घोड़ों के सौदागर, जो वहाँ पड़ाव डाले हुए थे, प्रस्थ-प्रस्थ (पसौ-पसौं) भर जौ भिक्षुओं को दे देते थे, जिन्हें ओखल में कूट कर भिक्षु खाते थे और उसी में से एक पसौं सिल पर पीस कर भगवान् को दे देते थे।[1] वेरंजा में दुर्भिक्ष के कारण इस प्रकार भगवान् को तीन मास जौ खानी पड़ी थीं। सूरसेन-पञ्चाल में आज भी जौ की खेती काफी की जाती है। जिस वेरंज या वेरजक नामक ब्राह्मण[2] ने भगवान् को वेरंजा में वर्षावास करने के लिये निमंत्रित किया था, उसने सम्पन्न होते हुए भी लापरवाही की, परन्तु तथागत ने फिर भी उस पर अनुकम्पा करते हुए वर्षावास की समाप्ति पर उसे अपने अन्यत्र चारिका के लिए जाने की इच्छा की सूचना दी और अन्तिम दिन उसके यहाँ भोजन भी किया।[3] अंगुत्तर-निकाय[4] के वर्णनानुसार भगवान् बुद्ध मथुरा गये थे और वहाँ उन्होंने उपदेश भी दिया था। इसी निकाय के वेरंजक-ब्राह्मण-सुत्त में हम

---

१. विनय-पिटक, पाराजिक पालि, पृष्ठ ९ (भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित)।

२. वस्तुतः इस ब्राह्मण का नाम उदय था। वेरंजा वासी होने के कारण इसे वेरंजक कहकर पुकारा गया है। समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ १११; सर्वास्तिवादी परम्परा में इस ब्राह्मण का नाम अग्निदत्त बताया गया है और उसे वैरम्भ (वेरंजा) का शासक कहा गया है। धम्मपदट्ठकथा के अनुसार अग्गिदत्त (अग्निदत्त) कोसल देश के राजा महाकोसल का पुरोहित था, जो गृह-त्याग करने के बाद अपने दस हजार शिष्यों सहित अंग-मगध और कुरु राष्ट्र की सीमा पर निवास करता था। ऐसा लगता है कि सर्वास्तिवादी परम्परा ने इसी ब्राह्मण के साथ वेरंजक ब्राह्मण को मिला दिया है।

३. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४९४।

४. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५७; जिल्द तीसरी, पृष्ठ २५७।

भगवान् को मथुरा और वेरंजा के बीच रास्ते में जाते देखते हैं। अतः पालि विवरण से यह निश्चित जान पड़ता है कि बुद्धत्व-प्राप्ति के बारहवें वर्ष में ही भगवान् बुद्ध ने मथुरा की यात्रा की[1] और उसके बाद लौटकर वे वेरंजा ही आ गये, जहाँ से उन्होंने अपनी श्रावस्ती तक की पूर्वोक्त यात्रा की।

बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद तेरहवाँ वर्षावास भगवान् ने चेति या चेतिय राष्ट्र के चालिय या चालिक पर्वत पर किया, जो उसी राष्ट्र के पाचीन वंसदाय में था और जिसके पास ही जन्तुगाम और किमिकाला नदी थे।[2] इस समय आयुष्मान् मेघिय भगवान् बुद्ध की सेवा में थे।

चौदहवीं वर्षा भगवान् ने श्रावस्ती में बिताई। इस समय राहुल की अवस्था बीस वर्ष की थी। विनय-पिटक के नियम के अनुसार उनका उपसम्पदा सस्कार इसी समय हुआ।

भगवान् का पन्द्रहवाँ वर्षावास कपिलवस्तु में हुआ। इस समय उनके श्वसुर सुप्रबुद्ध ने भगवान् का घोर तिरस्कार किया। सुप्रबुद्ध समझता था कि गृहस्थ जीवन को त्याग कर गौतम ने उसकी पुत्री भद्रा कात्यायनी (राहुल-माता) के साथ अन्याय किया है। इसलिये वह भगवान् बुद्ध से क्रुद्ध था। शराब पीकर वह कपिल-

---

१. परन्तु दिव्यावदान (पृष्ठ ३४८) में कहा गया है कि भगवान् बुद्ध ने अपने परिनिर्वाण-काल से कुछ पहले ही मथुरा की यात्रा की। "भगवान्····परि-निर्वाणकालसमये····मथुरामनुप्राप्तः।" पालि परम्परा से इसका मेल बैठाना कठिन है।

२. डा० नलिनाक्ष दत्त तथा श्रीकृष्णदत्त बाजपेयी ने चालिय गिरि को, जहाँ भगवान् बुद्ध ने तेरहवाँ वर्षावास किया, कपिलवस्तु के निकट बताया है। देखिये उनका 'उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास', पृष्ठ ७९। इसे पालि परम्परा के अनुसार ठीक नहीं माना जा सकता। इसी प्रकार महापण्डित राहुल सांकृत्यायन का उसे बिहार में मानना (बौद्ध संस्कृति, पृष्ठ १०), जिसका अनुगमन भदन्त शान्ति भिक्षु (महायान, पृष्ठ ६२) ने भी किया है, अप्रामाणिक है। चालिय पर्वत को तो चेति राष्ट्र से अन्यत्र कहीं मानने की आवश्यकता ही नहीं।

वस्तु के मार्ग में जा बैठा और भगवान् बुद्ध को आगे नहीं बढ़ने दिया। भगवान् को विवश होकर लौटना पड़ा।[1] इसी वर्ष सुप्रबुद्ध की मृत्यु हो गई।

सोलहवाँ वर्षावास भगवान् ने पंचाल देश के आलवी नामक नगर (वर्तमान अर्वल, जिला कानपुर या नवल या नेवल, जिला उन्नाव) में किया, जहाँ वे एक रात आलवक यक्ष के निवास-स्थान पर और बाद में मुख्यतः अग्गालव चैत्य में ठहरे। हस्तक आलवक के साथ भगवान् का संवाद, जो सुत्त-निपात के आलवक-सुत्त में निहित है, इसी समय आलवी में हुआ। विनय-पिटक से हमें सूचना मिलती है कि भगवान् श्रावस्ती से काशियों के निगम कीटागिरि में आये थे और फिर वहाँ से क्रमशः चारिका करते हुए आलवी नगर पहुँचे थे।[2] आलवी में वर्षावास करने के पश्चात् भगवान् राजगृह चले गये।[3]

बुद्धत्व-प्राप्ति के सत्रहवें वर्ष मे हम भगवान् बुद्ध को फिर श्रावस्ती लौटते देखते हैं। यहीं से वे एक गरीब और परेशान किसान पर अनुकम्पा करने के लिए दुबारा आलवी गये। भगवान् ने आलवी पहुँच कर निश्चित समय पर भोजन किया, परन्तु भोजनोपरान्त उपदेश उन्होंने तब तक नहीं दिया, जब तक वह किसान वहाँ न आ जाय। बात यह थी कि उस किसान का बैल उस दिन खो गया था जिसे ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वह परेशान रहा और शाम तक खाना भी नहीं मिला। भूखा ही वह किसान भगवान् के दर्शनार्थ सन्ध्या समय आया। भगवान् ने सर्व प्रथम उसे भोजन दिलवाया और जब उसका मन शान्त हो गया तो भगवान् ने चार आर्य सत्यों का उपदेश दिया जिसे सुनते ही किसान को स्रोत आपत्ति फल की प्राप्ति हो गई। इसके बाद भगवान् राजगृह लौट आये, जहाँ उन्होंने अपना सत्रहवाँ वर्षावास किया।

अठारहवाँ वर्षावास भगवान् ने अपने तेरहवे वर्षावास के समान चालिय पर्वत पर ही किया। यहाँ से एक बार भगवान् फिर आलवी गये। इस बार वे एक गरीब जुलाहे की लड़की पर अनुकम्पार्थ वहाँ गये। बाद में करघे के गिर जाने से इस गुणवती लड़की की मृत्यु हो गई और भगवान् ने उसके पिता को, जिसकी

---

१. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४४।
२. विनय-पिटक (हिन्दी-अनुवाद), पृष्ठ ४७१-४७२।
३. वहीं, पृष्ठ ४७४।

जीविका चलाने में यह लड़की सहायता करती थी, सान्त्वना दी। अंगुत्तर-निकाय के आलवक-सुत्त में हम भगवान् को अन्तराष्टक (माघ के अन्त के चार दिन और फाल्गुण के आदि के चारदिन) में आलवी के समीप सिंसपा-वन में विहार करते देखते हैं। सम्भवतः यह इसी वर्ष की या इससे एक वर्ष पूर्व की घटना हो सकती है।

उन्नीसवीं वर्षा भी भगवान् ने चालिय पर्वत पर ही बिताई।

बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद का बीसवाँ वर्षावास भगवान् ने राजगृह में किया। इसी वर्ष जब भगवान् राजगृह से श्रावस्ती की ओर जा रहे थे तो मार्ग में उन्हें भयंकर डाकू अंगुलिमाल मिला, जिसे उन्होंने दमित किया। बुद्धत्व-प्राप्ति के बीसवें वर्ष मे ही आनन्द को भगवान् का स्थायी उपस्थाक (शरीर-सेवक) बनाया गया। इस समय तक अनेक भिक्षु समय-समय पर भगवान् की परिचर्या करते रहते थे। मेघिय भिक्षु का उल्लेख हम पहले कर चुके है। स्वागत (सागत), राध और नागसमाल भिक्षुओं ने भी कुछ-कुछ समय तक भगवान् की सेवा की थी। इनमें से कभी कोई भिक्षु शास्ता के सम्बन्ध में लापरवाही भी कर देते थे। इसीलिये इस समय भगवान् के परम अनुरक्त शिष्य आनन्द को उनका स्थायी उपस्थाक बनाया गया। इस समय से लेकर ठीक भगवान् के महापरिनिर्वाण अर्थात् करीब २५ वर्ष से अधिक समय तक आनन्द ने छाया की भाँति भगवान् को कभी नहीं छोड़ा और अत्यन्त तन्मयता और आत्मीयता के साथ उनकी सेवा की।

इक्कीसवें वर्षावास से लेकर पैंतालीसवें वर्षावास तक अर्थात् पूरे पच्चीस वर्षावास भगवान् ने श्रावस्ती में किये। इन पूरे पच्चीस वर्ष भगवान् ने अपना प्रधान निवास-स्थान श्रावस्ती को बनाया, परन्तु बीच-बीच में वे दूर तक चारिकाओं के लिये जाते थे और केवल वर्षा में श्रावस्ती लौट कर आ जाते थे। संयुत्त-निकाय के थपति-सुत्त में स्पष्टतः कहा गया है कि वर्षावास के बाद भगवान् अक्सर श्रावस्ती से मल्लों, वज्जियों, काशियों और मगधों के देशों में जाते हैं और फिर वहाँ से लौटकर श्रावस्ती आ जाते हैं। सुत्त-निपात की अट्ठकथा (परमत्थजोतिका) का कहना है कि श्रावस्ती में निवास करते समय यदि भगवान् दिन को मृगारमाता के प्रासाद (मिगारमातु पासाद) पूर्वाराम (पुब्बाराम) में रहते थे तो रात को अनाथपिण्डिक के जेतवनाराम में और यदि रात को मृगारमाता के प्रासाद पूर्वाराम में

रहते थे तो दिन में अनाथपिण्डिक के आराम जेतवन में। वैसे यदि औपचारिक ढंग से भगवान् के श्रावस्ती में किए गए इन पच्चीस वर्षावासों का ब्योरा, जेतवन और पूर्वाराम विहारों को अलग-अलग कर तैयार किया जाय, तो वह अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा के अनुसार इस प्रकार होगा :

२१. पूर्वाराम — २२. पूर्वाराम.
२३. जेतवन. — २४. पूर्वाराम.
२५. जेतवन. — २६. जेतवन.
२७. जेतवन. — २८. पूर्वाराम.
२९. जेतवन. — ३०. जेतवन.
३१. जेतवन. — ३२. पूर्वाराम.
३३. जेतवन. — ३४. पूर्वाराम.
३५. जेतवन. — ३६. पूर्वाराम.
३७. जेतवन. — ३८. पूर्वाराम.
३९. जेतवन. — ४०. पूर्वाराम.
४१. जेतवन. — ४२. पूर्वाराम.
४३. जेतवन. — ४४. पूर्वाराम.
४५. जेतवन.

इस प्रकार करीब-करीब बराबर ही वर्षावास भगवान् ने जेतवनाराम और पूर्वाराम में प्रायः वैकल्पिक रूप से किये, परन्तु यह आश्चर्यकर और ध्यान देने योग्य बात है कि उपदेश उन्होंने अधिकतर जेतवनाराम में ही दिये, पूर्वाराम में उतने नहीं। प्रथम चार निकायों के ८७१ सुत्तों का उपदेश भगवान् ने श्रावस्ती में दिया, जिनमें से ८४४ का उपदेश अकेले जेतवनाराम में दिया गया और केवल २३ का पूर्वाराम में। चार सुत्तों का उपदेश श्रावस्ती के आसपास के अन्य स्थानों में दिया गया। श्रावस्ती में २५ वर्ष तक वर्षावास करते हुए भगवान् ने जिन चारों ओर फैले हुए अनेक स्थानों की यात्राएँ विभिन्न समयों पर कीं, उनकी एक सूची डॉ० मललसेकर[1] ने तैयार की है जो इस प्रकार है:

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ७९९।

१. अग्गालव चेतिय. २. अनोतत्त दह.
३. अन्धकविन्द. ४. अम्बपालि वन,
५. अम्बलट्ठिका. ६. अम्बसण्ड.
७. अस्सपुर. ८. आपण.
९. इच्छानंगल. १०. उक्कट्ठा (सुभग-वन)
११. उक्काचेल. १२. उग्ग नगर.
१३. उजुञ्ञा (कण्णकत्थल मिगदाय) १४. उत्तर.
१५. उत्तरका १६. उत्तरकुरु.
१७. उरुवेलकप्प. १८. उलुम्प.
१९. एकनाला. २०. ओपसाद.
२१. कक्करपत्त. २२. कजंगल (मुखेलु वन)
२३. कम्मासदम्म (या कम्मासधम्म) २४. कलन्दक निवाप.
२५. किम्बिला. २६. कीटागिरि.
२७. कुण्डधानवन. २८. केसपुत्त.
२९. कोटिगाम. ३०. कोसम्बी (घोषिताराम तथा बदरिकाराम)
३१. खाणुमत. ३२. खोमदुस्स.
३३. गोसिंग सालवन. ३४. चण्डलकप्प.
३५. चम्पा (गग्गरा पोक्खरणी) ३६. चातुम.
३७. चेतिय गिरि (वैशाली में) ३८. जीवकम्बवन (राजगृह में)
३९. तपोदाराम (राजगृह में) ४०. तिन्दुकखाणु (परिब्बाजकाराम)
४१. तोदेय्य. ४२. थुल्लकोट्ठित.
४३. दक्खिणागिरि. ४४. दण्डकप्प.
४५. देवदह. ४६. देसक (सुह्म जनपद में)
४७. नगरक. ४८. नगरविन्द.
४९. नादिका (गिंजकावसथ) ५०. नालन्दा (पावारिकम्बवन)
५१. नलकपान (पलासवन) ५२. पंकधा.
५३. पंचशाल. ५४. पाटिकाराम.

५५. बेलुव (ग्राम)	५६. भद्दवती.
५७. भद्दिय (जातियावन)	५८. भोगनगर (आनन्द चेतिय).
५९. मणिमालक चेतिय.	६०. मनसाकट.
६१. मातुला.	६२. मिथिला (मखादेव आम्रवन)
६३. मेदलुम्प या मेदतलुम्प.	६४. मोरनिवाप.
६५. रम्मकाराम.	६६. लट्ठिवन.
६७. विदेह.	६८. वेधञ्जा (अम्बवन)
६९. वेनागपुर	७०. वेरंजा.
७१. वेलुद्वार.	७२. वैशाली (उदेन चेतिय, गोतम चेतिय, चापाल चेतिय, बहुपुत्तक चेतिय, सत्तम्ब चेतिय और सारन्दद चेतिय)
७३. सक्कर	
७४. सज्जनेल.	७५. सललागारक (श्रावस्ती में)
७६. साकेत (अंजनवन)	७७. सामगाम.
७८. साल्वतिका.	७९. साला.
८०. सिंसपावन.	८१. सिलावती
८२. सीतवन.	८३. सूकरखता (सूकरखतलेन)
८४. सेतव्या.	८५. हत्थिगाम.
८६. हलिद्दवसन.	८७. हिमवन्त प्रदेश.

उपर्युक्त सूची, जो डा० मलल्सेकर ने प्रस्तुत की है, परिपूर्ण नहीं कही जा सकती। इन स्थानों के अलावा भगवान् ने अन्य कई स्थानों की यात्रा अपने पच्चीस वर्षों की चारिकाओं में की होगी, जिनका उल्लेख इसी सूची में नहीं है। उदाहरणतः भगवान् वैशाली के समीप अवरपुर वनखण्ड में गये थे और कोसल देश में साधुक नामक गाँव के समीप होकर भी वे गुजरे थे। अङ्गुत्तर-निकाय के तिक-निपात में हम उन्हें सप्पिनिका नदी के तीर पर परिब्राजकाराम में जाते देखते हैं। धम्मपदट्ठकथा (जिल्द दूसरी, पृष्ठ २३५) के अनुसार बुद्ध मगध के दीघलम्बिक नामक गाँव में गये थे और इसी ग्रन्थ (जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३१, १२९) के अनुसार उन्होंने हिमालय की एक अरण्यकुटिका

में भी निवास किया था, जिसका उल्लेख स्वयं संयुत्त-निकाय के रज्ज-सुत्त में भी है। इसी प्रकार अन्य कई स्थान भी छूटे दिखाये जा सकते हैं। फिर जिन स्थानों का उपर्युक्त सूची में उल्लेख है, उनकी प्रथम बार ही यात्रा भगवान् ने इन पच्चीस वर्षों में की हो, ऐसी भी बात नहीं है। उदाहरणतः राजगृह तथा उसके विभिन्न स्थानों में भगवान् ने अपने दूसरे, तीसरे, चौथे, सत्रहवें और बीसवें वर्षावासों में यात्राएँ कीं और न जाने कितनी बार भगवान् वहाँ गये। अतः राजगृह के अनेक स्थानों का फिर इस सूची में आना कोई विरोध नहीं समझना चाहिए। इसी प्रकार अन्य अनेक स्थानों के सम्बन्ध में भी बात है। उपर्युक्त सूची, जो डा० मललसेकर ने प्रस्तुत की है, वर्णमाला के क्रम से कोशरूप में दी गई है। अतः उससे उन स्थानों की भौगोलिक स्थिति स्पष्ट नहीं होती। उदाहरणतः, तीसरी संख्या का स्थान अन्धकविन्द है, अड़तीसवाँ जीवकम्बन, उन्तालीसवाँ तपोदाराम, तेतालीसवाँ दक्खिणागिरि, पचासवाँ नालन्दा (पावारिकम्बवन) और छियासठवाँ लट्ठिवन, जब कि ये सब स्थान राजगृह के आसपास मगध देश के ही है। अतः कुछ पुनरुक्ति स्वीकार करके भी हमें जनपदों के क्रम से इन स्थानों का वर्गीकरण कर देना चाहिये, ताकि उनकी भौगोलिक स्थिति को हम अधिक स्पष्टतापूर्वक समझ सकें। इस प्रकार भगवान् ने श्रावस्ती में अन्तिम पच्चीस वर्षावास करते समय जिन अनेक स्थानों की यात्रा की, उनका राज्य, जनपद आदि के विचार से इस प्रकार वर्गीकरण किया जा सकता है।

मगध-राज्य में

(१) अन्धकविन्द (ग्राम), (२) अम्बलट्ठिका, (३) अम्बसण्ड, (४) एकनाला, (५) कलन्दकनिवाप, (६) खाणुमत ब्राह्मण-ग्राम, (७) जीवकम्बवन, (८) तपोदाराम, (९) दक्खिणागिरि, (१०) नालन्दा, (११) पंचशाल, (१२) मणिमालक चेतिय (१३) मातुला, (१४) मोरनिवाप परिब्राजकाराम, (१५) लट्ठिवन (१६) सीतवन (१७) सूकरखता (सूकरखतलेन)

कोसल-राज्य में

(१) इच्छानंगल ब्राह्मण-ग्राम (२) उक्कट्ठा (३) उग्गनगर, (४) उजुञ्ञा, (५) ओपसाद, (६) चण्डलकप्प, (७) दण्डकप्प, (८) नगरक,

(९) नगरविन्द, (१०) नलकपान, (११) पंकधा, (१२) मनसाकट, (१३) रम्मकाराम (श्रावस्ती), (१४) वेनागपुर, (१५) सललागारक, (१६) साकेत, (१७) सालवतिका, (१८) साला, (१९) सेतव्या, (२०) वेलुद्वार

वज्जि जनपद में

(१) वैशाली, (२) अम्बपालिवन (वैशाली के समीप), (३) उक्काचेल (गंगा नदी के किनारे), (४) कोटिगाम, (५) गोसिंग सालवन, (६) चेतियगिरि (७) नादिका, (८) पाटिकाराम (वैशाली), (९) बेलुव गाम, (१०) हत्थिगाम, (११) तिन्दुकखाणु (परिब्राजकाराम)।

वंस (वत्स) राज्य में

(१) कौशाम्बी।

पंचाल देश में।

(१) अग्गालव चेतिय (आलवी नगर में) (२) सिंसपावन (आलवी में),[१] (३) किम्बिला।

चेदि-राष्ट्र में

(१) भद्दवती।

अंग-जनपद में

(१) अस्सपुर, (२) चम्पा, (३) भद्दिय

अंगुत्तराप में

(१) आपण।

सुह्म (सुम्भ) जनपद में

(१) सेदक, सेतक या देसक (२) कजगल।

---

१. कौशाम्बी और सेतव्या में भी सिंसपा-वन थे, जिनके विवरण के लिए देखिये आगे तृतीय परिच्छेद।

कुरु-राष्ट्र में

(१) कम्मासदम्म, (२) थुल्लकोट्ठित।

सूरसेन या पंचाल जनपद में

(१) वेरंजा।

विदेह राष्ट्र में

(१) मिथिला, (२) विदेह (किसी विशेष स्थान का उल्लेख नहीं किया गया है)।

काशी जनपद में

(१) कीटागिरि।

शाक्य जनपद में

(१) उलुम्प, (२) खोमदुस्स, (३) चातुम, (४) देवदह, (५) मेदलुम्प या मेदतलुम्प (६) वेधञ्ञा, (७) सक्कर, (८) सामगाम, (९) सिलावती।

कोलिय जनपद में

(१) उत्तर (कस्बा), (२) कक्करपत्त, (३) कुण्डधान-वन, (४) सज्जनेल, (५) हलिद्दवसन।

मल्ल राष्ट्र में

(१) उरुवेलकप्प, (२) भोगनगर।

कालामों के प्रदेश में

(१) केसपुत्त निगम।

उपर्युक्त सूची ८२ स्थानों की है। अतः मललसेकर द्वारा प्रस्तुत सूची में से (जिसमें ८७ स्थानों का उल्लेख है), पाँच स्थान यहाँ छोड़ दिये गये हैं। इसका कारण यह है कि उनमें से तीन स्थान तो ऐसे हैं जिनका राज्य या जनपदों के रूप में वर्गीकरण नहीं किया जा सकता और दो ऐसे हैं जिनके विषय में हम पूर्णतः निश्चय

नहीं कर सकते कि वे किस प्रदेश में थे। जिन स्थानों को राज्यों और जनपदों के अन्तर्गत नहीं रख सकते, उनमें अनोतत्त दह, हिमवन्त पदेस और उत्तरकुरु हैं। अनोतत्त दह को अक्सर मानसरोवर झील से मिलाया जाता है और हिमवन्त प्रदेश तो हिमालय है ही। उत्तरकुरु से तात्पर्य कुरु राष्ट्र के उत्तरी भाग से न होकर उत्तरकुरु द्वीप से है, जो जम्बुद्वीप के उत्तर में हिमालय से परे स्थित था। जिन दो स्थानों को हम निश्चित रूप से किसी विशेष जनपद या राज्य में स्थित नहीं दिखा सकते, वे हैं, उत्तरका और तोदेय्य। उत्तरका कस्बा थुलू लोगों के (जिन्हें पाठ-भेद से बुमू और खुलू भी कहा गया है), प्रदेश में था। परन्तु ये थुलू, बुमू या खुलू लोग कौन थे, इसका अभी सम्यक् निर्णय नहीं हो सका है। सम्भवतः मज्झिम देश में हम थुलू जनपद को रख सकते हैं, क्योंकि यह एक सुविदित जनपद था, जहाँ भगवान् बुद्ध सुनक्षत्र लिच्छवि-पुत्र के साथ एक बार गये थे। तोदेय्य एक गाँव था, जिसके सम्बन्ध में हम केवल इतना कह सकते हैं कि वह श्रावस्ती और वाराणसी के बीच में स्थित था[1]। भगवान् बुद्ध यहाँ आनन्द को साथ लेकर एक बार गये थे।[2] भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में चूँकि काशी एक स्वतन्त्र राष्ट्र न होकर कोसल का ही एक अंग था, इसलिये हम तोदेय्य गाम को आसानी से कोसल राज्य में मान सकते है।

श्रावस्ती में बिताये गये पच्चीस वर्षावासों के बीच-बीच में भगवान् ने इस प्रकार अंग, मगध, काशी, कोसल, वज्जि, वंस, चेदि, पंचाल, कुरु, विदेह, शाक्य, कोलिय और मल्ल आदि जनपदों और राष्ट्रों के जिन-जिन स्थानों की चारिकाएँ कीं, उनका कुछ भौगोलिक विवरण हम दे चुके हैं। इन पच्चीस वर्षों में भगवान् बुद्ध के जीवन और भिक्षु-संघ सम्बन्धी अनेक घटनाएँ घटित हुई जिनमें से केवल एक घटना का हम यहाँ उल्लेख करेंगे। वह थी अजातशत्रु के साथ षड्यन्त्र करके देवदत्त का बुद्ध को मारने का प्रयत्न। भगवान् बुद्ध एक बार गृध्रकूट पर्वत के नीचे टहल रहे थे। देवदत्त ने ऊपर से उन पर एक शिला गिराई, जो दो चट्टानों

---

१. मललसेकर : डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ १०३९।

२. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २५०।

से टकरा कर रुक गई, परन्तु एक पत्थर का टुकड़ा भगवान् के पैर में लगा और उससे रुधिर बहने लगा। भगवान् की रक्षा के लिये भिक्षुओं के द्वारा प्रयत्न किये जाने पर भगवान् ने उन्हें ऐसा करने की अनुमति नहीं दी। उन्होंने कहा कि तथागत की अकाल मृत्यु नहीं हो सकती। "भिक्षुओ ! यह सम्भव नहीं कि किसी दूसरे के प्रयत्न से तथागत का जीवन छूटे। भिक्षुओ, तथागतों की रक्षा करने की आवश्यकता नहीं होती। तुम अपने-अपने स्थानों को जाओ". . .देवदत्त ने बुद्ध पर नालागिरि नामक हाथी भी छुड़वाया और उनके वध के अनेक प्रयत्न किये, परन्तु सब निष्फल हुए। अजातशत्रु को अपनी गलती अनुभव हुई। इन पच्चीस वर्षों में हुई अन्य घटनाओं का विवरण यहाँ भौगोलिक दृष्टि से हमारे लिए देना आवश्यक न होगा।

श्रावस्ती में पैंतालीसवाँ वर्षावास करने के बाद भगवान् राजगृह चले गये। बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद उनके पार्थिव जीवन का यह छयालीसवाँ और अन्तिम वर्ष था, जिसकी प्रमुख घटनाओं का उल्लेख हमें दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त, महासुदस्सन-सुत्त और जनवसभ-सुत्त में मिलता है। राजगृह के गृध्रकूट पर्वत से भगवान् ने वैशाली के लिये प्रस्थान किया, जहाँ होते हुए वे कुसिनारा गये। यह उनकी अन्तिम यात्रा थी। प्रस्थान से पूर्व मगधराज अजातशत्रु का ब्राह्मण मन्त्री वर्षकार उनसे मिला और उसने भगवान् को बताया कि राजा अजातशत्रु वज्जियों पर अभियान करना चाहता है, जिसके उत्तर में भगवान् ने सीधे वर्षकार से कुछ न कहकर पास में उन पर पंखा झलते हुए आनन्द से कहा कि जब तक वज्जी लोग सात अपरिहानिय धर्मों का, जिनका उपदेश उन्होंने पहले एक बार वज्जियों को वैशाली के सारन्दद चैत्य में दिया था, पालन करते रहेंगे, तब तक उनकी कोई क्षति नहीं हो सकती। तदनन्तर भिक्षुओं के अनुरूप सात अपरिहानिय धर्मों का उपदेश भगवान् ने राजगृह की उपस्थान-शाला में दिया और फिर भिक्षु-संघ के सहित अम्बलट्ठिका के लिये प्रस्थान किया, जहाँ उन्होंने राजागारक (राजकीय भवन) नामक स्थान में निवास किया। यहाँ से आगे चलकर भगवान् नालन्दा आए और पावारिकम्बवन में ठहरे। महापरिनिब्बाण-सुत्त के अनुसार नालन्दा के प्रावारिक आम्रवन में ही धर्मसेनापति सारिपुत्र ने भगवान् के सम्बन्ध में यह सिंहनाद किया कि उनके समान बोधि में अतीत, वर्तमान या भविष्य का कोई

ज्ञानी पुरुष न था, न है और न होगा। परन्तु धर्मसेनापति सारिपुत्र पहले ही निर्वाण प्राप्त कर चुके थे, इसलिये यह अंश यहाँ भाणकों के प्रमाद से आ गया है, ऐसा मानना ठीक होगा[१]। नालन्दा से चलकर भगवान् पाटलिगाम पहुँचे जो गंगा नदी के दक्षिणी किनारे पर स्थित था। पाटलिगाम के आवसथागार (विश्राम-गृह) में

---

१. मिलाइये राहुल सांकृत्यायन. बुद्धचर्या, पृष्ठ ४८९, पद-संकेत ४। परन्तु महास्थविर बुद्धघोषाचार्य ने धर्मसेनापति सारिपुत्र द्वारा इस अवसर पर उच्चरित शब्दों को ऐतिहासिक रूप से सही मान लिया है, इसलिये वे बड़ी कठिनाई में पड़ गये हैं और उसमें से निकलने का उन्होंने इस प्रकार प्रयत्न किया है कि बुद्ध की चारिकाओं के भौगोलिक रूप को समझने की चेष्टा करने वाले विद्यार्थी बिना चक्कर में पड़े नहीं रह सकते। दीघ-निकाय और धम्मपद की अट्ठकथाओं में उन्होंने दिखाया है कि वैशाली में अन्तिम वर्षावास, जिसका विवरण अभी आगे आयेगा, करने के उपरान्त भगवान् श्रावस्ती गये, जहाँ सारिपुत्र ने उनसे निर्वाण प्रवेश की आज्ञा माँगी और मगध देश के नालक ग्राम में जाकर, जो उनका जन्मस्थान था, कार्तिक पूर्णिमा को निर्वाण प्राप्त किया। इसके पन्द्रह दिन बाद मार्गशीर्ष मास की अमावस्या को राजगृह के इसिगिलि पर्वत पर डाकुओं के द्वारा मारे जाने के परिणाम-स्वरूप महामोग्गल्लान का परिनिर्वाण हुआ। धर्मसेनापति सारिपुत्र के छोटे भाई चुन्द समणुद्देस सारिपुत्र के फूल लेकर श्रावस्ती गये जहाँ भगवान् ने उन पर एक चैत्य बनवाया और फिर राजगृह की ओर चल दिये। राजगृह पहुँचकर भगवान् ने इसी प्रकार एक चैत्य वेणुवन के द्वार पर आयुष्मान् महामोग्गल्लान की स्मृति में बनवाया और फिर अम्बलट्ठिका, नालन्दा आदि स्थानों में होते हुए वज्जि जनपद के उक्काचेल नामक स्थान पर पहुँचे जो गंगा नदी के किनारे पर स्थित था। इस स्थान पर उन्होंने उपर्युक्त दोनों अग्र श्रावकों की निर्वाण-प्राप्ति पर प्रवचन दिया, जो संयुत्त-निकाय के उक्काचेल-सुत्त में निहित है। आगे क्रमशः चारिका करते हुए भगवान् वैशाली पहुँचे, जहाँ से उन्होंने अपनी कुसिनारा की यात्रा को फिर जारी किया। देखिए ई० जे० थॉमस : दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ १४०-१४२। भगवान् की अस्वस्थ अवस्था को देखते हुए यह सम्भव नहीं माना जा सकता कि वैशाली से इतनी लम्बी यात्रा उन्होंने

उन्होंने वहाँ के उपासकों को शील-सम्पदा के पाँच सुपरिणामों और दुःशीलता के पाँच दुष्परिणामों पर प्रवचन दिया। इसी समय सुनीध और वस्सकार नामक अजातशत्रु के ब्राह्मण मन्त्री वज्जियों को जीतने के लिये नगर को बसा रहे थे। "नगरं मापेन्ति वज्जीनं पटिबाहाय"। नगर की इस बसावट को देखकर भगवान् ने भविष्यवाणी की कि आगे चलकर यह गाँव पाटलिपुत्र नाम से जम्बुद्वीप का एक प्रमुख नगर होगा। दूसरे दिन भगवान् ने उपर्युक्त दो ब्राह्मण मन्त्रियों के यहाँ भोजन किया और उनके तथा अन्य अनेक नागरिकों के द्वारा अनुगमित होते हुए गंगा नदी को पार किया। जिस द्वार से भगवान् पाटलिगाम से बाहर निकले उसका नाम "गौतम द्वार" और जिस घाट से उन्होंने गंगा नदी को पार किया उसका नाम "गौतम तीर्थ" रक्खा गया। गंगा नदी को पारकर भगवान् वज्जियों के कोटिगाम नामक गाँव में पहुँचे जहाँ उन्होंने भिक्षुओं को चार आर्य सत्यों का उपदेश दिया। आगे

फिर की हो। फिर महापरिनिब्बाण-सुत्त में इस यात्रा का क्षीण आभास भी नहीं है। यहाँ तो भगवान् निरन्तर वैशाली से आगे बढ़ने की चेष्टा में हैं। अतः महापरिनिब्बाण-सुत्त का समर्थन आचार्य बुद्धघोष की मान्यता को प्राप्त नहीं हो सकता और चूँकि अट्ठकथा के साक्ष्य के ऊपर हमें सदा पालि तिपिटक को विशेषता देनी पड़ेगी, अतः हम यह नहीं मान सकते कि वैशाली से भगवान् इतनी अधिक दूर की लम्बी यात्रा पर जाकर फिर वहाँ दोबारा लौटकर गये, जैसा आचार्य बुद्धघोष ने दिखाया है। ई० जे० थॉमस ने इसे आचार्य बुद्धघोष का "विचित्र भौगोलिक विनियोजन" ""Strange geographical arrangement" कहा है। देखिये उनकी "दि लाइफ ऑव बुद्ध", पृष्ठ १४२। धर्मसेनापति सारिपुत्र और महामौद्गल्यायन की जो निर्वाण-तिथियाँ दी गई हैं वे तो ऐतिहासिक तथ्य पर आधारित जान पड़ती हैं, परन्तु उनका सम्बन्ध भगवान् के श्रावस्ती में किये गये पैंतालीसवें वर्षावास से मानना अधिक ठीक जान पड़ता है। यहीं और इसी समय उन्हें इन दो अग्र श्रावकों के परिनिर्वाण की सूचना मिली, जिसके बाद वे उक्काचेल गये और फिर वहाँ से राजगृह, जहाँ से कुसिनारा के लिये उन्होंने अपनी अन्तिम यात्रा प्रारम्भ की, जिसका विवरण महापरिनिब्बाण-सुत्त में है।

चलकर भगवान् वज्जि जनपद के ही नादिक या नादिका नामक नगर में पहुँचे जहाँ के गिजकावसथ नामक आवास में, जो ईंटों का बना हुआ था, वे ठहरे। यहाँ से चलकर भगवान् वैशाली पहुँचे जहाँ वे अम्बपालि वन में ठहरे और अम्बपालि के आतिथ्य को स्वीकार किया। इसके बाद भगवान् समीप के बेलुवगामक नामक ग्राम में चले गये और उन्होंने भिक्षुओं से कहा "भिक्षुओ, तुम वैशाली के चारों ओर...... वर्षावास करो। मैं यही बेलुवगामक में वर्षावास करूँगा।" "एथ तुम्हे भिक्खवे समन्ता बेसालि...... वस्सं उपेथ। अहं पन इधेव बेलुवगामके वस्सं उपगच्छामी ति"। परन्तु इसी समय भगवान् को कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई। भगवान् ने संकल्प-बल से उसे दबा दिया क्योंकि वे बिना भिक्षु-संघ को अवलोकन किये महापरिनिर्वाण में प्रवेश करना नहीं चाहते थे। वर्षावास के उपरान्त भगवान् एक दिन वैशाली में भिक्षार्थ गये और ध्यान के लिये आनन्द के साथ चापाल चैत्य में बैठे। यहीं उन्होंने कहा कि वे तीन मास बाद महापरिनिर्वाण में प्रवेश करेंगे। इसका अर्थ यह है कि इस समय माघ की पूर्णिमा थी और प्रवारणा (वर्षावास की समाप्ति---आश्विन पूर्णिमा) को हुए चार मास बीत चुके थे। इसके बाद भगवान् वैशाली की महावन कूटागारशाला में चले गए और वैशाली के आसपास विहरने वाले सब भिक्षुओं को बुलाकर उन्होंने उनसे कहा कि जिस धर्म का उन्होंने उन्हें उपदेश दिया है, उसका ज्ञानपूर्वक पालन उन्हें करना चाहिए ताकि यह ब्रह्मचर्य (बुद्ध-धर्म) चिरकाल तक बहुत जनों के हित और सुख के लिए स्थित रहे। इसी समय भगवान् ने भिक्षुओं से कहा, "मेरी आयु परिपक्व हो चुकी है। मेरा जीवन थोड़ा है। मै तुम्हें छोड़ कर जाऊँगा, मैंने अपनी शरण बनाली है।"......"परिपक्को वयो मय्हं परित्तं मम जीवितं। पहाय वो गमिस्सामि कतं मे सरणमत्तनो"। दूसरे दिन वैशाली में भिक्षाचर्या करने के बाद भगवान् ने मुड़ कर वैशाली की ओर देखा और आनन्द से कहा, "आनन्द! यह तथागत का अन्तिम वैशाली दर्शन होगा"। "इदं पच्छिमकं आनन्द तथागतस्य वेसालिदस्सनं भविस्सति"। इसके बाद ही भगवान् भण्डगाम की ओर चल दिये। भण्डगाम पहुँच कर भगवान् ने भिक्षुओं को शील, समाधि, प्रज्ञा और विमुक्ति सम्बन्धी उपदेश दिया और फिर क्रमशः हत्थिगाम, अम्बगाम और जम्बुगाम होते हुए भगवान् भोगनगर पहुँचे जहाँ वे आनन्द चेतिय में ठहरे। तदनन्तर भगवान् आगे बढ़ते हुए पावा पहुँचे जहाँ वे

चुन्द सुनार के आम्रवन में ठहरे और उसके यहाँ "सुक्करमद्दव" का भोजन किया। इसी समय भगवान् को कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई और उसी अवस्था में वे कुसिनारा की ओर चल पड़े। रास्ते में थक कर भगवान् एक पेड़ के नीचे बैठ गये और आनन्द ने संघाटी चौपेती कर उनके नीचे बिछा दी। भगवान् को कड़ी प्यास लगी हुई थी। पास में ही एक छोटी नदी (नदिका) बह रही थी जिसमें से पानी लाने को भगवान् ने आनन्द से कहा। आनन्द वहाँ गये, परन्तु देखा कि अभी-अभी पाँच सौ गाड़ियाँ वहाँ होकर गई हैं, अतः पानी गंदा है। भगवान् के पुनः आग्रह पर आनन्द वहाँ गये और इस बार पानी को स्वच्छ पाया। तथागत ने जल पिया और इसी समय मल्ल-पुत्र पक्कुस व्यापारी, जो कुसिनारा से पावा की ओर पाँच सौ माल से लदी गाड़ियों के सहित आ रहा था, उनसे मिला और भगवान् को एक इगुरवर्ण दुशाला भेंट किया जिसके एक भाग को भगवान् के आदेशानुसार उसने उन्हें उढ़ा दिया और दूसरे भाग को आनन्द को। आगे चलकर भगवान् ककुत्था (कुकुत्था तथा ककुधा पाठान्तर) नामक नदी पर आये जिसमें स्नान और पान कर (नहात्वा च पिवित्वा च) भगवान् ने उसे पार किया और एक आम्रवन में विश्राम किया। दीघ-निकाय की अट्ठकथा के अनुसार यह आम्रवन इस ककुत्था नदी के दूसरे किनारे पर ही स्थित था। "तस्सा येव नदिया तीरे अम्बवनं ति"। इस आम्रवन में विश्राम करते समय ही भगवान् ने आनन्द से कहा कि चुन्द सुनार को यह अफसोस नहीं करना चाहिए कि उसके यहाँ भोजन करके तथागत परिनिर्वाण को प्राप्त हुए। उसे तो अपना सौभाग्य ही मानना चाहिए कि उसके यहाँ भोजन कर भगवान् ने अनुपाधि-शेष-निर्वाण-धातु में प्रवेश किया, जो उनकी ज्ञान-प्राप्ति के समान ही एक मंगलमय घटना है। इस आम्रवन से चलकर भगवान् ने एक और नदी को पार किया जिसका नाम हिरण्यवती था। इस नदी को पार कर भगवान् कुसिनारा के समीप मल्लों के उपवत्तन नामक शालवन में आये। दीघ-निकाय की अट्ठकथा का कहना है कि अत्यधिक निर्बलता के कारण भगवान् को पावा और कुसिनारा के बीच पच्चीस स्थानों पर बैठना पड़ा। "एतस्मिं अन्तरे पंचवीसतिया ठानेसु निसीदित्वा"। कुसिनारा के समीप स्थित मल्लों के उपवत्तन शालवन में जुड़वाँ शाल-वृक्षों के नीचे आनन्द ने भगवान् के लिये उत्तर की ओर सिरहाना करके चारपाई बिछा दी, जहाँ भिक्षुओं को संस्कारों

की अनित्यता और अप्रमाद पूर्वक जीवनोद्देश्य को पूरा करने का उपदेश देते हुए, असमय में फूले शाल-वृक्षों के फूलों तथा दिव्य मन्दार (मन्दारव) पुष्पों से पूजित होते हुए वैशाख पूर्णिमा की रात के अन्तिम याम में, तथागत ने महापरिनिर्वाण में प्रवेश किया।

मज्झिम देस में भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के भूगोल का विवेचन करने के बाद अब हम जम्बुद्वीप के प्राकृतिक भूगोल पर आते है। बुद्धकालीन या बुद्ध के काल के कुछ पूर्व के सोलह महाजनपदों में से इन चौदह महाजनपदों को डा० मललसेकर ने[1] मज्झिम देस में सम्मिलित माना है, यथा काशी, कोसल, अंग, मगध, वज्जि, मल्ल, चेति, वंस, कुरु, पंचाल, मच्छ, सूरसेन, अस्सक और अवन्ती। डा० मललसेकर ने अपनी इस मान्यता का कोई आधार-स्वरूप कारण नहीं दिया है। हमारा विचार है कि अस्सक और अवन्ती को तो हमें पालि परम्परा के अनुसार दक्षिणापथ में ही रखना चाहिए और शेष बारह को मज्झिम देस मे मानना चाहिये। मज्झिम देस के प्राकृतिक भूगोल के विवरण में हम यहाँ जिन नदियों, पर्वतों, झीलों, और वनों आदि का उल्लेख करेंगे, वे उपर्युक्त बारह जनपदों से ही सम्बन्धित होंगे।

पालि तिपिटक में हमें पाँच महानदियों (पंच महानदियो) का उल्लेख मिलता है। इनके नाम हैं गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभू, और मही। ये सब मज्झिम देस की नदियाँ हैं। संयुत्त-निकाय के पठम-सम्बेज्ज-सुत्त में एक उपमा का प्रयोग करते हुए भगवान् कहते हैं, "भिक्षुओ! जैसे गंगा, यमुना, अचिरवती सरभू और मही महानदियाँ है[2]...।" इसी प्रकार सयुत्त-निकाय के दुतिय-सम्वेज्ज-सुत्त और समुद्द-सुत्त में भी इन पाँच महानदियों का उल्लेख है। अंगुत्तर-निकाय,[3] विसुद्धिमग्ग[4] और मिलिन्दपञ्हो[5] में भी इनका उल्लेख है। संयुत्त-

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४९४
२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी-अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ८२३।
३. जिल्द चौथी, पृष्ठ १०१।
४. १।२४ (पृष्ठ ६) (धर्मानन्द कोसम्बी का देवनागरी संस्करण)
५. पृष्ठ ७३, ३७४ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण); पृष्ठ ८७, ४६८ (हिन्दी अनुवाद)

निकाय के समुद्द-सुत्त में इन पाँचों नदियों को समुद्र की ओर बहती (समुद्दनिन्ना) दिखाया गया है, और इसी प्रकार उदान[1] में भी। आचार्य बुद्धघोष ने पपंचसूदनी,[2] मनोरथपूरणी[3] और परमत्थजोतिका[4] में इन पाँचों नदियों का उद्गम अनोतत्त दह बताया है। परन्तु मिलिन्दपञ्हो[5] में इनकी गणना उन दस मुख्य नदियों में की गई है, जिनका उद्गम वहाँ हिमालय बताया गया है। यद्यपि अनोतत्त दह हिमालय में ही स्थित है, फिर भी भौगोलिक दृष्टि से 'मिलिन्दपञ्हो' का कहना ही अधिक सही है। हम इन पाँच महानदियों का क्रमशः विवरण पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर देंगे।

गंगा नदी का उल्लेख पालि तिपिटक में अनेक बार किया गया है और कई बार भगवान् ने उसका प्रयोग उपमा के लिये किया है। अनेक महत्वपूर्ण भौगोलिक विवरण भी दिये गये हैं। दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त तथा उदान[6] से हमें पता लगता है कि पाटलिपुत्र गंगा के किनारे बसा हुआ था और सुमंगल-विलासिनी का साक्ष्य है कि गंगा नदी ही मगध और वज्जि राष्ट्रों की विभाजक-सीमा थी। राजगृह से कुसिनारा जाते हुए भगवान् ने अपनी अन्तिम यात्रा में पाटलिगाम पर गंगा को पार किया था और इस घटना की स्मृति में उसके किनारे 'गौतम-तीर्थ' नामक घाट की स्थापना बुद्ध-काल में की गई थी। हमने यह भी देखा है कि बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद राजगृह की अपनी प्रथम यात्रा के अवसर पर दो मास वहाँ रहकर भगवान् कुछ समय के लिये वैशाली गये थे और बीच में उनके गंगा पार करने का उल्लेख है, जिसके दोनों ओर अपने-अपने राज्य में बिम्बिसार और लिच्छवियों ने भारी सजावट कर रक्खी थी। गंगा के साथ यमुना के मिलने

---

१. पृष्ठ ७३ (हिन्दी अनुवाद)

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८६।

३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७५९-७६०।

४. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४३७-४३९।

५. पृष्ठ ११७ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण); पृष्ठ १४४ (हिन्दी-अनुवाद), देखिए आगे हिमवन्त का वर्णन भी।

६. पृष्ठ १२१ (हिन्दी अनुवाद)

की सुन्दर उपमा का प्रयोग करते हुए दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त में कहा गया है, "जैसे गंगा की धारा यमुना में मिलती है और मिल कर एक हो जाती है, उसी प्रकार. . . निर्वाणगामिनी प्रतिपदा निर्वाण के साथ मेल खाती है।" तक्क-जातक, सिगाल-जातक और चक्कवाक जातक में वाराणसी के समीप होकर गंगा के बहने का उल्लेख है। संयुत्त-निकाय के दुतिय-दारुक्खन्ध-सुत्त में गंगा नदी के किनारे किम्बिला नामक नगरी का वर्णन किया गया है। यह नगरी पंचाल जनपद में थी। वज्जि जनपद के उक्काचेल में होकर गंगा नदी के बहने का उल्लेख संयुत्त-निकाय के निब्बाण-सुत्त में है। जातक[1] में गग्गलि नामक गाँव को गंगा के तट पर स्थित बताया गया है, जिसकी आधुनिक स्थिति का पता लगाना कठिन है। वज्जि-संघ के एक सदस्य गणतन्त्र राष्ट्र विदेह से भी, जो वज्जि के समान मगध के उत्तर में ही था, गंगा नदी मगध को विभक्त करती थी, यह इस बात से विदित होता है कि मज्झिम-निकाय के चूलगोपालक-सुत्तन्त में गायें इस पार से गंगा में उतर कर उस पार विदेह में पहुँचती दिखाई गई हैं। हम जानते ही हैं कि अंग देश का गंगा के उत्तर का भाग अंगुत्तराप कहलाता था। अंग देश के चम्पा नगर के समीप भी गंगा का उल्लेख किया गया है। गंगा के बालु-कणों को गिनने की असम्भवता को लेकर एक सुन्दर उपमा संयुत्त-निकाय के गंगा-सुत्त में दी गई है। इसी प्रकार तृण-उल्का से गंगा नदी को उत्तप्त करने की उपमा मज्झिम-निकाय के ककचूपम-सुत्तन्त में है। संयुत्त-निकाय के गंगा-पेय्याल-वग्ग में तथा पाचीन-सुत्त में गंगा का पूर्व की ओर बहना (पाचीननिन्ना) दिखाया गया है और इसी प्रकार मज्झिम-निकाय के महावच्छगोत्त-सुत्त में उसे समुद्र-निम्ना (समुद्दनिन्ना) या समुद्र की ओर बहने वाली बताया गया है। इससे पता चलता है कि जहाँ गंगा नदी पूर्व की ओर बहते हुए दक्षिण की ओर मुड़ती है और अन्त में समुद्र में जाकर मिलती है, वहाँ तक का सुनिश्चित ज्ञान पालि परम्परा को था। महा उम्मग्ग जातक में तो गङ्गा के समुद्र में मिलने का स्पष्ट उल्लेख है। "गङ्गा समुद्दं पटिपज्जमाना"।

---

१. जिल्द छठी, पृष्ठ ४३१।

सारत्थप्पकासिनी[1] में गंगा की लम्बाई ५०० योजन बताई गई है। उत्तर में जहाँ से गंगा नदी निकलती है और कितने-कितने योजन वह पहाड़ों में किन-किन नामों से बहती है, इसका विस्तृत विवरण आचार्य बुद्धघोष ने अपनी अट्ठकथाओं में किया है। उद्गम से मैदानों में आने से पूर्व उन्होंने गगा नदी के कई नामों का प्रयोग किया है, जैसे कि आवट्ट गंगा, कण्हगंगा, आकाश गंगा, बहल गंगा और उम्मग्ग गंगा। विनय-पिटक के चुल्लवग्ग[2] से तथा महावंस[3] से हमें पता चलता है कि वैशाली की संगीति के समय आयुष्मान् सम्भूत साणवासी नामक भिक्षु अहोगंग पर्वत पर रहते थे, जिसे हरिद्वार के समीप कोई पर्वत होना चाहिए। अशोककालीन मोग्गलिपुत्त तिस्स को भी हम अहोगंग पर्वत पर जाते और वहाँ सात वर्ष तक ध्यान करते देखते हैं।[4] इस प्रकार गंगा के हरिद्वार के समीप वाले भाग का भी ज्ञान पालि परम्परा को था। परन्तु गंगा के तट पर स्थित सबसे अधिक महत्वपूर्ण जिस स्थान का उल्लेख पालि तिपिटक में है, वह तो प्रयाग तीर्थ (पयाग तित्थ) ही है। हमने देखा है कि वेरंजा में बारहवाँ वर्षावास कर भगवान् बुद्ध क्रमशः सोरेय्य, संकाश्य और कान्यकुब्ज होते हुए प्रयाग-प्रतिष्ठान (पयाग पतिट्ठान) आये थे, जहाँ उन्होंने गंगा को पार किया था और फिर वाराणसी चले गये थे। आचार्य बुद्धघोष ने पयाग (प्रयाग) को गंगा का एक घाट (तित्थ) कहा है।[5] जातक में भी प्रयाग तीर्थ (पयाग तित्थ) का उल्लेख है।[6] कहने की आवश्यकता नहीं कि प्रयाग तीर्थ से स्पष्टतः अभिप्राय गंगा-यमुना के संगम से ही है। प्रयाग को गंगा-यमुना का संगम मान कर ही भगवान् ने कहा था, "क्या करेगी सुन्दरिका, क्या प्रयाग और क्या बाहुलिका नदी?"[7]

---

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ११९।
२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ ५५१।
३. ४।१८-१९ (हिन्दी अनुवाद)
४. महावंस ५।२३३ (हिन्दी अनुवाद)
५. पपंचसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १७८।
६. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ १९८।
७. वत्थ-सुत्तन्त (मज्झिम. १।१।७)।

संयुत्त-निकाय के भौगोलिक महत्व का विवेचन करते समय हम पहले देख चुके हैं कि संयुत्त-निकाय के फेण-सुत्त में गंगा नदी के किनारे अयोज्झा (अयोध्या) नगरी स्थित बताई गई है और इसी प्रकार पठम-दारुक्खन्ध - सुत्त में कौशाम्बी को गंगा नदी के किनारे स्थित बताया गया है, जो दोनों बातें इन दोनों नगरो की आधुनिक स्थितियों मे मेल नहीं खातीं और एक समस्या पैदा करती हैं। साकेत नामक एक नगर का अयोज्झा मे पृथक् उल्लेख पालि त्रिपिटक में मिलता है, इसलिये यह स्पष्ट मालूम पड़ता है कि पालि के साकेत और अयोज्झा बुद्ध-काल में दो अलग-अलग स्थान थे। साकेत एक महानगर था और अयोज्झा एक छोटा सा गाँव मात्र। हमारा मन्तव्य यह है कि पालि की अयोज्झा को हमें वर्तमान अयोध्या से न मिला कर उसे कहीं गंगा के किनारे पर खोजना चाहिए। जहाँ तक कौशाम्बी का सम्बन्ध है, हमें संयुत्त-निकाय के पठम-दारुक्खन्ध-सुत्त की निश्चयत: उपेक्षा ही करनी पड़ेगी। आधुनिक कोसम गाँव, जिसे बुद्धकालीन कौशाम्बी से मिलाया गया है और जिसके बारे में कोई सन्देह नहीं रह गया है, यमुना नदी पर स्थित है। अत: उपर्युक्त सुत्त में कौशाम्बी को जो गंगा के तट पर स्थित बताया गया है, उसका एक कारण तो यह हो सकता है कि कौशाम्बी गंगा के समीप थी या दूसरा कारण यह भी माना जा सकता है कि संकलनकारों ने इसे गलती से ऐसा लिख दिया है। अंगुत्तर निकाय की अट्ठकथा (मनोरथपूरणी)[1] में बक्कुल (या वक्कुल) की जीवन-कथा के प्रसंग में स्पष्टत: कहा गया है कि जब कौशाम्बी में बक्कुल के जन्म के बाद दाई नवजात शिशु को **यमुना** नदी में नहला रही थी तो वह उसके हाथ से नदी में गिर गया और उसे एक मछली निगल गई। अट्ठकथा के इस साक्ष्य को प्रामाणिक मान कर हमें संयुत्त-निकाय के पठमदारुक्खन्ध-सुत्त की उपेक्षा ही करनी पड़ेगी, यही इस समस्या का एक मात्र समाधान है।

गंगा नदी के तट को साधना के उपयुक्त स्थल के रूप में भी भगवान् बुद्ध के कई भिक्षु-शिष्यों ने चुना था। श्रावस्ती में उत्पन्न एक भिक्षु को प्रव्रजित होने के बाद हम गंगा के तट पर निवास करते देखते हैं। इस भिक्षु का नाम ही इस कारण

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ १७०।

गंगातीरवासी भिक्षु (गंगातीरियो भिक्खु) पड़ गया था। उसने इसी रूप में अपनी स्मृति छोड़ते हुए कहा है, "मैंने गंगा नदी के किनारे तीन ताड़ के पत्तों की एक कुटिया बनाई है।" "तिण्णं मे तालपत्तानं गंगातीरे कुटी कता।"[1] मोग्गलिपुत्त तिस्स और सम्भूत साणवासी के अहोगंग पर निवास का उल्लेख हम पहले कर ही चुके हैं। दूत जातक में उल्लेख है कि बोधिसत्व ने अपने एक पूर्व जन्म में काशी ग्राम के एक ब्राह्मण के रूप में गंगा नदी के तट पर ध्यान किया था। "गंगातीरस्मि झायतो।" इसी प्रकार तक्क जातक में भी बोधिसत्व के एक बार गंगा नदी के किनारे पर तपस्या करने का उल्लेख है।

गंगा नदी के भागीरथी (भागीरसी) नाम से भी पालि परम्परा भली प्रकार परिचित है। "अपदान" (भाग प्रथम, पृष्ठ ५१; भाग द्वितीय, पृष्ठ २४३) में कहा गया है कि यह नदी हिमवन्त से निकल कर उत्तरापथ की हंसवती नामक नगरी में होकर बहती है।[2]

---

१. थेरगाथा, पृष्ठ २६ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण); देखिये थेरगाथा (भिक्षु धर्मरत्न-कृत हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५४।

२. महाभारत के सभा-पर्व (अध्याय ४८) में हंसकायन (हंसकायनाः) लोगों का उल्लेख है। यदि हम पालि की हंसवती नगरी का सम्बन्ध इन लोगों से मान सकें तो हमें हंसकायन प्रदेश को कश्मीर के उत्तर-पश्चिम में हुंजा और नगर के प्रदेश से मिलाने के डा० मोतीचन्द्र के प्रयत्न को (ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महाभारत, पृष्ठ ९२-९३) अप्रामाणिक मानना पड़ेगा, क्योंकि वहाँ गंगा या भागीरथी नदी के होने का कोई प्रश्न ही नहीं है। कुछ भी हो, इतना निश्चित जान पड़ता है कि पालि की हंसवती नगरी भारत में गंगा नदी के किनारे ही कहीं थी। थेरीगाथा की अट्ठकथा (परमत्थदीपनी) में कहा गया है कि धम्म-दिन्ना, उब्बिरी और सेला (शैला) नामक भिक्षुणियाँ, जो भगवान बुद्ध के जीवन-काल में क्रमशः राजगृह, श्रावस्ती और आलवी राष्ट्र में पैदा हुई थीं, अपने पूर्व जन्मों में एक बार हंसवती नगरी में भी जन्म ले चुकी थीं। आज इस हंसवती नगरी का पता लगाना कठिन है। दक्षिणी बरमा में हंसवती या हंसावती नामक एक नगरी थी जिसे आजकल पेगू से अभिन्न माना जाता है। इसे पालि की हंसवती

जातक की अनेक कथाओं में गंगा नदी के लिये भागीरसी (भागीरथी) नाम का प्रयोग किया गया है।[1] उत्तर पंचाल और दक्षिण पंचाल की सीमा भागीरथी नदी ही बनाती थी। पंचाल देश का प्रसिद्ध आलवी नगर सम्भवतः गंगा नदी के आसपास ही कहीं स्थित था, क्योंकि वहाँ के निवासी (आलवक) यक्ष को हम भगवान् बुद्ध से यह कहते देखते हैं, "मैं तुम्हें पैरों से पकड़ कर गंगा के पार फेंक दूंगा।" "पादेसु वा गहित्वा पारगंगाय खिप्पेय्य।[2]" इसी प्रकार की बात गया के सूचिलोम यक्ष ने भी भगवान् के प्रति कही थी।[3] इससे यह भी जान पड़ता है कि 'गंगा-पार' का प्रयोग सम्भवतः एक मुहावरे के रूप में बुद्ध-काल में होता था, क्योंकि गंगा नदी आजकल गया से करीब ५५ या ५६ मील उत्तर में होकर बहती है। यह भी सम्भव है कि उन दिनों वह गया के कुछ अधिक निकट हो।

जातक में अनेक जगह "अधोगंगा"[4] "उद्धगंगा"[5] "उपरिगंगा"[6] और "पारगंगा"[7] जैसे प्रयोग मिलते है, जो गंगा के सम्बन्ध में स्पष्ट और प्रत्यक्ष ज्ञान की सूचना देते हैं।

नगरी तो नहीं माना जा सकता, परन्तु यह सम्भव है कि भारत की हंसवती नगरी की अनुस्मृति में ही इस नगरी की स्थापना की गई हो।

१. जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ९३, २५५; जिल्द छठी, पृष्ठ २०४—"भागीरसि हिमवन्तं च गिद्धं।' महाकवि अश्वघोष ने भी बुद्ध-चरित (१५।१४) में भागीरथी नदी का उल्लेख काशी नगरी के प्रसंग में किया है।

२. आलवक-सुत्त (सुत्त-निपात); देखिये तृतीय परिच्छेद में पञ्चाल जनपद का विवरण।

३. सूचिलोम-सुत्त (संयुत्त-निकाय)।

४. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २८३; जिल्द पांचवीं, पृष्ठ ३।

५. जातक, जिल्द छठी पृष्ठ ४२७।

६. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ २३०।

७. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ४२७।

गङ्गा नदी के द्वारा होने वाले यातायात, माल के परिवहन और उसके व्यापारिक महत्व का उल्लेख हम पाँचवें परिच्छेद में करेंगे।

गंगा नदी के साथ-साथ ही प्रायः यमुना नदी का भी उल्लेख पालि तिपिटक में आया है। जैसा हम पहले कह चुके हैं, पंच महानदियों में उसकी गणना है। बुद्धकालीन मथुरा और कौशाम्बी नगरियाँ इसी के किनारे बसी हुई थीं।

अचिरवती नदी आधुनिक रापती है। सालित्तक-जातक और कुरुधम्म-जातक से हमें पता लगता है कि यह नदी श्रावस्ती के पास होकर बहती थी। सीलानिसंस जातक में अचिरवती नदी का उल्लेख है और कहा गया है कि एक उपासक ने जेतवन जाने के लिये इस नदी को पार किया था। श्रावस्ती का पूर्व-द्वार इस नदी के समीप था और राज-प्रासाद भी इससे अधिक दूर नहीं था। दीघ-निकाय के तेविज्ज-सुत्त में कहा गया है कि इसी नदी के किनारे पर कोसल देश का मनसाकट नामक ब्राह्मण-ग्राम बसा हुआ था। यहाँ भगवान् बुद्ध एक बार गये थे और इसके समीप अचिरवती नदी के किनारे पर एक आम्रवन में ठहरे थे। अगुत्तर-निकाय[1] में अचिरवती नदी के ग्रीष्म काल में सूख जाने का उल्लेख है और उदानट्ठकथा[2] में इसके किनारे पर मछली पकड़े जाने का भी उल्लेख किया गया है। सुत्त-निपात की अट्ठकथा में इस नदी के किनारे पर गेहूँ के खेतों का भी उल्लेख है। मज्झिम-निकाय के बाहीतिय या बाहीतिक सुत्तन्त में हम आयुष्मान् आनन्द को राजा प्रसेनजित् की प्रार्थना पर उसके साथ अचिरवती नदी के तीर पर एक वृक्ष के नीचे बैठे धार्मिक संलाप करते देखते हैं। अचिरवती नदी में ही विडूडभ सेना-सहित डूब कर मर गया था।[3] चीनी यात्री यूनान् चुआङ्ग को सातवीं शताब्दी ईसवी में यह नदी "अ-चि-लो" के नाम से विदित थी और उसने इसे श्रावस्ती से दक्षिण-पूर्व में बहते देखा था।[4]

---

१. जिल्द चौथी, पृष्ठ १०१।

२. पृष्ठ ३६६।

३. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ३६०।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्गस् ट्रेविल्स इन इंडिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३९८-३९९।

पालि की सरभू नदी आधुनिक सरयू ही है। यह हम कह ही चुके हैं कि आधुनिक अयोध्या सरयू नदी के किनारे पर स्थित है, परन्तु पालि की अयोज्झा गंगा नदी पर थी, जिसकी अभी पूरी खोज नहीं हो सकी है। सरभू (सरयू) नदी के तट पर साकेत के अञ्जन वन में भगवान् के साथ विहार करते हुए स्थविर गवम्पति ने नदी में अचानक बाढ आ जाने पर और साथी भिक्षुओं के डूब जाने के भय से इस नदी की धारा को अपने ऋद्धि-बल से रोक दिया था। इसी के सम्बन्ध में कहा गया है "यो इद्धिया सरभु अट्ठपेसि।"[१] स्पष्ट है कि यह नदी साकेत के समीप होकर बहती थी।

मही नदी आधुनिक बड़ी गंडक ही है। डा० बिमलाचरण लाहा ने इस नदी को गण्डक की एक सहायक नदी बताया है।[२] यह ठीक नहीं है। मही को पालि साहित्य में "महामही" भी कहकर पुकारा गया है। इससे उसका बड़ी गण्डक होना ही सिद्ध होता है। संयुत्त-निकाय के पठम सम्बेज्ज सुत्त में मही नदी की गणना पंच महानदियों में की गई है। इसी निकाय के पंचम पाचीन सुत्त में अन्य महानदियों के समान इसका भी पूर्व की ओर बहना दिखाया गया है। अंगुत्तर-निकाय[३] और मिलिन्दपञ्हो[४] में भी इस नदी का उल्लेख है। सुत्त-निपात के धनिय-सुत्त से हमें पता लगता है कि एक बार भगवान् बुद्ध मही नदी के किनारे (अनुतीरे महिया) एक खुली कुटी में एक रात भर के लिये ठहरे थे। कुटी पर छप्पर नहीं था और वर्षाकालीन बादल आकाश पर छाये हुए थे। भगवान् ने आकाश की ओर देखकर कहा था, "देव, इच्छा हो तो खूब बरसो।" "वस्स देव यथासुखं।"

उपर्युक्त पाँच नदियों के अतिरिक्त, जैसा हम ऊपर संकेत कर चुके हैं, पाँच और नदियाँ हैं जिन्हें पालि परम्परा में अधिक महत्व दिया गया है। वे हैं सिन्धु, सरस्सती (सरस्वती), वेत्तवती (वेत्रवती), वितंसा या वीतंसा (वितस्ता) और

---

१. थेरगाथा, गाथा ३८ (महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

२. 'इण्डोलोजीकल स्टडीज', भाग तृतीय, पृष्ठ १८८।

३. जिल्द चौथी, पृष्ठ १०१।

४. पृष्ठ ७३ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

चन्दभागा (चन्द्रभागा)। इन कुल दस नदियों को पालि परम्परा में उन पाँच सौ नदियों में प्रधान माना गया है जो वहाँ हिमालय से निकली दिखाई गई हैं।[1] बाद की पाँच बड़ी नदियों में सिन्धु, सरस्सती, वीतंसा और चन्दभागा उत्तरापथ की नदियाँ हैं। अतः इनका वर्णन हम उत्तरापथ के प्राकृतिक भूगोल के प्रसंग में करेंगे। वेत्तवती (वेत्रवती) नदी का उल्लेख एक जातक-कथा में है, जहाँ कहा गया है कि इसके किनारे पर वेत्तवती (वेत्रवती) नामक नगरी बसी हुई थी।[2] यह आधुनिक बेतवा नदी ही है। अब हम मज्झिम देस में बहने वाली कुछ अन्य नदियों का परिचय पालि परम्परा के आधार पर देंगे।

अनोमा नदी को भगवान् ने महाभिनिष्क्रमण के बाद पार किया था, यह हम पहले देख चुके हैं। यह नदी कपिलवस्तु और अनूपिया के बीच में थी। इस नदी की आधुनिक पहचान अभी निश्चित नहीं हो सकी है। कनिंघम ने इसे वर्तमान औमी नदी से मिलाया था।[3] कारलायल ने उसे बस्ती जिले की वर्तमान कुडवा नदी बताया था।[4] भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य उसे देवरिया जिले की आधुनिक मझन नदी मानते हैं।[5] हमारा निश्चित मत है कि अनोमा आधुनिक औमी नदी ही थी।

बाहुका, सुन्दरिका, सरस्वती और बाहुमती नदियों का उल्लेख मज्झिम-निकाय के वत्थ-सुत्तन्त में है। सुन्दरिका नदी का उल्लेख संयुत्त-निकाय के सुन्दरिक-सुत्त में भी है। यह नदी कोसल जनपद में होकर बहती थी। सुन्दरिक भारद्वाज ने इसी नदी के किनारे अग्नि-हवन किया था, ऐसा हमें संयुत्त-निकाय के सुन्दरिक-सुत्त से मालूम होता है। इस नदी की पहचान आधुनिक सई नदी से करना ठीक जान पड़ता है, जो प्राचीन काल में स्यन्दिका भी कहलाती थी। कोसल राज्य की

---

१. देखिये आगे हिमालय पर्वत का वर्णन।

२. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ३८८।

३. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी आव इण्डिया, पृष्ठ ४८८-४९१।

४. आर्केलोजीकल सर्वे, जिल्द बाईसवीं, पृष्ठ २२४

५. कुशीनगर का इतिहास, पृष्ठ ५८; बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय, पृष्ठ १०।

दक्षिणी सीमा पर होकर यह नदी बहती थी। बाहुका नदी भी कोसल जनपद में होकर बहती थी। इसे आधुनिक धुमेल नदी से मिलाया गया है, जो रापती की एक सहायक नदी है। बाहुमती नदी आधुनिक बागमती है, जो नेपाल से आती हुई बिहार राज्य में बहती है।

चम्पा नदी, जैसा चम्पेय्य जातक में उल्लेख है, अंग और मगध के बीच की सीमा पर थी। अंग इसके पूर्व में था और मगध पश्चिम में। इसका आधुनिक नाम चाँदन नदी है। ककुत्था (या कुकुत्था) नदी का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। यह नदी पावा और कुसिनारा के बीच में थी। यह आधुनिक बरही नामक छोटी सी नदी है, जो कसया से ८ मील नीचे छोटी गण्डक में मिलती है। यही इस नदी की ठीक पहचान है। कुछ विद्वानों ने इसे वर्तमान घाघी और कुकु नदियों से मिलाया है, जो ठीक नहीं जान पड़ता।

किमिकाला नदी चेतिय जनपद मे होकर बहती थी। इसका यह नाम क्यों पड़ा, यह हम चेतिय जनपद के विवरण में देखेंगे। रोहिणी नदी, कुणाल जातक के अनुसार, शाक्य और कोलिय जनपदों की सीमा पर होकर बहती थी। यह आधुनिक रोहिणी नदी ही है, जो डोमिनगढ़ और गोरखपुर के बीच रापती नदी में मिलती है। रुक्खधम्म जातक और फन्दन जातक में भी इस नदी का उल्लेख है।

हिरण्यवती (हिरञ्ञवती) नदी कुसिनारा के समीप होकर बहती थी। मल्लों का उपवत्तन नामक शाल-वन इसी नदी के किनारे पर स्थित था। महापंडित राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार इसका आधुनिक नाम सोनरा नाला है, जिसे हिरवा की नारी भी कहकर पुकारा जाता है।[१] डा० राजबली पाण्डेय ने इस नदी की पहचान छोटी गण्डक नदी से की है।[२] डा० विमलाचरण लाहा का भी मत है कि हिरण्यवती नदी छोटी गण्डक ही है, जो अजितवती नाम से कुसिनारा के समीप होकर बहती है।[३] हम सोनरा नाला को ही हिरण्यवती नदी मानना

---

१. बुद्धचर्या, पृष्ठ ५७२; मिलाइये भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य : बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय, पृष्ठ १०।

२. गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, पृष्ठ १०।

३. हिस्टोरिकल ज्योग्रेफी ऑव एन्शियन्ट इंडिया, पृष्ठ ३२, ८५।

अधिक ठीक समझते हैं। सप्पिनी नदी राजगृह के पास होकर बहती थी। यह आधुनिक पंचान नदी ही है। संयुत्त-निकाय के सनंकुमार-सुत्त में हम भगवान् को सप्पिनी नदी के तट पर विहार करते देखते हैं। अन्य कई अवसरों पर भी भगवान् ने इस नदी के किनारे पर विहार किया। जैसा इसके "सप्पिनी" नाम से स्पष्ट है, यह नदी सर्पिणी की तरह टेढ़ी-मेढ़ी बहती थी। इसी कारण इसका यह नाम पड़ा।[1] एक बार भगवान् गिज्झकूट (गृध्रकूट) पर्वत से इस नदी के तट पर आये थे और कुछ परिव्राजकों से मिले थे।[2] एक परिव्राजकाराम भी इस नदी के तट पर स्थित था।

नेरंजरा (सं० नैरंजना) के तट पर, उरुवेला के समीप, भगवान् ने छह वर्ष तक तप किया था।[3] और उसके बाद भी कई बार यहाँ विहार किया था।[4] संयुत्त-निकाय के तपोकम्म-सुत्त, नाग-सुत्त, सत्तवस्सानि-सुत्त, आयाचन-सुत्त, गारव-सुत्त, मग्ग-सुत्त और ब्रह्म-सुत्त का उपदेश इस नदी के तट पर विहार करते हुए भगवान् ने दिया था। नेरंजरा नदी का आधुनिक नाम नीलाजन नदी है, जिसके पश्चिम की ओर करीब २०० गज की दूरी पर बोध-गया (बुद्ध-गया) स्थित है। बुद्ध-गया के समीप होकर यह नदी उस समय के समान आज भी बहती है। नीलाजन नदी बुद्ध-गया से कुछ ऊपर चलकर मोहना नदी में मिलती है और मिलकर दोनों फल्गु नदी कहलाती हैं। इसीलिये नेरंजरा को कुछ विद्वानों ने आधुनिक फल्गु नदी भी कह दिया है। वस्तुतः हमें दोनों में भेद करना चाहिए।[5]

---

१. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २१९।

२. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २९, १७६।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ७५; अरियपरियेसन (पासरासि) सुत्तन्त (मज्झिम० १।३।६); महासच्चक-सुत्तन्त (मज्झिम० १।४।६); बोधि-राजकुमार-सुत्तन्त (मज्झिम० २।४।५); पधान-सुत्त (सुत्त-निपात)।

४. देखिये उदान (बोधिवग्ग); महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ २।३) अंगुत्तर-निकाय, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २०-२३।

५. देखिये बड़ुआ : गया एण्ड बुद्धगया, पृष्ठ १०१।

नेरंजरा नदी के तट पर, उरुवेला के समीप, सुप्रतिष्ठित तीर्थ (सुप्पतिट्ठित तित्थ) नामक घाट था, जहाँ भगवान् ने बुद्धत्व-प्राप्ति से पूर्व स्नान किया था।[१] उरुवेला के समीप नेरंजरा के सुन्दर प्राकृतिक दृश्य का वर्णन स्वयं भगवान् बुद्ध ने किया है जिसका उल्लेख हम तृतीय परिच्छेद में उरुवेला का विवरण देते समय करेंगे। पालि परम्परा के अनुसार निर्मल जल वाली (नेला जला) या नीले जल वाली (नीलाजला) होने के कारण यह नदी नेरंजरा (नैरंजना) कहलती थी। वग्गुमुदा नदी का उल्लेख विनय-पिटक[२] में है। यह नदी वैशाली के समीप होकर बहती थी। इस नदी के तट पर रहने वाले भिक्षुओं को लक्ष्य करके ही चतुर्थ पाराजिका प्रज्ञप्त की गई थी।[३] महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने इस नदी को बाग्मती नदी से मिलाया है।[४] परन्तु हम वस्तुतः बाहुमती नदी को ही बाग्मती नदी से मिलाना अधिक ठीक समझते हैं। संयुत्त-निकाय के साधु-सुत्त में यम की नदी वेतरणी (वैतरणी) का उल्लेख है। "वह यम की वैतरणी को लाँघ, दिव्य स्थानों को प्राप्त होता है।"[५] जातक[६] में भी कई जगह वेतरणी नदी का उल्लेख है। यद्यपि विद्वानों ने उड़ीसा, गढ़वाल और कुरुक्षेत्र में वेतरणी नदियाँ खोज ही निकाली हैं, परन्तु हम विशेषतः पालि की "यम की नदी वैतरणी" को इस भूलोक में ढूँढ़ना पसन्द नहीं करते।

सुतनु नामक एक नदी श्रावस्ती के समीप होकर बहती थी, ऐसा हमें संयुत्त-निकाय के सुतनु-सुत्त से पता लगता है। सम्भवतः यह नदी अचिरवती नदी में

---

१. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ९१ (हिन्दी अनुवाद)।

२. पृष्ठ ५४३ (हिन्दी अनुवाद)।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५४३।

४. साहित्य निबन्धावली, पृष्ठ १८६।

५. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ २३।

६. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४७२; जिल्द चौथी, पृष्ठ २७३; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २६९।

गिरने वाली उसकी कोई सहायक नदी थी। सुतनु नदी के तीर पर, उपर्युक्त सुत्त के साक्ष्य पर, आयुष्मान् अनुरुद्ध ने विहार किया था।

अचिरवती की ही एक सहायक नदी सम्भवतः अजकरणी नदी थी। इसके किनारे पर लोणगिरि या लेण नामक विहार था जहाँ सब्बक (या सप्पक) स्थविर रहते थे। स्थविर भूत ने भी इस नदी के तट पर निवास किया था।

काकाति जातक में केबुक नामक नदी का उल्लेख है, जिसके सम्बन्ध में हम पहले परिच्छेद में कह चुके हैं।

बक ब्रह्म जातक में एणी नामक नदी का उल्लेख है, जिसकी आधुनिक पहचान करना कठिन है।

अंगुत्तर-निकाय[1] में मन्दाकिनी नदी का उल्लेख है, जिसे उत्तर भारत में अलकनन्दा की सहायक नदी भी माना जा सकता है और चित्रकूट के समीप बहने वाली आधुनिक मन्दाकिनी भी। सम्भवतः दूसरी पहचान ही अधिक ठीक है।

गगा की सहायक नदी के रूप में मिगसम्मता नदी का उल्लेख जातक में है। इसे वहां हिमवन्त से निकल कर गंगा में मिलती दिखाया गया है। "हिमवन्ततो गङ्गं पत्ता।"[2] उपर्युक्त नदियों के अतिरिक्त अन्य कई छोटी नदियों के नाम भी पालि साहित्य में ढूंढ़े जा सकते हैं, परन्तु उनकी निश्चित भौगोलिक स्थिति सम्बन्धी विवरण प्राप्त न होने के कारण उन्हें किस प्रदेश में रक्खा जाय, इसका सम्यक् निर्णय हमारे वर्तमान ज्ञान की अवस्था में नहीं हो सकता।

पालि साहित्य में हिमालय का नाम हिमवा या हिमवन्त है। दीघ-निकाय के अम्बट्ठ-सुत्त, महापदान-सुत्त और महासमय-सुत्त तथा संयुत्त-निकाय के नानातित्थिय-सुत्त, रज्ज-सुत्त, नाग-सुत्त, हिमवन्त-सुत्त, मक्कट-सुत्त और पठम-पब्बतुपमा-सुत्त मे हिमालय का उल्लेख है। अन्य बीसो स्थलों पर पालि तिपिटक मे इस पर्वत का उल्लेख पाया जाता है और यही बात अट्ठकथाओं के सम्बन्ध में भी है। आजकल हिमालय नाम का प्रयोग कश्मीर से असम तक फैले सम्पूर्ण हिमालय पर्वत के लिये किया जाता है और यही बात पालि तिपिटक और

---

१. जिल्द चौथी, पृष्ठ १०१।
२. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ७२।

उसकी अट्ठकथाओं के लिये भी ठीक मानी जा सकती है। कुछ विद्वानों ने पालि के हिमवन्त को केवल मध्य-हिमालय या उसका पूर्वी भाग माना है। यह ठीक नहीं है। इसका कारण यह है कि चन्द्रभागा (चिनाब) नदी के उस पार जो कुक्कुट या कुक्कुटवती नामक नगरी थी, उसे (हिमवा) के समीप एक प्रत्यन्त-नगर बताया गया है।[1] अतः हिमवा या हिमवान् (हिमालय) के विस्तार को हमें पालि परम्परा के अनुसार उसके पश्चिमी और उत्तर-पश्चिमी भाग तक भी मानना पड़ेगा, जो प्रादेशिक विभाग के अनुसार उत्तरापथ में पड़ता था। हिमालय से निकलने वाली नदियों में सिन्धु, चन्दभागा (चिनाब) और वीतंसा (वितस्ता-झेलम) की भी गणना से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिमालय के पश्चिमी भाग का ज्ञान भी हिमवन्त के रूप में पालि परम्परा को था। कुणाल जातक में हिगुल पब्बत को हिमवन्त में स्थित बताया गया है। हिगुल पब्बत (आधुनिक हिंगलाज) सिन्ध और बिलोचिस्तान की पहाड़ियों के बीच, कराची से ९० मील उत्तर में स्थित है। इतना ही नहीं, दद्दर पर्वत को भी जातक में 'हिमवा' में स्थित बताया गया है।[2] दद्दर पर्वत की आधुनिक पहचान कश्मीर के उत्तर में स्थित हिन्दुकुश पर्वत के एक भाग से की गई है। अतः पालि के हिमवन्त से तात्पर्य हमें निश्चयतः सम्पूर्ण हिमालय से लेना पड़ेगा जो भारत के उत्तर में उसके पश्चिमी कोने से लेकर पूर्वी कोने तक फैला हुआ है। हिमालय के उत्तर के उस पार के प्रदेश से भी हम पालि परम्परा को परिचित देखते है, जैसा कि "उत्तर हिमवन्त",[3] के प्रयोग से स्पष्ट प्रकट होता है और "उत्तर-कुरु" आदि के विवरणों से भी।

पालि परम्परा के अनुसार हिमालय उन सात पर्वतों में से है जो गन्धमादन पर्वत को घेरे हुए है।[4] हिमालय का विस्तार तीन हजार योजन बताया गया है और कहा गया है कि उसमें चौरासी हजार चोटियाँ है।[5] हिमालय में सात बड़ी

---

१. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ११६।

२. देखिये आगे उत्तरापथ के प्राकृतिक भूगोल का विवेचन।

३. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३७७; जिल्द चौथी, पृष्ठ ११४।

४. परमत्थजोतिका (सुत्त-निपात की अट्ठकथा), जिल्द पहली, पृष्ठ ६६।

५. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ २२४; जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४४३।

झीलें हैं, जिनके नाम हैं, अनोतत्त, कण्णमुण्ड, रथकार, छद्दन्त, कुणाल, मन्दाकिनी और सीहप्पपातक, जो सूर्य की गरमी से कभी तप्त नहीं होतीं।[1] हिमालय से ५०० नदियाँ निकलतीं हैं, जिनमें दस मुख्य हैं। इनके नाम हैं, गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभू, मही, सिन्धु, सरस्सती, वेत्तवती, वीतंसा और चन्दभागा।[2] ऊहा नदी भी हिमालय में है।[3] हिमालय सघन वनों से आच्छादित है और ध्यान के लिये अनुकूल स्थान है।[4] अंगुत्तर-निकाय में तथा संयुत्त-निकाय के हिमवन्त-सुत्त, मक्कट-सुत्त और पठम-पब्बतुपमा-सुत्त में उसे पर्वतराज (पब्बतराजा) कहकर पुकारा गया है।

पर्वतराज हिमालय (हिमवन्तो पब्बतराजा) का चित्रमय वर्णन करते हुए मिलिन्द-प्रश्न में कहा गया है "पर्वतराज हिमालय पाँच सौ योजन ऊँचा आकाश में उठा हुआ है, तीन हजार योजन के घेरे में फैला है, चौरासी हजार चोटियों से सजा हुआ है, इससे पांच सौ बड़ी बड़ी नदियाँ निकलती हैं, बड़े-बड़े जीवों का यह घर है, इसमें अनेक प्रकार के गन्ध हैं, सैकड़ो दिव्य औषधियों से यह भरा है और यह आकाश में उठे हुए मेघ की तरह दिखाई देता है"।[5] इसी प्रकार हिमालय

---

१. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ १०१; परमत्थजोतिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४०७।

२. मिलिन्दपञ्हो में कहा गया है,"हिमवन्ता पब्बता पञ्च नदीसतानि सन्दन्ति। तेसं महाराज पञ्चन्नं नदीसतानं दसेव नदियो नदीगणनाय गणीयन्ति सेय्यथीदं--गंगा, यमुना, अचिरवती, सरभू, सिन्धु, सरस्सती, वेत्तवती, वीतंसा, चन्दभागा।" पृष्ठ ११७। (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण); देखिये मिलिन्दप्रश्न (हिन्दी अनुवाद, द्वितीय संस्करण), पृष्ठ १४४।

३. किं पन महाराज हिमवति ऊहा नदी तया दिट्ठाति। मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ ७३ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

४. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २६५; मिल.इये मिलिन्दप्रश्न, पृष्ठ १० (हिन्दी अनुवाद, द्वितीय संस्करण)।

५. मिलिन्दप्रश्न, पृष्ठ ३४७-३४८ (भिक्षु जगदीश काश्यप का हिन्दी अनुवाद, द्वितीय संस्करण); मूल पालि इस प्रकार है, "हिमवन्तो पब्बतराजा

पर्वत पर वर्षा होने के दृश्य को एक उपमा के लिये इस ग्रन्थ में प्रयुक्त किया गया है।[1] हिमालय पर्वत पर होने वाले नागपुष्प के सम्बन्ध में कहा है कि जब यह फूलता है तो इसकी गन्ध धीमी-धीमी वायु के सहारे दस-बारह योजन तक चली जाती है।[2]

कुणाल जातक (हिन्दी अनुवाद, पंचम खण्ड, पृष्ठ ५०१-५०२) में भी हमें हिमालय का सुन्दर वर्णन उपलब्ध होता है। और महावेस्सन्तर जातक (हिन्दी अनुवाद, षष्ठ खण्ड, पृष्ठ ५३६-३८), में तो हिमालय, उसकी वनस्पतियों और पशु-पक्षियों का सम्भवतः विशदतम वर्णन ही उपलब्ध है।

स्थविर सीवली श्रावस्ती से हिमवन्त गये थे। उनके साथ ५०० अन्य भिक्षु भी गये थे। आठ दिन में वे हिमालय पहुँचे थे।[3] अशोक के काल में मज्झिम स्थविर ने हिमवन्त प्रदेश में बुद्ध-शासन का प्रचार किया था। उनके साथ कस्सप-गोत्त, मूलदेव, अलकदेव, सहदेव और दन्दभिस्सर नामक भिक्षु भी गये थे।[4] "महावंश"[5] में कहा गया है कि राजा अशोक के लिये नागलता की दाँतौन हिमालय से लाई गई थी। कुणाल जातक का उपदेश भगवान् ने हिमवन्त प्रदेश में ही दिया था। संयुत्त-निकाय के रज्ज-सुत्त में भगवान् बुद्ध के हिमालय प्रदेश में जाने और वहाँ एक अरण्यकुटिका में निवास करने का उल्लेख है। अन्य अनेक भिक्षुओं के भी

पञ्चयोजनसतं अब्भुग्गतो नभे तिसहस्सयोजनायामवित्थारो चतुरासीतिकूट-सहस्सपटिमण्डितो पञ्चन्नं महानदीसतानं पभवो महाभूतगणालयो नानाविध-गन्धधरो दिब्बोसधसतसमलंकतो नभे वलाहको विय अब्भुग्गतो दिस्सति। मिलिन्दपञ्हो पृष्ठ २७७ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

१. देखिये मिलिन्द-प्रश्न, पृष्ठ २४२ (हिन्दी अनुवाद, द्वितीय संस्करण)।

२. हिमवन्ते पब्बते नागपुप्फसमये उजु वाते वायन्ते दस द्वादस योजनानि पुप्फगन्धो वायति। मिलिन्द पञ्हो, पृष्ठ २७८ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण), देखिये मिलिन्द प्रश्न (हिन्दी अनुवाद द्वितीय संस्करण), पृष्ठ ३४८।

३. थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १३८।

४. दीपवंस ३।१०; महावंस १।३१७ (हिन्दी अनुवाद)।

५. ५।२५ (हिन्दी अनुवाद)।

हिमालय की अरण्य कुटिकाओं में निवास करने का उल्लेख इसी निकाय के जन्तु-सुत्त में किया गया है। सुखविहारी जातक तथा अन्य कई जातकों में लोगों के ऋषि प्रव्रज्या लेकर हिमवन्त जाने और वहाँ आश्रय बनाकर रहने का उल्लेख है। मातिपोसक जातक में हिमालय के करण्डक नामक एक आश्रमपद (अस्समपद) का उल्लेख है। दीघ-निकाय के महासमय-सुत्त में हिमालय को यक्षों का निवास-स्थान कहा गया है और इसी निकाय के महापदान-सुत्त में हिमालय पर पाये जाने वाले करविक नामक पक्षी का उल्लेख है। हिमालय पर पाये जाने वाले अनेक जानवरों के वर्णन भी पाये जाते हैं। हिमालय से पच्चेकबुद्ध बुद्ध-पूर्व काल में इसिपतन मिगदाय आया-जाया करते थे, यह हम इसिपतन मिगदाय के वर्णन में तृतीय परिच्छेद में देखेंगे। हिमालय में रहने वाले तपस्वियों के भारत के राजगृह, चम्पा और वाराणसी जैसे नगरों में नमक और खटाई का स्वाद लेने के लिए आने के उदाहरण भी जातक-कथाओं में मिलते हैं।[1]

उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि हिमालय पर्वत के रूप में तो पालि परम्परा को सुविदित था ही, उसे एक अलग प्रदेश मान कर भी अक्सर उसका वर्णन किया गया है। विशेषतः जातकों में हमें हिमालय पर्वत की विभिन्न श्रेणियों और शिखरों के वर्णन उपलब्ध होते हैं। इस प्रकार अस्सकण्ण गिरि,[2] इसिधर,[3] उदक पब्बत[4] रजत पब्बत,[5] कंचन पब्बत,[6] करवीक पब्बत,[7] काल गिरि,[8] चित्तकूट,[9]

---

१. देखिये आगे तीसरे परिच्छेद में इन नगरों के विवरण।

२. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ १२५।

३. उपर्युक्त के समान।

४. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३८।

५. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७६।

६. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३९६।

७. वहीं, जिल्द छठी, पृष्ठ १२५।

८. वहीं, जिल्द छठी, पृष्ठ २६५।

९. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १६०; जिल्द तीसरी, पृष्ठ २०८; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३३७।

मणिपस्स,[1] युगन्धर,[2] सुरियपस्स[3] और सुदस्सन[4] आदि न जाने कितने पर्वत हिमवन्त में गिनाये गये हैं। कंचन पर्वत को वर्तमान कंचनचंगा माना जा सकता है। संयुत्त-निकाय के नाना तित्थिय-सुत्त में, जिसका उद्धरण मिलिन्दप्रश्न में भी दिया गया है, सेत(श्वेत) नामक पर्वत को हिमालय के सब पर्वतों या पर्वत-शिखरों में श्रेष्ठ बताया गया है।[5] सारत्थप्पकासिनी में उपर्युक्त सेत(श्वेत) पर्वत को कैलाश पर्वत बताया गया है। अतः पालि परम्परा के अनुसार हिमालय की सबसे ऊँची चोटी का नाम सेत (श्वेत) पर्वत या केलास (कैलाश) ही है। जातक में इसे हिमाच्छादित तथा स्वच्छ वर्ण का बताया गया है। अपदान[6] में हिमालय के पर्वत-शृंगों की एक लम्बी सूची दी गई है, जैसे कि लम्बक, गोतम, वसभ, सोभित, कोसिक, कदम्ब और भरिक आदि। पालि परम्परा का चित्तकूट हिमवन्त में है, अनवतप्त (अनोतत्त) दह के पास, यह एक विशेष बात है। जवनहंस जातक में उसे निश्चयतः हिमालय और अनोतत्त दह से सम्बद्ध किया गया है। पालि परम्परा के गन्धमादन[7] को (कैलाश) नन्दोलाल दे ने रुद्र हिमालय से मिलाया है।[8] गन्धमादन के सम्बन्ध में आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि वह हरे रंग का था और उसमें अनेक सुगन्धित वनस्पतियाँ उगती थी।[9]

---

१. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३८।

२. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ ३२२।

३. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३०।

४. उपर्युक्त के समान।

५. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ६६; मिलिन्दप्रश्न; (हिन्दी अनुवाद, द्वितीय संस्करण), पृष्ठ २९५।

६. पृष्ठ क्रमशः १५, १६२, १६६, ३२८, ३८१, ३८२ और ४४०।

७. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४५२; जिल्द चौथी, पृष्ठ २८७।

८. ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी, पृष्ठ ६०।

९. पपंचसूदनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३४।

यामुन नामक पर्वत का भी जातक[1] में उल्लेख है, जिसे नन्दोलाल दे ने यमुनोत्तरी से मिलाया है।[2]

वेस्सन्तर जातक में वंक पब्बत का उल्लेख है और उसे वहाँ हिमालय में स्थित बताया गया है। इस प्रकार इस पर्वत को उस वंक या वंकक पर्वत से भिन्न समझना चाहिए जो राजगृह में स्थित वेपुल्ल पब्बत का प्राचीन नाम था। वेस्सन्तर जातक में विपुल पर्वत का भी उल्लेख है और उसे वहाँ गन्धमादन पर्वत के उत्तर में स्थित बताया गया है। इस प्रकार स्पष्टतः इसे राजगृह के विपुल या वेपुल्ल पब्बत से भिन्न होना चाहिए। हिमालय की पश्चिमी श्रेणियों का वर्णन हम उत्तरापथ के प्रसंग में करेंगे।

कैलाश के समीप अनोतत्त (अनवतप्त—कभी गर्म न होने वाली) दह थी, जो सुदस्सनकूट, चित्तकूट, कालकूट, गन्धमादन और केलास, इन पाँच हिमाच्छादित पर्वत-शिखरों से आवेष्टित थी।[3] अनोतत्त दह (अनवतप्त ह्रद) को यूआन् चुआङ में "अनु-त" कहकर पुकारा है।[4] अनोतत्त दह को अक्सर मानसरोवर झील से मिलाया जाता है। अनोतत्त दह हिमालय पर स्थित सात बड़ी झीलों में से एक थी। जैसा हम पहले देख चुके हैं, भगवान् बुद्ध यहाँ कई बार गये थे और बाद में भी अनेक स्थविरों के वहाँ जाने के उल्लेख पालि साहित्य में मिलते हैं। महावंस-टीका के अनुसार अनोतत्त दह का जल अभिषेक के समय प्रयोग किया जाता था। चक्क दह,[5] सिम्बली,[6] छद्दन्त[7] और कण्णमुण्डा[8] जैसी

---

१. जिल्द चौथी, पृष्ठ २००।

२. ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी, पृष्ठ २१५

३. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८५; मनोरथपूरणी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७५९।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इंडिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०।

५. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ २३२।

६. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ९१।

७. वहीं, जिल्द छठी, पृष्ठ ३७; अंगुत्तर निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ १०१।

८. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १०४।

अन्य झीलों के विवरण भी जातक-कथाओं में पाये जाते हैं। हिमवन्त प्रदेश की नदियों में ऊहा और मिगसम्मता का उल्लेख तो हम पहले कर ही चुके हैं, हेमवता,[1] सीदा[2] और केतुमती[3] के नाम भी विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। पालि की सीदा नदी सम्भवतः वही है जो जैन उत्तराध्ययन-सूत्र (११।२८; पृष्ठ ४९) की सीता नदी। जैन परम्परा में इस नदी की गणना चौदह महानदियों में की गई है। जैन भौगोलिक विवरणों के अनुसार यह नदी नील नामक पर्वत-श्रेणी से निकलती है और पूर्वी समुद्र में जाकर गिरती है। नील पर्वत-श्रेणी उन छह समानान्तर पर्वत-श्रेणियों में चतुर्थ है जिनमें सबसे दक्षिण में हिमालय है। महाभारत के भीष्म-पर्व में सीता नदी की गणना सप्त दिव्य गंगाओं में की गई है। महाभारत के शान्ति-पर्व में भी इस नदी का उल्लेख है तथा विष्णु और मार्कण्डेय पुराण। में भी। निमि जातक में सीदा नदी को उत्तर हिमालय में स्थित बताया गया है और उसे गम्भीर और दुरतिक्रम कहा गया है। "उत्तरेण नदी सीदा गम्भीरा दुरतिक्कमा।" इसी जातक में इसे कंचन पब्बत में होकर बहती बताया गया है और कहा गया है कि अनेक सहस्र तपस्वी इसके तट पर निवास करते थे। इसे लताओं और सुगन्धित वनस्पतियों से भी आवेष्टित बताया गया है। सीदा (सीता) नदी को हम सम्भवतः आधुनिक यारकन्द या जरफशाँ नदी से मिला सकते हैं।[4] काल-शिला, मनोशिला जैसी अनेक शिलाएँ, करण्टक वन जैसे अनेक वन और कचन गुहा, फलिकगुहा जैसी अनेक गुहाएँ हिमवन्त में वर्णित की गई है, जिनकी पहचान आज करना मुश्किल है।

हिमवन्त पदेस मज्झिम देस तथा सम्पूर्ण जम्बुद्वीप के उत्तर में स्थित था, जिसके प्राकृतिक भूगोल के सम्बन्ध में कुछ सूचना हमने ऊपर दी है। जहाँ तक

---

१. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ ४३७।

२. वहीं, जिल्द छठी, पृष्ठ १००।

३. वहीं, जिल्द छठी, पृष्ठ ५१८।

४. देखिये वाटर्स : ऑन यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३२; जिल्द दूसरी, पृष्ठ २८३,; हेमचन्द्र रायचौधरी : स्टडीज इन इंडियन एण्टिक्विटीज, पृष्ठ ७५-७६।

मज्झिम देस की आन्तरिक सीमाओं का सम्बन्ध है, अनेक पर्वतों और पहाड़ियों का उल्लेख पालि परम्परा में किया गया है। सर्व प्रथम हमारा ध्यान गिज्झकूट, इसिगिलि, वेपुल्ल, वेभार और पण्डव पर्वतों की ओर जाता है, जो राजगृह को घेरे हुए थे और भगवान् बुद्ध की स्मृतियों से अनुविद्ध हैं। हम इनका विस्तृत परिचय तृतीय परिच्छेद में राजगृह का विवरण देते समय देंगे। इन्द्रिय जातक में अरंजर गिरि को मज्झिम देस में सम्मिलित बताया गया है। इस जातक के अनुसार यहाँ काल देवल के छोटे भाई नारद नामक ऋषि ने निवास किया था। वेस्सन्तर जातक के वर्णनानुसार अरंजर पर्वत जेतुत्तर नगर से १५ योजन और कोन्तिमार नदी से ५ योजन की दूरी पर स्थित था। इन सब स्थानों की अभी पूरी खोज नही हो सकी है। संसुमार गिरि का उल्लेख भग्ग गण-तन्त्र का विवेचन करते समय और कुररघर पर्वत का उल्लेख अवन्ती के प्रसंग में हम तृतीय परिच्छेद में करेंगे।

अनेक वनों के उल्लेख पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में मिलते हैं। इनमें अनेक प्राकृतिक वन भी थे और अनेक मृगोद्यानों और उपवनों के रूप में भी। भगवान् बुद्ध किसी स्थान की यात्रा करते समय अक्सर या तो उसके समीप किसी नदी के किनारे, या आम्रवन में, या सिंसपा-वन में, या आमलकी-वन में, या अरण्य में, या किसी एकान्त निवास-स्थान में ठहरते थे। इस प्रकार अनेक वनों, उपवनों, आम्रवनों आदि के विवरण पालि तिपिटक में मिलते हैं, जैसे कि मज्झिम देस में मुख्यतः श्रावस्ती का अन्धवन, साकेत के अंजनवन और कण्टकीवन, नलकपान का केतकवन, कपिलवस्तु और वैशाली के महावन, शाक्य जनपद के लुम्बिनी वन और आमलकी वन, कुसिनारा के मल्लों का शाल-वन, भग्ग राज्य में भेसकलावन, चेति राज्य में पारिलेय्यक वन, काशी जनपद का अम्बाटक वन, आलवी, कौशाम्बी और सेतव्या के सिंसपा-वन, राजगृह, किम्बिला और कजगल के वेणुवन, मोरियों का पिप्फलिवन, वज्जियों के नागवन और अवरपुर वनखण्ड तथा भद्दिय के जातियावन, आदि। चूँकि ये सब वनोपवन और प्राकृतिक स्थल किसी ग्राम या नगर से ही सम्बन्धित होते थे और अक्सर तो उनके नाम भी उनके समीपवर्ती स्थानों के आधार पर ही होते थे, अतः भौगोलिक दृष्टि से उनकी स्थिति को ठीक रूप से समझने के लिये यह आवश्यक होगा कि हम उनका विवरण अलग से न देकर उन स्थानों के भूगोल के प्रसंग में दें, जहाँ वे स्थित थे। अब हम बुद्धकालीन जम्बु-

द्वीप के शेष चार प्रादेशिक विभागों के विस्तार और उनके प्राकृतिक भूगोल पर आते हैं।

पुब्ब, पुब्बन्त, पाचीन या पुरत्थिम देश के अन्तर्गत हम वंग और सुह्म (सुम्भ) जनपदों को रख सकते हैं। उक्कल (उत्कल) और उसके नीचे कलिंग को तो दक्षिणापथ में ही रखना ठीक होगा, क्योंकि ये सललवती (सिलई) नदी और सेतकण्णिक नामक निगम के दक्षिण में ही स्थित हो सकते हैं। परम्परागत सोलह महाजनपदों की सूची में से किसी जनपद को हम पूर्व देश के अन्तर्गत नहीं रख सकते। हाँ, अङ्ग-मगध और यहाँ तक कि काशी-कोसल जैसे जनपदों को हम मध्य-देश के अन्तर्गत ही पूर्वी जनपद अवश्य मान सकते हैं। जैसा हम मज्झिम देस की सीमाओं के विवरण में देख चुके हैं, पालि परम्परा के अनुसार पूर्व देश की पश्चिमी सीमा कजंगल नामक निगम थी। पूर्व देश की अन्य सीमाओं का स्पष्ट निर्देश पालि परम्परा में नहीं किया गया है।

पूर्व देश के प्राकृतिक भूगोल के सम्बन्ध मे अधिक विवरण पालि तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओं में प्राप्त नहीं होता। पालि परम्परा अंग-मगध के विवरणों में इतनी अधिक व्यस्त है कि उसने भगवान् बुद्ध के समान सम्भवत. कोसी नदी को पार नहीं किया है। कोसिकी नदी का उल्लेख एक जातक-कथा में है, जहाँ उसे हिमवन्त प्रदेश में होकर बहने वाली गंगा की सहायक नदी बताया गया है। यहीं उसके किनारे पर स्थित एक तीन योजन विस्तृत आम्रवन का भी उल्लेख है।[1] यह कोसिकी नदी निश्चयत. आधुनिक कोसी या कुसी नदी ही है। चम्पा नदी अंग और मगध की सीमा पर थी, अत उसे निश्चयतः मज्झिम देस मे ही माना जायगा। पूर्व देश के प्राकृतिक भूगोल के सम्बन्ध में अन्य कोई महत्वपूर्ण जानकारी हमें पालि परम्परा में नहीं मिलती।

उत्तरापथ की सीमाओं का कोई निश्चित उल्लेख पालि साहित्य में नहीं मिलता। "उत्तरापथ" शब्द प्रारम्भिक रूप मे उस व्यापारिक मार्ग का द्योतक था, जो श्रावस्ती या राजगृह से गन्धार जनपद तक जाता था। इसी प्रकार "दक्षिणापथ" नाम अपने मौलिक रूप में उस व्यापारिक मार्ग का था, जो श्रावस्ती से प्रति-

---

१. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २, ५, ६।

ष्ठान तक जाता था। बाद में इन दोनों शब्दों का प्रयोग व्यापारिक मार्गों के स्थान पर उन प्रदेशों के लिये किया जाने लगा, जहाँ पर होकर ये गुजरते थे।

यदि उपर्युक्त "उत्तरापथ" मार्ग को, जो श्रावस्ती या राजगृह से गन्धार जनपद तक जाता था, उत्तरापथ की सीमाओं के निर्धारित करने में प्रमाण-स्वरूप माना जाय, तब तो अंग से गन्धार तक का और हिमालय से लेकर विन्ध्याचल तक का सारा प्रदेश उत्तरापथ में सम्मिलित माना जायगा। परन्तु इतनी विस्तृत व्याख्या उत्तरापथ जनपद की पालि परम्परा को स्वीकार नहीं हो सकती। उसके अनुसार तो उत्तरापथ को मज्झिम देस के पश्चिम और अपरान्त के उत्तर का वह भाग माना जायगा, जिसमें होकर सिन्धु, और वीतंसा (वितस्ता—झेलम और चन्दभागा (चन्द्रभागा—चिनाव) जैसी उसकी सहायक नदियाँ बहती थीं। प्राचीन सोलह महाजनपदों में से केवल दो अर्थात् कम्बोज और गन्धार को उत्तरापथ में सम्मिलित माना गया है। घट जातक में अवश्य महाकंस के राज्य कंसभोग को, जिसकी राजधानी असितंजन नामक नगरी थी, उत्तरापथ में बताया गया है। इसी आधार पर सम्भवतः डा० विमलाचरण लाहा ने अपने ग्रन्थ "इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज्म"[1] में पूरे सूरसेन जनपद को उत्तरापथ में रखने की प्रवणता दिखाई है। इसी ग्रन्थ में एक अन्य जगह उन्होंने सूरसेन के साथ मच्छ (मत्स्य) जनपद को भी उत्तरापथ में रखने का प्रस्ताव किया है.[2] परन्तु मार्कण्डेय पुराण का अनुसरण कर अन्त में उन्होंने इन दोनों जनपदों को अपरान्त प्रदेश की सीमाओं के अन्दर रख दिया है।[3] पालि परम्परा के अनुसार ऐसा करना ठीक नहीं है। हमें यह स्मरण रखना चाहिए कि जातक खुद्दक-निकाय का ग्रन्थ है और विनय-पिटक के महावग्ग के सामने उसके साक्ष्य का, जब कि दोनों में विरोध हो, कोई महत्व नहीं है। विनय-पिटक के महावग्ग में, हम पहले देख चुके हैं, मज्झिम देस की पश्चिमी सीमा थूण (थाणेश्वर) नामक ग्राम बताई गई है। मच्छ और सूरसेन दोनों जनपद प्रायः कुरु राष्ट्र

---

१. पृष्ठ ६७, ७४।
२. वहीं, पृष्ठ ७४।
३. वहीं, पृष्ठ ७५-७६।

के दक्षिण में थे। दोनों ही उत्तर में कुरु और दक्षिण में वंस (वत्स) जनपद के बीच में स्थित थे। जब कुरु और वंस दोनों को निश्चित रूप से हम मज्झिम देस के अन्तर्गत मानते हैं तो मच्छ और सूरसेन को हम उसकी सीमा से बाहर किस प्रकार मान सकते हैं? घट जातक के अनुसार भी हम केवल इतना कह सकते हैं कि कंसभोग नामक राज्य जिसकी राजधानी असितंजन नामक नगरी थी, और जहाँ महाकंस नामक राजा राज्य करता था, उत्तरापथ में था। जातक का कंसभोग (कंसभोज भी पाठान्तर) वस्तुतः निकायों का कम्बोज ही लगता है, जो निश्चयतः उत्तरापथ में था। हम पहले कह चुके हैं कि गन्धार और कम्बोज नामक बुद्ध-कालीन महाजनपद उत्तरापथ में सम्मिलित थे। इन दो जनपदों के अतिरिक्त सिन्धु और सोवीर को भी हमें उत्तरापथ में सम्मिलित मानना चाहिए। डा० विमलाचरण लाहा ने इन जनपदों को अपनी "ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म"[१] में अपरान्त में सम्मिलित किया है जो अशोक के पंचम शिलालेख, जिसमें अपरान्त की सीमाओं को काफी बढ़ाकर वर्णन किया गया है और यूआन् चुआङ के यात्रा-विवरण के अनुसार तो ठीक है,[२] परन्तु पूर्ववर्ती पालि परम्परा के अनुसार तो सिन्धु-सोवीर को उत्तरापथ में ही रखना अधिक ठीक जान पड़ता है। इसके कारण इस प्रकार हैं। सबसे पहली बात तो यह है कि अपरान्त, पालि परम्परा के अनुसार, वह प्रदेश था जो बम्बई या महाराष्ट्र से लेकर सुरट्ठ और लाल रट्ठ (काठियावाड़-गुजरात) तक या अधिक से अधिक कच्छ की खाड़ी तक पश्चिमी समुद्र तट पर, फैला हुआ था। अतः उससे ऊपर के प्रदेश को, जिसमें सिन्धु-सोवीर देश सम्मिलित थे, उसकी सीमा के बाहर मानना चाहिए।

दूसरी बात यह है कि सिन्धु, वितंसा या वीतंसा (झेलम) और चन्दभागा (चिनाब) नदियाँ, जो सिन्धु-सोवीर देश में होकर बहती हैं, अपदान[३] में उत्तरापथ की नदियाँ कही गई हैं। तीसरा कारण सिन्धु-सोवीर देश को उत्तरापथ में सम्मिलित करने का यह है कि अंग-मगध देश से सिन्धु-सोवीर देश तक जिस स्थल-मार्ग का विवरण

१. देखिये पृष्ठ ५६-५८।

२. देखिये आगे अपरान्त प्रदेश का वर्णन।

३. पृष्ठ २७७-२९१; मिलाइये लाहा : इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज्म, पृष्ठ ७३।

पेतवत्थु और विमानवत्थु की अट्ठकथाओं में सेरिस्सक की कथा के प्रसंग में तथा वण्णुपथ जातक में दिया गया है, उसे उत्तरापथ से सम्बद्ध ही माना जा सकता है। यहाँ यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि इस मार्ग के बीच में चन्दभागा (चिनाब) नदी के भी पार करने का उल्लेख है, जिसके उत्तरापथ में होने के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं किया जा सकता। चौथा कारण सिन्धु-सोवीर देश को उत्तरापथ में मानने का यह है कि वह उत्तम घोड़ों के लिए प्रसिद्ध बताया गया है और उत्तम घोड़ों के लिये ही साधारणतः ख्याति बुद्ध के जीवन-काल में उत्तरापथ की थी। वेरंजा में जब भगवान् वर्षावास कर रहे थे, तो वहाँ उत्तरापथ के घोड़ों के व्यापारियों के भी उस समय पड़ाव डालने का उल्लेख है। सिन्धु-सोवीर के समान गन्धार और कम्बोज भी घोड़ों के लिये प्रसिद्ध थे।[1] अतः घोड़ों के लिये समान रूप से प्रसिद्ध होने के कारण गन्धार और कम्बोज के साथ-साथ सिन्धु और सोवीर को भी हमें उत्तरापथ में ही रखना चाहिए। सिन्धु देश को युआन् चुआङ ने सिन्धु नदी के पश्चिम का प्रदेश बताया था,[2] और सोवीर देश को प्रायः सभी आधुनिक विद्वान्, जिनमें स्वयं डा० लाहा भी सम्मिलित हैं, सिन्धु और झेलम नदियों के बीच का प्रदेश[3] या सिन्धु नदी के पूर्व में मुल्तान तक फैला प्रदेश[4] मानते हैं। अतः इन स्थितियों को ध्यान में रखते हुए सिन्धु-सोवीर को उत्तरापथ में ही माना जा सकता है। सिन्धु-सोवीर देश के हिंगुल पब्बत के पालि विवरण और उसकी आधुनिक स्थिति को देखते हुए भी, जिसका

---

१. देखिये तीसरे परिच्छेद में सिन्धु-सोवीर और गन्धार-कम्बोज जनपदों का विवरण।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इंडिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २५२, २५३, २५६।

३. लाहा : इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज्म, पृष्ठ ७०।

४ हेमचन्द्र रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इंडिया, पृष्ठ ५०७ पद-संकेत १; मललसेकर : डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १३१२।

विवरण हम अभी देंगे, सिन्धु-सोवीर को उत्तरापथ में ही माना जा सकता है, अपरान्त में नहीं। उपर्युक्त जनपदों के अतिरिक्त उत्तरापथ की सीमा में बुद्ध-काल के मद्द, सिवि, बाहिय आदि कई जनपद आते हैं, जिनका विवरण हम तृतीय परिच्छेद में देंगे। अब हम उत्तरापथ के प्राकृतिक भूगोल पर आते हैं।

जहाँ तक पर्वतों का सम्बन्ध है, हिमवन्त (हिमालय) की पश्चिमी श्रेणियों को हमें उत्तरापथ के अन्तर्गत रखना पड़ेगा। इस प्रकार की श्रेणियों में, जिनके नाम पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में उल्लिखित हैं, एक अंजन पब्बत है, जिसका उल्लेख सरभंग-जातक में है। इसे वहाँ महाटवी में स्थित बताया गया है। नन्दोलाल दे ने इस पर्वत को पंजाब की सुलेमान पर्वत-श्रेणी से मिलाया है।[1] हिमवन्त (हिमालय) की एक श्रेणी के रूप में ही जातक[2] तथा अपदान[3] में "निसभ" नामक पर्वत का उल्लेख है, जिसे पुराणों के "निषध" नामक पर्वत से मिलाया गया है। इस प्रकार इसकी आधुनिक पहचान हिन्दुकुश पर्वत के रूप में की गई है, जिसे ग्रीक लोगों ने "परोपनिसोस" या "परोपनिसद" कहकर पुकारा है।

मल्लगिरि[4] और नेमिन्धर[5] पर्वतों के उल्लेख जातकों में है। इन दोनों को कराकुरम श्रेणी के पर्वत माना गया है। नन्दमूलक पब्भार, जिसे जातक में उत्तर हिमवन्त में स्थित बताया गया है,[6] उत्तरापथ में ही माना जा सकता है। जातक[7] में वर्णित चण्डोरण पब्बत को डा० जायसवाल ने अल्ताई पर्वत

---

१. ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी, पृष्ठ ८
२. जिल्द छठी, पृष्ठ २०४।
३. पृष्ठ ६७।
४. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ४३८।
५. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ १२५।
६. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३४०; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २४८
७. जिल्द चौथी, पृष्ठ ९०

का एक भाग माना है।[1] इसी प्रकार अनोम, असोक और चावल नामक पर्वतों को, जिनका अपदान में उल्लेख है, हम उत्तरापथ में ही संनिविष्ट कर सकते हैं। हिंगुल पब्बत का उल्लेख कुणाल जातक में है। उसे वहाँ हिमवन्त पदेस का एक पर्वत माना गया है। जातक का यह हिंगुल-पब्बत आधुनिक हिंगलाज ही है और सिन्ध और बिलोचिस्तान के बीच की पहाड़ियों में, कराची से करीब ९० मील उत्तर की ओर, स्थित है। तिकूट और पण्डरक पब्बत, जिनका उल्लेख जातक में मल्लगिरि के साथ किया गया है,[2] उत्तरापथ में ही रक्खे जा सकते हैं। इनमें से तिकूट या त्रिकूट पब्बत को त्रिकोट पर्वत से मिलाने का प्रयत्न किया गया है, जो पंजाब के उत्तर और कश्मीर के दक्षिण में स्थित एक पर्वत-शिखर है।[3] इसी प्रकार पण्डकर पब्बत को रुद्र हिमालय या गढ़वाल में रखने का प्रस्ताव किया गया है। ये पहचानें विशेषतः अनुमानिक ही हैं।

जातक (जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६७; जिल्द तीसरी, पृष्ठ १५-१६) में दद्दर पर्वत का उल्लेख है। इसे वहाँ हिमवा (हिमालय) में स्थित बताया गया है। सम्भवतः यह मार्कण्डेय पुराण के दर्दुर पर्वत से अभिन्न है। ग्रीक इतिहासकारों ने दरदाई नामक जाति का उल्लेख किया है, जिनके प्रदेश को आधुनिक दर्दिस्तान माना जाता है। इस प्रकार पालि के दद्दर पर्वत को हम आसानी से हिन्दुकुश पर्वत के अन्तर्गत कश्मीर के उत्तर में स्थित मान सकते हैं। दद्दरपुर नामक एक नगर भी दद्दर पर्वत में स्थित था। चेतिय जातक के अनुसार इसे उपचर के पाँचवें पुत्र ने उस स्थान पर बसाया था, जहाँ दो पर्वत आपस में रगड़ कर 'दद्दर' शब्द करते थे।

उत्तरापथ की नदियों में, जिनका उल्लेख पालि परम्परा में हुआ है, सिन्धु, चन्दभागा (चन्द्रभागा) वितंसा या वोतंसा (वितस्ता) और सरस्सती (सरस्वती) के नाम अधिक महत्वपूर्ण हैं। जैसा हम हिमालय के वर्णन में देख चुके हैं, ये सब नदियाँ हिमालय से निकली बताई गई हैं और वहाँ से निकलने वाली दस मुख्य

---

१. इण्डियन एण्टिक्वेरी, भाग बासठवाँ, पृष्ठ १७०

२. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ४३८

३. देखिये नन्दोलाल दे : ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी पृष्ठ २०५

नदियों में इनकी गणना है। सिन्धु नदी आधुनिक सिन्धु नदी ही है, जिसे चीनी यात्रियों ने "शिन्तु" कहकर पुकारा है। पालि साहित्य में सिन्धु नदी की ख्याति सबसे अधिक इस कारण बताई गयी है कि इस के तटवर्ती प्रदेश में सर्वोत्तम जाति के घोड़े पाये जाते हैं। पपंचसूदनी[1] और मनोरथपूरणी[2] में सिन्धु नदी के तट के पास के प्रदेश के उत्तम नस्ल के घोड़ों की प्रशंसा की गई है।

चन्दभागा नदी आधुनिक चिनाब नदी है। ऋग्वेद में यह नदी 'असिक्नी' नाम से पुकारी गई है और तालेमी ने इसका नाम 'सन्दबग' या 'सन्दबल' दिया है।

मनोरथपूरणी[3] में दी गई महाकप्पिन की कथा से हमें मालूम होता है कि प्रत्यन्त (सीमा-प्रदेश) के कुक्कुटवती नामक नगर से मध्य देश की ओर भगवान् बुद्ध के दर्शनार्थ आते हुए महाकप्पिन की भेंट बुद्ध से चन्द्रभागा नदी के किनारे पर ही हुई थी। कुक्कुटवती नगर से चन्द्रभागा नदी तक आने में महाकप्पिन को दो नदियाँ और पार करनी पड़ी थीं, जिनके नाम थे अरवच्छा और नीलवाहना। ये नदियाँ अफगानिस्तान और चिनाब नदी के बीच के प्रदेश में ही हो सकती हैं।

वितंसा या वीतंसा नदी आधुनिक झेलम नदी है, जिसे ग्रीक लोगों ने हिडेस्पस या बिडेस्पस कहकर पुकारा है और जिसका संस्कृत परम्परा मे नाम वितस्ता है। सरस्सती (सरस्वती) नदी का उल्लेख मज्झिम-निकाय के वत्थ-सुत्तन्त में एक पवित्र नदी के रूप मे किया गया है। विसुद्धिमग्ग[4] मे भी उसकी गणना पवित्र नदियों में

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ २९८।

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७५६।

३. जिल्द पहली, पृष्ठ १७५; मिलाइये सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७७; धम्मपदट्ठकथा, जिल्द दूसरी पृष्ठ, ११६; जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ १८०।

४. न गङ्गा यमुना चापि सरभू वा सरस्सती।
निन्नगा वाचिरवती मही वा पि महानदी॥ पृष्ठ ६
(धर्मानन्द कोसम्बी द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

की गई है। वैदिक साहित्य में भी इस प्रसिद्ध नदी सरस्वती का उल्लेख है। जहाँ तक पालि विवरणों का सम्बन्ध है, हम इस नदी की भौगोलिक स्थिति के सम्बन्ध में निश्चयतः कुछ नहीं कह सकते। परन्तु उसे हम आसानी से उत्तरापथ में रख सकते हैं। सम्भवतः यह वही सरस्वती नदी है जो शिमला से ऊपर हिमालय की श्रेणी से निकल कर अम्बाला के मैदान में आती है। सिन्धवारण्य नामक एक अरण्य का उल्लेख थेरीगाथा[1] में है। इसे उत्तरापथ के अन्तर्गत सिन्ध या सिन्धु देश में ही मानना पड़ेगा।

पश्चिमी समुद्र-तट पर बम्बई या महाराष्ट्र के आसपास से लेकर सुराष्ट्र या अधिक से अधिक कच्छ तक का प्रदेश बुद्ध-काल में अपरन्त (सं० अपरान्त) नाम से पुकारा जाता था। जैसा हम द्वितीय परिच्छेद में देख चुके हैं, चक्रवर्ती राजा मन्धाता (मान्धाता) के साथ अपरगोयान महाद्वीप के कुछ निवासी चले आये थे, जो यहीं जम्बुद्वीप में बस गये। जिस प्रदेश को इन अपरगोयान के लोगों ने बसाया, उसी का नाम बाद में उनके नाम पर "अपरन्त" पड़ गया। अपरान्त प्रदेश महिसक मण्डल और अवन्ति-दक्षिणापथ के पश्चिम, दक्षिणापथ के उत्तर तथा उत्तरापथ के दक्षिण में स्थित था। अशोक के पाँचवें शिलालेख में अपरान्तक के अधिक विस्तृत क्षेत्र का उल्लेख किया गया है, जिसमें योन, कम्बोज और गन्धार तक सम्मिलित कर लिये गये हैं। इसी प्रकार यूआन् चुआङ ने भी अपरान्त प्रदेश का जो विवरण दिया है, उसके अनुसार "सिन्धु, पश्चिमी राजपूताना, कच्छ, गुजरात, और नर्मदा के दक्षिण का तटीय भाग अर्थात् तीन राज्य, सिन्धु, गुर्जर और वलभि" उसमें सम्मिलित थे।[2] वस्तुतः अशोक के शिलालेख में जो विवरण है, वह उसके साम्राज्य के विस्तार के विचार से है और उसी प्रकार चीनी यात्री का विवरण उसकी यात्रा की दिशा और चीनी परम्परा द्वारा किये गये "भारत के पाँच प्रदेशों या भागों" के विभाजन पर आधारित है। हमारा सम्बन्ध भगवान् बुद्ध के जीवन कालीन भूगोल से है, जिसको ध्यान में रखते हुए हम महारट्ठ (महाराष्ट्र) से लेकर सुरट्ठ (सुराष्ट्र) और लाल रट्ठ (लाट राष्ट्र) अर्थात्

१. गाथा ४३८ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

२. कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ६९०।

काठियावाड़-गुजरात तक के समुद्र-तट से लगे प्रदेश को अपरन्त (अपरान्त) मान सकते हैं। डा० लाहा ने मच्छ और सूरसेन के साथ-साथ अवन्ती को भी अपरान्त प्रदेश में सम्मिलित किया है।[1] इसे हम बुद्धकालीन परिस्थिति का सूचक नहीं मान सकते। जैसा हम पहले विवेचन कर चुके हैं, मच्छ और सूरसेन निश्चयतः मज्झिम देस में हैं और अवन्ती के उत्तर भाग को मज्झिम देस में ओर अवन्ति-दक्षिणापथ को हमें दक्षिणपथ में रखना चाहिए। यही क्रम पालि परम्परा के अधिक अनुकूल है। डा० लाहा ने सिन्धु-सोवीर को भी अपरान्त में रक्खा है, जिसे उत्तरापथ में रखने के सम्बन्ध में कारणों का उल्लेख हम उत्तरापथ के प्रसंग में कर चुके हैं।

अपरन्त (अपरान्त) में हमे बुद्ध-काल के लाल रट्ठ, सुरट्ठ, सूनापरान्त और महारट्ठ, इन चार जनपदों को रखना चाहिए। बुद्धकालीन भारत के सोलह महाजनपदों में से किसी का उल्लेख अपरान्त के अन्तर्गत नहीं किया गया है। दीपवंस[2], महावंस[3] और समन्तपासादिका[4] के अनुसार यवन भिक्षु धर्मरक्षित ने अपरान्त में अशोक के काल में धर्म प्रचार किया था। समन्तपासादिका में अपरान्त से अलग महारट्ठ का उल्लेख है, जहाँ महाधर्मरक्षित नामक भिक्षु ने धर्म-प्रचार का कार्य किया।

अपरन्त (अपरान्त) के प्राकृतिक भूगोल की एक विशेषता, जैसा उसकी समुद्रतटीय स्थिति से स्पष्ट है, उसके पास समुद्र का होना है। अतः उसके भरुकच्छ और सुप्पारक जैसे बन्दरगाहों से अनेक व्यापारियों के लम्बी समुद्री यात्राओं पर जाने के उल्लेख हैं। इन यात्राओं के विवरण-प्रसंग मे अनेक समुद्रों के वर्णन किये गये हैं, जो देखने में पौराणिक ढंग के जैसे लगते हैं, परन्तु जिनमें पर्याप्त भौगोलिक आधार है, ऐसा आधुनिक खोजों ने प्रमाणित कर दिया है। सुप्पारक जातक में "खुरमाल" नामक समुद्र का वर्णन है, जहाँ हीरे पाये जाते थे और जहाँ मानवाकार

---

१. देखिये पीछे उत्तरापथ का विवेचन।

२. ८।७

३. १२।३४ (हिन्दी अनुवाद)।

४. बुद्धचर्या, पृष्ठ ५३७ में उद्धृत।

की विशालकाय मछलियाँ थी, जिनकी छुरे (खुर) जैसी तीक्ष्ण नासिकाएँ थीं। डा० काशीप्रसाद जायसवाल का मत है कि इस समुद्र को बेबीलान के आसपास का समुद्र होना चाहिए। अन्य कारणो के साथ एक कारण उन्होने अपने मत की पुष्टि मे यह दिया है कि बेबीलान के एक प्राचीन देवता का नाम "खुर" था।[१] इसी जातक[२] मे "अग्गिमाल" नामक समुद्र का वर्णन है, जिसमे से, जैसा उसके नाम से स्पष्ट है, आग की लपटे निकलती थी। भरुकच्छ के व्यापारी यहाँ समुद्री यात्रा करते हुए आये थे। डा० जायसवाल ने इसे अदन के समीप अरब के किनारे का समुद्र या सोमाली तट का कुछ भाग बताया है।[३] "अग्गिमाल" समुद्र से मिलते-जुलते एक अन्य "वलभामुख" नामक समुद्र का वर्णन भी है, जिसमे प्रज्वलित, भयकर वाडवाग्नि के उठने के घोर शब्द होने का उल्लेख है।[४] इस समुद्र को भूमध्यसागर से मिलाने का प्रस्ताव किया गया है जिसमे आज तक ज्वालामुखी की लपटे कभी-कभी उठा करती है। "नलमाल समुद्र" का भी इसी जातक मे उल्लेख है। इसमे बाँस के रग की मूँगे की चट्टाने थी। इसीलिए यह बाँसो (नल) के वन की तरह दिखाई पडता था। भरुकच्छ के व्यापारी धन की खोज मे यहाँ गये थे।[५] डा० जायसवाल ने अनुसधान कर बताया है कि (नलमाल समुद्र) वह प्राचीन काल की नहर थी, जो लाल सागर को नील नदी से मिलाती थी।[६] सुप्पारक जातक मे जिस सर्वाधिक महत्वपूर्ण समुद्र का उल्लेख है, वह "कुसमाल" नामक है। यह नील वर्ण (नीलवण्ण) का था। हरी घास का मैदान जैसा लगता था। नीलम मणि यहाँ प्रचुरता से पाई जाती थी। भरुकच्छ के व्यापारियो को यह समुद्र रास्ते मे पडा था।[७] इस "कुसमाल" समुद्र को विद्वानो ने पुराणो के कुश द्वीप

---

१ जर्नल ऑव बिहार एंड उडीसा रिसर्च सोसायटी, जिल्द छठी, पृष्ठ १९५
२. जिल्द चौथी, पृष्ठ १३९।
३. जर्नल ऑव बिहार एंड उडीसा रिसर्च सोसायटी, जिल्द छठी, पृष्ठ १९५।
४. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ १४१।
५. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ १४१।
६ जर्नल ऑव बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, जिल्द छठी, पृष्ठ १९५
७. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ १४०।

से मिलाया है। डा० जायसवाल ने कुसमाल समुद्र को अफ्रीका के उत्तरी पूर्वी किनारे के नुबिया नामक स्थान के आसपास के समुद्र से मिलाया है।[1] यह यहां उल्लेखनीय है कि "कुसमाल" या "कुश द्वीप" की इस पहचान का आधार लेकर ही उन्नीसवीं शताब्दी में नील नदी के उद्‌गम की खोज की गई थी।

नम्मदा (नर्मदा) नदी का उल्लेख हम दक्षिणापथ के प्राकृतिक भूगोल के प्रसंग में करेंगे। यहाँ यह कह देना आवश्यक होगा कि उसका कुछ भाग और विशेषतः जहाँ वह समुद्र में गिरती है, अपरान्त में माना जाता था। मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा (पपंचसूदनी) में नम्मदा नदी के सुनापरान्त जनपद होकर बहने का उल्लेख है। अपरान्त के अन्तर्गत सुरट्ठ देश में सातोदिका या सातोडिका नामक नदी का उल्लेख जातक में है। इसे सुरट्ठ देश की सीमा पर (सीमन्तरे). बहते दिखाया गया है और कहा गया है कि मेन्दिस्सर या मेण्डिस्सर नामक ऋषि यहाँ गोदावरी पर स्थित कविट्ठ वन में होते हुए आये थे।[2] हिंगुल पब्बत को डा० लाहा ने अपरान्त के अन्दर रक्खा है,[3] परन्तु हमने पालि प्रमाणों के निश्चित आधार पर उसकी स्थिति को उत्तरापथ में दिखाया है। इस सम्बन्ध में सहेतुक विवेचन उत्तरापथ के विवरण-प्रसंग में किया जा चुका है।

सच्चबन्ध या सच्चबद्ध पब्बत का उल्लेख स्थविर पूर्ण की कथा के प्रसंग मे आया है। स्थविर पूर्ण की प्रार्थना पर जब भगवान् बुद्ध श्रावस्ती से सुनापरान्त जनपद के मंकुलकाराम मे गये थे तो वे मार्ग में सच्चवन्ध पर्वत पर ठहरे थे। यहाँ पर रहने वाले सच्चबद्ध नामक तपस्वी को उन्होंने उपदेश भी दिया था। सूनापरान्त से श्रावस्ती के लिये लौटते हुए भगवान् पहले नर्मदा नदी पर रुके और फिर सच्चवन्ध पर्वत पर आये जहाँ उन्होंने अपने चरण-चिन्ह छोड़े। यहाँ से भगवान् श्रावस्ती आये।[4] इससे विदित होता है कि सच्चबन्ध पर्वत नर्मदा नदी के

१. जर्नल ऑव बिहार एण्ड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, जिल्द छठी, पृष्ठ १९५।

२. जातक, जिल्द तीसरी; पृष्ठ ४६३; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १३३।

३. देखिये पीछे उत्तरापथ का विवेचन।

४. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १७; पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १०१७।

आसपास कहीं स्थित था। थाई-देश में सच्चबन्ध नामक पर्वत है, जिस पर बुद्ध के चरण-चिन्ह अंकित बताये जाते हैं। स्पष्टतः भारत के इस नाम के पर्वत की स्मृति में ही इस पर्वत का यह नाम रक्खा गया होगा।

जैसा हम पहले देख चुके हैं, विनय-पिटक के महावग्ग में सललवती (सिलई) नदी को मज्झिम देस की पूर्व-दक्षिणी और सेतकण्णिक नामक निगम को उसकी दक्षिणी सीमा बताया गया है। इससे यह प्रकट होता है कि पालि परम्परा के अनुसार उपर्युक्त स्थानों के दक्षिण का भाग "दक्खिणापथ" (दक्षिणापथ) कहलाता था। आचार्य बुद्धघोष ने "दक्षिणापथ" को गंगा के दक्षिण वाला जनपद बताया है। "गंगाय दक्खिणतो पाकटं जनपदं"[1]। सुत-निपात की अट्ठकथा (परमत्थजोतिका)[2] में दक्षिण जनपद की ओर जाने वाले मार्ग को "दक्षिणापथ" कहा गया है। बावरि के शिष्यों ने गोदावरी के तट पर स्थित अपने गुरु के आश्रम से श्रावस्ती तक आने में जिस मार्ग का ग्रहण किया था, उसे हम "दक्षिणापथ" कह सकते हैं। इस मार्ग पर पड़ने वाले विभिन्न स्थानों का उल्लेख हम प्रथम परिच्छेद में सुत्त-निपात का भौगोलिक महत्व दिखाते समय कर चुके हैं और कुछ विवरण आगे पाँचवें अध्याय में व्यापारिक मार्गों का उल्लेख करते समय देंगे। पतिट्ठान इस मार्ग का अन्तिम दक्षिणी पड़ाव था। सुत्त-निपात की अट्ठकथा के द्वारा दक्षिणापथ को दक्षिण जनपद की ओर जाने वाले मार्ग को मानने के साक्ष्य पर ही डा० वेणीमाधव बड़आ का वह मत आधारित है जिसके अनुसार "उत्तरापथ" और "दक्षिणापथ" पहले क्रमशः उन मार्गों के नाम थे, जो श्रावस्ती से गन्धार और प्रतिष्ठान तक जाते थे। पहला चूँकि उत्तर भारत में होकर उत्तर-पश्चिम भारत तक जाता था, अतः साधारणतः "उत्तरापथ" कहलाता था और दूसरा चूँकि दक्षिण की ओर जाता था, अतः "दक्षिणापथ" कहलाता था। बाद में यही दोनों नाम क्रमशः उन प्रदेशों के लिये प्रयुक्त होने लगे जहाँ से होकर वे मार्ग गुजरते थे। इस प्रकार "दक्षिणापथ" पर पड़ने वाले अवन्ती जनपद को उसी प्रकार "अवन्ति-दक्षिणापथ" कहा जाता था, जिस प्रकार "उत्तरापथ" मार्ग पर पड़ने

---

१. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, २६५।
२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८०।

वाली मथुरा (मधुरा) नगरी को "उत्तर मधुरा"। इस प्रकार "उत्तरापथ" और "दक्षिणापथ" शब्द, जो पहले व्यापारिक मार्गों के लिये प्रयुक्त होते थे, बाद में उन प्रदेशों के लिये होने लगे, जहाँ से होकर वे मार्ग जाते थे[१]।

विनय-पिटक के महावग्ग में दक्षिणापथ का उल्लेख मिलता है। दक्षिणापथ को अवन्ती के साथ मिला कर वहाँ इस प्रदेश के धरातल के सम्बन्ध में यह महत्व-पूर्ण और आज के लिये भी सच्ची सूचना दी गयी है कि अवन्ति-दक्षिणापथ की भूमि काली (कण्हुत्तरा), कड़ी और गोखुरुओं (गोकण्टकों) से भरी है।[२] यहीं पर यह भी सूचना दी गई है कि भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में अवन्ति-दक्षिणापथ में बौद्ध भिक्षुओं की संख्या कम थी।[३] बाद में वैशाली की संगीति के अवसर पर हम यश काकण्डपुत्त को अवन्ति-दक्षिणापथ के भिक्षुओं को अपने पक्ष में करते देखते हैं।[४] जातक[५] में भी "अवन्ति-दक्षिणापथ" का उल्लेख है। अट्ठकथाओं में दक्षिणापथ सम्बन्धी कुछ अधिक जानकारी भी हमें मिलती है। धम्मपदट्ठकथा[६] में उसे बैलों के लिए प्रसिद्ध बताया गया है और सुमगल-विलासिनी[७] में दक्षिण जनपद के लोगों के द्वारा मनाये जाने वाले "धरण" नामक महोत्सव का भी वर्णन किया गया है। विनय-पिटक मे कहा गया है कि अवन्ति-दक्षिणापथ के लोग अक्सर चमड़े के बिछौनों का प्रयोग करते है और

---

१. बडुआ : ओल्ड ब्राह्मी इन्सक्रिप्शन्स, पृष्ठ २१८-२२०; मिलाइये रायस डेविड्स् : बुद्धिस्ट इंडिया, पृष्ठ २२ (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०)।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २१२।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २११, २१३; मिलाइये उदान, पृष्ठ ७७ (हिन्दी अनुवाद)।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५५१।

५. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४६३; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १३३

६. जिल्द तीसरी, पृष्ठ २४८

७. जिल्द पहली, पृष्ठ २६५

स्नान के प्रेमी होते हैं,[1] जो खारी जलवायु के इस प्रदेश के लिये आज भी ठीक है।

उपर्युक्त विवेचन से स्पष्ट है कि दक्षिणापथ का ज्ञान पालि परम्परा को आरम्भ से ही था और वहाँ के लोगों के जीवन के सम्बन्ध में भी अट्ठकथाओं में सूचना मिलती है। परन्तु उसकी निश्चित सीमाओं के सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं मिलता। सुत्त-निपात के पारायण-वग्ग में केवल इतना कहा गया है कि कोसल-देशवासी बावरि ब्राह्मण दक्षिणापथ में गया और वहाँ "अस्सक के राज्य में, अलक की सीमा पर, गोदावरी नदी के किनारे" आश्रम बनाकर रहने लगा। इससे प्रकट होता है कि गोदावरी नदी के आसपास का प्रदेश उस समय दक्षिणापथ कहलाता था। गोदावरी अस्सक और अलक (या मूलक) राज्यों के बीच में होकर बहती थी। अलक गोदावरी नदी के उत्तर की ओर था और अस्सक उसके दक्षिण की ओर। सुत्त-निपात की अट्ठकथा में कहा गया है कि ये दोनों राज्य अन्धक (आन्ध्र) थे। स्वाभाविक तौर पर हमें मानना पड़ेगा कि आन्ध्र प्रदेश भी दक्षिणपथ मे सम्मिलित माना जाता था। पेतवत्थु की अट्ठकथा में "दमिल विसय" (तमिल प्रदेश) को दक्षिणापथ में बताया गया है। अतः दक्षिणापथ की सीमा को गोदावरी तक सीमित मानना ठीक नहीं है, यद्यपि यह सुनिश्चित है कि भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में केवल गोदावरी के तट तक का ही प्रत्यक्ष ज्ञान पालि परम्परा को था। सामान्यतः हम विन्ध्याचल से दक्षिण के भाग को दक्षिणापथ कह सकते हैं। उसकी सीमा में बुद्धकालीन भारत के सोलह महाजनपदों में से अस्सक जनपद तो निश्चयतः सम्मिलित था ही, अवन्ती जनपद का दक्षिणी भाग (अवन्ति-दक्षिणापथ) भी सम्मिलित था। विनय-पिटक[2] और जातक[3] के उक्कल (उत्कल) जनपद को भी, जिसके दो भागों ओडड् (ओड्र) और ओक्कल (उत्कल) का अपदान[4] में भी वर्णन है, दक्षिणापथ में ही मानना ठीक होगा। उत्कल जनपद

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २१२।
२. पृष्ठ ७७ (हिन्दी अनुवाद)।
३. प्रथम खण्ड, पृष्ठ १०३ (हिन्दी अनुवाद)।
४. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३५८-३५९।

बंग और कलिंग के बीच में था। हम पहले भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के भौगोलिक विवरण के प्रसंग में देख चुके हैं कि उत्कल जनपद के दो व्यापारियों तपस्सु और भल्लिक ने, जो व्यापारार्थ मध्य देश में आ रहे थे, बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद प्रथम बार भगवान् को आहार दिया था। महावस्तु[1] में इन दोनों व्यापारियों के निवास-स्थान को उत्तरापथ में बताया गया है, जो पालि परम्परा से मेल नहीं खाता और ठीक नहीं कहा जा सकता। कलिंग वह प्रदेश था जो सुह्म जनपद के नीचे, महानदी और गोदावरी नदियों के बीच, स्थित था। अन्धक और दमिल राष्ट्र भी, जिनका अपदान[2] में उल्लेख है, और इसी प्रकार जातक[3] का महिसक रट्ठ और समन्तपासादिका[4] का वनवासि प्रदेश और अशोक के अभिलेखों के चोल, पाण्ड्य (पण्डिय), सत्यपुत्र (सतियपुत्त) और केरलपुत्र (केरलपुत्त), ये सब जनपद दक्षिणापथ में ही थे। दक्षिणापथ की सीमाओं और विस्तार के इस संक्षिप्त निर्देश के बाद अब हम उसके प्राकृतिक भूगोल पर आते हैं।

दक्षिणापथ की जिन मुख्य नदियों का उल्लेख पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में हुआ है, उनके नाम हैं, गोदावरी (गोधावरी), नर्मदा (नम्मदा), कावेरी, कृष्णवेणा (*कण्हपेण्णा या कण्णवेणा*) और तेलवाह। गोदावरी नदी, जैसा हम पहले कह चुके हैं, पालि परम्परा की प्रारम्भिक मान्यता के अनुसार दक्षिणापथ की उत्तरी सीमा थी। पालि साहित्य की गोदावरी (गोधावरी) ही आधुनिक गोदावरी नदी ही है, जो नासिक से २० मील दूर ब्रह्मगिरि से निकल कर बंगाल की खाड़ी में गिरती है। सरभंग जातक में इस नदी को कविट्ठवन के समीप कहा गया है। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में अळक, जिसका संस्कृत प्रतिरूप महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने "आर्यक" दिया है[5] और जिसे डा०

---

१. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३०३।
२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३५८-३५९।
३. जिल्द पहली, पृष्ठ ३५६; जिल्द पाँचवी, पृष्ठ १६२, ३३७।
४. जिल्द पहली, पृष्ठ ६३, ६६।
५. बुद्धचर्या, पृष्ठ ३५०, पद-संकेत १।

विमलाचरण लाहा[1] और मललसेकर[2] ने बरमी संस्करण के आधार पर "मूलक" से मिलाया है, और अस्सक राज्य, जो दोनों अन्धक (आन्ध्र) राज्य थे, गोदावरी नदी के क्रमशः उत्तर और दक्षिण में बसे हुए थे। बावरि का आश्रम, जो विस्तार में पाँच योजन था, इन्हीं दो राज्यों के बीच, गोदावरी के तट पर, स्थित था। बावरि के आश्रम के समीप गोदावरी नदी दो धाराओं में बँट कर एक द्वीप बनाती थी, जिसका विस्तार तीन योजन था। इस द्वीप पर घना वन था। यही कविट्ठवन या कपिट्ठवन कहलाता था। सुत्त-निपात की अट्ठकथा[3] का कहना है कि पूर्व काल में सरभंग (शरभंग) ऋषि का आश्रम यही था। इन्द्रिय-जातक के अनुसार सालिस्सर नामक ऋषि ने भी यहाँ निवास किया था।

पालि साहित्य की नम्मदा (नर्मदा) नदी आधुनिक नर्मदा नदी है, जो अमरकटक पर्वत से निकल कर पश्चिम में बहती हुई खम्भात की खाड़ी में गिरती है। कक्कट जातक में इस नदी में बड़े आकार के केकड़ों के पाये जाने का उल्लेख है। चित्त-सम्भूत जातक में भी नम्मदा नदी का उल्लेख है। हम पहले (भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के विवरण-प्रसंग में) कह चुके हैं कि सुनापरान्त जनपद के मंकुलकाराम से श्रावस्ती के लिए लौटते हुए भगवान् बुद्ध ने नर्मदा नदी को पार किया था। उन्होंने यहाँ नागराज की प्रार्थना पर नागों की पूजा के लिए नर्मदा के तट पर अपने चरण-चिह्न छोड़े थे[4]। यहाँ यह कह देना भी अप्रासंगिक न होगा कि नम्मदा नदी का नाम, 'पेरीप्लस ऑव दि

---

१. ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ २१; इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज्म, पृष्ठ ७८, १०८; ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इंडिया, पृष्ठ १८४।

२. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ८१५।

३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८१; मिलाइये जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १२३, १३२-१३६; मिलाइये महावस्तु, जिल्द पहली, पृष्ठ ३६३ भी।

४. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १०१८; सारत्थप्पकासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १८।

इरीथ्रियन सी[१]" में "नम्मदुस" दिया गया है और यूआन् चुआङ ने इसे "नै-मु-ते" कह कर पुकारा है।[२]

कावेरी नदी का तो उल्लेख पूर्ववर्ती पालि साहित्य में नहीं है, परन्तु अकित्ति जातक और धम्मपदट्ठकथा[३] में कावीरपट्टन नगर का उल्लेख है, जो कावेरी नदी के तट पर स्थित था।

कण्णपेण्णा या कण्णवेण्णा नदी को एक जातक-कथा में संखपाल नामक झील में से निकल कर महिसक राष्ट्र में बहते दिखाया गया है और इसके उद्गम के समीप चन्दक नामक पर्वत को स्थित बताया गया है।[४] इसी आधार पर डा० मललसेकर ने इसे मैसूर (महिसक राष्ट्र) में बहने वाली कोई नदी बताया है।[५] डा० जायसवाल ने इस नदी को वर्तमान वेन या वेनगगासे मिलाया है, जो कंहन नामक नदी से मिलकर भंडार जिले में वर्धा नदी से मिलती है।[६]

तेलवाह नदी का उल्लेख सेरिवाणिज जातक मे है, जहाँ उसे सेरिव रट्ठ में बताया गया है। उसके तट पर अन्धपुर नामक नगर स्थित था। इस नदी को पार कर सेरिव रट्ठ के व्यापारी उपर्युक्त नगर को गये थे, ऐसा इस कथा में उल्लेख है।[७] डा० डी० आर० भण्डारकर ने तेलवाह नदी को मद्रास राज्य और मध्य-प्रदेश की सीमाओं पर बहने वाली तेल या तेलिनगिरि नामक दो नदियों में से, जो पास-पास बहती हैं, किसी एक से मिलाने का प्रस्ताव किया है।[८]

---

१. पृष्ठ ३० (शोफ द्वारा सम्पादित और अनुवादित)।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इंडिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २४१।

३. जिल्द चौथी, पृष्ठ ५०।

४. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १६२-१६३।

५. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ४९८।

६. जर्नल ऑव बिहार एंड उड़ीसा रिसर्च सोसायटी, जिल्द चौथी, पृष्ठ ३७४-३७५; मिलाइये नन्दोलाल दे : ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी, पृष्ठ १०४।

७. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १११।

८. इंडियन एन्टिक्वेरी, १९१८, पृष्ठ ७१; "अशोक" पृष्ठ ३४।

परन्तु डा० हेमचन्द्र रायचौधरी का विचार है कि सम्भवतः तुंगभद्रा-कृष्णा ही तेलवाह नदी है।[1]

विन्ध्य पर्वत मज्झिम देस और दक्षिणापथ की सीमा पर स्थित था। महावंस[2] में महाराज अशोक का स्थल-मार्ग से पाटलिपुत्र से विन्ध्यारण्य (विञ्झारञ्ञ) को पार करने के बाद ताम्रलिप्ति पहुँचने का उल्लेख है। दीपवंस में भी इसी प्रसंग में विञ्झाटवी का (विन्ध्याटवी) का उल्लेख है। समन्तपासादिका[3] में विन्ध्यारण्य को अगामकं अरञ्ञं (अग्रामकं अरण्यं) कह कर पुकारा गया है, जिसका अर्थ यह है कि इस अरण्य में गाँव आदि बसे हुए नहीं थे। घनसेल नामक एक अन्य पर्वत का भी उल्लेख है, जिसे अवन्ति-दक्षिणापथ में स्थित बताया गया हैं।[4] अवन्ती राज्य में ही पपात पब्बत था जिसे कुररघर नामक नगर के पास बताया गया है। यहाँ स्थविर महाकच्चान ने निवास किया था।[5] महिसक मंडल में कण्णपेण्णा नदी के उद्गम के समीप स्थित चन्दक नामक पर्वत का उल्लेख हम कर चुके हैं। यहाँ, इन्द्रिय जातक के अनुसार, ऋषि काल देवल ने निवास किया था। इसे चन्दन पर्वत के रूप मे मलयगिरि या मलबार घाट से मिलाया जा सकता है।[6] परन्तु इस लेखक का एक अनुमान दूसरा है। जहाँ से नर्मदा नदी निकलती है, वहाँ विन्ध्याचल और सतपुड़ा को जोड़ने वाला मेकल या मेखल नामक पहाड़ चन्द्राकार खड़ा है। सम्भव है पालि का चन्दक पर्वत यही हो। महिसक मंडल की संखपाल नामक झील का, जो कण्णपेण्णा नदी का उद्गम थी, हम पहले उल्लेख कर चुके हैं। इसी प्रकार महिसक मंडल की ही "मानुसिय" नामक एक अन्य झील का भी उल्लेख पाया जाता है, जो महिसक राष्ट्र की राजधानी सकुल नामक नगर के पास थी।[7] इस झील

---

१. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इंडिया, पृष्ठ ९२।
२. १९।६ (हिन्दी अनुवाद)।
३. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६५५।
४. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४६३; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १३३।
५. देखिये आगे तीसरे परिच्छेद में अवन्ती राज्य का विवरण।
६. नन्दोलाल दे : ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी, पृष्ठ ४६।
७. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३३७-३३८।

की आधुनिक पहचान अभी नहीं हो सकी है। कविट्ठ नामक वन का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। मक्करकट[1] नामक वन अवन्ती जनपद में था। संयुत्त-निकाय के लोहिच्च-सुत्त से हमें मालूम होता है कि स्थविर महाकच्चायन इस वन में पर्णशाला बना कर रहते थे। दण्डकारण्य (दण्डकारञ्ञ) और कलिंगारण्य (कालिंगारञ्ञ) वनों का उल्लेख, अन्य दो वनों, मेज्झारञ्ञ (मेध्यारण्य) और मातंगारञ्ञ (मातंगारण्य) के साथ मज्झिम-निकाय के उपालि-सुत्तन्त में किया गया है और मिलिन्दपञ्हो[2] में भी। इन दोनों जगह कहा गया है कि ये सब वन पहले समृद्ध जनपद थे, जो बाद में ऋषियों के शाप के कारण उजाड़ हो गये थे। दण्डकारण्य के सम्बन्ध में हमें विदित होता है कि यह वन गोदावरी नदी के तट पर विन्ध्याचल के नीचे स्थित था। राजा दण्डकी की दुष्टता के कारण कलिंग-वन के उजाड़ हो जाने के बाद उसके स्थान पर जो वन उगा, वही दण्डकारण्य कहलाया[3]। वाल्मीकि-रामायण के वर्णनानुसार पार्जिटर ने दण्डकारण्य का विस्तार बुन्देलखंड से कृष्णा नदी के तट तक माना था।[4] परन्तु महाभारत के सभा-पर्व और वन-पर्व के अनुसार उसे केवल गोदावरी के उद्गम के समीप का वन माना जा सकता है। ललित-विस्तर[5] के दण्डक वन को दक्षिणापथ में स्थित माना जा सकता है। अतः पालि परम्परा के अनुसार दण्डकारण्य को हम आसानी से दक्षिणापथ में स्थित वन मान सकते हैं। डा० लाहा ने 'ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज़्म'

---

१. डा० लाहा ने ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज़्म, पृष्ठ ४५ तथा ८५ में इस वन का नाम मक्करट्ठ वन दिया है, जिसे वर्तनी की अशुद्धि ही मानना चाहिए। 'हिस्टोरिकल ज्योग्रेफी ऑव एन्शियन्ट इण्डिया', पृष्ठ ३२० में उन्होंने इसे ठीक कर दिया है।

२. पृष्ठ १३२-१३३ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

३. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४६३; मिलाइये पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५९७।

४. जर्नल ऑव रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १८९४, पृष्ठ २४१-२४२।

५. पृष्ठ ३१६।

के पृष्ठ ४४ में दण्डकारण्य को मज्झिम देस के वन के रूप में दिखाया है और फिर इसी वर्णन को उठाकर दक्षिणापथ के वन के रूप में पृष्ठ ६७ पर रख दिया है। यह दिखलाता है कि डा० लाहा यह निश्चित नहीं कर सके हैं कि दण्डकारण्य को मज्झिम देस में होना चाहिये या दक्खिणापथ में। गोदावरी के आसपास होने के कारण और राजा दण्डकी के राज्य में स्थित होने के कारण उसके दक्षिणापथ में होने में कोई सन्देह नहीं है।

कलिंगारण्य कलिंग देश में, अर्थात् महानदी और गोदावरी के बीच में, स्थित वन था। सातवीं शताब्दी ईसवी में यूआन् चुआङ ने दण्डकारण्य और कलिंगारण्य के साथ मातंगारण्य को भी उजाड़ अवस्था में देखा था।[1] इससे यह मालूम पड़ता है कि दण्डकारण्य और कलिंगारण्य के समान मातंगारण्य भी, जिसका उल्लेख पालि ग्रन्थों मे उपर्युक्त दो वनों के साथ ही हुआ है, दक्षिणापथ में ही कहीं था।

---

१. देखिये आगे तृतीय परिच्छेद में कलिंग जनपद का विवरण।

तीसरा परिच्छेद

बुद्धकालीन भारत का राजनैतिक भूगोल

उन अनेक देनों में, जो बुद्ध और बौद्ध धर्म ने हमारे देश के लिये दी हैं, एक अत्यन्त महत्वपूर्ण यह है कि उनके आविर्भाव के साथ ही हमारे देश में वास्तविक रूप से "ऐतिहासिक युग" का आरम्भ होता है। हमारे देश का लेखबद्ध इतिहास वस्तुतः भगवान् बुद्ध के उदय से ही शुरू होता है। यहीं हम सर्वप्रथम उस स्पष्ट आधार को पाते हैं जिस पर तत्कालीन भारत के राजनैतिक भूगोल का पुर्ननिर्माण किया जा सकता है। यद्यपि भगवान् बुद्ध के पूर्व भी सारे देश को एक राष्ट्रीय और सांस्कृतिक इकाई बनाने के प्रयत्न हुए थे, परन्तु इस दिशा में जो प्रेरणा भगवान् बुद्ध के प्रभाव से मिली, उसने इसके शीघ्र कार्यान्वित होने में सहायता दी।

पालि तिपिटक में सारे जम्बुद्वीप को एक चक्कवत्ती (चक्रवर्ती) राजा का शासन-प्रदेश माना गया है। स्वयं भगवान् बुद्ध यह कहते दिखाये गये हैं कि वे अपने एक पूर्व जन्म में सम्पूर्ण जम्बुद्वीप पर शासन करने वाले चक्रवर्ती राजा थे।[1] धर्म से शासन करने वाले चक्रवर्ती राजा का आदर्श भगवान् बुद्ध और उनके शिष्यों के सामने सदा रहता था। इतिवुत्तक के झायी-सुत्त में चक्रवर्ती राजा का वर्णन करते हुए कहा गया है, "चक्रवर्ती, धार्मिक, धर्मराजा, चारों दिशाओं का विजेता, जनपदों में सुव्यवस्था स्थापित करने वाला, सप्त रत्नों से युक्त।"[2] दीघ-निकाय

---

१. चक्कवत्ती अहुं राजा जम्बुसण्डस्स इस्सरो। अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ ९०; मिलाइये सुत्त-निपात (सेल-सुत्त), गाथा ५५२ भी।

२. "चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराजा चातुरन्तो विजितावी जनपदत्थावरियप्पत्तो सत्तरतनसमन्नागतो"।

के लक्खण-सुत्त में इसी आदर्श की अधिक स्पष्टतापूर्वक अभिव्यक्ति करते हुए कहा गया है, "चक्रवर्ती, धार्मिक, धर्मराजा, चारों दिशाओं का विजेता. . .वह इस सागर-पर्यन्त पृथ्वी को बिना दंड के, बिना शस्त्र के, धर्म के द्वारा जीत कर उस पर शासन करता है।"[1] भगवान् बुद्ध स्वयं अपनी तुलना धर्म के क्षेत्र में एक सार्वभौम चक्रवर्ती राजा से करते थे।[2] चक्रवर्ती राजा के समान ही उन्होंने अपने धर्म-चक्र का प्रवर्तन किया था। महापरिनिब्बाण-सुत्त के आधार पर हम जानते हैं कि उनका दाह-संस्कार एक चक्रवर्ती राजा के समान ही हुआ था। "मिलिन्दपञ्हो" में धम्म-नगर का एक सुन्दर रूपक खींचा गया है, जिसमें दिखाया गया है कि बुद्ध रूपी चक्रवर्ती के सेनापति कौन हैं, कोषाध्यक्ष कौन है, उनकी राजधानी क्या है, उनके सप्त रत्न क्या हैं, आदि। इसमें कोई आश्चर्य नहीं कि भगवान् बुद्ध, जिन्होंने हमें प्रथम बार एक विश्व-धर्म या मानव-धर्म दिया, राजनीति के क्षेत्र में भी सम्पूर्ण जम्बुद्वीप पर एक ऐसी एकछत्र राज्य-सत्ता (एकरज्जाभिसेकं) के आदर्श को प्रश्रय देने वाले हुए जो दंड या शस्त्र पर आधारित न होकर धम्म (सत्य) पर आधारित हो, जिसमें सभी वर्गों के लोगों की जीविका की सम्यक् व्यवस्था हो[3] और जिसकी कसौटी जनता का सच्चा

---

१. "चक्कवत्ती धम्मिको धम्मराजा चातुरन्तो विजितावी. . .सो इमं पठविं सागरपरियन्तं अदण्डेन असत्थेन धम्मेन अभिविजिय अज्झावसति।"
इसी प्रकार के विवरण के लिये मिलाइये महासुदस्सन-सुत्त (दीघ० २।४); महापदान-सुत्त (दीघ० २।१); चक्कवत्ति-सीहनाद-सुत्त (दीघ० ३।३); बाल-पंडित सुत्त (मज्झिम० ३।३।९)।

२. राजाहमस्मि सेलाति भगवा धम्मराजा अनुत्तरो। धम्मेन चक्कं वत्तेमि चक्कं अप्पतिवत्तियं। सुत्त-निपात (सेल-सुत्त), गाथा ५५४।

३. "राजा के जनपद में जो कृषि-गोरक्षा करना चाहते थे, उन्हें राजा ने बीज और भात (भोजन) दिया। जो राजा के जनपद में वाणिज्य करने के उत्साही थे, उन्हें राजा ने पूँजी सम्पादित की। जो राजा के जनपद में राज-सेवा में उत्साही हुए, उनका भत्ता-वेतन (भत्त-वेतनं) ठीक कर दिया। इन मनुष्यों ने अपने-अपने काम में लग राजा के जनपद को नहीं सताया। राजा को महाधन-राशि प्राप्त हुई। जनपद अकंटक, अपीड़ित, क्षेमयुक्त हो गया। मनुष्य हर्षित, मोदित, गोद में पुत्रों को नचाते, खुले घर विहरने लगे।" कूटदन्त-सुत्त (दीघ० ।१।५)।

सुख हो।[1] सम्राट् धम्मासोक ने चक्रवर्ती राजा के बौद्ध आदर्श को प्राप्त करने का प्रयत्न किया और सर्वप्रथम उसी के शासन-काल में, बुद्ध के जीवन-काल के प्रायः दो शताब्दी बाद, सम्पूर्ण जम्बुद्वीप का वास्तविक "एकरज्जाभिसेक" या एकछत्र राज्य निष्पन्न हो सका।[2] अशोक ही सम्पूर्ण जम्बुद्वीप का सच्चे अर्थों प्रथम "एकराट्" शासक हुआ।

यद्यपि बौद्ध धर्म के प्रभाव से सम्पूर्ण जम्बुद्वीप में एक अहिंसाश्रित जन-हितैषी राज्य की स्थापना में योग मिला, परन्तु स्वयं भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में कोई एक मूर्द्धाभिषिक्त राजा सम्पूर्ण जम्बुद्वीप का नहीं था। पालि तिपिटक से हमें पता लगता है कि उस समय सम्पूर्ण देश चार शक्तिशाली राज्यों, दस छोटे स्वशासित गण-तन्त्रों और बुद्ध के कुछ समय पूर्व से चले आये हुए सोलह महा-जनपदों के रूप में विभक्त था। इन गणतन्त्रों और जनपदों में से कई उपर्युक्त चार राज्यों में अन्तर्भुक्त हो चुके थे। एक भारी प्रवृत्ति इस समय विभिन्न राज-नैतिक शक्तियों की एक राजनैतिक सत्ता के रूप में विलीनीकरण की ओर थी। छोटे-छोटे गणसत्तात्मक राज्य मिटकर पास के एकसत्तात्मक राज्यों में अन्तर्भुक्त हो रहे थे। जैसा हम आगे देखेंगे, अंग और काशी जनपद भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में क्रमशः मगध और कोसल में सम्मिलित हो गये थे। उत्तर पचाल और कुरु का काफी भाग कोसल राज्य में जा चुका था और इसी प्रकार दक्षिण पचाल और चेदि जनपद का कुछ भाग वंस राज्य में। सूरसेन जनपद अवन्ती के प्रभाव में था। भग्ग जैसा स्वतन्त्र गण-तन्त्र वंस राज्य के प्रभाव में चला गया था और कपिलवस्तु के शाक्य और केसपुत्त के कालाम कोसल राज्य के अधीन थे। भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के समय वज्जि-संघ के मगध राज्य में प्रवेश की भूमिका बन रही

---

१. तभी तो मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार के सम्बन्ध में कहा गया है, "वह धार्मिक, धर्मराजा, ब्राह्मण और गृहस्थों तथा नगर और देश का हित करने वाला था...जो लोगों को सुखी कर स्वयं मृत्यु को प्राप्त हुआ।" जनवसभ-सुत्त (दीघ० २।५)।

२. देखिये समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ४१; मिलाइये महावंस ५।२०-२२ (हिन्दी अनुवाद)।

थी और विडूडभ की मृत्यु के उपरान्त स्वयं कोसल राज्य मगध में जाने वाला था। मल्लों के दो स्वतन्त्र गण-राज्यों की भी यही हालत थी। बाद के इतिहास में और ऐसी घटनाएँ घटीं जिनसे उपर्युक्त प्रवृत्ति को बल मिला। बुद्धकालीन राज्यों, गणतन्त्रों और जनपदों का विवेचन करते हुए हम अपने अध्ययन में इस विलीनी-करण की प्रवृत्ति का अधिक स्पष्टीकरण करेंगे, क्योंकि उस समय के राजनैतिक भूगोल को समझने के लिये इसका जानना हमारे लिये अत्यन्त आवश्यक है। अब हम पहले बुद्धकालीन राज्यों के विवरण पर आते हैं।

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में जो चार राज्य भारतवर्ष में विद्यमान थे, उनके नाम थे मगध, कोसल, वंस और अवन्ती। बुद्ध-पूर्व काल में मगध एक जनपद मात्र था। राज्य सत्ता के लिये पड़ोसी जनपद अंग के साथ उसका संघर्ष एक ऐति-हासिक परम्परा के रूप में बुद्ध-पूर्व काल से चला आ रहा था, जिसका विवरण हम आगे अंग जनपद के प्रसंग में देंगे। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में अंग निश्चित रूप से मगध का एक अंग हो गया। बुद्ध के जीवन-काल में मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार अंग और मगध दोनों का ही स्वामी माना जाता था, इसके अनेक प्रमाण हमें पालि तिपिटक में मिलते है, जिनका उल्लेख हम अंग जनपद का विवरण देते समय ही करेंगे। बिम्बिसार के राज्य का विस्तार पालि ग्रन्थों में ३०० योजन बताया गया है[1] और कहा गया है कि उसके राज्य में अस्सी हजार गाँव थे। "तेन खो पन समयेन राजा मागधो सेनियो बिम्बिसारो असीतिया गामसहस्सेसु इस्सराधिपच्चं रज्जं कारेति।"[2] अस्सी हजार गाँवों के अस्सी हजार ही "गामिक" अर्थात् मुखिया थे, ऐसा विनय-पिटक में कहा गया है।[3] इसे अंग और मगध जनपदों को सम्मिलित कर ही समझना चाहिए।[4]

---

१. देखिये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १४-१५ टिप्पणी; महावग्गो (विनय-पिटकं) पठमो भागो, पृष्ठ ३०४, सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १४८; समन्तपासादिका, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६१४।

२. महावग्गो (विनय पिटकं), पृष्ठ ३०४ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १९९, २००, २०१; देखिये वहीं पृष्ठ १४, टिप्पणी २।

४. रायस डेविड्स् : बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ १७ (प्रथम भारतीय संस्करण, १९५०)।

अंग जनपद का मगध में मिलना मगध राज्य की निरन्तर बढ़ती हुई शक्ति का द्योतक था। इसके बाद उसकी शक्ति निरन्तर बढ़ती गई, यहाँ तक कि अशोक के समय में मगध साम्राज्य प्रायः सम्पूर्ण भारतीय राज्य का प्रतीक बन गया। परन्तु हमें यहाँ मगध राज्य के केवल उतने युग के राजनैतिक भूगोल से सम्बन्ध है जितना वह बुद्ध के जीवन-काल में था। इस दृष्टि से हम केवल बिम्बिसार और अजातशत्रु के शासन-काल तक अपने को सीमित रक्खेंगे। भगवान् बुद्ध ने अपने जीवन-काल में मगध के केवल इन दो शासकों को देखा। बिम्बिसार भगवान् से आयु में पाँच वर्ष छोटा था। जब भगवान् उन्तीस वर्ष की अवस्था में गृह छोड़ कर राजगृह गये थे तो उस समय बिम्बिसार की आयु चौबीस वर्ष की थी और उसे राजा बने नौ वर्ष हो गये थे, क्योंकि उसके पिता भाति याभातिय ने उसका राज्याभिषेक पन्द्रह वर्ष की अवस्था में किया था। भगवान् बुद्ध जब ज्ञान-प्राप्ति के बाद राजगृह पधारे तो बिम्बिसार ने उनका अपूर्व स्वागत किया। इस समय भगवान् बुद्ध की आयु पैंतीस वर्ष की थी और बिम्बिसार की तीस वर्ष की तथा उसे राज्या-करते पन्द्रह वर्ष हो गये थे। इसके बाद उसने तथागत के जीवन-काल में सैंतीस वर्ष और राज्य किया। इस प्रकार बिम्बिसार ने कुल ५२ वर्ष राज्य किया और उसने ६७ वर्ष की आयु पाई। जब भगवान् बुद्ध का परिनिर्वाण हुआ तो बिम्बिसार को मरे आठवाँ वर्ष चल रहा था। इस प्रकार भगवान् बुद्ध ने अपने जीवन-काल में आठ वर्ष तक मगधराज अजातशत्रु के भी शासन को देखा। बुद्ध-परिनिर्वाण के बाद अजातशत्रु ने चौबीस वर्ष और राज्य किया, अर्थात् कुल मिलाकर बत्तीस वर्ष।[1]

मगधराज बिम्बिसार "सेणिय" (श्रेणिक) कहलाता था। "सुमंगलविलासिनी" के अनुसार इसका कारण यह था कि उसके पास बड़ी सेना थी। "महतिया सेनाय समन्नागतत्ता"। बिम्बिसार आरम्भ से ही बुद्ध-धर्म में अनुरक्त था। शाक्यकुमार जब अपने महाभिनिष्क्रमण के बाद राजगृह पहुँचे तो बिम्बिसार ने उनके दर्शन पाण्डव पर्वत पर किये थे और उनसे प्रार्थना की थी कि वे जब

---

१. यह कालानुक्रम महावंस २।२६-३२ (हिन्दी अनुवाद) के अनुसार है। मिलाइये दीपवंस ३।५९; समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ७२।

ज्ञान प्राप्त कर लें तो राजगृह अवश्य पधारने की कृपा करें। भगवान् ने बुद्धत्व-प्राप्ति के कुछ मास बाद ही बिम्बिसार की प्रार्थना को स्मरण किया और परिणामतः वें पौषमास की पूर्णिमा को राजगृह पहुँचे। बिम्बिसार ने एक लाख बीस हजार नागरिकों को लेकर भगवान् का लट्ठिवन उद्यान में स्वागत किया और दूसरे दिन वेणुवन उद्यान बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को अर्पित किया। इसी समय बिम्बिसार ने भगवान् से कहा कि उसके जीवन की पाँच अभिलाषाएँ थीं, (१) मुझे राज्य का अभिषेक मिलता, (२) भगवान् बुद्ध मेरे राज्य में आते, (३) मैं उन भगवान् की सेवा करता, (४) वे भगवान् मुझे धर्मोपदेश करते, (५) मैं उन भगवान् को जानता। बिम्बिसार ने भगवान् से कहा कि उसकी ये इच्छाएं अब पूरी हो चुकी हैं।[१] राजगृह में दो मास रहने के पश्चात् भगवान् जब लिच्छवियों की प्रार्थना पर, जो उन्होंने महालि के द्वारा भेजी थी, वैशाली जाने के लिये तैयार हुए तो बिम्बिसार ने गंगा नदी के तट तक की पाँच योजन भूमि को पुष्पों से आकीर्ण किया, जहाँ-तहाँ तोरण और बन्दनवार लगवाये, झंडियाँ लगवाईं, धर्मशालाएं बनवाईं और प्रत्येक योजन पर एक-एक दिन भगवान् को ठहरा कर पाँच दिन में गंगा के तट पर पहुँचाया, जिसके दूसरे तट से लिच्छवि लोग उससे भी अधिक सम्मान के साथ भगवान् को अपने प्रदेश में ले गये। यहाँ इस प्रसंग में यह भी कह देना आवश्यक होगा कि गंगा नदी मगध राज्य और वैशाली के लिच्छवियों के राज्य की सीमा थी। राजगृह की भगवान् की इस यात्रा के समय ही बिम्बिसार ने बुद्ध-धर्म में दीक्षा ग्रहण की। दीघ-निकाय के कूटदन्त-सुत्त में हम ब्राह्मण कूट-दन्त को कहते सुनते हैं, "मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार पुत्र-सहित, भार्या-सहित, परिषद्-सहित, अमात्य-सहित, प्राणों से श्रमण गौतम का शरणागत हुआ है।" "समणं खलु भो गोतमं राजा मागधो सेणियो बिम्बिसारो सपुत्तो सभरियो सपरिसो सामच्चो पाणेहि सरणं गतो।" मगधराज बिम्बिसार ने एक बार अपने राज्य के अस्सी हजार 'गामिकों' (ग्रामिकों—मुखियाओं) की सभा बुलवा कर उनसे कहा था, "मैंने तुम्हें इस जन्म के हित की बात कही। अब तुम उन भगवान् बुद्ध की

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९५-९८।

सेवा में जाओ। वे तुम्हें जन्मान्तर के हित की बात के लिये उपदेश करेंगे"[1]
सुमंगलविलासिनी[2] में कहा गया है कि "बुद्ध, धम्म, संघ" शब्द उच्चारण करते हुएही बिम्बिसार ने अपने प्राण छोड़े। दीघ-निकाय के जनवसभ-सुत्त में भी कहा गया है कि "मरते दम तक बिम्बिसार ने भगवान् का यश कीर्तन करते ही मृत्यु को प्राप्त किया"। बिम्बिसार के राज्य में प्रजा सुखी और समृद्ध थी और उसे प्रेम करती थी, यह इस बात से प्रकट होता है कि उसकी मृत्यु के बाद लोग उसे, जनवसभ-सुत्त के अनुसार, इन शब्दों में स्मरण करते थे, "मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार धार्मिक, धर्मराजा, ब्राह्मण और गृहस्थों का तथा नगर और देश का हित करने वाला था. . .लोगों को सुखी कर स्वयं मृत्यु को प्राप्त हुआ. . .उस धार्मिक, धर्मराजा के राज्य में हम लोग सुख पूर्वक विहार करते थे।" बुद्ध-धर्म में भक्ति के साथ-साथ बिम्बिसार ब्राह्मणों का भी आदर करता था। उसने खाणुमत नामक गाँव कूटदन्त ब्राह्मण को[3] और चम्पा नगरी सोणदण्ड ब्राह्मण को[4] दान के रूप में दे रक्खी थी। अजातशत्रु ने अपने पिता बिम्बिसार को मार कर राज्य प्राप्त किया था, यह बात पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में अनेक बार कही गई है। कहा गया है कि पितृ-घात के कारण अजातशत्रु की मानसिक शान्ति बिलकुल नष्ट हो गई थी और वह अत्यन्त व्याकुल रहने लगा था। एक दिन कार्तिक पूर्णिमा की रात को, जीवक को साथ लेकर, वह भगवान् से मिलने जीवक के राजगृह-स्थित आम्रवन में गया, जहाँ उसने भगवान् के सामने अपने पितृ-घात सम्बन्धी पाप को स्वीकार किया। "पितरं धम्मिकं धम्मराजानं इस्सरियस्स कारणा जीविता वोरोपेमि।"[5] पहले अजातशत्रु देवदत्त के प्रभाव में भी आया था और उसके लिये उसने गयासीस पर्वत पर एक विहार भी बनवाया था, परन्तु बाद में देवदत्त की मृत्यु के बाद उसे सुबुद्धि आई और वह बुद्ध-भक्त हो गया। भगवान् के महापरिनिर्वाण के बाद हम अजातशत्रु को भी भगवान् के धातुओं के एक अंश

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १९९।
२. जिल्द पहली, पृष्ठ १३४-१३७।
३. कूटदन्त-सुत्त (दीघ० १।५)।
४. सोणदण्ड-सुत्त (दीघ० १।४)।
५. सामञ्ञफल-सुत्त (दीघ० १।२)।

को प्राप्त करने के लिए प्रार्थना करते देखते हैं, "भगवान् क्षत्रिय थे। मैं भी क्षत्रिय हूँ। मुझे भी भगवान् की धातुओं में से एक अंश मिलना चाहिए।" 'भगवापि खत्तियो अहम्पि खत्तियो। अहम्पि अरहामि भगवतो सरीरानं भागं।'"[1] अजातशत्रु ने यह अंश प्राप्त किया और उस पर उसने एक धातु-चैत्य बनवाया। राजगृह का परिचय देते समय हम इस स्तूप की स्थिति का उल्लेख करेंगे। बुद्ध-परिनिर्वाण के बाद राजगृह के १८ महाविहारों की उसने मरम्मत करवाई।[2] प्रथम संगीत के अवसर पर सप्तपर्णी गुफा के द्वार पर उसने एक विशाल मण्डप भी बनवाया।[3] महावंस[4] के अनुसार अजातशत्रु को अपने पिता का भाग्य ही सहन करना पड़ा। यद्यपि वह बहुत चाहता था कि उसका पुत्र उदायि भद्द (उदय भद्र) भिक्षु-संघ के समान शान्ति से युक्त हो,[5] परन्तु फिर भी उदय भद्र ने अपने पिता को मार कर ही राज्य प्राप्त किया। मगध के बुद्धकालीन राजनैतिक भूगोल को समझने के लिये इतनी ऐतिहासिक और मानवीय भूमिका पर्याप्त होगी।

ऊपर हम मगध राज्य में अंग के सम्मिलित होने की बात कह चुके हैं। बिम्बिसार ने वैवाहिक सम्बन्धों के द्वारा भी अपने राज्य के विस्तार और प्रभाव में वृद्धि की। कोसल देश के राजा महाकोसल की पुत्री कोसलादेवी से उनसे विवाह किया। राजा महाकोसल ने अपनी पुत्री के स्नान और सुगंध के व्यय के लिये काशी ग्राम बिम्बिसार को दिया, जिसकी आय एक लाख थी। इस प्रकार काशी

---

१. महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ० २।३)।

२. पेतवत्थु की अट्ठकथा में अजातशत्रु के द्वारा बुद्ध-धातुओं पर चैत्य-निर्माण का वर्णन है। इसी प्रकार सुमंगलविलासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६११ तथा समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ९-१० में भी। मिलाइये मंजुश्रीमूलकल्प, पृष्ठ ६०० भी।

३. महावंस ३।१८-१९ (हिन्दी अनुवाद)।

४. ४।१ (हिन्दी अनुवाद); देखिये दीपवंस ५।९७ भी; मिलाइये समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ७३।

५. देखिये सामञ्ञफलसुत्त (दीघ० १।२)।

प्रदेश का काफी भाग मगध राज्य में आ गया। बाद में बिम्बिसार की मृत्यु के बाद जब उसकी पत्नी कोसला देवी की भी मृत्यु हो गई तो प्रसेनजित् ने अपने भानजे अजातशत्रु से काशी ग्राम को छीनना चाहा जिसमें काफी संघर्षों के बाद विजय प्रसेनजित् को मिली और अजातशत्रु को बन्दी बना लिया गया। परन्तु उदार नीति का अनुसरण कर प्रसेनजित् ने अपनी इकलौती पुत्री वजिरा का विवाह अजातशत्रु के साथ कर दिया और काशी ग्राम फिर उसे भेंट स्वरूप दे दिया। मगधराज बिम्बिसार ने अन्य वैवाहिक सम्बन्ध भी किये जिनका राजनैतिक महत्व था। उसकी एक पत्नी वैशाली की लिच्छवि राजकुमारी थी और इसी प्रकार मद्र देश के राजा की पुत्री खेमा बिम्बिसार की प्रधान महिषी बताई जाती है।

हम पहले कह चुके हैं कि मगधराज बिम्बसार के राज्य का विस्तार ३०० योजन था। उसमें २०० योजन की वृद्धि अजातशत्रु ने की। इस प्रकार मगध की सीमा काफी विस्तृत हो गई। मगध राज्य पूर्व में अंग (जिसमें अंगुत्तराप अर्थात् गंगा और कोसी के बीच का अंग देश का भाग भी सम्मिलित था) की अंतिम सीमा कोसी नदी तक फैला था। मगध के दक्षिण-पूर्व में सुह्मों का जनपद था और दक्षिण में कलिंगारण्य। इस प्रकार दक्षिण-पूर्व और दक्षिण में मगध की कोई प्रतिद्वन्द्वी शक्ति नहीं थी। मगध राज्य का सबसे अधिक महत्वपूर्ण और शक्तिशाली पड़ोसी वज्जि गणतंत्र था, जो उसके उत्तर में मही (गण्डक) नदी से लेकर बाहुमती (बागमती) नदी तक फैला था। जैसा हम पहले कह चुके हैं, गंगा नदी मगध और वज्जि गण राज्य के बीच की सीमा थी, जिसपर दोनों का समान अधिकार माना जाता था। मगध गंगा के दक्षिण में था और वज्जि गणतंत्र उसके उत्तर में। महापरिनिब्बाण-सुत्त की अट्ठकथा से पता लगता है कि पाटलिपुत्र के समीप बहुमूल्य माल उतरता था जिसकी चुगी पर इन दोनों राज्यों का अक्सर झगड़ा चलता रहा था। मगधराज अजातशत्रु इसीलिये वज्जियों पर अभियान करना चाहता था। भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण से कुछ पूर्व हम उसे इस सम्बन्ध में काफी चिन्तित देखते है और महापरिनिब्बाण-सुत्त से हमें सूचना मिलती है कि इसी उद्देश्य के लिये उसके दो ब्राह्मण मंत्री सुनीध और वस्सकार पाटलिपुत्र नगर को बसा रहे थे। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में तो नहीं, परन्तु उसके बाद

वज्जि गणतंत्र को कुछ सीमित स्वतंत्रता रखते हुए मगध राज्य में सम्मिलित हो जाना पड़ा। मगध राज्य की पश्चिमी सीमा संभवतः सोण नदी थी।

अब हम मगध राज्य के मुख्य नगरों, निगमों और ग्रामों के विवरण पर आते हैं। पहले उसकी राजधानी गिरिव्रज (गिरिब्बज) या प्राचीन राजगृह (राजगह) को लेते हैं। गिरिव्रज राजगृह का प्राचीन नाम था। इसे 'मगधों का उत्तम नगर' (मगधानं पुरुतमं)[1] कहकर पुकारा गया है। एक गिरिव्रज नामक नगर केकय में भी था, विपाशा नदी के पश्चिम में। इसलिये मगध के गिरिव्रज को उससे पृथक् करने के लिये अक्सर "मगधों के गिरिव्रज" जैसे शब्द का प्रयोग किया गया है।[2] कहीं-कहीं राजगह और गिरिब्बज दोनों शब्दों का प्रयोग साथ-साथ किया गया है, जैसे "अगमा राजगहं बुद्धो मगधानं गिरिब्बजं"।[3] परन्तु ऐसा प्रायः गाथाओं में ही हुआ है और अधिकतर राजगृह शब्द का अकेले ही प्रयोग किया गया है, जैसे "एकं समयं भगवा राजगहे विहरति", आदि। गिरिव्रज प्राचीन नगर था, जो पाँच पहाड़ियों के बीच में एक गढ़ो के रूप में स्थित था। आचार्य बुद्धघोष ने गिरिव्रज (गिरिब्बज) नाम की व्याख्या करते हुए कहा है कि यह नगर चारों ओर पर्वतों से घिरे व्रज (खिरक) के समान लगता था, इसलिये इसका यह नाम पड़ा।[4] जिन पर्वतों से गिरिव्रज घिरा था, वे पाँच थे और उनके नाम सुत्तनिपात की अट्ठकथा,[5] में इस प्रकार दिये गये हैं, पण्डव, गिज्झकूट, वेभार, इसिगिलि और वेपुल्ल पब्बत। महाकवि अश्वघोष ने भी राजगृह को 'पाँच पर्वतों के बीच में स्थित नगर' कहकर पुकारा है।[6] पालि विवरणों के आधार पर यह निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता कि कब और किसने इन पञ्च पर्वतों से वेष्टित प्राचीन गिरिव्रज नगर की स्थापना की। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त में महागोविन्द द्वारा सात नगरों के बसाये जाने की

---

१. थेरगाथा, गाथा ६२२।
२. "मगधानं गिरिब्बजे"। वेपुल्लपब्बत-सुत्त (इतिवुत्तक)।
३. पब्बज्जा-सुत्त (सुत्त-निपात)।
४. पपंचसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १५१।
५. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३८२।
६. बुद्ध-चरित, २१।२; मिलाइये वहीं १०।२ भी।

बात कही गई है, परन्तु गिरिव्रज का उल्लेख नहीं है। इसलिए विमानवत्थु-अट्ठकथा[१] के इस कथन को हम अधिक महत्व नहीं दे सकते कि महागोविन्द ने इस नगर की स्थापना की। हाँ, इस सम्बन्ध में यहाँ यह कह देना अप्रासंगिक न होगा कि वाल्मीकि-रामायण (आदि काण्ड, सर्ग ३२, श्लोक ७–८) के अनुसार ब्रह्मा के चतुर्थ पुत्र वसु ने गिरिव्रज को बसाया था। इसीलिए इसे वहाँ वसुमती नगरी भी कह कर पुकारा गया है। महाभारत (२।२४।४४) के वर्णनानुसार बृहद्रथ के पुत्र जरासन्ध के नाम पर गिरिव्रज का एक नाम बार्हद्रथपुर भी था। यह कुछ आश्चर्यजनक मालूम न पड़ेगा कि महाभारत (२।२०।३०) में गिरिव्रज या प्राचीन राजगृह को 'मागधं पुरम्' भी कह कर पुकारा गया है, जब कि ठीक यही शब्द 'मागधं पुरं' सुत्त-निपात के पारायण वग्ग की वत्थुगाथा की अड़तीसवीं गाथा में राजगृह के लिये प्रयुक्त किया गया है। इससे यह जान पड़ता है कि गिरिव्रज या प्राचीन राजगृह के सम्बन्ध में जो सूचना महाभारत में दी गई है, वह उसके पूर्व इतिहास के सम्बन्ध में कदाचित् प्रामाणिक हो सकती है। पाँचवीं शताब्दी ईसवी में भारत आने वाले चीनी यात्री फा-ह्यान ने 'प्राचीन नगर' और 'नवीन नगर' नामों से दो नगरों का उल्लेख किया है, जिनमें प्रथम से उसका तात्पर्य सम्भवतः गिरिव्रज से था और द्वितीय से राजगृह से, जिसे उसके मतानुसार अजातशत्रु ने बसाया।[२] सातवीं शताब्दी ईसवी के प्रसिद्ध चीनी यात्री यूआन् चुआङ ने राजगृह का प्राचीन नाम "कुशाग्रपुर" बताया है और उसके नाम पड़ने का यह कारण बताया है कि यहाँ उत्तम प्रकार की कुश घास बहुलता से उगती थी।[३] पाजिटर ने पौराणिक विवरणों के आधार पर दिखाया है कि मगध के प्राचीन राजा कुशाग्र के नाम पर इस नगर का यह नाम पड़ा था।[४] यह उल्लेखनीय है कि चौदहवीं शताब्दी ईसवी के जैनाचार्य जिनप्रभ सूरि को 'कुशाग्रपुर' राजगृह

---

१. पृष्ठ ८२।

२. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४९।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १४८-१४९।

४. एन्शियन्ट इण्डियन हिस्टोरीकल ट्रेडीशन पृष्ठ १४९।

के प्राचीन नाम के रूप में विदित था।" "कुशाग्रपुरसंज्ञं च क्रमाद्राजगृहाह्वयम्।"[१] यूआन् चुआङ के वर्णनानुसार नवीन राजगृह को राजा बिम्बिसार ने कुशाग्रपुर (प्राचीन नगर) में निरन्तर आग लगते रहने के कारण, वेणुवन के उत्तर-पूर्व में, एक श्मशान के समीप, बसाया था और चूँकि राजा (बिम्बिसार) वहाँ प्रथम गृह बना कर रहा था, इसलिए इसका नाम 'राजगृह' पड़ा था।[२] फा-ह्यान ने नवीन नगर का विवरण देते हुए लिखा है कि उसे अजातशत्रु ने बसाया था।[३] इस प्रकार इन दोनों चीनी यात्रियों में राजगृह के संस्थापक को लेकर मतभेद है। सुत्त-निपात की अट्ठकथा[४] में राजगृह के लिये 'मगधपुर' के साथ 'बिम्बिसारपुरी' शब्द का प्रयोग किया गया है। 'राजगृह' नामकरण का कारण बताते हुए आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि प्राचीन काल में यह नगर मन्धाता (सं० मान्धाता) और महा-गोविन्द जैसे राजाओं का गृह या निवास-स्थान रहा था, इसलिये इसका नाम 'राजगह' (राजगृह) पड़ा।[५] आचार्य बुद्धघोष ने यह भी कहा है कि 'राजगृह' 'अन्तोनगर' (भीतरी नगर) और 'बहिरनगर' (बाहरी नगर) इन दो भागों में विभक्त था, जिनमें से प्रत्येक की आबादी ९ करोड़ थी, अर्थात् पूरे राजगृह की आबादी मिलाकर १८ करोड़ थी।[६] राजगृह अर्थात् अजातशत्रु (फा-ह्यान के अनुसार) या बिम्बिसार (यूआन् चुआङ के अनुसार) द्वारा बसाये गये राजगृह की स्थिति हमें आधुनिक राजगिर या राजगीर गाँव या कस्बे के रूप में माननी पड़ेगी, जो राजगीर रेलवे

---

१. विविधतीर्थकल्प, प्रथम भाग, पृष्ठ २२।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १६२; बील : बुद्धिस्ट रिकार्डस् ऑव दि वेस्टर्न वर्ल्ड, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १४५।

३. लेग्गे : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ८१; मिलाइये गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४९।

४. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८४।

५. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १३२।

६. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०३; समन्तपासादिका, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६१४।

स्टेशन के समीप डाकबँगले के उत्तर और उत्तर-पूर्व कोण में स्थित है। यह स्थिति सन् १९०६ में पुरातत्व विभाग द्वारा किये गये उत्खनन कार्य से प्रायः निश्चित हो गई है। इसका कारण यह है कि इस स्थान के समीप उपर्युक्त खुदाई के परिणाम-स्वरूप तीन मील लम्बी चहारदीवारी के अवशिष्ट प्राप्त हुए, जिसकी दीवारें कहीं-कहीं १४ फुट ९ इंच से लेकर १८ फुट ६ इंच तक मोटी थीं और कहीं-कहीं पर जिनकी ऊँचाई ११ फुट तक थी। समीपवर्ती ग्रामवासियों के द्वारा ईंट और पत्थर उठाये ले जाने के कारण ये अवशेष भी आज लुप्तप्राय हो गये हैं और कुछ खण्ड-हरों के अतिरिक्त अधिक देखने को नहीं मिलता। यह अनुमान लगाया गया है कि यह तीन मील लम्बी चहारदीवारी वस्तुतः उस राजगृह की ही है जिसे चीनी यात्रियों के वर्णनानुसार अजातशत्रु या बिम्बिसार ने बसाया था। यहाँ जो अन्य वस्तुएं मिली हैं, जैसे अनाज रखने का एक बड़ा कूँड़ा, घरों और नालियों के अवशिष्ट, वे इसे एक प्राचीन नगर की स्थिति सूचित करते है। धम्मपदट्ठकथा[1] में कहा गया है कि राजगृह नगर के चारों ओर एक चहारदीवारी थी जिसके फाटक रात को बन्द कर दिये जाते थे और किसी को भी एक निश्चित समय के बाद प्रवेश की अनुमति नहीं मिलती थी, यहाँ तक कि राजा को भी नहीं। 'सुमंगलविलासिनी' में भी कहा गया है कि राजगृह के परकोटे में ३२ बड़े द्वार (महाद्वारानि) और ६४ छोटे द्वार (खुद्दद्वारानि) थे। अतः पालि के इस वर्णन को उपर्युक्त चहारदीवारी के भग्नावशेषों से समर्थन मिलता है और हम इस तीन मील के परकोटे को राजगृह की चहारदीवारी मान सकते है। दूसरी बातें भी चीनी यात्रियों के विवरणों से मेल खाती हैं, जिनका उल्लेख हम राजगृह के अन्य विभिन्न बुद्धकालीन स्थानों का विवेचन करते समय आगे करेंगे। अभी इस राजगृह की स्थिति को ध्यान में रखते हुए हम उसके प्राचीन रूप, अर्थात् बुद्ध और बिम्बिसार के समय से पूर्व के गिरिव्रज की स्थिति पर कुछ विचार करें। पालि विवरण के आधार पर हम पहले देख चुके हैं कि गिरिव्रज नगर पाँच पहाड़ियों के बीच में स्थित था। पुरातत्व विभाग की खोजों ने इन पहाड़ों की घाटी में एक ४॥ मील घेरे के पंचभुजाकार परकोटे को प्रकाश में लाने का काम किया है,

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ ३५६।

जिसे इस नगर (गिरिव्रज) को घेरने वाली अन्दरूनी दीवारें माना गया है। इस पंचभुजाकार दीवार का जो सबसे उत्तरी भाग है, वह ऊपर कही हुई राजगृह को घेरने वाली ३ मील लम्बी चहारदीवारी के सबसे दक्षिणी भाग से ५ या ६ फर्लांग दक्षिण में है। इसका अर्थ यह है कि तीन मील लम्बा घेरा जो राजगृह का भग्नावशिष्ट है, उत्तर में है और साढ़े चार मील लम्बा घेरा जो गिरिव्रज का भग्नावशिष्ट है, उसके दक्षिण में, पहाड़ियों के बीच में, है। दोनों के बीच का फासला करीब ५ या ६ फर्लाङ्ग है। और भी स्पष्ट करें तो प्राचीन नगर गिरिव्रज को घेरने वाली साढ़े चार मील लम्बी दीवार के उत्तरी प्रवेश द्वार से बाहर और उसकी उत्तर दिशा में करीब पाँच या छह फर्लाङ्ग की दूरी पर उस राजगृह के तीन मील के परकोटे के रूप में भग्नावशिष्ट स्थित हैं जिसे अजातशत्रु या बिम्बिसार ने बनवाया था। राजगृह और गिरिव्रज की आपेक्षिक स्थितियों को स्पष्ट करने में यहाँ विशेष आयास इसलिये करना पड़ रहा है कि इस सम्बन्ध में डा० रायस डेविड्स् जैसे विद्वान् ने भी एक ऐसी बात कह दी है जो भ्रामक जान पड़ती है। वह यह है, "गिरिब्बज और राजगृह दोनों के दुर्ग आज विद्यमान हैं, जो घेरे में क्रमशः ४।। और ३ मील है। गिरिब्बज की दीवारों का सबसे दक्षिणी बिन्दु नवीन राजगृह नगर के सबसे उत्तरी बिन्दु से एक मील उत्तर में है।"[1] यह तो रायस डेविड्स ने ठीक कहा है कि साढ़े चार मील लम्बा घेरा गिरिव्रज को द्योतित करता है और तीन मील लम्बा घेरा राजगृह को। परन्तु उन्होंने यह जो कहा है कि गिरिब्बज की दीवारों का सबसे दक्षिणी बिन्दु नवीन राजगृह के सबसे उत्तरी बिन्दु से एक मील उत्तर में है, यह बिलकुल समझने में अयोग्य है और इसकी संगति न तो चीनी यात्रियों के विवरणों

---

१. "The fortifications of both Giribbaja and Rājagaha are still extant, $4\frac{1}{2}$ and 3 miles respectively in circumference; the most southerly point of the walls of Giribbaja, the "Mountain Stronghold", being one mile north of the most northerly point of the walls of the new town of Rājagaha, the King's house." **बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ २७ (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०); पृष्ठ ३७-३८ (लन्दन से सन् १९०३ में प्रकाशित मूल संस्करण)**

से है और न इसे पुरातत्व विभाग की खोजों से ही कुछ समर्थन मिल सकता है। रायस डेविड्स के कथन को मानने पर गिरिव्रज के भग्नावशेषों को राजगृह के भग्नावशेषों से उत्तर में मानना पड़ेगा, जो पुरातत्व विभाग द्वारा की गई खुदाई के साक्ष्य के बिलकुल विपरीत है। भारत सरकार द्वारा प्रकाशित आर्कोलोजीकल सर्वे ऑव इन्डिया, न्यू इम्पीरियल सीरीज़, जिल्द इक्यावनवीं, कलकत्ता १९३१, में राजगिर की खुदाई में प्राप्त जिन तथ्यों का हाल पृष्ठ ११२ से लेकर १३६ तक प्रकाशन किया गया है और सर जोन्ह मार्शल की देखरेख में तैयार किये गये जिस मानचित्र को वहाँ दिया गया है, उसमें स्पष्ट तौर पर नवीन राजगृह की स्थिति को प्राचीन राजगृह या कुशाग्रपुर (गिरिव्रज) के उत्तर में दिखाया गया है। चूँकि रायस डेविड्स् के कथन को मान लेने पर इससे उल्टा अर्थात् गिरिव्रज को उत्तर में और उसके नीचे दक्षिण में राजगृह को मानना पड़ेगा, इसलिये हम उसे प्रामाणिक नहीं मान सकते। भौगोलिक परिस्थिति के विचार से भी यह बिलकुल गलत होगा, क्योंकि पाँच पहाड़ियों के बीच में स्थित गिरिव्रज राजगृह के दक्षिण में ही हो सकता है और सबसे अधिक प्रत्यक्ष बात तो यह है कि ४॥ मील भग्न दीवार का घेरा जो मिला है और जिसे रायस डेविड्स् भी गिरिव्रज मानते है[1], वह तो साक्षात् तीन मील लम्बे घेरे से दक्षिण दिशा में ही है, उत्तर में नहीं। अतः रायस डेविड्स् का इससे विपरीत कथन भ्रामक ही हो सकता है। चीनी यात्रियों में से यूआन् चुआङ्ग ने तो, जैसा हम पहले देख चुके है, राजगृह की स्थिति के सम्बन्ध में केवल इतना ही कहा है कि वह वेणुवन के उत्तर-पूर्व में एक श्मशान के समीप बनवाया गया था. परन्तु फा-ह्यान ने तो स्पष्टतः कहा है कि सारिपुत्र के जन्म और निर्वाण के स्थान नाल या नालन्दा से एक योजन पश्चिम में चलकर वह 'नवीन राजगृह' में आया था, जिसे उसके मतानुसार अजातशत्रु ने बनवाया था और इस नगर के दक्षिण द्वार से करीब ४ 'ली' (करीब ¾ मील) दक्षिण में उसने पाँच पहाड़ियों से परिवृत बिम्बिसार के प्राचीन नगर (गिरिव्रज) को देखा था।[2] अतः फा-ह्यान के इस विवरणानुसार भी प्राचीन नगर (गिरिव्रज) नवीन राजगृह से करीब ५ या ६ फर्लाङ्ग दक्षिण

---

१. बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ २७ (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०)।

२. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४९।

में ही था, जिसे अद्भुत समर्थन, जैसा हम देख चुके हैं, पुरातत्व विभाग द्वारा करायी गई इस क्षेत्र की खुदाई से भी मिला है। भारतीय विद्या के अध्ययन के प्रारम्भिक युग में गिरिव्रज को गिर्यक् मान लिया गया था। परन्तु आज इस गलती को दुहराने की आवश्यकता नहीं है। गिर्यक् पर्वत राजगिर से छह मील पूर्व दिशा में स्थित है और वह गिरिव्रज नहीं है।[1] जैसा कनिंघम ने कहा है, गिर्यक् पर्वत राजगृह की बाहरी दीवारों के बाहर ही था।[2]

जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, प्राचीन राजगृह या गिरिव्रज पाँच पहाड़ियों से घिरा था, जिनके नाम हम सुत्त-निपात की अट्ठकथा के आधार पर इस प्रकार दे चुके हैं, पण्डव, गिज्झकूट, वेभार, इसिगिलि और वेपुल्ल पब्बत। परमत्थजोतिका[3] में इन नामों का क्रम इस प्रकार दिया गया है, पण्डव पब्बत, गिज्झकूट, वेभार, इसिगिलि और वेपुल्ल। विमानवत्थु-अट्ठकथा में इस क्रम में और उलट-फेर कर इस प्रकार नाम दिये गये हैं, इसिगिलि, वेपुल्ल, वेभार, पण्डव और गिज्झकूट। मज्झिम-निकाय के इसिगिलि-सुत्तन्त में यह क्रम इस प्रकार है, इसिगिलि, वेभार, पण्डव, वेपुल्ल और गिज्झकूट। इसी सुत्तन्त में कहा गया है कि प्राचीन काल में इन पर्वतों के नाम विभिन्न थे। महाभारत के सभा-पर्व में गिरिव्रज को परिवृत करने वाले पाँच पर्वतों का उल्लेख है, परन्तु नामों में विभिन्नता है। महाभारत के सभा-पर्व के अनुसार ये पाँच पर्वत थे, (१) वैहार (२) बराह (३) वृषभ, (४) ऋषिगिरि, और (५) चैत्यक। चूंकि इन पाँच पर्वतों का पालि विवरण अधिक स्पष्ट और साक्षात् अवेक्षण पर आधारित है, इसलिये हम उसे ही अधिक महत्व देंगे। अब हम पालि परम्परा के अनुसार क्रमशः पण्डव, गिज्झकूट, वेभार, इसिगिलि और वेपुल्ल पब्बत का भौगोलिक परिचय देंगे।

अपने महाभिनिष्क्रमण के बाद शाक्यकुमार जब राजगृह में आये तो सुत्त-निपात के अनुसार राजगृह में भिक्षाचर्या के बाद वे नगर से बाहर पाण्डव

---

१. मिलाइये हेमचन्द्र रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १११, पद-संकेत १।

२. एन्शियण्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५३३-५३४।

३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३८२।

पर्वत पर निवास करने के लिये गये। "स पिंडचारं चरित्वान निक्खम्म नगरा मुनि। पण्डवं अभिहारेसि एत्थ वासो भविस्सति।" यहीं बिम्बिसार उनसे मिलने गया।[1] मज्झिम-निकाय के इसिगिलि-सुत्तन्त में भी पाण्डव पर्वत का उल्लेख है। पाण्डव पर्वत को आधुनिक रत्नगिरि या रत्नकूट पर्वत से मिलाया गया है।[2] रत्नगिरि या रत्नकूट पर्वत विपुल गिरि के ठीक दक्षिण में स्थित है। इसके पूर्व में पहले छट्ठ गिरि या छठा गिरि है और बाद में शैलगिरि। रत्नगिरि के पश्चिम में वैभार गिरि है। वैभार गिरि और पाण्डव (रत्नकूट पर्वत) के बीच हम एक बार बिजली गिरते देखते हैं जबकि स्थविर सिरिवड्ढ वहाँ पास में किसी गुफा में बैठे ध्यान कर रहे थे।[3]

गिज्झकूट पब्बत उपर्युक्त पाँच पहाड़ियों में सबसे अधिक महत्वपूर्ण है। आचार्य बुद्धघोष ने बताया है कि इस पहाड़ी का नाम गिज्झकूट (गृध्रकूट) इसलिये पड़ा कि इसकी चोटी का आकार गृध्र पक्षी की चोंच के समान था, अथवा इसकी चोटी पर गृध्र निवास करते थे।[4] दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में गृध्रकूट पर्वत का उल्लेख है और उसे 'रमणीय' बताया गया है। "रमणीयो गिज्झकूटो पब्बतो।" मज्झिम-निकाय के चूल-दुक्खक्खन्ध-सुत्त तथा इसिगिलि-सुत्तन्त में गिज्झकूट पब्बत का उल्लेख है। इसी निकाय के छन्नोवाद-सुत्तन्त में हम धर्म-सेनापति सारिपुत्र, महाचुन्द और महाछन्न भिक्षुओं को गृध्रकूट पर्वत पर विहार करते देखते हैं। विनय-पिटक[5] में कई बार इस पर्वत का उल्लेख आया है और भगवान् वहाँ विहार करते दिखाये गये हैं। मगध के ८०,००० गाँवों के

---

१. पब्बज्जा-सुत्त (सुत्त-निपात); देखिये जातकट्ठकथा, पठमो भागो, पृष्ठ ५० (भारतीय ज्ञानपीठ, काशी); जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ८६-८७ (हिन्दी अनुवाद)।

२. कनिंघम: एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५३१।

३. थेरगाथा, पृष्ठ १९ (भिक्षु धर्मरत्न-कृत हिन्दी अनुवाद)।

४. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६३; समन्तपासादिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २८५।

५. पृष्ठ २०२, ३९६ (हिन्दी अनुवाद)।

मुखिया यहीं भगवान् के दर्शनार्थ गये थे और यहीं सोण कोटिविंश की प्रव्रज्या हुई थी। बावरि ब्राह्मण के सोलह शिष्यों ने जिस पाषाण चैत्य पर जाकर भगवान् के दर्शन किये थे, वह सम्भवतः गिज्झकूट पब्बत पर ही स्थित था। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त, उदुम्बरिक-सीहनाद-सुत्त तथा आटानाटिय-सुत्त का उपदेश भगवान् ने गृध्रकूट पर निवास करते समय ही दिया था और इसी प्रकार सुत्त-निपात के माघ-सुत्त का भी। संयुत्त-निकाय के पासाण-सुत्त में हम भगवान को काली अंधियारी रात में, जब रिमझिम पानी पड़ रहा था, गृधकूट पर्वत पर ध्यान करते देखते हैं। इसी निकाय के अभय-सुत्त से हमें पता लगता है कि अभय राजकुमार यहीं भगवान् से मिलने आया था। संयुत्त-निकाय के चंकमं-सुत्त में हम भगवान् को गृध्रकूट पर्वत पर विहार करते देखते हैं और इसी सुत्त में यह सूचना मिलती है कि धर्मसेनापति सारिपुत्र, महाकात्यायन आदि बुद्ध-शिष्य उस समय गृध्रकूट के आसपास ही विहार कर रहे थे। महाकात्यायन के गृध्रकूट पर्वत पर विहार करने की सूचना हमें संयुत्त निकाय के अट्ठिपेमि सुत्त में भी मिलती है। वक्कलि को उपदेश देकर भगवान् को गृधकूट की ओर जाते हम संयुत्त-निकाय के वक्कलि-सुत्त में देखते हैं। इसी निकाय के देवदत्त-सुत्त यजमान-सुत्त, पुग्गल-सुत्त, सक्क-सुत्त, वेपुल्ल-पब्बत-सुत्त और पक्कन्त-सुत्त का उपदेश भगवान् ने गृध्रकूट पर्वत पर विहार करते समय ही दिया था। अंगुत्तर-निकाय[1] में भी हम कई अवसरों पर भगवान् को गृध्रकूट पर्वत पर विहार करते देखते हैं। गृध्रकूट पर्वत पर अन्तिम निवास करने के बाद ही हम भगवान् को परिनिर्वाण प्राप्त करने के हेतु वहाँ से कुसिनारा की ओर प्रस्थान करते देखते हैं।

स्थविरवाद बौद्ध धर्म में ही नहीं, महायान बौद्ध धर्म में भी गृध्रकूट पर्वत की महिमा भगवान् बुद्ध के निवास-स्थान के रूप में प्रभूत रूप से सुरक्षित है। चीनी परम्परा के अनुसार, जिसका उल्लेख फा-ह्यान और युआन् चुआङ् ने किया है, सद्धर्मपुण्डरीक-सूत्र (फ-हुअ-चिंग्) और सूरांगमसमाधिसूत्र (शोउ-लेंग्-येन्) का उपदेश भगवान् बुद्ध ने गृध्रकूट पर्वत पर ही दिया

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ २३६, २३७; जिल्द तीसरी, पृष्ठ १; जिल्द चौथी, पृष्ठ १७-२१।

था।[1] महायानी परम्परा के अनुसार सुखावती-व्यूह तथा कई अन्य महत्वपूर्ण सुत्तों का उपदेश भी गृध्रकूट पर्वत पर ही दिया गया था।

चीनी यात्री यूआन् चुआङ ने राजगृह से १४ या १५ 'ली' (अर्थात् करीब ढाई मील) उत्तर-पूर्व में चलकर गृध्रकूट पर्वत के दर्शन किये थे।[2] इसकी चोटी पर आकर गृध्रों के बैठने की बात यूआन् चुआङ ने भी कही है,[3] जो बुद्धघोष द्वारा निर्दिष्ट परम्परा का, जिसका उल्लेख पहले किया जा चुका है, समर्थन करती है। फा-ह्यान ने एक विभिन्न अनुश्रुति का उल्लेख करते हुए कहा है कि इस पर्वत की एक गुफा में, जो बुद्ध की गुफा के समीप ही थी, एक बार, आनन्द ध्यान कर रहे थे जब कि मार ने गृध्र का रूप धारण कर उन्हें प्रलोभित करने का प्रयत्न किया। भगवान् बुद्ध ने इस बात को जानकर अपने हाथ को बढ़ाकर गुफा में एक छेद के द्वारा उससे आनन्द की पीठ ठोंकी। चूँकि उस गृध्र और गुफा के अन्दर उस छेद के चिन्ह अभी विद्यमान हैं, इसलिये यह पर्वत गृध्रकूट कहलाया।[4] युआन् चुआङ ने इस पहाड़ के नीचे से ऊपर चोटी तक बिम्बिसार द्वारा निर्मित एक सीढ़ीनुमा सड़क का उल्लेख किया है, जिसकी लम्बाई ५ या ६ 'ली' (करीब एक मील) बताई है। इससे यह अनुमान लगाया जा सकता है कि आधुनिक मणियार मठ के करीब ६ फर्लांग दक्षिण से जो सड़क गृध्रकूट पर्वत तक गई है, वह बिम्बिसार के द्वारा ही बनवाई गई थी। उसे हम आज भी 'बिम्बिसार-मार्ग' कह सकते हैं। इस मार्ग के बीच में अवस्थित दो स्तूप युआन् चुआङ ने देखे थे, जिनमें से एक उस स्थान को सूचित करता था जहाँ बिम्बिसार ने यान छोड़कर पैदल चलना आरम्भ किया था और दूसरा उस स्थान को जहाँ उसने और लोगों को विसर्जित कर अकेले गृध्रकूट की गुफा की ओर चढ़ना आरम्भ किया था। इन

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५२; मिलाइये गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५१।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५१।

३. वहीं, पृष्ठ १५१।

४. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५०।

स्तूपों के चिह्न आज भी इस रास्ते में मिलते हैं। अजातशत्रु ने अपने पिता राजा श्रेणिक बिम्बिसार को जिस बन्दीगृह में बन्द किया था, वह आज करीब २०० फुट लम्बे और प्रायः उतने ही चौड़े वर्गाकार पत्थरों के क्षेत्र के रूप में विद्यमान है, जिसकी स्थिति मणियार मठ से करीब ६ फर्लांग दक्षिण में है। यहीं से बिम्बिसार पूर्व की ओर गृध्रकूट पर्वत को देखा करता था जब उसे कभी-कभी काषाय वस्त्रधारी बुद्ध के दर्शन पर्वत से नीचे आते या उस पर चढ़ते हो जाया करते थे। उपर्युक्त विवरणों से स्पष्ट है कि आधुनिक शैलगिरि ही गृध्रकूट पर्वत (गिज्झकूट पब्बत) है। राजगृह से गृध्रकूट की करीब २॥ मील की दूरी, जो यूआन् चुआङ ने लिखी है वह इससे मिल जाती है। कनिंघम को यही पहचान मान्य थी।[1] इसे थॉमस वाटर्स ने भी स्वीकार किया है।[2] डा० विमलाचरण लाहा ने कनिंघम का अनुसरण कर ठीक ही शैलगिरि को गृध्रकूट पर्वत माना है, परन्तु उनका साथ ही यह कहना कि यही गिर्यक् पर्वत भी कहलाता है,[3] भ्रमोत्पादक है। गिर्यक् या गिरियक् राजगृह से ६ मील पूर्व में है और गृध्रकूट पर्वत-शिखर से भिन्न है जो राजगृह से केवल ढाई मील दूर है। जैसा हम आगे देखेंगे, गिर्यक् पर्वत को वेदिक या वेदियक पर्वत से मिलाना अधिक ठीक होगा, जिसमें इन्दसाल गुहा थी। आर्कोलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, न्यू इम्पीरियल सीरीज, जिल्द इक्यावनवी (कलकत्ता १९३१) के पृष्ठ ११६ में गृध्रकूट पर्वत को छट्ट गिरि या छटा गिरि से मिलाया गया है। उसका आधार यहाँ यही जान पड़ता है कि यूआन चुआङ ने जिस ५ या ६ 'ली' (करीब १ मील) लम्बी बिम्बिसार द्वारा निर्मित सड़क का उल्लेख किया है, उसे यहाँ नाक्वे बाँध से प्रारंभ हुआ मान लिया गया है और फिर दूरी का विचार कर छट्ट या छटा गिरि को ही गृध्रकूट मान लिया गया है, क्योंकि यह नाक्वे बाँध से प्रायः १ मील की ही दूरी पर पूर्व दिशा में स्थित है। वस्तुतः ५ या ६ 'ली' की दूरी जो यूआन् चुआङ ने बिम्बिसार द्वारा निर्मित मार्ग की दी है, वह पहाड़ के नीचे से ऊपर तक की है। अतः 'आर्कोलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया' में जो नाक्वे

---

१. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५३४-५३५।
२. औन् यूआन् चुआङ स ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५२।
३. ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ४१।

बाँध से उसे प्रारंभ कर माना गया है, वह ठीक नहीं जान पड़ता। इसका एक कारण यही है कि यदि इसे ठीक मान कर छट्ट या छटा गिरि को ही गृध्रकूट मान लिया जाय तो इसकी दूरी राजगृह से यूआन् चुआङ के वर्णनानुसार ही, जैसा हम पहले देख चुके हैं, १४ या १५ 'ली' अर्थात् करीब २।। मील होनी चाहिये। परन्तु राजगृह से छटा गिरि की दूरी इससे बहुत कम है, अर्थात् केवल करीब १।। मील। इसलिये छट्ट या छटा गिरि से और पूर्व में बढ़कर हमें शैलगिरि को ही गृध्रकूट पर्वत मानना चाहिये, जिसकी दूरी राजगृह से ठीक करीब २।। मील अर्थात् यूआन् चुआङ के विवरणानुसार ठीक ही है और सड़क की लम्बाई को भी, जैसा हम पहले भी कह चुके हैं, इस पर्वत के नीचे से ऊपर तक की लम्बाई मान सकते हैं। इस प्रकार शैलगिरि को गृध्रकूट पर्वत मानना चाहिये। यूआन् चुआङ ने गृध्रकूट पर्वत के पश्चिमी भाग पर स्थित ईटों के बने एक भवन का उल्लेख किया है, जिसमें बुद्ध की एक मानवाकार मूर्ति प्रतिष्ठित थी।[1] इसे बुद्ध के काल के बाद का बना हुआ ही माना जा सकता है। इस भवन के पूर्व में भगवान् बुद्ध की चंक्रमण-भूमि थी और उसकी बगल में करीब १४ फुट ऊँची वह चट्टान थी, जहाँ से देवदत्त ने एक शिला-खण्ड भगवान् बुद्ध पर गिराया था।[2] विनय-पिटक में हम देखते हैं कि एक बार जब भगवान् बुद्ध गृध्रकूट पर्वत के नीचे टहल रहे थे तो उन्हें जान से मारने के लिये देवदत्त ने गृध्रकूट पर्वत पर चढ़कर एक बड़ी शिला फेंकी थी, जो दो पर्वत-कूटों से टकरा कर रुक गई थी, परन्तु एक पत्थर का टुकड़ा भगवान् के पैर में लग गया था और उससे रुधिर बहने लगा था।[3] चीनी यात्री उसी चट्टान की स्थिति का परिचय दे रहा है, जहाँ से खड़े होकर देवदत्त ने अपना कुकृत्य किया था। यूआन् चुआङ ने एक विशाल गुफा का परिचय दिया है, जो गृध्रकूट पर्वत के नीचे दक्षिण की ओर स्थित थी, जहाँ भगवान् समाधिस्थ होकर बैठते थे। आनन्द और सारिपुत्र के ध्यान करने की गुफाओं का भी उल्लेख चीनी यात्री ने किया है। हम पहले पालि विवरणों के आधार पर देख ही चुके हैं कि भगवान्

---

१. उपर्युक्त पद-संकेत २ के समान।

२. उपर्युक्त के समान।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४८५।

बुद्ध अपने प्रधान शिष्यों को साथ लेकर कभी-कभी गृध्रकूट पर्वत पर निवास किया करते थे।

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में सूकरखता नामक एक गुफा गिज्झकूट पब्बत में अवस्थित थी। आचार्य बुद्धघोष ने हमें बताया है कि सूकरखता एक गुफा थी, जिसे काश्यप बुद्ध के समय में बनवाया गया था। कालान्तर में यह धरती के अन्दर दब गई। एक शूकर ने इसके समीप धरती खोदी और वर्षा होने पर गुफा साफ दिखाई देने लगी। एक वनवासी (वनचरक) आदमी ने इसे साफ किया और दरवाजे आदि लगाकर उसके चारों ओर एक बाड़ा बाँध दिया। बाद में उसने इसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को अर्पित कर दिया। चूँकि एक शूकर के द्वारा धरती खोदने के कारण इस गुफा का पता लगा था, इसलिये इसका नाम सूकरखता पड़ा।[१] मज्झिम-निकाय के दीघनख-सुत्तन्त का उपदेश भगवान् ने गिज्झकूट की सूकरखता गुफा में विहार करते समय ही दिया था। संयुत्त-निकाय के सूकरखता-सुत्त में हम उन्हें इसी गुफा में धर्मसेनापति सारिपुत्र के साथ विहरते और धार्मिक संलाप करते देखते हैं।[२]

वेभार पब्बत (जिसे महाभारत[३] में वैहार और जैन अभिलेखों में वैभार और व्यवहार कह कर पुकारा गया है तथा विविधतीर्थकल्प[४] में जिसका नाम वैभार ही है) आज भी वैभार गिरि के रूप में अपने नाम और रूप को सुरक्षित रक्खे हुए है। मज्झिम-निकाय के इसिगिलि-सुत्तन्त में वेभार पब्बत का उल्लेख है। विनय-पिटक के वर्णनानुसार वेभार पब्बत के पास ही सत्तपण्णि गुहा (सप्तपर्णी गुफा) थी।[५] यही बात महापरिनिब्बाण-सुत्त में भी कही गई है।[६] महावंस में सत्तपण्णि गुहा को स्पष्टतः वेभार पब्बत के पार्श्व में (वेभारपस्से) स्थित गुफा

---

१. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २४९।
२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ७३०।
३. १।११३।२७; २।२१।३४; ३।८४।१०४।
४. पृष्ठ २२।
५. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३९६।
६. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३४।

बताया गया है और कहा गया है कि यहीं प्रथम धर्मसंगीति की कार्यवाही स्थविर महाकाश्यप की अध्यक्षता में हुई थी।[1] पालि विवरणों में यह स्पष्टतः नहीं कहा गया है कि सप्तपर्णी गुफा वेभार पर्वत के किस ओर थी। परन्तु महावस्तु[2] में इसे स्पष्टतः इस पर्वत के उत्तरी भाग में बताया गया है और, जैसा हम अभी देखेंगे, चीनी यात्रियों के वर्णनों मे भी यही ज्ञात होता है। कनिंघम ने सत्तपण्णि गुहा को वर्तमान सोन भंडार गुफा से मिलाया था,[3] जो ठीक नहीं माना जा सकता। यह गुफा वैभार गिरि की दक्षिणी तलहटी में गरम स्रोतों के कुण्ड से करीब एक मील दक्षिण में और जरासन्ध की बैठक से भी करीब इतनी ही दूर दक्षिण में, स्थित है। यूआन् चुआङ ने एक विशाल गुफा को वेणुवन (जिसकी स्थिति के सम्बन्ध में हम आगे कहेंगे) के करीब ५ या ६ 'ली' (एक मील या उस से कुछ कम) दक्षिण-पश्चिम में, दक्षिणागिरि के उत्तरी भाग में, अवस्थित देखा था, जिसे उसने आर्य महाकाश्यप की अध्यक्षता में हुई प्रथम संगीति का स्थान माना था।[4] तिब्बती परम्परा में प्रथम संगीति की बैठक के स्थान को न्यग्रोध गुहा भी बताया गया है। न्यग्रोध गुहा को कनिंघम ने सत्तपण्णि गुहा का ही तिब्बती रूप में प्रयुक्त नाम बताया है। फा-ह्यान ने पिप्पल या पीपल-गुहा से पाँच या छह "ली' पश्चिम में पहाड़ के उत्तरी भाग की छाया में प्रथम संगीति के स्थान 'सतपर्ण' गुहा को देखा था।[5] पिप्पल या पीपल गुहा की स्थिति के सम्बन्ध में, जिसके समान पिप्पलि (पिप्फलि) गुहा का भी वर्णन हमें पालि परम्परा में मिलता है, हम अलग से आगे विवरण देंगे। सत्तपण्णि गुहा की स्थिति के सम्बन्ध में यहाँ हम कुछ और मतों का उल्लेख कर दें। डा० स्टीन ने सत्तपण्णि गुहा को वैभारगिरि के उत्तरी भाग में मानते हुए उसे आधुनिक 'मथरणी' नामक गुफा से

---

१. महावंस ३।१८-१९।

२. जिल्द पहली, पृष्ठ ७०।

३. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५३१।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५९-१६०।

५. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५२।

मिलाया था, जो जैन आदिनाथ के मन्दिर के पास स्थित है। महावस्तु और चीनी यात्रियों के विवरणानुसार यह ठीक है और 'सयरणी' शब्द में 'सत्तपण्णि' की पूरी ध्वनि भी विद्यमान है। सर जोन्ह मार्शल ने सत्तपण्णि गुहा को एक 'मण्डप' मानते हुए (इस परिच्छेद के आरंभ में हम 'महावंश' के साक्ष्य पर देख ही चुके हैं कि राजा अजातशत्रु ने सत्तपण्णि गुहा में एक मण्डप बनवाया था) उसकी स्थिति को वैभार गिरि के उत्तर की ओर 'जरासन्ध की बैठक' से करीब डेढ़ मील पश्चिम में माना है।[1] कुछ भी हो, हमें सत्तपण्णि गुहा की स्थिति को वैभार गिरि के उत्तरी ढलान पर ही कहीं मानना पड़ेगा।

इसिगिलि (महाभारत में जिसे ऋषिगिरि कह कर पुकारा गया है और जिसका ठीक संस्कृत प्रतिरूप भी यही है) पब्बत का उल्लेख मज्झिम-निकाय के इसिगिलि-सुत्तन्त में है और वहाँ इसके नामकरण का कारण भगवान् ने स्वयं इस प्रकार बताया है, "पूर्व काल में इस इसिगिलि (ऋषिगिरि) पर्वत पर ५०० प्रत्येक-बुद्ध रहते थे। वे इस पर्वत में प्रवेश करते दिखाई देते थे, परन्तु प्रविष्ट हो जाने पर फिर नहीं दिखाई पड़ते थे। यह देख कर मनुष्य कहते, "यह पर्वत इन ऋषियों (इसि) को निगलता है (गिलि)।" इस प्रकार इस पर्वत का नाम "इसिगिलि" (इसियों-ऋषियों को निगलने वाला) पड़ा।" आचार्य बुद्धघोष ने समन्तपासादिका[2] में 'इसिगिलि' नाम की व्याख्या इस बुद्ध-वचन के आधार पर ही की है। इसिगिलि पब्बत के बगल में स्थित एक चट्टान कालसिला (कालशिला) कहलाती थी। काले रंग की होने के कारण इस चट्टान का यह नाम पड़ा था।[3] महापरि-निब्बाण-सुत्त[4] तथा विनय-पिटक[5] में इसिगिलि के पार्श्व में स्थित काल-

---

१. डा० स्टीन और सर जोन्ह मार्शल के मतों के विवरणों के लिए देखिये आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, न्यू इम्पीरियल सीरीज, जिल्द इक्यावनवीं, (कलकत्ता, १९३१), पृष्ठ १२७-१२९।

२. जिल्द पहली, पृष्ठ ३७।

३. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६३।

४. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३४।

५. (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३९६।

शिला का उल्लेख है। मज्झिम-निकाय के चूलदुक्खक्खन्ध-सुत्तन्त में हमें यह सूचना मिलती है कि इसिगिलि पब्बत की कालसिला पर निगण्ठ (निर्ग्रन्थ) साधु कड़ी तपस्या करते थे। इसिगिलि पब्बत की काल सिला पर ही भगवान् बुद्ध के परम तपस्वी और स्वस्थ शिष्य बक्कुल ने भिक्षु-संघ के बीच बैठे-बैठे परिनिर्वाण प्राप्त किया था, ऐसा हमें मज्झिम-निकाय के बक्कुल-सुत्तन्त से विदित होता है। बीमार भिक्षु वक्कलि ने इसिगिलि की कालसिला पर जाकर ही प्राण छोड़े थे या आत्महत्या करली थी, ऐसा संयुत्त-निकाय के वक्कलि-सुत्त का साक्ष्य है। बीमार भिक्षु गोधिक ने भी इसिगिलि की कालसिला पर आत्महत्या की, ऐसा संयुत्त-निकाय के गोधिक सुत्त में कहा गया है। फा-ह्यान ने एक लम्बी वर्गाकार वाली चट्टान देखी थी जिस पर एक बुद्धकालीन भिक्षु की आत्महत्या का वर्णन किया है[1]। निश्चयतः यह पालि की काल-सिला ही थी। इसिगिलि-सुत्तन्त (मज्झिम० ३।२।६) का उपदेश भगवान् ने इसिगिलि पर्वत पर विहार करते हुए ही दिया था। कनिंघम ने महाभारत के ऋषिगिरि की स्थिति को पुराने राजगृह की पूर्वी ओर से रत्नगिरि तक जाने वाले मार्ग के बीच में कहीं माना है।[2] उसे ही हम पालि परम्परा के इसिगिलि की स्थिति भी मान सकते हैं।

वेपुल्ल पब्बत को इतिवुत्तक के वेपुल्ल-पब्बत सुत्त में गिज्झकूट के उत्तर में अवस्थित बताया गया है। "सो खो पनायं अक्खातो वेपुल्लो पब्बतो महा। उत्तरो गिज्झकूटस्स मगधानं गिरिब्बजे।"[3] संयुक्त-निकाय के वेपुल्ल-पब्बत सुत्त में यह कहा गया है कि इस पर्वत का प्राचीन काल में नाम पाचीनवंस (प्राचीन वंश) पर्वत था। "भिक्षुओ! बहुत ही पूर्व काल में इस वेपुल्ल पर्वत का नाम पाचीनवंस पड़ा था।"[4] चेदि जनपद के विवरण में हम आगे देखेंगे कि वहाँ बुद्ध के जीवन-काल में पाचीनवंस दाय नामक वन था। उससे इसे भिन्न

---

१. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५२-५३।

२. कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५३१।

३. इतिवुत्तक, पृष्ठ १६ (महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

४. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ २७४।

समझना चाहिये। संयुत्त-निकाय के उपर्युक्त सुत्त में ही हमें यह सूचना मिलती है कि वेपुल्ल पब्बत के प्राचीन काल में वंकक पर्वत और सुपस्स पर्वत भी अन्य नाम थे।[1] "राजगृह के पहाड़ों में विपुल सबसे श्रेष्ठ है" ऐसा संयुत्त-निकाय का उद्धरण मिलिन्दपञ्हो में दिया गया है।[2] यूआन् चुआङ ने विपुल (पि-पु-लो) पर्वत को प्राचीन राजगृह (गिरिव्रज) के उत्तरी दरवाजे के पश्चिम में देखा था।[3] संभवतः यही हमारा पालि परम्परा का वेपुल्ल पब्बत है। विपुल पर्वत के ऊपर एक बौद्ध चैत्य का उल्लेख यूआन् चुआङ ने किया है जो उस स्थान को अंकित करता था जहाँ एक बार भगवान बुद्ध ने उपदेश दिया था। यूआन् चुआङ के समय में कुछ दिगम्बर जैन साधु यहाँ निवास करते हुए तपस्या करते थे।[4] यूआन् चुआङ के द्वारा वर्णित विपुल पर्वत के ऊपर बौद्ध चैत्य की पहचान पर कनिंघम ने महाभारत के चैत्यक पर्वत से इसे मिलाने का प्रस्ताव किया है।[5] यदि यह ठीक हो तो आज का विपुल गिरि ही महाभारत का चैत्यक, पालि का वेपुल्ल और यूआन् चुआङ का 'विपुल' पर्वत है।

उपर्युक्त पाँच पहाड़ों के अतिरिक्त पालि साहित्य में वेदियक पब्बत का उल्लेख है, जो राजगृह से पूर्व अम्बसण्ड नामक ग्राम के उत्तर में स्थित था। वेदी के आकार की नीली चट्टानों से परिवृत होने के कारण इस पर्वत का यह नाम पड़ा था।[6] इस पर्वत में एक प्रसिद्ध गुफा थी जिसका नाम 'इन्दसाल गुहा' था। भगवान् यहाँ एक बार गये थे और दीघ-निकाय के सक्कपञ्ह-सुत्त का उपदेश दिया था। भगवान्

---

१. वहीं, पृष्ठ २७५।

२. मिलिन्द प्रश्न (हिन्दी अनुवाद, द्वितीय संस्करण), पृष्ठ २९५; मिलाइये संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ६६।

३. वाटर्स : औन् युआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५३।

४. वहीं, पृष्ठ १५४।

५. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५३१-५३२।

६. सुमंगलविलासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६९७।

बुद्ध के शिष्य स्थविर चूलक को भी हम इस गुफा में ध्यान करते देखते हैं।[1] आचार्य बुद्धघोष ने हमें बताया है कि यह गुफा दो लटकती हुई चट्टानों के बीच में थी और इस गुफा के प्रवेश-द्वार पर एक इन्द्रशाल का पेड़ खड़ा था, जिसके कारण इस गुफा का यह नाम पड़ा था।[2] यूआन् चुआङ ने राजगृह के समीप इन्द्रशाल गुहा को देखा था।[3] फा-ह्यान ने भी एक अनाथ के समान 'अलग स्थित' पर्वत का उल्लेख किया है, जिसे उसने नालन्दा और राजगृह दोनों से एक योजन की दूरी पर बताया है।[4] इसी विवरण के आधार पर कनिंघम ने फा-ह्यान के इस 'अलग स्थित' पर्वत को गिर्यक् से मिलाया है, जिसकी दूरी बड़गाँव (नालन्दा) और राजगिरि (राजगृह) दोनों से मिल जाती है, अर्थात् प्रायः सात या आठ मील (करीब एक योजन) ही है।[5] कनिंघम का कहना है कि जिस पर्वत के अन्दर इन्द्रशाल गुहा को यूआन् चुआङ ने देखा था, वह फा-ह्यान के द्वारा वर्णित 'अलग स्थित' पर्वत ही था, जो दोनों आज गिर्यक् के रूप में विद्यमान हैं।[6] वाटर्स ने कनिंघम की इस दुहरी पहचान के सम्बन्ध में सन्देह प्रकट किया है, परन्तु यूआन् चुआङ की इन्द्रशाल गुहा को विदेह में स्थित होने का सुझाव देकर[7] उन्होंने स्वयं बड़ी अहेतुक बात कही है। हम साधारणतः कनिंघम की पहचान को ठीक मान सकते है। स्वयं गिर्यक् (गिरि एक) पर्वत के नाम में यह ध्वनि विद्यमान है कि वह एक अलग स्थित पर्वत है, जैसा कि वह वास्तव में है भी। अतः कनिंघम का फा-ह्यान के 'अलग स्थित' पर्वत

---

१. देखिये थेरगाथा, पृष्ठ ७८ (भिक्षु धर्मरत्न का हिन्दी अनुवाद)।

२. सुमंगलविलासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६९७।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७३।

४. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४८-४९; मिलाइये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५३७।

५. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५३७-५४१।

६. उपर्युक्त के समान।

७. औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७३-१७४

को गिर्यक् मानना हमें ठीक जान पड़ता है। चूंकि पालि विवरण के अनुसार इन्दसाल गुहा वेदियक पर्वत में थी, इसलिये वेदियक पर्वत ही आधुनिक गिर्यक् है, इतना केवल हम जोड़ देना और चाहेंगे। इन्द्रशाल गुहा की ठीक स्थिति का पता लगाते हुए कनिंघम ने उसे वर्तमान गिद्धद्वार बताया है,[1] जो ठीक जान पड़ता है। यह गुफा गिर्यक् पर्वत के दक्षिणी भाग में स्थित है।

सप्पसोण्डिक पब्भार (सर्पशौण्डिक प्राग्भार) एक अन्य झुके हुए आकार का पर्वत था जो राजगृह के समीप स्थित था। सर्प के फण के आकार का यह पर्वत था, इसलिये इसका यह नाम पड़ा था। आचार्य बुद्धघोष ने सारत्थप्पकासिनी[2] में इसी बात का उल्लेख करते हुए कहा है, "सप्पसोण्डिकपब्भारे ति सप्पफणसदिसताय एवं लद्धनामे पब्भारे।" यह पर्वत सीतवन में स्थित था।

सीतवन एक श्मशान-वन था। "सीतवने ति एवं नामके सुसानवने।"[3] हम पहले देख चुके हैं कि एक श्मशान के समीप ही बिम्बिसार (या फा-ह्यान के द्वारा निर्दिष्ट परम्परा के अनुसार अजातशत्रु) ने नवीन राजगृह को बसाया था। वह श्मशान-वन (सुसान-वन) 'सीतवन' ही था। कई अवसरों पर हम भगवान् को सीतवन में विहार करते देखते हैं। जिस समय आयुष्मान् सोण साधना में अत्यधिक परिश्रम करते हुए सीतवन में विहार कर रहे थे, तो भगवान् उनके सामने प्रकट हुए और मध्यम मार्ग पर चलने का उपदेश दिया।[4] अनाथपिंडिक प्रथम बार भगवान् के दर्शनार्थ राजगृह के सीतवन में ही गया था। वह काफी प्रातः वहाँ पहुँच गया था और उस समय भगवान् उस श्मशान-वन में टहल रहे थे।[5] कई साधक भिक्षु-भिक्षुणियों को हम समय-समय पर सीतवन में विहार करते देखते हैं। संयुत्त-निकाय के उपसेन-सुत्त में हम देखते हैं कि धर्मसेनापति सारिपुत्र और स्थविर उपसेन सीतवन में सप्पसोण्डिक पब्भार के पास धार्मिक संलाप करते घूम

---

१. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५४१।
२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३६८।
३. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३६९।
४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २०१।
५. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४५९।

रहे हैं। अचानक स्थविर उपसेन को साँप काट जाता है, जिससे उनका शरीर मुट्ठी भर भुस्से की तरह बिखर जाता है। दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त[1] तथा विनय-पिटक[2] में भी सीतवन और उसके सप्पसोण्डिक पब्भार का उल्लेख है। चीनी यात्री फा-ह्यान ने करण्ड-वन से २ या ३ 'ली' उत्तर में एक श्मशान को देखा था।[3] सम्भवतः यह सीतवन की स्थिति पर ही था। आज राजगिर कस्बे के पश्चिम में एक पुराना श्मशान है। कदाचित् उसे बुद्धकालीन 'सीतवन' माना जा सकता है।

राजगृह के इन्दकूट (इन्द्रकूट) नामक पर्वत का उल्लेख संयुत्त-निकाय के इन्दक-सुत्त में है। यहाँ भगवान् बुद्ध गये थे और इन्दक यक्ष से उनका संलाप हुआ था। इन्द (इन्द्र) नामक यक्ष के नाम पर इसका यह नाम पड़ा, ऐसा सारत्थप्पकासिनी[4] में कहा गया है।

राजगृह के समीप स्थित पटिभान कूट का उल्लेख संयुत्त-निकाय के पपात-सुत्त में है। यहाँ एक भयंकर प्रपात था। संयुत्त-निकाय के उपर्युक्त सुत्त में हम भगवान् को गृध्रकूट पर्वत से प्रतिभान कूट पर दिन के विश्राम के लिये जाते देखते हैं। एक भिक्षु ने प्रतिभान कूट पर भयंकर प्रपात को देखकर भगवान् से कहा, "भन्ते! यह एक बड़ा भयानक प्रपात है। भन्ते! इस भयंकर प्रपात से भी बढ़कर क्या कोई दूसरा बड़ा भयंकर प्रपात है?"[5]

चोरपपात (चोर प्रपात) एक भयकर प्रपात था, जिसका उल्लेख महापरिनिब्बाण-सुत्त[6] तथा विनय-पिटक[7] में है। जैसा इसके नाम से स्पष्ट है, और धम्मपदट्ठकथा में भी कहा गया है, चोर यहाँ से नीचे गिरा दिये जाते थे। यह

---

१. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३४।
२. (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३९६।
३. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५१।
४. जिल्द पहली, पृष्ठ ३००।
५. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ८१९।
६. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३४।
७. (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३९६।

एक पहाड़ था, जिसके एक ओर चढ़ते का मार्ग था और दूसरी ओर किनारा कटा हुआ था। वहीं से मृत्यु-दंड-प्राप्त चोर नीचे गिरा दिये जाते थे।

राजगृह के समीप स्थित गौतम कन्दरा और कपोत कन्दरा का उल्लेख विनय-पिटक[1] में है। ये दोनों प्राकृतिक गुफाएँ थीं। गौतम कन्दरा सम्भवतः गौतम न्यग्रोध के समीप थी। गौतम न्यग्रोध के समीप अपने विहार करने की बात भगवान् बुद्ध ने महापरिनिब्बाण-सुत्त में कही है।[2] तिब्बती परम्परा की न्यग्रोध गुफा वस्तुतः पालि परम्परा के गौतम न्यग्रोध के समीप की स्थिति को ही प्रकट करती है, यद्यपि गलत रूप से उसे वहाँ (तिब्बती परम्परा में) प्रथम संगीति का स्थान मान लिया गया है, या उसे उसके साथ एकाकार कर दिया गया है।[3] कपोत कन्दरा कबूतरों का प्रिय स्थान थी।[4] इसी के पास बनवाया गया विहार भी "कपोत कन्दरा" कहलाता था। एक बार हम आयुष्मान् सारिपुत्र और महा-मौद्गल्यायन को कपोत कन्दरा में विहार करते देखते हैं।[5] पालि परम्परा की कपोत कन्दरा वही स्थान मालूम पड़ती है, जिसका उल्लेख 'कपोत' या 'कपोतक' (क-लन्) विहार के रूप में यूआन् चुआङ ने किया है और उसे इन्द्रशाल गुहा से १५० या १६० 'ली' अर्थात् करीब २५ या २७ मील उत्तर-पूर्व में बताया है।[6]

---

१. उपर्युक्त के समान।

२. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३४।

३. देखिये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५३१; वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १६०।

४. उदानट्ठकथा, पृष्ठ २४४।

५. उदान, पृष्ठ ५४ (हिन्दी अनुवाद)।

६. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७५; डा० लाहा ने कपोत कन्दरा से इन्द्रशाल गुहा की दूरी यूआन् चुआङ के आधार पर ९ या १० मील बताई है। हिस्टोरियल ज्योग्रेफी ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ २५; पता नहीं १५० या १६० 'ली' को उन्होंने ९ या १० मील किस आधार पर मान लिया है?

राजगृह से बाहर 'तिन्दुक कन्दरा' नामक एक अन्य गुफा थी। यहाँ भिक्षुओं के लिये निवास आदि का प्रबन्ध था।[1]

वैभारगिरि के नीचे गरम पानी के सोते (तपोदा) 'तप्तोदका' होने के कारण ही 'तपोदा' कहलाते थे, ऐसा आचार्य बुद्धघोष ने कहा है।[2] मज्झिम-निकाय के महाकच्चायन-भद्देकरत्त-सुत्तन्त में हम आयुष्मान् समिद्धि को तपोदा मे स्नान करते देखते हैं। तपोदा (गर्म कुण्ड) के समीप ही तपोदाराम नामक विहार था, जहाँ हम भगवान् को कई बार विहार करते देखते हैं। मज्झिम-निकाय के महा-कच्चायन-भद्देकरत्त-सुत्त तथा संयुत्त-निकाय के समिद्धि-सुत्त का उपदेश यहीं दिया गया था। महापरिनिब्बाण-सुत्त में भी भगवान् ने अपने एक बार यहाँ विहार करने का उल्लेख किया है।[3] वैभारगिरि के नीचे आज भी बुद्ध-काल के समान गरम पानी के सोते (तपोदा) पाये जाते है। इनमें सबसे बड़े सोते का नाम सातधारा है। यूआन् चुआङ ने विपुल पर्वत पर भी गर्म पानी के सोतों का उल्लेख किया है,[4] जो भी ठीक है। इस पर्वत पर भी उस समय के समान आज भी गर्म पानी के सोते पाये जाते हैं।

गृध्रकूट पर्वत के नीचे 'सुमागधा' नामक एक सुरम्य पुष्करिणी थी। इस पुष्करिणी के किनारे पर 'मोर निवाप' नामक स्थान था और उसके समीप ही 'उदुम्बरिका' नामक परिब्राजकाराम था। दीघ-निकाय के उदुम्बरिक-सीहनाद-सुत्त में हम भगवान् बुद्ध को गृध्रकूट पर्वत से उतर कर सुमागधा पुष्करिणी के

---

१. विनय-पिटक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७६; जिल्द तीसरी, पृष्ठ १५९ (पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण)। विनय-पिटक के हिन्दी अनुवाद की नाम-अनुक्रमणी में इस कन्दरा का उल्लेख नहीं है और न पुस्तक के अन्दर ही मैं इसे अभी तक खोज सका हूँ।

२. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३८; मिलाइये पपंचसूदनी, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ४-५।

३. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३४।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५४।

किनारे पर 'मोर निवाप' के खुले स्थान में टहलते देखते हैं।[१] संयुत्त-निकाय के चिन्ता-सुत्त में भी सुमागधा पुष्करिणी का उल्लेख है। जैसा हम अभी कह चुके हैं, सुमागधा पुष्करिणी के तीर पर ही मोरनिवाप नामक खुला मैदान था। यह स्थान 'मोर-निवाप' इसलिये कहलाता था, क्योंकि यहाँ मोरों को भोजन दिया जाता था और वे स्वच्छन्द रूप से यहाँ विचरते थे।[२] मोरनिवाप में ही, गृध्रकूट पर्वत और राजगृह के बीच में, सुमागधा के तीर से कुछ ही दूर, उदुम्बरिका-परिब्राजकाराम था जहाँ न्यग्रोध नामक परिब्राजक तीन हजार परिब्राजकों की बड़ी मंडली के साथ रहता था। इस उदुम्बरिका परिब्राजकाराम में ही भगवान् के द्वारा दीघ-निकाय के उदुम्बरिक-सीहनाद-सुत्त का उपदेश दिया गया था। मज्झिम-निकाय के महासकुलुदायि-सुत्तन्त से पता लगता है कि उस समय के प्रसिद्ध-प्रसिद्ध परिब्राजक अक्सर उदुम्बरिका परिब्राजकाराम में आया करते थे और ठहरा करते थे। एक ऐसे ही अवसर पर जब वहाँ काफी प्रसिद्ध परिब्राजक ठहरे हुए थे, भगवान् वहाँ गये थे और मज्झिम-निकाय के महासुकुलुदायि-सुत्तन्त का उपदेश उन्हें दिया था। उदुम्बरिका नामक देवी के द्वारा यह बनवाया गया था, इसलिये इसका नाम उदुम्बरिका परिब्राजकाराम पड़ा था।[३]

एक अन्य परिब्राजकाराम भी राजगृह के समीप था। यह सप्पिनी या सप्पिनिका नदी (आधुनिक पंचान नदी) के तट पर स्थित था। यहाँ अन्नभार नामक एक प्रसिद्ध परिब्राजक रहता था। उसके साथ वरधर और सुकुलुदायि नामक परिब्राजक भी रहते थे। एक बार भगवान् ने परिब्राजकों के इस आश्रम में जाकर चार धम्मपदों का उपदेश दिया था।[४] एक अन्य अवसर पर उन्होंने उन्हें ब्राह्मण-सत्यों (ब्राह्मण-सच्चानि) पर भी उपदेश दिया था।[५]

---

१. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २२७।

२. सुमंगलविलासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ८३५; पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६९४।

३. सुमंगलविलासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ८३२।

४. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २९-३१।

५. वहीं, पृष्ठ १७६-१७७।

'मणिमालक' नामक एक चैत्य भी राजगृह में था। यहाँ मणिभद्र नामक यक्ष निवास करता था। भगवान् बुद्ध यहाँ एक बार गये थे और मणिभद्र यक्ष से उनका संलाप हुआ था, जो संयुत्त-निकाय के मणिभद्द-सुत्त में निहित है। यह पर्याप्त रूप से सिद्ध हो चुका है कि वर्तमान मणियार मठ ही बुद्धकालीन 'मणिमालक' चैत्य है।

ऊपर हम राजगृह और उसके चारों ओर स्थित पर्वतों या पहाड़ियो, कन्दराओं, पुष्करिणियो और प्रासंगिक रूप से उनसे सम्बन्धित कुछ अन्य स्थानों का परिचय दे चुके हैं। वस्तुतः राजगृह भगवान् बुद्ध के जीवन-कार्य से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। भगवान् ने बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद के अपने तीसरे, चौथे, सत्रहवें और बीसवें वर्षावास राजगृह में किये। एक बार तो निगण्ठ नाटपुत्त, मक्खलि गोसाल आदि आचार्यों ने भी बुद्ध के साथ-साथ राजगृह में वर्षावास किया, ऐसा साक्ष्य मज्झिम-निकाय के महासकुलुदायि-सुत्तन्त में है।

इतनी अधिक बार भगवान् बुद्ध विभिन्न स्थानों से राजगृह आये और यहाँ से अन्य स्थानों को गये कि उनकी गणना करना या विस्तृत विवरण उपस्थित करना कठिन है। अपने महाभिनिष्क्रमण के बाद ही शाक्य-कुमार कपिलवस्तु से अनूपिया होते हुए राजगृह आये थे और यहाँ के पाण्डव पर्वत पर ठहरे थे जहाँ बिम्बिसार उनसे मिलने गया था। इस घटना का उल्लेख हम भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के भौगोलिक विवरण को प्रस्तुत करते समय कर चुके हैं। बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद भगवान् उरुवेला में तीन जटिल साधु-बन्धुओं को बुद्ध-धर्म में प्रव्रजित करने के बाद गया होते हुए राजगृह की ओर पधारे और यहाँ के लट्ठिवनुय्यान (लट्ठिवन उद्यान) के सुप्रतिष्ठ (सुप्पतिट्ठ) नामक चैत्य में ठहरे। "तत्र सुदं भगवा राजगहे विहरति लट्ठिवनुय्याने सुप्पतिट्ठे चेतिये।"[१] यह लट्ठिवनुय्यान (यष्टिवन उद्यान) राजगृह के समीप, राजगृह और गया के मार्ग में, स्थित था। इसी के अन्दर सुप्पतिट्ठ चेतिय (सुप्रतिष्ठ चैत्य) था। जैसा लट्ठिवन (लट्ठिवन—यष्टिवन) नाम से स्पष्ट है, यह एक बाँसों का वन था। इसमें, जैसा राजगृह के आसपास प्राय: आज भी चारों ओर पाये जाते हैं,

---

१. महावग्गो (विनय पिटकं), पृष्ठ ५४ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

ताड़ के वृक्ष भी काफी रहे होंगे। इसीलिये आचार्य बुद्धघोष ने इसे 'तालुय्यान' अर्थात् ताड़ वृक्षों का उद्यान भी कहा है।[1] परन्तु अधिकता तो बाँसों के वृक्षों की ही थी, जैसा आज भी वहाँ देखा जा सकता है। यूआन् चुआङ ने "बुद्धवन" पर्वत (वर्तमान बुधाइन) से ३० 'ली' (करीब ५ मील) पूर्व में चलकर यष्टिवन के दर्शन किये थे, जिसे उसने बाँसों के घने वन के रूप में पाया था।[2] यह हमारा पालि परम्परा का लट्ठिवनुय्यान ही था। पालि परम्परा के लट्ठिवनुय्यान तथा यूआन् चुआङ के यष्टिवन जो दोनों एक हैं, की पहचान आधुनिक राजगिरि से करीब १३ मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित जेठियन नामक गाँव के पास वन के रूप में की गई है,[3] जो पूर्णतः विनिश्चित कही जा सकती है। यह वन आज वैभार गिरि और सोनगिरि के बीच, सोनभण्डार की गुफाओं से दक्षिण-पश्चिम दिशा में, स्थित है। यष्टिवन के १० 'ली' (करीब १$\frac{2}{3}$ मील) दक्षिण-पश्चिम में यूआन् चुआङ ने दो गर्म सोते देखे थे[4], जिन्हें कनिंघम ने आधुनिक तपोवन (तप्त जल) नामक स्थान के पास गर्म सोते माना है, जो आज भी जेठियन से दो मील दक्षिण में विद्यमान हैं।[5] आजकल इन्हें 'तप्पो' भी कहा जाता है।

विनय-पिटक के वर्णनानुसार राजा बिम्बिसार लट्ठिवन उद्यान में भगवान् से मिलने आया और दूसरे दिन उसने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को भोजन से संतृप्त कर अपना वेणुवन उद्यान उन्हें अर्पित कर दिया।[6] यह वेणुवन उद्यान बाद में

---

१. समन्तपासादिका, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ९७२।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १४६; कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५२८।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९५, पद-संकेत ४; मिलाइये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५२८-५२९;

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १४६; कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५२८।

५. कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५२८-५२९।

६. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९५-९८।

राजगृह और सम्पूर्ण मगध के लिये प्रचार-केन्द्र बना और इस दृष्टि से उसका स्थान केवल श्रावस्ती के जेतवनाराम के बाद है जो बुद्ध-काल में सद्धर्म का सबसे बड़ा केन्द्र था। वेणुवन उद्यान की स्थिति के सम्बन्ध में विनय-पिटक में यह कहा गया है कि यह स्थान, "न गाँव से बहुत दूर है, न बहुत समीप, एकान्तवास के योग्य है।"[१] इससे प्रकट होता है कि यह वन 'अन्तोनगर' के बाहर था। फा-ह्यान ने वेणुवन उद्यान को, जिसे उसने करण्ड-वेणुवन कह कर पुकारा है, गिरिव्रज या प्राचीन राजगृह की उत्तरी दीवार से करीब ३०० कदम पश्चिम की दिशा में देखा था।[२] इसी से मिलती जुलती स्थिति यूआन् चुआङ ने वेणुवन की बताई है। उसने इसे गिरिव्रज या प्राचीन राजगृह की उत्तरी दीवार से १ 'ली' (करीब २९३ गज) की दूरी पर स्थित देखा था।[३] जैसा हम पहले देख चुके है, इसी चीनी यात्री के वर्णनानुसार 'नवीन राजगृह' की स्थापना वेणुवन की उत्तर-पूर्व दिशा में कुछ दूर पर की गई थी।[४] इसका अर्थ यह है कि 'नवीन राजगृह' के दक्षिण-पश्चिम में कुछ दूर पर यह उद्यान स्थित था। अतः वेणुवन उद्यान का गिरिव्रज या प्राचीन राजगृह के उत्तरी दरवाजे के अनतिदूर पश्चिम दिशा में और 'नवीन राजगृह' के दक्षिण-पश्चिम में कुछ दूर पर होना निश्चित है। इस स्थिति पर आज जंगल है। आधुनिक डाक बँगले के २०० गज दक्षिण में स्थित तालाब को यदि हम यूआन् चुआङ का करण्ड ह्रद मान सकें तो इस तालाब के २०० कदम दक्षिण की ओर के स्थान को हमें वेणुवन की स्थिति मानना पड़ेगा, क्योंकि करण्ड ह्रद को इस चीनी यात्री ने वेणुवन विहार के २०० कदम उत्तर दिशा में देखा था।[५]

---

१. वहीं, पृष्ठ ९७-९८।

२. लेग्जे : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ८४-८५; गाइल्स: ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५१।

३. देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५८।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १६२।

५. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १६२।

'वेणुवन' के साथ 'कलन्दक निवाप' शब्द लगा कर अक्सर 'वेणुवन कलन्दक निवाप' के रूप में पूरे नाम का प्रयोग पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में किया गया है। इसके पीछे एक इतिहास या ठीक कहें तो अनुश्रुति निहित है, जो इस प्रकार है। मगध का एक राजा प्राचीन काल में इस उद्यान में शिकार खेलने गया और थकने के बाद शराब पीकर सो गया। उसके मुख से शराब की दुर्गन्ध को सूँघकर एक सर्प उसके पास आ गया और उसे काटना ही चाहता था कि एक वन-देवता ने वृक्ष पर गिलहरी का रूप धारण कर जोर से शब्द करना शुरू कर दिया। राजा जाग पड़ा और उसने देखा कि एक गिलहरी ने उसकी जान बचाई है। उसी दिन से उसने आदेश दिया कि गिलहरियों (कलन्दक) को वहाँ नित्य चारा (निवाप) दिया जाय। इसीलिये इस स्थान का नाम 'कलन्दक निवाप' पड़ गया और यहाँ निरन्तर गिलहरियों को चारा दिया जाता था और वे निर्भय होकर यहाँ विचरती थीं। इस अनुश्रुति का उल्लेख आचार्य बुद्धघोष ने समन्तपासादिका[1] (विनय-पिटक की अट्ठकथा) और पपंचसूदनी[2] (मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा) में किया है। इसी से मिलती-जुलती अनुश्रुति चीनी और तिब्बती परम्परा में भी पाई जाती है।[3] पालि विवरण में वेणुवन उद्यान को निश्चयतः बिम्बिसार की सम्पत्ति बताया गया है। उसे हम यह संकल्प करते देखते हैं, "इदं खो अम्हाकं वेलुवनं उय्यानं... बुद्धपमुखस्स भिक्खुसंघस्स ददेय्यं ति" (यह हमारा वेणुवन...क्यों न मैं इसे बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को प्रदान करूँ)" और बाद में दान करते समय भी वह कहता है, "एताहं भन्ते वेलुवनं उय्यानं बुद्धपमुखस्स भिक्खुसंघस्स दम्मी ति।"[4] (भन्ते! मैं वेणुवन उद्यान बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को देता हूँ)। यूआन् चुआङ के अनुसार वेणुवन कलन्द या कलन्दक नामक राजगृह के एक धनी व्यक्ति की सम्पत्ति थी, जिसे पहले उसने तीर्थिकों

---

१. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ५७५।

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ १३४।

३. जिसके विवरण के लिये देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५९-१६०।

४. महावग्गो (विनय-पिटकं), पृष्ठ ५९ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

(अन्य सम्प्रदाय वालों) को अर्पित कर दिया था, परन्तु बाद में बुद्ध के प्रभाव में आने पर यक्षों की सहायता से उसे वापिस लेकर बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को अर्पित कर दिया।[1] यह अनुश्रुति काफी उत्तरकालीन मालूम पड़ती है और बुद्ध-काल के सम्बन्ध में प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती।

जैसा हम पहले कह चुके है, वेणुवन कलन्दक निवाप का बुद्ध-धर्म के प्रचार की दृष्टि से बुद्ध-काल में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। धर्मसेनापति सारिपुत्र और महामौद्गल्यायन की उपसम्पदा यहीं हुई थी।[2] स्मृति-विनय आदि छह विनय-नियमों का विधान वेणुवन कलन्दकनिवाप में ही किया गया था।[3] अन्य कई विनय-नियम भी यहाँ प्रज्ञप्त किये गये। वेणुवन कलन्दक निवाप में भगवान् ने कितनी बार निवास किया, इसका विवरण देना कठिन है। दीघ-निकाय के महा-परिनिब्बाण-सुत्त में भगवान् ने वेणुवन कलन्दक निवाप में अपने एक बार विहार करने का उल्लेख किया है (तत्थेव राजगहे विहरामि वेलुवने कलन्दकनिवापे) और उसे 'रमणीय' बताया है (रमणीयो वेलुवने कलन्दकनिवापो)। "वेलुवने कलन्दकनिवापो" कहने से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेणुवन का एक भाग ही कलन्दक निवाप कहलाता था, न कि वेलुवन कलन्दक निवाप में था, जैसा भी कुछ विद्वानों ने कहा है। वेणुवन कलन्दक निवाप में या वेणुवन के कलन्दक निवाप में निवास करते हुए ही भगवान् ने दीघ-निकाय के सिगालोवाद-सुत्त का उपदेश दिया था। सुत्त-निपात के सभिय-सुत्त का भी उपदेश यहीं दिया गया था। इसी प्रकार मज्झिमनिकाय के रथविनीत-सुत्तन्त, चूल-वेदल्ल-सुत्तन्त, अभय राजकुमार-सुत्तन्त, अम्बलट्ठिक-राहुलोवाद-सुत्तन्त, महासकुलुदायि-सुत्तन्त, चूल-सकुलुदायि-सुत्तन्त, भूमिज-सुत्तन्त, धानंजानि-सुत्तन्त, दन्तभूमि-सुत्तन्त, छन्नोवाद-सुत्तन्त तथा पिंड-पात-पारिसुद्धि-सुत्तन्त यहीं उपदिष्ट किये गये थे। संयुत्त-निकाय के जो अनेक सुत्त वेणुवन कलन्दक-निवाप में उपदिष्ट किये गये या जिनमें इसका उल्लेख है,

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५६-१५७।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९८-१००।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३९५-४२८।

उनका परिचय हम प्रथम परिच्छेद में संयुत्त-निकाय के भौगोलिक महत्व का विवेचन करते समय दे चुके हैं और यहाँ पुनरुक्ति करना इष्ट न होगा। इसी प्रकार अंगुत्तर-निकाय तथा अन्य पूर्वकालीन पालि साहित्य में इतनी अधिक बार वेणुवन कलन्दक-निवाप का उल्लेख किया गया है कि उन सबका विवरण देना यहाँ विस्तार-भय से आवश्यक न होगा। अनेक बुद्ध-शिष्यों को भी हम वेणुवन कलन्दक-निवाप में निवास करते देखते हैं। उदाहरणतः भगवान् के महापरि-निर्वाण के बाद हम आनन्द को वेणुवन कलन्दक-निवाप में विहार करते मज्झिम-निकाय के गोपक-मोग्गल्लान-सुत्तन्त में देखते हैं। आयुष्मान् बक्कुल मज्झिम-निकाय के बक्कुल-सुत्तन्त में वेणुवन कलन्दक-निवाप में विहार करते दृष्टिगोचर होते हैं। इसी प्रकार अन्य अनेक उदाहरण भी दिये जा सकते हैं।

राजगृह के प्रसिद्ध वैद्य जीवक का राजगृह के समीप एक आम्रवन था जिसे उसने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को अर्पित किया था[1]। यह आम्रवन उसके घर के समीप (आसन्नतरं) ही था और वेणुवन और गृध्रकूट वहाँ से (उसके घर से) कुछ अधिक दूर (अति दूरं) पड़ते थे। भगवान् बुद्ध ने इस जीवकाम्रवन (जीवकम्बवन) में अपने विहार का उल्लेख दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में किया है। जीवकाम्रवन (जीवकम्बवन) में निवास करते हुए ही भगवान् ने सामञ्ञ फल-सुत्त का उपदेश अजातशत्रु के प्रति दिया था। मज्झिम-निकाय के जीवक-सुत्तन्त का का उपदेश भी यहीं दिया गया था। विनय-पिटक में भी जीवकाम्रवन का उल्लेख है[2] तथा 'थेरीगाथा' से हमें सूचना मिलती है कि सुभा (शुभा) नामक भिक्षुणी जीवकम्बवन में ही रहती थी, इसीलिये वह 'सुभा जीवकम्बवनिका' भी कहलाती थी।[3] सुमंगलविलासिनी में अजातशत्रु के जीवकाम्रवन में जाने का वर्णन करते हुए कहा गया है कि इस वन में पहुँचने के लिये उसे राजगृह के बाहर जाना पड़ा था। 'अन्तोनगर' के पूर्वी दरवाजे से निकल कर वह गृध्रकूट पर्वत की छाया में होता हुआ इस वन में पहुँचा था।[4] इस प्रकार

१. पपंचसूदनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४५-४६।
२. (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३९६।
३. थेरीगाथा, पृष्ठ ३३, ७६ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।
४. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १५०।

जीवकाम्रवन नगर और गिज्झकूट पर्वत के बीच में स्थित था। फा-ह्यान ने जीवकाम्रवन को नगर की उत्तर-पूर्व दिशा में एक विस्तृत मोड़ पर देखा था।[1] जीवकाम्रवन और उसके समीप स्थित जीवक के घर को यूआन् चुआङ ने सातवीं शताब्दी ईसवी में भग्न अवस्था में उस खाई से, जहाँ चीनी परम्परा के अनुसार श्रीगुप्त ने आग जलाकर भगवान् बुद्ध को जान से मारने का दुष्प्रयत्न किया था, उत्तर-पूर्व दिशा में देखा था।[2]

इसिपतन मिगदाय या सुंसुमारगिरि के भेसकलावन मिगदाय की तरह एक मिगदाय या मृगोद्यान राजगृह में भी था, जो मद्दकुच्छि (मद्रकुक्षि) नामक स्थान में स्थित था और इसीलिये मद्दकुच्छि मिगदाय कहलाता था। यह भी एक सुरम्य स्थान था, जहाँ अपने एक बार निवास करने का उल्लेख भगवान् ने दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में किया है।[3] विनय-पिटक में भी मद्दकुच्छि मिगदाय का उल्लेख है।[4] यह स्थान मिगदाय तो इसलिये कहलाता था क्योंकि यहाँ मृगों को अभय दिया गया था, उन्हें भोजन दिया जाता था और वे स्वच्छन्द रूप से यहाँ विचरते थे और जिस स्थान पर यह मृगोद्यान अवस्थित था उसका नाम 'मद्दकुच्छि' इसलिये पड़ा कि यहाँ अजातशत्रु की माँ ने, जब उसे ज्योतिषियों से यह मालूम हुआ कि उसका भावी पुत्र अपने पिता को मारेगा, अपने पेट (कुच्छि) को गर्भपात करवाने के लिये मलवाया था (मद्द)।[5] एक बार जब भगवान् गृध्रकूट पर्वत के नीचे घूम रहे थे तो देवदत्त ने ऊपर से एक शिला उन पर ढाह दी थी जो दो चट्टानों से टकरा कर रुक गई थी, परन्तु एक पत्थर का टुकड़ा भगवान् के पैर में लग गया था जिससे उन्हें चोट आ गई थी और उससे रुधिर बहने लगा था। इस अवस्था में

---

१. लेग्गे : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ८२; गाइल्स: ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५०।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५०-१५१।

३. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३४।

४. (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १४०, ३९६।

५. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ७७।

भिक्षु उन्हें मंचशिविका में रख कर जिस स्थान पर ले गये थे, वह मद्दकुच्छि मिगदाय ही था। संयुत्त-निकाय के दो सकलिक सुत्तों[1] में हम भगवान् को मद्दकुच्छि मिग-दाय में, पैर के पत्थर से कट जाने के कारण, कड़ी वेदना स्वस्थ और स्थिर चित्त से सहते देखते है। यह इसी समय की घटना है।

देवदत्त ने अजातशत्रु से अभिसन्धि कर भगवान् बुद्ध को जान से मारने के लिये मदमस्त नालागिरि हाथी उन पर छुड़वाया था।[2] यूआन् चुआङ ने इस स्थान को प्राचीन राजगृह (गिरिव्रज) के उत्तरी दरवाजे के बाहर देखा था। हाथी का नाम पालि परम्परा के अनुसार नालागिरि न देकर यूआन् चुआङ ने चीनी परम्परा के अनुसार धनपाल दिया है।[3] बाद में अजातशत्रु अपनी गलती का अनुभव कर बुद्ध-भक्त हो गया था और, जैसा हम महापरिनिब्बाण-सुत्त में देखते हैं, उसने भी भगवान के महापरिनिर्वाण के बाद उनकी धातुओं के एक अंश को प्राप्त कर उस पर राजगृह में एक स्तूप बनवाया था। इस स्तूप को यूआन् चुआङ ने वेणुवन (जिसकी स्थिति के सम्बन्ध में हम पहले कह चुके हैं) की पूर्व दिशा में देखा था।[4] एक अशोक-स्तूप का भी उल्लेख यूआन् चुआङ ने किया है जिसे उसने करण्ड (कलन्द) ह्रद से (जो वेणुवन विहार से २०० कदम उत्तर में था) २ या ३ 'ली' उत्तर-पश्चिम में देखा था।[5] फा-ह्यान ने भी इन दोनों स्तूपों का उल्लेख किया है, परन्तु इनकी जो स्थितियाँ उसने दी हैं, वे यूआन् चुआङ की स्थितियों से नहीं मिलतीं और उनमें पर्याप्त भ्रामकता है। फा-ह्यान ने अजातशत्रु द्वारा निर्मित स्तूप को नगर के पश्चिमी द्वार से बाहर ३०० कदम की दूरी पर देखा था[6] और

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ २७-२८, ९५-९६।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४८६-४८७।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १४९।

४. वहीं, पृष्ठ १५८।

५. वहीं, पृष्ठ १६२।

६. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४९

अशोक के स्तूप को नगर की दक्षिण दिशा में ३ 'ली' की दूरी पर।[1] इस प्रकार आधुनिक राजगिरि कस्बे के पश्चिम में सरस्वती नदी के दूसरे किनारे पर जो एक टीला है और जिसे एक स्तूप का अवशेष माना जा सकता है, फा-ह्यान के मतानुसार अजातशत्रु द्वारा निर्मित और यूआन् चुआङ के मतानुसार, जैसा हम अभी देख चुके हैं, अशोक द्वारा निर्मित स्तूप मानना पड़ेगा।

'उदान'[2] में हम राजगृह में स्थविर महाकाश्यप को 'पिप्फलि गुहा' नामक गुफा या उसमें स्थित विहार में निवास करते देखते हैं। संयुत्त-निकाय के पठम-गिलान-सुत्त में हम उन्हें इसी गुफा में बीमार पड़े देखते है। यूआन् चुआङ ने अपने यात्रा-विवरण में कहा है कि वेणुवन से ५ या ६ 'ली' (एक मील या उससे कुछ कम) दक्षिण-पश्चिम में, दक्षिणागिरि के उत्तर की ओर, एक बड़े बाँसों के वन में एक विशाल गुफा थी जहाँ स्थविर महाकाश्यप ५०० भिक्षुओं के साथ रहते थे।[3] सम्भवतः पालि परम्परा की पिप्फलि गुहा यही थी, यद्यपि ऐसा नाम लेकर यूआन चुआङ ने उल्लेख नहीं किया है। यूआन् चुआङ ने विपुल पर्वत के गरम सोतों के पश्चिम में 'पिप्पल (पि-पो-लो) गुहा' का भी उल्लेख किया है, परन्तु यहाँ भगवान् बुद्ध के रहने की ही बात कही है, महाकाश्यप की नहीं।[4] इसी प्रकार फा-ह्यान ने प्रथम संगीति के स्थान सप्तपर्णी (सत पर्ण) गुहा से ५ या ६ 'ली' पूर्व में 'पीपल गुहा' का उल्लेख किया है और कहा है कि यहाँ भगवान् बुद्ध भोजनोपरान्त ध्यान के लिये आया करते थे।[5] पालि में पिप्फलि गुहा को प्रायः महाकाश्यप के निवास से ही सम्बद्ध किया गया है और 'उदानट्ठकथा' में कहा गया है कि इस गुफा के बाहर एक पीपल (पिप्फलि) का पेड़ खड़ा था जिसके कारण यह 'पिप्फलि गुहा कहलाती थी। चीनी यात्रियों के विवरणों से भी इस बात का आभास मिलता

---

१. वहीं, पृष्ठ ४८।

२. पृष्ठ ७, ४० (हिन्दी अनुवाद)।

३. वाटर्स : ऑन् यूआन् चुआङ स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५९।

४. वहीं, पृष्ठ १५४।

५. गाइल्स : टेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५२।

है कि पीपल के वृक्ष के कारण ही इस गुफा का यह नाम पड़ा था। मंजुश्रीमूल-कल्प[1] में पिप्फलि गुहा को "पैपल गुहा" कहकर पुकारा गया है। हम युआन् चुआङ के द्वारा वर्णित बाँसों के वन में स्थित गुहा को पालि की 'पिप्फलि गुहा' से मिला सकते हैं, यद्यपि नाम-साम्य तो 'पिप्फलि गुहा' का यूआन् चुआङ की 'पिप्पलि गुहा' और फा-ह्यान की 'पीपल गुहा' से ही अधिक है, बल्कि दोनों प्रायः एक ही हैं।

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में भी हम पिप्फलि गुहा से अलग 'काश्यपकाराम' नामक विहार का उल्लेख पाते हैं, जो आर्य काश्यप के नाम से ही संयुक्त है। संयुत्त-निकाय के अस्सजि-सुत्त में हम स्थविर अस्सजि को काश्यपकाराम में बीमार पड़े देखते हैं। सम्भव है बाँसों के वन में जिस विशाल गुफा को यूआन् चुआङ ने देखा था और जिसे उसने वह स्थान बताया है जहाँ आर्य महाकाश्यप ५०० अन्य भिक्षुओं के सहित रहते थे, बुद्धकालीन 'काश्यपकाराम' ही हो और यूआन् चुआङ की 'पिप्पल गुहा' और फा-ह्यान की "पीपल गुहा" ही बुद्धकालीन 'पिप्फलि गुहा'। इस प्रकार ये दोनों स्थान आर्य महाकाश्यप की अनुस्मृति से अनुविद्ध थे।

यूआन् चुआङ ने विपुल पर्वत के गरम सोतों के पश्चिम में जिस पिप्पल गुहा (पि-पो-लो) गुहा का उल्लेख किया है, उसे आधुनिक 'जरासन्ध की बैठक' से मिलाया जा सकता है, जो ठीक इसी स्थिति पर आज भी विद्यमान है, अर्थात् विपुल गिरि के पश्चिम में। यह स्थान वैभार पहाड़ी के पूर्वी ढाल पर गर्म पानी के कुण्डों (तपोदा) से कुछ ऊपर स्थित है। आजकल इसे लोग 'मचान' कहकर भी पुकारते हैं। 'जरासन्ध की बैठक' एक चबूतरे के रूप में है जो २२ फुट से लेकर २८ फुट तक ऊँचा है। इसका आकार लगभग ८५ फुट लम्बा और ८१ फुट चौड़ा है।

मज्झिम-निकाय के छन्नोवाद-सुत्तन्त में हम आयुष्मान् छन्न को गृध्रकूट के आसपास कहीं आत्महत्या करते देखते हैं, क्योंकि यही से धर्मसेनापति सारिपुत्र और महाचुन्द आदि उन्हें बीमार अवस्था में देखने और सान्त्वना देने जाते हैं। इसी प्रकार हम पहले देख ही चुके हैं कि स्थविर वक्कलि तथा गोधिक नामक भिक्षुओं ने इसिगिलि को कालसिला पर आत्महत्या की थी। यूआन् चुआङ ने भिक्षुओं

---

१. पृष्ठ ५८८।

के नाम तो नहीं लिये हैं, परन्तु दो भिक्षुओं की आत्महत्या के स्थानों को उन्होंने दो स्तूपों से अंकित देखा था, जो गिरिव्रज या प्राचीन नगर के उत्तरी दरवाजे के पश्चिम में, दक्षिणागिरि के उत्तर में, अवस्थित थे।[१] फा-ह्यान ने काली चट्टान (कालसिला) के सम्बन्ध में जो इसी प्रकार की घटना का उल्लेख किया है और जिसे पालि साहित्य से भी समर्थन मिलता है, उसका उल्लेख हम पहले कर ही चुके हैं।

कपिलवस्तु, वाराणसी, वैशाली, श्रावस्ती और चम्पा के समान राजगृह में भी कई महोत्सव मनाये जाते थे। विनय-पिटक[२] में राजगृह के 'गिरग्गसमज्जा' नामक मेले का वर्णन है, जो सम्भवतः गृध्रकूट पहाड़ी की चोटी पर लगता था। सिगाल जातक के वर्णनानुसार राजगृह के लोग एक सुरा-उत्सव मनाते थे जिसमें नृत्य-गान के साथ-साथ सुरा पान होता था। विमानवत्थु-अट्ठकथा में राजगृह के एक 'नक्खत्तकीळं' (नक्षत्रक्रीड़ा) नामक उत्सव का वर्णन है, जिसमें धनवान् पुरुष भाग लेते थे और जो एक सप्ताह तक चलता था। सुमंगलविलासिनी[३] में भी राजगृह में होने वाले उत्सवों का वर्णन है। दीपि जातक में उल्लेख है कि हिमालय के तपस्वी राजगृह में नमक और खटाई लेने आये थे।

राजगृह नगरी एक प्रसिद्ध मार्ग के द्वारा श्रावस्ती से मिली हुई थी, जिसका उल्लेख हम पाँचवें परिच्छेद में करेंगे। वाराणसी तक भी एक मार्ग राजगृह से जाता था और चम्पा से भी राजगृह नगरी मार्ग के द्वारा जुड़ी हुई थी। राजगृह से जीवक तक्षशिला विद्या प्राप्त करने के लिये गया था। दरीमुख जातक तथा संखपाल जातक से हमें पता लगता है कि मगध के राजकुमार शिक्षार्थ तक्षशिला भेजे जाते थे। अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा में राजगृह की दूरी कपिलवस्तु से ६० योजन और श्रावस्ती से ४५ योजन बताई गई है। राजगृह और उसके विभिन्न स्थानों के इस संक्षिप्त भौगोलिक विवरण के बाद अब इस बुद्धकालीन मगध राज्य के अन्य निगमों और ग्रामों के परिचय पर आते हैं।

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५५।

२. पृष्ठ ४५४ (हिन्दी अनुवाद)।

३. जिल्द पहली, पृष्ठ १४१-१४२; मिलाइये दिव्यावदान, पृष्ठ ३०७।

अन्धकविन्द राजगृह के समीप एक गाँव था। संयुत्त-निकाय के अन्धकविन्द-सुत्त में हम भगवान् बुद्ध को इस गाँव के बाहर खुले मैदान में, काली अँधियारी रात में, ध्यान में बैठते देखते हैं, जब कि रिमझिम पानी बरस रहा था। विनय-पिटक में उल्लेख है कि एक बार आर्य महाकाश्यप अन्धकविन्द से राजगृह आ रहे थे, जब कि मार्ग में एक नदी को पार करते समय वे गिर गये और उनके चीवर भींग गये।[1] यह नदी क्या हो सकती है और अन्धकविन्द की क्या आधुनिक स्थिति है, इसका अभी सम्यक् निर्णय नहीं हो सका है। परन्तु ऐसा लगता है कि नदी सम्भवतः सप्पिनी (आधुनिक पञ्चान) ही थी। विनय-पिटक के एक अन्य स्थल पर हम गुड़ के घड़ों से भरी ५०० गाड़ियों को राजगृह से अन्धकविन्द जाने वाले मार्ग पर ले जाये जाते देखते हैं।[2] इससे ज्ञात होता है कि अन्धकविन्द का व्यापारिक महत्व था और वह सड़क के द्वारा राजगृह से जुड़ा हुआ था। एक बार अन्धकविन्द में हम भगवान् बुद्ध को वायु-रोग से पीड़ित होते देखते हैं जब कि आनन्द उनकी परिचर्या में थे।[3] समन्तपासादिका[4] में अन्धकविन्द की राजगृह से दूरी तीन गावुत (करीब छह मील) बताई गई है।

अम्बसण्ड (आम्रखण्ड) एक ब्राह्मण-ग्राम था, जो गिरिव्रज या प्राचीन राज-से पूर्व की दिशा में स्थित था। इसके उत्तर में वेदिक (वेदियक) पर्वत था।[5] इसका अर्थ यह है कि यह गाँव आधुनिक गिर्यक् पर्वत के दक्षिण में स्थित था। दीघ-निकाय के सक्कपञ्ह-सुत्त का उपदेश यहीं दिया गया था। आचार्य बुद्धघोष का कहना है कि इस गाँव का नाम अम्बसण्ड (अम्बसण्डा भी पाठान्तर) इसलिये पड़ा कि यह कई आम्र-वनों के बीच में स्थित था।[6]

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १४३; महावग्गो (विनय-पिटकं), पृष्ठ १६५ (बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित देवनागरी संस्करण)।

२. विनय-पिटक, पृष्ठ २३६ (हिन्दी अनुवाद)।

३. विमानवत्थु-अट्ठकथा, पृष्ठ १८५-१८६।

४. जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १०४९।

५. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १८१।

६. सुमंगलविलासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६९७।

उरुवेला (सं० उरुविल्व) स्थान, जिसे दिव्यावदान[1] में उरुविल्वा कह कर पुकारा गया है, नेरंजरा नदी के किनारे था। उसके समीप ही बोधि-वृक्ष था। इसलिये पालि तिपिटक में इन तीनों स्थानों का कभी-कभी साथ-साथ उल्लेख करते हुए भगवान् को वहाँ विहार करते दिखाया गया है। उदाहरणतः विनय-पिटक के महावग्ग में हम पढ़ते हैं, "तेन समयेन बुद्धो भगवा उरुवेलायं विहरति नज्जा नेरंजराय तीरे बोधिरुक्खमूले पठमाभिसम्बुद्धो।" आचार्य बुद्धघोष ने 'उरुवेला' शब्द की व्याख्या 'महावेला' के रूप में की है,[2] जिसका अर्थ है महा तट। अतः आधुनिक बोध-गया या बुद्ध-गया के समीप नीलाजन (नेरंजरा) नदी के विशाल तट के क्षेत्र को, जिसमें बोधि-वृक्ष, महाबोधि मन्दिर और उनके आसपास के स्थान सम्मिलित हैं, बुद्धकालीन उरुवेला समझना चाहिये। यह स्थान आधुनिक गया नगर के छह मील दक्षिण में स्थित है। चीनी यात्री फा-ह्यान यहाँ गया से २० 'ली' दक्षिण में चलकर आया था।[3] फाह्यान के तीन 'ली' को एक मील के बराबर मानकर गिनने से यह दूरी आज के अनुसार ठीक बैठ जाती है। आचार्य बुद्ध-घोष का पौराणिक ढंग का कहना है कि जब किसी व्यक्ति के मन में कोई बुरा विचार आता था तो वह एक मुट्ठी रेत भरकर पास के स्थान में छोड़ आता था। इसी प्रकार रेत भर भर कर एक विशाल टीला बन गया, जो 'उरुवेला' कहलाया जाने लगा।[4] उरुवेला में ही भगवान् ने छह वर्ष तक तपस्या की थी।[5] बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद भी अनेक बार हम भगवान् को इस स्थान पर विहार करते देखते हैं और कई बार उन्होंने अपने यहाँ विहार करने का उल्लेख भी किया है।[6] एक बार कुछ

---

१. पृष्ठ २०२; मिलाइये ललितविस्तर, पृष्ठ २४८, २६७।

२. समन्तपासादिका, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ९५२।

३. गाइल्स : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५३।

४. समन्तपासादिका, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ९५२।

५. अरिय-परियेसन (पासरासि) सुत्तन्त (मज्झिम० १।३।६); महासच्चक-सुत्तन्त (मज्झिम० १।४।६); बोधिराजकुमार-सुत्तन्त (मज्झिम० २।४।५); जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ८७-८९ (हिन्दी अनुवाद)।

६. उदाहरणतः देखिये दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३३;

ब्राह्मण यहाँ भगवान् से मिले थे। भगवान् ने उन्हें वृद्धों के सत्कार के सम्बन्ध में उपदेश दिया था।[१] उरुवेला के चतुर्दिक् का दृश्य बड़ा सुन्दर और ध्यान के अनुकूल (पटिसल्लान सारुप्पं) था। उसका वर्णन करते हुए स्वयं भगवान् ने कहा है, "वहाँ मैंने एक रमणीय, प्रसन्नताकारी भूमि भाग में एक नदी को बहते देखा, जिसका घाट श्वेत और रमणीय था। . . . मैंने सोचा, यह भूमि भाग रमणीय है, यह वन खण्ड प्रसन्नताकारी है। सुन्दर, श्वेत घाट वाली रमणीय नदी है।"[२] उरुवेला में ज्ञान प्राप्त करने के बाद भगवान् गया होते हुए वाराणसी और वहाँ के इसिपतन मिगदाय में गये, जहाँ प्रथम वर्षावास करने के पश्चात् वे पुनः उरुवेला लौट आये। इसी समय उरुवेलावासी तीन जटिल साधु-बन्धुओं की प्रव्रज्या हुई, जिसके बाद भगवान् गया होते हुए राजगृह चले गये।[३]

उरुवेला में जिस बोधि-वृक्ष के नीचे भगवान् को ज्ञान की प्राप्ति हुई थी, वह आज भी बुद्ध-गया में १०० फुट ऊँचे बोधि-वृक्ष के रूप में विद्यमान है। इस महाभाग वृक्ष का इतिहास भी बड़ा उतार-चढ़ाव का रहा है, जिसका वर्णन करना हमारा प्रकृत विषय नहीं है। फिर भी इतना कह देना इष्ट होगा कि सम्राट् अशोक ने इस वृक्ष के दर्शनार्थ यात्रा की थी, जैसा कि साँची के तोरण-द्वार पर अंकित इस सम्बन्धी एक चित्र से विदित होता है। इसी प्रकार सारनाथ मे प्राप्त एक शिलापट्ट पर उत्कीर्ण दृश्य से हमें पता चलता है कि अशोक ने इस वृक्ष के समीप एक स्तम्भ भी स्थापित करवाया था जिसका कोई अवशिष्ट चिह्न इस समय हमें अभाग्यवश नहीं मिलता। इसी वृक्ष की शाखा को अशोक की पुत्री संघमित्रा अपने साथ लंका ले गई थी, जहाँ

मिलाइये वहीं, पृष्ठ १८२; उदान (बोधि-वग्ग); विनय-पिटक, पृष्ठ ७५, ७९, ८९ (हिन्दी अनुवाद); संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ७०४, ७२९।

१. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २०।

२. ऊपर पद-संकेत ५ के समान; मिलाइये महावस्तु, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १२३; ललितविस्तर, पृष्ठ २४८।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ८८-९४।

अनुराधपुर नगर में उसका आरोपण किया गया। कई बार इतिहास में इसको नष्ट करने के प्रयत्न भी किये गये। परन्तु विफल हुए। सन् १८७० में जनरल कनिंघम द्वारा जब इसके समीप पुराने मन्दिर की मरम्मत करवाई जा रही थी तो यह वृक्ष गिर पड़ा, परन्तु देखभाल के पश्चात् यह पुनः पल्लवित हो उठा और आज एक समृद्ध रूप में तथागत की बोधि का साक्ष्य रूप यह वृक्ष विद्यमान है। बोधि-वृक्ष के पास जो महाबोधि-मन्दिर है, वह अपने मूल रूप में यूआन् चुआङ के समय से प्रायः इसी रूप में चला आ रहा है, ऐसा इस चीनी यात्री के इस मन्दिर सम्बन्धी वर्णन से प्रकट होता है। सम्भवतः बुद्ध-गया के इस मन्दिर का निर्माण शुङ्ग-काल में किया गया। यूआन् चुआङ के यात्रा-वृत्तान्त तथा बुद्ध-गया में प्राप्त अभिलेख से यह जान पड़ता है कि सम्राट् अशोक ने वर्तमान महाबोधि मन्दिर के स्थान पर एक विहार बनवाया था, जिसका आने वाली शताब्दियों में कई बार जीर्णोद्धार और पुनर्निर्माण किया गया। समुद्रगुप्त के समकालीन लंका के राजा मेघवर्ण ने यहाँ एक विहार बनवाया था। महाबोधि मन्दिर के दक्षिण-पश्चिम में आज जो एक आयताकार चबूतरा सा दिखाई पड़ता है, उसे मेघवर्ण द्वारा निर्मित विहार की आधार-भूमि माना जाता है। महाबोधि मन्दिर और बोधि-वृक्ष के बीच में जो पत्थर का बना हुआ एक चबूतरा है, वह उस स्थान का द्योतक है जहाँ बैठकर गौतम बोधिसत्व ने बुद्धत्व प्राप्त किया था। यह स्थान पालि साहित्य में 'बोधिमण्ड' कहलाता है। चूंकि यहाँ वज्र की तरह अचल बैठकर भगवान् ने मार-सेना को परास्त किया था, इसलिये यह स्थान वज्रासन भी कहलाता है। बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद सात सप्ताहों को भगवान् बुद्ध ने उरुवेला में बोधिवृक्ष के समीप किन-किन स्थानों पर बिताया, इसका कुछ उल्लेख हम द्वितीय परिच्छेद में कर चुके हैं। यहाँ हम उनकी आधुनिक स्थितियों का कुछ विवेचन करेंगे।

बोधि-प्राप्ति के बाद प्रथम सप्ताह भगवान् ने बोधि-वृक्ष के नीचे ही बिताया। दूसरे सप्ताह में वे उसी के समीप पूर्वोत्तर दिशा में चलकर अनिमेष दृष्टि से बोधि-वृक्ष की ओर कृतज्ञतापूर्ण भाव से देखते रहे। यह स्थान वही था, जहाँ आज ईंटों का बना ५५ फुट ऊँचा 'अनिमेष लोचन' नामक चैत्य बना हुआ है। तीसरा सप्ताह भगवान् बुद्ध ने चंक्रमण करते हुए (टहलते हुए) ध्यान में बिताया था। आज

महाबोधि-मन्दिर के उत्तर दिशा वाली दीवार से लगा हुआ जो ६० फुट लम्बा और तीन फुट ऊँचा चबूतरा है, वह भगवान् की इस चंक्रमण-भूमि को द्योतित करता है और यहाँ 'रत्नचंक्रम' नामक चैत्य स्थापित किया गया था। इस चबूतरे पर कमल के फूलों के प्रतीक-स्वरूप भगवान् बुद्ध के चरण अंकित हैं, जो इस स्थान को उनकी चंक्रमण-भूमि सिद्ध करते हैं। चौथा सप्ताह भगवान् बुद्ध ने उस स्थान पर बिताया था जहाँ आज 'रत्नघर' नामक चैत्य बना हुआ है। यह चैत्य बिना छत का है और कई छोटे-छोटे स्तूपों के बीच अवस्थित है। इसकी लम्बाई और चौड़ाई क्रमशः १४ और ११ फुट हैं और केवल चार बाहरी दीवारें ही शेष रह गई हैं। इस स्थान पर निवास करने के बाद भगवान् बुद्ध ने अपना पाँचवाँ सप्ताह अजपाल नामक न्यग्रोध (बरगद) के पेड़ के नीचे बिताया था। यह वृक्ष बोधि-वृक्ष की पूर्व दिशा में था। इस पेड़ का 'अजपाल' नाम पड़ने का एक कारण आचार्य बुद्धघोष ने यह बताया है कि इसके नीचे बकरी चराने वाले गड़रिये (अजपाल) अक्सर बैठा करते थे और दूसरा यह कि वेद-पाठ करने में असमर्थ (अजपा) कुछ वृद्ध ब्राह्मण यहाँ झोंपड़े बनाकर निवास करते थे। इसी पेड़ के नीचे सुजाता की दासी ने गौतम बोधिसत्व को खीर खिलाई थी। बोधि-प्राप्ति के बाद का छठा सप्ताह भगवान् ने मुचलिन्द नामक वृक्ष के नीचे बिताया था। यह वृक्ष बोधि-वृक्ष की पूर्व दिशा में स्थित था। इसी वृक्ष के समीप मुचलिन्द नाम की पुष्करिणी थी, जिसमें इसी नाम का एक नागराज रहता था, जिसने आँधी के समय भगवान बुद्ध की रक्षा की। महाबोधि मन्दिर से दक्षिण में एक मील की दूरी पर स्थित 'मुचरिन्' नामक तालाब सम्भवतः मुचलिन्द वृक्ष और मुचलिन्द पुष्करिणी की स्थिति को सूचित करता है। बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद का सातवाँ सप्ताह भगवान् बुद्ध ने राजायतन नामक वृक्ष के नीचे ध्यान करते हुए बिताया। यह वृक्ष बोधि वृक्ष की दक्षिण दिशा में था। बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ 'ललित-विस्तर' (पृष्ठ ३८१) में इस वृक्ष का नाम 'तारायण' दिया गया है। उरुवेला के समीप नैरंजना नदी के तट पर सुप्रतिष्ठित तीर्थ (सुप्पतिट्ठित तित्थ) नामक घाट था, जहाँ भगवान् ने बुद्धत्व-प्राप्ति के पूर्व स्नान किया था।[1] उरुवेला के

---

१. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ९१ (हिन्दी अनुवाद)।

समीप चार गाँवों का उल्लेख महावस्तु[1] में किया गया है, जिनके नाम हैं, प्रस्कन्दन, बलाकत्थ, उज्जंगल और जंगल। कनिंघम के मतानुसार बुद्ध-गया के पास आधुनिक उरेल नामक छोटा सा गाँव, जो कुछ झोपड़ियों का समूह मात्र है, बुद्धकालीन उरुवेला के नाम और सम्भवतः स्थिति को स्थायी बनाये हुए है।[2]

उरुवेला के पास ही, नैरंजना के किनारे, सेनानिगाम या सेनानि निगम था, जहाँ सेनानि कुटुम्बी रहता था।[3] उसकी पुत्री सुजाता थी जिसने भगवान् को बुद्धत्व प्राप्ति से पूर्व मधुर पायास खिलाई थी। सेनानिगाम के समीप ही नेरंजरा नदी के किनारे पर भगवान् ने साधना की थी। बोधि-मण्ड उसके समीप ही था। ऋषिपतन मृगदाव में प्रथम वर्षावास करने के उपरान्त जब भगवान् उरुवेला आये तो वे सेनानिगाम भी गये और वहाँ धर्मोपदेश किया। 'सेनानिगाम' नाम की दो व्याख्याएँ आचार्य बुद्धघोष ने की हैं। एक के अनुसार वह प्रथम कल्प में (सृष्टि के आदि में) एक सैनिक स्थान के रूप में स्थापित किया गया था। "पठमकप्पिकानं सेनाय निविट्ठोकासे पतिट्ठितगामो।" दूसरी व्याख्या देते हुए आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि सुजाता के पिता सेनानी का गाँव होने के कारण वह "सेनानि गाम" कहलाता था। "सुजाताय वा पितु सेनानीनाम निगमो।"[4] यह दूसरी व्याख्या ही अधिक युक्तियुक्त जान पड़ती है। सेनानिगाम इसिपतन मिगदाय से १८ योजन की दूरी पर था।[5] ललित-विस्तर[6] में सेनानिगाम को सेनापतिग्राम कहकर पुकारा गया है। आधुनिक नीलाजन नदी के दूसरे किनारे पर डेढ़ मील की दूरी पर जो एक ऊँचा टीला है, उसे सुजाता का स्थान कहा जाता है। सम्भवतः सुजाता के पिता सेनानी का गाँव यही था।

---

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ २०७।

२. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ७२०; आर्कलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, वार्षिक रिपोर्ट, १९०८-०९, पृष्ठ १३९।

३. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १६८।

४. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १३५।

५. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ८९ (हिन्दी अनुवाद)।

६. पृष्ठ २४८; मिलाइये महावस्तु, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १२३।

अम्बलट्ठिका स्थान राजगृह और नालन्दा के बीच में था। आम्र-वन के रूप में होने के कारण इसका यह नाम पड़ा था।[१] ब्रह्मजाल-सुत्त में हम भगवान् बुद्ध को राजगृह और नालन्दा के बीच रास्ते पर जाते और एक रात के लिये अम्बलट्ठिका के राजागारक (राजकीय भवन) में ठहरते देखते हैं।[२] ब्रह्मजाल-सुत्त का उपदेश यहीं दिया गया था।[३] अंतिम समय जब भगवान् ने राजगृह से कुसिनारा के लिये प्रस्थान किया तो जिस पहले स्थान पर वे ठहरे वह अम्बलट्ठिका ही था। यहां के राजागारक में ही इस बार भी भगवान् ठहरे और फिर यहाँ से चलकर नालन्दा पहुँचे।[४] राजागारक, जैसा उसके नाम से स्पष्ट है, राजा (बिम्बिसार) के द्वारा बनवाया गया एक आगार या घर था जो अम्बलट्ठिका के आम्रवन में स्थित था।[५] एक दूसरी अम्बलट्ठिका, जो भी आम्रवन के रूप में ही थी, वेणुवन विहार के बाहर थी। यह स्थान ध्यान करने वालों के लिये अत्यन्त उपयुक्त था, क्योंकि यहाँ का वातावरण अत्यन्त शान्त और मनोरम था। आयुष्मान् राहुल अपना अधिकतर समय यहीं बिताते थे। इस अम्बलट्ठिका को 'पधानघर संखेप' कहकर पुकारा गया है, जिससे प्रकट होता है कि एक लघु ध्यान-भवन के रूप में इसे प्रयुक्त किया जाता था और अक्सर इस प्रयोजन के लिये यहाँ भिक्षु आया करते थे।[६] इस अम्बलट्ठिका में ही भगवान् ने राहुल को मज्झिम-निकाय के अम्बलट्ठिक-राहुलोवाद-सुत्तन्त का उपदेश दिया था।[७] महापंडित राहुल सांकृत्यायन और भिक्षु जगदीश काश्यप का मत है कि वर्तमान सिलाव ही सम्भवतः प्रथम अम्बलट्ठिका है।[८] एक अन्य अम्बलट्ठिका मगध के खाणुमत नामक

---

१. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २९४।
२. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १।
३. देखिये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५४३।
४. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १२२।
५. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ४१।
६. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६३५।
७. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २४५-२४७।
८. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १२२, पद-संकेत २।

ब्राह्मण-ग्राम में भी थी, जिसका उल्लेख हम उस गाँव का परिचय देते समय करेंगे।

खाणुमत एक ब्राह्मण-ग्राम था। मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार द्वारा यह कूटदन्त नामक ब्राह्मण को दान कर दिया गया था, जो इसकी सारी आय का स्वामी था। इस गाँव में एक अम्बलट्ठिका (आम्रयष्टिका) थी। यह भी आम्र-वन के रूप में राजगृह और नालन्दा के बीच में स्थित अम्बलट्ठिका के समान ध्यान के लिये एक उपयुक्त स्थान था।[1] भगवान् खाणुमत में एक बार आये थे और यहाँ की अम्बलट्ठिका में ठहरे थे। इसी समय कूटदन्त-सुत्त का उपदेश दिया गया था। महाकवि अश्वघोष ने खाणुमत को 'स्थाणुमती' कहकर पुकारा है।[2]

मचल गाम बुद्धकालीन मगध का एक अत्यन्त छोटा सा गाँव (गामक) था, परन्तु था बहुत महत्वपूर्ण ! इस गाँव का उल्लेख एक जातक-कथा में हुआ है, जहाँ कहा गया है कि इस गाँव में केवल तीस परिवार थे। "तस्मिं च गामे तिंस एव कुलानि होन्ति।" इस गाँव के बीच में एक पंचायत-घर बना हुआ था जिसमें किसी ग्राम-कार्य से उपर्युक्त ३० परिवारों के मनुष्यों को हम एक सभा के रूप में मिलते देखते है। "ते च तिंसकुलमनुस्सा एकदिवसं गाममज्झे थत्वा गामकम्मं करोन्ति।"[3] बुद्धकालीन ग्राम-व्यवस्था तथा जनतंत्रीय शासन-पद्धति का इस गाँव को हम एक नमूना मान सकते हैं। इसी प्रकार अन्य बुद्धकालीन गाँवों के बीच में एक साला (शाला) बनी हुई होती थी, जिसमें ग्रामीण जन ग्राम-हित के कार्यों पर विचार करने के लिये समय-समय पर एकत्र हुआ करते थे। कोसल देश के साला नामक ब्राह्मण-ग्राम में इसी प्रकार हम उसके निवासियों को एक सभा के रूप में एकत्र देखते है।[4] हम देख ही चुके हैं कि नगरों के इसी प्रकार के स्थानीय शासन के कार्यों को निबटाने के लिये संस्थागार (सन्थागार) बने हुए थे, जहाँ नागरिक-गण सार्वजनिक कार्यों के लिये सभा के रूप में एकत्र होते थे।

---

१. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २९४।

२. बुद्ध-चरित २१।९।

३. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १९९।

४. देखिये आगे कोसल राज्य का विवरण।

पञ्चशाल नामक ग्राम (पंचसालो गामो) मगध देश में था। एक बार भगवान् यहाँ भिक्षार्थ गये थे, परन्तु उन्हें भिक्षा नहीं मिली थी और वे रीता पात्र लेकर लौट आये थे। संयुत-निकाय के पिण्ड-सुत्त में इस बात का उल्लेख है।[१] मिलिन्दपञ्हो[२] में भी इस घटना का उल्लेख किया गया है।

सालिन्दिय नामक ग्राम का उल्लेख सुवण्णकक्कट जातक और सालिकेदार जातक में है। यह गाँव राजगृह के पूर्व (सुवण्णकक्कट जातक) या पूर्वोत्तर (सालिकेदार जातक) की ओर स्थित था। उपर्युक्त जातकों से हमें यह सूचना मिलती है कि इस गाँव में एक विशाल खेत १००० करीस (८००० एकड़) क्षेत्रफल का था।[३] कोसियगोत्त ब्राह्मण यहीं का निवासी था।

कलवाल गाम मगध राज्य में एक गाँव था। धम्मपदट्ठकथा के अनुसार आयुष्मान् महामोग्गल्लान यहाँ एक बार आलस्य में पड़ गये थे। भगवान् ने उन्हें प्रबोधित किया था और तदनन्तर उन्हें अभिज्ञा की प्राप्ति हुई थी।

मातुला मगध का एक गाँव था। यहाँ भगवान् ने दीघ-निकाय के चक्कवत्ति-सीहनाद-सुत्त का उपदेश दिया था।

गया का एक तीर्थ (घाट) के रूप में वर्णन मज्झिम-निकाय के वत्थ-सुत्तन्त में है। यहाँ बाहुका, सुन्दरिका, सरस्सती (सरस्वती) और बाहुमती नदियों के साथ-साथ पयाग (प्रयाग), गया और अधिकक्का का भी उल्लेख किया गया है। जिन्हें तीर्थ ही माना जा सकता है। "बाहुका, अधिकक्का, गया और सुन्दरिका में। सरस्वती, प्रयाग तथा बाहुमती नदी में।... क्या करेगी सुन्दरिका, क्या प्रयाग और क्या बाहुलिका नदी?" आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि गया एक घाट (तित्थ) और गाँव (गाम) दोनों ही था।[४] प्रतिवर्ष फाग्गुण (फग्गुण) मास के कृष्णपक्ष में गया में 'गयाफग्गुणी' नामक स्नान-घाट पर एक बड़ा मेला लगता था। एक

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ९८-९९।

२. पृष्ठ १५६ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

३. देखिये आगे चौथे परिच्छेद में बुद्ध-काल में कृषि की अवस्था का विवेचन भी।

४. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०२।

बार इसी मेले में भगवान् बुद्ध ने सेनक थेर को बुद्ध-धर्म में दीक्षित किया था।[१] गया में एक पुष्करिणी भी थी जो 'गया पोक्खरणी' कहलाती थी। बोधि-वृक्ष से गया तीर्थ तीन गावुत (करीब ६ मील) की दूरी पर था और वाराणसी से उसकी दूरी १५ योजन बताई गई है।[२] पालि साहित्य के इस गया-तीर्थ को हम आधुनिक 'विष्णुपाद' नामक मन्दिर के आसपास की भूमि से मिला सकते हैं जो बुद्ध-गया से लगभग सात मील की दूरी पर फल्गु नदी के बायें तट पर स्थित है। बुद्ध-गया से पृथक् करने के लिये इस स्थान को ब्रह्म-गया भी कहा जाता है। बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद की अपनी प्रथम यात्रा में भगवान् बुद्ध बोध-गया या उरुवेला से गया होते हुए ही वाराणसी गये थे।[३] इसिपतन मिगदाय में प्रथम वर्षावास करने के पश्चात् भगवान् क्रमशः वाराणसी और उरुवेला होते हुए गया के गयासीस पर्वत पर आये थे, जहाँ प्रसिद्ध आदित्तपरियाय-सुत्त का उपदेश दिया गया था। उसके बाद भगवान् राजगृह चले गये थे।[४] अंगुत्तर-निकाय के गया-सुत्त का उपदेश भी गया में दिया गया था।[५]

गयासीस पर्वत गया के समीप ही था। इसका आधुनिक नाम ब्रह्मयोनि पर्वत है।[६] यह पर्वत आधुनिक गया नगर के एक मील दक्षिण या दक्षिण-पश्चिम में करीब ४०० फुट की ऊँचाई पर स्थित है। गयासीस पर्वत को महाभारत और पुराणों के गयाशिर, गयाशीर्ष या गयशिर से मिलाया गया है, जो ठीक ही है। आचार्य बुद्धघोष ने इस पर्वत का "गयासीस" नाम पड़ने का यह कारण बताया है कि इसका पृष्ठ भाग "गया" अर्थात् गज (गय—गया) के सीस (सिर)

---

१. थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ३८८।

२. पपंचसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३८७।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ७९।

४. वहीं, पृष्ठ ८४-९५।

५. गया के समीप अपरगया नामक स्थान का उल्लेख महावस्तु, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३२४-३२५ में मिलता है। इस ग्रन्थ के अनुसार भगवान् बुद्ध यहाँ गये थे।

६. कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५२४।

के समान था। "गजसीससदिसपिट्ठिपासानो।"[1] गयासीस पर ही देवदत्त ५०० नये प्रव्रजित भिक्षुओं को अपनी ओर फोड़कर ले गया था[2] और यहीं अजातशत्रु ने उसके लिये एक विहार बनवाया था और ५०० स्थालीपाक भोजन के प्रतिदिन भेजे जाते थे।[3]

गया के समीप टंकित मंच नामक स्थान का भी वर्णन है, जहाँ सूचिलोम यक्ष के भवन में भगवान् ने निवास किया था।[4] यहाँ उनका खर और सूचिलोम नामक दो यक्षों से संलाप हुआ था, जो संयुत्त-निकाय के सूचिलोम-सुत्त में निहित है।[5]

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में एक मार्ग वाराणसी से गया होता हुआ राजगृह तक जाता था। पाँचवीं शताब्दी ईसवी में चीनी यात्री फा-ह्यान काल-शिला (जिसे उसने एक बड़ी वर्गाकार काली चट्टान कहकर पुकारा है और जहाँ एक बुद्धकालीन भिक्षु की आत्महत्या का वर्णन किया है, देखिये पं. छे राजगृह का वर्णन) से चार योजन पश्चिम में चलकर गया में आया था और उसने इसे उस समय सूनी अवस्था में देखा था।[6] सातवीं शताब्दी ईसवी में चीनी यात्री यूआन् चुआङने गया में एक हजार से अधिक ब्राह्मण-परिवारों को निवास करते देखा था।[7] (पाटलिपुत्र और गया के बीच

---

१. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४८९; जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १४२; जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९६।

३. वहीं, पृष्ठ ४८०; जातक जिल्द, पहली, पृष्ठ १८५, ५०८।

४. सूचिलोम-सुत्त (सुत्त-निपात)।

५. महाकवि अश्वघोष ने इस घटना का उल्लेख करते हुए कहा है, "गया में ऋषि (बुद्ध) ने टंकित ऋषियों को और खर और शूचीलोम नामक दो यक्षों को उपदेश दिया।" बुद्धचरित २१।२०; अश्वघोष के इस कथन से विदित होता है कि टंकित नामक ऋषियों के नाम पर ही 'टंकित मंच' नामक स्थान का यह नाम पड़ा था।

६. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५२-५३।

७. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ११०।

में स्थित) शीलभद्र विहार से ४० या ५० 'ली' दक्षिण-पश्चिम में चलकर, नैरंजना को पार करने के पश्चात्, यूआन् चुआङ गया (क-ये) में पहुँचा था।[1] गया नगर के ५ या ६ 'ली' दक्षिण-पश्चिम में उसने 'गया पर्वत' को देखा था। यह गया पर्वत वस्तुतः पालि साहित्य का 'गयासीस' पर्वत ही है। 'गयासीस' पर्वत की निरुक्ति यूआन् चुआङ ने पालि विवरण के अनुसार ही की है। ऊपर हम सारत्थप्पकासिनी के आधार पर देख चुके हैं कि गज (गय, गया) के सिर (सीस) के समान इस पर्वत के आकार के होने के कारण इसका यह नाम पड़ा था। यूआन् चुआङ ने भी इसी प्रकार इस नाम की व्याख्या की है, परन्तु एक दूसरी वैकल्पिक अनुश्रुति का उल्लेख करते हुए उसने यह भी कहा है कि गय नामक ऋषि का निवास-स्थान होने के कारण भी इस पर्वत का यह नाम पड़ा।[2] महाकवि अश्वघोष ने भी नैरंजना नदी के तट पर स्थित आश्रम में श्रेयार्थी गौतम बोधिसत्व के आने की बात कहते हुए गया नगरी को राजर्षि गय के नाम से सम्बद्ध किया है।[3] गयासीस पर्वत के शिखर पर यूआन् चुआङ ने अशोक के द्वारा निर्मित एक पाषाण-स्तूप को भी देखा था जो उस स्थान की स्थिति को सूचित करता था जहाँ भगवान् बुद्ध ने, महायान की परंपरा के अनुसार, रत्नमेघ-सूत्र का उपदेश दिया था।[4] 'गया पर्वत' के दक्षिण-पूर्व में यूआन् चुआङ ने उरुवेल कस्सप (उरुविल्व काश्यप) के जन्म-स्थान के समीप एक स्तूप को देखा था और उसके दक्षिण में गया काश्यप और नदी काश्यप के आश्रमों

---

१. ऊपर के समान।

२. वहीं, पृष्ठ १११।

३. भेजे गयस्य राजर्षेर्नगरीसंज्ञमाश्रमम्। बुद्धचरित १२।८९; इस तथ्य की तुलना वायु-पुराण (अध्याय १०५) के उस विवरण से की जा सकती है जिसके अनुसार गय नामक राजर्षि के यहाँ यज्ञ करने के कारण इस नगरी का नाम 'गया' पड़ा। इसी प्रकार महाभारत के वन-पर्व में भी कहा गया है कि गया में राजा गय ने यज्ञ किया था। कई पुराणों में गयासुर के नाम से भी गया तीर्थ को सम्बद्ध किया गया है।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १११।

की स्थितियों को भी सूचित करते हुए दो अन्य स्तूपों को देखा था।[१] उपर्युक्त स्तूप उरुविल्व काश्यप, गया काश्यप और नदी काश्यप नामक तीन जटिल साधु-बन्धुओं के आश्रमों के स्थानों पर बने हुए थे, जहाँ वे अग्नि-परिचरण करते हुए निवास करते थे और जहाँ भगवान् बुद्ध ने उन्हें वाराणसी से आकर, बुद्धत्व-प्राप्ति के प्रथम वर्ष में, बुद्ध-धर्म में दीक्षित किया था।[२]

एकनाला नामक ब्राह्मण-ग्राम मगध के दक्षिणागिरि जनपद में था। इस महत्वपूर्ण जनपद का विवरण पहले दे देना अधिक ठीक होगा। आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि राजगृह को परिवृत करने वाले गिरि के दक्षिण में अवस्थित जनपद 'दक्षिणागिरि' कहलाता था। "दक्खिणागिरिमिव ति राजगहं परिवारेत्वा ठितस्स गिरिनो दक्खिणभागे जनपदो अत्थि।"[३] इससे यह स्पष्ट प्रकट होता है कि दक्षिणागिरि जनपद राजगृह के दक्षिण में, उन पहाड़ियों के पार स्थित था जो राजगृह को घेरे हुए थीं। डा० मललसेकर ने शब्द-भ्रम या दिशा-भ्रम के कारण "डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स", जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७२१ में यह लिख दिया है, "पहाड़ियों के उत्तर का देश दक्षिणागिरि कहलाता था।"[४] यहाँ उत्तर की जगह स्पष्टतः दक्षिण होना चाहिये। यह प्रसन्नता की बात है कि इसी "डिक्शनरी" में दूसरी जगह[५] उन्होंने ठीक बात लिख दी है, अर्थात् दक्षिणागिरि जनपद को राजगृह के दक्षिण में ही स्थित बताया है। भगवान् बुद्ध को दो बार राजगृह से दक्षिणागिरि जनपद जाते और फिर वहाँ से लौटकर राजगृह में वापिस आते हम विनय-पिटक में देखते हैं।[६] आरामदूसक जातक का उपदेश दक्षिणागिरि जनपद में ही

---

१. उपर्युक्त के समान।

२. काश्यप-बन्धुओं की प्रव्रज्या के सम्बन्ध में पालि परम्परा के आधार पर विस्तृत विवरण के लिये देखिये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ८९-९४।

३. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २४२।

४. "The country to the north of the hills was known as Dakkhiṇāgiri."

५. जिल्द पहली, पृष्ठ १०४९।

६. पृष्ठ १२०, २७९ (हिन्दी अनुवाद)।

दिया गया था। प्रथम संगीति के अवसर पर, जब उसका संगायन-कार्य चल रहा था या प्रायः समाप्त हो चुका था, तो हम आयुष्मान् पुराण नामक स्थविर को दक्षिणागिरि जनपद में विहार करते और फिर वहाँ से राजगृह के वेणुवन कलन्दक निवाप में आते देखते हैं।[1] श्रावस्ती से राजगृह जाने वाला मार्ग दक्षिणागिरि जनपद में होकर ही जाता था।

दक्षिणागिरि जनपद में ही एकनाला नामक ब्राह्मण-ग्राम था। यद्यपि अंगुत्तर-निकाय और बुद्धवंस की अट्ठकथाओं में भगवान् बुद्ध को अपना ग्यारहवाँ वर्षावास नाला नामक ब्राह्मण ग्राम में (जिसका परिचय हम आगे देंगे) करते दिखाया गया है, परन्तु ई० जे० थॉमस और मललसेकर ने इस सम्बन्ध में एकनाला नाम का प्रयोग किया है,[2] जिसका अभिप्राय यही हो सकता है कि वे नाला और एकनाला नामों से एक ही गाँव का अभिप्राय समझते है। जैसा हम आगे देखेंगे, जहाँ तक बुद्ध के जीवन-काल से सम्बन्ध है, इन दोनों गाँवों को अलग-अलग मानना ही कदाचित् अधिक ठीक होगा। सम्भवतः बुद्धत्व-प्राप्ति के ग्यारहवें वर्ष में ही, जिसकी वर्षा को भगवान् ने नाला नामक ब्राह्मण-ग्राम में बिताया, भगवान् एकनाला नामक ब्राह्मण-ग्राम में भी गये, जो दक्षिणागिरि जनपद में था। इसी समय उनका कसि भारद्वाज नामक ब्राह्मण से संलाप हुआ जो सुत्त-निपात के कसिभारद्वाज-सुत्त तथा संयुत्त-निकाय के कसि-सुत्त में निहित है। एकनाला ब्राह्मण-ग्राम में दक्षिणागिरि नामक एक विहार भी था। यहीं भगवान् ने उस 'मगध खेत्त' को देखा था जिससे उन्हें उसी आकार के भिक्षु-वस्त्रों को बनवाने की कल्पना मिली थी।

एकनाला ब्राह्मण-ग्राम के अतिरिक्त दक्षिणागिरि जनपद में, सम्भवतः एकनाला ब्राह्मण-ग्राम के पास ही, वेलुकण्टक नामक एक बाँसों का वन था।[3] अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा में बुद्ध की अग्र ध्यानी श्राविका उपासिका के रूप में प्रशंसित उत्तरा नन्दमाता, जिन्हें धम्मपद की अट्ठकथा में वेलुकण्टकी नन्दमाता

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५४५।

२. उद्धरणों के लिये देखिये दूसरे परिच्छेद में भगवान् बुद्ध की चारिकाओं का भौगोलिक विवरण।

३. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ ६४।

और संयुत्त-निकाय के एकधीता-सुत्त में वेलुकण्डकिय नन्दमाता कहकर पुकारा गया है, वेणुकण्टक-निवासिनी ही थीं। महाकवि अश्वघोष ने भी कहा है कि वेणुकण्टक में नन्द की माता को भगवान् बुद्ध ने प्रव्रजित किया था।[1]

यहाँ दक्खिणागिरि (दक्खिणगिरि भी पाठ) के सम्बन्ध में यह बात और कह देनी चाहिये कि पालि साहित्य में इसी नाम का प्रयोग दक्षिणापथ के एक जनपद के लिये भी किया गया है जिसकी राजधानी उज्जेनी बताई गई है। यहाँ अशोक उपराज के रूप में शासन करता था। वेदिस नगर इसी में था।[2] उज्जयिनी के दक्खिणागिरि विहार से ४०,००० भिक्षु लंका के अनुराधपुर महास्तूप के आधार-शिला रखने के महोत्सव में भाग लेने गये थे।[3] इस दक्षिणगिरि या दक्षिणागिरि जनपद से मगध के दक्षिणागिरि को पृथक् समझना चाहिये।

यष्टिवन-उद्यान के सम्बन्ध में विवेचन करते हुए हम पहले देख चुके हैं कि उसकी आधुनिक स्थिति जेठियन है, जो राजगिर कस्बे से १३ मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। इस जेठियन से दक्षिण में 'दक्खिनाऊ' नामक पहाड़ी है। इसे ही नाम और रूप में बुद्धकालीन मगध राष्ट्र के 'दक्खिणागिरि' की आधुनिक स्थिति समझना चाहिये।

नाला नामक गाँव, जिसे भी एक ब्राह्मण-ग्राम कहकर पुकारा गया है, बोधि-वृक्ष के आसपास, कहीं उरुवेला और गया के बीच में, स्थित था। उपक आजीवक इस नाला नामक ब्राह्मण-ग्राम का ही निवासी था। जैसा हम पहले देख चुके है, वह भगवान् से उरुवेला और गया के बीच मार्ग में मिला था, जब भगवान् वहाँ होकर वाराणसी की ओर धर्मचक्र-प्रवर्तनार्थ जा रहे थे। उपक की पत्नी, अपने पति के पुनः प्रव्रजित हो जाने के बाद, खिन्नतापूर्वक कहती है, "मैं इस नाला गाँव को छोड़ कर चली जाऊँगी, कौन अब इस नाला गाँव में रहेगा?" "पक्कामिस्सं च नालातो कोध नालाय वच्छति।"[4] नाला नामक गाँव की स्थिति बोधि-वृक्ष के

---

१. बुद्ध-चरित २१।८।

२. देखिये मललसेकर : डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ १०४९।

३. महावंस २९।३५।

४. थेरीगाथा, गाथा २९४ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

आसपास ही जान पड़ती है, अतः उसे दक्षिणागिरि जनपद में स्थित एकनाळा गाँव से भिन्न गाँव मानना ही अधिक ठीक जान पड़ता है।

नाल, नालक या नालिका ग्राम राजगृह के समीप एक ब्राह्मण-ग्राम था। धर्मसेनापति सारिपुत्र का जन्मस्थान यही गाँव था और यहीं उन्होंने परिनिर्वाण प्राप्त किया था।[१] इसलिये इसे ऐतिहासिक महत्व प्राप्त है। संयुत्त-निकाय के निब्बाण-सुत में हम एक बार आयुष्मान् सारिपुत्र को अपनी जन्मभूमि इस नालक ग्राम में जाते और जम्बुखादक नामक परिव्राजक से धार्मिक संलाप करते देखते हैं।[२] इसी निकाय के चुन्द-सुत्त में हम उन्हें मगध के नाल गाम में बीमार पड़े देखते हैं।[३] यह नाल ग्राम उनकी जन्मभूमि नालक गाम ही था। महासुदस्सन जातक में, जिस गाँव में धर्मसेनापति का जन्म हुआ, उसे नाल गाम कहकर पुकारा गया है। इसलिये नाल और नालक दोनों ही नाम उस गाँव के थे, जिसमें धर्मसेनापति सारिपुत्र का जन्म और परिनिर्वाण हुआ। धर्मसेनापति सारिपुत्र का एक पूर्व नाम उपतिस्स (उपतिष्य) भी था। अतः उनके जन्म के गाँव को, विशेषतः अट्ठकथाओं में, कहीं-कहीं उपतिस्स-गाम या उपतिस्स-नगर भी कहा गया है।[४] धर्मसेनापति सारिपुत्र के बाल्यावस्था के मित्र स्थविर सुनाग नालक गाँव में ही एक ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे। महागवच्छ नामक स्थविर का भी जन्मस्थान नालक गाँव ही था। इसी प्रकार रेवत खदिरवनिय और उपसेन वंगन्तपुत्त भी नालक ब्राह्मण-ग्राम के ही निवासी थे। नालक ब्राह्मण-ग्राम को आधुनिक सारीचक बड़गाँव से मिलाया गया है जो नालन्दा के समीप स्थित है। बिहार राज्य सरकार द्वारा संस्थापित नालन्दा पालि प्रतिष्ठान इसके अनतिदूर ही स्थित है।

महातित्थ (महातीर्थ) मगध का एक अन्य ग्राम था। यहाँ आर्य महा काश्यप

---

१. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७२; थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ १०८।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५५९।

३. वहीं, पृष्ठ ६९२-६९३।

४. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७२; थेरगाथा-अट्ठकथा जिल्द पहली, पृष्ठ १०८।

का जन्म हुआ था।[1] स्थविर महामोग्गल्लान के जन्म-स्थान कोलित ग्राम को धर्मसेनापति सारिपुत्र के जन्म-स्थान नाल या नालक ग्राम के अति समीप होना चाहिये, क्योंकि अट्ठकथाओं के विवरणानुसार दोनों के परिवारों में पीढ़ियों से मित्रता चली आ रही थी और बालक उपतिष्य (सारिपुत्र) और कोलित (महा-मोग्गल्लान) दोनों एक दूसरे के साथ खेलते-कूदते और रहते-सहते दिखाये गये हैं। जिस प्रकार सारिपुत्र के बाल्यावस्था के नाम उपतिष्य पर उनके ग्राम नाल या नालक का नाम उपतिष्य-ग्राम है, उसी प्रकार महामौद्गल्यायन के बाल्यावस्था के नाम कोलित (कोलिक) के आधार पर उनके ग्राम का नाम कोलित (कोलिक) ग्राम है। इन दोनों गाँवों की स्थिति के सम्बन्ध में यूआन् चुआङ के साक्ष्य पर हम आगे नालन्दा के विवरण-प्रसंग में कुछ कहेंगे।

नालन्दा भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में एक समृद्ध कस्बा था और यहाँ बुद्ध-धर्म के अनुयायी काफी संख्या में थे। केवट्ट नामक गृहपति भगवान् बुद्ध से कहता है, "भन्ते! यह नालन्दा समृद्ध, धनधान्यपूर्ण और बहुत घनी बस्ती वाली है। यहाँ के मनुष्य आप के प्रति बहुत श्रद्धालु हैं।" नालन्दा की समृद्धि के सम्बन्ध में साक्ष्य मज्झिम-निकाय के उपालि-सुत्तन्त में भी मिलता है। भगवान् बुद्ध और उपालि गृहपति के संलाप में आता है, "तो गृहपति! क्या यह नालन्दा सुख-सम्पत्ति-युक्त, बहुत जनों वाली, मनुष्यों से भरी है।" "हाँ, भन्ते! यह ऐसी ही है।" नालन्दा में प्रावारिक आम्रवन नामक एक आम्रवन था, जिसे नालन्दा-निवासी सेठ प्रावारिक ने बनवाकर बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को अर्पित किया था। कौशाम्बी के विवरण में हम देखेंगे कि वहाँ भी एक प्रावारिक आम्रवन (पावारिकम्बवन) या प्रावारिकाराम (पावारिकाराम) था, जिसे वहाँ के सेठ प्रावारिक ने बनवाया था। यह नालन्दा का सेठ कौशाम्बी के अपने ही नाम के सेठ से भिन्न व्यक्ति था। दीघ-निकाय की अट्ठकथा (सुमंगलविलासिनी)[2] में इस नालन्दावासी पावारिक सेठ के लिये "दुस्सपावारिक" नाम का प्रयोग किया गया है, जिससे प्रकट होता है

---

१. मनोरथपूरणी, जिल्द पहली, पृष्ठ ९९; थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १४१।

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ८७३; मिलाइये पपंचसूदनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ५२।

कि यह कपड़े का व्यापारी था। कौशाम्बी के सेठ को केवल पावारिक नाम से पुकारा गया है। नालन्दा में आते समय भगवान् अक्सर प्रावारिक आम्रवन में ही ठहरते थे। दीघ-निकाय के केवट्ट-सुत्त का उपदेश यहीं दिया गया था। इसी प्रकार इसी निकाय के सम्पसादनिय-सुत्त का भी। भगवान् अपनी अन्तिम यात्रा में जब राजगृह से कुसिनारा के लिये गये तो मार्ग में सर्वप्रथम वे अम्बलट्ठिका में ठहरे थे और फिर उसके बाद नालन्दा में। इस समय भी भगवान् ने नालन्दा के पावारिक आम्रवन में उपदेश दिया था, जिसका वर्णन दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में है। नालन्दा से आगे चलकर भगवान् पाटलिपुत्र गये थे। मज्झिम-निकाय के उपालि-सुत्तन्त से हमें सूचना मिलती है कि एक बार भगवान् जब नालन्दा के प्रावारिक आम्रवन में विहार कर रहे थे, तो उसी समय निगण्ठ नाटपुत्त (जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर) भी नालन्दा में ठहरे हुए थे। इससे प्रकट होता है कि बुद्ध-काल में नालन्दा निर्ग्रन्थ साधुओं का भी एक प्रमुख स्थान था और उनके काफी अनुयायी वहाँ थे। भगवान् बुद्ध के सम्बन्ध में धर्मसेनापति का प्रसिद्ध उद्‌गार, जो महापरिनिब्बाण-सुत्त में निहित है, नालन्दा में ही किया गया था, भले ही उसका समय वह न रहा हो जो महापरिनिब्बाण-सुत्त से जान पड़ता है। संयुत्त-निकाय के पच्छाभूमक-सुत्त, देसना-सुत्त, संख-सुत्त और दो नालन्द-सुत्तों का उपदेश भगवान् ने नालन्दा के प्रावारिक आम्रवन में ही दिया था। यहीं असिबन्धकपुत्र ग्रामणी उनसे मिलने आया था।

सुमंगलविलासिनी[1] में राजगृह से नालन्दा की दूरी एक योजन बताई गई है। "राजगहतो पन नालन्दा योजनमेव।" आज भी नालन्दा राजगृह से उत्तर-पश्चिम दिशा में लगभग ८ मील की दूरी पर ही स्थित है। राजगृह और नालन्दा के बीच में बहुपुत्र या बहुपुत्रक चैत्य (बहुपुत्त या बहुपुत्तक चेतिय) नामक एक चैत्य या चौरा भी था। यहीं एक बर्गद के पेड़ (बहुपुत्तक निग्रोध) के नीचे प्रथम बार स्थविर महाकाश्यप ने शिक्षमाण होते समय भगवान् बुद्ध के दर्शन किये थे। भगवान् ने आर्य महाकाश्यप के साथ चीवर-परिवर्तन भी इस स्थान के समीप

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ ३५; जिल्द तीसरी, पृष्ठ ८७३।

ही किया था।[1] बहुपुत्रक चैत्य राजगृह से तीन 'गावुत' या पौन योजन की दूरी पर था। इसका अर्थ यह है कि यह नालन्दा से एक गावुत या चौथाई योजन (करीब दो मील) की दूरी पर स्थित था। बहुपुत्रक नामक एक अन्य चैत्य वैशाली में भी था, उसके उत्तर द्वार के समीप, जिसका उल्लेख हम वज्जि जनपद का विवरण देते समय करेंगे।

संयुत्त-निकाय के कुल-सुत्त में आया है, "एक समय भगवान् कोसल देश में चारिका करते. . .जहाँ नालन्दा है, वहाँ पहुँचे।" इससे स्पष्ट है कि यह नालन्दा, जिसका इस सुत्त में उल्लेख है, कोसल देश में था और मगध देश के उस प्रसिद्ध नालन्दा से भिन्न था जो राजगृह और पाटलिगाम के बीच स्थित था। डा० लाहा ने कोसल देश के इस नालन्दा की पृथक् स्थिति को स्वीकार किया है[2] और डा० मललसेकर[3] ने भी, परन्तु डा० मललसेकर ने 'नालन्दा' का केवल मगध के नगर के रूप में ही वर्णन दिया है और उसी में बिना अलग दिखाये उस वर्णन को भी मिला दिया है जो संयुत्त-निकाय में कोसल देश के नालन्दा के सम्बन्ध में दिया गया है।[4] दोनों के अन्दर यहाँ कोई भेद नहीं किया गया, जिसे ठीक नहीं कहा जा सकता।

नालन्दा की यात्रा चीनी यात्री फा-ह्यान ने पाँचवीं शताब्दी ईसवी में की थी। उसने नालन्दा को 'नलो' कहकर पुकारा है और "अलग स्थित पहाड़ी" (जिसे कनिंघम ने गिर्यक् से मिलाया है) से उसकी दूरी एक योजन बताई है। इस विवरण से आधुनिक बड़गाँव की स्थिति बिलकुल मिल जाती है, जिसे कनिंघम ने नालन्दा की आधुनिक स्थिति माना है।[5] फा-ह्यान के मतानुसार नालन्दा ही धर्मसेनापति

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ २८३-२८५; सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १२८; थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १४५; मिलाइये बुद्ध-चरित १७।२४-२५ भी।

२. इण्डिया ऐज़ डिस्काइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, पृष्ठ ४५।

३. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ६९६।

४. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५६-५७।

५. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५३७।

सारिपुत्र का जन्म-स्थान था। इसका अर्थ यह है कि उस समय तक नाल या नालक ग्राम और नालन्दा दोनों मिला दिये गये थे, या एक समझे जाते थे। यूआन् चुआङ ने भी नालन्दा (न-लन्-तो) की यात्रा की थी और उसने नालन्दा विहार को राहुल-स्तूप से करीब ३० 'ली' (५ मील) दूर बताया है।[1] यहाँ यह उल्लेखनीय है कि यूआन् चुआङ ने सारिपुत्र के जन्मस्थान का नाम काल पिनाक (क-लो-पि-न-क) दिया है और उसे कोलिक (कोउ-लि-क) नामक स्थान से, जो नालन्दा संघाराम के ८ या ९ 'ली' (करीब डेढ़ मील या उससे कुछ कम) दक्षिण-पश्चिम में था और जिसे इस चीनी यात्री ने महामौद्गल्यायन (कोलित—कोलिक) का जन्म-स्थान माना है, तीन या चार 'ली' (करीब आधा मील या उससे कुछ अधिक) पूर्व में बताया है।[2] इस प्रकार यूआन् चुआङ के अनुसार हमें नालक गाम (काल पिनाक) और कोलित (कोलिक) ग्राम की स्थितियों को उपर्युक्त प्रकार से नालन्दा संघाराम के समीप मानना पड़ेगा, जिसे हम कदाचित् पालि विवरण को भी ध्यान में रखते हुए प्रामाणिक मान सकते हैं। 'नालन्दा' नाम की अनेक व्याख्याएँ यूआन् चुआङ ने दी हैं, जिनमें एक यह है कि यहाँ बोधिसत्व एक बार राजा बन कर उत्पन्न हुए थे। वे बड़े दानी थे, दान देते कभी नहीं अघाते थे, इसलिये उन्हे 'नालन्दा' (कभी अलं न देने वाला, देने में कभी तृप्ति न मानने वाला) का विशेषण मिला था। इसी विशेषण का प्रयोग बाद में इस नगर के लिये किया जाने लगा जो उनकी राजधानी था।[3] अपने नाम के सार्थक 'नालन्दा' संघाराम और लगभग चौथी शताब्दी ईसवी में संस्थापित उसके विश्वविद्यालय के आचार्यों का इतिहास अत्यन्त गौरववान् है और यूआन् चुआङ ने भी उस पर विस्तार से लिखा है, परन्तु पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं से ही सीमित होने के कारण हम इस प्राचीन भारत के अद्वितीय विश्वविद्यालय के सम्बन्ध में, जिसका उत्कर्ष बुद्ध के काल के बाद हुआ, यहाँ कुछ अधिक न कह सकेंगे।

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १६४।

२. वहीं, पृष्ठ १७१।

३. वहीं, पृष्ठ १६४।

पाटलिगाम भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में पाटलिपुत्त का नाम था। उस समय यह एक गाँव ही था। जब भगवान् बुद्ध अपनी अन्तिम यात्रा में पाटलिगाम पहुँचे उस समय भावी विशाल नगर पाटलिपुत्त (पटिलिपुत्र) की नींव रक्खी जा रही थी। महापरिनिब्बाण-सुत्त से हमें पता चलता है कि मगधराज अजातशत्रु के मन्त्री सुनीध और वस्सकार उस समय नगर को बसा रहे थे, क्योंकि राजा अजातशत्रु बज्जियों को पराजित करने का प्रयत्न कर रहा था। इस समय भगवान् ने पाटलिगाम की भावी उन्नति की भविष्यवाणी करते हुए आनन्द से कहा था कि भविष्य में यह नगर वाणिज्य और व्यवसाय का भारी केन्द्र होगा। "आनन्द ! जितने भी आर्य-आयतन (आर्यों के निवास) हैं, जितने भी वणिक् पथ (व्यापार-मार्ग) हैं, उनमें यह पाटलिपुत्र, पुट-भेदन (माल की गाँठ जहाँ तोली जाय) अग्र (प्रधान) नगर होगा।"[1] इसी समय पाटलिग्राम में 'गौतम द्वार' और 'गौतम घाट' की स्थापना हुई थी, यह हम महापरिनिब्बाण-सुत्त में देखते हैं।[2] उपर्युक्त सब बातों की सूचना हमें उदान में भी मिलती है।[3] भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में पाटलिग्राम के लोगों का एक आवसथागार (अतिथिशाला या विश्रामगृह) था जहाँ भगवान् ने अपनी अंतिम यात्रा में सन्ध्या समय गृहस्थ लोगों को शील के सम्बन्ध में उपदेश दिया था। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में ही पाटलिपुत्र में कुक्कुटाराम नामक विहार का भी निर्माण हो गया था। आचार्य बुद्धघोष का कहना है कि कुक्कुट सेट्ठि ने इसे बनवाया था।[4] इसी नाम का एक विहार कौशाम्बी में भी था, यह हम वत्स राज्य के प्रसंग में देखेंगे। मज्झिम-निकाय के अट्ठकनागर-सुत्तन्त में पाटलिपुत्र

---

१. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १२५; महाकवि अश्वघोष ने भी इस भविष्यवाणी का उल्लेख किया है। "यह नगर संसार भर में सर्वश्रेष्ठ होगा।" बुद्धचरित २२।४।

२. महाकवि अश्वघोष ने भी बुद्ध-चरित (२२।६, ११) में इन स्मारकों का उल्लेख किया है।

३. पृष्ठ ११७-१२२ (हिन्दी अनुवाद)।

४. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५७१।

के कुक्कुटाराम का उल्लेख है। यहाँ अट्ठकनगर का दशम नामक गृहपति आनन्द का पता लगाने आया था। यही बात अंगुत्तर-निकाय[1] में भी वर्णित है। इसी आराम में आयुष्मान् उदयन की प्रेरणा से घोटमुख नामक ब्राह्मण ने बुद्ध-परिनिर्वाण के कुछ समय बाद एक उपस्थान-शाला (सभा-गृह) बनवाई, जो उसी के नाम पर घोटमुखी उपस्थान-शाला कहलाई।[2] पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम में आयुष्मान् आनन्द और भद्र को धार्मिक संलाप करते हम संयुत्त-निकाय के पठम, दुतिय तथा ततिय कुक्कुटाराम सुत्त में तथा इसी निकाय के सील-सुत्त, ठिति-सुत्त तथा परिहान-सुत्त में देखते हैं। अंगुत्तर-निकाय[3] के वर्णनानुसार स्थविर नारद ने भी पाटलिपुत्र के कुक्कुटाराम में विहार किया था। वर्तमान 'कुर्किहार' नामक गाँव को, जो 'तप्पो' से करीब १० मील दूर है, 'कुक्कुटाराम' की स्थिति माना जा सकता है। समन्तपासादिका में तृतीय संगीति के विवरण से मालूम पड़ता है कि पाटलिपुत्र के दक्षिण-द्वार से पूर्व-द्वार को जाते हुए रास्ते में राजांगण था। इसी अट्ठकथा से हमें यह सूचना मिलती है कि पाटलिपुत्र के चारों दरवाजों की चुंगी से राजा को ४ लाख कहापण की आय होती थी।[4] सम्भवतः अजातशत्रु के पुत्र और उत्तराधिकारी उदायि भद्र (उदय भद्र) के राज्य-काल में अथवा निश्चित रूप से शिशुनाग के पुत्र कालाशोक के समय में पाटलिपुत्र ने राजगृह के स्थान पर मगध की राजधानी का पद ले लिया था। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में पाटलिगाम का पाटलिपुत्त नाम प्रचलित हो गया था और उसका एक नाम कुसुमपुर भी था, जैसा कि थेरीगाथा की इस पंक्ति से प्रकट होता है, "नगरम्हि कुसुमनामे पाटलिपुत्तम्हि पठविया।"[5] यूआन् चुआङ ने साक्ष्य दिया

---

१. जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३४२।

२. घोटमुख-सुत्तन्त (मज्झिम।२।५।४)।

३. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ५७।

४. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ५२।

५. थेरीगाथा, गाथा ४०० (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण); मिलाइये महावंस १८।६८ (हिन्दी अनुवाद)।

है कि इस नगर का पहले नाम कुसुमपुर ही था और बाद में पाटलिपुत्र हुआ।[1] एक मनोरंजक कथा भी पाटलिपुत्र की उत्पत्ति के सम्बन्ध में यूआन् चुआङ ने दी है, जिसमें मुख्य भाव यही है कि पाटलि (गुलाब) नामक पुष्प का पेड़ इस नगर के बसाने की प्रेरणा का आधार बना।[2] पाटलिगाम या पाटलिपुत्त का कुसुमपुर के ही समान एक अन्य नाम पुप्फपुर (पुष्पपुर) भी दिया गया है।[3] अशोक के काल में पाटलिपुत्र में अशोकाराम नामक विहार की स्थापना अशोक राजा के द्वारा हुई, जिसके निर्माण में तीन वर्ष लगे और जिसे इन्द्रगुप्त नामक स्थविर की देखरेख में बनवाया गया।[4] समन्तपासादिका[5] और महावंस[6] के अनुसार तृतीय धर्म-संगीति की कार्यवाही पाटलिपुत्त के इसी आराम में हुई। मिलिन्दपञ्हो में भी अशोकाराम का उल्लेख है और उसके वर्णन से विदित होता है कि पाटलिपुत्र के समीप दो सड़कों के निकलने की एक जगह से एक मार्ग अशोकाराम को जाता था।[7] 'महावंस'[8] में अशोकाराम में स्थित एक जलाशय का भी उल्लेख है। मललसेकर

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ८७।

२. पाटलि पुष्प के पौधे को वधू बना कर किस प्रकार कुछ विनोदी पुरुषों ने अपने एक साथी का विवाह किया, जो एक मनोरंजक रूप से उसके स्थान पर पाटलिपुत्र नगर बसाये जाने का कारण बना, इसके विवरण के लिये देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ८७।

३ महावंस ४।३१; १८।८ (हिन्दी अनुवाद)

४. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ४८-४९; महावंस ५।८०, १६३, १७४ (हिन्दी अनुवाद)।

५. जिल्द पहली, पृष्ठ ४८।

६. ५।२७५-२७६ (हिन्दी अनुवाद)

७. "अथ खो... पाटलिपुत्तस्स अविदूरे द्वेधापथे ठत्वा आयस्मतं नागसेनं एतदवोच-अथ खो तात नागसेन असोकारामस्स मग्गो।" मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ १८ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

८. ५।१६३ (हिन्दी अनुवाद)।

का कहना है कि सम्भवतः अशोकाराम का निर्माण कुक्कुटाराम की स्थिति पर ही हुआ था।[1] उनका यह कहना इस बात पर आधारित है कि यूआन् चुआङ ने कुक्कुटाराम को प्राचीन पाटलिपुत्र नगर के दक्षिण-पूर्व में देखा था और उसे अशोक द्वारा निर्मित बताया है।[2] इससे मललसेकर ने यह भी निष्कर्ष निकाला है कि अशोक के समय में कुक्कुटाराम और अशोकाराम वस्तुतः एक ही विहार के दो नाम थे और यूआन् चुआङ द्वारा निर्दिष्ट कुक्कुटाराम वस्तुतः अशोकाराम ही था।[3] वर्तमान कुर्किहार नामक गाँव को, जो 'तप्पो' से करीब १० मील दूर है, कुक्कुटाराम की स्थिति माना जा सकता है, यह हम पहले कह चुके हैं। यहाँ अनेक महत्वपूर्ण भग्नावशेष भी मिले हैं।

बुद्ध-काल में पाटलिपुत्त उस मार्ग पर पड़ता था जो राजगृह से श्रावस्ती को जाता था। पाटलिपुत्र पर इस मार्ग में गंगा को पार करना पड़ता था। इसी प्रकार पाटलिपुत्र उस मार्ग पर भी एक महत्वपूर्ण पड़ाव था, जो गन्धार राष्ट्र की राजधानी तक्षशिला से चलकर क्रमशः इन्दपत्त, मथुरा, वेरंजा, सोरेय्य, कण्णकुज्ज, पयाग-पतिट्ठान, वाराणसी, पाटलिपुत्र और राजगृह होता हुआ ताम्रलिप्ति तक जाता था। पाटलिपुत्र से गंगा नदी के द्वारा भी ताम्रलिप्ति तक आवागमन होता था तथा माल का परिवहन भी होता था। पाटलिपुत्र से गंगा नदी के मार्ग द्वारा ही भिक्षुणी संघमित्रा अशोक-काल में ताम्रलिप्ति गई थी, जहाँ से लंका के लिये समुद्री मार्ग द्वारा नावें मिलती थी। देवानं पिय तिस्स के दूत भी ताम्रलिप्ति से पाटलिपुत्र तक गंगा के मार्ग से नावों में बैठकर आये थे और उसी मार्ग से लौटे थे। पाटलि-पुत्र से स्थलीय मार्ग भी ताम्रलिप्ति तक जाता था। गंगा नदी के द्वारा वाराणसी और सहजाति तक पाटलिपुत्र के व्यापारियों तथा यात्रियों का आवागमन होता था। वैशालिक भिक्षु नावों में बैठकर पाटलिपुत्र होते हुए सहजाति तक गये थे। इन सब दृष्टियों से भगवान् बुद्ध की पाटलिपुत्र के सम्बन्ध में की गई भविष्यवाणी सर्वथा उपयुक्त थी और उत्तरकालीन इतिहास ने उसे सत्य प्रमाणित किया है।

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ६१५।
२. बील : बुद्धिस्ट रिकार्डस् ऑव दि वैस्टर्न वर्ल्ड, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ९५।
३. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ६१५।

चीनी यात्री फा-ह्यान और यूआन् चुआङ दोनों ने क्रमशः पाँचवीं और सातवीं शताब्दी ईसवी में पाटलिपुत्र की यात्रा की थी। फा-ह्यान ने यहाँ एक अशोक-स्तूप और उसके समीप हीनयान सम्प्रदाय का एक विहार देखा था।[1] यूआन् चुआङ ने इस नगर को गंगा नदी के दक्षिण में देखा था और उसका घेरा उसने ७० 'ली' बताया है।[2] मेगेस्थनीज को पाटलिपुत्र पेलीबोथ्रा और तोलेमी को पेलिम्बोथ्रा के रूप में विदित था। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल तक ही सीमित होने के कारण हम यहाँ इन विवरणों की समीक्षा में अपने विषय-क्षेत्र की अनुरक्षा करते हुए नहीं जा सकते।

दीघलम्बिक नामक एक गाँव भी मगध में था। यहाँ एक अरण्यकुटिका में बुद्ध ने निवास किया था। इसी प्रकार दीघराजि नामक एक अन्य गाँव भी था। यहाँ 'संसार मोचक' नामक सम्प्रदायानुवर्ती लोग काफी संख्या में रहते थे।

मगध के समान कोसल राज्य का भी विस्तार पालि-विवरणों में ३०० योजन बताया गया है। अंग-मगध के समान काशी-कोसल में भी ८०,००० गाँव थे और जिस प्रकार राजगृह को अंग-मगध की आमदनी का मुख कहा गया है, उसी प्रकार श्रावस्ती को काशी-कोसल के सम्बन्ध में कहा गया है।[3] जिस प्रकार बुद्ध-पूर्व काल का स्वतंत्र अंग राष्ट्र बुद्ध-काल में मगध राज्य का एक अंग हो गया था, उसी प्रकार काशी जनपद, जो बुद्ध-पूर्व काल का सम्भवतः सबसे अधिक प्रभावशाली जनपद था, भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में, बल्कि उसके कुछ पूर्व से, कोसल राज्य की अधीनता में आ गया था। यह भी एक आश्चर्यजनक रूप से समान बात है कि जिस प्रकार बुद्ध-पूर्व काल में अंग को कभी-कभी मगध से अधिक सबल राष्ट्र बताया गया है और अंग के द्वारा उसकी विजय भी दिखाई गई है, उसी प्रकार बुद्ध-

---

१. लेग्गे : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ७७-७८।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ८७।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १४, पद-संकेत २; १९९, २००, २०१; समन्तपासादिका, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६१४; सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १४८।

पूर्व काल में काशी जनपद की समृद्धि कोसल जनपद से अधिक थी, बल्कि काशी की तुलना में कोसल जनपद प्रायः दरिद्र ही था, ऐसा भी कहा गया है।[1] परन्तु बाद में स्थिति बदल गई। कोसलराज प्रसेनजित् के पिता महाकोसल के समय में ही काशी जनपद कोसल राज्य के अधिकार में आ गया था। तभी उसके लिये काशी गाँव को अपनी पुत्री (प्रसेनजित् की बुआ) कोसला देवी को, जिसका विवाह उसने मगधराज बिम्बिसार से किया था, स्नान और सुगन्ध के व्यय के लिये देना सम्भव हो सका था। प्रसेनजित् तो निश्चित रूप से कोसल के समान काशी जनपद का भी स्वामी माना जाता था। काशी-कोसल उसके राज्य में मिलकर एक हो गये थे। दीघ-निकाय के लोहिच्च-सुत्त में भगवान् बुद्ध लोहिच्च ब्राह्मण से पूछते हैं, "लोहिच्च ! तो क्या समझते हो राजा प्रसेनजित् कोसल और काशी का स्वामी है कि नहीं !" "हाँ है, हे गौतम !" आगे इसी सुत्त में आया है कि राजा प्रसेनजित् काशी और कोसल राज्यों की आय का अपने आश्रितों के सहित उपभोग करता है। मज्झिम-निकाय के पियजातिक-सुत्तन्त में भी हम स्वयं प्रसेनजित् को यह कहते देखते हैं कि काशी और कोसल के लोग उसे प्रिय हैं और उनके संकट से उसे दुःख होगा, क्योंकि उनके कारण ही तो वह जीवन में इतना सुख भोग कर रहा है। काशी के अलावा शाक्य गणतन्त्र भी, आन्तरिक मामलों में स्वतंत्र होते हुए, कोसल राज्य के अधीन ही था। सुत्त-निपात के पब्बज्जा-सुत्त में शाक्यकुमार ने अपने महाभिनिष्क्रमण के बाद राजगृह के पाण्डव पर्वत पर राजा बिम्बिसार के प्रति अपना जो परिचय दिया, उसमें उन्होंने यही कहा कि "जन्म से शाक्य (साकिया नाम जातिया) और कोसल देश में रहनेवाले (कोसलेसु निकेतिनो), एक राजा हैं, जिनके कुल से मैं प्रव्रजित हुआ हूँ।" इससे शाक्यों का कोसल

---

१. "भिक्षुओ ! भूत काल में वाराणसी में ब्रह्मदत्त नामक काशिराज था। वह महाधनी, महाभोगवान्, महासैन्य-युक्त, महावाहन-युक्त, महाराज्य-युक्त और भरे कोष-कोष्ठागार वाला था। उस समय दीघित नामक कोसल-राज था। वह दरिद्र, अल्पधन, अल्पभोग, अल्पसैन्य, अल्पवाहन, थोड़े राज्य वाला और अपरिपूर्ण कोष-कोष्ठागार वाला था।" विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३२५।

देश के अधीन माना जाना सिद्ध होता है। दीघ-निकाय के अग्गञ्ञ-सुत्त में स्वयं भगवान् बुद्ध ने कहा है, "शाक्य लोग कोसलराज प्रसेनजित् के अधीन हैं।" इस प्रकार सभी शाक्य लोगों को कोसलदेशवासी या कोसलक कहा जा सकता था। प्रसेनजित् इसी बात का अनुभव कर प्रसन्न हुआ करता था कि "भगवान् भी कोसलक हैं, मैं भी कोसलक हूँ।"[1] भद्दसाल जातक से भी यह बात स्पष्ट हो जाती है कि इस समय शाक्य कोसल राज्य के अधीन थे। अंगुत्तर-निकाय के केसपुत्तिय-सुत्त में कालामों के निगम केसपुत्त को कोसल देश में स्थित बताया गया है। इससे यह प्रकट होता है कि कालाम क्षत्रियों का गणतन्त्र भी कोसल राज्य के अधीन था। उत्तर पञ्चाल और आलवी जनपद पर डा० विमलाचरण लाहा ने कोसल राज्य के अधिकार की बात कही है।[2] परन्तु पालि विवरणों से इसे स्पष्ट समर्थन प्राप्त नहीं होता। संयुत्त-निकाय के पंचराज-सुत्त में 'प्रसेनजित्-प्रमुख पाँच राजाओं' (पञ्चराजानो पसेनदि-पमुखा) का उल्लेख है। इसका स्पष्ट तात्पर्य यह है कि कोसलराज प्रसेनजित् पाँच राजाओं का मुखिया था। इन पाँच राजाओं के नाम हमें उपर्युक्त सुत्त में नहीं मिलते। डा० हेमचन्द्र रायचौधरी का अनुमान है कि ये पाँच राजा इस प्रकार थे। (१) काशिराज, जो प्रसेनजित् का सगा भाई था, (२) सेतव्या का पायासि राजन्य, जिसका उल्लेख दीघ-निकाय के पायासि-सुत्तन्त में है, (३) कपिलवस्तु का शाक्य राजा, (४) देवदह का राजा और (५) केसपुत्त के कालामों का राजा।[3] प्रसेनजित् का सहपाठी बन्धुल मल्ल उसका सेनापति था और उसके बाद बन्धुल मल्ल का भानजा दीघ कारायण (दीघ चारायण) प्रसेनजित् का सेनापति बना, इससे डा० रायचौधरी ने अनुमान लगाया है कि इन लोगों ने मल्ल राष्ट्र पर भी प्रसेनजित् के प्रभाव को

---

१. धम्मचेतिय-सुत्तन्त (मज्झिम २।४।९)।

२. इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्सट्स ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, पृष्ठ ४३।

३. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १५५।

स्थापित रखने में सहायता की होगी।[1] भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के समय तक हम पावा और कुसिनारा दोनों जगहों के मल्लों को पूर्ण स्वतन्त्र और स्वाभिमानी पाते हैं, जैसा महापरिनिब्बाण-सुत्त में उनके उल्लेख से स्पष्ट विदित है। बाद में अवश्य उनका अन्तर्भाव कोसल देश के साथ ही मगध राज्य में हो गया। बुद्ध-काल में कोसल देश की सीमा उत्तर में हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण में सई (सुन्दरिका) या अधिक से अधिक गंगा नदी तक थी। पूर्व में उसका विस्तार सम्भवतः अचिरवती (रापती) नदी तक था और पश्चिम में उसकी सीमा गोमती नदी के द्वारा पञ्चाल से विभक्त थी। डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने कोसल राज्य की सीमाओं का उल्लेख करते हुए कहा है कि पूर्व में उसकी सीमा सदानीरा (गण्डक) नदी के द्वारा विदेह से विभक्त थी।[2] यह कहना ठीक नहीं जान पड़ता, क्योंकि कोसल और विदेह के बीच में तो कोसल देश की ओर से प्रारम्भ करके क्रमशः मल्ल और वज्जियों के प्रभावशाली गणराज्य थे।

कोसल राज्य के पूर्व या दक्षिण-पूर्व में मगध और पश्चिम में पहले पंचाल और फिर कुरु जनपद थे। उसके उत्तर-पूर्व में मल्ल और वज्जि राष्ट्र थे और दक्षिण में चेदि और वंस राष्ट्र। इन सब पड़ोसियों में वस्तुतः दो ही पड़ोमी पर्याप्त शक्तिशाली थे जो कोसल देश के न केवल प्रतिद्वन्द्वी थे, बल्कि जिनके आक्रमण का भी उसे सदा भय रहता था। वे दो पड़ोसी थे मगध और वज्जि-संघ। कोसलराज प्रसेनजित् जब डाकू अंगुलिमाल को पकड़ने के लिये काफी दौड़धूप कर रहा था, तो उस समय भगवान् बुद्ध ने उससे पूछा था, "महाराज ! क्या तुम पर राजा मागध श्रेणिक बिम्बिसार बिगड़ा है या वैशालिक लिच्छवि ?"[3]

कोसल देश की राजधानी भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में सावत्थि (श्रावस्ती) थी। यह नगर, जैसा हमें दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त तथा महासुदस्सन-सुत्त से मालूम होता है, बुद्धकालीन भारत के छह महानगरों में माना जाता था। आचार्य बुद्धघोष के मतानुसार ५७ लाख परिवार उस समय श्रावस्ती में रहते

---

१. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १९९।
२. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ७७, १९९।
३. अंगुलिमाल-सुत्तन्त (मज्झिम-२।४।६)।

थे और उसकी आबादी १८ करोड़ थी।[1] श्रावस्ती एक समृद्ध, जनाकीर्ण और व्यापारिक महत्व वाली नगरी थी। चूँकि यहाँ मनुष्यों के उपभोग-परिभोग की सब वस्तुएँ सुलभ थीं, इसलिये उसका नाम श्रावस्ती पड़ा था। "यं किं च मनुस्सानं उपभोग-परिभोगं सब्बं एत्थ अत्थीति सावत्थि।"[2] एक अन्य किंवदन्ती का भी उल्लेख इस नगर के नामकरण के सम्बन्ध में आचार्य बुद्धघोष ने किया है। वह यह है कि एक बार काफिले वालों ने यहाँ आकर पूछा कि यहाँ क्या सामान है? (किं भण्डं अत्थि)। इसके उत्तर में उनसे कहा गया "सब कुछ है" (सब्बं अत्थीति)। इसी उत्तर के आधार पर, आचार्य बुद्धघोष के मतानुसार, इस नगरी का नाम "सावत्थि" पड़ा। "सब्बं अत्थीति वचनमुपादाय सावत्थि।"[3] एक तीसरी अनुश्रुति का उल्लेख करते हुए आचार्य बुद्धघोष ने यह भी कहा है कि पूर्व काल में सवत्थ नामक ऋषि के यहाँ निवास करने के कारण इस नगरी का यह नाम पड़ा।[4] श्रावस्ती अचिरवती नदी के किनारे बसी हुई थी। राजप्रासाद भी इस नदी के समीप ही था।

बुद्ध-धर्म के प्रचार की दृष्टि से श्रावस्ती का भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान था। प्रथम चार निकायों के ८७१ सुत्तों का उपदेश अकेले श्रावस्ती में दिया गया, जिनमें से ८४४ जेतवन में उपदिष्ट किये गये, २३ पुब्बाराम में, और ४ श्रावस्ती के आसपास स्थानों में। जिन कुल ८७१ सुत्तों का उपदेश भगवान् ने श्रावस्ती में दिया, उनमें से ६ सुत्त दीघ-निकाय के हैं, ७५ मज्झिम-निकाय के, ७३६ संयुत्त-निकाय के और ५४ अंगुत्तर-निकाय के। इनका नामोल्लेख करना तो यहाँ नितान्त असम्भव ही होगा। इनके अतिरिक्त जातक की ४१६ कहानियों का उपदेश भी अकेले श्रावस्ती में दिया गया। कितना बड़ा प्रचार-केन्द्र श्रावस्ती बुद्ध-धर्म का भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में ही बन गया था, यह इन उपदिष्ट सुत्तों और जातक-कथाओं की संख्या से भली प्रकार जाना जा सकता है।

---

१. परमत्थजोतिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ३७१; समन्तपासादिका, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६३६।

२,३,४. पपंचसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ५९; विष्णु-पुराण (अध्याय २) के अनुसार इक्ष्वाकुवंशीय राजा श्रावस्त या श्रावस्तक ने इसे बसाया था। अन्य कई पुराणों में भी यही बात कही गई है।

श्रावस्ती के अनेक पुरुष और स्त्री भगवान् बुद्ध के प्रभाव में आये। कंखा रेवत, वक्कलि, सुभूति, अजित, कुंडधान, वंगीस, स्वागत, मोघराज, मोभित आदि भिक्षु किसी न किसी प्रकार श्रावस्ती से सम्बन्धित रहे थे। इसी प्रकार महिलाओं में महोपासिका विशाखा मृगारमाता, उत्पलवर्णा, सकुला, कृशा गौतमी, सोणा और पटाचारा आदि के नाम लिये जा सकते हैं। जानुस्सोणि ब्राह्मण भी श्रावस्ती में निवास करता था। अनाथपिण्डिक के अलावा महासुवण्ण जैसे कई महाधनी सेठों के भी नाम लिये जा सकते हैं, जो श्रावस्ती में निवास करते थे। स्थविर अंगुलिमाल की प्रव्रज्या श्रावस्ती में ही हुई थी।[1]

श्रावस्ती बुद्धकालीन भारत की एक बड़ी समृद्ध नगरी थी। वह उस समय के सब महानगरों से व्यापारिक मार्गों के द्वारा जुड़ी हुई थी। श्रावस्ती से राजगृह जाने वाला मार्ग बुद्ध-काल में अति प्रसिद्ध और सुविदित मार्ग था, जिसमे यात्रियों का काफी आवागमन होता था। भगवान् श्रावस्ती के पूर्वाराम विहार में गणक मोग्गल्लान नामक ब्राह्मण से संलाप करते हुए उससे पूछते है, "ब्राह्मण ! राजगृह जाने वाले मार्ग से तो तुम सुपरिचित हो न ?" "हाँ, भन्ते ! मैं राजगृह जाने वाले मार्ग से सुपरिचित हूँ।"[2] इस मार्ग पर पड़ने वाले स्थान श्रावस्ती से प्रारम्भ कर इस प्रकार थे, श्रावस्ती, सेतव्या, साकेत, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा, भोगनगर, वैशाली और राजगृह। बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ 'दिव्यावदान' मे भी श्रावस्ती से राजगृह जाने वाले मार्ग का उल्लेख है और कहा गया है कि एक बार भगवान् बुद्ध अपने शिष्यों के सहित जब इस मार्ग से यात्रा कर रहे थे तो उन्होंने श्रावस्ती के कुछ व्यापारियों को छह बार डाकुओं के चंगुल से बचाया था। इसी ग्रन्थ मे यह भी कहा

---

१. अंगुलिमाल-सुत्तन्त (मज्झिम० २।४।६); परन्तु महाकवि अश्वघोष के अनुसार सुह्म जनपद में अंगुलिमाल की प्रव्रज्या हुई। उन्होंने लिखा है, "सुह्मों के बीच भगवान् ने दिव्य शक्ति (ऋद्धि) के प्रभाव से अंगुलिमाल ब्राह्मण को विनीत किया, जो सौदास के समान क्रूर था।" बुद्ध-चरित २१।१३।पालि विवरण ही निश्चयतः ठीक जान पड़ता है, क्योंकि चीनी यात्रियों के विवरण का भी समर्थन उसे प्राप्त है।

२. गणक मोग्गल्लान सुत्तन्त (मज्झिम० ३।१।७)।

गया है कि श्रावस्ती से राजगृह जाने वाले यात्रियों को मार्ग में गंगा नदी पार करनी पड़ती थी। नावों का प्रबन्ध वैशाली के विच्छवियों या मगधराज अजातशत्रु की ओर से किया जाता था।[1] एक अन्य मार्ग श्रावस्ती से चल कर बुद्ध-काल में दक्षिणापथ के प्रतिष्ठान (पैठन) नगर तक पहुँचता था। इस मार्ग के प्रसिद्ध स्थान श्रावस्ती से प्रारम्भ कर इस प्रकार थे, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी, बिदिशा, गोनद्ध, उज्जैन (उज्जेनी), माहिष्मती और प्रतिष्ठान। अतः इन सब नगरों से श्रावस्ती व्यापारिक सम्बन्धों द्वारा जुड़ी हुई थी। श्रावस्ती से सोरेय्य (सोरों) होते हुए तक्षशिला तक निरन्तर शकट-सार्थ चलते रहते थे। श्रावस्ती वाराणसी से भी व्यापारिक मार्ग द्वारा सयुक्त थी और इन दोनों नगरों के बीच में कीटागिरि नामक स्थान पड़ता था। श्रावस्ती से राजगृह की दूरी ४५ योजन और तक्षशिला की १९२ योजन बताई गई है।[2] जातक और अट्ठकथाओं में श्रावस्ती से अनेक स्थानों की दूरी के विवरण दिये गये हैं। इस प्रकार उसे साकेत से ६ योजन, संकाश्य से ३० योजन, सुप्पारक से १२० योजन, आलवी से ३० योजन, मच्छिकासण्ड से ३० योजन, कुक्कुटवती से १२० योजन और कुररघर से १२० योजन बताया गया है।

श्रावस्ती के साथ भगवान् बुद्ध के जीवन और कार्य का जितना अधिक सम्बन्ध रहा है, उतना किसी अन्य बुद्धकालीन नगर के बारे में नहीं कहा जा सकता। बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद की चौदहवीं वर्षा तो भगवान् ने श्रावस्ती में बिताई ही, अन्य न जाने कितने अवसरों पर वे कभी वाराणसी, कभी वैशाली, कभी राजगृह, कभी थुल्ल-कोट्ठित और न जाने कितने अन्य स्थानों से इस नगरी में गये और सबसे बड़ी बात तो यह है कि उन्होंने अपने जीवन के अन्तिम २५ वर्षों के (इक्कीसवें से लेकर पैंता-लीसवें तक) वर्षावास श्रावस्ती में ही किये और अधिकांश समय भी वहीं बिताया। यही कारण है कि इतने अधिक सुत्त श्रावस्ती में ही भाषित किये गये, जिनका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं।

---

१. दिव्यावदान, पृष्ठ ५५, ९४-९५।

२. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १ ५२।

श्रावस्ती का सर्वाधिक महत्वपूर्ण विहार भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में जेतवनाराम था। इसे श्रावस्ती के सेठ अनाथपिण्डिक ने बनवाया था। उसके बाद मृगारमाता के पूर्वाराम विहार का नाम लिया जायगा। यद्यपि निवास की दृष्टि से भगवान् ने पूर्वाराम विहार में भी जेतवनाराम के प्रायः समान ही निवास किया,[1] परन्तु सर्वाधिक सुत्तों का उपदेश जेतवनाराम में ही दिया गया। जिन अवस्थाओं में इन दोनों विहारों का निर्माण हुआ, उनका उल्लेख हम द्वितीय परिच्छेद में कर चुके हैं और उन पर जो व्यय हुआ, उसका कुछ उल्लेख हम पाँचवें परिच्छेद में करेंगे।

जेतवनाराम श्रावस्ती के न अति दूर और न अति समीप, शान्त वातावरण मे, श्रावस्ती के दक्षिण द्वार के समीप स्थित था। यह एक विशाल क्षेत्र में स्थित आराम था और शान्त वातावरण के साथ-साथ प्रत्येक आवश्यक वस्तु की व्यवस्था की गई थी। विनय-पिटक में कहा गया है, "अनाथपिण्डिक गृहपति ने जेतवन में विहार (भिक्षु-विश्राम-स्थान) बनवाये, परिवेण (आँगन सहित घर) बनवाये, कोठरियाँ बनवाईं, उपस्थान शालाएँ (सभा-गृह) बनवाईं, अग्नि-शालाएँ (पानी गर्म करने के लिये) बनवाईं, कल्पिक कुटियां (भण्डार) बनवाईं, पाखाने, पेशाब-खाने, टहलने के स्थान (चंक्रमण), चंक्रमण शालाएँ, प्याऊ, प्याऊघर, जन्ताघर (स्नानागार), जन्ताघर-शालाएँ, पुष्करिणियाँ, मंडप बनवाये।"[2] विशेषतः इसके अन्दर चार बड़े घर (महागेहानि) थे, जिनके नाम थे कारेरि कुटी, कोसम्ब कुटी, गन्ध कुटी, और सललघर या सललागार। इनमें से प्रथम तीन कुटियाँ अनाथ-पिंडिक के द्वारा बनवाई गई थीं और सललागार राजा प्रसेनजित् के द्वारा निर्मित करवाया गया था।[3] दीघ-निकाय के महापदान-सुत्त में हम भगवान् को कारेरि कुटी में भिक्षुओं को उपदेश करते देखते हैं। संयुत्त-निकाय के सललागार-सुत्त में स्थविर अनुरुद्ध के सललागार में विहार का उल्लेख है। सललघर या सललागार

---

१. विशेष विवरण इस सम्बन्ध में द्वितीय परिच्छेद में भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के विवरण-प्रसंग में दिया जा चुका है।

२. पृष्ठ ४६२ (हिन्दी अनुवाद)।

३. सुमंगलविलासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४०७।

कुटी का यह नाम इसलिये पड़ा था कि इसके दरवाजे पर सलल नामक सुगन्धित वृक्ष थे। आचार्य बुद्धघोष ने इसे "सललमय गन्धकुटी"[1] और "सललरुक्खमय"[2] कहकर पुकारा है।

जेतवनाराम के प्रवेश-द्वार का नाम 'द्वार कोठ्ठक' था जिसे कुमार जेत ने बनवाया था। जिस समय अनाथपिण्डिक कोर से कोर अशर्फियों की मिलाकर भूमि पर बिछवा रहा था और इस प्रकार विहार के लिये जमीन कुमार जेत से खरीद रहा था, तो कहा गया है कि एक बार लाया गया सोना एक द्वार के कोठे के बराबर थोड़ी सी जगह के लिये कम रह गया और उसने उसे लाने के लिये अपने नौकरों को आज्ञा दी। परन्तु कुमार जेत ने उसे रोकते हुए कहा, "बस गृहपति! "तू इस खाली जगह को मत ढँकवा। यह खाली जगह मुझे दे। यह मेरा दान होगा।" इस जगह पर उसने 'द्वार कोट्ठक' अर्थात् द्वार पर स्थित कोठे का निर्माण किया,[3] जो गन्धकुटी के सामने था। यह विहार की पूर्व दिशा का फाटक था।

इस द्वारकोट्ठक के समीप ही आनन्दबोधि वृक्ष था। बोधि-वृक्ष के बीज से इस वृक्ष को उगाया गया था। आनन्द के उद्योग से इस वृक्ष को उगाया गया था, इसलिए उनके नाम पर ही यह 'आनन्द बोधि नाम से प्रसिद्ध हो गया। एक रात भगवान् बुद्ध ने इसके नीचे ध्यान भी किया था। पदुम जातक और कालिंग जातक का उपदेश इस वृक्ष को लक्ष्य कर ही दिया गया था। आज जेतवन विहार के भग्नावशेषों के सामने एक पुराना पीपल का वृक्ष खड़ा है, जिसे आनन्द बोधि का उत्तराधिकारी या वंशज माना जा सकता है।

विशाखा मृगारमाता द्वारा निर्मित पूर्वाराम प्रासाद 'हत्थिनख प्रासाद' भी कहलाता था। यह एक आलिन्द-सहित बना हुआ भवन था और इसकी आकृति हाथी के नख या खर्बूजे की तरह थी। इस विहार का निर्माण स्थविर महामौद्गल्यायन के निर्देशन में हुआ था। विभिन्न निकायों के जिन सुत्तों का उपदेश मृगारमाता

---

१. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७०५।

२. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २०५।

३. पूरे विवरण के लिये देखिये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४५८-४६२।

के प्रासाद पूर्वाराम में दिया गया, उनका उल्लेख हम प्रथम परिच्छेद में पालि तिपिटक के भौगोलिक महत्व का विवेचन करते समय कर चुके हैं। पूर्वाराम प्रासाद, जैसा उसके नाम से विदित है, श्रावस्ती के पूर्व द्वार के समीप स्थित था। जेतवनाराम के साथ उसकी आपेक्षिक स्थिति के सम्बन्ध में धम्मपदट्ठकथा में कहा गया है, "शास्ता विशाखा के घर भिक्षा ग्रहण कर दक्षिण द्वार से निकल, जेतवन में वास करते थे। अनाथपिण्डिक के घर भिक्षा ग्रहण कर पूर्व द्वार से निकल कर पूर्वाराम में निवास करते थे।"[1] इसका अर्थ यह है कि पूर्वाराम विहार जेतवन विहार से कुछ दूर पूर्व या पूर्वोत्तर दिशा में स्थित था। फा-ह्यान ने विशाखा के इस आराम को श्रावस्ती नगर से ६ या ७ 'ली' उत्तर-पूर्व में देखा था।[2] जैसा हम दूसरे परिच्छेद में कह चुके हैं, यदि भगवान् दिन जेतवन में व्यतीत करते थे तो रात को पूर्वाराम-प्रासाद में रहते थे और यदि दिन को पूर्वाराम प्रासाद में रहते थे तो रात को जेतवन में टिकते थे। पूर्वाराम प्रासाद एक विशाल दो-मंजिला भवन था। धम्मपदट्ठकथा में कहा गया है, "नीचे के तल पर पाँच सौ गर्भ (कोठरियाँ) और ऊपर के तल पर पाँच सौ गर्भ (कोठरियाँ) इस प्रकार एक हजार गर्भ (कोठरियों) से मंडित वह प्रासाद था।"[3] पूर्वाराम विहार की आधुनिक स्थिति सहेट-महेट के पास उनके पूर्व की ओर का हनुमनबा नामक स्थान है।

उपर्युक्त दो महाविहारों के अतिरिक्त श्रावस्ती के अन्दर भिक्षुणियों के लिये राजा प्रसेनजित् के द्वारा बनवाया गया एक 'राजकाराम' नामक विहार भी था। महापजावति गोतमी की प्रार्थना पर भगवान् बुद्ध ने यहाँ एक बार मज्झिम-निकाय के नन्दकोवाद-सुत्तन्त का उपदेश दिया था। संयुत्त-निकाय के सहस्स-सुत्त में भी इस आराम का उल्लेख है। भिक्षुणी हो जाने के बाद राजा प्रसेनजित् की भगिनी सुमना (बुड्ढपब्बजिता) यहीं निवास करती थी। इस विहार की स्थिति के सम्बन्ध में एक महत्वपूर्ण संकेत हमें इस बात से मिलता है कि जातकट्ठकथा में इसे 'पिट्ठि विहार' कहकर पुकारा गया है। इसका अर्थ यह है कि यह जेतवन

---

१. देखिये बुद्धचर्या, पृष्ठ ३१९।

२. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३३।

३. उपर्युक्त पद-संकेत १ के समान।

के पीछे स्थित था, अर्थात् जेतवन के उत्तर या उत्तर-पूर्व में श्रावस्ती नगर से लगा हुआ, या सम्भवतः उसी में स्थित। जैसा हम आगे देखेंगे, इस भिक्षुणी-विहार का उल्लेख फा-ह्यान ने किया है और उसे महाप्रजावती गौतमी के नाम से सम्बद्ध किया है।

श्रावस्ती के पूर्व द्वार के फाटक (पुब्बकोट्ठक) के समीप रम्मक नामक ब्राह्मण का 'रम्मकाराम' नामक एक आश्रम भी था। भगवान् ने यहाँ एक बार जाकर उपदेश दिया था, जो मज्झिम-निकाय के पासरासि (अरिय-परियेसन)-सुत्तन्त में निहित है।

प्रसेनजित् की रानी मल्लिका के द्वारा बनवाया गया मल्लिकाराम भी श्रावस्ती के नगर-द्वार के पास स्थित था। यह एक परिव्राजकाराम था। दीघ-निकाय के पोट्ठपाद-सुत्त से हमें पता चलता है कि पोट्ठपाद नामक परिव्राजक यहाँ निवास करता था। इसी सुत्त में इस आराम के विषय में कहा गया है "समयप्पवादके तिण्डुकाचीरे एकसालके मल्लिकाय आरामे" अर्थात् "समय-प्रवादक (भिन्न-भिन्न मतों के वाद के स्थान) एकशालक (एक शाला वाले) मल्लिका के आराम तिन्दुकाचीर में।" इससे यह प्रकट होता है कि मल्लिकाराम (मल्लिका के आराम) का ही नाम तिन्दुकाचीर था और यहाँ भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों के मतवादों पर शास्त्रार्थ चला करता था। यह आराम एक ही शाला वाला था। तिन्दुक (या तिण्डुक) अर्थात् तेंदू या आबनूस के वृक्षों से घिरे रहने के कारण यह 'तिन्दुकाचीर' (तिण्डुकाचीर भी पाठान्तर) कहलाता था। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने इसे वर्तमान महेट के पास चीरेनाथ नामक स्थान से मिलाया है।[1]

पाटिकाराम नामक विहार श्रावस्ती के समीप ही था। जब सुनक्षत्र लिच्छवि-पुत्र भिक्षु-संघ को छोड़ कर गया, तब भगवान् इस विहार में ही निवास कर रहे थे।[2]

जेतवन के समीप तित्थियाराम नामक विहार था। यह अन्य धर्मावलम्बियों

---

१. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ६७, पद-संकेत १; बुद्धचर्या, पृष्ठ १७६, पद-संकेत १।

२. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ३८९।

(तैर्थिकों) का विहार था।[1] महाप्रजावती गौतमी से उपदेश ग्रहण करने से पूर्व भद्रा कापिलायिनी (भद्रा कापिलानी) ने यहाँ पाँच वर्ष तक साधना की थी। चिञ्चा-काण्ड, जैसा हम आगे देखेंगे, इस आराम के समीप ही हुआ था।

श्रावस्ती के पूर्व द्वार का फाटक पुब्ब कोट्ठक (पूर्व कोष्ठक) कहलाता था। आधुनिक महेट के कान्हभारी दरवाजे की स्थिति पर यह सम्भवतः था। मज्झिम-निकाय के पासरासि (अरिय-परियेसन) सुत्तन्त तथा संयुत्त-निकाय के पुब्बकोट्ठक-सुत्त में श्रावस्ती के पुब्बकोट्ठक का उल्लेख है। पुब्बकोट्ठक से कुछ दूर पर ही अचिरवती नदी बहती थी। इसमें गात्र-सिंचन (स्नान) के लिये आनन्द को साथ लेकर भगवान् को हम मज्झिम-निकाय के पासरासि (अरिय-परियेसन)-सुत्तन्त में देखते हैं। मज्झिम-निकाय के बाहीतिक सुत्तन्त से हमें सूचना मिलती है कि राजप्रासाद भी इसके समीप ही था। राजप्रासाद से कुछ दूर उत्तर-पश्चिम में चलकर अनाथपिण्डिक का घर था और उससे कुछ दूर उत्तर-पश्चिम कोण में ही विशाखा मृगारमाता का घर था, ऐसा हमें चीनी यात्रियों के वृत्तान्तों और महेट क्षेत्र में की गई खुदाई में प्राप्त सामग्री के तुलनात्मक पर्यालोचन से विदित होता है।

श्रावस्ती के समीप ही, उसकी दक्षिण दिशा में, एक गावुत (करीब दो मील) की दूरी पर, अन्धवन नामक वन था। यहाँ हम एक बार आयुष्मान् कुमार काश्यप को विहार करते देखते हैं।[2] संयुत्त-निकाय के राहुल-सुत्त में हम राहुल को साथ लेकर भगवान् को दिन के विहार के लिये श्रावस्ती के समीप अन्धवन में जाते देखते हैं। मज्झिम-निकाय के चूल-राहुलोवाद-सुत्तन्त का उपदेश यहीं भगवान् ने राहुल को दिया था। अन्धवन में एक पधान-घर या ध्यान-भवन बना हुआ था।[3] इसलिये हम अनेक बुद्धकालीन भिक्षु-भिक्षुणियों को यहाँ ध्यानार्थ जाते देखते हैं। खेम और सोम नामक भिक्षुओं ने यहाँ ध्यान किया था।[4] धर्मसेनापति सारिपुत्र ने अन्धवन में ध्यान करते हुए ही यह साक्षात्कार किया था कि भव-निरोध

---

१. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४१५-४१६; जिल्द चौथी, पृष्ठ १८७।
२. वम्मिक-सुत्तन्त (मज्झिम० १।३।३)।
३. पपञ्चसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३३८।
४. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३५८।

ही निर्वाण है।[१] संयुत्त-निकाय के बाल्हगिलान-सुत्त में हम अनुरुद्ध को अन्धवन में बीमार पड़े देखते हैं। संयुत्त-निकाय के भिक्खुणी-संयुत्त में हम कई भिक्षुणियों को अन्धवन में विहार करते देखते हैं। भिक्षुणी सोमा (सोमा-सुत्त), किसा गोतमी (किसा गोतमी-सुत्त), विजया (विजया-सुत्त), उप्पलवण्णा (उप्पलवण्णा-सुत्त) चाला (चाला-सुत्त), उपचाला (उपचाला-सुत्त), सीसूपचाला (सीसूपचाला-सुत्त), सेला (सेला-सुत्त) और वजिरा (वजिरा-सुत्त) नामक भिक्षुणियों के इस प्रकार अन्धवन में ध्यान के लिये जाने के उल्लेख हैं। थेरीगाथा की अट्ठकथा[२] तथा जातक[३] में भी इन भिक्षुणियों के अन्धवन में ध्यान के लिये जाने के उल्लेख हैं। अन्धवन में चोरों का भय सदा बना रहता था। काश्यप बुद्ध के समय में चोरों ने सोरत (यसोधर भी पाठान्तर) नामक स्थविर की आँखें निकाल कर उनकी निर्मम हत्या की थी। इस दुष्कृत्य के कारण चोर अन्धे हो गये थे और वन में इधर-उधर घूमने लगे थे। पपञ्चसूदनी[४] और सारत्थप्पकासिनी[५] के अनुसार 'अन्धवन' का यह नाम पड़ने का यही कारण था। परन्तु फा-ह्यान ने 'पुनः प्राप्त चक्षु' के नाम से इस वन को पुकारते हुए एक दूसरी अनुश्रुति का उल्लेख किया है जिसके अनुसार ५०० अन्धों को बुद्धानुभाव से इस वन में चक्षुओं की पुनः प्राप्ति होने के कारण इस वन का यह नाम पड़ा था। फा-ह्यान ने इस वन को 'स्वर्णोपवन चैत्य" (जेत-वनाराम) से ४ 'ली' उत्तर-पश्चिम दिशा में देखा था।[६] अन्धवन में एक बार प्रसेनजित् को भी चोरों ने घेर लिया था जब कि वह कुछ थोड़े से सिपाहियों के साथ वहाँ होकर जा रहा था।[७] वर्तमान पुरना नामक स्थान को अन्धवन की स्थिति पर माना जा सकता है।

श्रावस्ती के प्रसंग में गण्डम्ब रुक्ख (गण्ड के आम्र-वृक्ष) का भी उल्लेख कर

---

१. वहीं, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ९।
२. पृष्ठ ६६, १६३।
३. जिल्द पहली, पृष्ठ १२८।
४. जिल्द पहली, पृष्ठ ३३६।
५. जिल्द पहली, पृष्ठ १४८।
६. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३२-३३।
७. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १३१-१३२।

देना चाहिये। यह एक आम का पेड़ था जिसे श्रावस्ती के प्रवेश-द्वार पर लगाया गया था और जिसके नीचे ही बुद्ध ने यमक पाटिहारिय का प्रदर्शन किया था। प्रसेनजित् के माली गण्ड ने एक सुन्दर आम का फल भगवान् को अर्पित किया था। इसकी गुठली रोपी गई, जिससे बढ़कर वृक्ष हुआ। गण्ड के नाम पर यही गण्ड का आम्र-वृक्ष या गण्डम्ब रुक्ख कहलाया। जैसा हम अभी कह चुके हैं, भगवान् ने ऋद्धि-प्रदर्शन इस वृक्ष के नीचे ही किया।[1] दिव्यावदान (पृष्ठ १५१) में ऋद्धि-प्रदर्शन के स्थान को श्रावस्ती और जेतवन के बीच में (अन्तरा च श्रावस्तीमन्तरा च जेतवनम्) बताया गया है। अतः यही स्थिति गण्ड के आम्र-वृक्ष की होनी चाहिये।

फा-ह्यान और यूआन् चुआङ दोनों ही चीनी यात्रियों ने क्रमशः पाँचवीं और सातवीं शताब्दी ईसवी में श्रावस्ती की यात्रा की। फा-ह्यान ने भगवान् बुद्ध की मौसी महाप्रजावती गौतमी के भिक्षुणी-संघाराम, सुदत्त (अनाथपिंडिक) द्वारा निर्मित विहार और अंगुलिमाल की प्रव्रज्या के स्थान तथा अन्य कई स्थानों का उल्लेख किया है।[2] यूआन् चुआङ ने भी प्रायः इन्हीं सब स्थानों का वर्णन किया है।[3] इन दोनों चीनी यात्रियों द्वारा वर्णित भिक्षुणी-संघाराम वस्तुतः राजकाराम ही होना चाहिये, यद्यपि इस नाम का उल्लेख उन्होंने नहीं किया है। यूआन् चुआङ ने श्रावस्ती (शिह-लो-फ-सि-ति) शब्द का प्रयोग एक जनपद (जिसे हमें कोसल जनपद कहना चाहिये) के अर्थ में किया है और उसका विस्तार ६००० 'ली' (करीब १००० मील) बताया है। श्रावस्ती नगर के लिये उसने 'प्रासाद नगर' का प्रयोग किया है।[4] इस 'प्रासाद नगर' (श्रावस्ती) से ६ 'ली' (करीब १ मील) दक्षिण में यूआन् चुआङ ने जेतवन (शे-तो) को देखा था, जिसे उसने अनाथपिंडदाराम (के-कु-तु-युअन्) भी कहकर पुकारा है। यह उस समय भग्न अवस्था में

---

१. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ २६४, (सरभमिग जातक); धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २०६; मिलिन्द-प्रश्न, पृष्ठ ४२८ (हिन्दी अनुवाद)।

२. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३०-३६।

३. वाटर्स : औन यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३७७; जिल्द दूसरी, पृष्ठ २००।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३७७।

था।[1] फा-ह्यान ने सुदत्त (अनाथपिण्डिक) द्वारा निर्मित जेतवन विहार को, जिसे उसने स्वर्णोपवन-चैत्य कहकर पुकारा है, श्रावस्ती के दक्षिण द्वार से करीब १२०० कदम दूर, बाहर, देखा था।[2] इस प्रकार जेतवन की स्थिति के सम्बन्ध में दोनों यात्री प्रायः सहमत हैं। जेतवन के पूर्वी द्वार पर यूआन् चुआङ ने उसके दोनों ओर दो अशोक-स्तम्भों को देखा था। जेतवन विहार के समीप ही एक चैत्य में यूआन् चुआङ ने भगवान् बुद्ध की एक ५ फुट लम्बी मूर्ति देखी थी जो कौशाम्बी-नरेश उदयन द्वारा बनाई गई मूर्ति की प्रतिकृति थी, जिसे राजा प्रसेनजित् के लिये तैयार किया गया था।[3] यूआन् चुआङ ने अनाथपिंडदाराम के उत्तर-पूर्व में उस स्थान को भी देखा था, जहाँ भगवान् बुद्ध ने एक रोगी भिक्षु की सेवा की थी।[4] चिंचा (चि-चे) के काण्ड के स्थान का भी यूआन् चुआङ ने उल्लेख किया है।[5] फा-ह्यान ने इस काण्ड के स्थान के सम्बन्ध में कुछ अधिक स्पष्टता के साथ उल्लेख किया है। उसके विवरणानुसार चिंचा (चंचमन) ने जहाँ अपना दुष्कृत्य किया, वह स्थान स्वर्णोपवन चैत्य (जेतवनाराम) के पूर्व द्वार से करीब ७० कदम की दूरी पर उत्तर दिशा में स्थित था। इसी स्थान के समीप अन्य सम्प्रदाय वालों के साथ भगवान् बुद्ध का शास्त्रार्थ हुआ था।[6] चिंचा-काण्ड, जैसा हम पालि विवरणों से जानते हैं, श्रावस्ती में तित्थियाराम के समीप ही हुआ था।[7]

---

१. वहीं, पृष्ठ ३८२।

२. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३०।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३८४; उदयन द्वारा बुद्ध-मूर्ति बनाने के सम्बन्ध में देखिये आगे 'वंस' राज्य का वर्णन भी।

४. उपर्युक्त के समान, पृष्ठ ३८७; बुद्ध द्वारा एक रोगी भिक्षु की सेवा के पालि विवरण के लिये देखिये बुद्धचर्या, पृष्ठ ३१७।

५. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३९२-३९३।

६. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३३-३४।

७. चिञ्चा काण्ड के पालि विवरण के लिये देखिये बुद्धचर्या, पृष्ठ ३१६-३१७।

श्रावस्ती की आधुनिक पहचान सहेट-महेट के रूप में की गई है, जिनमें से सहेट गोंडा जिले में और महेट बहरायच जिले में है। ये दोनों गाँव एक दूसरे से लगभग डेढ़ फर्लांग के फासले पर स्थित हैं। महेट उत्तर में है और उसके दक्षिण में सहेट है। महेट के क्षेत्र को बुद्धकालीन श्रावस्ती और सहेट के क्षेत्र को जेतवन माना गया है। इस खोज का श्रेय जनरल कनिंघम को है।[1] सबसे पहले जनरल कनिंघम ने सन् १८६२-६३ में श्रावस्ती के खण्डहरों की खुदाई करवाई थी। इस समय उन्हें वहाँ एक ७ फुट ४ इंच ऊँची बोधिसत्व की मूर्ति मिली थी, जिस पर अंकित लेख से यह निष्कर्ष निकाला गया कि बल नाम के भिक्षु के द्वारा यह श्रावस्ती विहार में स्थापित की गई थी। इस मूर्ति के लेख के आधार पर ही सहेट के क्षेत्र को जेतवन माना गया। सन् १८७६ में सहेट क्षेत्र की पुनः खुदाई की गई और कई प्राचीन भवनों की नीवें दिखाई पड़ीं। कनिंघम का अनुमान था कि जिस स्थान पर उपर्युक्त बोधिसत्व की मूर्ति मिली थी, वहाँ कोसम्ब कुटी विहार था। इस कुटी का परिचय हम पहले दे चुके हैं। इस कोसम्ब कुटी के उत्तर में प्राप्त खण्डहर को कनिंघम ने गन्धकुटी माना था जिसमें भगवान् बुद्ध निवास करते थे।[2] यह कुटी जेतवन के मध्य भाग में थी। महेट क्षेत्र की भी अनेक बार खुदाई की गई है और वहाँ से महत्वपूर्ण सामग्री मिली है जो उसे प्राचीन श्रावस्ती नगर सिद्ध करती है। 'श्रावस्ती' नामांकित कई लेख सहेट-महेट के भग्नावशेषों में मिले हैं और अब तक जो भी खुदाई हुई है, उससे जेतवनाराम आदि स्थानों के सम्बन्ध में पालि विवरणों में दी गई सूचना को महत्वपूर्ण समर्थन मिला है, जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं।

साकेत कोसल राज्य का श्रावस्ती के बाद दूसरा प्रधान नगर था। श्रावस्ती के समान इस नगर की भी बुद्धकालीन भारत के छह महानगरों में गणना की गई है।[3] नन्दिय-मिग जातक के अनुसार बुद्ध-पूर्व काल में साकेत कोसल की राजधानी था।

---

१. देखिये उनकी एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४६९-४७४।

२. आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, जिल्द ग्यारहवीं, पृष्ठ ७८; जिल्द पहली, पृष्ठ ३३०।

३. महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ० २।३); महासुदस्सन सुत्त (दीघ०२।४)।

इस प्रकार इस नगर को श्रावस्ती से भी प्राचीन मानना पड़ेगा। महावस्तु से भी ऐसा ही मालूम पड़ता है, क्योंकि वहाँ शाक्यों के पूर्वजों को साकेत-निवासी ही बताया गया है।[1] परन्तु दूसरी ओर पालि परम्परा में एक ऐसी भी बात कही गई है जिससे प्रकट होता है कि कदाचित् साकेत नगर भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में ही बसाया गया था। धम्मपदट्ठकथा में कहा गया है कि राजा प्रसेनजित् के राज्य में कोई बड़ा सेठ नहीं था। व्यापारिक उद्देश्य से इस बात की बड़ी आवश्यकता समझ उसने राजा बिम्बिसार से एक बड़े सेठ को कोसल देश में भेजने की प्रार्थना की, जो अपना कारबार यहाँ कर सके। राजा बिम्बिसार अपने राज्य के धनंजय सेठ को कोसल देश में भेजने को तैयार हो गया। जब वह सेठ परिवार-सहित कोसल देश में आ रहा था तो एक दिन सायंकाल के समय उसने इसी राज्य की सीमा में पड़ाव डाला और यह जानकर कि श्रावस्ती वहाँ से केवल सात योजन पर थी, उसने वहीं बसने का निश्चय कर लिया। यही स्थान 'साकेत' कहलाया।

मज्झिम-निकाय के रथविनीत-सुत्तन्त से हमें पता लगता है कि श्रावस्ती और साकेत के बीच में सात रथ-विनीत (सत्त रथविनीतानि) या रथ के डाक-पड़ाव स्थापित किये गये थे, जिनसे जब कभी राजा को अत्यावश्यक कार्य होता था वह एक के बाद दूसरे पडाव पर सवारी-परिवर्तन के द्वारा शीघ्र पहुँच सकता था या संवाद आदि भेज सकता था। विनय-पिटक[2] में श्रावस्ती से साकेत की दूरी छह योजन बताई गई है। ऊपर हम धम्मपदट्ठकथा के विवरण में देख चुके हैं कि वहाँ उसकी दूरी श्रावस्ती से छह के बजाय सात योजन बताई गई है। यही हालत मनोरथपूरणी (अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा) की भी है, जहाँ भी श्रावस्ती से साकेत की दूरी सात योजन बताई गई है। इतना ही नहीं, विसुद्धिमग्ग में भी श्रावस्ती से साकेत की दूरी सात योजन ही बताई गई है। "सावत्थितो सत्तयोजन-ब्भन्तरं साकेतं।"[3] पता नहीं, विनय-पिटक के इस सम्बन्धी साक्ष्य के होते हुए भी धम्मपदट्ठकथा, मनोरथपूरणी और विसुद्धिमग्ग समान रूप से इतने विभिन्न क्यों

---

१. देखिये आगे इसी परिच्छेद में शाक्य गण-तन्त्र का विवेचन।
२. पृष्ठ २५६ (हिन्दी अनुवाद)।
३. १२।७१ (धर्मानन्द कौसम्बी द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

हो गये हैं ? सम्भव है आचार्य बुद्धघोष के समय में श्रावस्ती से साकेत की दूरी सात योजन रही हो, परन्तु इतना स्पष्ट भौगोलिक ज्ञान आचार्य बुद्धघोष को उत्तर-प्रदेश का था, यह कभी नहीं माना जा सकता। अतः हमें विनय-पिटक के विवरण को ही प्रधानता देनी चाहिये और बुद्ध के काल के सम्बन्ध में उसे ही प्रामाणिक मानना चाहिये। श्रावस्ती और साकेत एक दूसरे से मार्ग द्वारा संयुक्त थे और उस मार्ग में चोरों का अधिक उपद्रव रहता था, ऐसा विनय-पिटक[1] से विदित होता है। जीवक वैद्य तक्षशिला से राजगृह लौटता हुआ मार्ग में साकेत में ठहरा था।[2] साकेत उस मार्ग पर भी स्थित था जो श्रावस्ती से चलकर क्रमशः साकेत, कौशाम्बी, विदिशा (वेदिसं), गोनद्ध, उज्जेनी और माहिष्मती होता हुआ प्रतिष्ठान (पैठन) तक जाता था।

साकेत का एक रमणीय स्थान अंजनवन मृगदाव था। अंजन (काजल) के समान रंग वाले वृक्षों और पुष्पों से सुशोभित होने के कारण यह वन 'अंजन वन' कहलाता था।[3] यहाँ भी इसिपतन मिगदाय के समान मृग स्वच्छन्दता से विचरते थे और उन्हें अभय दान दिया गया था, 'इसलिये यह मृगदाव' (मिगदाय) कहलाता था। संयुत्त-निकाय के ककुध-सुत्त, कुण्डलि-सुत्त और साकेत-सुत्त का उपदेश भगवान् ने साकेत के अंजनवन मिगदाय में विहार करते हुए ही दिया था। अंजन-वनिय नामक एक भिक्षु ने तो यह नाम अंजन वन में निवास के कारण ही पाया था। यह भिक्षु आसन्दी (कुर्सी) को ही कुटी बना कर इस वन में निवास करता था।[4] कुटिविहारी नामक एक अन्य भिक्षु को भी हम अंजन वन में निवास करते देखते हैं। मेण्डसिर नामक स्थविर ने अंजन वन में ही भगवान् के उपदेश को सुनकर प्रव्रज्या ग्रहण की थी। साकेत के समीप एक दूसरा वन भी था जिसका नाम कंटकीवन था। अट्ठकथा में इसे 'महा करमण्डवन' कहकर भी पुकारा गया है। इस वन में धर्मसेनापति सारिपुत्र, महामोग्गल्लान और अनुरुद्ध ने साथ-साथ विहार

---

१. पृष्ठ १२७-१२८ (हिन्दी अनुवाद)।

२. वहीं, पृष्ठ २६७।

३. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २४७।

४. आसन्दिं कुटिकं कत्वा ओगह्य अञ्जनं वनं। थेरगाथा, गाथा ५५।

किया था, ऐसा हमें संयुत्त-निकाय के पदेस-सुत्त और पठमकंटकी-सुत्त से पता लगता है। विनय-पिटक[1] में भी हम धर्मसेनापति सारिपुत्र को साकेत में विहरते देखते हैं। साकेत-जातक का उपदेश भगवान् बुद्ध ने साकेत में ही दिया था। इस जातक में उल्लेख है और धम्मपदट्ठकथा (जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३१७) में भी इस बात का समर्थन है कि जब भगवान् बुद्ध साकेत पहुँचे तो यहाँ के एक ब्राह्मण ने उन्हें अपना पुत्र कहकर पुकारा। हम पहले (बुद्ध की चारिकाओं के प्रसंग में) देख ही चुके हैं कि सुंसुमारगिरिवासी नकुलपिता और नकुलमाता ने भी ऐसा ही व्यवहार बुद्ध के प्रति किया था।

कनिंघम ने साकेत को फा-ह्यान द्वारा निर्दिष्ट 'श-चि' तथा यूआन् चुआङ द्वारा वर्णित विशाख (वाटर्स के अनुसार विशोक) के साथ एकाकार करते हुए उसे आधुनिक अयोध्या बताया था।[2] परन्तु फा-ह्यान ने 'श-चि' (साकेत) को कन्नौज से १३ योजन दक्षिण-पूर्व में बताया है[3] और यूआन् चुआङ ने विशाख या विशोक (पि-शो-क) को कौशाम्बी से ५०० ली पूर्व में,[4] अतः इन दोनों नगरों को एक नहीं माना जा सकता। स्मिथ ने सुझाव दिया है कि हमें फा-ह्यान के 'श-चि' को बुद्धकालीन साकेत मानना चाहिये।[5] डा० मललसेकर ने पालि परम्परा के साकेत को सुजानकोट के खण्डहरों से, जो सई नदी के किनारे उन्नाव जिले में स्थित हैं, मिलाना स्वीकार किया है।[6] परन्तु उन्होंने अपनी इस मान्यता का कोई हेतु नहीं दिया है। इसी प्रकार बिना किसी कारण का उल्लेख किये हुए पालि के साकेत को डा० नलिनाक्ष दत्त और श्री कृष्णदत्त बाजपेयी ने सुजानकोट मानना ही

---

१. पृष्ठ २८० (हिन्दी अनुवाद)।

२. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४६१।

३. लेग्गे : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५४; मिलाइये गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ २९।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३७५।

५. देखिये ऊपर के समान।

६. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १०८६।

स्वीकार किया है।[1] परन्तु हम साकेत की स्थिति के ज्ञापक इन सुजानकोट के खण्डहरों को नहीं मान सकते, क्योंकि मगध से श्रावस्ती आने के मार्ग में वे किसी प्रकार नहीं पड़ सकते, जैसा कि उन्हें धनंजय सेठ की पूर्वोक्त यात्रा के अनुसार पड़ना चाहिये। अतः हम आधुनिक अयोध्या कस्बे को ही बुद्धकालीन साकेत से मिलाना अधिक ठीक समझते हैं। एक अन्य कारण सुजानकोट के बजाय आधुनिक अयोध्या को ही बुद्धकालीन साकेत मानने का यह है कि थेरगाथा-अट्ठकथा में स्थविर गवम्पति की जो कथा दी गई है, उसमें कहा गया है कि यह स्थविर जब एक बार साकेत के अंजनवन मृगदाव में निवास कर रहे थे तो भगवान् बुद्ध यहाँ आये और उनके साथ आने वाले कुछ भिक्षु अंजनवन के समीप सरभू (सरयू) नदी के किनारे पर रात को सो गये। परन्तु अचानक रात को नदी में बाढ़ आ गई, जिससे भिक्षुओं में खलबली मच गई। तब भगवान् ने स्थविर गवम्पति को नदी की बाढ़ को रोकने के लिये भेजा जिसे उन्होंने अपने ऋद्धि-बल से शान्त कर दिया।[2] इसी घटना को लक्ष्य कर स्थविर गवम्पति के सम्बन्ध में थेरगाथा में कहा गया है "यो इद्धिया सरभुं अट्ठपेसि"। इस विवरण से बिलकुल स्पष्ट है कि साकेत के समीप अंजनवन था और उसके समीप ही सरभू (सरयू) नदी बहती थी। अतः निर्विवाद रूप से सरयू के तट पर स्थित आधुनिक अयोध्या कस्बे को ही पालि का साकेत मानना चाहिये, न कि सुजानकोट के खण्डहरों को, जो सरयू नदी पर नहीं, बल्कि सई नदी के तट पर स्थित हैं।

अयोज्झा (अयोध्या) का उल्लेख संयुत्त-निकाय के फेण-सुत्त में है। इस सुत्त में हम भगवान् बुद्ध को अयोध्या में गंगा नदी के तट पर विहार करते देखते हैं।[3] संयुत्त-निकाय की अट्ठकथा (सारत्थप्पकासिनी[4]) में कहा गया है कि अयोध्या-वासी लोगों ने गंगा के मोड़ पर एक विहार बनवा कर बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को दान किया था। इस प्रकार पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथा, दोनों के साक्ष्य

---

१. उत्तर प्रदेश में बौद्धधर्म का विकास, पृष्ठ ७; १२, पद-संकेत ६।
२. थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ १०३।
३. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), प्रथम भाग, पृष्ठ ३८२।
४. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३२०।

पर हम बुद्धकालीन अयोध्या को गंगा नदी के तट पर स्थित देखते हैं। जैसा अभी-अभी देख ही चुके हैं, साकेत उससे एक भिन्न नगर था। वर्तमान अयोध्या गंगा नदी के तट पर स्थित नहीं है, अतः जब तक हम पालि के विवरण को गलत न मानें, बुद्धकालीन अयोध्या को हम वर्तमान अयोध्या से नहीं मिला सकते। यह उल्लेखनीय है कि चीनी यात्री यूआन् चुआङ ने गंगा नदी को पार कर "अ-यु-ते" (अयोध्या) में प्रवेश करने की बात कही है,[1] जो सब गवेषकों के लिये एक कठिनाई पैदा करने वाली बात है।

यूआन् चुआङ ने नवदेव कुल (वर्तमान नेवल, जिला उन्नाव) से ६०० 'ली' (१०० मील) दक्षिण-पूर्व में चलकर "अ-यु-ते" (अयोध्या) में प्रवेश किया था।[2] अतः इस चीनी यात्री के "अ-यु-ते" को वर्तमान अयोध्या से मिलाना सदिग्ध ही है।[3] यूआन् चुआङ ने लिखा है कि असंग और वसुबन्धु ने कुछ समय तक अयोध्या में निवास किया था और वसुबन्धु की मृत्यु अयोध्या में ही ८३ वर्ष की अवस्था में हुई थी।[4] यूआन् चुआङ ने अयोध्या में कई प्राचीन विहारों के अवशेष और एक बुद्ध-स्तूप को देखा था।[5] भगवान् बुद्ध की चंक्रमण-भूमि पर स्थापित एक स्तूप को यूआन् चुआङ से पूर्व फा-ह्यान ने भी पाँचवीं शताब्दी ईसवी में देखा था।[6] अयोज्झा (अयोध्या) और उसके कालसेन नामक राजा का उल्लेख एक जगह जातक

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३५४।

२. उपर्युक्त के समान।

३. मिलाइये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४३९-४४०।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ् स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३५४-३५९।

५. विस्तार के लिये देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ् स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३५५-३५६।

६. लेग्गे : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ५४-५५; गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ २९-३०।

में भी हुआ है।[1] वस्तुतः जिस अयोध्या का उल्लेख संयुत्त-निकाय के ऊपर निर्दिष्ट सुत्त और जातक में पाया जाता है, उसे गंगा नदी के तट पर स्थित एक छोटा गाँव या नगर ही माना जा सकता है और, जैसा हम पहले कह चुके हैं, भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में साकेत उससे भिन्न और एक महानगर था। वाल्मीकि-रामायण में अयोध्या को कोसल की राजधानी बताया गया है और बाद के संस्कृत ग्रन्थों में उसे साकेत से मिला दिया गया है। डॉ० ई० जे० थॉमस का कहना है कि इस सम्बन्ध में रामायण की परम्परा बौद्ध परम्परा की अपेक्षा एक उत्तरकालीन स्थिति की सूचक है। उनका मन्तव्य यह है कि पहले कोसल की राजधानी श्रावस्ती थी और बाद में जब दक्षिण की ओर कोसल राज्य का विस्तार हुआ तो अयोध्या राजधानी बनी, जो साकेत को ही किसी विजयी राजा द्वारा दिया हुआ नाम था।[2] डॉ० ई० जे० थॉमस के इस मन्तव्य को इस कारण नहीं माना जा सकता कि संस्कृत साहित्य के प्रभूत साक्ष्यों से यह सिद्ध किया जा चुका है कि भगवान् बुद्ध के जीवन-काल से कुछ पूर्व साकेत कोसल की राजधानी था।[3] अतः रामायण की इस सम्बन्धी परम्परा को बौद्ध परम्परा से निश्चयतः उत्तर काल की नहीं माना जा सकता। वस्तुतः बात यह है कि रामायण की अयोध्या बारह योजन विस्तीर्ण एक महानगरी थी, जब कि पालि की अयोज्झा (अयोध्या) गंगा नदी के किनारे एक गाँव मात्र थी। अतः उन्हें मिलाने की प्रवृत्ति हमें नहीं करनी चाहिये। पालि साहित्य में उत्तर कोसल और दक्षिण कोसल का भेद भी स्पष्टतः निर्दिष्ट नहीं मिलता। अतः पालि की अयोज्झा की खोज हमें गंगा नदी के किनारे ही करनी पड़ेगी।

वेहलिंग नामक एक ऋद्ध, स्फीत, बहुजनाकीर्ण ग्राम-निगम (गाँव से बड़ा, कस्बे से छोटा) बुद्ध-पूर्व काल में कोसल देश में था। यहाँ एक बार आते समय भगवान् ने स्मित प्रकट किया था, जिसका कारण पूछने पर भगवान् ने आनन्द को

---

१. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ८२-८३।

२. ई० जे० थॉमस : दि लाइफ ऑव बुद्ध ऐज लीजेण्ड एण्ड हिस्ट्री, पृष्ठ १५।

३. देखिये भण्डारकर : कारमाइकेल लैक्चर्स, १९१८, पृष्ठ ५१।

उस स्थान सम्बन्धी वह पूर्व इतिहास बतलाया था, जो मज्झिम-निकाय के घटिकार-सुत्तन्त में निहित है।

शाला (साला) नामक ब्राह्मण-ग्राम कोसल प्रदेश में था। यहाँ भगवान् एक बार गये थे। संयुत्त-निकाय के साला-सुत्त का उपदेश यहीं दिया गया था।[१] अन्य कई बार भी भगवान् वहाँ गये। मज्झिम-निकाय के सालेय्य-सुत्तन्त और अपण्णक-सुत्तन्त का उपदेश यहीं दिया गया था।

कोसल देश में एक दूसरा गाँव 'एक शाला' नामक भी था। इसे भी एक ब्राह्मण-ग्राम कहा गया है। भगवान् इस गाँव में भी गये थे और गृहस्थों की एक सभा में उन्होंने पतिरूप-सुत्त का उपदेश दिया था।[२]

ओपसाद कोसल देश में एक ब्राह्मण-ग्राम था। यहाँ का स्वामी चंकि ब्राह्मण था, जिसे यह गाँव दान के रूप में राजा प्रसेनजित् की ओर से मिला हुआ था। भगवान् इस गाँव में गये थे और इसके उत्तर में देववन नामक एक शालवन था, जहाँ भगवान् ठहरे थे। मज्झिम-निकाय के चंकि-सुत्तन्त का उपदेश यहीं दिया गया था

सालवतिका या सालवती कोसल देश का एक प्रसिद्ध गाँव था, जिसे प्रसेनजित् ने लोहिच्च नामक ब्राह्मण को दान के रूप में दिया था।[३] इस प्रकार यह एक ब्राह्मण-ग्राम था। साल (शाल) के पेड़ों की अधिकता के कारण इस गाँव का नाम 'सालवतिका' या 'सालवती' पड़ा था।[४] दीघ-निकाय के लोहिच्च-सुत्त का उपदेश भगवान् ने यहीं दिया था।

तोदेय्य गाम श्रावस्ती और वाराणसी के बीच में था। अतः इसे हम आसानी से काशी-कोसल राज्य में सम्मिलित मान सकते हैं। एक बार भगवान् आनन्द के साथ यहाँ गये थे।[५]

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ७२७।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ९६-९७।

३. "उस समय लोहिच्च ब्राह्मण राजा प्रसेनजित् कोसल द्वारा प्रदत्त, राजदाय, ब्रह्मदेय, जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्य-सम्पन्न सालवतिका का स्वामी होकर रहता था।" लोहिच्च-सुत्त (दीघ-१।१२)।

४. सुमंगलविलासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३९५।

५. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २५०।

तुदिगाम कोसलदेशवासी प्रसिद्ध ब्राह्मण महाशाल तोदेय्य का स्थायी निवास-स्थान था। यह गाँव उसे कोसलराज प्रसेनजित् की ओर से दान के रूप में मिला हुआ था। सुभ तोदेय्यपुत्त, जो तोदेय्य ब्राह्मण का पुत्र था, तुदिगाम में ही निवास करता था।[1]

कोसल देश का एक प्रसिद्ध निगम उग्गनगर नामक था। यहाँ महाराम नामक विहार था जहाँ भगवान् ठहरे थे।[2] भगवान् के आदेश पर आयुष्मान् अनुरुद्ध भी वहाँ गये थे।[3] हम थेरगाथा-अट्ठकथा[4] के आधार पर आगे कुरु देश के वर्णन-प्रसंग में देखेंगे कि वहाँ कुण्डी या कुण्डिय नामक एक ग्राम था, जिसके समीप ही उग्गाराम नामक विहार था। डा० मललसेकर ने सुझाव दिया है कि यदि इस उग्गाराम को हम उग्गनगर में मानें तो उस हालत में हमें उग्गनगर को कुरु राष्ट्र में कुण्डी या कुण्डिय नामक ग्राम के समीप मानना पड़ेगा।[5] इसका अर्थ यह है कि एक उग्गनगर कुरु राष्ट्र में भी हो सकता है। यह सम्भव है। धम्मपदट्ठकथा (जिल्द तीसरी, ४६९) में श्रावस्ती से उग्गनगर की दूरी १२० योजन कही गई है। निश्चयतः यह उग्ग नगर कोसल राज्य का नहीं हो सकता। फिर भी एक उग्गनगर कोसल देश का भी अवश्य था। स्थविर उग्ग कोसल देश के इस नगर के ही निवासी थे।[6] धम्मपद की अट्ठकथा में कहा गया है कि एक बार एक सेठ अपने किसी काम से उग्गनगर से श्रावस्ती में आया था।

कोसल देश में चण्डलकप्प[7] नामक एक प्रसिद्ध स्थान था, जहाँ बुद्ध, धर्म और

---

१. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ८०२; मनोरथपूरणी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५५४।

२. थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ १७४।

३. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४६५-४६९।

४. जिल्द पहली, पृष्ठ ३३९।

५. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ३३६।

६. देखिये थेरगाथा, पृष्ठ ३४ (भिक्षु धर्मरत्न एम० ए० का हिन्दी अनुवाद)।

७. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४२१ में "मण्डल कप्प" पाठ दिया है, जो कदाचित् पाठान्तर भी हो सकता है या प्रूफ की अशुद्धि भी। बम्बई

संघ में प्रसन्न धानंजानी ब्राह्मणी रहती थी। इसी स्थान पर संगारव नामक एक तरुण ब्राह्मण पंडित भी रहता था। भगवान् एक बार यहाँ गये थे और तोदेय्य ब्राह्मणों के आम्रवन में (तोदेय्यानं ब्राह्मणानं अम्बवने) ठहरे थे। इसी समय मज्झिम-निकाय के संगारव-सुत्तन्त का उपदेश दिया गया था।

इच्छानंगल कोसल देश का एक प्रसिद्ध गाँव था। सम्भवतः यह गाँव श्रावस्ती के पास ही था। यहाँ के एक उपासक को हम किसी काम से श्रावस्ती आते देखते है और वह उसे करने के बाद भगवान् के दर्शनार्थ भी आता है। भगवान् उससे कहते हैं, "क्यों, बहुत दिनों के बाद तुम्हारा इधर आना हुआ।"[1] इससे विदित होता है कि यह उपासक, जिसका नाम हमें नहीं बताया गया है, अक्सर भगवान् के दर्शनार्थ आया करता था। दीघ-निकाय के अम्बट्ठ-सुत्त में इच्छानंगल को एक ब्राह्मण-ग्राम कहा गया है। इच्छानंगल के पास ही उक्कट्ठा नामक गाँव था जिसके बारे में हम आगे लिखेंगे। इच्छानंगल ग्राम में कोसल देश के जानुस्सोणि और तोदेय्य जैसे अनेक ब्राह्मण-महाशाल अक्सर आया-जाया करते थे, ऐसा मज्झिम-निकाय के वासेट्ठ-सुत्तन्त से पता लगता है। इस गाँव के पास एक वन-खण्ड था, जिसे इच्छानंगल वन-खण्ड कहा जाता था। भगवान् इस गाँव में आते समय अक्सर इसी वन-खण्ड में ठहरते थे। दीघ-निकाय के अम्बट्ठ-सुत्त का उपदेश यहीं दिया गया था। एक दूसरे अवसर पर जब भगवान् यहाँ विहार कर रहे थे तो उन्होंने वासेट्ठ-सुत्तन्त का उपदेश वाशिष्ठ और भारद्वाज नामक दो ब्राह्मण-माणवकों को दिया था।[2] एक अन्य अवसर पर भगवान् जब इच्छानंगल वन-खण्ड में विहार कर रहे थे, तो उन्हे एकान्तवास की गहरी इच्छा हुई थी और उन्होंने

विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित देवनागरी संस्करण। (मज्झिम निकायो, मज्झिम पण्णासकं) में चण्डल कप्प (पृष्ठ ४२५) पाठ दिया गया है और किसी पाठान्तर का निर्देश यहाँ नहीं किया गया है। मललसेकर ने भी किसी पाठान्तर का निर्देश नहीं किया है।

१. उदान (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ १९।

२. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४०९, ४१३; यह सुत्त सुत्त-निपात के वासेट्ठ-सुत्त के रूप में भी आया है।

भिक्षुओं से कहा था, "भिक्षुओ! मैं तीन महीने एकान्तवास करना चाहता हूँ। एक भिक्षान्न लाने वाले को छोड़ मेरे पास दूसरा कोई न आने पावे।" इस एकान्तवास के बाद भगवान् ने भिक्षुओं को उपदेश दिया था, जो संयुत्त-निकाय के इच्छानंगल-सुत्त में आज देखा जा सकता है।[1] अंगुत्तर-निकाय[2] में भी भगवान् के इच्छानंगल में जाने और वहाँ उपदेश करने का उल्लेख है।

उक्कट्ठा कोसल देश का एक प्रसिद्ध ब्राह्मण-ग्राम था। दीघ-निकाय के अम्बट्ठ - सुत्त के अनुसार कोसलराज प्रसेनजित् की ओर से यह ग्राम ब्राह्मण पोक्खरसादि (पौष्करसाति या अश्वघोष के अनुसार पुष्कलसादी)[3] को दान के रूप में दिया गया था। पौष्करसाति बुद्ध-काल का एक प्रसिद्ध ब्राह्मण पंडित था जिसके पास विमानवत्थु की अट्ठकथा के एक वर्णन के अनुसार हम छत्त नामक व्यक्ति को सेतव्या से विद्या प्राप्त करने के हेतु आते देखते हैं। दीघ-निकाय के अम्बट्ठ-सुत्त में हम पहले पौष्करसाति के शिष्य अम्बट्ठ (अम्बष्ट) माणवक को और फिर स्वयं पौष्करसाति को भगवान् के दर्शनार्थ समीप के इच्छानंगल नामक ब्राह्मण-ग्राम में जाते देखते हैं, जहाँ के समीप इसी नाम के वन-खण्ड मे भगवान् उस समय ठहरे रहे थे।[4]

उक्कट्ठा के पास एक वन था जो 'सुभगवन' कहलाता था। आचार्य बुद्ध-घोष ने कहा है कि अतिशय सुभग (सुन्दर) होने के कारण यह वन 'सुभग वन' कहलाता था।[5] यह एक प्राकृतिक वन न होकर लगाया गया उद्यान या उपवन था, जहाँ आसपास के लोग अक्सर मनोविनोद के लिये जाया करते थे और यहाँ कई एक उत्सव भी लगते थे। सुभगवन के शालराज वृक्ष के नीचे भगवान् के विहार करने की सूचना हमें दीघ-निकाय के महापदान-सुत्त में मिलती है[6] और

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ७६८।
२. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३०; जिल्द चौथी, पृष्ठ ३४०।
३. देखिये बुद्ध-चरित २१।२९।
४. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३४-४३।
५. पपंचसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ११।
६. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १०९।

मज्झिम-निकाय के ब्रह्म-निमन्तनिक-सुत्तन्त में भी।[1] मज्झिम-निकाय के मूल परियाय-सुत्तन्त का उपदेश भी भगवान् ने यहीं दिया था।[2]

आचार्य बुद्धघोष ने 'उक्कट्ठा' गाँव का यह नाम पड़ने का यह कारण बताया है कि रात में मशालों (उक्का) के प्रकाश में इसे बनाया गया था, ताकि मंगलमय मुहूर्त में ही इसका बनना समाप्त हो जाये।[3]

एक मार्ग उक्कट्ठा से सेतव्या तक जाता था[4] और दूसरा उसे वैशाली महानगरी से जोड़ता था।[5]

उजुञ्ञा या उज्जुञ्ञा (उजुका) कोसल देश का एक जनपद भी था और नगर भी। इसी के समीप कण्णकत्थल (या कण्णत्थलक) नामक मृगोपवन (मिगदाय) था। अचेल काश्यप से भगवान् की यहीं भेंट हुई थी और दीघ-निकाय के कस्सप-सीहनाद-सुत्त का उपदेश उसे यहीं दिया गया था।[6] कोसलराज प्रसेनजित् एक बार यहाँ अपने काम से आया था और भगवान् से मिला था। इसी समय उसे कण्णत्थलक-सुत्तन्त का उपदेश दिया गया था।[7]

मनसाकट एक प्रसिद्ध ब्राह्मण-ग्राम था। उसके समीप उत्तर में अचिरवती नदी बहती थी, जिसके किनारे पर एक सुरम्य आम्रवन था। भगवान् एक बार यहाँ गये थे और इस आम्रवन में ठहरे थे। इसी समय तेविज्ज-सुत्त का उपदेश दिया गया था।[8] मनसाकट में कोसल देश के पौष्करसाति, जानुस्सोणि और तोदेय्य जैसे ब्राह्मण-महाशाल अक्सर एक साथ आकर ठहरा करते थे, ऐसा दीघ-निकाय के तेविज्ज-सुत्त से मालूम पड़ता है।

---

१. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १९४।
२. वहीं, पृष्ठ ३-५।
३. पपंचसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १०।
४. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३७।
५. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २५९।
६. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ६१-६६।
७. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३६८-३७२।
८. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ८६-९२।

इसी प्रकार उनके ठहरने का एक दूसरा स्थान इच्छानंगल था, जो भी एक ब्राह्मण-ग्राम था।

नगरक या नंगरक कोसल राज्य का एक कस्बा था, जहाँ किसी काम से एक बार हम राजा प्रसेनजित् को जाते देखते हैं। यहाँ से शाक्यों का कस्बा मेदलुम्प या मेदतलुम्प केवल तीन योजन की दूरी पर था। नगरक से इसी अवसर पर प्रसेनजित् भगवान् के दर्शनार्थ मेदलुम्प कस्बे में गया था, जहाँ भगवान् उस समय विहर रहे थे।[1] यह प्रसेनजित् की भगवान् से अन्तिम भेंट थी।

तोरणवत्थु (तोरणवस्तु) नामक गाँव श्रावस्ती और साकेत के बीच में स्थित था, क्योंकि हम संयुत्त-निकाय के खेमा-थेरी सुत्त में पढ़ते हैं, "उस समय खेमा भिक्षुणी कोसल में चारिका करती हुई श्रावस्ती और साकेत के बीच तोरणवत्थु में ठहरी हुई थी।" यहीं राजा प्रसेनजित् ने भिक्षुणी खेमा से कुछ प्रश्न पूछे थे, जिनके उत्तरों का बाद में भगवान् ने भी अनुमोदन किया था।

विनय-पिटक में और दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में भगवान् के आतुमा नामक ग्राम में विहार करने का उल्लेख है। विनय-पिटक के वर्णनानुसार भगवान् कुसिनारा से आतुमा में गये और फिर वहाँ से श्रावस्ती चले गये।[2] इससे विदित होता है कि आतुमा नामक ग्राम कुसिनारा और श्रावस्ती के बीच में था। इसलिये उसे मल्ल और कोसल राज्यों में से किसी में रक्खा जा सकता है। सम्भवतः यह कोसल राज्य में ही था। विनय-पिटक के अनुसार जब भगवान् यहाँ पहुँचे तो यहाँ के निवासी एक वृद्ध भिक्षु ने, जो पहले नाई था, काफी सामान भगवान् के भोजनार्थ इकट्ठा कर रक्खा था। भगवान् ने उसके निमंत्रण को स्वीकार नहीं किया, क्योंकि एक भिक्षु का दूसरे भिक्षु या भिक्षुओं के लिये खाने का सामान इकट्ठा करना विनय-पिटक के विपरीत था।[3] एक दूसरी घटना आतुमा के भुसागार (भूसे का घर) नामक स्थान में भगवान् के निवास करते समय घटी, जिसका उल्लेख उन्होंने स्वयं पुक्कुस मल्लपुत्त से पावा और कुसिनारा के बीच रास्ते में अपनी

---

१. धम्म-चेतिय सुत्तन्त (मज्झिम० २।४।९)।
२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २५२-२५४।
३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २५३-२५४।

अन्तिम यात्रा पर जाते हुए किया था। यह घटना भी बिजली के कड़क कर गिरने से दो भाई किसान और चार बैलों का मर जाना और समीप ही स्थित ध्यानावस्थित भगवान् का होश में रहते हुए भी इस सबको न देखना, न बिजली की कड़क का शब्द सुनना।[1]

वेनागपुर कोसल देश का एक गाँव था। भगवान् बुद्ध यहाँ एक बार गये थे और अंगुत्तर-निकाय[2] के वेनाग-सुत्त का उपदेश यहीं दिया गया था।

नगरविन्द या नगरविन्देय्य कोसल देश का एक ब्राह्मण-ग्राम था। यहाँ भगवान् एक बार गये थे और इस ग्राम के ब्राह्मण गृहपतियों के समक्ष उन्होंने सत्कारयोग्य पुरुषों पर एक प्रवचन दिया था, जो मज्झिम-निकाय के नगरविन्देय्य-सुत्तन्त में निहित है।

दण्डकप्प या दण्डकप्पक कोसल देश में एक गाँव था, जहाँ भगवान् बुद्ध एक बार गये थे और आनन्द को उपदेश दिया था।[3]

नलकपान कोसल देश मे एक गाँव था जिसके समीप पलाश-वन (पलास-वन) था। भगवान् बुद्ध एक बार इस गाँव में गये थे और यहाँ के पलाश-वन में ठहरे थे। यहीं मज्झिम-निकाय के नलकपान-सुत्तन्त का उपदेश दिया गया था। अंगुत्तर-निकाय[4] से भी हमें पता चलता है कि एक अन्य अवसर पर भगवान् नलकपान में गये थे और यहाँ के पलाश-वन में उन्होंने निवास किया था।

नलकपान के पास 'केतकवन' नामक एक अन्य वन का भी उल्लेख है, जहाँ भगवान् एक बार गये थे और नलकपान जातक का उपदेश दिया था।[5]

पंकधा कोसल देश का एक प्रसिद्ध नगर था। भगवान् बुद्ध यहाँ एक बार गये और वहाँ से लौटकर राजगृह आ गये, जहाँ उन्होंने गृध्रकूट पर्वत पर विहार किया[6]।

---

१. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३८।
२. जिल्द पहली, पृष्ठ १८०।
३. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४०२।
४. जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १२२।
५. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १७०।
६. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द पहली, पृष्ठ २३६-२३७।

काश्यप गोत्र (कस्सप गोत्तं) का काश्यप (कस्सप) नामक व्यक्ति पंकधा का ही रहने वाला था।

नालन्दा नामक एक गाँव या नगर मगध के समान कोसल देश में भी था। यहाँ मगध के नालन्दा के समान ही एक प्रावारिक आम्रवन (पावारिकम्बवन) भी था। भगवान् कोसल देश में चारिका करते हुए एक बार यहाँ गये थे और असि-बन्धक पुत्त गामणि से उनका संलाप हुआ था, जो संयुत्त-निकाय के कुल-सुत्त में निहित है। इस सुत्त से हमें यह भी सूचना मिलती है कि इस समय नालन्दा में भयंकर दुर्भिक्ष पड़ रहा था और निगण्ठ नाटपुत्त (जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर) भी इस समय नालन्दा में ही निवास कर रहे थे।[1] चूँकि उपर्युक्त सुत्त के आदि में स्पष्ट रूप से लिखा हुआ है, "एक समय भगवान् कोसल में चारिका करते हुए··· जहाँ नालन्दा है, वहाँ पहुँचे।" अतः पालि तिपिटक की शैली से इस नालन्दा नगर या गाँव का कोसल देश में होना सिद्ध है। परन्तु यहाँ भी प्रावारिक आम्रवन की बात देखकर यह सन्देह होने लगता है कि कहीं 'कोसल' शब्द मूल पाठ में भाणकों की गलती से तो नहीं आ गया है। सम्भवतः इसी प्रकार के सन्देह के वशीभूत होकर डा० विमलाचरण लाहा ने उपर्युक्त कुल-सुत्त में वर्णित नालन्दा को अपने ग्रन्थ 'ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज़्म'[2] (लंदन, १९३२) में मगध के अन्दर स्थित नालन्दा के समान ही मान लिया है। परन्तु बाद में ऐसा लगता है कि उन्होंने अपने इस सन्देह का अतिक्रमण कर दिया है और कोसल देश के इस नालन्दा की स्वतन्त्र स्थिति को स्वीकार कर लिया है, जैसा उनके 'इण्डिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टेक्स्ट्स् आव बुद्धिज़्म एण्ड जैनिज़्म'[3] (लन्दन, १९४१) से विदित होता है। कहने की आवश्यकता नहीं कि कोसल के इस नालन्दा को हमें मगध के नालन्दा से पृथक् ही मानना चाहिये।[4]

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५८५-५८६।

२. पृष्ठ ३१।

३. पृष्ठ ४५।

४. देखिये इस सम्बन्ध में पीछे मगध राज्य के अन्तर्गत नालन्दा का विवेचन भी।

सेतव्या नामक प्रसिद्ध नगर कोसल राज्य में उक्कट्ठा के समीप था। यहाँ पायासि नामक राजञ्ञ (राजन्य—माण्डलिक राजा) निवास करता था। यह नगर इस पायासि राजन्य को उसी प्रकार कोसलराज प्रसेनजित् की ओर से मिला हुआ था, जिस प्रकार अन्य अनेक ग्राम प्रसिद्ध ब्राह्मण-महाशालों को। आयुष्मान् कुमार काश्यप (कुमार कस्सप) एक बार सेतव्या नगर में गये थे और उनका पायासि राजन्य से, जो नास्तिकवादी था और परलोक में विश्वास नहीं करता था, संलाप हुआ था।

सेतव्या के उत्तर में सिंसपा-वन था।[1] शीशम (सिंसपा) के वृक्षों के इस वन में ही कुमार कस्सप निवास करते थे। स्थविर एकधम्मसवणिय ने सेतव्या के सिंसपा-वन में भगवान् बुद्ध के उपदेश को सुना था और यहीं उनकी प्रव्रज्या हुई थी।[2] स्थविर एकधम्मसवणिय, महाकाल, चूलकाल और मज्झिमकाल की जन्म-भूमि सेतव्या नगरी ही थी।

सेतव्या एक प्राचीन नगर था। बुद्धवंस की अट्ठकथा के अनुसार यहाँ सेताराम (श्वेताराम) नामक एक विहार था, जहाँ काश्यप बुद्ध ने परिनिर्वाण प्राप्त किया था। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में सेतव्या एक महत्वपूर्ण व्यापारिक नगर था, जो उस मार्ग पर पड़ता था जो श्रावस्ती से क्रमशः सेतव्या, कपिलवस्तु, कुशीनगर, पावा, भोगनगर और वैशाली होते हुए राजगृह तक जाता था।[3] इस प्रकार सेतव्या तत्कालीन कई प्रसिद्ध महानगरों से व्यापारिक मार्ग द्वारा संयुक्त था। हम उक्कट्ठा के विवरण में देख चुके हैं कि सेतव्या नगर उक्कट्ठा से स्थलीय मार्ग द्वारा संयुक्त था। सेतव्या की आधुनिक स्थिति का पता हमें सम्भवतः गोंडा जिले में कहीं लगाना पड़ेगा।

कोसल देश में वेलुद्वार नामक एक ब्राह्मण-ग्राम था, जिसका उल्लेख हमें संयुत्त-निकाय के वेलुद्वारेय्य-सुत्त में मिलता है। आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि

---

१. पायासि-राजञ्ञ सुत्त (दीघ० २।१०)।
२. थेरगाथा, पृष्ठ २९ (भिक्षु धर्मरत्न एम० ए० का हिन्दी अनुवाद)।
३. देखिये पारायण-वग्ग की वत्थुगाथा (सुत्त-निपात)।

इस गाँव के प्रवेश-द्वार पर बाँसों का एक वन था, जिसके कारण इस गाँव का नाम वेलुद्वार (वेणु-द्वार) पड़ा।[1]

कामण्डा कोसल देश में एक ग्राम था। यहाँ तुदिग्राम-निवासी तोदेय्य ब्राह्मण का एक आश्रम बना हुआ था। यहाँ भगवान् बुद्ध के शिष्य आयुष्मान् उदायी एक बार गये थे और वेरहच्चानि गोत्र की एक ब्राह्मणी को उपदेश दिया था, जो संयुत्त-निकाय के वेरहच्चानि-सुत्त में निहित है।[2]

नलकार ग्राम (नलकार ग्राम) नामक एक गाँव भी कोसल देश में था। इस गाँव में अधिकतर नलकार अर्थात् बांस और बेंत की वस्तुएँ बनाने का काम करने वाले लोग रहते थे। यह गाँव श्रावस्ती के समीप ही था, जैसा कि भगवान् बुद्ध के एक माणवक के साथ इस संलाप से, जो श्रावस्ती में अनाथपिंडिक के आराम जेतवन में हुआ था, प्रकट होता है, "तो क्या मानते हो, माणवक! नलकार ग्राम यहाँ से समीप है, नलकार ग्राम यहाँ से दूर नहीं है!" "हाँ, भो गोतम! नलकार गाम यहाँ से समीप है, नलकार गाम यहाँ से दूर नहीं है।"[3]

पण्डपुर नामक एक गाँव कोसल राज्य में था। यह श्रावस्ती के समीप था। इस गाँव के एक मछुए को हम श्रावस्ती जाते और मार्ग में अचिरवती नदी को पार करते देखते हैं।[4]

कट्ठवाहन नगर, जिसे राजा कट्ठवाहन का नगर बताया जाता था, कोसल राज्य में ही था। यह श्रावस्ती से बीस योजन की दूरी पर था और वाराणसी से यहाँ आने में पूरा एक दिन लगता था।[5]

साधुक नाम गाँव श्रावस्ती के जेतवनाराम के निकट ही था। यहाँ ऋषिदत्त और पुराण नामक कारीगरों ने कुछ समय के लिये निवास किया था।[6] सारत्थप्प-

---

१. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २१७।
२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५०१।
३. सुभ-सुत्तन्त (मज्झिम० २।५।९)।
४. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४४९।
५. परमत्थजोतिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५७६-५७९।
६. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ७७५।

कासिमी[1] का कहना है कि यह गाँव इन्हीं दो कारीगरों का था। एक बार जब भगवान् श्रावस्ती से बाहर जा रहे थे तो मार्ग में उपर्युक्त दो कारीगरों ने साधुक गाँव के पास भगवान् के दर्शन किये थे। इसी अवसर पर भगवान् ने उन्हें थपति-सुत्त का उपदेश दिया था।[2]

वंस (वत्स) राज्य, जिसे महाभारत के वत्स और जैन साहित्य के वच्छ राज्य से मिलाया गया है, मगध और अवन्ती के बीच में स्थित था। उसके उत्तर में कोसल देश था, जिसकी सीमा गंगा के द्वारा निर्धारित थी।[3] वंस देश के दक्षिण में यमुना नदी बहती थी, जो उसे चेदि जनपद से विभक्त करती थी। वंस के पश्चिम और उत्तर-पश्चिम में क्रमशः सूरसेन और पंचाल जनपद थे और पूर्व में काशी जनपद था। वस राज्य अवन्ती के उत्तर-पूर्व में था। एक राज्य के रूप में विकसित होकर वंस राष्ट्र ने उत्तर-पश्चिम में पंचाल के और दक्षिणी भाग में चेदि के कुछ भागों को अपने अधिकार में कर लिया था, ऐसा माना जा सकता है।[4]

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में वंस-देश का राजा उदयन (उदेन) था। बुद्ध-कालीन भारत के चारों बड़े राज्यों में अपनी-अपनी शक्ति को बढ़ाने के लिये प्रतिस्पर्द्धा चल रही थी। इस दृष्टि से वंस की भौगोलिक स्थिति बड़ी निर्बल थी। एक ओर वह मगध और अवन्ती के बीच में स्थित था और दूसरी ओर कोसल और अवन्ती के बीच। उसे कभी भी जीत कर मगध, अवन्ती या कोसल देश में मिलाया जा सकता था। इस भय से बचने के लिये वत्सराज उदयन ने वैवाहिक सम्बन्धों का आश्रय लिया, जिस प्रकार, जैसा हम पहले देख चुके हैं, मगधराज बिम्बिसार

---

१. जिल्द तीसरी, पृष्ठ २१५।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ७७५-७७६।

३. डा० लाहा ने वंस और कोसल के बीच में यमुना नदी को बताया है। इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्सट्स् ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज्म, पृष्ठ २३। यह ठीक नहीं जान पड़ता। यमुना नदी तो वंस और चेदि जनपदों के बीच में होकर बहती थी।

४. देखिये। राहुल सांकृत्यायन : मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ज (प्राक्कथन)।

ने भी लिया था। उदयन ने अवन्ती-नरेश चण्ड प्रद्योत (चण्ड पज्जोत) की पुत्री वासवदत्ता (वासुलदत्ता) से विवाह किया और इससे शक्ति-संतुलन में सहायता मिली।[1] सूरसेन अवन्ती के प्रभाव में था ही, वंस के वैवाहिक सम्बन्ध में जुड़ जाने के कारण उसकी शक्ति और बढ़ गई। इस प्रकार मगध, कोसल और अवन्ती में शक्ति-संतुलन हो गया और इनके बीच वंस-राज्य कुछ समय तक अपने स्वतन्त्र अस्तित्व को कायम रख सका। उदयन और वासवदत्ता (वासुलदत्ता) के विवाह की कथा धम्मपदट्ठकथा को उदेनवत्थु में विस्तार से वर्णित है और भारतीय साहित्य के अन्य कई महत्वपूर्ण ग्रन्थों और कुछ कथा-ग्रन्थों तथा नाटक-ग्रन्थों में उदयन की प्रेम-कथाओं का वर्णन है, जिनसे हमें यहाँ कोई प्रयोजन नहीं। हाँ, अपने विषय की दृष्टि से हमें यहाँ यह अवश्य कह देना चाहिये कि बौद्ध धर्म की ओर उदयन की दृष्टि अच्छी नहीं थी। मातंग जातक के अनुसार उसने भगवान् बुद्ध के प्रसिद्ध भिक्षु-शिष्य पिण्डोल भारद्वाज के साथ निर्दयतापूर्ण व्यवहार किया था। संयुत्त-निकाय की अट्ठकथा में भी कहा गया है कि उसने एक बार पिण्डोल भारद्वाज के अंग पर कोड़ियों को छोड़ने का प्रयत्न किया था। इस सब में कहाँ तक ऐतिहासिक सत्य है, यह कुछ कहा नहीं जा सकता। इन्हीं पिण्डोल भारद्वाज ने बाद में कौशाम्बी के घोषितागम में विहार करते हुए उदयन को यथासम्भव आत्म-संयम से रहने का उपदेश दिया था, जो संयुत्त-निकाय के भरद्वाज-सुत्त में निहित है। व्यावहारिक दृष्टि से यह बात उदयन को जँची थी और इस सुत्त के साक्ष्य के अनुसार वह बुद्ध-धर्म में प्रसन्न हुआ था। यद्यपि पालि तथा भारतीय साहित्य के अन्य अंशों के साक्ष्य पर उदयन को त्रिरत्न का अनुरक्त भक्त नहीं माना जा सकता, बल्कि उसकी प्रवृत्ति बुद्ध-धर्म की ओर कुछ समालोचनात्मक ही थी, परन्तु इस सब के होते हुए चीनी परम्परा का यह साक्ष्य है कि उदयन वत्सराज ने भगवान्

---

१. "प्रियदर्शिका" और "स्वप्नवासवदत्ता" के अनुसार उदयन ने क्रमशः अंग और मगध की राजकुमारियों से भी विवाह किये। "रत्नावली" के अनुसार उसने सिंहल देश की राजकुमारी सागरिका से भी विवाह किया। पालि विवरणों में उसकी तीन रानियों, वासवदत्ता, सामावती और मागन्दिया के उल्लेख प्राप्त हैं।

बुद्ध की स्वयं अपने हाथ से एक स्वर्ण-प्रतिमा बनाई थी और यूआन् चुआङ जिन वस्तुओं को अपने साथ ले गया था, उनमें एक चन्दन की लकड़ी की बनी हुई भगवान् बुद्ध की मूर्ति भी थी जो उदयन के द्वारा बनाई हुई उपर्युक्त प्रतिमा की अनुकृति थी।[1]

भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद उदयन कुछ समय तक और जीवित रहा। यह नहीं कहा जा सकता कि उसका पुत्र बोधि राजकुमार उसके बाद गद्दी पर बैठा या नहीं, परन्तु इतना निश्चित है कि वह बुद्ध, धर्म और संघ की शरण में आ चुका था और एक श्रद्धालु उपासक था। भग्ग लोगों के सुंसुमारगिरिनगर में उसने "कोकनद प्रसाद" नामक महल अपने लिये बनवाया था जहाँ उसने भगवान् को निमन्त्रित भी किया था और उनके सम्मानार्थ सफेद धुस्सों को बिछवाया था, जिन पर चलना तथागत ने स्वीकार नहीं किया था। इसी अवसर पर भगवान् ने उसे उपदेश दिया था, जो मज्झिम-निकाय के बोधिराजकुमार-सुत्तन्त में निहित है। धोनसाख जातक में भी भग्ग देश के सुंसुमारगिरि में बोधि राजकुमार के कोकनद प्रासाद में भगवान् के स्वागत किये जाने का उल्लेख है और इसी प्रकार विनय-पिटक के चुल्लवग्ग तथा अंगुत्तर-निकाय में भी इस घटना का उल्लेख है।[2] भग्ग देश की सीमा में उदयन-पुत्र बोधि राजकुमार के कोकनद प्रासाद को देखकर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि इस समय तक भग्गों का सुंसुमारगिरि-स्थित गण-तन्त्र किसी न किसी प्रकार वंस राज्य की अधीनता या उसके प्रभाव में आ गया था। परन्तु स्वयं वंस राज्य इसके कुछ वर्षों बाद सम्भवतः अवन्ती की अधीनता में आ गया और द्वितीय शताब्दी ईसवी पूर्व अवन्ती के सहित उसे हम मगध राज्य में सम्मिलित होते देखते हैं। परन्तु हमारा विषय हमें इतनी दूर जाने की अनुमति नहीं देता। सुंसुमारगिरिनगर में स्थित बोधि राजकुमार के कोकनद प्रासाद को ही अंतिम दृश्य के रूप में यहाँ तो हम देख सकते हैं। हाँ, आचार्य बुद्धघोष के अनुसार हमें यहाँ यह तो कह देना चाहिये कि यह प्रासाद लटकते हुए कोकनद (लाल कमल) की शकल में बनाया गया था। इसीलिये इसका यह नाम पड़ा था।[3]

---

१. बील : रिकार्डस् ऑव दि वस्टर्न वर्ल्ड, जिल्द पहली, पृष्ठ बीस (भूमिका)

२. उद्धरणों के लिये देखिये आगे भग्ग गण-तन्त्र का विवरण।

३. पपञ्चसूदनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३२१।

वंस देश की राजधानी कौशाम्बी (कोसम्बि) नगरी थी, जिसकी गणना दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त तथा महासुदस्सन-सुत्त में बुद्धकालीन भारत के छह महानगरों (महानगरानि) में की गई है। संयुत्त-निकाय के पठम-दारुक्खन्ध-सुत्त में जो कौशाम्बी को गंगा नदी के तट पर स्थित बताया गया है, उस सम्बन्धी समस्या का समाधान हम प्रथम परिच्छेद में संयुत्त-निकाय के भौगोलिक महत्व का विवेचन करते समय तथा द्वितीय परिच्छेद में गंगा नदी का पालि-परम्परा के अनुसार विवरण प्रस्तुत करते समय कर चुके हैं। यहाँ हमें यही कहना है कि मनोरथपूरणी[1] में वर्णित बक्कुल की कथा को प्रधानता देकर, जहाँ कौशाम्बी को स्पष्टत: यमुना नदी के तट पर स्थित बताया गया है, हमे संयुत्त-निकाय के उपर्युक्त सुत्त की उपेक्षा कर देनी चाहिये, क्योंकि कौशाम्बी नगर की प्राय: पूर्णत: निश्चित आधुनिक स्थिति से उसकी कोई संगति नहीं है। बुद्ध-काल में और उसके बाद कई शताब्दियों तक कौशाम्बी नगरी बौद्ध धर्म का एक मुख्य केन्द्र रही। कौशाम्बी श्रावस्ती से प्रतिष्ठान जाने वाले दक्षिणापथ मार्ग का एक महत्वपूर्ण पड़ाव थी। इस प्रकार उत्तर में कौशाम्बी सड़क के द्वारा साकेत और श्रावस्ती से युक्त थी और दक्षिण में विदिशा, गोनद्ध, उज्जयिनी, माहिष्मती और प्रतिष्ठान से। बावरि ब्राह्मण के शिष्य प्रतिष्ठान से श्रावस्ती को जाते हुए कौशाम्बी में भी रुके थे। एक सड़क कौशाम्बी से राजगृह को भी जाती थी। जीवक उज्जयिनी से लौटता हुआ कौशाम्बी में होकर ही राजगृह गया था।[2] वाराणसी से भी एक व्यापारिक मार्ग उज्जयिनी को जाता था,[3] जो सम्भवत: कौशाम्बी और चेति देश में होकर गुजरता था। कौशाम्बी से यमुना नदी के द्वारा प्रयाग-प्रतिष्ठान तक और उससे आगे गंगा के द्वारा वाराणसी, पाटलिपुत्र और ताम्रलिप्ति तक आवागमन था। अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा (मनोरथपूरणी)[4] में वर्णित बक्कुल की कथा से यह स्पष्ट हो जाता है कि नदी के द्वारा कौशाम्बी से वाराणसी की दूरी तीस योजन थी, क्योंकि जो मछली शिशु

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ १७०।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २७२।

३. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २४८; जिल्द पहली, पृष्ठ २५३।

४. जिल्द पहली, पृष्ठ १७०।

बच्कुल को निगल गई थी, उसका तीस योजन दूर चलकर वाराणसी में पहुँचना यहाँ दिखाया गया है।

कौशाम्बी नगर का यह नाम क्यों पड़ा, इसके सम्बन्ध में आचार्य बुद्धघोष ने दो अनुश्रुतियों का उल्लेख किया है, (१) यह नगर कौशाम्बी कहलाता था, क्योंकि जब यह बसाया गया था तो इसके आस पास खड़े हुए बहुत से कोसम्ब नामक वृक्ष काटे गये थे,[1] और (२) कुसुम्ब नामक ऋषि के आश्रम के समीप यह नगर बसाया गया था।[2] दूसरी अनुश्रुति का समर्थन हमें अप्रत्यक्ष रूप से अश्वघोष-कृत सौन्दरनन्द काव्य में भी मिलता है।[3] भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में कौशाम्बी में तीन प्रसिद्ध सेठ रहते थे, जिनके नाम थे घोषित, कुक्कुट और पावारिक। एक बार ये तीनों भगवान् के दर्शनार्थ श्रावस्ती गये और भगवान् को कौशाम्बी आने के लिये निमन्त्रित किया। भगवान् बुद्ध ने उनकी प्रार्थना को स्वीकार कर लिया। उपर्युक्त तीनों सेठों ने अलग-अलग एक-एक विहार बनवा कर बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को दान किया। घोषित द्वारा बनवाया गया विहार घोषिताराम कहलाया और शेष दो सेठों के द्वारा बनवाये गये विहार उन्हीं के नाम पर क्रमशः कुक्कुटाराम और पावारिकम्बवन (प्रावारिक आम्रवन) कहलाये।[4] इन तीनों विहारों की स्थिति के सम्बन्ध में सातवीं शताब्दी ईसवी में भारत आने वाले चीनी यात्री यूआन् चुआङ ने पर्याप्त प्रकाश डाला है। यूआन् चुआङ् का कहना है कि घोषिताराम विहार कौशाम्बी नगर के बाहर, उसके दक्षिण-पूर्व दिशा में, स्थित था। यहीं यूआन् चुआङ ने अशोक द्वारा स्थापित एक स्तूप को भी देखा था जो २०० फुट ऊँचा था।[5]

---

१. परमत्थजोतिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३००।

२. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३८९-३९०।

३. ककन्दस्य मकन्दस्य कुशाम्बस्येव चाश्रमे। पुर्यो यथा हि श्रूयन्ते तथैव कपिलस्य तत्। सौन्दरनन्द १।५८।

४. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३१९; मनोरथपूरणी, जिल्द पहली, पृष्ठ २३४।

५. वाटर्स : ऑन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३६९।

यूआन् चुआङ के समय में यह दो-मंजिले विहार के रूप में अवशिष्ट था।[१] पावारिकम्बवन (प्रावारिक आम्रवन) घोसिताराम के पूर्व में था। यूआन् चुआङ ने इस विहार की पुरानी बुनियादों को देखा था।[२] भगवान् बुद्ध के स्नानागार के भग्नावशेषों को भी यूआन् चुआङ ने देखा था।[३]

उपर्युक्त तीनों विहारों के अतिरिक्त बदरिकाराम नामक एक अन्य विहार भी कौशाम्बी में था, जिसका उल्लेख तिपल्लत्थमिग जातक में है। यहाँ भगवान् बुद्ध ठहरे थे और उक्त जातक का उपदेश दिया था। एक बार राहुल ने भी यहीं रह कर भिक्षु-नियमों का अनुशीलन किया था। एक अन्य अवसर पर हम यहीं रहने वाले एक भिक्षु को, जिसका नाम खेमक था, बीमार पड़ते देखते हैं, जिसकी परिचर्या के लिये घोषिताराम के भिक्षुओं ने दासक नामक भिक्षु को भेजा था।[४] सारत्यप्पकासिनी[५] के अनुसार बदरिकाराम की दूरी घोसिताराम से एक गावुत (करीब दो मील) थी।

यह उल्लेखनीय है कि कौशाम्बी मे एक परिब्राजकाराम भी था। वहाँ पर अपने जाने के बारे में एक बार आनन्द ने भगवान् को बताया था।[६] राजगृह और श्रावस्ती में बुद्ध-काल में विद्यमान परिब्राजकारामों का उल्लेख हम क्रमशः इन नगरों के वर्णन-प्रसंग में कर भी चुके है। वैशाली में भी दो प्रसिद्ध परिब्राजकाराम थे, जिनका वर्णन हम आगे यथास्थान करेंगे।

भगवान् बुद्ध ने अपना नवाँ वर्षावास कौशाम्बी में किया था और इसी वर्ष वे यहाँ से कुरु राष्ट्र भी गये थे, जिसका उल्लेख हम द्वितीय परिच्छेद में कर चुके हैं। बुद्धत्व-प्राप्ति के दसवें वर्ष में कौशाम्बी के भिक्षु-संघ में कलह उत्पन्न हुआ जिससे खिन्न होकर भगवान् कौशाम्बी से क्रमशः बालकलोणकार गाम और पाचीनवंस

---

१. वहीं, पृष्ठ ३७०।
२. वहीं, पृष्ठ ३७१।
३. बील : बुद्धिस्ट रिकार्डस् ऑव दि वेस्टर्न वर्ल्ड, जिल्द पहली, पृष्ठ २३६।
४. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ३७७ (खेमक-सुत्त)।
५. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३१६।
६. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ ३७।

(मिग) दाय होते हुए पारिलेय्यक के रक्षित वनखण्ड में पहुँचे जहाँ उन्होंने दसवाँ वर्षावास किया और उसके बाद श्रावस्ती चले गये।[1] कौशाम्बी में निवास करते समय ही भगवान् ने कौशाम्बिक भिक्षुओं के कलह के शमनार्थ मज्झिम-निकाय के कोसम्बिय-सुत्तन्त का उपदेश दिया था। एक अन्य अवसर पर हम भगवान् को अनूपिया से कौशाम्बी आते देखते हैं।[2] सुरापान-जातक से हमें सूचना मिलती है कि एक बार भगवान् चेति रट्ठ की भद्दवती या भद्दवतिका नगरी से भी कौशाम्बी गये थे। विनय-पिटक के उत्क्षेपणीय कर्म सम्बन्धी नियमों का विधान भगवान् ने कौशाम्बी में निवास करते समय ही किया था।[3] कौशाम्बी में जाते समय हम अक्सर भगवान् को घोसिताराम में निवास करते देखते हैं। इस प्रकार दीघ-निकाय के जालिय-सुत्त का उपदेश यहीं दिया गया था और यहीं मण्डिस्स परिव्राजक और जालिय नामक साधु उनसे मिलने आये थे। इस घटना का उल्लेख दीघ-निकाय के महालि-सुत्त में भी है। मज्झिम-निकाय के सन्दक-सुत्त में भी हम भगवान् को कौशाम्बी के घोसिताराम में विहार करते देखते हैं। इसी निकाय के बोधि राज-कुमार-सुत्तन्त से भी हमें यह सूचना मिलती है कि एक बार भगवान् ने कौशाम्बी के घोसिताराम में विहार किया था। मज्झिम-निकाय के उपक्किलेस-सुत्तन्त का उपदेश भी कौशाम्बी के घोसिताराम में दिया गया था। इसी प्रकार संयुत्त-निकाय के पारिलेय्य-सुत्त, खेमक-सुत्त, पिण्डोल-सुत्त और सेख-सुत्त का उपदेश भगवान् ने कौशाम्बी के घोसिताराम में विहार करते हुए ही दिया था। भगवान् बुद्ध के अति-रिक्त उनके प्रधान शिष्यों के भी कौशाम्बी और उसके घोसिताराम में निवास करने के उल्लेख हैं। आयुष्मान् पिण्डोल भारद्वाज के कौशाम्बी के घोसिताराम में विहार करने तथा उदयन के साथ उनके संलाप का वर्णन संयुत्त-निकाय के भरद्वाज-सुत्त में है। इसी निकाय के घोसित-सुत्त, छन्न-सुत्त तथा ब्राह्मण-सुत्त से हमें सूचना मिलती है कि आनन्द ने भी विभिन्न अवसरों पर कौशाम्बी के घोसिता-राम में विहार किया था। आनन्द और कामभू ने कौशाम्बी में विहार किया,

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३२२-३३४।
२. वहीं, पृष्ठ ४८०।
३. वहीं, पृष्ठ ३५८-३६१।

इसका उल्लेख संयुत्त निकाय के कामभूम-सुत्त में है। इसी प्रकार एक अन्य अवसर पर उदायी स्थविर के सहित आनन्द कौशाम्बी के घोसिताराम में ठहरे, इसका उल्लेख इसी निकाय के उदायी-सुत्त में है। अंगुत्तर-निकाय के चतुक्क-निपात में भी हम आनन्द को कौशाम्बी के घोषिताराम में विहार करते देखते हैं। स्थविर उपवान के साथ धर्मसेनापति सारिपुत्र कौशाम्बी गये और घोषिताराम में ठहरे, यह सूचना हमें संयुत्त-निकाय के उपवान-सुत्त में मिलती है। आयुष्मान् सविट्ठ, नारद और आनन्द मिलकर कौशाम्बी गये थे और वहाँ के घोसिताराम में ठहरे थे, यह हमें संयुत्त-निकाय के कोसम्बी-सुत से विदित होता है। एक अन्य अवसर पर भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद हम आर्य महाकात्यायन को कौशाम्बी के समीप एक वन में बारह अन्य भिक्षुओं के साथ निवास करते देखते हैं। द्वितीय संगीति से कुछ समय पूर्व हम आयुष्मान् यश काकण्डपुत्त को वैशाली से कौशाम्बी जाते देखते हैं।[1]

कौशाम्बी के पास एक सिंसपा-वन (शीशम के वृक्षों का वन) था, जिसमें विहार करते भगवान् को हम संयुत्त-निकाय के सिंसपा-सुत्त में देखते हैं। कोसल देश के विवरण में हम देख चुके हैं कि एक सिंसपा-वन उसके नगर सेतव्या के उत्तर में भी था। इसी प्रकार पंचाल जनपद के विवरण में हम देखेंगे कि एक सिंसपा-वन आलवी के समीप भी स्थित था।

कौशाम्बी में यमुना नदी के तट से लगा हुआ राजा उदयन का 'उदक वन' नामक एक उपवन भी था। पिण्डोल भारद्वाज यहाँ अक्सर ध्यान के लिये जाया करते थे। एक बार राजा उदयन को भी हम वहाँ स्त्रियों-सहित आमोद-प्रमोद के लिये जाते देखते हैं।

भगवान् बुद्ध के शिष्य बक्कुल स्थविर का जन्म कौशाम्बी में ही हुआ था। खुज्जुत्तरा दासी, जो बाद में अग्र उपासिका बनी, कौशाम्बी के घोसित या घोसक श्रेष्ठी की दाई की कन्या थी। भिक्षुणी सामा, जो कौशाम्बी-नरेश उदयन की रानी सामावती की प्रिय सखी थी, और उसकी मृत्यु के बाद जो दुःखाभिभूत होकर

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५५०; मिलाइये महावंस ४।१७ (हिन्दी अनुवाद)।

भिक्षुणी हो गई थी, कौशाम्बी-निवासिनी ही थी।[1] भगवान् बुद्ध के शिष्य तिस्स थेर, जो एक गृहपति-पुत्र थे, कौशाम्बी में ही पैदा हुए थे।[2]

कौशाम्बी के घोसिताराम के पास प्लक्षगुहा (पिलक्खगुहा) नामक गुफा थी, जहाँ भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में सन्दक नामक परिव्राजक निवास करता था। यहीं देवकट सोब्भ नामक एक प्राकृतिक जलकुण्ड था, जिसे देखने के लिये आनन्द कुछ अन्य भिक्षुओं के सहित गये थे और यहीं सन्दक परिव्राजक से उनका संलाप हुआ था जो, मज्झिम-निकाय के सन्दक-सुत्तन्त में निहित है। पिलक्ख गुहा (प्लक्ष गुहा) का यह नाम आचार्य बुद्धघोष के मतानुसार इसलिये पड़ा था कि इसके द्वार के समीप पिलक्ख (संस्कृत प्लक्ष) या पाकर के पेड़ लगे हुए थे।[3] प्लक्षगुहा को आधुनिक पभोसा ('प्रभास' नाम से जिसकी ख्याति एक पौराणिक तीर्थ के रूप में भी है) की पहाड़ी की गुफा से मिलाया जा सकता है, जो कोसम गाँव (कौशाम्बी) से पश्चिम दिशा में दो या ढाई मील दूर है और जहाँ दूसरी शताब्दी ईसवी पूर्व के अभिलेख भी मिले हैं। शुङ्गों के काल में यहाँ बहसतिमित (बृहस्पति मित्र) नामक राजा के द्वारा कस्यपीय (काश्यपिक) अर्हतों के निवास के लिये गुफाएँ बनवाई गई थीं, ऐसा एक अभिलेख से विदित होता है।

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल के कई शताब्दियों बाद तक भी कौशाम्बी नगर बौद्ध धर्म का केन्द्र बना रहा। अशोक के साम्राज्य का वह एक अंग था। इस समय इलाहाबाद के किले में स्थित अशोक-स्तम्भ पहले कौशाम्बी में ही था। इस स्तम्भ के लेख में महामात्रों को आज्ञा दी गई है कि वे संघ में फूट डालने वाले भिक्षु-भिक्षुणियों को कौशाम्बी से निकाल दें। इससे यह विदित होता है कि संघ-भेदक प्रवृत्ति, जो कौशाम्बी में बुद्ध के जीवन-काल में दृष्टिगोचर हुई थी, अशोक के काल तक भी निःशेष नहीं हुई थी। महावंस[4] के वर्णनानुसार कौशाम्बी के घोसिताराम के तीस हजार भिक्षु उरुधम्मरक्खित नामक भिक्षु की अध्यक्षता में लंका में अनुराधपुर के

---

१. थेरीगाथा, पृष्ठ ५१-५२ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।
२. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८५।
३. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६८७।
४. २९।३४ (हिन्दी अनुवाद)।

महास्तूप विहार के शिलान्यास-महोत्सव में भाग लेने के लिये द्वितीय शताब्दी ईसवी-पूर्व लंका गये थे। कनिष्क के समय में बुद्धमित्रा या बुद्धिमित्रा नामक भिक्षुणी ने बोधिसत्व की एक मूर्ति कौशाम्बी में स्थापित की थी। पाँचवीं शताब्दी ईसवी में चीनी यात्री फा-ह्यान ने कौशाम्बी की यात्रा की थी। वह यहाँ वाराणसी के समीप इसिपतन मिगदाय से उत्तर-पश्चिम में १३ योजन की यात्रा करने के पश्चात् आया था।[1] फा-ह्यान ने 'घोचिरवन' के रूप में घोषिताराम को अपने समय में भी विद्यमान देखा था। उस समय यहाँ हीनयान सम्प्रदाय के कुछ भिक्षु निवास करते थे।[2] यूआन् चुआङ ने कौशाम्बी की दो बार यात्रा की और उसने यहाँ के विहारों के सम्बन्ध में जो साक्ष्य दिया है, उसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। यूआन चुआङ ने कौशाम्बी और उसके आसपास स्थित दस विहारों के खंडहर देखे थे, जहाँ हीनयान सम्प्रदाय के ३०० भिक्षु उस समय भी निवास करते थे।[3]

कौशाम्बी की आधुनिक पहचान कोसम नामक गाँव के रूप में, जो यमुना नदी के बायें तट पर इलाहाबाद से सीधे रास्ते से करीब ३० मील दक्षिण-पश्चिम में है, कनिंघम ने की थी।[4] यद्यपि स्मिथ ने इस पहचान को स्वीकार नहीं किया था और उनका विचार था कि कौशाम्बी को हमें कहीं दक्षिण में बघेलखंड के आसपास खोजना चाहिये,[5] परन्तु कनिंघम और स्मिथ के बाद इस सम्बन्ध में जो खोजें हुई हैं और अभी हाल मे प्रयाग विश्वविद्यालय के प्राचीन इतिहास-विभाग के तत्वावधान में कोसम की खुदाई के परिणामस्वरूप घोषिताराम के अवशेषों का जो महत्त्वपूर्ण और अत्यन्त व्यवस्थित अन्वेषण हुआ है, उससे इस गाँव के बुद्धकालीन कौसम्बी होने में कोई सन्देह नहीं रह गया है। कौशाम्बी क्षेत्र में चारों ओर दूर तक जो टीला सा दिखाई देता है, उसे उदयन के किले का परकोटा बताया जाता

---

१. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ६१।

२. वहीं, पृष्ठ ६२।

३. वाटर्स : ऑन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली पृष्ठ ३६६–३६७।

४. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४५४।

५. जनरल ऑव रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १८९८, पृष्ठ ५०३।

है, परन्तु निश्चयतः इस सम्बन्ध में अभी कुछ नहीं कहा जा सकता।

पालि साहित्य की एक परम्परा के अनुसार, जैसा कि हम पहले देख चुके हैं, जम्बुद्वीप तीन मण्डलों में विभक्त था। इनमें से एक मण्डल अवन्ती था और शेष दो थे प्राचीन और दक्षिणापथ। अवन्ती देश के दो भाग थे, एक उत्तरी भाग और दूसरा दक्षिणी भाग, जिनके बीच में होकर वेत्तवती (वेत्रवती) नदी बहती थी। दक्षिणी भाग को पालि साहित्य में 'अवन्ति दक्खिणापथ' कहा गया है और उत्तरी भाग को हम उत्तर अवन्ती कह सकते हैं। अवन्ति दक्षिणापथ की राजधानी माहिष्मती (माहिस्सति) नामक नगरी थी और उत्तर अवन्ती की उज्जयिनी (उज्जेनी)।

अवन्ती राज्य नर्मदा नदी की घाटी में मान्धाता नगर से लेकर महेश्वर (इन्दौर) तक फैला हुआ था। पालि परम्परा के अनुसार हमें उत्तर अवन्ती को तो मज्झिम देस में रखना चाहिए और अवन्ति दक्षिणापथ को, जैसा उसके नाम से स्पष्ट है, दक्षिणापथ में। डा० विमलाचरण लाहा ने "ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म"[1] में अवन्ती को मज्झिम देस के अन्दर रक्खा है और "इंडिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज़्म"[2] में अपरान्त में। सम्भवतः पहली बात उन्होंने मज्लसेकर के अनुसरण पर की है जिन्होंने भी अवन्ती का समावेश मज्झिम देस में किया है,[3] और दूसरी बात के लिये उनका आधार मार्कण्डेय पुराण जान पड़ता है।[4] भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में अवन्ती का राजा चण्ड प्रद्योत महासेन था, जिसने अपनी पुत्री वासवदत्ता (वासुलदत्ता) का विवाह वत्सराज उदयन के साथ किया था। विनय-पिटक के महावग्ग में कहा गया है कि वह अत्यन्त क्रोधी स्वभाव का था।[5] बिम्बिसार ने चण्ड प्रद्योत के साथ मित्रता के सम्बन्ध रक्खे और जब उसे पाण्डु रोग हो गया तो बिम्बिसार ने अपने प्रसिद्ध वैद्य जीवक को उसकी चिकित्सा

---

१. पृष्ठ २२।

२. पृष्ठ ७४।

३. देखिये द्वितीय परिच्छेद में मज्झिम देस के प्राकृतिक भूगोल का विवेचन।

४. देखिये "इंडिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज़्म, पृष्ठ १९, पद-संकेत ३; पृष्ठ ७४।

५. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २७१-२७२।

के लिये उज्जेनी (उज्जैन) भेजा और जीवक ने उसे ठीक किया।[1] परन्तु बाद में अजातशत्रु को इस बात से भयभीत होकर कि कहीं चण्ड प्रद्योत उसके राज्य पर चढ़ाई न कर दे हम मज्झिम-निकाय के गोपक-मोग्गल्लान सुत्त में उसे राजगृह नगर की मोर्चाबन्दी करवाते देखते हैं। यह घटना बुद्ध-परिनिर्वाण के कुछ समय बाद की ही हो सकती है। बुद्ध-परिनिर्वाण के करीब १५० वर्ष बाद अवन्ती मगध साम्राज्य में मिल गया।

बुद्ध-पूर्व काल में अवन्ती की गणना सोलह महाजनपदों में की जाती थी और उसे एक समृद्ध और धनधान्यपूर्ण प्रदेश माना जाता था। बुद्ध-काल में वह एक राज्य के रूप में विकसित हो गया। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में सूरसेन जनपद का राजा माथुर अवन्तीपुत्र था जो अवन्ती-नरेश चण्डप्रद्योत का दौहित्र था। इससे यह मालूम पड़ता है कि सूरसेन जनपद पर अवन्ती राज्य का इस समय प्रायः उसी प्रकार का या उससे कुछ कम अधिकार था, जैसा कि अंग पर मगध का, काशी पर कोसल का या भग्ग पर वंस का। कम से कम सूरसेन जनपद को हम अवन्ती राज्य के प्रभाव के अन्तर्गत मान सकते हैं।

बौद्ध धर्म के प्रचार की दृष्टि से अवन्ती का बुद्ध-काल में भी काफी महत्त्वपूर्ण स्थान था और उसके बाद भी। यद्यपि भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में अवन्ति दक्षिणापथ में कम भिक्षु ही बताये गये हैं,[2] परन्तु अवन्ती ने आर्य महाकात्यायन जैसा साधक और महान् प्रचारक भिक्षु बुद्ध-धर्म को दिया, यह उसके लिये कुछ कम गौरव की बात नहीं है। आर्य महाकात्यायन अवन्ती-नरेश चण्ड प्रद्योत के पुरोहित के पुत्र थे। अपने पिता की मृत्यु के बाद वे स्वयं राजा चण्ड प्रद्योत के पुरोहित हो गये। परन्तु जब भगवान् बुद्ध की ज्ञान-प्राप्ति के बारे में सुना तो श्रावस्ती आये और प्रव्रजित हो गये। आर्य महाकात्यायन ने ही चण्ड प्रद्योत को बुद्ध-धर्म में प्रसन्न किया। अवन्ती में बड़े उत्साह के साथ आर्य महाकात्यायन ने बुद्ध-धर्म का

---

१. उपर्युक्त के समान।

२. "तेन खो पन समयेन अवन्तिदक्खिणापथो अप्पभिक्खुको होती ति।" महावग्गो (विनय पिटकं), पठमो भागो, पृष्ठ ३२७, (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

प्रचार किया। काली नामक उपासिका और हलिद्दिकानि नामक उपासक उनके प्रसिद्ध गृहस्थ-शिष्य थे। हम उन्हें अवन्ती के कुररघर नगर के पपात पब्बत पर विहार करते संयुत्त-निकाय के दो हालिद्दिकानि सुत्तों में देखते हैं और इसी प्रकार इस निकाय के लोहिच्च-सुत्त में उनके अवन्ती के मक्करकट नामक अरण्य में विहार करने का उल्लेख है। आर्य महाकात्यायन का प्रचार-कार्य अवन्ती तक ही सीमित न था। हम उन्हें राजगृह के तपोदाराम में, श्रावस्ती, मोरेय्य में और मथुरा के गुन्दावन तक में धर्म-प्रचारार्थ जाते देखते हैं। आर्य महाकात्यायन के अतिरिक्त अभय कुमार, इसिदत्त, धम्मपाल और सोण कुटिकण्ण नामक स्थविर अवन्ती-निवासी ही थे। भिक्षुणी इसिदासी भी अवन्ती की निवासिनी थी। बुद्ध-वंस में कहा गया है कि भगवान् बुद्ध के आसन और बिछौने पर स्तूप-रचना 'अवन्तिपुर राष्ट्र' में की गई थी।[1] 'अवन्तिपुर राष्ट्र' से तात्पर्य सम्भवतः अवन्ती राष्ट्र की नगरी उज्जेनी से ही था।

उज्जेनी (उज्जयिनी) अवन्ती राज्य के उत्तरी भाग अर्थात् उत्तर अवन्ती की राजधानी थी। चित्त सम्भूत जातक में कहा गया है, "अवन्ति राष्ट्र में, उज्जेनी में, अवन्ति महाराज राज्य करते थे।" बुद्ध-काल में श्रावस्ती से प्रतिष्ठान जाने वाले मार्ग 'दक्षिणापथ' पर वह एक महत्वपूर्ण पड़ाव थी, जो प्रतिष्ठान और गोनद्ध के बीच स्थित थी। इस प्रकार उत्तर में उज्जयिनी, विदिशा, कौशाम्बी, साकेत और श्रावस्ती जैसे नगरों से तथा दक्षिण में माहिष्मती तथा प्रतिष्ठान से व्यापारिक मार्ग द्वारा संयुक्त थी। भरुकच्छ (भृगुकच्छ) और सुप्पारक (सोपारा) से भी एक मार्ग उज्जेनी तक आता था। इस प्रकार उत्तर और दक्षिण के प्रसिद्ध भारतीय नगरों तथा पश्चिमी किनारे के उस समय के प्रसिद्ध बन्दरगाहों से भी यह नगरी व्यापारिक मार्गों द्वारा जुड़ी हुई थी। दीपवंस[2] के अनुसार राजा अच्चुतगामि ने उज्जयिनी नगरी की स्थापना की थी। स्थविर महाकात्यायन का जन्म उज्जेनी

---

१. निसीदनं अवन्तिपुरे रट्ठे अत्थरणं तदा। बुद्धवंस, पृष्ठ ७५ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

२. पृष्ठ ५७।

में ही हुआ था। भगवान् बुद्ध के आदेश पर उन्होंने उज्जेनी में धर्म-प्रचार किया और वहाँ की जनता को सद्धर्म में अनुरक्त बनाया। उन्हीं की प्रेरणा से चण्ड प्रद्योत की महिषी गोपालमाता देवी ने उज्जेनी में काञ्चन-वन उद्यान में एक विहार बनवाया। ऐसा अनुमान किया जाता है कि आधुनिक उज्जैन के समीप स्थित वेश्या टेकरी का स्तूप काञ्चन वन विहार की स्थिति को सूचित करता है। अशोक कुमार होते समय उज्जेनी का ही उपराज था और पाटलिपुत्र से उज्जयिनी जाते हुए मार्ग में वेदिस (विदिशा) या वेदिस गिरि नगर में उसने देवी नामक श्रेष्ठि-पुत्री से विवाह किया था। महेन्द्र का जन्म उज्जेनी में ही हुआ था।

काफ़ी समय बाद तक उज्जेनी बौद्ध-धर्म का केन्द्र बनी रही। द्वितीय शताब्दी ईसवी-पूर्व लंकाधिराज दुट्ठगामणि ने महास्तूप नामक विहार की आधार-शिला रखने का जो महोत्सव किया, उसमें भाग लेने के लिये उज्जयिनी के 'दक्षिणगिरि-विहार' से चालीस हजार भिक्षु गये थे।[1] बहुत बाद में चलकर हम बौद्ध सिद्धों की परम्परा को भी उज्जयिनी से सम्बद्ध पाते हैं।

चीनी यात्री यूआन् चुआङ ने उज्जयिनी (उ-शे-येन्-न) का उल्लेख किया है। उसने इस नगर का विस्तार तीस 'ली' (करीब ५ मील) बताया है और कहा है कि उस समय यह एक घनी वस्ती वाली नगरी थी। सम्पूर्ण उज्जयिनी प्रदेश का विस्तार यूआन् चुआङ ने ६००० 'ली' या करीब एक हजार मील बताया है। कुछ भग्न विहारों का भी उल्लेख यूआन् चुआङ ने किया है और कहा है कि नगर के बाहर एक स्तूप भी था।[2] वर्तमान मध्य-प्रदेश की उज्जैन ही निश्चयतः बुद्धकालीन उज्जेनी नगरी है। इस स्थान की खुदाई इस समय चल रही है और अनेक महत्त्वपूर्ण तथ्यों के प्रकाश में आने की सम्भावना है।

तेलप्पणालि गाँव उज्जेनी के समीप स्थित था। स्थविर महाकच्चान श्रावस्ती में भगवान् बुद्ध से मिलकर जब उज्जेनी को जा रहे थे तो मार्ग में वे इस गाँव में ठहरे थे। एक निर्धन बालिका ने अपने सुन्दर बालों को काटकर

---

१. महावंस २९।३५ (हिन्दी अनुवाद)।

२. बील : बुद्धिस्ट रिकार्डस् ऑव दि वेस्टर्न वर्ल्ड, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २७०-२७१।

और उन्हें बेचकर स्थविर महाकच्चान को भिक्षान्न का दान किया था। इस बात को जब चण्ड प्रद्योत ने सुना तो प्रसन्न होकर उसने इस लड़की को अपनी रानी बना लिया। बाद में उसके एक पुत्र हुआ जो अपनी नानी के नाम पर गोपाल कहलाया। इसी की माता होने के कारण तेलप्पणालि गाँव की उपर्युक्त महिला, जो चण्डप्रद्योत की रानी बनी, गोपालमाता कहलाती थी। हम पहले देख ही चुके हैं कि उसने उज्जेनी में काञ्चन वन उद्यान में एक विहार बनवाया था।

माहिस्सति (माहिष्मती) नगरी अत्यन्त प्राचीन थी। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त के अनुसार बुद्ध-पूर्व युग के राजा रेणु के ब्राह्मण मन्त्री महागोविन्द ने सम्पूर्ण जम्बुद्वीप को सात राज्यों में विभक्त किया था और उनकी अलग-अलग राजधानियाँ स्थापित की थीं। अवन्ती राज्य और उसकी राजधानी माहिष्मती उन्हीं में से एक थे। माहिष्मती नगरी दक्षिणापथ मार्ग पर पड़ती थी और प्रतिष्ठान और उज्जयिनी के बीच में स्थित थी। कुछ विद्वानों ने माहिस्सति को महेश्वर (इन्दौर) से मिलाया है और कुछ ने मान्धाता नामक नगर से जो नर्मदा के किनारे पर स्थित है। माहिस्सति को पूर्वोक्त स्थिति को देखते हुए हम उसे मान्धाता नगर से ही मिलाना अधिक ठीक समझते हैं। माहिष्मती नगरी दक्षिण अवन्ती अर्थात् अवन्ति-दक्षिणापथ की राजधानी थी।

वेदिस (विदिशा) नगर दक्षिणापथ मार्ग पर गोनद्ध और कौशाम्बी के बीच स्थित था।[1] बावरि ब्राह्मण के सोलह शिष्य यहाँ ठहरे थे। महेन्द्र और संघमित्रा की माँ देवी, जिससे अशोक ने कुमार होते समय पाटलिपुत्र से उज्जयिनी की ओर जाते हुए मार्ग में विदिशा नगरी (या विदिशागिरिनगर) में विवाह किया था, यहीं की निवासिनी थी। स्थविर महेन्द्र ने लंका को जाने से पूर्व कुछ समय वेदिस नगर में निवास किया था। उनकी माता देवी ने इस नगर में 'वेदिसगिरि महाविहार' की स्थापना की थी।[2] बुद्धकालीन वेदिस (विदिशा) नगर

---

१. देखिये प्रथम परिच्छेद में सुत्त-निपात के भौगोलिक महत्व तथा पंचम परिच्छेद में बुद्धकालीन व्यापारिक मार्गों के विवेचन।

२. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ७०; मिलाइये महावंस १३।६-९ (हिन्दी अनुवाद)।

को आधुनिक भिलसा से या उससे तीन मील दूर बेसनगर से मिलाया गया है, जो अपने भग्नावशेषों, अभिलेखों तथा पुरातत्व सम्बन्धी अन्य सामग्री के लिये अन्यतम ख्याति प्राप्त कर चुका है। महाबोधिवंस के अनुसार वेदिस (विदिशा), की दूरी पाटलिपुत्र से ५० योजन थी। इसी ग्रन्थ के अनुसार वेदिस नगर को उन शाक्यों ने बसाया था जो विडूडभ के भय से भाग कर वहाँ गये थे।[१] इसे उत्तर-कालीन परम्परा पर ही आधारित माना जा सकता है। उपर्युक्त 'वेदिसगिरि महाविहार' के समीप ही अशोक के काल में साँची के स्मारकों का बनवाया जाना आरम्भ किया गया था, परन्तु 'साँची' नाम का उल्लेख पालि साहित्य में कहीं नहीं है। महाबोधिवंस के अनुसार विदिशा में 'हत्थाल्हकाराम' नामक एक अन्य बौद्ध विहार भी था।

गोनद्ध या गोनद्धपुर अवन्ती जनपद का एक प्रसिद्ध निगम था, जो 'दक्षिणा-पथ' मार्ग पर स्थित था। बावरि ब्राह्मण के सोलह शिष्य गोदावरी के तट के समीप स्थित अपने गुरु के आश्रम से चल कर प्रतिष्ठान और उज्जयिनी होते हुए गोनद्ध आये थे और फिर वहाँ से आगे चलकर उन्हें जो प्रसिद्ध नगर पड़ा था, वह वेदिस (विदिशा) था। इस प्रकार गोनद्ध नगर उज्जयिनी और विदिशा के बीच में स्थित था। सुत्त-निपात की अट्ठकथा (परमत्थजोतिका)[२] के अनुसार गोनद्धपुर का एक अन्य नाम गोधपुर भी था।

विदिशा और कौशाम्बी के बीच 'वनसव्हय' या 'वनसाव्हय' नामक स्थान था, जिसका उल्लेख हमें सुत्त-निपात के पारायण-वग्ग की वत्थुगाथा में बावरि ब्राह्मण के शिष्यों की यात्रा के प्रसंग में मिलता है। यह एक नगर था। सुत्त-निपात की अट्ठकथा में कहा गया है कि वनसव्हय का एक दूसरा नाम तुम्बव नगर भी था और वह वन सावत्थि भी कहलाता था।[३] विदिशा और कौशाम्बी के बीच में स्थित होने के कारण हम वनसव्हय को अवन्ती और वत्स राष्ट्रों में से किसी एक में रख सकते हैं।

---

१. पृष्ठ ९८-९९।

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८३।

३. परमत्थजोतिका (सुत्त-निपात की अट्ठकथा), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८३।

कुररघर अवन्ती जनपद का एक प्रसिद्ध नगर था। स्थविर सोण कुटिकण्ण यहीं के निवासी थे। इसीलिये वे "कुररघरिय सोण" भी कहलाते थे। इन्हीं के नाम से मिलते-जुलते एक दूसरे स्थविर सोण कोटिवीस थे, जो चम्पा के निवासी थे। काली और कातियानी (कात्यायनी) नामक उपासिकाएँ कुररघर की निवासिनी थीं। कुररघर के समीप एक पपात पब्बत था। स्थविर महाकात्यायन को हम कुररघर के पपात पब्बत पर विहार करते संयुत्त-निकाय के पठम-हालिद्दि-कानि-सुत्त तथा दुतिय-हालिद्दिकानि-सुत्त में देखते हैं। अंगुत्तर-निकाय में भी उनके यहाँ विहार करने का उल्लेख है। कहीं-कहीं कुररघर शब्द का प्रयोग एक पर्वत के अर्थ में भी किया गया है, जिससे तात्पर्य कुररघर नगर के समीप स्थित पर्वत से ही हो सकता है। संयुत्त-निकाय के हलिद्दक-सुत्त में हम इस प्रकार स्थविर महाकात्यायन को कुररघर पर्वत पर विहार करते देखते हैं। दक्षिणापथ के प्राकृतिक भूगोल के विवेचन में हम पहले देख चुके हैं कि कुररघर नगर के समीप पपात पब्बत था। अतः उससे ही यहाँ तात्पर्य समझना चाहिये।

वेलुगाम, जिसे वड्ढगाम भी कहा गया है, अवन्ती राज्य का एक गाँव था। स्थविर ऋषिदत्त (इसिदत्त) का जन्म इसी गाँव में हुआ था।[1]

संयुत्त-निकाय के लोहिच्च-सुत्त की अट्ठकथा में आचार्य बुद्धघोष ने मक्करकट को एक नगर माना है। यह नगर इसी नाम के वन के समीप स्थित था।[2] वेलुकण्ड या वेणुकण्ट अवन्ती का एक प्रसिद्ध नगर था। स्थविर कुमापुत्र और उनके एक साथी भिक्षु अवन्ती के इस वेलुकण्ड नगर के ही निवासी थे।[3] एक बार धर्मसेनापति सारिपुत्र और महामोद्गल्यायन यहाँ गये थे और नन्दमाता ने उनका सत्कार किया था।[4] आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि इस नगर की दीवारों

१. थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ २३८; देखिये थेरगाथा, पृष्ठ ५१ (भिक्षु धर्मरत्न एम० ए० का हिन्दी अनुवाद)।

२. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३९७।

३. देखिये थेरगाथा, पृष्ठ १६-१७ (भिक्षु धर्मरत्न एम० ए० का हिन्दी अनुवाद)।

४. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ ६२।

के चारों ओर उसकी रक्षा के लिये घने बाँसों के पेड़ लगाये गये थे, इसलिये इस नगर का नाम 'वेलुकण्ड' या 'वेणुकण्ट' पड़ा था।[१] हमें अवन्ती राष्ट्र के इस वेलुकण्ड नगर को मगध के दक्षिणागिरि जनपद के पास स्थित 'वेलुकण्टक' नामक बाँसों के वन से भिन्न समझना चाहिये, जिसका वर्णन हम मगध राज्य के प्रसंग में पहले कर चुके हैं।

जातक में लम्बचूलक नामक कस्बे का उल्लेख है, जिसे एक जगह राजा पजक के राज्य में बताया है और दूसरी जगह राजा चण्ड पज्जोत के राज्य में। निश्चयतः यह अवन्ती राज्य का ही एक कस्बा था।

दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त[२] में इन सात गण-तन्त्रों का उल्लेख है, जैसे कि :—

१. शाक्य. . . . कपिलवस्तु के— सक्या कापिलवत्थवा
२. कोलिय. . . रामग्राम के—कोलिया रामगामका
३. मौर्य. . . . . पिप्फलिवन के—मोरिया पिप्फलिवनिया
४. मल्ल. . . . .कुसिनारा के —मल्ला कोसिनारका
५. मल्ल. . . . .पावा के—मल्ला पावेय्यका
६. बुलि. . . . . अल्लकप्प के—बुलयो अल्लकप्पका
७. लिच्छवि. . .वैशाली के—लिच्छवी वेसालिका

इनके अतिरिक्त पालि साहित्य में इन तीन बुद्धकालीन गण-तन्त्रों का और उल्लेख है, जैसे कि (१) मिथिला के विदेह, (२) सुसुमारगिरि के भग्ग और (३) केसपुत्त के कालाम। इन दस गण-तन्त्रों का भौगोलिक विवरण हम यहाँ पालि स्रोतों के आधार पर देंगे।

शाक्य (पालि सक्य या साकिय) जाति के लोग सूर्यवंशी क्षत्रिय थे। यही कारण है कि शाक्यमुनि बुद्ध पालि तिपिटक में कई बार "आदिच्चबन्धु" (आदित्य-

---

१. मनोरथपूरणी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७१७।

२. दीघ निकायो (दुतियो विभागो), पृष्ठ १३१-१३३ (बम्बई विश्व-विद्यालय द्वारा प्रकाशित संस्करण); देखिये दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद,) पृष्ठ १५०-१५१ भी।

बन्धु) कहकर पुकारे गये हैं।[1] सुत्त-निपात के पारायण-वग्ग की वत्थुगाथा में भगवान् बुद्ध को "राजा इक्ष्वाकु की सन्तान शाक्यपुत्र" "अपच्चो ओक्काक राजस्स सक्यपुत्तो" कहकर पुकारा गया है। इससे यही प्रकट होता है कि शाक्य सूर्यवंशी क्षत्रिय थे और इक्ष्वाकु उनके पूर्व पुरुष माने जाते थे। शाक्य कुमार जब घर छोड़ कर तपस्या के लिये जा रहे थे तो मार्ग में राजगृह के पास पाण्डव पर्वत पर मगध-राज बिम्बिसार उनसे मिला था और उसने उनके माता-पिता और वंश आदि के सम्बन्ध में जब प्रश्न पूछा, तो उन्होंने कहा, "हिमालय की तराई के एक जनपद में कोसल देशवासी·····एक राजा हैं। वे सूर्यवंशी (आदिच्चा नाम गोत्तेन) हैं और शाक्य जाति के (साकिया नाम जातिया) हैं। मैं उन्हीं के कुल से प्रव्रजित हुआ हूँ।"[2] इससे भी यही प्रकट होता है कि भगवान् का कुल जाति से 'शाक्य' और गोत्र से 'आदित्य' कहलाता था।[3] भगवान् बुद्ध को जो "गौतम" नाम से पुकारा जाता है, वह आचार्य बुद्धघोष के अनुसार उनके गोत्र का नाम था[4], परन्तु धर्मानन्द कोसम्बी का बिलकुल गलत मत यह है कि यह उनका व्यक्तिगत नाम हो था।[5] भगवान् बुद्ध को संयुत्त-निकाय के पंचराज-सुत्त में "अंगीरस" कह कर पुकारा

---

१. "आदिच्चबन्धुस्स वचो निसम्म एको चरे खग्गविसाणकप्पो"। खग्गविसाण-सुत्त (सुत्त-निपात); "आदिच्चबन्धु सोरितोसि"। सभिय-सुत्त (सुत्त-निपात); बन्धामादिच्चबन्धुनं। सक्कपञ्ह-सुत्त (दीघ-निकाय)।

२. उजुं जानपदो राजा हिमवन्तस्स पस्सतो।.....कोसलेसु निकेतिनो॥ आदिच्चा नाम गोत्तेन, साकिया नाम जातिया। तम्हा कुला पब्बजितोम्हि.....॥ पब्बज्जा-सुत्त (सुत्त-निपातो)।

३. महावस्तु, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २४६ में भी भगवान् बुद्ध को "आदित्य गोत्र" का कहा गया है।

४. "तं तं गोतम पुच्छामि", संयुत्त-निकाय के इस गाथांश की व्याख्या करते हुए आचार्य बुद्धघोष "विसुद्धिमग्ग" १।२ (धर्मानन्द कोसम्बी का देवनागरी संस्करण) में कहते हैं, "गोतमा ति भगवन्तं गोत्तेन आलपति"।

५. उपर्युक्त व्याख्या पर टिप्पणी करते हुए आचार्य धर्मानन्द कोसम्बी कहते हैं "नामेन आलपतीति वत्तुं वट्टति...इदं भगवतो नाममेवाति मञ्ञाम'।

गया है। इससे उनका सम्बन्ध वैदिक ऋषि अंगिरा से जोड़ने की कोशिश में डा० थॉमस व्यथित जैसे हो गये हैं।[1] परन्तु, वास्तव में, जैसा कि संयुत्त-निकाय के विद्वान् हिन्दी-अनुवादकों ने अट्ठकथा के आधार पर दिखाया है, तथ्य यह है कि यहाँ "अंगीरस" शब्द का अर्थ है "जिसके अंग से रश्मियाँ निकलती हैं।"[2] यही अर्थ यहाँ प्रसंग के अनुसार ठीक भी बैठता है।

शाक्यों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में एक अनुश्रुति बुद्ध-पूर्व काल से चली आ रही थी, जिसका उल्लेख करते हुए स्वयं भगवान् बुद्ध ने अम्बट्ठ नामक माणवक से कहा था, "अम्बट्ठ ! शाक्य राजा इक्ष्वाकु (ओक्काको) को पितामह कहकर मानते हैं। पूर्व काल में राजा इक्ष्वाकु ने अपनी प्रिय रानी के पुत्र को राज्य देने की इच्छा से अपने ओक्कामुख, करण्डु, हत्थिनिक और सीनिपुर नामक चार ज्येष्ठ पुत्रों को राज्य से निर्वासित कर दिया। वे निर्वासित हो, हिमालय के पास सरोवर के किनारे एक बड़े शाक-वन में निवास करने लगे। जाति के बिगड़ने के डर से उन्होंने अपनी बहिनों के साथ संवास किया। तब राजा इक्ष्वाकु ने अपने अमात्यों और दरबारियों से पूछा, "कहाँ हैं भो, इस समय कुमार ?" उन्होंने कहा, "देव, हिमालय के पास सरोवर के किनारे महाशाक वन है। वहीं इस समय कुमार रहते हैं। वे जाति के बिगड़ने के डर से अपनी बहिनों के साथ संवास करते हैं।" तब राजा इक्ष्वाकु ने कहा, "अहो, कुमार शाक्य समर्थ हैं रे, महा शाक्य हैं रे कुमार !" तब से वे "शाक्य" नाम से ही प्रसिद्ध हुए। वही इक्ष्वाकु उनका पूर्व पुरुष था।" यह उद्धरण दीघ-निकाय के अम्बट्ठ-सुत्त से है, जिस पर व्याख्या करते हुए आचार्य बुद्धघोष ने शाक्यों की उत्पत्ति का विस्तृत विवरण "सुमंगलविलासिनी" में दिया है, जिसका पूरा उद्धरण यहाँ न देकर उसकी कुछ मुख्य बातों पर ही हम विचार करेंगे।

विसुद्धिमग्गदीपिका, पृष्ठ १; देखिये उनकी पुस्तक "भगवान् बुद्ध" (श्रीपाद जोशी-कृत हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १०१-१०३ भी। आचार्य बुद्धघोष के मत के विपरीत होने के कारण कोसम्बी जी का मत ग्राह्य नहीं हो सकता।

१. दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ २२-२३।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ७६, पद-संकेत १।

पहली बात यह है कि आचार्य बुद्धघोष ने इक्ष्वाकु तक ही शाक्य-वंश के पूर्व पुरुषों की परम्परा सीमित न मान कर उसके पूर्व की भी परम्परा का उल्लेख किया है और दूसरी महत्त्वपूर्ण बात उनके विवरण की यह है कि उन्होंने शाक्यों के साथ-साथ कोलियों की भी उत्पत्ति का विवरण दिया है। सुमंगलविलासिनी के वर्णनानुसार शाक्य जाति के आदि पुरुष महासम्मत नामक राजा थे। महासम्मत के बाद उनके पुत्र रोज हुए और फिर क्रमशः वरोज, कल्याण, वरकल्याण, मन्धाता, वरमन्धाता, उपोसथ, चर, उपचर और मखादेव आदि अनेक राजा इक्ष्वाकु से पूर्व हुए। राजा इक्ष्वाकु की पाँच रानियाँ थीं। उनमें से ज्येष्ठ के चार पुत्र और पाँच पुत्रियाँ थीं। चार पुत्रों के नाम थे ओक्कामुख, करकण्ड (करण्डु), हत्थिनिक और सीनिपुर और पाँच पुत्रियों के नाम थे पिया, सुप्पिया, आनन्दा, विजिता और विजितसेना। इन नौ सन्तानों को जन्म देने के बाद ज्येष्ठ रानी की मृत्यु हो गई। उसके बाद राजा इक्ष्वाकु ने एक और विवाह किया, जिससे उसका जन्तु नामक एक अन्य पुत्र उत्पन्न हुआ। इसी पुत्र के लिये राजा इक्ष्वाकु ने अपने पूर्व के चार पुत्रों और पाँच पुत्रियों को निर्वासित कर दिया। वे हिमालय चले गये, जहाँ ऋषि कपिल से उनकी भेंट हुई और ऋषि के आदेश पर उन्होंने उनके आश्रम के समीप एक नगर बसाया, जिसका नाम ऋषि के नाम पर "कपिलवत्थु" (कपिलवस्तु) रक्खा गया। फिर उन्होंने जाति बिगड़ने के भय से दूसरी जगह से पत्नियाँ न लेकर अपनी ही भगिनियों से विवाह कर लिया और राजा इक्ष्वाकु के शब्दों में अपनी इस 'शक्यता' या समर्थता के कारण ही वे "शाक्य" कहलाये। जिस वन में ये लोग कपिल ऋषि के आश्रम के समीप निवास कर रहे थे, उसे अम्बट्ठ-सुत्त तथा सुमंगलविलासिनी में साक (शाक)-वन कहा गया है। डा० ई० जे० थॉमस ने सुझाया है कि यहाँ "शाक वन" का अर्थ सागौन का वन न लेकर शाल वन ही लेना चाहिये, क्योंकि सागौन के वन नैपाल की तराई की प्राकृतिक उपज नहीं हैं।[1] पालि विवरणों से जान पड़ता है कि "साक" शब्द में सम्भवतः श्लेष अभिप्रेत था और यह सम्भव है कि शाक-वन (शाल-वन) में निवास करने के कारण भी

१. देखिये ई० जे० थॉमस : दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ ७, पद-संकेत २; मिलाइये दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३६।

"शाक्य" नाम इन क्षत्रिय कुमारों ने पाया हो, क्योंकि "शाक्य" शब्द का अर्थ शाकवन में रहने वाले भी हो सकता है। अश्वघोष को भी "शाक्य" शब्द की यह व्याख्या मान्य थी।[1] अस्तु, चार भगिनियों से चार भाइयों ने विवाह कर लिया और ज्येष्ठ भगिनी को माता के पद पर समासीन किया। परन्तु इस ज्येष्ठ भगिनी को कुष्ठ रोग (कुट्ठ रोग) हो गया। दूसरों को भी यह रोग न लगे, यह सोचकर चारों भाई इस भगिनी को धरती के अन्दर एक निवास बना कर दूर जगह पर रख आये और उसके भोजन आदि का भी प्रबन्ध कर दिया। ऐसा हुआ कि इसी समय कुष्ठ रोग से पीड़ित होकर राम नामक वाराणसी का राजा अपने ज्येष्ठ पुत्र को राज्य सौंपकर इसी स्थान के समीप एक बड़े कोल नामक वृक्ष के ऊपर निवास बना कर रह रहा था और एक औषध विशेष को खाकर रोग-मुक्त हो गया था। उसका परिचय इस शाक्य कुमारी से हुआ और उसने उसी औषध से इसे भी रोग-मुक्त कर दिया और बाद में दोनों ने विवाह कर लिया, जिससे उनके सोलह बार दो-दो जुड़वाँ अर्थात् कुल बत्तीस पुत्र हुए। तब तक इस बात की सूचना राम के ज्येष्ठ पुत्र को मिली और वह अपने पिता को लेने आया। राम ने वहाँ जाना स्वीकार नहीं किया, परन्तु यह कहा कि यहीं इन कोल वृक्षों को काटकर मेरे लिये नगर बसाओ। ऐसा ही किया गया। चूँकि कोल वृक्षों की स्थिति पर यह नगर बसाया गया था, इसलिये इसका नाम "कोल नगर" या "कोलिय नगर" पड़ा। जिस स्थान पर यह नगर बसाया गया था, वह जंगल में होने के कारण व्याघ्रों के पथ (व्यग्घपथ) में पड़ता था, इसलिये इसका एक नाम "व्यग्घपज्ज" या "व्यग्घ-पज्जा" भी रक्खा गया। राम और उसकी शाक्य-पत्नी तथा उनके बत्तीस पुत्र इस नगर में रहने लगे। चूँकि वे पहले कोल वृक्ष (कोल रुक्ख) में रहे थे और बाद में उसी के नाम पर बसाये गये "कोल नगर" में रहे, इसीलिये वे "कोलिय" कह-लाये। अब इन बत्तीस कुमारों की माता ने एक दिन अपने पुत्रों से कहा, "बच्चो, कपिलवस्तु के शाक्य तुम्हारे मामा होते हैं।" उसके आदेश पर ये बत्तीस तरुण वहाँ गये और शाक्य राजाओं की कन्याओं से विवाह किया। तब से शाक्य

---

१. शाकवृक्षप्रतिच्छन्नं वासं यस्माच्च चक्रिरे। तस्मादिक्ष्वाकुवंश्यास्ते भुवि शाक्या इति स्मृताः। सौन्दरनन्द १।२४।

और कोलियों के पारस्परिक वैवाहिक सम्बन्ध भगवान् बुद्ध के काल तक चले आ रहे थे। सुमंगलविलासिनी के अनुसार शाक्य और कोलियों की उत्पत्ति का यह संक्षिप्त इतिहास है।

महावंस के द्वितीय परिच्छेद में महासम्मत से लेकर भगवान् बुद्ध तक की वंशावली दी गई है। उससे भी यही प्रकट होता है कि शाक्य सूर्यवंशी क्षत्रिय थे और इक्ष्वाकु उनके पूर्वज थे। 'थेरगाथा' में एक जगह शाक्यों के लिये 'भगीरथ' शब्द का प्रयोग किया गया है[1] जिससे भी उनके सूर्यवंशी क्षत्रिय होने की मान्यता को समर्थन मिलता है। कुणाल जातक में शाक्यों के भगिनी-विवाह और कोलियों के पूर्वजों के कोल वृक्ष में निवास करने और इसीलिये यह नाम प्राप्त करने का उल्लेख है, जिससे इन दोनों जातियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में उस सूचना को समर्थन मिलता है, जो अम्बट्ठ-सुत्त और सुमंगलविलासिनी में दी गई है।

बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ महावस्तु में भी शाक्य और कोलियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में विवरण दिया गया है, जो नामों की कुछ छोटी-मोटी विभिन्नताओं के सहित पालि विवरण के प्रायः समान ही है और कुछ बातों में उसका पूरक भी। महावस्तु में निश्चय तौर पर यह बताया गया है कि इक्ष्वाकु कोसल देश के राजा थे और साकेत उनकी राजधानी थी। साकेत से निर्वासित होकर ही शाक्यों के पूर्वज कपिल ऋषि के आश्रम में गये थे और वहाँ बस गये थे।[2] सुमंगलविलासिनी में निर्वासित पुत्रों की संख्या चार बताई गई है जब कि महावस्तु में पाँच और इसी प्रकार नामों में भी कुछ भिन्नता है। मूलभूत बात जो हमें महावस्तु में मिलती है, वह यह है कि शाक्यों के पूर्वज साकेतवासी सूर्यवंशी क्षत्रिय थे और जैसा हम पहले देख चुके हैं, पालि परम्परा के आधार पर भी यही बात सिद्ध है। सामान्यतः शाक्यों और शुद्धोदन और भगवान् बुद्ध के इक्ष्वाकुकुलीन सूर्यवंशी क्षत्रिय होने की बात महावस्तु में इतनी अधिक बार कही गई है[3] कि इस सम्बन्ध में सन्देह के लिये कुछ

---

१. ......**समयो महावीर भगीरसानं। गाथा ५२७।**

२. **महावस्तु, जिल्द पहली, पृष्ठ ३५१-३५२।**

३. **देखिये विशेषतः, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३०३; जिल्द तीसरी, पृष्ठ २४६-२४७।**

अवकाश ही नहीं रह जाता और पालि परम्परा के आधार पर भगवान् बुद्ध को जो "राजा इक्ष्वाकु की संतान" कहा गया है, उसे पूरा समर्थन महावस्तु से प्राप्त होता है। महावस्तु में वाराणसी के राजा का नाम राम न बताकर "कोल" बताया गया है और उसी के वंशज होने के कारण कोलियों ने यह नाम पाया, ऐसा कहा गया है।[1]

महाकवि अश्वघोष ने अपनी रचनाओं में जगह-जगह पर शाक्यों के इक्ष्वाकु-वंशीय होने की बात दुहराई है। भगवान् बुद्ध के वंश का वर्णन करते हुए उन्होंने शुद्धोदन को इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न राजा बताया है।[2] एक अन्य स्थल पर शुद्धोदन के प्रसंग में "इक्ष्वाकुवंशप्रभवस्य राज्ञः' कहते हुए उन्होंने यही बात कही है।[3] भगवान् बुद्ध के लिये उन्होंने "इक्ष्वाकुकुलप्रदीपः"[4] और "इक्ष्वाकुचन्द्रमाः"[5] जैसे विशेषण प्रयुक्त किये हैं। बुद्ध-चरित (१७।६) में स्थविर अश्वजित् शारद्वती-पुत्र (सारिपुत्र) से कहते हैं, "मेरे गुरु इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न हुए हैं।" सौन्दर-नन्द (१।२४) में स्पष्टतः पालि परम्परा के समान ही कारण बताते हुए, जैसा हम पहले देख चुके हैं, बताया गया है कि इक्ष्वाकुवंशी ये लोग 'शाक्य' क्यों कहलाये। सौन्दरनन्द काव्य (६।३९) में नन्द की विरह-विधुरा पत्नी को एक स्त्री समझाती हुई कहती है, "इक्ष्वाकु-वंश में उत्पन्न राजाओं के लिये तपोवन तो पैतृक सम्पत्ति-स्वरूप हैं।" "इक्ष्वाकुवंशे दायाद्यभूतानि तपोवनानि।" अतः पालि और संस्कृत स्रोतों से यह निश्चित है कि शाक्य इक्ष्वाकुवंशीय क्षत्रिय थे और ऐसा होने में वे गौरव अनुभव करते थे। ललितविस्तर का तो एक पूरा तीसरा परिच्छेद (कुलपरिशुद्धिपरिवर्तः) ही शाक्यों के कुल की विशुद्धि पर है, जिस पर वहाँ जोर दिया गया है। "शाक्यं कुलं चादृशु वीतदोषम्।"

---

१. महावस्तु, जिल्द पहली, पृष्ठ ३५३।

२. बुद्ध-चरित १।१; शाक्यों के पूर्वजों को उन्होंने 'इक्ष्वाकवो' कहा है। देखिये सौन्दरनन्द १।१८।

३. बुद्ध-चरित ९।४।

४. बुद्ध-चरित ७।६।

५. बुद्ध-चरित १२।१।

पालि विवरणों से मालूम पड़ता है कि शाक्य लोग अपनी जाति के सम्बन्ध में बड़े अभिमानी थे। सम्भवतः इसी कारण वे अपनी जाति से बाहर विवाह नहीं करते थे। या तो उनके सम्बन्ध कोलिय जाति से थे, जो उनके साथ रक्त से सम्बन्धित और उन्हीं की एक उपशाखा थे, या वे अपनी जाति के अन्दर ही विवाह करते थे। शुद्धोदन का श्वसुर अंजन शाक्य था और उसके पुत्र सुप्रबुद्ध की पुत्री भद्रा कात्यायनी शाक्यकुमार गौतम को ब्याही थी। इस प्रकार भगवान् बुद्ध की माता शाक्य अंजन की पुत्री थीं और राहुल-माता शाक्य अंजन के पुत्र सुप्रबुद्ध की दुहिता। परन्तु उत्तरकालीन पालि विवरणों में माता महामाया को कोलिय जनपद की राजकुमारी कहा गया है। इसका कारण यही जान पड़ता है कि देवदह नगरी पर, जो महामाया की जन्म-भूमि थी, और जिसे शाक्यों का नगर ही बताया गया है, सम्भवतः शाक्य और कोलिय दोनों का संयुक्त अधिकार माना जाता था और, जैसा हम अभी कह चुके हैं, कोलिय शाक्यों की एक उपशाखा मात्र ही थे। शाक्य लोगों को इस बात पर सच्चा गौरव था कि उनके अन्दर भगवान् बुद्ध जैसा महापुरुष उत्पन्न हुआ। भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद हम उन्हें आत्मगौरवपूर्वक याचना करते देखते हैं, "भगवा अम्हाकं ञातिसेट्ठो। मयम्पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं" अर्थात् "भगवान् हमारी जाति में श्रेष्ठ थे। हमें भी उनकी धातुओं का एक भाग मिलना चाहिए।" जिस जाति में बुद्ध जैसा पुरुष उत्पन्न हुआ, वह उसके लिये सच्चे अर्थों में गर्व कर सकती थी।

शाक्यों का देश आधुनिक उत्तर-प्रदेश के उत्तर-पूर्व में नेपाल की सीमा से होता हुआ बहरायच और गोरखपुर के बीच स्थित था। उसके पश्चिम में कोसल देश की श्रावस्ती नगरी थी और पूर्व में रोहिणी नदी उसे कोलिय जनपद से विभक्त करती थी। उत्तर में शाक्य जनपद हिमालय के पार्श्व में (हिमवन्त पस्से) स्थित था और दक्षिण में या दक्षिण-पूर्व में वीर मल्लों का गणतन्त्र बसा हुआ था। शाक्यों की राजधानी कपिलवस्तु (कपिलवत्थु) नामक नगरी थी। जैसा हम पहले देख चुके हैं, कपिलवस्तु की स्थापना ऋषि कपिल के आश्रम के पास राजा इक्ष्वाकु के चार निर्वासित पुत्रों ने की थी। इसीलिये इस नगरी का नाम 'कपिलवस्तु' रक्खा गया था। बौद्ध संस्कृत साहित्य का भी समर्थन इस तथ्य को प्राप्त है। अश्वघोष ने अपने 'सौन्दरनन्द' काव्य के प्रथम सर्ग में, जिसका नाम 'कपिलवास्तु वर्णन'

है, विस्तार ६२ श्लोकों में कपिलवस्तु की स्थापना का वर्णन किया है, जो पालि विवरणों के मेल में है। महाकवि ने कपिलवस्तु को 'कपिलवास्तु' पुकारते हुए इस बात पर जोर दिया है कि कपिल ऋषि के आश्रम पर बसाये जाने के कारण ही उस नगर का यह नाम पड़ा, "कपिलस्य च तस्यर्षेस्तस्मिन्नाश्रमवास्तुनि। यस्मात्ते-त्पुरं चक्रुस्तस्मात् कपिलवास्तु तत्।"[1] महावस्तु[2] में भी इसी प्रकार का वर्णन उपलब्ध होता है और दिव्यावदान[3] में भी। बौद्ध संस्कृत साहित्य में कपिलवास्तु, कपिलाह्वयपुर और कपिलपुर जैसे नाम भी कपिलवस्तु के लिये प्रयुक्त किये गये हैं। अश्वघोष ने इस नगर को 'हिमालय की कोख' कहकर पुकारा है। "कुक्षि हिमगिरेरिव।"[4]

शाक्यों की कपिलवस्तु नगरी में उनका एक संस्थागार (संथागार) या सभा-भवन था, जहाँ वे आसनों पर बैठकर शासन-सम्बन्धी मन्त्रणा करते थे।[5] मज्झिम-निकाय के सेख-सुत्त तथा संयुत्त-निकाय के अवस्सुत-सुत्त से हमें सूचना मिलती है कि शाक्यों ने एक नया संस्थागार बनवाया था जिसके सम्बन्ध में उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की थी, "भन्ते! यहाँ हम कपिलवस्तु के शाक्यों ने अभी-अभी एक नया संस्थागार बनवाया है। भन्ते! आप उसका प्रथम परिभोग करें। भगवान् के प्रथम परिभोग करने के बाद शाक्य उसका उपभोग करेंगे।" भगवान् ने उनकी प्रार्थना स्वीकार कर वहाँ जाकर उन्हें उपर्युक्त सुत्तों का उपदेश दिया था। "महा-वस्तु"[6] में शाक्यों के संस्थागार या सभा-भवन को 'शाक्य परिषद्' कहकर पुकारा गया है, जहाँ शाक्यों और कोलियों के एक विवाद के सुलझाये जाने का भी वर्णन है। बुद्ध-काल में कपिलवस्तु एक सम्पन्न एवं जनाकीर्ण नगरी थी। जातक के अनुसार वह एक प्राकार या परकोटे से घिरी हुई थी, जिसकी ऊँचाई १८ हाथ थी।

---

१. सौन्दरनन्द १।५७।
२. जिल्द पहली, पृष्ठ ३४८।
३. पृष्ठ ५४८।
४. सौन्दरनन्द १।४३
५. कूटदन्त-सुत्त (दीघ० १।३)।
६. जिल्द पहली, पृष्ठ ३५२-३५५।

"अट्ठाबसहृट्ठकुम्भेदं पाकारं।"[1] महावस्तु[2] के अनुसार कपिलवस्तु सात प्राकारों से (सप्तहि पाकारेहि) घिरी हुई थी। "बुद्धचरित" और "सौन्दरनन्द" काव्यों के प्रथम सर्ग में अश्वघोष ने कपिलवस्तु नगर का जो वर्णन दिया है, उसे काव्यात्मक ही कहा जा सकता है, परन्तु उसमें कपिलवस्तु की जिस समृद्धि और कुशल नगर-रचना का वर्णन है, उसे पालि विवरणों से साधारणतः समर्थन प्राप्त होता है।

भगवान् बुद्ध के बाल्य-जीवन से सम्बद्ध तो कपिलवस्तु थी ही, बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद भी भगवान् ने कई बार उसे अपने आगमन से कृतार्थ किया। पहली बार भगवान् राजगृह से वहाँ गये और शाक्यों ने उन्हें कपिलवस्तु के समीप न्यग्रोधाराम में वास दिया। न्यग्रोध नामक शाक्य ने इस विहार को बनवा कर बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को अर्पित किया था, इसलिये उसके नाम पर इस विहार का नाम "न्यग्रोधाराम" पड़ा था।[3] इसी समय नन्द और राहुल की प्रव्रज्या हुई और महाप्रजापती गोतमी ने इसी समय उन्हें अपने हाथ से काते-बुने नये दुस्स (धुस्से) के जोड़े को देने का भी संकल्प किया। भगवान् कपिलवस्तु में यथेच्छ विहार करने के पश्चात् अनूपिया होते हुए राजगृह लौट गये, जहाँ उन्होंने अपना द्वितीय वर्षावास किया। जैसा हम भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के विवरण में देख चुके हैं, भगवान् बुद्ध की ज्ञान-प्राप्ति के पाँचवें वर्ष में राजा शुद्धोदन की मृत्यु हो गई। इसी समय शाक्यों और कोलियों मे रोहिणी नदी के पानी को लेकर झगड़ा हुआ। भगवान् इस समय वैशाली की महावन कूटागारशाला में विहर रहे थे। वे वहाँ से कपिलवस्तु गये और न्यग्रोधाराम (निग्रोधाराम) में ठहरे। यह भगवान् के द्वारा की गई कपिलवस्तु की दूसरी यात्रा थी। इसी समय महाप्रजापती गोतमी ने भगवान् से प्रार्थना की कि वे उन्हें भिक्षुणी बनने की अनुमति दे दें। भगवान् ने उसकी प्रार्थना को स्वीकार नहीं किया और वैशाली लौट आये, जहाँ उन्होंने अपना पाँचवाँ वर्षावास किया। यहीं पर महाप्रजापती गोतमी ने आकर, आनन्द की सहायता से, भगवान् से भिक्षुणी बनने की अनुमति प्राप्त की और भिक्षुणी-संघ की स्थापना हुई। इसके बाद तिस्सा,

---

१. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ६३।
२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७५।
३. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६१।

मित्ता, अभिरूपा नन्दा आदि अनेक शाक्य महिलाएँ भिक्षुणी-संघ की सदस्याएँ बनीं। महा श्रावक अनुरुद्ध और भद्दिय कालिगोधापुत्र कपिलवस्तु-निवासी ही थे। इसी प्रकार राहुल, काल उदायि, नन्द, महानाम आदि की जन्मभूमि कपिलवस्तु ही थी। हम जानते हैं कि भगवान् बुद्ध ने अपना पन्द्रहवाँ वर्षावास कपिलवस्तु में ही किया था। इस समय जो घटनाएँ घटी, उनका उल्लेख हम भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के विवरण-प्रसंग में कर चुके हैं। सम्भवतः इसी वर्ष की घटना है कि भगवान् कोसल देश में चारिका करते हुए एक बार कपिलवस्तु पधारे थे। उस समय सारी कपिलवस्तु में महानाम शाक्य को काफ़ी ढूँढ़-ढाँढ़ करने पर भी ऐसी कोई अतिथिशाला नहीं मिली, जहाँ वह भगवान् को एक रात भर के लिये टिका सकता। अगुत्तर-निकाय के भरण्डु-सुत्त में ऐसा कहा गया है। परन्तु ऐसा क्यों हुआ, इसका कारण नहीं बताया गया है। भगवान् ने वह रात अपने पूर्व के गुरु-भाई भरण्डु कालाम के आश्रम में रह कर काटी। जब विडूडभ शाक्यों के विनाश पर उतारू हो गया था, तो हम भगवान् को, सम्भवतः उनके महापरिनिर्वाण से दो वर्ष पूर्व,[1] कपिलवस्तु के समीप एक विरल छाया वाले वृक्ष के नीचे बैठे और अपने मौन प्रभाव से उसे इस दुष्कृत्य से तीन बार विरत करते देखते हैं।[2] कपिलवस्तु में भगवान् की यह अन्तिम झाँकी है, जिसे हम करते हैं।

ऊपर कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम (निग्रोधाराम) का उल्लेख हम कर चुके हैं। मज्झिम-निकाय के चूलदुक्खक्खन्ध-सुत्तन्त का उपदेश महानाम शाक्य के प्रति भगवान् ने कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में ही दिया था। इसी निकाय के मधुपिण्डिक-सुत्तन्त, सेख-सुत्तन्त तथा महा सुञ्ञता-सुत्तन्त का उपदेश भी भगवान् ने न्यग्रोधाराम में ही दिया था। इसी प्रकार संयुत्त-निकाय के पिंडोल-सुत्त, पठम-

---

१. देखिये बुद्धचर्या, पृष्ठ ४४०, जहाँ इस घटना के समय भगवान् बुद्ध की आयु ७८ वर्ष की बताई गई है।

२. पालि विवरण (धम्मपदट्ठकथा) के अनुसार यह वृक्ष शाक्य राज्य की सीमा में ही था, जिसके पास ही एक घना वट वृक्ष कोसल राज्य की सीमा में था। फा-ह्यान ने इस स्थान को एक स्तूप के द्वारा अंकित, श्रावस्ती के दक्षिण-पूर्व ४ 'ली' की दूरी पर, देखा था। देखिये 'गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३६।

महानाम-सुत्त तथा गिलान-सुत्त भी यहीं उपदिष्ट किये गये थे। अंगुत्तर-निकाय के चतुक्क-निपात में हम एक बार भगवान् को न्यग्रोधाराम में विहार करते देखते हैं। आयुष्मान् लोमस वंगीस को हम कपिलवस्तु के न्यग्रोधाराम में विहार करते संयुत्त-निकाय के कंखेय्य-सुत्त में देखते हैं।

कपिलवस्तु के समीप ही महावन था। वस्तुतः महावन उस बड़े प्राकृतिक वन का नाम था, जो कपिलवस्तु से लेकर वैशाली तक फैला था और वहाँ से समुद्र-तट तक चला गया था।[1] वैशाली के समीप महावन में वहाँ की प्रसिद्ध कूटागार-शाला स्थित थी, जिसे 'महावन की कूटागार शाला' कहकर पालि साहित्य में पुकारा गया है और जिसका विवरण हम वैशाली के प्रसंग में देंगे। कपिलवस्तु के समीप महावन में हम दण्डपाणि शाक्य को भगवान् से संलाप करते मज्झिम-निकाय के मधुपिण्डिक-सुत्तन्त में देखते हैं। संयुत्त-निकाय के समय-सुत्त से हमें पता लगता है कि एक बार भगवान् भिक्षु-संघ के सहित महावन में विहारार्थ गये थे।

कपिलवस्तु की दूरी राजगृह से ६० योजन पालि विवरणों में बताई गई है।[2] साकेत से वह छह योजन दूर थी, जिसका समर्थन चीनी यात्रियों के विवरणों से भी होता है।[3] कपिलवस्तु नगरी उस मार्ग का एक महत्वपूर्ण पड़ाव थी, जो श्रावस्ती से राजगृह तक जाता था और इस प्रकार यह नगरी उस समय के प्रायः सब महा-नगरों से जुड़ी हुई थी। श्रावस्ती से क्रमशः सेतव्या, कपिलवस्तु, कुसिनारा, पावा, भोगनगर और वैशाली होता हुआ उपर्युक्त मार्ग राजगृह तक आता था और इन सब उपर्युक्त नगरों के व्यापारिक सम्बन्धों को एक दूसरे से जोड़ता था। विशेषतः श्रावस्ती से कपिलवस्तु के व्यापारिक सम्बन्ध अधिक थे और वहीं होकर कपिलवस्तु के लोगों का दूसरी जगह आना-जाना प्रायः होता था। सिन्धु देश के घोड़े तक कपिल-वस्तु में पहुँचते थे, यह इस बात से विदित होता है कि जिस रथ में बैठ कर बोधिसत्व

---

१. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २६७; समन्तपासादिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३९३।

२. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५२।

३. देखिये ई० जे० थॉमस : दि लाइफ ऑव बुद्ध, पृष्ठ १६-१७।

घूमने के लिये गये थे, उसमें "श्वेत कमल पत्र के रंग वाले चार मंगल सिन्धुदेशीय घोड़े" जोड़े गये थे।[1]

पाँचवीं शताब्दी ईसवी में फा-ह्यान ने कपिलवस्तु की यात्रा की थी। उसने इसके कई भग्नावशिष्ट कूटागारों का उल्लेख किया है।[2] फा-ह्यान श्रावस्ती से दक्षिण-पूर्व दिशा में १२ योजन चलकर नभिग नामक नगर में आया था जहाँ भगवान् ककुच्छन्द का जन्म हुआ था। इस स्थान से उत्तर में एक योजन से कुछ कम दूरी की यात्रा कर वह कनकमुनि के जन्म-स्थान पर आया और यहाँ से एक योजन से कुछ कम पूर्व में चलकर वह कपिलवस्तु पहुँचा।[3] सातवीं शताब्दी ईसवीमें चीनी यात्री यूआन् चुआङ ने श्रावस्ती के समीप से करीब ५०० 'ली' दक्षिण-पूर्व में चलकर कपिलवस्तु प्रदेश (किल-पि-लो-फ-स्से-ति) में प्रवेश किया था। उसने नगरी कपिलवस्तु को "प्रासाद नगर" कहकर पुकारा है और उसका विस्तार १५ 'ली' बताया है। सम्पूर्ण कपिलवस्तु प्रदेश का विस्तार यूआन् चुआङ के समय में करीब ४००० 'ली' था। चीनी यात्री ने कपिलवस्तु को एक उजाड़ और वीरान अवस्था में पाया था और उसके अनेक प्राचीन स्थान उस समय पहचाने नहीं जाते थे। सम्पूर्ण प्रदेश में यूआन् चुआङ के मतानुसार उस समय १००० बौद्ध विहारों और १० नगरों के भग्नावशेष पाये जाते थे। कपिलवस्तु नगरी में यूआन् चुआङ के समय में एक छोटा सा संघाराम भी विद्यमान था जिसमें कुल ३० भिक्षु सम्मितिय सम्प्रदाय के निवास करते थे। कुछ देव-मन्दिरों का भी उल्लेख यूआन् चुआङ ने किया है,[4] जिनमें एक ईश्वर-देव की भी मूर्ति थी।[5]

कपिलवस्तु नगरी में बुद्ध-जीवन से सम्बन्धित जिन स्मारकों का वर्णन यूआन् चुआङ ने किया है, उनका कुछ परिचय दे देना यहाँ आवश्यक होगा, क्योंकि उनसे

---

१. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ७७ (हिन्दी अनुवाद)।

२. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३६-३८।

३. वहीं, पृष्ठ ३६।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १-४।

५. वहीं, पृष्ठ १३।

वहाँ स्थित बुद्धकालीन स्थानों पर प्रकाश पड़ता है और उनकी पहचान के सम्बन्ध में कुछ आधार मिलता है। कपिलवस्तु के दक्षिण में करीब ५० 'ली' दूर यूआन् चुआङ ने एक प्राचीन नगर देखा था जिसे पूर्व के बुद्ध ककुच्छन्द (ककुसन्द) का जन्म-स्थान बताया जाता था। यूआन् चुआङ ने वहाँ एक स्तूप भी देखा था। इस प्राचीन नगर के दक्षिण-पूर्व में एक स्तूप था, जो उस स्थान को अंकित करता था जहाँ भगवान् बुद्ध के धातुओं को कपिलवस्तु के शाक्यों द्वारा स्थापित किया गया था। इस स्तूप के सामने एक पाषाण-स्तम्भ था, जिसे अशोक ने स्थापित करवाया था और जिसकी ऊँचाई ३० फुट थी। उपर्युक्त प्राचीन नगर से ३० 'ली' उत्तर-पूर्व एक अन्य प्राचीन नगर के भग्नावशेष यूआन् चुआङ ने देखे थे जो पूर्व के बुद्ध कनक मुनि (क-नो-क-मो-नि) का निवास-स्थान माना जाता था।[1] ककुच्छन्द और कनक मुनि के जन्म-स्थानों की स्थिति के सम्बन्ध में हम फा-ह्यान के साक्ष्य का पहले उल्लेख कर ही चुके हैं। कपिलवस्तु के उत्तर-पूर्व ४० 'ली' की दूरी पर यूआन् चुआङ ने एक स्तूप के द्वारा अंकित वह स्थान देखा था जहां जामुन के पेड़ के नीचे बोधिसत्व ने ध्यान किया था।[2] कपिलवस्तु के उत्तर-पूर्व में कई सहस्र स्तूप बने हुए थे जो उन सहस्रों शाक्यों की स्मृति-स्वरूप थे जिन्हें विडूडभ ने मौत के घाट उतारा था।[3] हमारी दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण

---

१. वहीं, पृष्ठ ५-७।

२. वहीं, पृष्ठ ७; कपिलवस्तु की उत्तर-पूर्व दिशा में ही फा-ह्यान ने भी इस स्थान को देखा था। दूरी के सम्बन्ध में उन्होंने स्पष्ट कुछ न कह कर केवल कई 'ली' दूर ही कहा है। देखिये गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३७-३८।

३. वहीं, पृष्ठ ८-१०; फा-ह्यान ने भी उस स्थान को स्तूप के द्वारा अंकित देखा था जहाँ विडूडभ (जिसे उसने वैदूर्य कह कर पुकारा है) ने शाक्य वंश की स्त्रियों का संहार किया था। देखिये गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३७; यूआन् चुआङ के वर्णन के आधार पर इस प्रकार विडूडभ के द्वारा शाक्यों के संहार के स्थान को तिलौराकोट (कपिलवस्तु) के उत्तर में ही होना चाहिये। इस प्रकार उसे वर्तमान सागरहवा के आसपास माना जा सकता है। परन्तु कुछ लोग गौटिहवा को यह स्थान मानना चाहते हैं, जो तिलौराकोट के

साक्ष्य कपिलवस्तु के जिस स्थान के सम्बन्ध में चीनी यात्री ने दिया है, वह न्यग्रोधाराम के बारे में है। कपिलवस्तु के तीन या चार 'ली' दक्षिण में यूआन् चुआङ ने एक वन में एक अशोक-स्तम्भ को देखा था। यह वन ही 'नि--कु--लु' या न्यग्रोधाराम (निग्रोधाराम) था, जहाँ भगवान् बुद्ध ने प्रथम बार कपिलवस्तु में आने पर और उसके बाद कई बार निवास किया था। अशोक-स्तम्भ इस वन में उस स्थान को अंकित करता था जहाँ भगवान् बुद्ध अपने पिता शुद्धोदन से मिले थे और उन्हें उपदेश दिया था।[1] इस प्रकार यूआन् चुआङ के साक्ष्य पर न्यग्रोधाराम विहार कपिलवस्तु के ३ या ४ 'ली' अर्थात् करीब आधा मील या उससे कुछ अधिक दूर दक्षिण में स्थित था। हम अभी देखेंगे कि तिलौराकोट को कपिलवस्तु की ठीक आधुनिक स्थिति माना जा सकता है। उस अवस्था में हम निगलीवा या निगलिहवा गाँव को, जो तिलौराकोट से ४ मील उत्तर-पूर्व मे स्थित है, न्यग्रोधाराम की स्थिति नहीं मान सकते, जैसा कि कुछ लोगों ने बताने का प्रयत्न किया है। हमें न्यग्रोधाराम को तिलौराकोट के दक्षिण में कहीं ढूंढ़ना पड़ेगा, उससे करीब आधा मील या पौन मील की दूरी पर।

स्मिथ ने कपिलवस्तु को बस्ती जिले के पिपरहवा (पिपरावा) नामक स्थान से मिलाया था। उनका कहना था कि पिपरहवा के भग्नावशेष ही फा-ह्यान को कपिलवस्तु के रूप में दिखाये गये थे, जब कि यूआन् चुआङ ने तिलौराकोट को कपिलवस्तु के रूप मे देखा था।[2] यद्यपि यह बात जमने वाली नहीं दीखती, परन्तु इन दोनों चीनी यात्रियों ने कपिलवस्तु की स्थिति के सम्बन्ध में जो विवरण दिये हैं वे इतने विभिन्न प्रकार के हैं कि इसके अलावा और कोई दूसरा निष्कर्ष निकाला ही नहीं जा सकता और न स्थानों की पहचान के सम्बन्ध में एक मत हो

दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। यूआन् चुआङ के वर्णन से तो इसे समर्थन प्राप्त नहीं होता।

१. वहीं, पृष्ठ ११; फा-ह्यान ने भी इस स्थान का उल्लेख किया है। देखिये गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३७।

२. देखिये वाटर्स : ऑन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३३९ में स्मिथ द्वारा लिखित टिप्पणियाँ।

सकता है। इसलिये इन विवरणों के स्थान पर हमें पुरातत्व-सम्बन्धी खनन-कार्य और प्राप्त अभिलेखों से ही इस सम्बन्ध में अधिक प्रकाश मिल सकता है। यूआन् चुआङ के विवरण के आधार पर श्रावस्ती कपिलवस्तु के उत्तर-पश्चिम में थी। हम ऊपर देख चुके हैं कि श्रावस्ती से ५०० 'ली' दक्षिण-पूर्व में चलकर चीनी यात्री कपिलवस्तु आया था। कपिलवस्तु और श्रावस्ती की पारस्परिक स्थितियों का यह विवरण अनेक कठिनाइयाँ उत्पन्न करता है। सहेट-महेट के रूप में श्रावस्ती की पहचान निश्चित हो जाने पर कपिलवस्तु उसके दक्षिण-पूर्व ही हो सकती है, जिससे मेल मिलाना कठिन है। इसीलिये कनिंघम और स्मिथ ने यूआन् चुआङ के विवरण में कहीं-कहीं काट-छाँट करने का प्रस्ताव किया है और स्मिथ ने इसी कारण दो भिन्न-भिन्न नगरों की कल्पना की है जिन्हें कपिलवस्तु के रूप में फा-ह्यान और यूआन् चुआङ ने देखा था। जैसा हम अभी कह चुके हैं, खनन-कार्य और अभिलेखों से इस सम्बन्ध में हमें कुछ अधिक स्पष्ट प्रकाश मिलता है और वह इस प्रकार है। मार्च सन् १८९५ में मागधी भाषा में एक स्तम्भ पर लिखा हुआ अभिलेख नेपाल के निगलीवा नामक गाँव के समीप मिला था। यह स्थान तिलौराकोट से करीब ४ मील उत्तर-पूर्व दिशा में है। इस अभिलेख के अनुसार राजा पियदसि (अशोक) ने अपने अभिषेक के चौदहवें वर्ष में इस स्थान पर स्थित कोणागमन (कोणाकमन) बुद्ध के स्तूप को दुगुना बड़ा किया था और अपने अभिषेक के बीसवें वर्ष में यहाँ आकर उसकी पूजा की थी। चूंकि फा-ह्यान ने अपने यात्रा-विवरण में कोणागमन बुद्ध के इस स्तूप का उल्लेख किया है और इस स्तूप से एक योजन दूर पूर्व में कपिलवस्तु को स्थित बताया है,[१] अतः यह जान पड़ा कि कपिलवस्तु की स्थिति इस अभिलेख की प्राप्ति से निश्चित हो गई है। परन्तु बाद में पता चला कि जिस स्थान पर उपर्युक्त स्तम्भ मिला था वह उसकी वास्तविक स्थिति नहीं थी और वह कहीं अन्यत्र से वहाँ लाया गया था। उसमें वर्णित स्तूप के भी चिन्ह वहाँ कहीं आसपास नहीं पाये गये, (स्वर्गीय बाबू पूर्णचन्द्र मुखर्जी को भी वे सन् १८९९ में कहीं नहीं मिले, देखिए उनकी ऐं रिपोर्ट ऑन् ए टूर ऑव एक्सप्लोरेशन ऑव दि

---

१. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३६।

एण्टिक्विटीज इन दि तराई, नेपाल एण्ड दि रिजन ऑव कपिलवस्तु, पृष्ठ ३०)। यद्यपि डा० फूहरर साहब ने, जिन्होंने उपर्युक्त स्तम्भ और उस पर लिखित अभिलेख की खोज की थी, अपनी कल्पना से स्तूप की प्राप्ति का भी विस्तृत वर्णन "मोनोग्राफ औन बुद्ध शाक्यमुनीज बर्थप्लेस इन दि नैपाल तराई" में कर दिया, जिसे अप्रामाणिक होने के कारण बाद में प्रसार से रोका गया। सौभाग्यवश सन् १८९६ में नेपाल की सीमा में, निगलीवा से १३ मील दक्षिण-पूर्व में रुम्मनदेई नामक स्थान पर एक अन्य अशोक-स्तम्भ पाया गया, जिसपर ब्राह्मी लिपि में एक अभिलेख अंकित था। यह स्तम्भ भगवान् बुद्ध के जन्म-स्थान पर गाड़ा गया था और इसके अभिलेख में लुम्बिनी ग्राम (लुम्मिनि गाम) का स्पष्ट उल्लेख है। "लुम्मिनि गामे उबलिके कटे"। इस "लुम्मिनि गाम" के निर्देश से यह स्पष्ट हो जाता है कि यह स्तम्भ लुम्बिनीवन के उस स्थान पर गाड़ा गया था जहाँ भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था। अतः आधुनिक रुम्मनदेई ही बुद्धकालीन लुम्बिनी-वन है जहाँ भगवान बुद्ध का जन्म हुआ था, यह तो इस अभिलेख से स्पष्ट हो ही जाता है, रुम्मनदेई के रूप में लुम्बिनी की स्थिति निश्चित हो जाने पर यह भी उतना ही सुनिश्चित हो जाता है कि कपिलवस्तु को इस स्थान (रुम्मनदेई) के पश्चिम में होना चाहिये, क्योंकि पालि विवरण के अनुसार लुम्बिनी वन कपिलवस्तु के पूर्व में कपिलवस्तु और देवदह नगरों के बीच में स्थित था। वर्तमान तिलौराकोट लुम्बिनी (रुम्मनदेई) से पश्चिमोत्तर दिशा में करीब १० या १२ मील की दूरी पर स्थित है। अतः तिलौराकोट को हम आसानी से कपिलवस्तु की आधुनिक स्थिति मान सकते हैं। जैसा हम पहले कह चुके हैं, यूआन् चुआङ के विवरण के आधार पर स्मिथ को तिलौराकोट के रूप में कपिलवस्तु की आधुनिक स्थिति स्वीकार्य थी। रायस डेविड्स[1], स्वर्गीय बाबू पूर्णचन्द्र मुखर्जी[2] और राहुल सांकृत्यायन[3] जैसे

---

१. बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ २१५-२१६, (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०)।

२. ए रिपोर्ट औन् ए टूर ऑव एक्सप्लोरेशन ऑव दि एण्टिक्विटीज इन दि तराई, नेपाल एण्ड दि रिजन ऑव कपिलवस्तु (कलकत्ता, १९०१), पृष्ठ ४९।

३. बुद्धचर्या, पृष्ठ १, पद-संकेत ७; पृष्ठ ५४७।

विद्वानों ने भी पर्याप्त ऊहापोह के बाद तिलौराकोट को ही कपिलवस्तु की ठीक आधुनिक स्थिति माना है। फिर भी जब तक स्वयं तिलौराकोट की खुदाई से कपिलवस्तु के सम्बन्ध में स्वतन्त्र साक्ष्य न मिलें, हमें इस पहचान को केवल आनुमानिक ही मानना पड़ेगा। इस क्षेत्र की आगे खुदाई की कितनी भारी आवश्यकता है, यह बताने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती।

जिस लुम्बिनी के शाल-वन में भगवान् बुद्ध का जन्म हुआ था, वह शाक्य जनपद का ही एक अंग था। पालि साहित्य में लुम्बिनी को एक जनपद (जनपदे लुम्बिनेय्ये—नालक-सुत्त) कहकर पुकारा गया है, परन्तु यहाँ प्राप्त अशोक के अभिलेख में लुम्बिनी को एक गाँव (लुम्मिनि गामे) कहा गया है। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में यहाँ एक विशाल शालोद्यान था, जो कपिलवस्तु और देवदह के बीच में स्थित था और जिस पर इन दोनों नगर वालों का अधिकार माना जाता था।[1] जैसा हम पहले देख चुके हैं, लुम्बिनी की आधुनिक स्थिति के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं रह गया है। वह निश्चयतः वर्तमान रुम्मनदेई नामक स्थान ही है जो पूर्वोत्तर रेलवे के नौतनवा स्टेशन से करीब १० मील पश्चिम में है और जहाँ गड़ा हुआ अशोक-स्तम्भ निर्विवाद रूप से घोषणा कर रहा है, "हिद बुधे जाते सक्यमुनि ति।" अर्थात् "यहीं शाक्यमुनि (बुद्ध) उत्पन्न हुए थे।" जैसा हम पहले देख चुके हैं, लुम्बिनी-वन की इस निर्विवाद पहचान ने ही कपिलवस्तु की पहचान करने में भी सहायता की है। लुम्बिनी की गणना चार मुख्य बौद्ध तीर्थ-स्थानों में की जाती है, क्योंकि यहाँ भगवान् तथागत उत्पन्न हुए थे। शेष तीन महान् बौद्ध तीर्थ-स्थान हैं, बोध-गया, जहाँ भगवान् ने ज्ञान प्राप्त किया, इसिपतन मिगदाय, जहाँ उन्होंने प्रथम धर्मोपदेश किया और कुसिनारा, जहाँ उन्होंने अनुपाधि शेष-निर्वाण-धातु में प्रवेश किया।[2] इन चार पुण्य-स्थानों को दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में दर्शनीय और संवेजनीय अर्थात् वैराग्य उत्पन्न कराने वाले कहा गया है। रुम्मनदेई में गड़े जिस अशोक-स्तम्भ का हम पहले उल्लेख कर चुके हैं, उसके अभिलेख से ज्ञात होता है कि अपने राज्याभिषेक

---

१. देखिये जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ६८ (हिन्दी अनुवाद)।
२. महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ० २।३)।

के बीस वर्ष बाद लुम्बिनी ग्राम (लुम्मिनि गाम) की यात्रा अशोक ने की थी और भगवान् बुद्ध के जन्म-स्थान होने के कारण इस गाँव को राज-कर से मुक्त कर दिया था। "यहाँ भगवान् उत्पन्न हुए थे, इसलिए लुम्बिनी ग्राम का आठवाँ भाग, जो शुल्क (बलि) के रूप में लिया जाता था, उसे छोड़ दिया गया।" बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ 'दिव्यावदान' में भी अशोक की इस स्थान की यात्रा का वर्णन है। अशोक-स्तम्भ के स्थान पर ही खड़े होकर सम्भवतः उपगुप्त ने उनसे कहा था, "अस्मिन् महाराज, प्रदेशे भगवान् जातः।" पाँचवीं शताब्दी ईसवी में चीनी यात्री फा-ह्यान ने लुम्बिनी वन की यात्रा की थी। उसने कपिलवस्तु से लुम्बिनी की स्थिति को पचास 'ली' पूर्व में बताया है।[1] युआन् चूआङ ने भी लुम्बिनी-वन की यात्रा की थी। उसने इसे "ल-फ-नि" कहकर पुकारा है और इसके समीप एक छोटी नदी का उल्लेख किया है, जिसे उस समय लोग तेल नदी कहकर पुकारते थे।[2] तिलार नदी के रूप में यह नदी आज भी लुम्बिनी के पास विद्यमान है और इसके पानी में आज भी तेल की गन्ध आती है। रुम्मनदेई (लुम्बिनी शालोद्यान) से १२ मील दूर दक्षिण-पश्चिम दिशा में स्थित पिपरहवा स्तूप और उसके ब्राह्मी अभिलेख का उल्लेख हम आगे मोरियों के प्रदेश का विवरण देते समय करेंगे।

पालि निकायों में देवदह को प्रायः शाक्यों का ही कस्बा (निगम) बताया गया है। मज्झिम-निकाय के देवदह-सुत्तन्त के आदि में कहा गया है, "एक समय भगवान् शाक्य देश में शाक्यों के निगम देवदह में विहार करते थे"। संयुत्त-निकाय के देवदहखण-सुत्त में भी हम भगवान् को "शाक्यों के निगम" देवदह में विहार करते देखते हैं। महावंस २।१६ में भी देवदह के राजा को शाक्य बताया गया है। भगवान् बुद्ध की माता महामाया देवी, मौसी महाप्रजावती गौतमी और पत्नी भद्रा कात्यायनी, देवदह नगरी की ही थीं। महाप्रजावती गौतमी ने तो 'अपदान' में अपना परिचय देते हुए कहा भी है, "पच्छिमे च भवे दानि जाता देवदहे पुरे।

---

१. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३८।

२. वाटर्स : ऑन् युआन् चूआङ्स् ट्रेविल्स इन इंडिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १५।

पिता अञ्जन सक्को मे माता मम सुलक्खणा। ततो कपिलवत्थुस्मिं सुद्धोदनघरं गता।" अर्थात् "इस अन्तिम जन्म में मैंने देवदह नगर में जन्म लिया। मेरे पिता अञ्जन शाक्य थे और माता सुलक्षणा। फिर मैं कपिलवस्तु में राजा शुद्धोदन के घर गई।" स्थविर पक्ख और स्थविर रक्खित, जिनके उद्‌गार थेरगाथा में सन्निहित हैं, देवदह नगर के ही निवासी थे। ऐसा लगता है कि देवदह कस्बे पर शाक्यों और कोलियों का संयुक्त अधिकार माना जाता था। देवदह नगरी रोहिणी नदी के पूर्वी किनारे से लगी हुई बसी थी। इस प्रकार सीमा के विचार से तो वह कोलिय जनपद में ही थी और इसीलिये सम्भवतः उसे उत्तरकालीन साहित्य में कोलिय जनपद की राजधानी मान लिया गया है। भगवान् बुद्ध देवदह में कई बार गये थे। इस नगर का नाम देवदह क्यों पड़ा, इसके सम्बन्ध में पपंचसूदनी[1] तथा सारत्थप्पकासिनी[2] में कहा गया है कि इस नगर के पास देवदह नामक एक मंगल पुष्करिणी थी, जिसके कारण इस नगर का भी नाम "देवदह" पड़ गया। "देव कहते हैं राजाओं को। यहाँ शाक्य राजाओं की सुन्दर मंगल पुष्करिणी थी, जिसपर पहरा रहता था। वह देवों का दह (पुष्करिणी) होने के कारण देवदह कहलाती थी। उसी को लेकर वह निगम (कस्बा) भी देवदह कहा जाता था।"[3] पंपचसूदनी तथा जातकट्ठकथा से हमें पता चलता है कि इस देवदह निगम के समीप ही (अविदूरे) लुम्बिनी-वन था, जिसके सम्बन्ध में हम पहले कह चुके हैं। 'महावस्तु' में देवदह को 'देवडह' कहकर पुकारा गया है।

शाक्यों और कोलियों की उत्पत्ति का विवेचन करते हुए हम पहले देख चुके हैं कि मूल नगर, जो कोलियों ने बसाया था, "कोल नगर" या "व्यग्घपज्जा" (व्याघ्रपद्या) कहलाता था। कनिंघम ने हार्डी का अनुगमन कर इसे देवदह मान लिया है।[4] परन्तु देवदह को चूँकि सर्वत्र पूर्वकालीन पालि साहित्य में शाक्यों

---

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ८१०।

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८६।

३. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४२७, पद-संकेत १ में उद्धृत अट्ठकथा।

४. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४७७।

का ही नगर बताया गया है, इसलिए हम "कोल नगर" या "व्यग्घपज्जा" को देवदह न मानकर रामगाम मानना ही अधिक ठीक समझते हैं, क्योंकि वस्तुतः कोलियों का आदि निवास-स्थान यही नगर (रामगाम) था और केवल यहीं के कोलियों को हम भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के बाद उनके धातुओं में भाग माँगने आते देखते हैं, देवदह के शाक्यों या कोलियों को नहीं, जो कपिलवस्तु के शाक्यों के ही अधीन थे। हमें देवदह को अवश्य 'कोल नगर' या 'व्यग्घपज्जा' से अलग नगर मानना चाहिये।

ऊपर हम देवदह के समीप स्थित शाक्यों की मंगल-पुष्करिणी (मंगलपोक्खरणी) का उल्लेख कर चुके हैं। जब गौतम बोधिसत्व मंगल पुष्करिणी के तट पर प्रमोद विहार कर रहे थे तो उस समय उन्हें राहुल के जन्म की सूचना मिली थी।[1] इस मंगल पुष्करिणी से तात्पर्य शाक्यों की देवदह-स्थित मंगल पुष्करिणी से ही है, जो लुम्बिनी के भी समीप थी। रुम्मनदेई के वर्तमान भग्नावशेषों के दक्षिण में एक पुराना तालाब है। इसे शाक्यों की मंगल-पुष्करिणी के स्थान पर माना जा सकता है।

देवदह से कपिलवस्तु की दूरी पालि विवरणों में पाँच योजन बताई गई है। इस आधार पर भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य ने उसे आधुनिक निचलौल के पास मनियराभार (जिला गोरखपुर) से मिलाने का प्रस्ताव किया है।[2] भिक्षु

---

१. जातकट्ठकथा, पठमो भागो, पृष्ठ ४६; अट्ठसालिनी, पृष्ठ ३० (देवनागरी संस्करण); मिलाइये धम्मपदट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ७०; अट्ठसालिनी का उद्धरण देते हुए डा० विमलाचरण लाहा ने लिखा है कि मंगल-पोक्खरणी के तट पर बुद्ध को राहुल की मृत्यु का समाचार मिला था। (ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिस्म, पृष्ठ ३८)। यह गलत है। अट्ठसालिनी में स्पष्टतः यही उल्लेख है कि यहाँ विहार करते हुए गौतम बोधिसत्व को राहुल के जन्म का समाचार मिला। "...मंगलपोक्खरणीतीरे निसिन्नो....राहुलकुमारस्स जात-सासनं सुत्वा....।" पृष्ठ ३०।

२. देखिये "धर्मदूत", अक्टूबर-नवम्बर १९४७, पृष्ठ १३२ में उनके "शाक्य जनपद का लुम्बिनी शालोद्यान" शीर्षक लेख का अंश।

धर्मरत्न एम० ए० ने अभी हाल में इस स्थान की यात्रा कर प्रस्ताव किया है कि वर्तमान सिंहपुर से दो मील पूर्व की ओर दुतिहवा नामक स्थान है जहाँ काफी भग्नावशेष बिखरे पड़े हैं। सम्भवतः यही स्थान उनके मतानुसार प्राचीन देवदह हो सकता है।[1] कुछ लोग बनरसिहा गाँव (जिला गोरखपुर) को भी देवदह बताना चाहते हैं। इसी प्रकार की कुछ और कल्पनाएँ-जल्पनाएँ भी हैं। वस्तुतः जब तक खनन-कार्य इस प्रदेश में नहीं होता, निश्चयपूर्वक देवदह तथा अन्य कई स्थानों की पहचान के सम्बन्ध में कुछ नहीं कहा जा सकता।

शाक्यों का एक अन्य प्रसिद्ध कस्बा चातुमा नामक था। इस कस्बे के समीप आँवलों के पेड़ों का एक वन था जो "आमलकी-वन" कहलाता था। मज्झिम-निकाय के चातुम-सुत्तन्त से हमें पता लगता है कि भगवान् एक बार इस कस्बे में गये थे और आमलकी-वन में ठहरे थे। इसी सुत्त में आनन्द आदि भिक्षुओं के यहाँ निवास करने का उल्लेख है। चातुमा के शाक्यों का इस कस्बे में एक संस्थागार था, जहाँ वे सार्वजनिक कार्यों के लिये एकत्र होते रहते थे, यह सूचना भी हमें उपर्युक्त सुत्त में मिलती है।

सामगाम शाक्य जनपद में एक गाँव था, जो दीघ-निकाय के पासादिक-सुत्त की सूचना के अनुसार, शाक्यों के वेधञ्ञा नामक नगर के पास था। मज्झिम-निकाय के सामगाम-सुतन्त का उपदेश भगवान् ने यहीं दिया था। इसी गाँव में जब भगवान् विहार कर रहे थे, तो धर्मसेनापति सारिपुत्र के अनुज चुन्द समणुद्देस ने पावा से आकर आनन्द को यह सूचना दी थी कि निगण्ठ नाटपुत्त (जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर) ने पावा में निर्वाण प्राप्त किया है। आनन्द ने इस बात की सूचना बाद में भगवान् को दी[2]। अंगुत्तर-निकाय[3] के वर्णनानुसार सामगाम में एक सुरम्य पुष्करिणी थी जिसमें कमल के फूल सदा खिले रहते थे। सामगाम का यह नाम क्यों पड़ा, इसका कारण बताते हुए आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि इस

---

१. देखिये "धर्मदूत" मई-जून १९५५ में प्रकाशित उनका "देवदह की खोज में" शीर्षक लेख, पृष्ठ ३६।

२. सामगाम-सुत्तन्त (मज्झिम० ३।१।४)।

३. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३०९।

गाँव में साम, सामक या सामाक अर्थात् सवाँ बहुत अधिकता से होता था। इस-लिए सवाँ की अधिकता के कारण (सामकामं उस्सन्नत्ता) इस गाँव ने यह नाम पाया। "सामगामं ति संखं गतं।"[1]

शाक्य जनपद का एक कस्बा सक्कर या सक्खर नामक था। यहाँ आनन्द के साथ भगवान् एक बार गये थे। संयुत्त-निकाय के उपड्ढ-सुत्त का उपदेश भग-वान् ने आनन्द के प्रति इसी कस्बे में दिया था।[2] पंचशिख का पुत्र मच्छरिय कोसिय, जिसका उल्लेख सुधाभोजन जातक में है, यहीं का निवासी था।[3] सक्कर या सक्खर की दूरी श्रावस्ती के जेतवनाराम से ४५ योजन बताई गई है।[4]

शाक्यों के एक प्रसिद्ध गाँव या जनपद का नाम सिलावती (शिलावती या शीलवती) था। यहाँ भगवान् ने संयुत्त-निकाय के सम्बहुल-सुत्त तथा समिद्धि-सुत्त का उपदेश दिया था।[5] स्थविर बन्धुर भी यहीं के निवासी थे। "बुद्धचर्या"[6] में इसे सुह्म जनपद में दिखा दिया गया है, जिसमें संशोधन की आवश्यकता है।

मेदलुम्प (मेतलूप) शाक्य जनपद का एक प्रसिद्ध कस्बा था। भगवान् यहाँ गये थे और मज्झिम-निकाय के धम्मचेतिय-सुत्तन्त का उपदेश यहीं उन्होंने राजा प्रसेनजित् को दिया था। शाक्यों का यह कस्बा कोसल देश के नग-रक या नंगरक नामक कस्बे से केवल तीन योजन की दूरी पर था, ऐसी सूचना हमें उपर्युक्त सुत्त में मिलती है।[7] जिस गाँव में कोसलराज प्रसेनजित् की भग-वान् से भेंट हुई, उसे मज्झिम-निकाय के धम्मचेतिय-सुत्तन्त में मेदलुम्प या मेत-

---

१. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ८२९।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ६१९-६२०।

३. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ३६७।

४. उपर्युक्त के समान।

५. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ १०१-१०२।

६. पृष्ठ २७४, ५६६।

७. "सौम्य कारायण! नगरक से कितनी दूर पर शाक्यों का वह मेतलूप नगर है?" "महाराज, दूर नहीं, तीन योजन है। बाकी बचे दिन में पहुँचा जा सकता है।"

लूप कहा गया है, परन्तु जातक[1] तथा धम्मपदट्ठकथा[2] में इसी घटना का उल्लेख करते हुए गाँव का नाम उलुम्प या उलुम्पा बताया गया है। अतः यह निष्कर्ष निकालना अनुचित नहीं है कि उलुम्प या उलुम्पा और मेदलुम्प या मेतलूप एक ही गाँव के विभिन्न नाम थे। मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा (पपंचसूदनी) के आधार पर डा० मललसेकर ने इस गाँव के नाम का एक पाठान्तर "मेदतलुम्प" भी दिया है।[3] मेदलुम्प या मेदतलुम्प गाँव का यह नाम क्यों पड़ा, इसका कारण बताते हुए आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि यहाँ मेद (चर्बी) के रंग के पाषाण अधिकता से पाये जाते थे, इसलिये इस गाँव का यह नाम पड़ा। "मेदवण्णा पासाणा किरेत्थ उस्सन्ना अहेसुं, तस्मा मेदतलुम्पं ति संखं गतं।"[4]

शाक्यों का एक गाँव वेधञ्ञा नामक था, जहाँ एक आम्रवन प्रासाद था। भगवान् यहाँ गये थे और पासादिक-सुत्त का उपदेश दिया था।[5]

सुमंगलविलासिनी के अनुसार वेधञ्ञा में शाक्यों के आम्रवन में एक धनुर्वेद-शिल्प का शिक्षणालय था, जो "सिप्पुग्गहन पासाद" कहलाता था। यहाँ तीर चलाने की शिक्षा दी जाती थी। मनोरथपूरणी में कहा गया है कि इसके विद्यार्थी एक योजन तक तीर चलाने की योग्यता रखते थे। वेधञ्ञा (पाठान्तर वेदञ्ञा) मूलतः शाक्यों के एक परिवार के लोगों का नाम था जो बाद में उस स्थान के लिये प्रयुक्त होने लगा जहाँ वे लोग रहते थे। वेधञ्ञा (वैधन्वा) नाम पड़ने का कारण आचार्य बुद्धघोष ने यह बताया है कि वे लोग धनुर्विद्या में अत्यन्त विशेषता-प्राप्त थे।[6] दीघ-निकाय के पासादिक-सुत्त से हमें सूचना मिलती है कि सामगाम, जो भी शाक्यों का एक गाँव था, वेधञ्ञा के पास ही स्थित था।

खोमदुस्स शाक्य जनपद में ब्राह्मणों का एक कस्बा था। संयुत्त-निकाय के

---

१. जिल्द चौथी, पृष्ठ १५१।
२. जिल्द पहली, पृष्ठ ३५६।
३. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६६३।
४. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७५३।
५. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २५२-२५९।
६. सुमंगलविलासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ९०५।

खोमदुस्सक-सुत्त में हम इस गाँव के ब्राह्मणों को सार्वजनिक कार्य से सभागृह में इकट्ठे होते देखते हैं। इसी समय भगवान् यहाँ आ निकले और इन ब्राह्मणों को सन्तों की पहचान पर उपदेश दिया। क्षौम वस्त्रों (खोमदुस्सा) के निर्माण की अधिकता के कारण (उस्सन्नत्ता) इस कस्बे का यह नाम पड़ा था।[1]

कोलियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पालि परम्परा के आधार पर हम पहले विवरण दे चुके हैं। वे भी शाक्यों के समान महासम्मत की सन्तान ही थे, अतः क्षत्रिय थे। भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद उन्होंने भी उनके धातुओं में अपना भाग माँगते हुए आत्मगौरव-पूर्वक कहा था। "भगवा पि खत्तियो, मयम्पि खत्तिया। मयम्पि अरहाम भगवतोसरीरानं भागं"। अर्थात् "भगवान् क्षत्रिय थे, हम भी क्षत्रिय हैं। हमें भी भगवान् की अस्थियों का अंश मिलना चाहिये।" उन्हें यह अंश मिला भी था और उस पर उन्होंने धातु-चैत्य बनवाया था। कोलियों के दो भाग थे। एक देवदह के कोलिय कहलाते थे और दूसरे रामग्राम के। वस्तुतः रामग्राम के कोलियों को ही मूल और स्वतंत्र कोलिय राष्ट्र मानना अधिक ठीक जान पड़ता है। देवदह के कोलिय वस्तुतः शाक्यों के ही अधीन थे और उनके स्वतन्त्र अस्तित्व के पालि तिपिटक में प्रायः साक्ष्य नहीं मिलते। भगवान् बुद्ध की धातुओं में भाग माँगने भी केवल रामग्राम के कोलिय ही आये थे। यह आश्चर्यजनक और खेदजनक ही है कि देवदह के कोलियों या शाक्यों को हम इस अवसर पर नहीं देखते।

कोलिय जनपद शाक्य राज्य के पूर्व में, उससे कुछ नीचे हटकर, रोहिणी के उस पार स्थित था। रोहिणी नदी इन दोनों राज्यों की सीमा थी। राजगृह से ये दोनों गण-राज्य पश्चिम दिशा में पड़ते थे। काल उदायी राजगृह में निवास करते हुए भगवान् से अपनी जन्म-भूमि में चलने के लिये प्रार्थना करता हुआ कहता है, "पश्चिमाभिमुख हो रोहिणी को पार करते हुए आपको शाक्य और कोलिय देखें।"[2] कोलिय जनपद के उत्तर-पूर्व में मोरिय गणतंत्र का राज्य था और उसके

---

१. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २०७।

२. "पस्सन्तु तं साकिया कोलिया च पच्छामुखं रोहिणियं तरन्तं"। थेरगाथा, गाथा ५२९ (महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन और भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

भी उत्तर-पूर्व में आगे चलकर मल्लों का। गोरखपुर जिले की सदर तहसील और उसके आसपास के क्षेत्र को हम साधारणतः कोलिय जनपद की स्थिति मान सकते हैं।

संयुत्त-निकाय में भगवान् बुद्ध और पाटलि ग्रामणी का एक सम्वाद उल्लिखित है, जिससे हमें पता लगता है कि कोलिय लोग अपने राष्ट्र में एक पुलिस-दल भी रखते थे जिसका काम चोर-डाकुओं की खोज करना और उन्हें पकड़ना था। इस पुलिस दल के सिपाही लम्बे-लम्बे बाल रखते थे। "ग्रामणी, कोलियों के लम्बे-लम्बे बाल वाले सिपाहियों को जानते हो?" "हाँ भन्ते, मैं उन्हें जानता हूँ।" "ग्रामणी, कोलियों के लम्बे-लम्बे बाल वाले सिपाही किस लिये रक्खे गये हैं?" "भन्ते, चोरों से पहरा देने के लिये और दूत का काम करने के लिये रक्खे गये हैं।"[१]

कुणाल जातक से हमें पता लगता है कि रोहिणी नदी का बाँध बाँध कर उसके जल से शाक्य और कोलिय दोनों गणतंत्रों के लोग अपने-अपने खेतों की सिचाई करते थे। एक बार ज्येष्ठ (जेट्ठमूल) मास में जब दोनों की खेती सूख रही थी, नौकरों के साधारण विवाद ने उग्र रूप धारण कर लिया और महान् रक्तपात की आशंका हो गई। परन्तु भगवान् बुद्ध के समझाने से दोनों पक्षों में सुबुद्धि आ गई और आपत्ति टल गई।[२]

कोलियों की प्रथम शाखा की राजधानी देवदह नगरी पर वस्तुतः शाक्य और कोलियों का समान अधिकार माना जाता था। यही कारण है कि पालि निकायों में, जैसा हम पहले देख चुके हैं, देवदह को शाक्य जनपद का नगर बताया गया है और उस रूप में उसका उल्लेख हम पहले कर भी चुके हैं।

कोलियों की दूसरी शाखा की राजधानी रामगाम कोलियों का आदिम नगर था। यह 'कोलनगर' या व्यग्घपज्जा ही था, यह हम पहले कह चुके हैं। महापरिनिब्बाण-सुत्त के आधार पर हम पहले देख चुके हैं कि रामग्राम के कोलियों ने भगवान् बुद्ध की धातुओं का एक अंश प्राप्त किया था और उस पर उन्होंने अपने

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५९४।

२. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ६८, मनोरथपूरणी, जिल्द पहली, पृष्ठ १५६; सुमंगलविलासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६७२।

नगर रामग्राम में एक स्तूप का निर्माण किया था। बुद्धवंस की धातुभाजनिय कथा में भी इस बात का उल्लेख है। "एको च रामगामम्हि"। इस स्तूप के सम्बन्ध में "महावंस"[1] में कहा गया है, "रामगाम का स्तूप गंगा के किनारे बना हुआ था। वह गंगा के उतार-चढ़ाव में टूट गया। प्रकाशवान् धातु का करण्ड (पिटारी) बहकर समुद्र में प्रविष्ट हो गया।" महावंस के इस विवरण में रामगाम को स्पष्टतः गंगा नदी के किनारे स्थित बताया गया है, परन्तु चीनी यात्री फा-ह्यान और युआन् चूआङ ने जिस रामग्राम को देखा, वहाँ गंगा या अन्य किसी नदी का उल्लेख नहीं है। पाँचवीं शताब्दी ईसवी में फा-ह्यान ने रामग्राम नगर को भग्न अवस्था में, परन्तु उसके स्तूप को अच्छी अवस्था में, देखा था और उसके समीप एक पुष्करिणी का भी उसने उल्लेख किया है जिसमें एक नाग रहता था। फा-ह्यान लुम्बिनी वन से पाँच योजन पूर्व में चलकर "लन्-मो" या रामग्राम में पहुँचा था[2]। युआन् चुआङ ने भी सातवीं शताब्दी ईसवी में "लन्-मो" या "राम देश" (रामग्राम) की यात्रा की थी और वह भी लुम्बिनी वन से ही वहाँ गया था और इन दोनों स्थानों की दूरी उसने २०० 'ली' या करीब ३३$\frac{1}{3}$ मील बताई है जो फा-ह्यान के पाँच योजन (लगभग ४० मील) विवरण से लगभग मिलती है[3]। इन दोनों चीनी यात्रियों के वर्णनों के आधार पर कनिंघम ने रामग्राम को कपिलवस्तु और कुशीनगर के बीच में मानकर उसे आधुनिक देवकाली नामक गाँव से मिलाया था।[4] चीनी यात्रियों के विवरणानुसार दूरी के विचार से तो कनिंघम की यह पहचान ठीक जान पड़ती है, परन्तु उन्होंने जो दिशाएं इन स्थानों की दी हैं उनसे यह मेल नहीं खाती। दिशाओं में उलट-पुलट करना तो कनिंघम का प्रसिद्ध ही है। फिर "महावंस" में जो रामग्राम को गंगा के किनारे पर स्थित होने की बात कही गई है, उसका भी इससे समाधान नहीं होता और इसीलिये कनिंघम

---

१. ३१।२५-२६ (हिन्दी अनुवाद)।

२. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३८-३९।

३. देखिये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ४८२; मिलाइये वाटर्स : औन् युआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इंडिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २०।

४. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ४८२-४८५।

को उसे केवल सिंहली भिक्षुओं की मनगढ़ंत कल्पना मानना पड़ा है।[1] ए० सी० एल० कारलायल ने वर्तमान रामपुर देवरिया को रामग्राम बताया था।[2] उनका मत इस बात पर आधारित था कि इस स्थान के ५०० फुट उत्तर-पूर्व में एक भग्न स्तूप मिला था जिसे उन्होंने कोलियों के रामग्राम का स्तूप मान लिया था। परन्तु यह पहचान प्रामाणिक नहीं मानी जा सकती, क्योंकि युआन् चुआङ के वर्णनानुसार रामग्राम का स्तूप इस नगर के दक्षिण-पूर्व में स्थित था, न कि उत्तर-पूर्व में। स्मिथ का आग्रहपूर्वक मत था कि रामग्राम को हमें धर्मोली (धर्मपुरी) के आसपास नेपाल और गोरखपुर की सीमा पर खोजना चाहिए।[3] डा० राजबली पाण्डेय का कहना है कि गोरखपुर के समीप स्थित आधुनिक रामगढ़ ताल ही प्राचीन रामग्राम की स्थिति को सूचित करता है।[4] परन्तु इस रामगढ़ ताल के पास आज कोई स्तूप नहीं मिलता। इसका समाधान उन्होंने यह कहकर किया है कि सम्भवतः या तो रापती (अचिरवती) इसे बहा ले गई या रामगढ़ ताल ने उस पर अपना अधिकार जमा लिया।[5] चूंकि महावंस के साक्ष्य पर हम पहले रामग्राम-स्तूप के गंगा नदी के द्वारा बहा ले जाने की बात का उल्लेख कर ही चुके हैं, अतः उसके आधार पर डा० राजबली पाण्डेय के तर्क को माना जा सकता है। कुछ भी हो, हमें "महावंस" में वर्णित गंगा नदी की तो उपेक्षा करनी ही पड़ेगी। उसे या तो सामान्यतः कोई नदी मात्र मानना पड़ेगा, जिस अर्थ में गंगा का प्रयोग कहीं-कहीं पालि साहित्य में कर दिया गया है, या उसे इस प्रसंग में अचिरवती नदी भी मान सकते हैं। वस्तुतः जब तक नेपाल की तराई में खुदाई का काम

---

१. वहीं, पृष्ठ ४८४-४८५।

२. आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इंडिया, भाग २२, वर्ष १८७५; डा० लाहा ने इस पहचान को स्वीकार किया है। देखिये उनकी "हिस्टोरिकल ज्योग्रेफी ऑव एन्शियन्ट इण्डिया", पृष्ठ ११९।

३. देखिये वाटर्स के "औन् युआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इंडिया", जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३३९ में स्मिथ द्वारा लिखित टिप्पणी।

४. गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, पृष्ठ ७०।

५. उपर्युक्त के समान।

अग्रसर न हो तब तक इस सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। फा-ह्यान के समान यूआन् चुआङ ने भी रामग्राम-स्तूप के समीप एक कुण्ड में एक नाग के रहने और स्तूप की प्रदक्षिणा करने की बात कही है और इस बात का भी उल्लेख किया है कि राजा अशोक ने रामग्राम-स्तूप की धातुओं को निकलवाने का प्रयत्न किया था, परन्तु उपर्युक्त नाग की प्रार्थना पर उसने अपने विचार को छोड़ दिया था।[१] महाकवि अश्वघोष ने भी इसी प्रकार की बात कही है।[२] दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में भी कहा गया है, "पुरुषोत्तम का एक द्रोण रामगाम में नागराजों से पूजा जाता है"। "एकं च दोणं पुरिसवरुत्तमस्स रामगामे नागराजा महेन्ति"। महावंस[३] में भी नागों के द्वारा रामग्राम स्तूप की पूजा की बात प्रकारान्तर से कही गई है। इन सब प्रसंगों में नागों से तात्पर्य रामग्राम के नागवंशी क्षत्रियों से है, ऐसा अभिमत डा०. राजबली पाण्डेय ने प्रकट किया है।[४] सारनाथ की खुदाई में चुनार के पत्थर का बना हुआ एक आलम्बन मिला है, जिस पर नागों के द्वारा पूजित एक स्तूप दिखाया गया है। इसे रामग्राम के नागों के द्वारा पूजित स्तूप से मिलाने का प्रस्ताव कई विद्वानों ने किया है। इस प्रकार नागों से सम्बन्धित रामग्राम के कोलियों की एक समस्या है, जिसका पूर्ण समाधान होना अभी बाकी है। यूआन् चुआङ ने हमें बताया है कि रामग्राम-स्तूप ईंटों का बना हुआ था और उसकी ऊँचाई १०० फुट थी।[५] रामग्राम-स्तूप के समीप एक श्राम-

---

१. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ३९; वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इंडिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २०।

२. "रामपुर में स्थित आठवाँ मूल स्तूप उस समय नागों से रक्षित था, इसलिये राजा ने उस स्तूप से धातुओं को प्राप्त नहीं किया, अपितु उन धातुओं में उसकी श्रद्धा और बढ़ गई।" बुद्ध-चरित, २८।६६।

३. ३१।२७-३० (हिन्दी अनुवाद)।

४. गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, पृष्ठ ६९।

५. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इंडिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २०।

णेर-बिहार का भी उल्लेख यूआन् चुआङ ने किया है।[1] अब हम कोलियों के कुछ अन्य निगमों और ग्रामों के विवरण पर आते हैं।

कक्करपत्त कोलिय जनपद का एक कस्बा था, जहाँ एक बार भगवान् बुद्ध गये थे। यहीं दीघजानु नामक कोलिय रहता था, जिसे भगवान् ने उपदेश दिया था, जो अंगुत्तर-निकाय[2] के दीघजानु-सुत्त में निहित है। वर्तमान ककरहवा बाजार ही बुद्धकालीन कक्करपत्त नामक निगम जान पड़ता है। यह स्थान भारत-नेपाल की सीमा के पास स्थित है।

सज्जनेल कोलिय जनपद का एक कस्बा था, जहाँ भगवान् बुद्ध एक बार गये थे।[3] यहीं सुप्पवासा कोलियधीता निवास करती थी।

उत्तर या उत्तरक कोलियों का एक कस्बा था। यहाँ भगवान् एक बार गये थे। यहीं पाटलि ग्रामणी उनसे मिलने आया था और उसे पाटलि-सुत्त का उपदेश दिया गया था।[4]

कुण्डी या कुण्डिया नामक ग्राम कोलिय जनपद में था। इसी के समीप कुण्डधान-वन था। उससे थोड़ी दूर पर ही साणवासि नामक पर्वत था, जहाँ आनन्द ने कुछ समय के लिये निवास किया था। कुण्डी ग्राम के कुण्डधान-वन में निवास करते समय ही भगवान् ने सुप्रवासा कोलिय दुहिता को सुखी और चंगी होने का आशीर्वाद दिया था।[5] कुण्डी, कुण्डिय, कुण्डिया या कुण्डिकोल नामक एक अन्य ग्राम कुरु जनपद में भी था, जिसका परिचय हम कुरु राष्ट्र के विवरण पर आते समय देंगे।

सापुग या सापुगा नामक एक अन्य निगम कोलियों का था। यहाँ एक बार आनन्द चारिका करते हुए गये थे और कुछ काल तक निवास किया था।[6] सापुग या सापुगा के निवासी "सापुगिया" कहलाते थे।[7]

---

१. वहीं, पृष्ठ २०-२१।
२. जिल्द चौथी, पृष्ठ २८१।
३. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६२।
४. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५९३-५९४।
५. उदान-पृष्ठ २३ (हिन्दी अनुवाद)।
६. अंगुत्तर निकाय, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९४।
७. उपर्युक्त के समान।

हलिद्दवसन (हरिद्रवसन) कोलिय जनपद का एक प्रसिद्ध कस्बा था। यहाँ एक बार भगवान् गये थे और मज्झिम-निकाय के कुक्कुरवतिक-सुत्तन्त का उपदेश दिया था।[1] संयुत्त-निकाय के मेत्त-सुत्त का उपदेश भी यहीं दिया गया था।[2] गोव्रतिक तपस्वी पुण्ण कोलियपुत्त और कुक्कुरव्रतिक अचेल सेणिय इसी कस्बे के निवासी थे।[3] इस कस्बे का यह नाम आचार्य बुद्धघोष के मतानुसार इसलिये पड़ा कि जब यह बसाया जा रहा था तो मंगलमय मुहूर्त में हल्दी के रंग के वस्त्र (हलिद्दवसन) पहन कर लोगों ने नक्षत्र-पर्व मनाया था।[4]

मोरिय (मौर्य) लोग क्षत्रिय (खत्तिया) थे और महापरिनिब्बाण-सुत्त में अन्य गणों और संघों के साथ-साथ, जिन्होंने भगवान् के धातुओं के अंशों को प्राप्त करने की प्रार्थना की थी, उनका भी उल्लेख है। वे कुछ देर बाद वहाँ पहुँचे थे, जब कि धातुओं का बँटवारा हो चुका था। इसलिये धातुओं में से तो अंश उन्हें मिल नहीं सके, परन्तु उन्होंने बचे हुए अंगारों को ही प्राप्त किया, जिन पर उन्होंने अपने नगर पिप्फलिवन में स्तूप रचना की। यह स्तूप इसीलिये अंगार-स्तूप (अंगार-थूपो) कहलाता था। 'बुद्धवंस' में कहा गया है "अंगारथूपं कारेमुं मोरिया तुट्ठमानसा।"[5] यहाँ एक बात ध्यान देने की यह है कि शाक्यों से अलग उनका उल्लेख महापरिनिब्बाण-सुत्त में किया गया है। इससे प्रकट होता है कि मोरिय लोग शाक्यों से पृथक् एक क्षत्रिय राष्ट्र थे। परन्तु महावंस-टीका में उनकी उत्पत्ति कपिलवस्तु के शाक्यों से ही कही गई है। इस ग्रंथ के अनुसार मोरिय लोग वास्तव में वे शाक्य ही थे जो विडूडभ के भय से भागकर हिमालय प्रदेश मे चले गये थे, और वहाँ पीपल के वृक्षों के एक वन में नगर बसा कर रहने लगे थे, जिसका नाम इसी कारण "पिप्फलिवन" पड़ा था। यह परम्परा उत्तरकालीन जान पड़ती

---

१. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २३१-२३३।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ६७१-६७३।

३. कुक्कुर-वतिक सुत्तन्त (मज्झिम० २।१।७)।

४. पपंचसूदनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १००।

५. बुद्धवंस, पृष्ठ ७४ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

है। हम जानते हैं कि मौर्यों का स्वतन्त्र गण-तन्त्र भगवान् बुद्ध के महापरिनिर्वाण के समय ही विद्यमान था। यह सम्भव है कि विडूडभ के कपिलवस्तु को विनष्ट किये जाने के पूर्व ही मोरिय लोग, जो शाक्यों की एक शाखा थे, कपिलवस्तु से पिप्फलिवन में जाकर बस गये हों। विडूडभ के द्वारा शाक्यों का विनाश सम्भवतः बुद्ध-परिनिर्वाण से दो वर्ष पूर्व किया गया था। अतः इतनी जल्दी पिप्फलिवन के मोरियों का एक स्वतन्त्र राष्ट्र निर्माण करना सम्भव नहीं जान पड़ता। शाक्यों के विवरण में हम देख चुके हैं कि कोलिय शाक्यों की एक उपशाखा ही थे। परन्तु महापरिनिब्बाण-सुत्त में शाक्यों से पृथक् उनका उल्लेख है। अतः यदि मोरिय शाक्यों की एक शाखा या उपशाखा रहे भी हों, तो भी एक पृथक् राष्ट्र के रूप में उनका उल्लेख किया जा सकता था, जैसा कि कोलियों के सम्बन्ध में।

कहा गया है कि जिस प्रदेश में "मोरिय" लोग रहते थे, वहाँ मोर बहुत अधिक थे और उनके शब्दों से वह प्रदेश गुंजायमान रहता था। इसलिए उन लोगों का यह नाम पड़ा। एक अनुश्रुति यह भी है कि जिस नगर को मोरिय लोगों ने बसाया उसके मकान मोर की गर्दन के समान नीले रंग के पत्थरों से बने हुए थे, इसलिए उन लोगों का यह नाम पड़ा। यह भी कहा गया है कि मोरिय लोग अपने नगर की शोभा से अत्यन्त मुदित रहते थे, इसलिए उनका यह नाम पड़ा। "अत्तानं नगर-सिरिया मोदापी ति"। महावंस-टीका के अनुसार पिप्फलिवन के मोरिय मगध के मौर्य सम्राटों के पूर्वज थे। इस टीका में मौर्य सम्राट् चन्द्रगुप्त (चन्दगुत्त) को पिप्फलिवन के मोरिय राजा की प्रधान महिषी का पुत्र बताया गया है। महावंस-टीका में यह भी कहा गया है कि अशोक की माता धम्मा मोरिय राजकुमारी ही थी।

मोरिय लोगों का प्रदेश, जिसे आकार में अति छोटा ही होना चाहिए, कोलियों के उत्तर-पूर्व और मल्ल राष्ट्र के दक्षिण या दक्षिण-पश्चिम में स्थित था। उसके उत्तर या उत्तर-पूर्व में मल्ल राष्ट्र था और दक्षिण में मगध राज्य। कनिंघम का मत है कि मौर्य गणतंत्र कुसिनारा से अधिक दूरी पर नहीं था।[1] पिप्फलिवन नामक नगर, जो मोरिय लोगों की राजधानी था, और जिसके कारण ही वे "पिप्फलिवनिया मोरिया" या पिप्फलिवन के मोरिय कहलाते थे,

---

१. एन्शियण्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४९३।

आधुनिक क्या स्थान हो सकता है, इसका अभी सम्यक् रूप से निर्णय नहीं हो सका है। फिर भी अधिकत्तर विद्वानों का मत है कि यूआन् चुआङ ने जिस "न्यग्रोध वन" को देखा था, वह सम्भवतः पिप्फलिवन नगर ही था।[१] इस वन से पूर्वोत्तर दिशा में चलकर चीनी यात्री कुशीनगर पहुँचा था।[२] इससे यह सिद्ध होता है कि न्यग्रोधवन या पिप्फलि वन, जैसा उसे यूआन् चुआङ ने देखा, कुशीनगर (वर्तमान कसया) से दक्षिण-पश्चिम दिशा में था। इस बात का ध्यान रखते हुए ए० सी० एल० कार्लायल ने मौर्यों के पिप्फलि वन की पहचान आधुनिक राजधानी या उपधौलिया (उपधौली) के डीह से की थी, जो गोरखपुर के दक्षिण-पूर्व १४ मील ी दूरीपर गुर्रा नदी के तट पर स्थित है।[३] महापरिनिब्बाण-सुत्त के आधार पर हम पहले देख चुके हैं कि मोरिय लोगों ने भगवान् बुद्ध की चिता के अंगारों को ही प्राप्त कर उन पर अपने प्रदेश में एक स्तूप बनाया था। फा-ह्यान ने कहा है कि उसने इस स्तूप को सिद्धार्थ के द्वारा छन्दक को लौटाये जाने के स्थान से चार योजन पूर्व में और कुशीनगर (कुशनगर) से बारह योजन पश्चिम में स्थित देखा था।[४] इस प्रकार इसे हम मोरियों के पिप्फलि नगर की स्थिति मान सकते हैं। परन्तु निश्चित स्थान का निर्धारण करना कठिन है। सन् १८९७-९८ में वर्तमान पिपरहवा गाँव मे, जो रुम्मनदेई (लुम्बिनी) से १२ मील दक्षिण-पश्चिम में, और तिलौराकोट (कपिल-वस्तु) से करीब १० मील दक्षिण-दक्षिण पूर्व में स्थित है, प्रसिद्ध अंग्रेज़ जमींदार पीपी साहब ने खुदाई का काम करवाया था और उसमें बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हुई थी, जिसमें एक ब्राह्मी लिपि में लिखा हुआ लेख, एक घड़ा और उसके ऊपर सोने की मछली का ढक्कन भी मिला था। इन्हीं आधारों पर फ्लीट ने इस स्थान को

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २३-२४; कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४९१-४९२।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २५।

३. आर्कॅलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, जिल्द अठारहवीं, टूर इन दि गोरखपुर डिस्ट्रिक्ट इन १८७५-७६ एण्ड १८७६-७७।

४. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४०।

कपिलवस्तु से मिलाया था,[1] परन्तु पीपी साहब और रायस डेविड्स् के मतानुसार यह पिपरहवा स्थान नवीन कपिलवस्तु को सूचित करता है जिसे विडूडभ के द्वारा प्राचीन कपिलवस्तु को विनष्ट कर दिये जाने के पश्चात् बचे हुए शाक्यों ने बसाया था। यह बात मोरियों के पूर्व वर्णित इतिहास को देखते हुए पिपरहवा को पिप्फलिवन मानने के विरोध में नहीं जाती, क्योंकि महावंस-टीका के अनुसार पिप्फलिवन के मोरिय भी शाक्य ही थे, जिन्होंने कपिलवस्तु के विनाश के बाद पिप्फलिवन को बसाया था। 'पिपरहवा' शब्द में 'पिप्फलिवन' का पूरी ध्वनि भी विद्यमान है। अतः हम पिपरहवा को भी बुद्धकालीन पिप्फलिवन नगर की स्थिति मान सकते हैं। परन्तु यह अन्तिम निर्णय नहीं है। अधिकतर हमारा ध्यान उपधौली की ओर ही अब भी जाता है।

मल्ल रट्ठ (मल्ल राष्ट्र) दो भागों में विभक्त था, जिनकी राजधानियाँ क्रमशः कुसिनारा और पावा में थीं। इन्हीं के आधार पर "मल्ला कोसिनारका" (कुसिनारा के मल्ल) और "मल्ला पावेय्यका" (पावा के मल्ल), ये दो भाग इस वीर जाति के प्रदेशों के अनुसार कहलाते थे। कुसिनारा और पावा के बीच की दूरी दीघ-निकाय की अट्ठकथा (सुमंगलविलासिनी) में तीन गावुत (करीब ६ मील) बताई गई है। "पावा नगरतो तीणि गावुतानि कुसिनारानगरं"। इससे प्रकट होता है कि ये दोनों राष्ट्र एक-दूसरे से अधिक दूरी पर नहीं थे। ककुत्था नदी इन दोनों प्रदेशों की विभाजक सीमा थी। भगवान् बुद्ध का महापरिनिर्वाण कुसिनारा के मल्लों के 'ग्राम-क्षेत्र' में ही हुआ था। इसीलिये उन्होंने कहा था, "भगवा अम्हाकं गामक्खेत्ते परिनिब्बुतो। न मयं दस्साम भगवतो सरीरानं भागं" अर्थात् "भगवान् हमारे ग्राम-क्षेत्र में परिनिर्वृत्त हुए हैं। हम उनकी धातुओं का भाग किसी को न देंगे।" परन्तु द्रोण ब्राह्मण की सलाह पर जब भगवान् की धातुओं का विभाजन हुआ तो अन्य संघों और गणों की तरह मल्ल राष्ट्र की इन दोनों शाखाओं ने भी अपना अलग-अलग भाग पाया। मल्ल लोग वाशिष्ठ गोत्र के क्षत्रिय थे, क्योंकि महापरिनिब्बाण-सुत्त में आनन्द कुसिनारा के मल्लों को इसी नाम से संबोधित करते दिखाये गये हैं। दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में मल्ल राष्ट्र की उपर्युक्त

---

१. जर्नल ऑव रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १९०६, पृष्ठ १८०।

दोनों शाखाओं का उल्लेख हमें मिलता है और इसी प्रकार कुस जातक में भी। जैन "कल्पसूत्र" में हमें "नव मल्लई", नव मल्लकि या नौ मल्ल राजाओं के संघ का उल्लेख मिलता है, परन्तु पालि तिपिटक में उनमें से केवल उपर्युक्त दो का ही उल्लेख है।

मल्ल राष्ट्र वज्जि गणतन्त्र और कोसल राज्य के बीच, हिमालय की तराई में, स्थित था। उसके पूर्व या दक्षिण-पूर्व में वज्जि गण-राज्य था जिससे उसकी सीमा सम्भवतः मही (गण्डक) नदी के द्वारा विभक्त थी। मल्ल गणतन्त्र के पश्चिमोत्तर में शाक्य जनपद था और पश्चिम में सम्भवतः अचिरवती (राप्ती) नदी के द्वारा उसकी सीमा कोसल राज्य से विभक्त थी।[1] मल्ल राष्ट्र के दक्षिण में मगध राज्य था। मल्ल राष्ट्र की पश्चिम दिशा में ही, कुछ नीचे हटकर, उसके और शाक्य जनपद के बीच, कोलिय राज्य था। मल्ल राष्ट्र और मगध के बीच मोरियों का छोटा सा राज्य स्थित था।

मल्ल राष्ट्र की सीमाओं के ऊपर निर्दिष्ट विवरण से स्पष्ट है कि मगध और कोसल राज्य तथा वज्जि गणतन्त्र उसके पड़ोसी थे। बुद्धकालीन गणतन्त्रों में सबसे अधिक शक्तिशाली वस्तुतः वज्जि और मल्ल ही थे। दीघ-निकाय के जन-

---

१. इस प्रकार मल्ल राष्ट्र कोसल देश के पूर्व में था। इसके विपरीत आचार्य धर्मानन्द कोसम्बी ने कहा है, "मल्लों का राज्य वज्जियों के पूर्व में और कोसल देश के पश्चिम में था।" (भगवान् बुद्ध, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ३९)। यह नितान्त भ्रामक है। वस्तुतः मल्ल राज्य वज्जियों के पश्चिम या उत्तर-पश्चिम में था और कोसल देश के पूर्व में। कपिलवस्तु से चलकर गौतम बोधिसत्व क्रमशः शाक्य, कोलिय और मल्ल गण-राज्यों में यात्रा करते हुए वज्जियों की वैशाली में आये थे। इससे यह निश्चित है कि वज्जि गण-राज्य से पश्चिम या उत्तर-पश्चिम दिशा में क्रमशः मल्ल, कोलिय और शाक्य गण-राज्य अवस्थित थे। स्वयं आचार्य कोसम्बी ने अपनी उपर्युक्त पुस्तक के पृष्ठ ३९ पर ही आगे चल कर लिखा है, "मगध देश से कोसल देश की ओर जाने का रास्ता मल्लों के राज्यों से होकर गुजरता था।" तो फिर मल्लों का राज्य कोसल देश के पश्चिम में किस प्रकार हो सकता था? वस्तुतः वह उसके पूर्व में ही था, अचिरवती और मही नदियों के बीच का प्रदेश।

वसभ-सुत्त में इन दोनों पड़ोसी गणतन्त्रों का साथ-साथ उल्लेख किया गया है। "वज्जिमल्लेसु।" इसी प्रकार मज्झिम-निकाय के चूल-सच्चक सुत्तन्त में भी इन दोनों गण राज्यों का उल्लेख साथ-साथ किया गया है। परन्तु मल्ल राष्ट्र के सम्बन्ध लिच्छवियों के साथ सम्भवत: अच्छे नहीं थे, यह धम्मपदट्ठकथा में वर्णित उस संघर्ष-मय ढंग से प्रकट होता है जिससे बन्धुल मल्ल अपनी पत्नी मल्लिका को वैशाली की अभिषेक-पुष्करिणी में स्नान करवाने ले गया था। मल्ल लोग कोसल राज्य की सेवा करना पसन्द करते थे, यह भी बन्धुल मल्ल के उदाहरण से स्पष्ट होता है, यद्यपि वे बड़े स्वाभिमानी और स्वतन्त्रताप्रिय थे, यह भी बन्धुल मल्ल और दीघ कारायण के उदाहरणों से तथा मल्लिका के अपने पति की हत्या के बाद के व्यवहार से स्पष्ट हो जाता है। मगधराज अजातशत्रु की दृष्टि भी मल्ल राष्ट्र पर रहती थी और बुद्ध-परिनिर्वाण के बाद अधिक दिन तक सम्भवत: यह गणराष्ट्र अपनी स्वतन्त्र सत्ता को कायम नहीं रख सका।

मल्ल गणतन्त्र की प्रथम शाखा की राजधानी, जैसा हम ऊपर कह चुके हैं, कुसिनारा थी। कुसिनारा भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में एक नगला मात्र था। आनन्द ने महापरिनिब्बाण-सुत्त में उसे एक क्षुद्र और जंगली नगला "कुड्डनगरकं, उज्जंगलनगरकं" मात्र कहा था। परन्तु भगवान् ने आनन्द को याद दिलाते हुए कहा था कि कुसिनारा प्राचीन काल में कुशावती नाम से एक प्रधान नगर था। "आनन्द ! यह कुसिनारा पूर्व काल में राजा महासुदर्शन की कुशावती नामक राजधानी थी, जो कि पूर्व-पश्चिम लम्बाई मे बारह योजन थी, उत्तर-दक्षिण विस्तार में सात योजन थी। आनन्द ! कुशावती राजधानी समृद्ध, स्फीत, बहुजनाकीर्ण और सुभिक्ष थी। जैसे कि आनन्द! देवताओं की राजधानी आलकमन्दा. . . . कुशावती राजधानी दिन-रात हस्ति-शब्द, अश्व-शब्द, खाइये-पीजिये, इन दस शब्दों से शून्य न होती थी"[1]। कुसिनारा में भगवान् ने परिनिर्वाण प्राप्त किया था, इसलिये इसकी गणना चार महान् बौद्ध तीर्थ-स्थानों में है। कुसिनारा के सम्बन्ध में ही यह

---

१. दीघनिकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १४३-१४४; मूल पालि के लिये देखिये दीघ-निकायो, दुतियो विभागो, पृष्ठ ११६-११७ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

कहा जाता है, "इध तथागतो अनुपादिसेसाय निब्बाणधातुया परिनिब्बुतो ति।" कुसिनारा को एक दर्शनीय और वैराग्यप्रद (संवेजनीय) स्थान बताया गया है। दिव्यावदान[1] के अनुसार जब मगधराज अशोक ने कुशीनगर की यात्रा की तो भगवान् की इस परिनिर्वाण-भूमि को देखकर वे भावावेश के कारण मूर्छित हो गये थे।

कुसिनारा में भगवान् पावा से ककुत्था नामक नदी को पार कर गये थे। यह उनकी अन्तिम यात्रा की बात है, जब भगवान् कुसिनारा में परिनिर्वाण-प्राप्ति के हेतु गये थे। इसके पूर्व भी भगवान् ने कई बार कुसिनारा की यात्रा की थी। एक बार वे आपण से कुसिनारा गये थे और वहाँ से आतुमा चले गये थे।[2] इसी यात्रा के समय कुसिनारा के मल्लों ने अपने संस्थागार में सभा कर निश्चय किया था, "जो भगवान् की अगवानी को नहीं जाय, उसको पाँच सौ दण्ड।"[3] रोज मल्ल, जो पहले बुद्ध-धर्म में प्रसन्न नहीं था, इसी समय भगवान् के दर्शन कर उनका उपासक बना था और विशेषत: शाक-भाजी से उसने भगवान् का सत्कार किया था।[4] जब आनन्द ने मल्लों को भगवान् के महापरिनिर्वाण की सूचना दी, उस समय मल्ल अपने संस्थागार में किसी सार्वजनिक कार्य से इकट्ठे हुए थे।[5] मल्लों के संस्थागार के पास ही बन्धुल मल्ल की भार्या के माँ-बाप का घर था।

चीनी यात्री फा-ह्यान ने कुसिनारा की यात्रा की थी और उसने इसे पिप्फलिवन के मोरियों के अंगार-स्तूप के पूर्व में बारह योजन की दूरी पर स्थित बताया है, और वैशाली से कुसिनारा की दूरी २५ योजन बताई है।[6] यूआन चुआङ ने दूरी का तो उल्लेख नहीं किया है, परन्तु केवल मोरियों के उपर्युक्त स्तूप से उत्तर-पूर्व दिशा में एक घने जंगल को पार करने के बाद, जिसमे जंगली हाथी, डाकू और

---

१. पृष्ठ ३९४।
२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २५२-२५३।
३. वहीं, पृष्ठ २५२।
४. वहीं, पृष्ठ २५२-२५३।
५. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १४७-१४८।
६. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४०-४१।

शिकारी पाये जाते थे, अथवा कुसि-नगर (कोउ-शिह्-न-क-लो) में पहुँचना दिखाया है।[१] सन् १८६१ की ऐतिहासिक खुदाई के परिणामस्वरूप कनिंघम ने वर्तमान कसया (जिला गोरखपुर) और विशेषतः उसके समीप अनुरुधवा गाँव के टीले को प्राचीन कुसिनारा बताया था,[२] जिसके सम्बन्ध में यद्यपि वाटर्स[३] और स्मिथ[४] ने सन्देह प्रकट किया था, परन्तु बाद की खोजों ने इस पहचान को प्रायः निश्चित प्रमाणित कर दिया है। सन् १८७६-७७ में परिनिर्वाण मंदिर स्तूप के पूर्णतः प्रकाश में आने से यह बात और भी सुप्रमाणित हो गई है। इसी समय परिनिर्वाण मन्दिर के अन्दर एक ऊँचे मंच पर भगवान् बुद्ध की २० फुट लम्बी परिनिर्वाण-मूर्ति यहाँ मिली। इस मंच की एक पटिया पर पाँचवी शताब्दी का यह लेख भी उपलब्ध हुआ " देयधर्मोऽयं महाविहारस्वामिनो हरिवलस्य। प्रतिमा चेयं घटिता दिन्नेन माथुरेण"। इससे स्पष्ट हुआ कि इस मूर्ति के स्वामी हरिवल और शिल्पी मथुरा के दिन्न थे। कुशीनगर की खुदाई में प्राप्त कई मुद्राओं पर इस प्रकार के लेख उत्कीर्ण मिले हैं जैसे कि, श्री महापरिनिर्वाणविहारे भिक्षुसंघस्य", "कुशनगर"[५] आदि। एक ताम्रपत्र की प्राप्ति भी कसया में हुई है, जिसके लेख का एक अंश है "परिनिर्वाण चैत्य ताम्रपट्ट।"[६] इन सब तथ्यों से इस स्थान का भगवान् बुद्ध की परिनिर्वाण-भूमि होना पूर्णतः निश्चित हो गया है। कसया गोरखपुर से ३२ मील पूर्व तथा देवरिया से २१ मील उत्तर में स्थित है।

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इंडिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २५।

२. आर्केलोजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, १८६१-६२, पृष्ठ ७७-८३; एन्शियण्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४९४।

३. औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४४।

४. अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया, पृष्ठ १६७, पद-संकेत ५ (चतुर्थ संस्करण)।

५. देखिये आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, वार्षिक रिपोर्ट, १९१०-११; पृष्ठ ६२।

६. आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इंडिया, वार्षिक रिपोर्ट, १९११-१२, पृष्ठ १७, १३४।

कुसिनारा के दक्षिण-पश्चिम दिशा में उसके समीप ही मल्लों का "उपवत्तन" नामक शाल-वन था, जो हरिण्यवती नदी के दूसरे किनारे पर स्थित था।[१] इस उपवत्तन शालवन में ही भगवान् ने अन्तिम निवास किया था और यहीं युगल शाल-वृक्षों के नीचे उनका महापरिनिर्वाण हुआ था। महापरिनिब्बाण-सुत्त की अट्ठकथा में कहा गया है कि उपवत्तन उद्यान से शाल-वृक्षों की पंक्ति पूर्व की ओर जाकर उत्तर की ओर मुड़ती थी। इस मोड़ (उपवत्तन) पर स्थित होने के कारण ही इस शालोद्यान का नाम 'उपवत्तन' पड़ा था। उपवत्तन शालवन को कनिंघम ने वर्तमान कसया के माथाकुँवर कोट से मिलाया था।[२] यह कोट वर्तमान परिनिर्वाण मंदिर से दक्षिण-पश्चिम दिशा में ४०० गज की दूरी पर स्थित है। अन्तिम बार कुसिनारा में आने से पूर्व भी भगवान् यहाँ आये थे। अंगुत्तर-निकाय[३] के एक कुसिनारा-सुत्त का उपदेश भगवान् ने मल्लों के उपवत्तन शालवन में ही दिया था। माथाकुँवर कोट के दक्षिण-पश्चिम दिशा में २५०० फुट की दूरी पर अनुरुधवा गाँव के पास एक टील्हा और चारों ओर भग्नावशेष फैले हुए हैं। इस स्थान को मल्लों की प्राचीन राजधानी माना जा सकता है।

भगवान् के महापरिनिर्वाण के बाद उनके शरीर को उपवत्तन शाल-वन से कुसिनारा नगर में उसके उत्तर वाले दरवाजे से ले जाया गया था और फिर मध्य में होते हुए उसके पूर्व दिशा वाले द्वार से निकल कर नगर के पूर्व ओर स्थित "मुकुट बन्धन" नामक मल्लों के चैत्य में भगवान् के शरीर का दाह-संस्कार किया गया था।[४] यह चैत्य "मुकुट बन्धन" इसलिये कहलाता था कि यहाँ मल्ल राजाओं का

---

१. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २२२।

२. आर्केलोजिकल सर्वे ऑव इंडिया, १८६१-६२, पृष्ठ ७७-८३; मिलाइये एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ४९४-४९६।

३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ २३८।

४. महापरिनिब्बाण-सुत्त में कहा गया है कि मल्लों का पहला इरादा यह था कि भगवान् के शरीर को नगर के दक्षिण-दक्षिण ले जाकर, बाहर से बाहर नगर के दक्षिण में उसका दाह-संस्कार करें। परन्तु देवताओं का मन्तव्य यह था कि "मयं भगवतो सरीरं....उत्तरेन उत्तरं नगरस्स हरित्वा, उत्तरेन द्वारेन नगरं पवेसेत्वा

अभिषेक किया जाता था और उनके सिर पर मुकुट बाँधा जाता था।[1] मल्लों ने इस अवसर पर सात दिन तक उत्सव मनाया था। मुकुटबन्धन चैत्य को वर्तमान रामाभार तालाब के पश्चिमी तट पर स्थित एक विशाल-स्तूप के खण्डहर से मिलाया गया है, जो माथाकुँवर के कोट से लगभग एक मील की दूरी पर स्थित है।[2]

बलिहरण वनसण्ड नामक वन या वनखण्ड कुसिनारा के समीप ही स्थित था। भगवान् यहाँ कई बार गये थे और निवास किया था। मज्झिम-निकाय के किन्ति-सुत्तन्त तथा अंगुत्तर-निकाय के दो कुसिनारा-सुत्तों का उपदेश कुसिनारा के बलिहरण-वनखण्ड में ही दिया गया था।

मल्लों की दूसरी शाखा की राजधानी पावा थी। भगवान् बुद्ध अपनी अन्तिम यात्रा में भोगनगर से चलकर पावा आये थे और पावा से चलकर कुसिनारा पहुँचे थे। इस प्रकार पावा भोगनगर और कुसिनारा के बीच में स्थित था। जैसा हम पहले देख चुके हैं, पावा से कुसिनारा की दूरी तीन गावुत या करीब ६ मील थी। पावा और कुसिनारा के बीच मे ही भगवान् को पुक्कुस मल्लपुत्र नामक व्यापारी मिला था। इसी मार्ग के बीच मे ककुत्था नदी पड़ती थी, जिसे भगवान् ने पार किया था। पावा के समीप ही चुन्द कर्मारपुत्र का आम्रवन था जहाँ भगवान् ठहरे थे। चुन्द पावा का ही निवासी था और उसके यहाँ भगवान् ने अन्तिम भोजन किया था। संगीति-परियाय-सुत्त (दीघ० ३।१०) के अनुसार जब भगवान् पावा नगर में चुन्द कर्मारपुत्र के आम्रवन में विहार कर रहे थे तो मल्लों ने एक नया संस्थागार हाल ही में बनवाया था जिसमें प्रथम निवास करने की उन्होंने भगवान् से प्रार्थना की थी। भगवान् वहाँ पाँच सौ भिक्षुओ के सहित गये थे और धर्मोपदेश किया था। एक पूर्व अवसर पर भी भगवान् पावा में गये थे और

मज्झेन मज्झं नगरस्स हरित्वा, पुरत्थिमेन द्वारेन निक्खमित्वा पुरत्थिमतो नगरस्स मकुटबन्धनं नाम मल्लानं चेतियं, एत्थ भगवतो सरीरं झापेस्सामा ति।" देवताओं के अभिप्राय के अनुसार ही कार्य किया गया।

१. दिव्यावदान (पृष्ठ २०१) में मल्लों के एक 'मुकुटबन्धन' ("मकुट-बन्धनं") नामक चैत्य का उल्लेख वैशाली के प्रसंग में भी किया गया है।

२. आर्केलीजिकल सर्वे ऑव इण्डिया, १८६१-६२, पृष्ठ ७७-८३।

वहाँ के अजकलापक या अजकपालिय नामक चेतिय मे ठहरे थे। "उदान"[१] में इसका उल्लेख है। इस चैत्य में अजकलाप नामक यक्ष को बकरों की बलि दी जाती थी। इस यक्ष ने बुद्ध को डराने का प्रयत्न किया था। परन्तु भगवान् ने उसे विनीत किया स्थविर खण्ड सुमन की जन्म-भूमि पावा नगरी ही थी।

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल मे पावा निगण्ठो का भी एक महत्वपूर्ण केन्द्र-स्थान था। दीघ-निकाय के पासादिक-सुत्त तथा मज्झिम-निकाय के सामगाम-सुत्तन्त से हमे मालूम होता है कि जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर (निगण्ठ नाटपुत्त) का निर्वाण यही हुआ था। जैसा हम ऊपर देख चुके है, पावा की निश्चित स्थिति पालि विवरण के अनुसार भोगनगर और कुसिनारा के बीच में थी। कनिंघम ने उसे गोरखपुर के पडरौना नामक गाँव से मिलाया था।[२] यह स्थान कसया से गण्डक की ओर १२ मील की दूरी पर है। यहाँ २२० फुट लम्बा, १२० फुट चौड़ा और १४ फुट ऊँचा एक टीला कनिंघम को मिला था और कुछ बुद्ध-मूर्तियाँ भी। कनिंघम की इस पहचान को प्रामाणिक न मान सकने का केवल यह एक कारण हो सकता है कि पडरौना कसया (कुशीनगर) से बारह मील उत्तर-पूर्व में है। अतः इसे यदि हम प्रामाणिक माने तो हमें यह मानना पड़ेगा कि वैशाली से आगे बढ़ते हुए भगवान् बुद्ध पहले उस स्थान पर गये जहाँ आज पडरौना है और फिर इस स्थान से १२ मील दक्षिण-पश्चिम लौटकर कुसिनारा आये जिसकी स्थिति आज कसया के रूप में प्रायः निश्चित हो चुकी है। इसी एक आपत्ति को ध्यान में रखते हुए कार्लायल ने आगे खोज की और कसया से प्रायः दस मील दक्षिण-पूर्व में स्थित फाजिलनगर (फाजिलपुर) के टीलों से, विशेषतः सठियाँव डीह से पावा

---

१. पृष्ठ ८ (हिन्दी अनुवाद); मूल पालि के पाठ के अनुसार अजकलापक या अजकपालिय चेत्य पाटलिग्राम में था, परन्तु अट्ठकथा में "पावाय" पाठ है, जिसके आधार पर मललसेकर ने इस चेतिय को पावा में ही माना है।

२. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४९८; आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, वार्षिक रिपोर्ट, १८६१-६२, पृष्ठ ७४-७६।।

को मिलाया।[1] डा० राजबली पाण्डेय[2] और त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित जी[3] ने इस पहचान को स्वीकार किया है। परन्तु हमें यह नही जंचती। इसका कारण यह है कि केवल एक मात्र दिशा को ध्यान में रखते हुए यह पहचान की गई है। अतः इसमें यह मान लिया गया है कि भगवान् बुद्ध दो स्थानों के बीच में सीधी दिशा से ही चलते थे, आगे जाकर पीछे नहीं मुड़ सकते थे, या चक्करदार मार्ग नहीं ले सकते थे। हम समझते हैं ऐसा कोई बन्धन भगवान् बुद्ध के लिये नहीं था और न उनके मार्गों की दिशाओं का ही कहीं उल्लेख है। वस्तुतः भगवान् बुद्ध एक मुक्त पुरुष की भाँति विहार करते थे, ब्रह्म विहार करते थे, यात्रा नहीं करते थे। इसलिये यदि अन्य प्रमाणों के आधार पर किसी स्थान की स्थिति निश्चित होती दिखाई पड़े तो केवल दिशा का ध्यान कर हमें उसे निषिद्ध नहीं कर देना चाहिये। बावरि के शिष्यों ने गोदावरी के तट से राजगृह तक पहुँचने के लिये कितना टेढ़ा-मेढ़ा मार्ग लिया था और कितना चक्कर लगाकर वे वहाँ पहुंचे थे, यह सर्वविदित ही है। वेरंजा के जिस मार्ग से भगवान् लौटकर श्रावस्ती पहुँचे, वह भी कितना टेढ़ा-मेढ़ा था। अतः पडरौना (पावा) से वे कसया (कुशीनगर) आ सकते थे और इस आधार पर हमें इस स्थान की पहचान के सम्बन्ध में आपत्ति नहीं करनी चाहिये। एक मूल आपत्ति जो हो सकती है वह यह है कि सुमंगलविलासिनी मे, जैसा हम पहले देख चुके हैं, पावा से कुसिनारा की दूरी तीन गावुत बताई गई है। "पावानगरतो तीणि गावुतानि कुसिनारानगरं"। तीन गावुत (पौन योजन) आजकल की गणना में करीब ६ मील ही हो सकते हैं। चूँकि पडरौना कसया से करीब १२ मील की दूरी पर है, अतः यह एक वास्तविक कठिनाई पडरौना को पावा मानने में हमारे मतानुसार है। यह कठिनाई फाजिलनगर या सठियाँव डीह को भी पावा मानने में उतनी ही है, क्योंकि यह स्थान भी कसया से करीब दस मील दूर है।

---

१. देखिये आर्कोलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, वार्षिक रिपोर्ट, सन् १८७५-७६ ई०।

२. गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, पृष्ठ ७८।

३. कुशीनगर का इतिहास, पृष्ठ २५।

इस कठिनाई का जैसे बड़ी आसानी से समाधान करते हुए और यह दिखाते हुए कि "कुशीनगर से इसकी दूरी और दिशा दोनों ठीक हैं", डा० राजबली पाण्डेय ने लिखा है, "लङ्का के बौद्ध ग्रन्थ दीपवंश और महावंश के अनुसार कुशीनगर से १२ मील दूर गण्डकी नदी की ओर पावा नगरी स्थित थी"[१]। पता नहीं, दीपवंस और महावंस मे कहाँ पर यह बात लिखी है ? डा० राजबली पाण्डेय ने दीपवंस और महावंस के परिच्छेदों या पृष्ठों का कोई उल्लेख नहीं किया है, जहाँ से उन्होंने यह सूचना ली है। अतः उनके कथन को समझना कठिन है। जैसा हम पहले देख चुके हैं, कुशीनगर से पावा की दूरी पालि परम्परा में तीन गावुत (करीब ६ मील) ही मानी गई है। तब फिर दीपवंस और महावंस में १२ मील का उल्लेख कहाँ है ? गण्डकी नदी भी लेखक की अपनी व्याख्या है। ककुत्था नदी से अतिरिक्त इस नदी (गण्डकी) को लेखक ने पावा और कुशीनगर के बीच स्थित बताया है और वह भी दीपवंस और महावंस के साक्ष्य पर ! "दीपवंश और महावंश में यह भी लिखा हुआ है कि पावा और कुशीनगर के बीच गण्डकी के अतिरिक्त एक और छोटी नदी ककुत्था थी जिसके किनारे भगवान् बुद्ध ठहरे और जलपान किये थे[२]।" ककुत्था नदी की बात तो ठीक है, परन्तु 'गण्डकी' नदी के नाम का उल्लेख तो दीपवंस या महावंस में कहीं नहीं है। डा० राजबली पाण्डेय ने अपनी कल्पना या व्याख्या का आरोप दीपवंस और महावंस पर किया है, जो वैज्ञानिक मार्ग नहीं कहा जा सकता। अतः पावा को फाजिल नगर से मिलाने के लिये जो तर्क डा० राजबली पाण्डेय ने दिये हैं, वे हमें ग्राह्य नहीं जान पड़ते।

पालि विवरण के आधार पर हम कह चुके हैं कि जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर (निगण्ठ नाटपुत्त) की मृत्यु पावा में ही हुई थी। जैन लोग गलत या सही रूप से भगवान् महावीर की निर्वाण-भूमि को वर्तमान पावा पुरी मानते हैं जो बिहार शरीफ से करीब ७ मील दक्षिण-पूर्व दिशा में स्थित है। पालि का पावा यह स्थान कदापि नहीं हो सकता, क्योंकि एक तो कुशीनगर से इसकी दूरी में कोई संगति नहीं है और फिर राजगृह के इतने समीप स्वतन्त्र मल्लों की राजधानी पावा

---

१. गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, पृष्ठ ७८।
२. गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, पृष्ठ ७८।

किस प्रकार हो सकती है? इसी प्रकार कुशीनगर से १२ मील दूर रामकोला स्टेशन (पूर्वोत्तर रेलवे) के समीप पपउर गाँव को भी बुद्धकालीन पावा मानने का कोई प्रश्न नहीं उठता। पालि विवरणों में हम देख चुके हैं कि चुन्द पावा का निवासी था और वहीं अपने आम्रवन में उसने बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को भोजन दान किया था। परन्तु यूआन् चुआङ ने चुन्द के घर को कुशीनगर में देखा था।[1] इसी आधार पर कुछ विद्वानों की प्रवृत्ति, जिनमें डा० लाहा भी सम्मिलित हैं, पावा और कुशीनगर को एक ही नगर मानने की हुई है।[2] परन्तु पालि विवरण में हम स्पष्टतापूर्वक देख चुके हैं कि कुसिनारा पावा से तीन गावुत दूर था और पावा से चलकर भगवान् कुसिनारा पहुँचे थे, अतः पावा और कुशीनगर को एक स्थान कभी नहीं माना जा सकता। वर्तमान अवस्था में हम कनिंघम का अनुसरण कर पडरौना को ही बुद्धकालीन पावा मानना अधिक ठीक समझते हैं, इस सजग अनुभूति के साथ कि इस स्थान की वर्तमान दूरी पालि विवरणों से नहीं मिलती। इस क्षेत्र की अधिक खुदाई होने पर (जो अभी होने जा रही है) हमें कसया से ६ मील (३ गावुत) या उसके आसपास पावा के भग्नावशेषों को खोजने के लिये सन्नद्ध रहना चाहिये।

अब हम मल्ल राष्ट्र के कुछ अन्य निगमों और ग्रामों का परिचय देंगे, जिनके सम्बन्ध में यह निश्चय पूर्वक नहीं कहा जा सकता कि वे "कोसिनारका" मल्लों के राज्य में स्थित थे या "पावेय्यका" मल्लों के। हम केवल साधारणतः मल्ल राष्ट्र में उन्हें मानकर यहाँ उनका उल्लेख करेंगे।

उरुवेलकप्प मल्ल राष्ट्र का एक कस्बा था। भगवान् कई बार यहाँ गये थे। संयुत्त-निकाय के भद्द-सुत्त[3] और मल्लिक-सुत्त[4] का उपदेश इस कस्बे में ही दिया

---

१. बील : बुद्धिस्ट रिकार्डस् ऑव दि वेस्टर्न वर्ल्ड, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३१-३२।

२. देखिये डॉ० लाहा की हिस्टोरिकल ज्योग्रेफी ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ११६; मिलाइये वही, पृष्ठ ९७।

३. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५८७-५८८।

४. वही, पृष्ठ ७२७।

गया था। अंगुत्तर-निकाय में भी आनन्द को साथ लेकर भगवान् के यहाँ जाने का उल्लेख है। आनन्द को यहाँ ठहरने का आदेश देकर भगवान् स्वयं दिन के ध्यान के लिये समीपस्थ महावन में चले गये थे। इसी समय तपस्सु नामक एक गृहस्थ आनन्द से आकर मिला था। आनन्द उसे लेकर भगवान् के पास गये। भगवान् ने उसे दुःख की उत्पत्ति और निरोध का उपदेश दिया, जिससे उसके चित्त को शान्ति मिली।[१]

भोगनगर (भोगगामनगर भी पाठ) मल्ल राष्ट्र का एक प्रसिद्ध नगर था, जो वैशाली और पावा के बीच में स्थित था। वैशाली से चलकर भगवान् क्रमशः भण्डगाम, हत्थिगाम, अम्बगाम और जम्बुगाम होते हुए भोगनगर पहुँचे थे और फिर वहाँ से चलकर पावा पहुँचे थे। इस प्रकार भोगनगर की ठीक स्थिति जम्बुगाम और पावा के बीच में थी। वैशाली और पावा के बीच में पड़ने वाले उपर्युक्त पाँच गाँवों (भण्डगाम, हत्थिगाम, अम्बगाम, जम्बुगाम और भोगनगर) में से केवल प्रथम दो (भण्डगाम और हत्थिगाम) के विषय में तो हमें पालि विवरण में यह सूचना मिलती है कि वे निश्चयतः वज्जि जनपद में थे। शेष तीन के सम्बन्ध में कोई सूचना हमें पालि साहित्य में नहीं मिलती कि वे किस जनपद में सम्मिलित थे। भोगनगर को लाहा ने "इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्सट्स् ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज्म"[२] में निश्चयतः मल्लों का एक नगर माना है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने भोगनगर को वज्जि जनपद में लिख कर उसके सामने एक प्रश्नवाचक चिह्न लगा दिया है।[३] डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने भोगनगर को वज्जि-संघ का ही एक अंग माना है।[४] सबसे अधिक चौकाने वाली बात यह है कि

---

१. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ ४३८-४४८।

२. पृष्ठ ५३-५४; मिलाइये ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ १४।

३. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३२५। बाद में उन्होंने अपने मत में निश्चित परिवर्तन कर दिया जान पड़ता है, क्योंकि 'साहित्य-निबन्धावली', पृष्ठ १८६, में उन्होंने भोगनगर को वज्जि राष्ट्र की सीमाओं के बाहर ही माना है।

४. देखिये आगे सोलह महाजनपदों के प्रसंग में वज्जि जनपद का विवरण।

डा० मललसेकर ने भी भोगनगर को वज्जि जनपद का ही एक कस्बा माना है।[1] इस प्रकार भोगनगर को वज्जि या मल्ल राष्ट्र में से किसमें माना जाय इसके सम्बन्ध में विप्रतिपत्ति है। हम भोगनगर को पाव के अधिक समीप होने के कारण मल्ल राष्ट्र में ही मानना अधिक ठीक समझते हैं। तिब्बती परम्परा की प्रवृत्ति भी इस ओर ही अधिक है।

भोगनगर में "आनन्द चैत्य" नामक एक चैत्य था, जहाँ भगवान् अपनी अन्तिम यात्रा में ठहरे थे। यहीं भिक्षुओं को उन्होंने चार महाप्रदेशों (महापदेसा) का उपदेश दिया था। बावरि ब्राह्मण के सोलह शिष्य दक्षिणापथ के प्रतिष्ठान नगर से चलकर श्रावस्ती आये थे और फिर वहाँ से राजगृह गये थे। श्रावस्ती से राजगृह तक की इस यात्रा में उन्हें जो प्रसिद्ध नगर पड़े थे, उनमें एक भोगनगर भी था। श्रावस्ती से प्रारम्भ कर वे स्थान इस प्रकार है, श्रावस्ती, सेतव्या, कपिलवस्तु, कुसिनारा, पावा, भोगनगर, वैशाली और राजगृह। इस प्रकार भोगनगर उस महापथ का, जो उत्तर में श्रावस्ती से लेकर दक्षिण-पूर्व में राजगृह तक जाता था, एक महत्वपूर्ण पड़ाव स्थान था। भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य ने प्रस्ताव किया है कि बिहार राज्य की तमकुही रियासत से ६ मील पश्चिम में वर्तमान बदरांव गांव को बुद्धकालीन भोगनगर माना जा सकता है, क्योंकि इसकी स्थिति पालि विवरण के अनुकूल है और इसके समीप एक प्राचीन स्तूप के भग्नावशेष भी मिले है तथा अन्य खण्डहर भी इसके चारों ओर स्थित है, जिनकी खुदाई होना अत्यन्त आवश्यक है।[2]

अनूपिया मल्लों का एक प्रसिद्ध निगम था। महावस्तु (जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८९) में इसे अनोमिय कह कर पुकारा गया है और इसे मल्ल राष्ट्र में ही स्थित माना गया है। शाक्यकुमार ने महाभिनिष्क्रमण के बाद अनोमा नदी को पार कर अनूपिया के आम्रवन में सात दिन तक ध्यान किया था। पालि परम्परा के अनुसार यह कस्बा कपिलवस्तु से तीस योजन दूर था और इतनी ही दूरी इसकी राजगृह से थी। इस प्रकार कपिलवस्तु और राजगृह के बीच में यह

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३९३।

२. कुशीनगर का इतिहास, पृष्ठ १८।

स्थित था[1]। अनूपिया कपिलवस्तु के पूर्व में स्थित था, क्योंकि शाक्य कुमार ने घर से चलकर शाक्य कोलिय और मल्ल, इन तीन प्रदेशों को क्रमशः पार किया था। बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद अन्य कई बार भी भगवान् अनूपिया में आये थे। प्रथम बार जब भगवान् कपिलवस्तु गये तो वहाँ से लौटते हुए अनूपिया होते हुए ही राजगृह आये थे। इसी समय अनूपिया के आम्रवन में भद्दिय, अनुरुद्ध, आनन्द, भृगु, किम्बिल, देवदत्त और उपालि की प्रव्रज्या हुई थी। मल्लपुत्र दब्ब की प्रव्रज्या भी अनूपिया में ही हुई थी, जो उनकी ननमाल थी। दीघ-निकाय के पाथिक-सुत्त में भी हम भगवान् को अनूपिया कस्बे में विहार करते देखते हैं। यहीं भार्गव गोत्र परिव्राजक का आश्रम (आराम) था, जहाँ भगवान् एक बार गये थे। सुखविहारी-जातक का उपदेश अनूपिया के आम्रवन में ही दिया गया था। भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य ने यह मत प्रकट किया है कि मझन नदी के खंडहरो को, जिन्हें आजकल "घोड़टप" कहा जाता है, हम अनूपिया की प्राचीन स्थिति मान सकते हैं,[2] परन्तु यह पहचान उपर्युक्त पालि विवरणों से पूरी तरह मेल नहीं खाती, अतः उसे निश्चित नहीं कहा जा सकता। बौद्ध संस्कृत साहित्य की परम्परा अनूपिया की स्थिति के सम्बन्ध में पालि विवरणों से मेल नहीं खाती। उदाहरणतः महावस्तु (जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८९) में उसे कपिल-वस्तु से १२ योजन दूर बताया गया है और ललितविस्तर (पृष्ठ २२५) में मल्लों के प्रदेश को पार कर मैनेय लोगों के प्रदेश में इस कस्बे को, जिसे यहाँ अनुवैनेय कहकर पुकारा गया है) कपिलवस्तु से छह योजन दूर बताया है। जब तक दूरी की इन विभिन्नताओं का समाधान न कर लिया जाय केवल पालि परम्परा के आधार पर कोई एकाङ्गी निर्णय नहीं दिया जा सकता।

मज्झिम देस की पश्चिमी सीमा पर स्थित थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम का, जिसे आधुनिक थानेश्वर से मिलाया गया है, परिचय हम विनय-पिटक के महावग्ग के आधार पर द्वितीय परिच्छेद में दे चुके हैं। इसी नाम का एक अन्य थूण नामक

---

१. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ११३ (हिन्दी अनुवाद)।

२. कुशीनगर का इतिहास, पृष्ठ ५९।

ब्राह्मण-ग्राम मल्ल राष्ट्र में भी था। उदान[1] से हमें पता चलता है कि भगवान् बुद्ध एक बार कुछ भिक्षुओं को साथ लेकर इस गाँव में गये थे और यहाँ के ब्राह्मणों ने उनके साथ अच्छा व्यवहार नहीं किया था। जातक[2] से भी हमें मल्ल राष्ट्र में स्थित सम्भवतः इसी थूण ब्राह्मण-ग्राम का परिचय मिलता है, जिसे वहाँ मिथिला और हिमवन्त के बीच में स्थित बताया गया है। इससे प्रकट होता है कि यह थूण ब्राह्मण-ग्राम मल्ल राष्ट्र की पूर्वी सीमा पर स्थित था।

बुलि गणतंत्र के सम्बन्ध में हमारी जानकारी अधिक नहीं है। उनका प्रदेश अल्लकप्प था, जिसके नाम पर ही वे "अल्लकप्पका बुली" अर्थात् "अल्लकप्प के बुलि" कहलाते थे। महापरिनिब्बाण-सुत्त से हमें पता चलता है कि बुलियों ने भी भगवान् की धातुओं के एक अंश को प्राप्त कर अल्लकप्प में उसके ऊपर एक स्तूप की रचना की थी। 'बुद्धवस' में भी इसके सम्बन्ध में उल्लेख है। "एको च अल्लकप्पके।"[3] पालि के अल्लकप्प को सम्भवतः जैन प्राकृत साहित्य के 'आमलकप्पा' से मिलाया जा सकता है। धम्मपदट्ठकथा[4] से हमें पता चलता है कि अल्लकप्प का विस्तार केवल दस योजन था। अतः यह राज्य बहुत छोटा था। अल्लकप्प की आधुनिक स्थिति के सम्बन्ध में कुछ ठीक नहीं कहा जा सकता। एक विद्वान् ने बुलियों के प्रदेश को आधुनिक बलिया से मिलाने का प्रयास किया है,[5] परन्तु विस्तार को ध्यान में रखते हुए इसे सत्य के निकट नहीं कहा जा सकता। धम्मपदट्ठकथा में अल्लकप्प के राजा की वेठदीप के राजा वेठदीपक के साथ मित्रता का वर्णन है। इससे हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि अल्लकप्प सम्भवतः वेठदीप के समीप था। परन्तु यह वेठदीप कहाँ था, इसका भी कुछ ठीक पता नहीं लगाया जा सकता। महापरिनिब्बाण-सुत्त से हम जानते हैं कि जिस द्रोण

---

१. पृष्ठ १०६-१०७ (हिन्दी अनुवाद)।

२. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ६२।

३. बुद्धवंस, पृष्ठ ७४ (महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

४. जिल्द पहली, पृष्ठ १६१।

५. देखिये धर्मदूत, अप्रैल १९५५, पृष्ठ २७८-२८०।

नामक ब्राह्मण ने भगवान् की धातुओं के आठ भाग किये थे, वह वेठदीप का था। इस द्रोण ब्राह्मण ने जिस कुम्भ में भगवान् के फूल रक्खे थे, उसको सबकी अनुमति से उसने स्वयं ले लिया था और उस पर उसने वेठदीप में एक स्तूप बनवाया था। बुद्धवंस में भी इस बात का उल्लेख है। "कुम्भस्म थूपं कारेसि ब्राह्मणो दोणसाव्हयो।"[1] कुम्भ-स्तूप (कुम्भथूपो) को कुम्भ-चैत्य (कुम्भ चेतियो) भी कहकर पुकारा गया है। युआन् चुआङ ने इस "कुम्भ-स्तूप" की स्थिति को "मो-ह-शो-लो" या महासार (वर्तमान मसार, आरा से ६ मील पश्चिम) से १०० 'ली' दक्षिण-पूर्व में बताया है।[2] अत इसे सम्भवत आरा के समीप कहीं होना चाहिए। एक अन्य विद्वान् ने आधुनिक बिहार राज्य में चम्पारन के समीप वेतिया (बेत्तिया) को वेठदीप माना है।[3] रॉकहिल द्वारा उल्लिखित तिब्बती परम्परा के अनुसार द्रोण ब्राह्मण द्रोणसम नगर का निवासी था और वहीं उसने कुम्भ-स्तूप की स्थापना की थी।[4] इसका आधार लेकर उसे कुशीनगर से मिलाने का प्रयत्न किया गया है। सुरेन्द्रनाथ मजूमदार ने सम्भवत इसी प्रकार वेठदीप को कुशीनगर से सम्बन्धित किया है।[5] बुद्ध-शिष्य स्थविर अभिभूत, जिनके उद्गार थेरगाथा में निहित हैं, वेठदीप के निवासी थे।[6]

लिच्छवि, जिन्हें महावस्तु[7] में 'लेच्छवि' और जैन प्राकृत साहित्य में 'लेच्छई'

---

१. बुद्धवंस, पृष्ठ ७४ (देवनागरी संस्करण)।

२. वाटर्स : औन् युआन चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इंडिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६०-६१।

३. देखिये हेमचन्द्र रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १९३, पद-संकेत ३ ; मिलाइये दे : ज्योग्रेफिकल डिक्शनरी, पृष्ठ ३०।

४. दि लाइफ ऑव दि बुद्ध, पृष्ठ १४६।

५. देखिये कनिंघम-कृत "एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया" में सुरेन्द्रनाथ मजूमदार शास्त्री-लिखित "नोट्स्", पृष्ठ ७१४।

६. देखिये थेरगाथा, पृष्ठ ८९ (हिन्दी अनुवाद)।

७. जिल्द पहली, पृष्ठ २५४।

कहकर पुकारा गया है, एक शक्तिशाली गणतन्त्र के रूप में बुद्ध-काल में संगठित थे। लिच्छवि गणतन्त्र, जिसकी राजधानी वैशाली थी, वस्तुतः वज्जि संघ का ही एक अंग था और कुछ हालतों में उससे एकाकार भी था। लिच्छवियों की उत्पत्ति के सम्बन्ध में पालि परम्परा के आधार पर यहाँ कुछ कह देना आवश्यक होगा। आचार्य बुद्धघोष ने खुद्दक-पाठ की अट्ठकथा में एक अनुश्रुति का उल्लेख किया है जिसके अनुसार प्राचीन काल में वाराणसी के राजा की प्रधान महिषी की कोख से एक बार दो मांस के लोथड़े, जो एक दूसरे से जुड़े हुए थे और लाख के या बन्धूक पुष्प के समान लाल रंग के थे, उत्पन्न हुए। राजा के भय से रानियों ने उन दोनों जुड़वाँ मांस के लोथड़ों को गंगा में प्रवाहित करवा दिया। एक तपस्वी की दृष्टि उन पर पड़ी और उसने उन्हें उठा लिया। धीरे-धीरे उनमें जान आने लगी उनमें से एक ने लड़के और दूसरे ने लड़की का रूप प्राप्त किया। इन दोनों बच्चों का शरीर स्वच्छ पारदर्शी मणि के समान था। जो कुछ उनके पेट में जाता था, बाहर से स्पष्ट दिखाई पड़ता था। उनके खाल तो थी ही नहीं, इसलिये वे "निच्छवि" (छवि-चमड़ी-रहित) कहलाने लगे। चूँकि वे दोनों बच्चे एक दूसरे से छवि या चमड़ी के द्वारा जुड़े हुए थे (लीना छवि) इसलिये भी उन्हें "लिच्छवि" कहकर पुकारा जाने लगा। तपस्वी ने इन दोनों बच्चों को लालन-पालन के लिये पड़ोस के गड़रियों को सौंप दिया। परन्तु ये दोनों बच्चे गड़रियों के लड़कों को तंग करते थे। तब इन्हें उनसे वर्जित (वज्जितब्बा) कर दिया गया। इसलिये वे "वज्जि" कहलाये। तपस्वी को इन बच्चों के कुल का पता था। उसने राजा से कहकर उनके लिये ३०० योजन भूमि प्राप्त कर ली और दोनों का एक दूसरे से विवाह कर दिया। तब से उनके द्वारा बसाया गया प्रदेश "वज्जि" कहलाने लगा। एक नगरी की भी राज-धानी के रूप में स्थापना की गई, परन्तु उपर्युक्त दोनों तरुण-तरुणियों का परिवार तेजी से बढ़ने लगा और जनसंख्या की निरन्तर वृद्धि के कारण नगरी को तीन बार विशाल किया गया (विसालिकता)। तभी से इसका नाम वैशाली पड़ गया। यही लिच्छवि जाति और उनकी नगरी वैशाली का पालि परम्परा के अनुसार संक्षिप्त इतिहास है। लिच्छवि गणतन्त्र तथा उसके प्रदेश का भौगोलिक विवरण हम आगे वज्जि जनपद का विवेचन करते समय देंगे।

विदेह बुद्ध-पूर्व काल में एक राजतन्त्र था, परन्तु भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में हम उसे एक गणतंत्र के रूप में देखते हैं। विदेह राज्य उत्तर में हिमालय, दक्षिण में गङ्गा, पश्चिम में मही (गण्डक) नदी और पूर्व में कोसी नदी से घिरा हुआ था। वस्तुतः विदेह गणतन्त्र भी विशाल वज्जि संघ का ही एक अंग था। इसलिये उसके प्रदेश की ठीक विभाजक रेखायें नहीं खींची जा सकतीं। मज्झिम-निकाय के चूल-गोपालक सुत्तन्त से इतना निश्चित जान पड़ता है कि मगध देश से गंगा पार विदेह राष्ट्र था। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त में बुद्ध-पूर्व काल के राजा रेणु के प्रधान मंत्री ब्राह्मण महागोविन्द ने भारतवर्ष को जिन सात खण्डों में बाँटा था और उनकी अलग-अलग राजधानियाँ स्थापित की थीं, उनमें एक विदेह राज्य भी था, जिसकी राजधानी मिथिला थी। हम पहले द्वितीय परिच्छेद मे देख चुके है कि चक्रवर्ती राजा मान्धाता (मन्धाता) के साथ पूर्व विदेह (पुब्ब-विदेहो) महाद्वीप से कुछ निवासी आये थे और जम्बुद्वीप में ही बस गये थे। जिस प्रदेश में वे बसे उसका नाम उन्हीं के नाम पर "विदेह" जनपद पड़ गया। विदेह राष्ट्र का विस्तार सुरुचि जातक के अनुसार ३०० योजन था और उसकी राजधानी मिथिला सात योजन विस्तृत थी। एक अन्य जातक-कथा के अनुसार विदेह राज्य में सोलह हजार गाँव थे।[1] महाजनक जातक में चम्पा और मिथिला के बीच की दूरी ६० योजन बताई गई है और इसके वर्णन से विदित होता है कि इन दोनों नगरों के बीच व्यापारिक सम्बन्ध थे। बुद्ध-काल में विदेह समृद्ध राष्ट्र था और गन्धार जातक के अनुसार गन्धार देश के तक्षशिला नगर तक उसके व्यापारिक सम्बन्ध थे तथा उसके राजकुमार वहाँ शिक्षा प्राप्त करने जाते थे। मिथिला से कम्पिल्ल और इन्दपत्त तक व्यापारियों के जाने के उल्लेख हैं।[2] श्रावस्ती के व्यापारी भी अपना माल बेचने के लिये विदेह तक पहुँचते थे। विदेह की राजधानी मिथिला एक निश्चित योजना के अनुसार बसाई गई थी। महाजनक जातक में इसका विस्तृत विवरण उपलब्ध होता है, जो काल्पनिक न होकर तथ्य पर आधारित मालूम पड़ता

१. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३६७।

२. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ४४७।

है। यहाँ कहा गया है कि यह नगर समृद्ध, विशाल और सभी ओर से प्रकाशित था। (मिथिलं फीतं विसालं सब्बतो पभं), सुविभक्त, भागशः सुशोभित (विभत्तं भागसोभितं), अनेक प्राकारों और तोरणों से युक्त (बहुपाकार-तोरणं,) दृढ़ अट्टालिकाओं तथा कोठों से युक्त (दलह् मट्टाल कोट्ठकं), गायों, घोड़ों तथा रथों से भरा हुआ (गवास्सरथपीलितं) तथा आराम-वनों और उद्यान-वनों की पंक्तियों से युक्त (उय्यानवनमालिनिं) था[१]। यहीं कहा गया है कि सौमनस्य से युक्त यशस्वी विदेह राजा के द्वारा इसका निर्माण करवाया गया था। "मापितं सोमनस्सेन वेदेहेन यसस्सिना"।

महा उम्मग्ग जातक में कहा गया है कि मिथिला नगर के उत्तर, दक्षिण, पूर्व और पश्चिम में चार विशाल दरवाजे थे जिनके समीप "यवमज्झक" आकार के चार विशाल व्यापारिक कस्बे (निगम) बसे हुए थे। मिथिला नगरी आधुनिक जनकपुर ही है, जो बिहार राज्य के उत्तरी भाग में स्थित है। मज्झिम-निकाय के मखादेव-सुत्तन्त से हमें मालूम होता है कि भगवान् एक बार मिथिला में गये थे और वहाँ के मखादेव-आम्रवन में ठहरे थे। आचार्य बुद्धघोष द्वारा निर्दिष्ट परम्परा के अनुसार यह आम्रवन मिथिला के एक पूर्वकालीन राजा मखादेव ने बनवाया था। इसीलिये उसका यह नाम पड़ा था।[२] एक दूसरी बार भी हम भगवान् को विदेह में चारिका करते हुए मिथिला के मखादेव आम्रवन में पहुँचते मज्झिम-निकाय के ब्रह्मायु-सुत्तन्त में देखते हैं। इसी सुत्त से हमें यह भी सूचना मिलती है कि ब्रह्मायु नामक एक ब्राह्मण, जिसकी आयु १२० वर्ष की थी, इस समय मिथिला में रहता था। मिथिला में ही जब भगवान् निवास कर रहे थे तो वासेट्ठी (वाशिष्ठी) नामक एक कुलीन स्त्री, जिसका जन्म वैशाली में हुआ था और एक उच्च कुल में ही जिसका विवाह हुआ था, पुत्र-शोक में व्याकुल होकर उन्मत्त अवस्था में भगवान् के पास पहुँची थी और उनके दर्शन उसने वहाँ किये थे। "अथ द्दस्सामि सुगतं नगरं मिथिलं

---

१. पूर्ण विवरण के लिए देखिये जातक, छठा खण्ड, पृष्ठ ५१-६२ (हिन्दी अनुवाद)।

२. पपञ्चसूदनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १००।

गत्तं"[१]। वाराणसी की सुन्दरी नामक स्त्री का पिता सुजात ब्राह्मण, जो पुत्र-वियोग से खिन्न था, भगवान् के दर्शनार्थ मिथिला गया था और वहाँ जाकर प्रव्रजित हो गया था।[२]

ऊपर हम कह चुके हैं कि बुद्ध-पूर्व काल में विदेह एक राजतन्त्र था। मखादेव जातक और निमि जातक में मिथिला के राजवंश के आदि पुरुष का नाम मखादेव बताया गया है। मज्झिम-निकाय के मखादेव-सुतन्त में भी कहा गया है कि पूर्व काल में मिथिला का एक धार्मिक, धर्मराजा ('धम्मिको धम्मराजा') था, जिसका नाम मखादेव था। इस मखादेव को डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने शतपथ-ब्राह्मण के माथव विदेघ से मिलाया है।[३] भरहुत-स्तूप के अभिलेख तथा चुल्ल-निद्देस में मखादेव का उल्लेख है। मखादेव, मघादेव और माथव वस्तुतः एक ही शब्द 'महा-देव' के विभिन्न रूप हैं, ऐसा डा० बड़आ और सिंह ने भी माना है।[४] इस प्रकार जातक और शतपथ-ब्राह्मण में विदेह राज्य के आदि पुरुष के सम्बन्ध में प्रायः एक मत है, ऐसा कहा जा सकता है। महाजनक जातक में मिथिला के दो महाजनक राजाओं का उल्लेख है, जिनमें से एक को हम औपनिषद जनक से मिला सकते हैं।[५] औपनिषद जनक को हम महाभारत में कहते सुनते हैं, "मिथिलायां प्रदीप्तायां न मे दह्यति किंचन"। यही बात महाजनक जातक के महाजनक ने भी कही है। "सुसुखं वत जीवाम येस नो नत्थि किंचनं। मिथिलाय दय्हमानाय न मे किंचि अदय्हथा।" मज्झिम-निकाय के मखादेव-सुत्तन्त, मखादेव जातक, कुम्भकार जातक और निमि जातक में निमि नामक एक अन्य विदेह-राज का भी उल्लेख है, जिसे किसी व्यक्ति का नाम मानने के

---

१. थेरीगाथा, पृष्ठ १४; देखिये वही, पृष्ठ ६४ भी (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

२. वही, पृष्ठ २९-३१ तथा ७४-७५।

३. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ५४-५५।

४. भरहुत इन्सक्रिप्शन्स, पृष्ठ ७८-८०।

५. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ५७; मिलाइये रायस डेविड्स् : बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ १९ (प्रथम भारतीय संस्करण)।

साथ-साथ विदेह के राजाओं का एक कुल-नाम भी माना जा सकता है जिस प्रकार "ब्रह्मदत्त" काशी के राजाओं का कुल-नाम था। कुम्भकार-जातक में विदेहराज निमि को गन्धार देश के राजा नग्गजि (नग्नजित्) और पंचाल देश के राजा दुम्मुख (दुर्मुख) का समकालीन बताया गया है। निमि का पुत्र, मज्झिम-निकाय के मखादेव-सुत्तन्त के अनुसार, कलार जनक (सं० कराल जनक) था।[1] साधीन जातक में मिथिला के राजा साधीन (स्वाधीन) का उल्लेख है और इसी प्रकार सुरुचि जातक में विदेह-राज सुरुचि का तथा महा नारद-कस्सप जातक में मिथिलाधिपति अंगति (या आनन्द जी के अनुवाद के अनुसार अंग) का, जिनके विस्तार में यहाँ भौगोलिक दृष्टि से जाना ठीक न होगा। महानारदकस्सप जातक में विदेह राष्ट्र में मनाये जाने वाले 'कुमुदनी' नामक महोत्सव का भी वर्णन है।

भग्ग (भर्ग) लोगों का गणराज्य सुंसुमारगिरि के आसपास स्थित था। डॉ० मललसेकर ने उसे श्रावस्ती और वैशाली के बीच स्थित बताया है,[2] परन्तु अपनी इस मान्यता का उन्होंने कोई कारण नहीं दिया। महापंडित राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार भर्ग देश की सीमा में "बनारस, मिर्जापुर, इलाहाबाद जिलों के गंगा के दक्षिण वाले प्रदेश का कितना ही भाग सम्मिलित था।"[3] डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने भर्ग राज्य को विन्ध्य प्रदेश में यमुना और शोण नदियों के बीच स्थित बताया है।[4] सुसुमारगिरि को वस्तुतः

---

१. इस कराल जनक राजा के सम्बन्ध में महाकवि अश्वघोष ने दो अनुश्रुतियों का उल्लेख किया है। एक तो यह कि उसने एक ब्राह्मण-कन्या का हरण किया था (बुद्ध-चरित ४।८०) और दूसरी यह कि सदाचार से शून्य होने के कारण इस राजा का राज्य उजाड़ हो गया था (बुद्ध-चरित १३।५)।

२. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३४५।

३. मज्झिम निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ६१, पद-संकेत १; बुद्धचर्या, पृष्ठ ८७, पद-संकेत ६; डा० बिमलाचरण लाहा ने राहुल सांकृत्यायन के मत को "ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इण्डिया", पृष्ठ १४१-१४२, में उद्धृत किया है।

४. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १९३।

आधुनिक चुनार और उसके आसपास की पहाड़ियों से ही मिलाना चाहिये। अतः भर्ग राज्य की सीमाओं के सम्बन्ध में राहुलजी का मत सर्वाधिक ठीक है। सुंसुमारगिरि में ही भेसकलावन (केसकलावन भी पाठान्तर) नामक मृगदाव या मृगोद्यान था जहाँ, भगवान् भग्ग देश में चारिका करते हुए अक्सर ठहरते थे। इस मृगोद्यान में भी इसिपतन मिगदाय के समान मृगों को *अभय दिया गया था और वे वहाँ स्वच्छन्द विचरते थे। इसलिये यह स्थान भी* भेसकलावन मिगदाय के नाम से प्रसिद्ध था।[1] महाकवि अश्वघोष ने बुद्धचरित (२१।३२) में भार्गसों (भार्गवों) के प्रदेश में भगवान् बुद्ध के द्वारा भेषक यक्ष को दीक्षित किये जाने का वर्णन किया है। सम्भवतः इस भेषक (या भेष) यक्ष से सम्बन्धित ही 'भेसकलावन' था।

सुंसुमारगिरि एक शान्त और रमणीय स्थान था, जो ध्यान के लिये अनुकूल माना जाता था। स्थविर सिगाल-पिता यहाँ ध्यान करने के लिये गये थे।[2] हम देख चुके हैं कि भगवान् ने अपना आठवाँ वर्षावास भर्ग देश के सुसुमारगिरि-स्थित भेसकलावन मिगदाय में ही किया था और यहीं नकुल-पिता, जिसका घर इसके समीप ही था, उनसे मिलने आया था। इस घटना का वर्णन संयुत्त-निकाय के दो 'नकुल-पिता' सुत्तों मे है।[3] स्थविर सिरिमण्ड की प्रव्रज्या भेसकलावन में ही हुई थी[4] और यहीं स्थविर महामोग्गल्लान ने मार को पराजित किया था।[5] मज्झिम-निकाय के बोधिराजकुमार-सुत्तन्त, अंगुत्तर

---

१. समन्तपासादिका, जिल्द चौथी, पृष्ठ ८६७; दिव्यावदान, पृष्ठ १८२, में 'भेसकलावन' को 'भीषणिकावन' कहकर पुकारा गया है।

२. "बुद्ध का उत्तराधिकारी भिक्षु भेसकलावन में है"। थेरगाथा, पृष्ठ ८ (भिक्षु धर्मरत्न एम० ए० का हिन्दी अनुवाद)।

३. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ३२१-३२२; दूसरा भाग, पृष्ठ ४९८; महाकवि अश्वघोष ने भी बुद्ध-चरित (२१।३२) में नकुल के वृद्ध माता-पिता पर बुद्ध द्वारा अनुग्रह करने की बात कही है।

४. देखिये थेरगाथा, पृष्ठ १२९ (भिक्षु धर्मरत्न एम० ए० का हिन्दी अनुवाद)।

५. वहीं, पृष्ठ २६८।

निकाय[1] और विनय-पिटक के चुल्लवग्ग[2] में हम उदयन-पुत्र राजकुमार बोधि को सुंसुमारगिरिनगर में अपने नव-निर्मित कोकनद प्रासाद में भगवान् बुद्ध का स्वागत करते देखते हैं। धोनसाख जातक में भी सुंसुमारगिरिनगर-स्थित बोधि राजकुमार के कोकनद प्रासाद का उल्लेख है। इस प्रासाद का यह नाम क्यों पड़ा, इसका उल्लेख हम वंस राज्य का विवेचन करते समय कर चुके हैं। मज्झिम-निकाय के अनुमान-सुत्तन्त और मारतज्जनिय सुत्तन्त हमें इस बात की सूचना देते हैं कि भगवान् बुद्ध के ऋद्धिमान् शिष्य महामोग्गल्लान ने भी दो बार सुंसुमारगिरि पर विहार किया था। सिरिमण्ड स्थविर का जन्म-स्थान सुंसुमारगिरिनगर ही था।

सुंसुमारगिरि पर भग्गों का नगर स्थित था जो सुंसुमारगिरिनगर कहलाता था और उनकी राजधानी था। सुसुमारगिरिनगर की गणना अभिधानप्पदीपिका में बुद्धकालीन भारत के मुख्य २० नगरों में की गई है।[3] सुंसुमारगिरि (सुंसुमार-गिर भी पाठ अट्ठकथा में है) नगर का यह नाम पड़ने का आचार्य बुद्धघोष ने यह कारण बताया है कि जब यह नगर बसाया जा रहा था तो पास के सरोवर से सुंसुमार (शिशुमार-मगर) का शब्द सुनाई पड़ा था।[4] "केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया"[5] में भग्ग राज्य को वज्जि संघ का एक अंग बताया गया है, जिसके लिए पालि साहित्य में कोई स्पष्ट आधार नहीं मिलता। जैसा हम वंस राज्य के विवरण में देख चुके हैं, भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में भग्ग गणराज्य वंस (वत्स) राज्य की अधीनता या उसके प्रभाव में आ गया था। डा० विमलाचरण लाहा का कहना है कि भग्गों पर कौशाम्बी का आधिपत्य थोड़े दिन तक ही रहा और वे एक गणतन्त्र के रूप में भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के समय विद्यमान थे, जैसा कि इस बात से प्रकट होता है कि महापरिनिब्बाण-सुत्त में गणतन्त्रों की जो सूची

---

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ९१; जिल्द छठी, पृष्ठ ८५।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४३६-४३७।

३. देखिये आगे चौथे परिच्छेद में बुद्धकालीन भारत के नगरों की जनसंख्या का विवेचन।

४. पपञ्चसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६५।

५. जिल्द पहली, पृष्ठ १७५।

दी गई है, उसमें भर्ग-देश का उल्लेख है।[1] पता नहीं डा० लाहा ने यह किस प्रकार लिख दिया है। महापरिनिब्बाण-सुत्त में तो भग्गों या उनके देश का कहीं भी उल्लेख नहीं है। वहाँ तो केवल उन सात गणतन्त्रों का उल्लेख है, जिनका नाम-निर्देश हम गणतन्त्रों सम्बन्धी अपने इस विवेचन के आरम्भ में कर चुके हैं। अतः यह कहना ठीक नहीं है कि महापरिनिब्बाण-सुत्त के आधार पर भग्गों का एक स्वतन्त्र गणतन्त्र बुद्ध के परिनिर्वाण के समय विद्यमान था। चूंकि महापरिनिब्बाण-सुत्त में भग्गों का उल्लेख नहीं है, इसलिये हम यह भी नहीं कह सकते कि उस समय गणतन्त्र के रूप में उनकी सत्ता ही नहीं थी, क्योंकि उनके विद्यमान रहते हुए भी यह सम्भव हो सकता था कि वे बुद्ध के धातुओं में भाग लेने न आते। महापरिनिब्बाण-सुत्त में केवल उन गणतन्त्रों का उल्लेख है जो भगवान् बुद्ध की धातुओं में अंश प्राप्त करने आये थे। अतः उनमें भग्गों का नाम न होना एक निषेधात्मक साक्ष्य है जिससे हम किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते और उसके अभाव में विनय-पिटक, अंगुत्तर-निकाय तथा मज्झिम-निकाय के बोधिराजकुमार-सुत्तन्त आदि के ऊपर निर्दिष्ट साक्ष्य से हम भग्ग गणतन्त्र को बुद्ध के जीवन-काल में वत्सराज्य के प्रभाव या अधीनता में आया मान सकते है।

कालाम लोगों के बारे में भी हमें बुलियों के समान बहुत कम मालूम है। सम्भवतः आलार कालाम, जो भगवान् बुद्ध के पूर्व गुरु थे और जिनका आश्रम राजगृह और उरुवेला के बीच में स्थित था, इसी जाति के थे।[2] इसी प्रकार भरण्डु कालाम, जिसका आश्रम कपिलवस्तु में था और जो भगवान् बुद्ध का पुराना सब्रह्मचारी था, कालाम जाति का ही था। अंगुत्तर-निकाय के भरण्डु-सुत्त से हमें

---

१. "ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म", पृष्ठ ३३; "इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्सट्स् ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म" (लन्दन, १९४१), पृष्ठ ३४। "ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इण्डिया" (पूना, १९४३), पृष्ठ २८७, में भी डॉ० लाहा ने यही बात दुहराई है।

२. मिलाइये, "स कालामसगोत्रेण तेनालोकयैव दूरतः। उच्चैः स्वागत-मित्युक्तः समीपमुपजग्मिवान्"। बुद्धचरित १२।२।

सूचना मिलती है कि एक बार जब भगवान् कपिलवस्तु में गये तो महानाम शाक्य ने उनके निवास की व्यवस्था भरण्डु कालाम के आश्रम में ही की। कालाम भी अन्य गणतन्त्रों की भाँति क्षत्रिय ही थे। उनके निगम का नाम केसपुत्त था, जहाँ भगवान् बुद्ध एक बार गये थे। इस अवसर पर उन्होंने कालामों को उपदेश भी दिया था, जो अंगुत्तर-निकाय के केसपुत्तिय-सुत्त में निहित है। इस सुत्त से हमें यह भी पता चलता है कि अनेक धर्म-सम्प्रदायों के आचार्य केसपुत्त नगर में अपने-अपने मतों का प्रचार करने आया करते थे। इस सुत्त के आरम्भ में इस प्रकार कहा गया है, "एक समय भगवान् कोसल में चारिका करते . . . जहाँ कालामों का केसपुत्त नामक निगम था, वहाँ पहुँचे।" इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि कालामों का प्रदेश कोसल राज्य के अधीन माना जाता था। डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने कालामों के केसपुत्त को शतपथ-ब्राह्मण के केशी लोगों से मिलाने का सुझाव दिया है, जो गोमती नदी के किनारे के प्रदेशों में बसे हुए थे।[१] सुझाव अत्यन्त कल्पना-प्रसूत होने पर भी भौगोलिक स्थिति के विचार से असंगत नहीं जान पड़ता।

सोलह महाजनपदों (सोलस महाजनपदा) का सर्वप्रथम प्रामाणिक उल्लेख हमें अंगुत्तर-निकाय में मिलता है। यहाँ उनका निर्देश इस क्रम से किया गया है, यथा (१) अङ्ग, (२) मगध, (३) काशी, (४) कोसल, (५) वज्जि, (६) मल्ल, (७) चेतिया चेतिय, (८) वंस, (९) कुरु, (१०) पंचाल, (११) मच्छ, (१२) सूरसेन, (१३) अस्सक, (१४) अवन्ती, (१५) गन्धार और (१६) कम्बोज। "सो इमेसं सोलसन्नं महाजनपदानं पहूतसत्तरतनानं इस्सराधिपच्चं रज्जं कारेय्य, सेय्यथीदं—अंगानं, मगधानं, कासीनं, कोसलानं, वज्जीनं, मल्लानं, चेतीनं (चेतियानं), वंसानं, कुरूनं, पञ्चालानं, मच्छानं, सूरसेनानं, अस्सकानं, अवन्तीनं, गन्धारानं, कम्बोजानं।"[२] यहाँ यह ध्यान देने योग्य बात है कि इन जनपदों का प्रयोग बहुवचन में किया गया है, जैसे कि अंगानं, मगधानं, कासीनं आदि। पालि

---

१. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १९३।

२. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ २५२, २५६, २६० (अट्ठक-निपात)।

तिपिटक में अन्यत्र भी इसी प्रकार के प्रयोग किये गये हैं, जैसे कि, "एकं समयं भगवा अंगेसु चारिकं चरमानो . . .[1]" । "एक समय भगवान् अंगों में चारिका करते हुए. . .।" "कोसलेसु चारिकं चरमानो।[2] (कोसलों में चारिका करते हुए. . . ।" "एकं समयं भगवा कुरुसु विहरति"।[3] "एक समय भगवान् कुरुओं में विहरते थे", आदि। इससे यह प्रकट होता है कि आरम्भ में जनपदों का स्वरूप जन-जातियों के रूप में था और भौगोलिक अर्थ उनके साथ जुड़ा हुआ नहीं था, परन्तु बाद में स्वाभाविक रूप से इन नामों का प्रयोग उन प्रदेशों या राज्यों के लिये होने लगा जहाँ वे जातियाँ रहती थीं। इन जनपदों की विभिन्न प्रकार की सूचियाँ हमें स्वयं पालि तिपिटक में मिलती हैं। इस प्रकार दीघ-निकाय के जनवसभ-सुत्त में हमें केवल दस जनपदों का, दो-दो के जोड़ों के रूप में, इस प्रकार उल्लेख मिलता है, "काशी और कोसल, वज्जि और मल्ल, चेति और वंस, कुरु और पंचाल, मच्छ और सूरसेन।[4]" इन्द्रिय-जातक मे इन सात जनपदों का उल्लेख है, सुरट्ठ, लम्बचूलक, अवन्ती, दक्खिणापथ, दण्डक, कुम्भवतिनगर और अरंजरा।[5] खुद्दक-निकाय के ग्रन्थ 'निद्देस' के उत्तर-खण्ड चुल्ल-निद्देस में गन्धार जनपद के स्थान पर योन (यवन) जनपद का उल्लेख है और कलिंग नामक एक अन्य जनपद का यहाँ अधिक उल्लेख है।[6] बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ 'महावस्तु' में भी सोलह महाजनपदों का उल्लेख है, परन्तु उनके नाम वहाँ नहीं दिये गये हैं। केवल इतना कहा गया है "जम्बुद्वीपे सोडशहि महाजनपदेहि[7]।" परन्तु एक अन्य प्रसंग मे, जहाँ बुद्ध-ज्ञान के वितरित किये जाने की बात कही गई है, वहाँ १६ जनपदों के नाम लिये गये

१. सोणदण्ड-सुत्त (दीघ० १।४)।

२. लोहिच्च-सुत्त (दीघ० १।१२); तेविज्ज-सुत्त (दीघ० १।१३); चंकि-सुत्तन्त (मज्झिम० २।५।५)।

३. मागन्दिय-सुत्त (मज्झिम० २।३।५)।

४. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ १६०।

५. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४६३ (पालि टैक्सट् सोसायटी संस्करण)।

६. निद्देस, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३७।

७. महावस्तु, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २।

हैं, यथा, अङ्ग, मगध, वज्जी, मल्ल, काशी, कोसल, चेदि, वत्स, मत्स्य, शूरसेन, कुरु, पंचाल, शिबि, दशार्ण, अस्सक और अवन्ती।[1] इस प्रकार इस १६ जनपदों की सूची में पालि सूची के गन्धार और कम्बोज नामक दो जनपद तो छोड़ दिये गये हैं और शिबि और दशार्ण नामक दो नये जनपद जोड़ दिये गये हैं। ललितविस्तर में भी बोधिसत्व के भावी कुल के सम्बन्ध में तुषित-लोक के देवताओं के द्वारा विचार किये जाने के प्रसंग मे सम्पूर्ण जम्बुद्वीप के सोलह जनपदों (सर्वस्मिन् जम्बुद्वीपे षोडश जानपदेषु), का उल्लेख है, परन्तु उनमें से केवल आठ के नाम लिये गये हैं, यथा, मगध, कोसल, (कौशल) वंश, वैशाली, अवन्ती (प्रद्योतकुलं), मथुरा, कुरु (हस्तिनापुर महानगर) और मिथिला।[2] महाबोधिवंस[3] में, जो एक उत्तरकालीन (ग्यारहवीं शताब्दी ईसवी की) रचना है, सोलह महाजन-पदों को "सोलस महादेसा" या "सोलस महापदेसा" कहकर पुकारा गया है। बौद्ध साहित्य के बाहर भी विभिन्न जनपदों के विवरण हमें मिलते हैं।[4] यहाँ हम पालि स्रोतों के आधार पर विभिन्न जनपदों के राजनैतिक भूगोल का विवरण देंगे।

---

१. महावस्तु, जिल्द पहली, पृष्ठ ३४।

२. पृष्ठ २०-२२

३. पृष्ठ १५२।

४. जैन आगम के भगवती-सूत्र (१५) में सोलह महाजनपदों का उल्लेख है, परन्तु उनके जो नाम वहाँ दिये गये हैं, वे हैं, अंग, बंग, मगध, मलय, मालव (माल-वय), अच्छ, वच्छ, कोच्छ, पढ, लाढ (राढ), बज्जि (वज्जि), मोलि, कासी, कोसल, अवाह और सम्भुत्तर। मिलान करने से ज्ञात होगा कि इस विवरण के छह जनपद तो बिलकुल वही हैं जो कि पालि सूची के, जैसे कि, अंग, मगध, वंस (जिसे भगवती-सूत्र में वच्छ कह कर पुकारा गया है), वज्जि, काशी और कोसल। डा० विमलाचरण लाहा ने कुछ सन्देहपूर्वक सुझाव दिया है कि कदाचित् भगवती-सूत्र का मोलि वही है जो पालि सूची का मल्ल जनपद (इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टेक्सट्स् ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, पृष्ठ १९)। डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने भी मोलि को मल्ल का विकृत रूप माना है (पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ९६)। डा० रायचौधरी का यह भी मत है कि भगवती-सूत्र का

अंगुत्तर-निकाय में निर्दिष्ट सोलह महाजनपदों का भौगोलिक विवरण देने से पहले हमें उनके युग पर कुछ विचार कर लेना चाहिये। इस विषय में सबसे प्रथम याद रखने की बात यह है कि जिस समय यह सूची बनाई गई थी, उस समय से बुद्ध-काल की राजनैतिक परिस्थिति में कुछ परिवर्तन हो गये थे। उदाहरणतः, जैसा हम आगे देखेंगे, उपर्युक्त सूची में अंग जनपद का एक स्वतन्त्र स्थान है, परन्तु भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में अंग मगध राज्य का ही एक अंग हो गया था और उसका स्वतन्त्र अस्तित्व नाम मात्र को रह गया था। यही हालत काशी जनपद की थी। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में काशी उसी प्रकार कोसल राज्य का एक अंग हो गया था, जिस प्रकार अंग मगध का। कुछ अन्य जनपदों के भी स्वतन्त्र अस्तित्व इसी प्रकार मिट रहे थे, या मिट चुके थे और तत्कालीन राजनैतिक भूगोल की एक प्रवृत्ति छोटे-छोटे जनपदों के समीपी राज्यों में विलीनीकरण के द्वारा एक सार्वभौम सत्ता की स्थापना की ओर थी। इस प्रकार कुरु और उत्तर-पंचाल का काफी भाग कोसल राज्य में जा चुका था और सूरसेन जनपद अवन्ती के प्रभाव में था। चेदि और दक्षिण-पंचाल के कुछ भाग पर वंस राज्य का अधिकार हो गया था।

मालव (मालवय) वही है जो पालि सूची की अवन्ती और उन्होंने यह भी दिखाने का प्रयत्न किया है कि अंगुत्तर-निकाय की सूची भगवती-सूत्र की सूची की अपेक्षा अधिक प्राचीन है, क्योंकि भगवती-सूत्र में भारत की पूर्वी और दक्षिणी दिशाओं के अधिक दूरस्थ भागों की जानकारी की सूचना मिलती है। (पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ९६)। डा० ई० जे० थॉमस का कहना है कि भगवती-सूत्र की सूची सम्भवतः दक्षिण में तैयार की गई थी, क्योंकि उसमें उत्तर भारत के कम्बोज और गन्धार जनपदों का उल्लेख नहीं है। देखिये उनकी "हिस्ट्री ऑव बुद्धिस्ट थॉट", पृष्ठ ६। महाभारत के कर्ण-पर्व में कुरु, पंचाल, शाल्व, मत्स्य, चेदि, शूरसेन, नैमिष, मागध, कोसल, काशी, अंग, कलिंग, गान्धारक और मद्रक, इन १४ जनपदों का उल्लेख है। पाणिनि के अष्टाध्यायी में गन्धार, अवन्ती, कोसल, उशीनर, विदेह, मगध, अंग और वंग जनपदों का उल्लेख है। विभिन्न सूचियाँ विभिन्न युगों से सम्बन्धित हैं। अतः उनमें बदलती हुई राजनैतिक परिस्थितियों के कारण अनिवार्य रूप से विभिन्नताएँ आ गई हैं।

भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के समय तो स्थिति यहाँ तक उत्पन्न हो रही थी कि विशाल वज्जि संघ भी मगध राज्य में जाने वाला था और विडूडभ के विनाश के उपरान्त सम्पूर्ण कोसल राज्य भी। मल्लों के दो छोटे गणतंत्रात्मक राज्य भी बुद्ध-परिनिर्वाण के बाद, जैसा हम पहले मल्ल गणराज्य के विवेचन में देख चुके हैं, अधिक दिन तक अपनी स्वतन्त्र सत्ता कायम नहीं रख सके। इस प्रकार जहाँ तक भगवान् बुद्ध के जीवन-काल की परिस्थितियों का सम्बन्ध है, सोलह महाजनपदों में से अधिकांश अपना स्वतंत्र अस्तित्व खो चुके थे, और कई की स्थिति डांवाडोल थी। अतः सोलह महाजनपदों के युग को हम भगवान् बुद्ध के जीवन-काल से एक या दो शताब्दी पूर्व का मान सकते हैं। परन्तु दूसरी ओर हम देखते है कि यद्यपि काशी और अंग जैसे जनपद बुद्ध के जीवन-काल में अपने स्वतन्त्र राजनैतिक अस्तित्व को खो चुके थे, परन्तु उनका जनपदीय स्वरूप और परम्पराएँ अभी सुरक्षित थीं, जैसा कि इस बात से प्रकट होता है कि भगवान् बुद्ध के समय में भी वहाँ क्रमशः कोसल और मगध के राजाओं ने 'काशिराज' (कासिक राजा)और 'अंगराज' (अंगराजा) नाम से अपने सम्बन्धी जागीरदारों को छोड़ रक्खा था। इसलिये सोलह महाजनपदों की स्थिति भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में भी कही जा सकती है। अतः निष्कर्ष रूप में हम कह सकते हैं कि सोलह महाजनपदों का युग भगवान् बुद्ध के जीवन-काल या उससे कुछ पूर्व का है। अब हम अलग-अलग जनपदों के भौगोलिक विवरण पर आते हैं।

अंग जनपद को धम्मपदट्ठकथा[1] में एक "रट्ठ" (राष्ट्र) कहकर पुकारा गया है। बुद्ध-पूर्व काल में अंग एक स्वतन्त्र राष्ट्र था, परन्तु बुद्ध के जीवन-काल में वह मगध के अधीन होकर उसका एक अंग हो गया। पालि तिपिटक में अंग और मगध को एक साथ रखकर "अंग-मगध" (अंगमगधा) के द्वन्द्व समास के रूप में अक्सर प्रयुक्त किया गया है।[2] उरुवेला के जटिल संन्यासी उरुवेल कस्सप (उरु-

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ ३८४।

२. "अंगमगधा"। जनवसभ-सुत्त (दीघ० २।५), "अंगमगधानं"। महासकुलुदायि-सुत्तन्त (मज्झिम०। २। ३। ७); "अंगो च मगधा"। थेरीगाथा, गाथा ११० (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण); मिलाइये महावग्गो

विल्व काश्यप) ने जो महायज्ञ किया था उसके सम्बन्ध में कहा गया है कि अंग और मगध के लोग, जो उरुवेला के चारों ओर बसे हुए थे, बहुत सा खाद्य-भोज्य लेकर आये थे।[1] चम्पेय्य जातक के अनुसार चम्पा नदी (वर्तमान चाँदन) अंग और मगध की विभाजक प्राकृतिक सीमा थी, जिसके पूर्व और पश्चिम ये दोनों जनपद क्रमशः बसे हुए थे। इस प्रकार बुद्ध-पूर्व काल में जब कि अंग एक स्वतन्त्र राष्ट्र था, अंग वह प्रदेश माना जाता था जो मगध के पूर्व में चम्पा नदी के उस पार बसा हुआ था। अंग जनपद की पूर्वी सीमा सम्भवतः राजमहल की पहाड़ियाँ थीं। उसकी उत्तरी सीमा कोसी नदी थी और दक्षिण में उसका विस्तार समुद्र तक था। कनिंघम का मत है कि अंग जनपद का विस्तार आधुनिक बिहार राज्य के भागलपुर और मुंगेर जिलों के प्रायः समान था।[2] उनके इस मत को डा० विमलाचरण लाहा[3]

(विनय पिटकं), पठमो भागो, पृष्ठ ४१ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण); जातकट्ठकथा, पठमो भागो, पृष्ठ ६३ (भारतीय ज्ञानपीठ काशी संस्करण); मिलाइये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९१; गोपथ-ब्राह्मण (२।९) में भी अंग और मगध का "अंग-मगधा" के रूप में संयुक्त रूप से उल्लेख किया गया है। इसी प्रकार अथर्ववेद के व्रात्य-काण्ड में मगध के लोगों के साथ-साथ अंग जनपद-वासी भी व्रात्य अर्थात् वैदिक संस्कृति के बहिर्भूत बताये गये हैं। इस सम्बन्ध में देखिये महामहोपाध्याय हरप्रसाद शास्त्री की पुस्तक "मगधन लिटरेचर" का प्रथम लेक्चर "दि आरीजिनल इनहेबीटेन्टस् ऑव मगध" शीर्षक भी (पृष्ठ १-२१); मिलाइये वैदिक इण्डैक्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ११। रामायण और महाभारत में भी अंग लोगों का उल्लेख है। पाणिनि ने अष्टाध्यायी (४।१।१७०; २।४।६२) में अंग देश का उल्लेख वंग, कलिंग और पुण्ड्र आदि के साथ मिला कर किया है।

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९१।

२. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५४६।

३. ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ६; इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, पृष्ठ ५०; इण्डोलोजीकल स्टडीज, भाग तृतीय, पृष्ठ ४८।

और नन्दोलाल दे[1] ने स्वीकार किया है और स्मिथ[2] और महापण्डित राहुल सांकृत्यायन[3] का भी प्रायः इसी प्रकार का मत है। पार्जिटर ने पूर्णिया जिले के पश्चिमी भाग को भी अंग जनपद में सम्मिलित माना है।[4]

अंग जनपद का यह नाम क्यों पड़ा, इसका कारण बताते हुए "सुमंगल-विलासिनी"[5] में कहा गया है कि इस प्रदेश में 'अंग' (अंगा) नामक लोग रहते थे, इसलिये यह जनपद उनके नाम पर 'अंग' कहलाया। 'अंग' लोगों ने यह नाम अपने अंगों (शरीरों) की सुन्दरता के कारण पाया। धीरे-धीरे यह नाम रूढ़ि के द्वारा (रूल्हिवसेन) उन लोगों के स्थान पर उस जनपद या प्रदेश के लिये भी प्रयुक्त होने लगा, जहाँ वे रहते थे।

भगवान् बुद्ध ने वाराणसी के बाद (मगध के साथ) अंग देश को अपने धर्म-प्रचार का केन्द्र बनाया। अंग में किये गये उनके प्रचार-कार्य का विस्तृत विवरण विनय-पिटक[6] में है। जातकट्ठकथा की निदान-कथा में कहा गया है कि अंग-मगध प्रदेश के दस सहस्र कुल-पुत्र भगवान् बुद्ध और उनके शिष्यों के साथ उनकी राजगृह से कपिलवस्तु की यात्रा में गये थे।[7]

---

१. ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडीवल इण्डिया, पृष्ठ ७।

२. अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया, पृष्ठ ३२ (चतुर्थ संस्करण)।

३. बुद्धचर्या, पृष्ठ ५४२; दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३१७।

४. जर्नल ऑव एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल, १८९७, पृष्ठ ९५।

५. जिल्द पहली, पृष्ठ ७२९। महाभारत (१।१०४।५३-५४) में कहा गया है कि अंग देश का यह नाम उसके एक अंग नामक राजा के नाम पर पड़ा। इस राजा को ऐतरेय ब्राह्मण (८।४, २२) के अंग वैरोचन से मिलाया गया है। रामायण (१।२३।१४) के अनुसार अंग देश का यह नाम पड़ने का यह कारण था कि क्रुद्ध शिव से भयभीत होकर मदन यहाँ भाग कर आया था और यहीं अपने अंग (शरीर) को छोड़कर वह अनंग हुआ था।

६. पृष्ठ ८९-९४ (हिन्दी अनुवाद)।

७. देखिये जातकट्ठकथा, पठमो भागो, पृष्ठ ६३ (भारतीय ज्ञानपीठ

अंग और मगध में बुद्ध-पूर्व काल से शत्रुता की एक परम्परा सी चली आ रही थी। दोनों में शक्ति के लिये संघर्ष चला आ रहा था, जिसमें कभी सफलता एक पक्ष को मिल जाती थी, कभी दूसरे को। इस प्रकार के भाग्य-परिवर्तन के अनेक उदाहरण जातकों[1] में मिलते हैं। यह निश्चित है कि बुद्ध-पूर्व काल में अंग एक स्वतन्त्र, बलिष्ठ और समृद्ध राष्ट्र था। एक समय था जब स्वयं मगध अंग राष्ट्र में सम्मिलित था[2] और उसका राज्य समुद्र तक फैला था। विधुर पण्डित जातक में राजगह (राजगृह) को अंग राज्य की राजधानी बताया गया है। यह इसी समय की परिस्थिति को प्रकट करता है। एक दूसरे जातक में उल्लेख है कि एक बार अंगराजा (अंगराज) ने मगध राजा को हरा दिया और उसकी सेना उसे खदेड़ती हुई चम्पा नदी तक ले गई जिसमें हताश होकर मगधराज कूद पड़ा। बाद में नाग-राज की सहायता से उसने दुबारा अंगराज पर चढ़ाई की और इस बार सफलता उसके हाथ लगी[3]। एक जगह जातक में ऐसा भी उल्लेख है कि ब्रह्मवड्ढन (वाराणसी) के राजा मनोज ने एक बार अंग और मगध दोनों जनपदों को जीत लिया।[4] अंगराज ब्रह्मदत्त ने (बिम्बिसार के पिता) भाति या भातिय को युद्ध में परास्त कर दिया था, ऐसा दीपवंस[5] में उल्लेख है। चम्पेय्य जातक से हमें पता चलता है कि अंग और मगध में सत्ता के लिये प्रायः लगातार युद्ध चलता रहता था। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त में उल्लेख है कि अत्यन्त प्राचीन काल में

काशी संस्करण); जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ११२ (भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)।

१. देखिये विशेषतः जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ४५४; जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३१६; जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ २७१ (पालि टैक्सट् सोसायटी संस्करण)।

२. देखिये जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ २७२ (पालि टैक्सट् सोसायटी संस्करण)।

३. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ४५४-४५५ (पालि टैक्सट् सोसायटी संस्करण)।

४. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३१६।

५. ३।५२।

जम्बुद्वीप (भारतवर्ष) के राजा रेणु के ब्राह्मण मन्त्री महागोविन्द ने सम्पूर्ण जम्बुद्वीप को सात राज्यों में विभक्त किया था। इनमें से एक अंग राज्य था। इस सुत्त के अनुसार अंग देश का राजा इस समय धृतराष्ट्र (धतरट्ठ) था। डॉ० जी० पी० मललसेकर का मत है कि धृतराष्ट्र द्वारा शासित यह अंग कोई दूसरा देश होना चाहिये।[1] परन्तु ऐसा मानना अनिवार्य नहीं है। महाभारत के कर्ण-पर्व के आधार पर हम जानते हैं कि कर्ण अंग देश का राजा था। "अंगेषु वर्तते कर्ण येषामधिपति-र्भवान्"। पार्जिटर ने पुराणों के आधार पर दिखाया है कि मगध के राजवंश की नींव कुरु के पुत्र सुधन्वा ने डाली थी। इसी वंश के राजा बृहद्रथ ने, जिसका पुत्र जरासन्ध था, बार्हद्रथ वंश की नींव डाली थी और गिरिव्रज को अपनी राजधानी बनाया था।[2] अतः दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त में धतरट्ठ (धृतराष्ट्र) को जो अंग देश का राजा बताया गया है, उसमें भी कुछ न कुछ ऐतिहासिक आधार हो सकता है और हमें धृतराष्ट्र द्वारा शासित अंग देश को अलग देश मानने की आवश्यकता नहीं है।

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में अंग पूरी तरह मगध की अधीनता में आ गया। इसके अनेक प्रमाण हमें पालि तिपिटक में मिलते हैं। राजगृह को, जो मगध की राजधानी था, अंग और मगध देशों की आमदनी का मुख कहा गया है।[3] इससे यह प्रकट होता है कि उस समय अंग मगध में ही सम्मिलित था। धम्मपदट्ठकथा में स्पष्टतापूर्वक कहा गया है कि तीन सौ योजन अंग-मगध के राज्य में बिम्बि-सार की आज्ञा चलती थी। विनय-पिटक में कहा गया है कि मगध में ८०,००० गाँव थे।[4] यह संख्या अंग और मगध के गाँवों को मिलाकर ही थी। बुद्ध-काल में मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार अंग और मगध दोनों देशों का ही राजा माना जाता

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ १७।

२. एन्शियन्ट इण्डियन हिस्टोरीकल ट्रेडीशन, पृष्ठ ११८, २८२।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १५, टिप्पणी।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १४, टिप्पणी २; देखिये वहीं पृष्ठ १९९, २००, २०१; मिलाइये सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १४८ भी।

था और दोनों देशों के लोग उसका आदर करते थे।[1] दीघ-निकाय के सोणदण्ड-सुत्त में कहा गया है कि चम्पा-निवासी प्रसिद्ध ब्राह्मण सोणदण्ड (स्वर्णदण्ड) को चम्पा की सारी आय राजा बिम्बिसार की ओर से दान में मिली हुई थी। वह ब्राह्मण "मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार द्वारा प्रदत्त. . . जनाकीर्ण, तृण-काष्ठ-उदक-धान्य सहित राजभोग्य, राजदाय, ब्रह्मदेय चम्पा का स्वामी था"।[2] चूंकि चम्पा नगरी अंग देश में सम्मिलित थी, अतः उसका किसी ब्राह्मण को दान करना बिम्बिसार के लिये तभी सम्भव हो सकता था जब अंग जनपद पर उसका आधिपत्य हो, अतः स्पष्टतः इससे यह प्रकट होता है कि अंग मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार के राज्य में सम्मिलित था।[3] फिर भी अंगराजा (अंगराज) की स्थिति एक जागीरदार के रूप में बिम्बिसार ने इसलिये कायम कर रक्खी थी कि अंग लोगों की भावनाओं को धक्का न पहुँचे।[4] यह अंगराजा सम्भवतः बिम्बिसार का ही कोई सम्बन्धी था और चम्पा में रहता था। एक ब्राह्मण को पाँच सौ कार्षापण प्रतिदिन भिक्षा-स्वरूप यह देता था।[5] इसके अतिरिक्त उसका कोई उल्लेख पालि तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओं में नहीं है। हम कोसल राज्य के विवरण में देख चुके हैं कि इसी प्रकार काशी में, जो कोसल राजाओं का विजित था, प्रसेनजित् ने अपने सगे भाई को काशिराज के रूप में

---

१. पपञ्चसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३९९; मिलाइये थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ५४४ भी।

२. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४४।

३. तिब्बती दुल्व में स्पष्टतापूर्वक उल्लेख किया गया है कि युवराज होने के समय ही बिम्बिसार ने अंग देश के अन्तिम स्वतन्त्र शासक ब्रह्मदत्त को मारकर उसकी राजधानी चम्पा पर अधिकार कर लिया था और उसके पिता ने उसे वहाँ का उपराज बना दिया था। देखिये हार्डी : ए मैनुअल ऑव बुद्धिज्म, पृष्ठ १६३, टिप्पणी।

४. मिलाइये राहुल सांकृत्यायन : मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ज (प्राक्कथन)।

५. घोटमुख-सुत्तन्त (मज्झिम० २।५।४।

स्थापित कर रक्खा था। इसी नीति का यह परिणाम था कि अंग और मगध तथा काशी और कोसल के लोगों में पारस्परिक स्नेह और सौहार्द को हम बुद्ध-काल में पाते हैं।

यद्यपि अंग और मगध के राजाओं में बुद्ध-पूर्व काल में काफी संघर्ष चला और जब तक अंग पूर्णतः मगध में सम्मिलित नहीं हो गया, यह संघर्ष प्रायः चलता ही रहा। परन्तु इन दोनों जनपदों के लोगों में सदा मित्रता के सम्बन्ध रहे और दोनों के लोगों के एक दूसरे के यहाँ आने-जाने के उल्लेख मिलते हैं।[1] वर्ष मे एक बार इन दोनों जनपदों के लोग मिलकर महाब्रह्मा की पूजा बड़े ठाटबाट से करते थे, जिसका संयुत्त-निकाय की अट्ठकथा में विस्तृत विवरण उपलब्ध है।[2] प्रतिवर्ष चम्पा के तट पर इन दोनो जनपदों के निवासी यज्ञ करते थे और प्रभूत सामग्री दान करते थे।[3] गया प्रदेश में जटिल साधुओं के महायज्ञ में, जो साल में एक बार होता था, ये लोग प्रभूत सामग्री लेकर उपस्थित होते थे। आमोद-प्रमोद में भी अंग-मगध के लोग किसी से कम नहीं थे। चम्पा नदी के तट पर ही, जो इन दोनो जनपदों की सीमा थी, ये लोग एक बड़ा मेला लगाते थे जिसमे नृत्य-गान के अलावा मांस-मछली (मच्छमंसं) और मदिरा का खान-पान भी चलता था।[4] वस्तुतः बुद्ध के जीवन-काल में इन दोनों जनपदों के निवासी दो पृथक् राष्ट्र न होकर एक ही राष्ट्र थे। वे मेल से रहते थे और उनका जीवन सुखी था। अंग जनपद को पालि त्रिपिटक में सदा एक समृद्ध देश बताया गया है[5] और इस बात में बौद्ध संस्कृत

---

१. देखिये जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २११ (पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण)।

२. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २६५-२७०।

३. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ४५४-४५५ (पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण); विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९१।

४. देखिये जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २११ (पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण)।

५. देखिये विशेषतः अंगुत्तर-निकाय, जिल्द पहली, पृष्ठ २१३; जिल्द चौथी, पृष्ठ २, २५६।

ग्रन्थ महावस्तु[1] भी उसका समर्थन करता है। अंगराज की विपुल सम्पत्ति का वर्णन तो किया ही गया है, अंग को चम्पा नगरी के निवासी श्रेष्ठि-पुत्र सोण कोटि-विंश (सोण कोलिवीस) के सम्बन्ध में कहा गया है कि वह बीस करोड़ का धनी था[2] और अस्सी गाड़ी अशर्फी और हाथियों के सात अनीक (एक अनीक बराबर छह हाथी और एक हथिनी) को छोड़कर प्रव्रजित हुआ था।[3] अंग देश के लोग बड़े कुशल व्यापारी थे। विमानवत्थु की अट्ठकथा[4] में कहा गया है कि अनेक धनी व्यापारी अंग देश में रहते थे। वे अपने व्यापारिक संघों को लेकर सिन्धु-सौवीर देश तक व्यापारिक उद्देश्य से यात्रा करते थे।[5] जैसा हम अभी देखेंगे, अंग देश के अन्तर्गत चम्पा के निवासी स्वर्ण-भूमि (सुवण्ण-भूमि) तक व्यापारिक यात्राएँ करते थे।

अंग देश के मुख्य चार नगरों का विवरण पालि तिपिटक में उपलब्ध होता है, जिनके नाम हैं, चम्पा, भद्दिय, अस्सपुर और आपण। चम्पा अंग जनपद की राजधानी थी। समृद्ध, स्फीत, जनाकीर्ण यह नगरी बुद्ध-काल के छह प्रसिद्ध महानगरों (महानगरानि) में गिनी जाती थी। महापरिनिब्बाण-सुत्त में उसका इस रूप में उल्लेख है, यह हम पहले निर्दिष्ट कर चुके हैं।[6] महागोविन्द-सुत्तन्त के आधार पर हम यह भी देख चुके हैं कि प्राचीन भारतीय चक्रवर्ती राजा रेणु के ब्राह्मण-मंत्री महागोविन्द ने इस नगरी की स्थापना की थी।[7] चम्पा नामक नदी के तट पर चम्पा नगरी बसी हुई थी, गंगा के दक्षिण की ओर। उसकी इसी स्थिति का चीनी

---

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ २।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १९९।

३. वहीं, पृष्ठ २०४।

४. पृष्ठ ३३७।

५. वहीं, पृष्ठ ३३२।

६. देखिये प्रथम परिच्छेद में दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त के भौगोलिक महत्व का विवेचन।

७. देखिये प्रथम परिच्छेद में दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त के भौगोलिक महत्व का विवेचन।

यात्रियों ने भी उल्लेख किया है।[1] चम्पा नदी आधुनिक चाँदन नदी है, यह हम पहले देख चुके हैं। चम्पेय्य जातक के अनुसार चम्पेय्य नामक नाग का अधिकार इस नदी पर था। महाजनक जातक में चम्पा नगरी की दूरी मिथिला से ६० योजन बताई गई है और इसके वर्णन से विदित होता है कि ये दोनों नगर बैलगाड़ी के मार्ग से जुड़े हुए थे। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में चम्पा एक अतीव सुन्दर नगरी थी। महाजनक जातक में उसके कूटागार, प्राकार और विशाल दरवाजों का वर्णन है। कनिंघम ने चम्पा नगरी की पहचान आधुनिक चम्पापुर और चम्पानगर नामक दो गाँवों से की है, जो भागलपुर से २४ मील पूर्व में स्थित हैं।[2] इतने काल-गत और स्थान-गत परिवर्तनों के बाद चम्पा नगरी कम से कम अपने नाम की स्मृति इन गाँवों के रूप में बनाये हुए है, यह कुछ कम आश्चर्य की बात नहीं है। प्रायः सभी विद्वान् चम्पा नगरी की उपर्युक्त आधुनिक पहचान से सहमत हैं।[3] महा-भारत के अनुसार चम्पा का प्राचीन नाम मालिनी था, जिसे परिवर्तित कर उसका नाम चम्पा वहाँ के राजा चम्प के समय में रक्खा गया।[4] अनेक पुराणों में भी इसी प्रकार के वर्णन उपलब्ध होते हैं।

चम्पा नगरी बुद्ध-काल में अपनी रमणीय गग्गरा पुष्करिणी (गग्गरा पोक्ख-

---

१. देखिये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५४७; वाटर्स: औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८१; मिलाइये हेमचन्द्र रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १०७, पद-संकेत ३।

२. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५४७।

३. उदाहरण के लिये देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८२, पद-संकेत ५,; रायस डेविड्स् : बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ २५, (प्रथम भारतीय संस्करण, १९५०); मललसेकर : डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ८५७; लाहा : ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ६; राहुल सांकृत्यायन : बुद्धचर्या, पृष्ठ २२४, पद-संकेत ४; हेमचन्द्र राय-चौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १०७।

४. चम्पस्य तु पुरी चम्पा या मालिन्यभवत् पुरा। महाभारत १२।५।१३४।

रणी) के कारण अत्यन्त विख्यात थी। इस पुष्करिणी को रानी गग्गरा ने खुद-वाया था।[1] गग्गरा पुष्करिणी के तट पर चम्पक या चम्पा के वृक्षों का एक विशाल उद्यान था जिसकी मधुर गन्ध से चारों ओर का वातावरण सुरभित रहता था। पाँच प्रकार के चम्पा के फूल इस उद्यान में पाये जाते थे जिनमें से सफेद रंग के फूलों की विशेष प्रशंसा आचार्य बुद्धघोष ने की है।[2] मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा का कहना है कि चम्पे के पेड़ों के इस विशाल उद्यान के कारण ही उसके समीप स्थित नगरी का नाम चम्पा पड़ा।[3] यह कुछ आश्चर्यजनक दिखाई न पड़ेगा कि महाभारत (अनुशासन पर्व) में भी चम्पा नगरी को उस के चम्पा के वृक्षों के विशाल उद्यान के लिये प्रसिद्ध बताया गया है, परन्तु जैसा हम ऊपर देख चुके है, महाभारत में इन पुष्प-वृक्षों के कारण नहीं बल्कि चम्प नामक राजा के नाम पर इस नगर का 'चम्पा' नाम प्राप्त करना दिखाया गया है। गग्गरा पोक्खरणी के तट पर स्थित चम्पक-वन बुद्ध-काल में परिव्राजकों का एक प्रिय स्थान था जहाँ का चतुर्दिक् वातावरण उनके आध्यात्मिक संलापों से गुंजायमान रहता था। हम देखते हैं कि इस प्रकार के परिव्राजकाराम बुद्ध-काल में राजगृह, श्रावस्ती, वैशाली और कौशाम्बी जैसे अनेक नगरो में भी विद्यमान थे और वहाँ निरन्तर दार्शनिक गोष्ठियाँ चलती रहती थीं। भगवान् बुद्ध कई बार चम्पा के इस स्थान पर गये थे और उनके शिष्यों में सारिपुत्र और वंगीश के भी यहाँ जाने के विवरण प्राप्त है। दीघ-निकाय के सोणदण्ड-सुत्त का उपदेश भगवान् ने चम्पा के गग्गरा पोक्खरणी के तट पर विहार करते हुए ही दिया था।[4] यहीं चम्पा-निवासी सोणदण्ड ब्राह्मण अन्य ब्राह्मण-महाशालों के साथ भगवान् के दर्शनार्थ आया था। यहीं एक बार सारिपुत्र को साथ लेकर भगवान् बुद्ध गये थे और उनकी उपस्थिति में सारिपुत्र ने भिक्षुओं के समक्ष "दसुत्तर-सुत्त" का उपदेश दिया था।[5] चम्पा

---

१. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २७९।

२. वहीं, पृष्ठ २७९-२८०।

३. पपञ्चसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५६५।

४. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४४।

५. वहीं, पृष्ठ ३०३।

में गग्गरा पुष्करिणी के तीर पर विहार करते समय ही भगवान् ने मज्झिम-निकाय के कन्दरक-सुत्तन्त का उपदेश दिया था,[१] और अंगुत्तर-निकाय[२] के कई सुत्तों का भी। इसी प्रकार जब भगवान् गग्गरा पुष्करिणी के तीर पर विहार कर रहे थे तो उनके कवि-शिष्य स्थविर वंगीश (वंगीस) ने एक गाथा के द्वारा भगवान् की स्तुति की थी, जो संयुत्त-निकाय के गग्गरा-सुत्त में आज हमें प्राप्त है।[३] विनय-सम्बन्धी कई नियमों का विधान भी भगवान् ने चम्पा की इसी पुष्करिणी के तीर पर निवास करते हुए किया, जो आज हमारे लिये विनय-पिटक के चम्पेय्यक्खन्धक में सुरक्षित हैं।[४] विनय-पिटक में यह उल्लेख नहीं किया गया है कि चम्पा में भगवान् कहाँ से आये और फिर वहाँ से कहाँ चले गये।

भिक्षुओं को एक तल्ले के जूते (चप्पल) पहनने की अनुमति भगवान् ने चम्पा में दी। जब भगवान् चम्पा में विहार कर रहे थे, उसी समय काशि देश के वासभगाम नामक ग्राम का एक आश्रम-निवासी भिक्षु, जिसका नाम काश्यपगोत्र था और जिसे कुछ नवागन्तुक भिक्षुओं ने उत्क्षेपण का दण्ड दिया था, भगवान् के पास आया और भगवान् ने उसके विरुद्ध किये गये उत्क्षेपण कार्य को अवैध माना और बाद में इस काम को करने वाले भिक्षुओं को बुरा-भला कहा।[५] भगवान् बुद्ध के कुछ प्रमुख शिष्यों की, जैसे कि सोण कोटिविंश (सोण कोलिवीस), जम्बुगामक, नन्दक और भरत की, जन्मभूमि चम्पा ही थी और जिन भिक्षुणियों ने यहाँ निवास किया, उनके नाम हैं थुल्लनन्दा, भद्रा और उनकी सहचारिणी भिक्षुणियाँ। चम्पा-निवासी स्थविर सोण कोटिविंश भिक्षु होने से पूर्व अंग

---

१. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २०५।

२. जिल्द चौथी, पृष्ठ ५९, १६८; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १५१, १८९।

३. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ १५५।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २९८-३२१; मिलाइये धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४५१।

५. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २९८-२९९।

देश के एक भूस्वामी (पढ़गु) थे।[१] महाजनक जातक से विदित होता है कि भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में चम्पा का एक नाम काल-चम्पा भी था।[२] ऐसा वर्णन मिलता है कि हिमालय-वासी कुछ साधु चम्पा में नमक और खटाई लेने आये थे।[३]

जैसा हम पहले कह चुके हैं, भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में चम्पा एक समृद्ध और व्यापारिक दृष्टि से महत्वपूर्ण नगरी थी। उसके व्यापारी सुवण्णभूमि (दक्षिणी बर्मा) तक व्यापार के लिये जाते थे।[४] विद्वानों की यह निश्चित मान्यता है कि चम्पा के निवासियों ने ही हिन्द-चीन जाकर अन्नाम के प्राचीन हिन्दू राज्य की स्थापना की थी, जिसका नाम अपने इस नगर के नाम पर उन्होंने चम्पा ही रक्खा।

पाँचवीं शताब्दी ईसवी में चीनी यात्री फा-ह्यान भारत-भ्रमण करता हुआ चम्पा भी गया था। यहाँ वह पाटलिपुत्र से गंगा के मार्ग से पहुँचा था। उसने चम्पा को पाटलिपुत्र से १८ योजन पूर्व दिशा में गंगा के दक्षिण तट पर स्थित देखा था।[५] प्रसिद्ध चीनी यात्री यूआन् चुआङ भी सातवीं शताब्दी ईसवी में चम्पा गया था। वह ईरण पर्वत (वीरान पर्वत) अर्थात् वर्तमान मुंगेर जिले से यहाँ गंगा के किनारे होते-होते गया था और इन दोनों स्थानों के बीच की दूरी उसने ३०० 'ली' अर्थात् करीब ५० मील बताई है। इसी विवरण के आधार पर जनरल कनिंघम ने चम्पा की पहचान आधुनिक भागलपुर के समीप चम्पापुर और चम्पानगर से की, जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। यूआन् चुआङ ने चम्पा का उल्लेख एक प्रदेश और नगर दोनों रूपों में किया है और चम्पा का चीनी प्रत्यक्षरीकरण "चम्पो" किया है।[६] उसने गग्गरा पुष्करिणी का भी उल्लेख

---

१. थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ६३२; मिलाइये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १९९।

२. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ३२ (पालि टेक्सट् सोसायटी संस्करण)।

३. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ २५६ (पालि टेक्सट् सोसायटी संस्करण)।

४. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ६४।

५. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ६५।

६. देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८१।

किया है और उसे 'क-ग' या 'ग-ग' कहकर पुकारा है।[1] ईरण पर्वत प्रदेश (जिला मुंगेर) और चम्पा की ख्याति यूआन् चुआङ के समय में युद्ध में काम आने वाले हाथियों के लिये बहुत थी, ऐसा साक्ष्य इस चीनी यात्री ने दिया है।[2] "बुद्धवंस" के अनुसार भगवान् बुद्ध जिस वस्त्र को पहन कर स्नान करते थे, उस पर एक चैत्य का निर्माण चम्पा में किया गया था।[3]

भद्दिय, जिसे दिव्यावदान[4] में भद्रंकर कहा गया है, अंग जनपद का एक अन्य नगर था।[5] जैन साहित्य के भद्दिय या भद्रिका नगर से इसे मिलाया जा सकता है।[6] विनय-पिटक में उल्लेख है कि भगवान् एक बार वाराणसी से यहाँ गये थे और इसके समीप जातियावन (जातिकावन) में ठहरे थे।[7] एक दूसरी बार भी भगवान् यहाँ वैशाली से गये थे और जातियावन में ही ठहरे।[8] अन्य कई बार भी भगवान् यहाँ गये और प्रायः उक्त वन में ही ठहरे।[9] भद्दिय नगर के जातियावन में निवास करते समय ही भगवान् ने भिक्षुओं के लिये खड़ाऊँ पहनने का निषेध किया था।[10] भद्दिय नगर के समीप स्थित "जातियावन" इस नाम से इसलिये

---

१. वहीं, पृष्ठ १८२।

२. वहीं, पृष्ठ १८२।

३. "चम्पायं उदकसाटिका।" बुद्धवंस, पृष्ठ ७५ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

४. पृष्ठ १२३।

५. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ३८४; वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३६३ भी।

६. जैन शास्त्रों के अनुसार भगवान् महावीर ने अपने दो वर्षावास भद्दिय में किये।

७. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २०७।

८. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २४८।

९. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३६ में हम भगवान् को यहाँ विहार करते देखते हैं। "एकं समयं भगवा भद्दिये विहरति जातियावने।" देखिये धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३६३ भी।

१०. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २०७-२०८।

पुकारा जाता था, क्योंकि यहाँ जाति (जाति-जातिकोश-जायफर) नामक पुष्पों के पेड़ अधिकता से पाये जाते थे।[१] भद्दजि नामक स्थविर, जो भगवान् बुद्ध के शिष्य थे, भद्दिय नगर के ही रहने वाले थे। महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने भद्दिय नगर को वर्तमान मुंगेर से मिलाया है।[२] परन्तु वस्तुतः इसे भदरिया नामक स्थान से ही मिलाना अधिक उचित है, जो भागलपुर से ८ मील दक्षिण में है।[३] 'भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में इस नगर में मेण्डक नामक एक प्रसिद्ध श्रेष्ठी रहता था, जिसके पुत्र धनंजय और पुत्रवधू सुमना की पुत्री विशाखा थी।' जो बाद में महोपासिका बनी। मेण्डक का परिवार अपने सद्गुणों के लिये उस समय अत्यन्त प्रसिद्ध था। धम्मपदट्ठकथा में कहा गया है कि इसके पाँच सदस्य, अर्थात् मेण्डक श्रेष्ठी, उसकी भार्या चन्द्रप्रभा, उसका ज्येष्ठ पुत्र धनंजय और उसकी पत्नी सुमना देवी और मेण्डक श्रेष्ठी का दास पुण्णक (पूर्णक), ये पाँच व्यक्ति उस समय भद्दिय नगर के पाँच महापुण्यात्मा पुरुष माने जाते थे। भगवान् जब वैशाली से भद्दिय नगर में गये थे तो मेण्डक श्रेष्ठी जातियावन में उनके दर्शनार्थ आया था और दूसरे दिन बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को अपने हाथ से उसने खाद्य-भोज्य से संतृप्त कर भगवान् से प्रार्थना की थी, "जब तक भन्ते! भगवान् भद्दिय में विहार करते हैं, तब तक मैं बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ की सदा के लिये भोजन से सेवा करूँगा।"[४] भद्दिय में इच्छानुसार विहार कर भगवान् वहाँ से अंगुत्तराप चले गये थे,[५] जिसके सम्बन्ध में हम अभी देखेंगे।

---

१. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ २८०।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २०७, पद-संकेत १; देखिये वहीं, पृष्ठ २४८, पद-संकेत १ तथा पृष्ठ ५६४ भी; बुद्धचर्या, पृष्ठ १४२, पद-संकेत २; देखिये वहीं, पृष्ठ ५५८ भी।

३. देखिये जर्नल ऑव एशियाटिक सोसायटी ऑव बंगाल, १९१४, पृष्ठ ३३७ (नन्दोलाल दे लिखित "नोट्स् ऑन एन्शियन्ट अंग" शीर्षक लेख)।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २४८-२४९,

५. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २४९।

अंग देश का एक अन्य प्रसिद्ध कस्बा अस्सपुर (अश्वपुर) था। चेतिय जातक के वर्णनानुसार चेति (चेदि) देश के राजा उपचर के पाँच पुत्रों में से द्वितीय ने इसे बसाया था। अस्सपुर में ही निवास करते समय भगवान् ने मज्झिम-निकाय के महा-अस्सपुर-सुत्तन्त[1] और चूल-अस्सपुर-सुत्तन्त[2] का उपदेश दिया था।

अंग-वासियों का एक अन्य प्रसिद्ध व्यापारिक कस्बा (निगम) आपण था। इसे "अंगानं निगमो" अर्थात् अंग-वासियों का कस्बा कहकर अक्सर पुकारा गया है।[3] मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा (पपञ्चसूदनी) में इस कस्बे का 'आपण' नाम पड़ने का यह कारण बताया गया है कि इसमें २०,००० आपणों (दूकानों या बाजारों) के मुँह विभक्त थे। इस प्रकार आपणों (दूकानों या बाजारों) से भरे रहने के कारण इसका नाम 'आपण' पड़ा था।[4] वैदिक ज्ञान के महापण्डित शैल ब्राह्मण का (जिसने बाद में भिक्षु-संघ में प्रवेश किया) निवास-स्थान यही कस्बा था।[5] एक बार भगवान् बुद्ध ने अपने महाप्रज्ञावान् भिक्षु-शिष्य धर्मसेनापति सारिपुत्र के साथ इस कस्बे में विहार किया था और उनके साथ श्रद्धा पर संलाप किया था, जो संयुत्त-निकाय के आपण-सुत्त में निहित है।[6] मज्झिम-निकाय के पोतलिय-सुत्तन्त,[7] लकुटिकोपम-सुत्तन्त[8] और सेल-सुत्तन्त[9] (जो सुत्त-निपात[10] में भी आया है)

१. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १६१-१६४।

२. वहीं, पृष्ठ १६५-१६७।

३. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ७२६।

४. पपञ्चसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८६।

५. सेल-सुत्त (मज्झिम० २।५।२); थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४७; महाकवि अश्वघोष ने भी आपण में शैल ब्राह्मण को दीक्षित किये जाने का उल्लेख किया है। बुद्ध-चरित २१।१२।

६. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ७२६।

७. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २१४-२१९।

८. वहीं, पृष्ठ २६३-२६६।

९. वहीं, पृष्ठ ३८१-३८५।

१०. सुत्त-निपात (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ११४-१२६।

का उपदेश भगवान् ने आपण कस्बे में विहार करते समय ही दिया था। यहीं पर केणिय जटिल भगवान् से मिलने आया था और उसने १२५० भिक्षुओं के सहित भगवान् को भोजन के लिये निमंत्रित किया था।[1] जैसा हम अभी देखेंगे, भगवान् भद्दिय से अंगुत्तराप प्रदेश में चले गये थे, जहाँ कुछ दिन विचरण करने के बाद वे उसके कस्बे आपण में पहुँचे थे। इससे यह प्रकट होता है कि भद्दिय और आपण सड़क के मार्ग से जुड़े हुए थे, जो अंगुत्तराप प्रदेश में होकर गुजरती थी। भद्दिय से आपण जाते हुए जब भगवान् १२५० भिक्षुओं के सहित अंगुत्तराप प्रदेश में होकर गुजर रहे थे, तभी रास्ते में एक वन में मेण्डक गृहपति ने भिक्षु-संघ सहित भगवान् बुद्ध का धारोष्ण दूध से सत्कार किया था।[2]

ऊपर मज्झिम-निकाय के तीन सुत्तों (पोतलिय-सुत्तन्त, लकुटिकोपम-सुत्तन्त और सेल-सुत्तन्त) का हमने उल्लेख किया है, जिनका उपदेश भगवान् ने आपण में किया था। इन तीनों सुत्तों के आरंभ में यह कहा गया है "एक समयं भगवा अंगुत्तरापेसु चारिकं चरमानो . . .येन आपणं नाम अंगुत्तरापानं निगमो तद-वसरि। अर्थात्" "एक समय भगवान् . . अंगुत्तराप (देश) में चारिका करते हुए, जहाँ अंगुत्तरापों का आपण नामक निगम था, वहाँ पहुँचे।" यह अंगुत्तराप क्या था? अंगुत्तराप वस्तुतः अंग देश का ही वह भाग था, जो गंगा (महामही-गंगा) नदी के उत्तर में अवस्थित था। इसके "अंगुत्तराप" नाम से भी यह बात स्पष्टतः विदित होती है। 'अंगुत्तराप' नाम की व्याख्या करते हुए सुत्त-निपात की अट्ठकथा में कहा गया है, "अंगा एव सो जनपदो। गंगाय (महामही गंगाय) पन या उत्तरेण आपो, तासं अविदूरत्ता उत्तरापाति वुच्चति"।[3] इसका अर्थ यह है "अंग ही वह जनपद है। गंगा (महामही गंगा) नदी के उत्तर में जो पानी है, उसके अ-दूर उत्तर होने के कारण उत्तराप कहा जाता है"। इससे विदित

---

१. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३८१; शैल ब्राह्मण के साथ-साथ केणिय के भी आपण में दीक्षित किये जाने का उल्लेख अश्वघोष ने बुद्ध-चरित (२१।१२) में किया है।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २४८-२५०।

३. परमत्थजोतिका (सुत्त-निपात की अट्ठकथा), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४३७।

होता है कि अंगुत्तराप अंग के उत्तर में, गंगा नदी के उस पार का, उसके खादर का प्रदेश था, जो अंग जनपद में ही सम्मिलित माना जाता था। डा० मललसेकर ने भी इसे गंगा नदी के उत्तर में अंग देश का ही एक भाग माना है।[1] अंग के समान अंगुत्तराप भी मगध राज्य के अन्तर्गत था, यह इस बात से विदित होता है कि केणिय जटिल ने १२५० भिक्षुओं के साथ भगवान् बुद्ध को भोजन के लिये निमंत्रित किया था और जब वह उसकी तैयारी में लगा था तो शैल नामक ब्राह्मण ने उससे पूछा था "क्या आपके यहाँ मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार कल भोजन के लिये निमन्त्रित किये गये हैं?"[2] यह निश्चित हो जाने पर कि अंगुत्तराप अंग जनपद का ही गंगा नदी के उत्तर वाला भाग था, उसकी आधुनिक स्थिति का अनुमान लगाना कठिन नहीं है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने उसके सम्बन्ध में एक जगह लिखा है "कोसी (नदी) के पश्चिम तथा गंगा के उत्तर में अंगुत्तराप प्रदेश था"[3] और एक दूसरी जगह लिखा है. "अंगुत्तराप मुंगेर और भागलपुर जिलों का गंगा के उत्तर वाला भाग था।"[4] दोनों वर्णनों का एक ही अर्थ है और वह यह कि अंग देश का वह भाग जो गंगा नदी के उत्तर में स्थित था, अंगुत्तराप कहलाता था। अंग देश का गंगा के उत्तर वाला भाग अंगुत्तराप कहलाता था और दक्षिण का केवल अंग, यद्यपि अंगुत्तराप स्वयं अंग का ही एक भाग था। डा० मललसेकर ने सुझाव दिया है कि आपण अंगुत्तराप की राजधानी था।[5] अंगुत्तराप को अंग जनपद का ही एक अंग मान लेने पर उसकी पृथक् राजधानी की आवश्यकता नहीं जान पड़ती। हाँ, उसे अंगुत्तराप का प्रधान नगर हम मान सकते हैं। आपण की ठीक आधुनिक पहचान करने का प्रयत्न किसी विद्वान् ने अब तक नहीं किया है।

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ २२, ७३४।

२. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३८२।

३. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ छः (प्राक्कथन)।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २४९, पद-संकेत २; मिलाइये बुद्धचर्या, पृष्ठ १४४, पद-संकेत १; वहीं, पृष्ठ ५४२ भी।

५. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ २७७।

महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने आतुमा नामक गाँव या नगर को अंगुत्तराप में बताया है,[१] जो ठीक नहीं जान पड़ता. क्योंकि विनय-पिटक में हम देखते हैं कि भगवान् आतुमा में कुसिनारा से आये थे और कुछ दिन आतुमा में निवास कर श्रावस्ती चले गये थे।[२] इस आधार पर आतुमा को कुसिनारा और सावत्थि के बीच में कोई स्थान मानना ही ठीक होगा।[३] हम उसे मल्ल और कोसल राज्यों में से किसी एक में रख सकते हैं।

अंग देश के उपर्युक्त कस्बों में भगवान् की चारिकाओं की भौगोलिक रूपरेखा विनय-पिटक के अनुसार कुछ इस प्रकार होगी। पहली बार भगवान् वाराणसी से भद्दिय आये[४] और वहां कुछ दिन निवास कर श्रावस्ती चले गये।[५] एक दूसरी बार भगवान् वैशाली से भद्दिय आये[६] और वहाँ से अंगुत्तराप चले गये।[७] अंगुत्तराप के वन में कुछ दिन विहार करने के पश्चात् भगवान् उसके कस्बे आपण में पहुँचे।[८] आपण में कुछ दिन विहार करने के पश्चात् हम भगवान् को कुसिनारा की ओर जाते देखते हैं।[९]

बुद्ध-पूर्व काल में मगध अंग की अपेक्षा एक निर्बल राष्ट्र था और दोनों में सत्ता के लिये संघर्ष चला करता था, यह हम पहले देख चुके हैं। मगध राज्य का विवरण देते समय हम यह भी देख चुके हैं कि किस प्रकार मगधराज

---

१. बुद्धचर्या, पृष्ठ ५४४।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २५२-२५४।

३. मिलाइये मललसेकर : डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ २४४।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २०७।

५. वहीं, पृष्ठ २०८।

६. वहीं, पृष्ठ २४८।

७. वहीं, पृष्ठ २४९; मिलाइये धम्मपदट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ३८४ भी।

८. वहीं, पृष्ठ २५०; देखिये धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३६३ भी।

९. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २५२।

श्रेणिक बिम्बिसार द्वारा जीत लिये जाने पर बुद्ध के जीवन-काल में अंग मगध राज्य का एक अंग मात्र हो गया और उसकी स्वतन्त्र राजनैतिक सत्ता समाप्त हो गई। यहाँ हम एक जनपद के रूप में मगध का, या ठीक कहें तो मगधों का, मगध जनों का, पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर विवरण प्रस्तुत करेंगे।

मगध जनपद का बौद्ध धर्म के इतिहास में महत्वपूर्ण स्थान है। वस्तुतः इसी जनपद में धम्म का आविर्भाव हुआ। विनय-पिटक में कहा गया है "मगध में मलिन चित्त वालों से चिन्तित, पहले अशुद्ध धर्म पैदा हुआ था। अब अमृत के घर को खोलने वाले विमल (पुरुष) द्वारा जाने गये इस धर्म को लोक सुने।"[1] उरुवेला, जहाँ भगवान् ने ज्ञान प्राप्त किया, मगध जनपद का ही एक स्थान था। इस जनपद के अनेक नगरों, निगमों और ग्रामों का, जो भगवान् बुद्ध की स्मृति के कारण अमर हो गये है, हम पहले उल्लेख कर चुके हैं। भगवान् बुद्ध के अनेक शिष्य मगध-निवासी थे और बुद्ध-धर्म का प्रारम्भिक प्रचार-केन्द्र मगध ही था, यह सब हम पहले निरूपित कर चुके हैं।

एक जनपद के रूप में मगध का विस्तार आधुनिक बिहार राज्य के गया और पटना जिलों के बराबर समझना चाहिये। उसके उत्तर मे गंगा नदी, पश्चिम में सोण नदी, दक्षिण में विन्ध्याचल पर्वत श्रेणी का बढ़ा हुआ भाग और पूर्व में चम्पा नदी थी।

मगध जनपद का यह नाम क्यों पड़ा, इसका कारण देते हुए आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि इस सम्बन्ध में लोग अनेक प्रकार की किंवदन्तियाँ प्रपंचित करते हैं। 'वहुधा पपंचन्ति'। इस प्रकार की एक किंवदन्ती यह है कि जब राजा चेतिय, जिसने प्रथम बार संसार में झूठ बोलना शुरू किया, अपने इस कार्य के कारण धरती में धंसने लगा, तो जो लोग उसके पास खड़े हुए थे उन्होंने उससे कहा 'मा गधं पविस'। इसी से मिलती हुई दूसरी किंवदन्ती यह है कि जब राजा चेतिय धरती में प्रवेश

---

१. पातुरहोसि मगधेसु पुब्बे धम्मो असुद्धो समलेहि चिन्तितो।
अपापुरेतं अमतस्स द्वारं सुणन्तु धम्मं विमलेनानुबुद्धं॥
महावग्गो—विनय-पिटकं, पठमो भागो, पृष्ठ ८ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

कर गया, तो कुछ लोगों ने जो धरती खोद रहे थे उसे देखा और उसने उनसे कहा, "मा गधं करोथ"। इस प्रकार इन शब्दों 'मा गधं' के कारण मगध जनपद का यह नाम पड़ा। इन मनोरंजक अनुश्रुतियों का उल्लेख करने के बाद मगध के वास्तविक नामकरण का कारण बताते हुए आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि मगध (मगधा) नामक क्षत्रिय जाति की निवास-भूमि होने के कारण यह जनपद 'मगध' कहलाया।[1] मगध जनपद के सम्बन्ध में अन्य सब आवश्यक बातों का उल्लेख हम मगध राज्य का विवरण देते समय कर चुके हैं।

काशी राष्ट्र (कासि रट्ठं) बुद्ध-पूर्व युग का सम्भवतः सबसे अधिक शक्तिशाली जनपद था। परन्तु बुद्ध के जीवन-काल में उसकी स्थिति राजनैतिक दृष्टि से अत्यन्त नीची गिर गई और उसकी आय कोसल और मगध देश के राजाओं के झगड़े का कारण बन गई और जब तक काशी जनपद अन्तिम रूप से मगध राज्य का अंग न बन गया, यह झगड़ा चलता ही रहा।

काशी जनपद पूर्व में मगध और पश्चिम में वंस (वत्स) जनपद के बीच में स्थित था। उसके उत्तर में कोसल जनपद था और दक्षिण में उसकी सीमा सम्भवतः सोण (सोन) नदी तक थी, यद्यपि अस्सक जातक में जिस समय की स्थिति का वर्णन है, उसके अनुसार (बुद्ध-पूर्व काल में) काशी राज्य का विस्तार दक्षिण में गोदावरी के तट तक हो गया था, क्योंकि इस जातक में अस्सक राज्य की राजधानी पोतलि नगर को काशी राज्य का नगर बताया गया है। धजविहेठ जातक में काशी राज्य का विस्तार ३०० योजन बताया गया है।

जैसा हम पहले देख चुके हैं, कोसलराज प्रसेनजित् के पिता महाकोसल के समय (छठी शताब्दी ईसवी-पूर्व के मध्य-भाग) में ही काशी जनपद कोसल राज्य का एक अंग हो गया था। हरितमातक जातक और वड्ढकि सूकर जातक के साक्ष्य पर हम देखते हैं कि महाकोसल ने अपनी पुत्री कोसला देवी का विवाह मगधराज बिम्बिसार से कर काशी-ग्राम की आय उसकी स्नान-सामग्री के व्यय के लिये दे दी थी। बाद में अजातशत्रु ने जब अपने पिता बिम्बसार को मार दिया तो कोसला देवी भी दुःखाभिभूत होकर मर गई। इस पर प्रसेनजित् ने अपने

---

१. परमत्थजोतिका, जिल्द पहली, पृष्ठ १३५।

मानजे अजातशत्रु से काशी ग्राम छीनना चाहा, जिस पर दोनों में काफी लम्बा संघर्ष चला और प्रसनजित् की तीन बार हार हुई, परन्तु अन्त में प्रसेनजित् ने अजातशत्रु को बन्दी बना लिया और उदार नीति का अनुसरण कर उसे छोड़ दिया।[१] इतना ही नहीं, अपनी पुत्री वजिरा का विवाह उसने अजातशत्रु के साथ कर दिया और काशी ग्राम पूर्ववत् उसके स्नान और सुगन्ध के व्यय के लिये दिया। इसके बाद प्रसेनजित् के सेनापति दीर्घ चारायण (पालि, दीघ कारायन) ने, जिसके मामा बन्धुल मल्ल को (जो प्रसेनजित् का भूतपूर्व सेनापति था) बिना किसी अपराध के प्रसेनजित् ने मरवा दिया था, राजा के विरुद्ध विडूडभ से अभिसंधि की और जब प्रसेनजित्, जिसकी आयु उस समय अस्सी वर्ष की थी, भगवान् बुद्ध से संलाप में मग्न था (जो मज्झिम-निकाय के धम्मचेतिय-सुत्तन्त में निहित है) दीघ कारायन उसे छोड़कर चल दिया और श्रावस्ती में जाकर विडूडभ को राजा घोषित कर दिया। राजा प्रसेनजित् ने राजगृह में जाकर शरण लेनी चाही। दिन भर का थका हुआ रात में राजगृह पहुँचा, जब कि उसके दरवाजे बन्द हो चुके थे। बाहर ही धर्मशाला में टिका और थका-माँदा उसी रात ठंड लग जाने से मर गया। अजातशत्रु ने उसकी दाह-क्रिया की। उधर विडूडभ ने शाक्यों का विनाश कर अपनी प्रतिहिंसा की तृप्ति की और मार्ग में लौटते हुए आँधी और बाढ़ के बीच अचिरवती (रापती) नदी में स-सैन्य मृत्यु प्राप्त की। इस प्रकार काशी के सहित कोसल राज्य, जिसकी अधीनता में ही शाक्य जनपद था, सब मिलकर मगध राज्य में सम्मिलित हो गये।

ऊपर हम देख चुके हैं कि काशी जनपद के पूर्व में मगध, उत्तर में कोसल और पश्चिम में वंस जनपद थे। अतः इन तीनों जनपदों के साथ बुद्ध-पूर्व काल में काशी राज्य के अनेक संघर्ष चले, जिनका कुछ उल्लेख करना यहाँ आवश्यक होगा। बुद्ध-पूर्व काल में काशी एक स्वतंत्र और समृद्ध राष्ट्र था। वह सप्त रत्नों से युक्त था।[२] पूर्व काल में काशी एक समृद्ध राष्ट्र था, इसका साक्ष्य

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ७६-७८ (पठम-संगाम-सुत्त तथा दुतिय-संगाम-सुत्त); धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २६६।

२. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द पहली, पृष्ठ २१३; जिल्द चौथी, पृष्ठ २५२, २५६, २६०।

देते हुए स्वयं भगवान् बुद्ध ने कहा है, "भूतपुब्बं भिक्खवे ब्रह्मदत्तो नाम कासि-राजा अहोसि अड्ढो महद्धनो महाभोगो महब्बलो, महावाहनो, महाविजितो परिपुण्णकोसकोट्ठागारो।"[1] अर्थात् 'भूतपूर्व युग में भिक्षुओ! ब्रह्मदत्त नामक काशिराज था, जो आढ्य, महाधनवान्, महाभोगसम्पन्न, महावली, महान् वाहनों वाला, महान् विजित (राष्ट्र) वाला था और उसके कोष और कोष्ठागार (धन और अनाज से) भरे हुए थे।" भद्दसाल जातक और धोनसाख जातक से हमें पता चलता है कि काशी देश के राजा सब राजाओं में अग्रणी राजा (सब्ब-राजुनं अग्गराजा) बनने के लिये लालायित रहते थे और उनका स्वप्न सम्पूर्ण जम्बुद्वीप के सम्राट् बनने का रहता था। अस्सक जातक में गोदावरी के तट पर स्थित अस्सक राज्य की राजधानी पोतलि नगर को काशी देश का नगर बताया गया है। इससे विदित होता है कि अपनी समृद्धि के दिनों मे काशी राज्य ने वहाँ तक अपने राज्य का विस्तार कर लिया था। भोजाजानिय जातक से हमें पता चलता है कि काशी राज्य के सम्पूर्ण पड़ोसी राजा इस राज्य की ओर लुब्धक दृष्टि लगाये रहते थे। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त के अनुसार बुद्ध-पूर्व काल के प्राचीन राजा रेणु के ब्राह्मण मंत्री महागोविन्द ने सम्पूर्ण जम्बुद्वीप को जिन सात भागों में विभक्त किया था, उनमें एक काशी राज्य भी था और उपर्युक्त ब्राह्मण मंत्री के द्वारा ही उसकी राजधानी वाराणसी को बसाया गया था। इसी सुत्त के अनुसार धृतराष्ट्र (धतरट्ठ) काशी देश का प्रथम राजा था। जातकों में काशी देश के अनेक राजाओं के उल्लेख है, जैसे कि अंग, उग्गसेन, उदय, धनंजय, विस्ससेन, कलाबु और सयम आदि। काश्यप बुद्ध के समय में काशी देश का राजा किकि नामक था।[2] बौद्ध संस्कृत ग्रथों में इस राजा का नाम कृकि बताया गया है।[3] सुमंगलविलासिनी[4] में काशी देश के राम नामक राजा का उल्लेख है जिसे कुष्ट रोग हो गया था

---

१. महावग्गो (विनय-पिटकं), दुतियो भागो, पृष्ठ २६२।
२. घटिकार-सुत्तन्त (मज्झिम० २।४।१)।
३. दिव्यावदान, पृष्ठ २२; महावस्तु, जिल्द पहली, पृष्ठ ३२५।
४. जिल्द पहली, पृष्ठ २२८-२२९।

और जो कोलिय जाति का आदि पुरुष था, जिसके सम्बन्ध में हम शाक्य और कोलियों की उत्पत्ति पर विचार करते समय कह चुके हैं। सत्तुभस्त जातक में काशी देश के जनक नामक राजा का भी उल्लेख है। महावंस और सुत्त-निपात-अट्ठकथा में अन्य अनेक काशि-राजाओं के उल्लेख हैं। काशी देश के राजाओं का कुल-नाम या उपाधि-नाम ब्रह्मदत्त था, इसलिये अनेक ब्रह्मदत्तों का उल्लेख जातक की कथाओं में किया गया है। पुराणों और महाभारत में भी सौ ब्रह्मदत्तों (शतं वै ब्रह्मदत्तानाम्) का उल्लेख है।[1] इसलिये 'ब्रह्मदत्त" नाम जो जातकों में अनेक बार काशी देश के राजाओं के लिये आया है, व्यक्तिवाचक नाम न होकर कुल-नाम है। उदाहरणतः गंगमाल जातक में काशिराज उदय को ब्रह्मदत्त कहकर पुकारा गया है। यही बात सुसीम जातक, कुम्मासपिण्ड जातक, अट्ठान जातक और लोमसकस्सप जातक से भी विदित होती है। जातकों में काशी देश के राज-कुल को अक्सर अपुत्रक कहा गया है। 'अपुत्तकं राजकुलं।" चुल्लपलोभन जातक में कहा गया है कि ब्रह्मदत्त राजा पुत्रहीन होकर मर गया। इसी प्रकार असिलक्खण जातक में भी कहा गया है कि वाराणसी-नरेश के कोई पुत्र नहीं था। सम्भवतः यही कारण है कि काशी देश के कुछ ब्रह्मदत्त नामक राजा मगध राजवंश के थे, जैसा कि दरीमुख जातक से प्रकट होता है। इसी प्रकार मातिपोसक जातक और सम्बुल जातक में विदेह राजवंश से सम्बन्धित पुरुषों का भी काशिराज होना सिद्ध होता है। काशी देश का वर्णन प्राचीन वैदिक साहित्य, रामायण, महाभारत, पुराणों और प्राचीन जैन साहित्य में भी मिलता है, जिसके विवेचन में हम यहाँ नहीं जा सकते।

बुद्ध-पूर्व काल में काशी और कोसल के जो अनेक संघर्ष हुए, उनमें पहले विजय काशी को मिलती रही, परन्तु अन्त में उसे कोसल राज्य में मिल जाना पड़ा। विनय-पिटकके महावग्ग (कोसम्बक्खन्धको) में तथा कोसम्बी-जातक में काशि-राज ब्रह्मदत्त द्वारा कोसलराज दीघीति पर विजय प्राप्त करने का उल्लेख है। इसी प्रकार कुणाल जातक और ब्रहाछत्त जातक में भी काशि राजाओं के द्वारा

---

१. देखिये हेमचन्द्र रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ७६।

कोशल राज्य को विजित करने का उल्लेख है। सोणनन्द जातक के अनुसार तो काशिराज मनोज ने कोसल के साथ-साथ अंग और मगध को भी जीता। परन्तु फिर भाग्य ने पलटा खाया और महासीलव जातक में हम काशिराज महासीलव को कोसलराज के द्वारा पराजित किये जाते देखते हैं। घट जातक और एकराज जातक से भी यह स्पष्ट हो जाता है कि इस समय तक कोसल देश के राजाओं ने काशी राज्य पर अधिकार स्थापित कर लिया था। इसी तथ्य की पुष्टि सेय्य जातक तथा तेसकुन जातक से भी होती है। जैसा हम पहले कह चुके हैं, प्रसेनजित् के पिता महाकोसल के समय में तो काशी राज्य का कोसल राज्य का एक अंग होना पूर्णतः निष्पन्न हो चुका था, क्योंकि ऐसा होने पर ही काशी ग्राम की आय का उसके द्वारा अपनी पुत्री के स्नान और सुगन्ध के व्यय के लिये देना संभव हो सकता था, जिसका उल्लेख हरितमातंक जातक और वड्ढकि सूकर जातक में है। उसके बाद के इतिहास का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं और कोसल राज्य का विवेचन करते समय लोहिच्च-सुत्त के आधार पर यह भी दिखा चुके हैं कि राजा प्रसेनजित् काशी और कोसल दोनों देशों की आय का उपभोग करता था। विनय-पिटक की अट्ठकथा से हमें मालूम पड़ता है कि राजा प्रसेनजित् का सगा भाई काशिराज (कासिक राजा) के रूप में बुद्ध-काल में प्रतिष्ठित कर दिया गया था।[1] इसी प्रकार की बात मगधराज बिम्बिसार ने अपने किसी सम्बन्धी को अंग-राज के रूप मे प्रतिष्ठापित कर अंग देश के सम्बन्ध में की थी।[2] अंग और मगध के समान काशी और कोशल का भी प्रयोग द्वन्द्व समास के रूप में अक्सर पालि तिपिटक में किया गया है।[3] यह उनकी घनिष्ठ एकात्मता के साथ-साथ उनके स्वतंत्र अस्तित्वों की स्मृति की भी अनुरक्षा करता है और इस प्रकार दोनों जनपदों के लोगों में मधुरतर सम्बन्धों की सूचना देता है।

---

१. देखिये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २७४, टिप्पणी १।

२. घोटमुख-सुत्तन्त (मज्झिम० २।५।४)।

३. "कासिकोसलेसु"। जनवसभ-सुत्त (दीघ० २।५), "कासी च कोसला"। थेरीगाथा, गाथा ११० (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण); मिलाइये अंगुत्तर-निकाय, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ५९।

काशी जनपद की राजधानी प्रसिद्ध बाराणसी (सं० वाराणसी) नगरी थी। दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त तथा महासुदस्सन-सुत्त में वाराणसी की गणना बुद्धकालीन भारत के छह प्रसिद्ध महानगरों में की गई है। गुत्तिल जातक में वाराणसी को सम्पूर्ण जम्बुद्वीप का सर्वश्रेष्ठ नगर बताया गया है। तण्डुलनालि जातक के अनुसार वाराणसी का परकोटा १२ योजन लम्बा था और उसके अन्दर-बाहर तीन सौ योजन का राष्ट्र था। सम्भव जातक में भी वाराणसी नगर का विस्तार १२ योजन बताया गया है। "द्वादसयोजनिकंसकलवाराणसीनगरं"। सरभमिग जातक, अलीनचित्त जातक, जवनहंस जातक और भूरिदत्त जातक से भी इसी तथ्य की सिद्धि होती है। जातक में वाराणसी के अनेक प्राचीन नामों का उल्लेख हुआ है, जैसे कि, सुरुद्धन,[1] सुदस्सन,[2] ब्रह्मवड्ढन,[3] पुप्फवती,[4] रम्मनगर[5] और मोलिनी।[6] उसके एक भावी नाम केतुमती के सम्बन्ध में भी भविष्यवाणी की गई है और कहा गया है कि इस नाम से वह एक सम्पन्न और सुभिक्ष नगरी होगी।[7]

बुद्ध-काल में सामान्यतः काशी जनपद और विशेषतः वाराणसी नगरी सुन्दर, बहुमूल्य वस्त्रों के लिये प्रसिद्ध थी। संयुत्त-निकाय के वत्थ-सुत्त में कहा गया है, "सभी बुने हुए कपड़ों में काशी का बना कपड़ा अग्र (श्रेष्ठ) होता है।[8]" काशी के (कासिक) तथा वाराणसी के (बाराणसेय्यक) सुन्दर, दोनों ओर से पालिश किये हुए वस्त्र का उल्लेख दीघ-निकाय के संगीति-परियाय-सुत्त, दसुत्तर-सुत्त तथा मज्झिम-निकाय के महासकुलुदायि-सुत्तन्त में है। दीघ-निकाय के

---

१. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ १०४।

२. वहीं, जिल्द पांचवीं, पृष्ठ १७७।

३. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ ११९।

४. वहीं, जिल्द छठी, पृष्ठ १३१।

५. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ ११९।

६. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ १५।

७. चक्कवत्ति-सीहनाद-सुत्त (दीघ० ३।३); मिलाइये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३२५ भी।

८. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ६४१।

महापदान-सुत्त में एक उपमा का प्रयोग करते हुए भगवान् ने काशी के सुन्दर वस्त्र का उल्लेख किया है, यह हम पहले देख ही चुके हैं।[१] काशी के बने कपास के वस्त्र सुन्दर माने जाते थे। मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा में कहा गया है, "यहाँ (वाराणसी में) कपास भी कोमल, सूत कातने वाली तथा जुलाहे भी चतुर और जल भी सु-स्निग्ध है। यहाँ का वस्त्र दोनों ही ओर से चिकना होता है। दोनों ही ओर से वह कोमल, मृदु और स्निग्ध दिखाई देता है।[२]" इसी प्रकार 'थेरीगाथा' में एक धूर्त ने जीवकाम्रवन की ओर जाती हुई शुभा भिक्षुणी को काशी के सूक्ष्म वस्त्रों का लोभ देकर भुलाने की चेष्टा की थी। "कासिकसुखुमेहि वग्गुहि सोभसि वसनेहिनूपमे. . .कासिक सुखुमानि धारय[३]"। इसी प्रकार चापा ने अपने प्रव्रजित पति को लौटाने की चेष्टा में उससे कहा था, "काशी के उत्तम वस्त्रों को धारण करने वाली मुझ रूपवती को छोड़कर तुम कहाँ जाओगे[४]।" संयुत्त-निकाय के पब्बत-सुत्त में काशी के रेशम का भी उल्लेख है। जातक-कथाओं से पता लगता है कि वाराणसी में कुसुम्भी रंग के बहुमूल्य वस्त्र बनते थे। वाराणसी का बना (बाराणसेय्यकं) नीलरंग का (नीलवण्ण), दोनों ओर से चिकना (उभतोभाग विमट्ठं) सुन्दर वस्त्र बहुत मूल्यवान् समझा जाता था। 'मिलिन्दपञ्हो' में सागल नगर का जो वर्णन दिया गया है, उससे विदित होता है कि काशी के वस्त्र यवनराजा मिलिन्द के समय में उसकी राजधानी सागल (स्यालकोट) तक में बिकने जाते थे और वहाँ उनकी बड़ी-बड़ी दूकानें थीं।[५] बहुमूल्य सूक्ष्म वस्त्रों के अलावा काशी जनपद चन्दन के लिये भी प्रसिद्ध था।

---

१. देखिये द्वितीय परिच्छेद में दीघ-निकाय के भौगोलिक महत्त्व का विवेचन।

२. "बाराणसियं किर कप्पासो पि मुदु, सुत्तकन्तिकायो पि तन्तवायो पि छेका। उदकम्पि सुचिसिनिद्धं, तस्मा वत्थं उभतो भागविमट्ठं होति। द्वीसु पस्सेसु मट्ठं मुदुसिनिद्धं खायति"।

३. थेरीगाथा, गाथाएँ ३७४ तथा ३७७।

४. "...कासिकुत्तमधारिनिं...कस्सोहाय गच्छसि।" थेरीगाथा, गाथा २९८।

५. देखिये आगे इसी परिच्छेद में कोटुम्बर और मद्द राष्ट्रों के विवरण।

काशी के चन्दन का उल्लेख संयुत्त-निकाय के बेलुद्वारेय्य-सुत्त में है। जातक[१] और अंगुत्तर-निकाय[२] में भी 'कासि विलेपन' और 'कासि चन्दन' का उल्लेख है। एक शिक्षा-केन्द्र के रूप में भी बुद्ध-काल में वाराणसी की ख्याति थी। धम्मपदट्ठकथा में उल्लेख है कि तक्षशिला जैसे प्रसिद्ध शिक्षा-केन्द्र के संख नामक एक ब्राह्मण ने अपने पुत्र सुसीम को वाराणसी में अध्ययनार्थ भेजा था।

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में वाराणसी एक समृद्ध व्यापारिक नगरी थी और तत्कालीन व्यापारिक मार्गों का एक प्रकार से केन्द्र स्थान थी। वाराणसी से सीधा तक्षशिला तक व्यापार होता था। व्यापार और शिक्षा दोनों के लिये ही वाराणसी और तक्षशिला के बीच मनुष्यों का आवागमन होता रहता था। वाराणसी और तक्षशिला के बीच की दूरी तेलपत्त-जातक और सुसीम जातक में दो हजार योजन बताई गई है।[३] वाराणसी के एक व्यापारी को हम प्रत्यन्त देश में जाते और वहाँ लाल चन्दन खरीदते देखते हैं।[४] उत्तरापथ के घोड़ों का एक बड़ा बाजार वाराणसी में लगता था।[५] सैन्धव घोड़े भी वाराणसी के बाजार में बिकने आते थे।[६] हाथियों को सिखाने वाले[७] और अन्न के व्यापारी[८] भी वाराणसी में थे। वाराणसी में एक दन्तकार-वीथि थी जहाँ विशेषतः हाथी-

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ ३५५।

२. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३९१।

३. अंग्रेजी अनुवाद के अनुसार, जिसका अनुसरण लाहा, मललसेकर और रायचौधरी जैसे विद्वानों ने किया है। आनन्द जी के हिन्दी अनुवाद में यह दूरी एक सौ बीस योजन बताई गई है। मैं अभी यह निश्चय नहीं कर सका हूँ कि इनमें से किसे ठीक माना जाय।

४. उद्धरण के लिये देखिये पाँचवें प्रकरण में बुद्धकालीन व्यापार का विवरण।

५. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २८७।

६. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३३८।

७. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २२१।

८. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १९८।

दाँत का काम करने वाले लोग रहते थे।[1] इसी प्रकार वड्ढकि गाम और नेसाद गाम नामक गाँव भी, जहाँ क्रमशः बढ़इयों और शिकारियों की बस्ती अधिक थी, वाराणसी के समीप बसे हुए थे। हाथियों का एक बड़ा मेला वाराणसी में लगता था, और हस्ति सूत्र का पाठ होता था।[2] राजगृह, चम्पा और वैशाली के समान वाराणसी में भी एक महोत्सव मनाया जाता था, जिसमें सुरापान भी किया जाता था।[3] सुरापान जातक से तथा वच्छनख जातक से हमें मालूम पड़ता है कि एक बार हिमालय के कुछ तपस्वी वाराणसी में नमकीन और खट्टे पदार्थों का स्वाद लेने आये थे। पुप्फरत्त जातक से विदित होता है कि वाराणसी में कार्तिक मास में एक मेला लगता था, जिसमें धनवान् घरों की स्त्रियाँ कुसुम्भी रंग के वस्त्र पहन कर निकलती थीं। सँपेरों के भी वाराणसी मे होने का उल्लेख है।[4] वाराणसी के ब्राह्मणों के 'लक्खणमन्तं' (लक्षणमन्त्र—फलित ज्योतिष) में पारंगत होने की बात कही गई है,[5] और इसी प्रकार पालि विवरणों से यह भी ज्ञात होता है कि उस समय वाराणसी में अस्पृश्यता भी प्रचलित थी।[6] वाराणसी की सन्थागारसाला (संस्थागारशाला—परिषद् भवन) का भी एक जातक-कथा में उल्लेख है। यहाँ धार्मिक वाद-विवाद होते रहते थे।[7]

ऊपर हम वाराणसी से तक्षशिला जाने वाले मार्ग का उल्लेख कर चुके हैं। वस्तुतः यह उस मार्ग का अंश ही था जो राजगृह से तक्षशिला तक वाराणसी में होता हुआ जाता था। अतः स्वाभाविक तौर पर वाराणसी पूर्व मे राजगृह

---

१. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९७।

२. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४८।

३. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ ११५।

४. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १९८।

५. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ ३३५; मिलाइये वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ ४५५, जहाँ एक ब्राह्मण यह बताने में कुशल बताया गया है कि कौन-सी तलवार किस योद्धा के लिये शुभ है या अशुभ।

६. वहीं, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २३२।

७. वहीं, जिल्द चौथी, पृष्ठ ७४।

से व्यापारिक मार्ग द्वारा जुड़ी हुई थी। वाराणसी से श्रावस्ती को भी एक मार्ग जाता था। वाराणसी से राजगृह और श्रावस्ती जाने वाले मार्गों का अनेक जगह विनय-पिटक में उल्लेख है और भगवान् बुद्ध ने अपनी चारिकाओं में उनका अनुगमन किया था। अपनी प्रथम यात्रा में उन्हें उरुवेला से गया होते हुए वाराणसी तक आते तो हम देखते ही हैं,[1] अन्य अवसरों पर हम भगवान् को राजगृह से वाराणसी,[2] वैशाली से वाराणसी[3] तथा वाराणसी से श्रावस्ती[4] आते-जाते देखते है। हम पहले देख ही चुके हैं कि वेरंजा में वर्षावास करने के बाद भगवान् वहाँ से क्रमशः सोरेय्य, संकस्स, कण्णकुज्ज और पयाग-पतिट्ठान होते हुए वाराणसी चले गये थे। वैशाली से नदी के द्वारा पाटलिपुत्र होते हुए वाराणसी तक आवागमन था। इसी प्रकार वाराणसी से पयाग-पतिट्ठान तक गंगा और फिर यमुना के द्वारा कोशाम्बी तक नावों का आवागमन था और इन दोनों स्थानों की दूरी, जैसी अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा (मनोरथपूरणी)[5] में दी हुई बक्कुल स्थविर की जीवनी से स्पष्ट विदित होती है, ३० योजन थी।

वाराणसी में भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में खेमियम्बवन नामक एक सुरम्य आम्रवन था। यहाँ हम एक अवसर पर बुद्ध-शिष्य स्थविर उदयन को, भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद, विहार करते देखते हैं। घोटमुख ब्राह्मण से यहीं उनका धार्मिक संलाप हुआ था, जिसका वर्णन मज्झिम-निकाय के घोटमुख-सुत्तन्त में है। वाराणसी में "मिगाचीर" नामक एक अन्य उद्यान था, जिसका जातक[6] में उल्लेख हुआ है। डा० मललसेकर का मत है कि यह सम्भवतः इसिपतन मिगदाय का ही प्राचीन नाम था।[7]

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ७९-८०।
२. वहीं, पृष्ठ २०७।
३. वहीं, पृष्ठ २८१।
४. उपर्युक्त के समान।
५. जिल्द पहली, पृष्ठ १७०।
६. जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ६८, ४७६, ५३६।
७. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६२६।

भगवान् बुद्ध के धर्म-प्रचार कार्य की दृष्टि से वाराणसी का उनके जीवन-काल में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण स्थान था। हम जानते हैं कि बोध-गया में ज्ञान प्राप्त करने के बाद उन्होंने अपना प्रथम उपदेश वाराणसी के इसिपतन मिगदाय में ही दिया था, जिसका उल्लेख हम अभी करेंगे। इसिपतन मिगदाय में प्रथम वर्षा-वास करने के बाद लौटते हुए भगवान् ने वाराणसी के प्रसिद्ध श्रेष्ठिपुत्र यश को प्रव्रजित किया था और उसके बाद उसके विमल, सुबाहु, पुण्णजि (पुण्यजित्) और गवम्पति (गवाम्पति) जैसे कई मित्र भी भिक्षु बने थे।[1] जब भिक्षुओं की संख्या ६० हो गई तो धर्म-प्रचार कार्य की रूपरेखा वाराणसी में ही बनी थी और उसके बाद ही भिक्षुओं को चारों दिशाओं में धर्म-प्रचारार्थ घूमने का आदेश देकर भगवान् स्वयं उरुवेला की ओर चले गये थे।[2] उरुवेल काश्यप की जन्म-भूमि वाराणसी ही थी और इसी प्रकार उपासिका सुप्रिया की भी।

संस्कृत परम्परा के आधार पर वरणा या वरुणा और असी नामक नदियों के बीच में स्थित होने के कारण 'वाराणसी' ने यह नाम पाया है।[3] वरणा नदी वाराणसी को उत्तर-पूर्व में तथा असी, जो एक नाला है, दक्षिण में घेरे हुए हैं। इन नदियों का उल्लेख पालि तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओं में नहीं है। परन्तु महावस्तु[4] में वरणा नदी के किनारे वाराणसी के स्थित होने का उल्लेख है और सिगाल जातक और चक्कवाक जातक में वाराणसी के समीप होकर गंगा के बहने का स्पष्ट वर्णन भी है। महाकवि अश्वघोष ने वाराणसी नगरी का उल्लेख काशी नगरी के रूप में किया है और वाराणसी शब्द का प्रयोग संभवतः वरणा नदी के लिये करते हुए उन्होंने कहा है, "तब क्रम से मुनि ने कोश-गृह के भीतरी भाग के सदृश काशी नगरी को देखा जिसे भागीरथी और वाराणसी

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद); पृष्ठ ८४-८६

२. वहीं, पृष्ठ ८८।

३. देखिये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५००; मिलाइये राइस डेविड्स् : बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ २५ (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०)।

४. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४०२।

एक साथ मिलकर इस प्रकार आलिंगन कर रही थीं, जैसे कि मानो सखी को (आलिंगन कर रही हों)।"[1] आधुनिक वाराणसी गंगा नदी के उत्तरी किनारे पर, गंगा और वरणा के संगम पर ही स्थित है। सातवीं शताब्दी ईसवी में यूआन् चुआङ ने वाराणसी की यात्रा की थी। और उससे पूर्व पाँचवीं शताब्दी ईसवी में फा-ह्यान ने भी। फा-ह्यान ने (पालि परम्परा के समान) काशी का एक जनपद के रूप में वर्णन किया है। परन्तु यूआन चुआङ ने वाराणसी शब्द का प्रयोग एक जनपद के अर्थ में किया है और उसकी राजधानी का भी उसने यही नाम बताया है। यूआङ चुआङ कुशीनगर के २०० 'ली' दक्षिण-पश्चिम एक नगर से ५०० 'ली' चलकर वाराणसी पहुंचा था, जिसे उसने "पो-लो-न-से" (वाराणसी) कहकर पुकारा है।[2] यूआन् चुआङ ने वाराणसी देश का विस्तार ४००० 'ली' और उसकी राजधानी का विस्तार लम्बाई में १८ 'ली' और चौड़ाई में ६ 'ली' बताया है। यूआन् चुआङ के समय में वाराणसी जनपद में ३० संघाराम थे, जिनमें ३००० से अधिक बौद्ध भिक्षु, जो सब सम्मितिय सम्प्रदाय के थे, निवास करते थे। इस प्रदेश में १०० देव-मन्दिरों का भी उल्लेख किया गया है, जिनमें से २० केवल राजधानी में थे। इस समय यहाँ शैव सम्प्रदाय के मानने वालों की संख्या सबसे अधिक थी, ऐसा साक्ष्य यूआन् चुआङ ने दिया है। देव (संभवतः शिव) की १०० फुट ऊँची प्रतिमा का उल्लेख भी यूआन् चुआङ ने किया है। संभवतः आधुनिक वाराणसी के उत्तर-पश्चिम में बकरीया कुण्ड नामक स्थान के समीप स्थित भग्नावशेष ही उस देव-मन्दिर की स्थिति को प्रकट करते है, जहाँ १०० फुट ऊँची उपर्युक्त देव-प्रतिमा को यूआन् चुआङ् ने देखा था। वाराणसी नगर से उत्तर पूर्व, वरणा (पो-लो-न) नदी के पश्चिम की ओर, यूआन् चुआङ् ने १०० फुट ऊँचे एक अशोक-स्तम्भ को भी देखा था।[3] वरणा नदी से १० 'ली' उत्तर-पूर्व में चलकर यूआन् चुआङ् इसिपतन मिगदाय में पहुंचा था, जिसके सम्बन्ध में अब हम कहेंगे।

---

१. बुद्ध-चरित १५।१४।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४६।

३. वहीं, पृष्ठ ४६-४८।

इसिपतन मिगदाय (ऋषिपतन मृगदाव) वाराणसी के समीप एक प्रसिद्ध स्थान था। पालि विवरणों में इसे वाराणसी का ही एक अंग माना गया है। इसीलिये भगवान् जब इसिपतन मिगदाय में विहार करते दिखाये गये हैं, तो प्रायः इस प्रकार कहा गया है, "एकं समयं भगवा बाराणसियं विहरति इसिपतने मिगदाये", अर्थात् "एक समय भगवान् वाराणसी मे ऋषिपतन मृगदाव में विहार करते थे।" हम जानते हैं कि भगवान् बुद्ध ज्ञान प्राप्त करने के बाद सर्व प्रथम यहीं धर्मोपदेश करने आये थे। पंचवर्गीय भिक्षु यहीं उस समय वास कर रहे थे, जिन्हें प्रबोधित करने के लिये भगवान् उरुवेला से यहाँ आये थे।[1] संयुत्त-निकाय का धम्मचक्कपवत्तन-सुत्त, जो भगवान् बुद्ध द्वारा उपदिष्ट प्रथम सुत्त था, यहीं भाषित किया गया था।[2] अनत्तलक्खण-सुत्त, जो भगवान् के दार्शनिक मन्तव्य का आधार है, इसी प्रकार इसिपतन मिगदाय में ही उपदिष्ट किया गया था। भगवान् ने अपना प्रथम वर्षावास इसिपतन मिगदाय में ही किया था। मज्झिम-निकाय के घटिकार-सुत्तन्त तथा सच्चविभंग-सुत्तन्त का उपदेश भी भगवान् ने इसिपतन मिगदाय में विहार करते समय ही दिया था। अनेक बार भगवान् यहाँ आये और धर्मोपदेश किया। संयुत्त-निकाय के पास-सुत्त, पंचवग्गिय-सुत्त और धम्मदिन्न सुत्त का उपदेश भगवान् ने यहीं दिया। इसी निकाय के नलकलाप-सुत्त, सील-सुत्त, कोट्ठित-सुत्त तथा सारिपुत्त-कोट्ठित सुत्त में हम आयुष्मान् सारिपुत्र तथा महाकोट्ठित को इसिपतन मिगदाय में विहार करते देखते हैं। महाकाश्यप के साथ सारिपुत्र को इसिपतन मिगदाय में विहार करते हम संयुत्त-निकाय के सन्तुट्ठ-सुत्त और परम्मरण-सुत्त में देखते हैं। कई अन्य स्थविरों ने भी यहाँ विहार किया, यह हमें संयुत्त-निकाय के छन्न-सुत्त से पता लगता है।

"इसिपतन मिगदाय" का यह नाम क्यों पड़ा, इसका कारण बताते हुए आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि इस स्थान पर ऋषि (इसि) लोग हिमालय

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ७९-८३; मज्झिम निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १०७-११०।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ८०७-८०८।

से वायु-मार्ग से आते हुए उतरते थे (पतन), इसलिये तो यह "इसिपतन" (ऋषिपतन) कहलाता था,[1] और मिगदाय (मृगदाव) यह इसलिये कहलाता था क्योंकि यहाँ एक सुरम्य उद्यान (दाव) था जहाँ मृगों को अभय दान दिया गया था, उन्हें भोजन प्रदान किया जाता था और वे यहाँ स्वच्छन्द होकर विचरते थे।[2] निग्रोधमिग जातक की कथा के अनुसार जब बोधिसत्व मृगराज होकर उत्पन्न हुए थे तो इसिपतन मिगदाय की उस समय की स्थिति एक मृगया-वन के रूप में थी जहाँ काशी-नरेश अक्सर मृगों का शिकार खेला करते थे। मृगराज बोधिसत्व की प्रेरणा पर एक मृग उनके पास प्रतिदिन भोजन के लिये भेज दिया जाने लगा। एक दिन जब एक गर्भिणी हरिणी की बारी आई तो स्वयं बोधिसत्व मृगराज उसके स्थान पर अपने शरीर को अर्पित करने के लिये काशिराज के पास पहुँच गये। यह देखकर काशिराज अत्यन्त प्रभावित हुए और उन्होंने उस वन में मृगया का सर्वथा निषेध कर दिया और वहाँ रहने वाले सब मृगों को अभय दान दिया गया। तभी से इस स्थान का नाम 'मृगदाव' (मिगदाय) अर्थात् मृगों का वन पड़ गया। जैसा हम वाराणसी के विवरण में देख चुके हैं, वहाँ 'मिगाचीर' नामक एक उद्यान था। सम्भवतः यह इसिपतन मिगदाय का ही प्राचीन नाम था। उरुवेला से इसिपतन मिगदाय की दूरी १८ योजन बताई गई है।[3]

इसिपतन मिगदाय में भगवान् बुद्ध ने अपना प्रथम धर्मोपदेश दिया, इसलिये चार बौद्ध तीर्थ स्थानों में उसकी गणना की गई है। महापरिनिब्बाण-सुत्त में भगवान् बुद्ध ने चार संवेजनीय (वैराग्य प्रद) स्थान (चत्तारि संवेजनीयानि ठानानि)

---

१. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८८।

२. वहीं, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६५। 'ललितविस्तर' में भी इससे मिलती-जुलती बात 'इसिपतन मिगदाय' के नाम पड़ने के सम्बन्ध में कही गई है। "अस्मिन् ऋषयः पतिता इति तस्मात्प्रभृति ऋषिपतनसंज्ञोदपादि। अभयदत्ताश्च तस्मिन् मृगाः प्रतिवसन्ति इति तदग्रेण मृगदावस्य मृगदाव इति संज्ञोदपादि।" पृष्ठ १९।

३. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ८९ (हिन्दी अनुवाद)।

बताये हैं, (१) जहाँ तथागत उत्पन्न हुए (लुम्बिनी), (२) जहाँ तथागत ने अनुत्तर सम्यक् सम्बोधि प्राप्त की (बोध-गया), (३) जहाँ तथागत ने अनुत्तर धर्मचक्र का प्रवर्तन किया (इसिपतन मिगदाय) और (४) जहाँ तथागत ने अनुपाधि-शेष-निर्वाण धातु में प्रवेश किया (कुसिनारा)। इस प्रकार इसिपतन मिगदाय चार महान् बौद्ध तीर्थ स्थानों में है और उसका पावन दर्शन साधकों के चित्त में तथागत की स्मृति द्वारा संवेग को उत्पन्न करने वाला है।

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में तो इसिपतन बौद्ध साधकों और धर्म-प्रचारकों का केन्द्र था ही, उसके बाद की शताब्दियों में भी वह अन्धकारग्रस्त लोक के लिये प्रकाश का काम देता रहा। 'महावंस' से हमें पता चलता है कि द्वितीय शताब्दी ईसवी-पूर्व जब लंका के अनुराधपुर में महास्तूप (महाथूप) का शिलान्यास समारोह मनाया गया तो इसिपतन मिगदाय के भिक्षु-संघ को भी उसमें भाग लेने के लिये आमंत्रित किया गया और इस विहार से १२००० स्थविर लंका में इस अवसर पर गये।[1] चीनी यात्री यूआन् चुआङ् सातवी शताब्दी ईसवी में वाराणसी की वरणा नदी से १० 'ली' उत्तर-पूर्व में चलकर इसिपतन मिगदाय में पहुँचा था।[2] यूआन् चुआङ ने लिखा है कि इसिपतन मिगदाय विहार का भवन उस समय आठ भागों में विभक्त था जो सब एक परकोटे से घिरे हुए थे। उस समय यहाँ सम्मितिय सम्प्रदाय के १५०० भिक्षु निवास करते थे। यूआन् चुआङ् ने इसिपतन मिगदाय के संघाराम का विस्तृत विवरण दिया है और उसके आसपास कई स्तूपों और स्तम्भों का उल्लेख किया है। उपदेश देती हुई मुद्रा में भगवान् बुद्ध की एक मानवाकार मूर्ति का उल्लेख यूआन् चुआङ् ने किया है और कहा है कि जिस विहार में यह मूर्ति स्थापित थी, उसके उत्तर-पश्चिम में अशोक द्वारा निर्मित एक स्तूप के भग्नावशेष उस समय धरती के १०० फुट ऊपर विद्यमान थे। यही प्रसिद्ध धमेक या धम्मेक स्तूप है। इसके सामने ७० फुट लम्बा एक स्तम्भ था, जो अत्यन्त चमकीला और स्निग्ध

---

१. महावंस २९।३१ (हिन्दी अनुवाद)।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४८।

था। यह स्तम्भ उस स्थान पर गड़ा हुआ था जहाँ भगवान् बुद्ध ने प्रथम धर्मोपदेश किया था। इसके समीप ही एक अन्य स्तूप था जो उस स्थान को सूचित करता था जहाँ पंचवर्गीय भिक्षुओं ने भगवान् बुद्ध के उपदेश को सुनने के बाद ध्यान किया था। इसी के समीप एक अन्य स्तूप का उल्लेख यूआन् चुआङ् ने किया है जो उस स्थान की स्मृति में था जहाँ पूर्वकालीन ५०० प्रत्येक-बुद्धों ने निर्वाण प्राप्त किया था। इसी प्रकार कुछ अन्य स्तूपों का भी उल्लेख इसिपतन मिगदाय के आसपास इस चीनी यात्री ने किया है।[1]

चीनी महासंघिक विनय में वाराणसी से इसिपतन की दूरी आधा योजन बताई गई है। कुछ अन्य विवरणों में उसे वाराणसी से १० 'ली' उत्तर-पश्चिम स्थित बताया गया है।[2] आधुनिक सारनाथ और उसके आसपास के भग्नावशेष जो प्राचीन इसिपतन मिगदाय के भग्नावशेष हैं आजकल भी पाँच मील की दूरी पर वाराणसी से उत्तर दिशा में स्थित हैं। बुद्धकालीन मृगदाव की स्थिति को हम उत्तर में धमेक (धम्मेक) स्तूप से लेकर दक्षिण में चौखण्डी टीले तक मान सकते हैं।[3]

यूआन् चुआङ ने इसिपतन मिगदाय का जो चीनी नाम (सिन्-ज़ेन-लु-ये-युआन्) दिया है, उसका संस्कृत प्रतिरूप "ऋषिपतन मृगदाव" न होकर 'ऋषिवदन मृगदाव' होता है। 'दिव्यावदान' (पृष्ठ ३०२) में भी यही रूप है। फा-ह्यान के अनुसार जिस ऋषि के नाम पर इस स्थान का नाम 'ऋषिपतन' पड़ा, वह एक प्रत्येक-बुद्ध थे। यह जानकर कि भगवान् बुद्ध का आविर्भाव होने वाला है, इस ऋषि ने इस उद्यान में अपने प्राण त्याग दिये थे। 'मृगदाव' (मृगोद्यान) के स्थान पर 'मृगदाय' (मृगों को दिया गया दान) शब्द का जो प्रयोग चीनी परम्परा ने किया है, उसके अन्दर यही भाव है कि यह स्थान मृगों को दान कर

---

१. वहीं, पृष्ठ ४७-४९, ५५-५७।

२. वहीं, पृष्ठ ४८।

३ मिलाइये आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १०७।

दिया गया था, जो पालि परम्परा के मेल में ही है। यूआन् चुआङ ने इस सम्बन्ध में निग्रोधमिग जातक का भी उल्लेख किया है।[1]

सारनाथ की कई बार खुदाई की गई है, जिसके परिणामस्वरूप उसके पुरावृत्त के सम्बन्ध में काफी बहुमूल्य सामग्री प्राप्त हुई है।[2] इन भग्नावशेषों में अशोक के काल से लेकर पाल-वंश तक के अथवा उसके भी बाद कन्नौज के गहड़वालों (बारहवीं शताब्दी) तक के स्मारक चिन्ह मिले हैं, जो इस स्थान के प्रभूत ऐतिहासिक महत्व के साक्षी हैं। हमारी दृष्टि से चौखण्डी स्तूप, जो सारनाथ के मुख्य क्षेत्र से लगभग आधा मील दक्षिण की ओर वाराणसी से सारनाथ को आने वाली सड़क के बाँईं ओर स्थित है, महत्वपूर्ण है। ८४ फुट ऊँचा ईंटों का यह एक टूटा-फूटा स्तूप है जो एक प्राचीन स्तूप का अवशेष है। इसके ऊपर का भाग अकबर के द्वारा सन् १५८८ ई० में अपने पिता हुमायूँ के यहाँ शरण लेने की स्मृति में बनवाया गया था। मूल स्तूप का निर्माण-काल सम्भवतः दूसरी या तीसरी शताब्दी ईसवी है। यही वह स्थान है जहाँ प्रथम बार भगवान् बुद्ध से पंचवर्गीय भिक्षुओं की भेंट हुई थी। धमेक या धम्मेक स्तूप, जिसकी ऊँचाई १०४ फुट तथा घेरा ९३ फुट है, सम्भवतः उस स्थान को सूचित करता है जहाँ भगवान् बुद्ध ने मैत्रेय बुद्ध के भावी आविर्भाव के सम्बन्ध में भविष्यवाणी की थी। कुछ विद्वान् इसे धर्मचक्र प्रवर्तन का स्थान भी मानते है। इस स्तूप का आरम्भ शायद अशोक ने किया और कुषाण-काल तथा गुप्त-काल में इसका परिवर्द्धन किया गया. जब से यह इसी रूप में चला आ रहा है। चौदहवीं शताब्दी विक्रमी के प्रसिद्ध जैन आचार्य जिनप्रभ सूरि ने सम्भवतः धमेक स्तूप को ही धर्मेक्षा कहकर पुकारा है

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४९, ५४-५६।

२. जिसके परिचय के लिये देखिये आर्कलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, १९०४-०५, पृष्ठ ५९; १९०६-०७, पृष्ठ ६८; १९०७-०८, पृष्ठ ४३; १९१४-१५; पृष्ठ ९७; १९१९-२०, पृष्ठ २६; १९२१-२२, पृष्ठ ४२; १९२७-२८, पृष्ठ ९५।

और उसे वाराणसी से तीन कोस दूर बताया है।[1] अशोक-स्तम्भ, जो अपने मूल स्थान पर आज भी विद्यमान है, इस समय ७ फुट ९ इंच ऊँचा है, परन्तु यह उसका निचला भाग ही है। पूरा स्तूप, जैसा यूआन् चुआङ् के पूर्वोद्धृत विवरण से विदित होता है, ७० फुट ऊँचा था। धर्मराजिक स्तूप, जो अशोक-स्तम्भ के दक्षिण की ओर स्थित है, और जिसकी अब नींव भर ही बची है, सम्भवतः अशोक के काल में बनवाया गया था। ऊपर यूआन् चुआङ् के द्वारा वर्णित इसिपतन मिगदाय के संघाराम का जो विवरण हम दे चुके हैं, उससे जान पड़ता है कि इस यात्री के मतानुसार सम्भवतः अशोक-स्तम्भ ही वह स्थान था जहाँ भगवान् बुद्ध ने अपना प्रथम उपदेश दिया था। परन्तु स्वयं इस स्तम्भ पर ऐसा कोई उल्लेख नहीं है। कुछ विद्वान् धर्मराजिक स्तूप को भी धर्मचक्र-प्रवर्तन का स्थान मानते हैं और कुछ धमेक स्तूप को भी। हमें यूआन् चुआङ् की मान्यता में सन्देह करने का कोई कारण प्रतीत नहीं होता।

मच्छिकासण्ड काशी जनपद का एक प्रसिद्ध नगर था। विनय-पिटक में एक जगह कहा गया है, "आयुष्मान् सारिपुत्र, आयुष्मान् महामौद्गल्यायन . . . काशी (देश) में चारिका करते, जहाँ मच्छिकासण्ड था, वहाँ पहुँचे।[2] इससे स्पष्टतः प्रकट होता है कि मच्छिकासण्ड काशी जनपद में था।[3] चित्र गृहपति यहीं का निवासी था, जो सदा भिक्षुओं की सेवा में तत्पर रहता था। सारिपुत्र, महामौद्गल्यायन, महाकात्यायन, राहुल आदि कई प्रसिद्ध भिक्षु यहाँ गये थे।[4]

---

१. अस्याः क्रोशत्रितये धर्मेक्षानामसंनिवेशो यत्र बोधिसत्वस्योच्चैस्तर-शिखरचुम्बितगगनमायतनम्। विविधतीर्थकल्प, पृष्ठ ७४।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३५३।

३. परन्तु त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित ने उसे वज्जी जनपद में बताया है। (बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय, पृष्ठ १२)। इसे ठीक नहीं माना जा सकता। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने (विनय-पिटक, हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ ५६४ में) मच्छिकासण्ड को ठीक ही काशी देश में माना है, परन्तु बुद्धचर्या, पृष्ठ ४३९ में उन्होंने उसे मगध में दिखा दिया है, जो भी ठीक नहीं कहा जा सकता।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३५३-३५५; संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५७०-५७६।

निगण्ठों का भी मच्छिकासण्ड एक केन्द्र था। मण्डली-सहित निगण्ठ नाटपुत्त को और अचेल काश्यप को हम यहाँ जाते देखते हैं।[1] मच्छिकासण्ड के समीप ही अम्बाटक वन था, जहाँ चित्र गृहपति ने एक विहार के रूप में आगन्तुक भिक्षुओं के निवास आदि की व्यवस्था कर रक्खी थी। सम्भवतः इस विहार का नाम ही 'अम्बाटकाराम' था, जहाँ से आगे वन-प्रदेश में हम स्थविर लकुण्टक भद्दिय को ध्यान करते देखते हैं। "अम्बाटकाराम से आगे वन-प्रदेश में भाग्यशाली भद्दिय समूल तृष्णा का नाश कर ध्यान में बैठा है।[2]" मच्छिकासण्ड नगर के समीप ही मिगपथक नामक गाँव था। धम्मपदट्ठकथा[3] के अनुसार मच्छिकासण्ड श्रावस्ती से ३० योजन दूर था। मच्छिकासण्ड की आधुनिक पहचान करते हुए महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने उसे जौनपुर जिले का मछलीशहर कस्बा बताया है।[4]

कीटागिरि काशियों का एक प्रसिद्ध ग्राम या निगम था, जो काशी जनपद से श्रावस्ती जाने वाले मार्ग के बीच में स्थित था। यहाँ एक बार भगवान् श्रावस्ती से आये थे और फिर यहाँ से आलवी चले गये थे।[5] आचार्य बुद्धघोष ने कीटागिरि को एक जनपद कहा है।[6] विनय-विपरीत आचरण करने वाले अश्वजित् और पुनर्वसु नामक भिक्षु कीटागिरि में रहते थे, जिनके विरुद्ध प्रव्राजनीय कर्म किया गया था।[7] मज्झिम-निकाय के कीटागिरि-सुत्त का उपदेश भगवान् ने कीटागिरि में विहार करते समय ही दिया था। विनय-पिटक की अट्ठकथा में कहा गया है कि कीटागिरि पर दोनों मेघों की कृपा रहती थी और यहाँ बहुत अच्छे शस्य

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५७७-५७९।
२. थेरगाथा, पृष्ठ १३४ (हिन्दी अनुवाद)।
३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७९।
४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३५३, पद-संकेत ३।
५. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४७१-४७२।
६. समन्तपासादिका, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६१३।
७. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३४९-३५२।

उत्पन्न होते थे।[1] महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने कीटागिरि को आधुनिक केराकत (जिला जौनपुर) बताने का प्रस्ताव किया है।[2]

मिगपथक (मृगपथक) गाम मच्छिकासण्ड के समीप अम्बाटक वन के पीछे था। मच्छिकासण्डवासी चित्त गहपति का यह अपना गाँव था जहाँ वह अपने काम से अक्सर आया-जाया करता था, ऐसा हमें संयुत्त-निकाय के सञ्ञोजन-सुत्त से पता लगता है।[3]

काशी जनपद का एक गाँव वासभ गाम नामक था। यहाँ काश्यपगोत्र नामक एक भिक्षु आश्रम बनाकर रहता था जो आगन्तुक भिक्षुओं की सेवा में तत्पर रहता था। एक वार कुछ आगन्तुक भिक्षुओं ने इस भिक्षु को उत्क्षेपण दण्ड दिया। इस पर यह भिक्षु भगवान् बुद्ध से यह बात कहने चम्पा गया और भगवान् ने उसके विरुद्ध किये गये उत्क्षेपण दण्ड को अनुचित बताया।[4] मूल सर्वास्तिवाद के 'विनय-वस्तु' में इस गाँव का नाम 'वासव ग्रामक' दिया हुआ है, जो पालि के 'वासभ गाम' का संस्कृत रूपान्तर ही है। इस ग्रन्थ की परम्परा के अनुसार इस गाँव में सेनांजय नामक एक भिक्षु रहता था।[5]

वासभ गाम और वाराणसी के बीच में तथा वाराणसी के समीप चुन्दत्थिय या चुन्दट्ठिल नामक गाँव था, जो काशी जनपद में ही था।[6]

---

१. वहीं, पृष्ठ १५ (टिप्पणी)।

२. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २७५, पद-संकेत २।

३. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५७०; मिलाइये सारत्थप्पकासिनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ९३।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २९८-३००।

५. "काशिषु वासवग्रामके सेनांजयो नाम भिक्षुः प्रतिवसति।" गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स्, जिल्द तीसरी, भाग द्वितीय, पृष्ठ १९९।

६. मिलाइये, "चुन्दत्थियं गमिस्सामि पेतो सो इति भासति। अन्तरे वासभगामं बाराणसिया सन्तिके।" पेतवत्थु, पृष्ठ २९ (महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)

महाधम्मपाल जातक में काशी राष्ट्र के धम्मपाल गाम का उल्लेख है।[१] डा० विमलाचरण लाहा ने बिना स्रोत का उल्लेख किये काशी के धनपाल गाम का उल्लेख किया है।[२] सम्भवतः इसे धम्मपाल गाम ही होना चाहिये।

एक जनपद के रूप में कोसल देश का विस्तार प्रायः रापती और सरयू के बीच के प्रदेश तक सीमित था। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में उसका विस्तार एक राज्य के रूप में कितना हो गया था और किस प्रकार विडूडभ की मृत्यु के बाद मगध राज्य में उसके सम्मिलित होने की भूमिका बनी, यह सब हम पहले देख चुके हैं। कोसल जनपद का यह नाम क्यों पड़ा, इसके सम्बन्ध में आचार्य बुद्धघोष ने एक मनोरंजक अनुश्रुति का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है। प्राचीन काल में महापनाद नामक एक राजकुमार था जो किसी प्रकार हँसता नहीं था। अनेक लोगों ने उसे हँसाने का प्रयत्न किया, परन्तु किसी को सफलता नहीं मिली। बड़ी-बड़ी दूर से लोग राज-प्रासाद में इस कुमार को हँसाने आये, परन्तु कोई उसे हँसा न सका। अन्त में देवेन्द्र शक्र (सक्क) ने एक स्वर्गीय नट को भेजा जिसने कुमार को हँसा दिया। लोग जब इस दृश्य को देखकर अपने-अपने घर जाने लगे तो मार्ग में उनसे दूसरे लोगों ने पूछा, "कहो कुशल तो है?" (कच्चि भो कुसलं)। जिस स्थान पर यह "कुसल", "कुसल" पूछा गया, उसका नाम बाद मे इसी कारण 'कोसल', प्रदेश पड़ गया।[३] कोसल जनपद के सम्बन्ध में अन्य सब ज्ञातव्य बातों का समावेश पूर्व विवेचित कोसल राज्य के विवरण में हो गया है।

वज्जि जनपद बुद्ध-काल में एक प्रभावशाली गणतंत्र था जिसकी मगध राज्य के साथ प्रतिद्वन्द्विता बुद्धकालीन राजनैतिक इतिहास की एक प्रसिद्ध घटना है। वज्जि संघ में आठ गणतंत्र राज्य सम्मिलित माने जाते थे, जो 'अट्ठकुलिक' कहलाते थे। वज्जियों के इन आठ कुलों में से सर्वाधिक महत्वपूर्ण तो स्वयं वज्जि, लिच्छवि और विदेह ही थे। चौथे गणतंत्र का नाम सम्भवतः 'ञातिक' या 'ज्ञात्रिक'

---

१. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ५० (पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण); जातक, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २५० (हिन्दी अनुवाद)।

२. इण्डिया एज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, पृष्ठ ४२; ट्राइब्स इन एन्शियण्ट इण्डिया, पृष्ठ ११४।

३. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३२६।

था जिसकी नगरी नादिका मानी गई है। वज्जि-संघ के शेष चार गणतंत्रों के सम्बन्ध में पालि स्रोतों के आधार पर तो कुछ निश्चयतः नहीं कहा जा सकता, परन्तु हेमचन्द्र रायचौधरी ने माना है कि वे सम्भवतः उग्र (वैशाली या हत्थिगाम के), भोग (भोगनगर के), कौरव (कुरु देश के ब्राह्मण, जो बुद्ध-पूर्व काल में विदेह में आकर बस गये थे) और ऐक्ष्वाकु (वैशाली के) थे।[1] जहाँ तक पालि साहित्य के आधार पर बुद्ध के जीवनकालीन राजनैतिक भूगोल का सम्बन्ध है, हम केवल विदेह, लिच्छवि और वज्जि गणतंत्रों को महत्त्वपूर्ण मान सकते हैं। इनमें से विदेह का विवेचन हम बुद्धकालीन गणतंत्रों के प्रसंग में कर चुके हैं। अतः यहाँ केवल लिच्छवि और वज्जि गणतंत्रों को ही लेंगे। वस्तुतः लिच्छवियों और वज्जियों में भेद करना कठिन है क्योंकि वज्जि न केवल एक अलग जाति थे, बल्कि लिच्छवि आदि गणतंत्रों को मिलाकर भी उनका सामान्य अभिधान वज्जि (सं० वृजि) था और इसी प्रकार वैशाली न केवल वज्जि संघ की ही राजधानी थी, बल्कि वज्जियों, लिच्छवियों तथा अन्य सदस्य गणतंत्रों की सामान्य राजधानी भी थी। एक अलग जाति के रूप में वज्जियों का उल्लेख पाणिनि ने किया है और कौटिल्य ने भी उन्हें लिच्छवियों से पृथक् बताया है। यूआन् चुआङ् ने भी वज्जि (फु-लि-चिह्) देश और वैशाली (फी-शे-ली) के बीच भेद किया है।[2] परन्तु पालि तिपिटक के आधार पर ऐसा विभेद करना संभव नहीं है। महापरिनिब्बाण-सुत्त में भगवान् कहते हैं कि जब तक वज्जि लोग सात अपरिहाणीय धर्मों का पालन करते रहेंगे, उनका पतन नहीं होगा, परन्तु संयुत्त-निकाय के कलिंगर-सुत्त में वे कहते हैं कि जब तक लिच्छवि लोग लकड़ी के बने तख्तों पर सोयेंगे और उद्योगी बने रहेंगे तब तक अजातशत्रु उनका कुछ नहीं बिगाड़ सकता। इससे प्रकट होता है कि भगवान् वज्जि और लिच्छवि शब्दों का प्रयोग पर्यायवाची अर्थ में ही करते थे। इसी प्रकार विनय-पिटक के प्रथम पाराजिक में पहले तो वज्जि-प्रदेश में दुर्भिक्ष पड़ने की बात कही गई है (पाराजिक पालि, पृष्ठ १९, श्री नालन्दा संस्करण)

---

१. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ११८-१२०।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ८१।

और आगे चलकर वहीं (पृष्ठ २२ में) एक पुत्र-हीन व्यक्ति को यह चिन्ता करते दिखाया गया है कि कहीं लिच्छवि उसके धन को न ले लें। इससे भी वज्जियों और लिच्छवियों की अभिन्नता प्रतीत होती है। वज्जियों के अंग स्वरूप लिच्छवियों की उत्पत्ति के विषय को लेकर कई विद्वानों ने, विशेषतः पाश्चात्य विद्वानों ने, उन्हें अनार्य जाति के माना है (एस० बील ने उन्हें यू-ची जाति के माना था), जिसके विस्तार में जाना हमारे विषय के स्वरूप को देखते हुए ठीक न होगा। इसी प्रकार मनुस्मृति (१०।२२) में जो उन्हें "व्रात्य" क्षत्रिय कहा गया है, उसका विवेचन करना भी इस भौगोलिक प्रबन्ध के उपयुक्त न होगा। इतना कह देना मात्र पर्याप्त होगा कि जहाँ तक पालि तिपिटक के साक्ष्य का सम्बन्ध है, लिच्छवि क्षत्रिय थे। महापरिनिब्बाण-सुत्त में हम उन्हें भगवान् बुद्ध की धातुओं के एक अंश पर अपने हक को स्थापित करते हुए इस प्रकार कहते सुनते हैं, "भगवा पि खत्तियो। मयम्पि खत्तिया। मयम्पि अरहाम भगवतो सरीरानं भागं," अर्थात् "भगवान् भी क्षत्रिय थे, हम भी क्षत्रिय हैं। हम भी उनके धातुओं के एक भाग के अधिकारी हैं।" हम जानते हैं कि उनका यह अधिकार मान लिया गया था और उन्हें भगवान् की धातुओं का एक अंश मिला था। बौद्ध संस्कृत ग्रंथों मे भी लिच्छवियों को 'वाशिष्ठ' गोत्र के क्षत्रिय बताया गया है।[1] जैन साहित्य का भी साक्ष्य यही है कि 'लेच्छई' (लिच्छवि) उच्च कुलीन क्षत्रिय थे। तिब्बती परम्परा के अनुसार शाक्य और लिच्छवि एक ही जाति की विभिन्न शाखायें थीं।[2]

वज्जि गणतंत्र की स्थापना, डा० हेमचन्द्र रायचौधरी के मतानुसार, विदेह के राज-तंत्र के पतन के समय हुई थी।[3] भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में हम उसे उन्नति के चरम उत्कर्ष पर देखते हैं और उनके महापरिनिर्वाण के बाद उसके छिन्न-भिन्न होने के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

वज्जि-संघ का प्रदेश गंगा के उत्तर में नेपाल की तराई तक फैला हुआ था। महापंडित राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार उसमें आधुनिक बिहार राज्य

---

१. देखिये विशेषतः महावस्तु, जिल्द पहली, पृष्ठ २८३।
२. देखिये रॉकहिल : दि लाइफ ऑव दि बुद्ध, पृष्ठ २०३, टिप्पणी।
३. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १२१।

के मुजफ्फरपुर और चम्पारन के जिले तथा दरभंगा और सारन के कुछ भाग सम्मिलित थे।[1] उसके पूर्व में सम्भवतः बाहुमती (बागमती) नदी बहती थी और पश्चिम में मही (गण्डक)। इस प्रकार उसकी सीमा मल्ल गणतंत्र और मगध राज्य से मिलती थी। मल्लों के वह पूर्व या पूर्व-दक्षिण में था और मगध राज्य के उत्तर में। जैसा हम मगध राज्य का विवेचन करते समय देख चुके हैं, गंगा नदी मगध राज्य और वज्जियों की सीमा पर थी और पाटलिपुत्र के समीप जो बहुमूल्य माल उतरता था उसकी चुंगी के सम्बन्ध में दोनों राज्यों में मनमुटाव चल रहा था और अजातशत्रु और उसके मंत्री सुनीध और वस्सकार वज्जियों को उखाड़ फेंकने की योजना बनाते हुए पाटलिपुत्र नगर को बसा रहे थे। भगवान् बुद्ध की दृष्टि इस सब घटना-चक्र की ओर बड़ी निष्पक्ष, संतुलित और तटस्थ थी। वे निःसन्देह गणतंत्र शासन-प्रणाली के प्रशंसक थे और उसकी सफलता चाहते थे। इसलिये उन्होंने एक बार वज्जियों को उनके वैशाली-स्थित सारन्दद चैत्य में सात अपरिहाणीय धर्मों के रूप में इस सम्बन्ध में उचित मर्यादाओं का पालन करने का उपदेश दिया था।[2] बाद में यही बात उन्होंने स्वयं वस्सकार महामात्य के सामने दुहराई थी और उसके मुख पर ही कहा था कि जब तक वज्जी लोग सात अपरिहाणीय धर्मों का पालन करते रहेंगे, उनकी हानि नहीं होने की। संयुत्त-निकाय में भी हम भगवान् बुद्ध को लिच्छवियों के कठोर संयम-पूर्ण जीवन, उद्योग-शीलता और जागरूकता की प्रशंसा करते देखते हैं और इस बात के आश्वासन के साथ कि जब तक लिच्छवि इस प्रकार जीवन यापन करते रहेंगे, राजा अजातशत्रु उनका कुछ बिगाड़ नहीं सकेगा। परन्तु साथ ही हम भगवान् की इस आशंका को भी देखते हैं कि लिच्छवि विलासप्रिय होते जा रहे हैं और उनका पतन निकट है।[3] और वस्तुतः हुआ भी ऐसा ही। भगवान् के परिनिर्वाण

---

१. बुद्धचर्या, पृष्ठ ३८०, पद-संकेत ५।

२. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ ११८-११९।

३. "भिक्षुओ! लिच्छवि लकड़ी के बने तख्त पर सोते हैं, अप्रमत्त हो उत्साह के साथ अपने कर्त्तव्य को पूरा करते हैं। मगधराज वैदेहिपुत्र अजातशत्रु उनके विरुद्ध कोई दाँव-पेंच नहीं पा रहा है। भिक्षुओ! भविष्य में लिच्छवि लोग बड़े

के बाद ही अजातशत्रु लिच्छवियों की शक्ति को छिन्न-भिन्न करने में समर्थ हो गया और लिच्छवियों को केवल अपने आन्तरिक मामलों के अतिरिक्त अन्य बातों में मगध की अधीनता स्वीकार करनी पड़ी। परन्तु यहाँ हम बुद्ध के जीवन-काल से सम्बन्ध रखकर वज्जियों की शक्ति के उत्कर्ष स्वरूप उनके कुछ निर्माण-कार्यों का उल्लेख करेंगे, जिन्होंने बुद्धकालीन राजनैतिक भूगोल को उसका विशिष्ट स्वरूप प्रदान किया।

लिच्छवियों या वज्जियों का सबसे प्रधान निर्माण-कार्य था वैशाली। "वेसालि नाम नगरत्थि वज्जीनं"। "वैशाली नामक वज्जियों का नगर है", इस प्रकार वैशाली की स्मृति पेतवत्थु[1] में की गई है। जैसा हम अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा (मनोरथपूरणी) के साक्ष्य पर पहले देख चुके है, वैशाली नगरी 'विशाला' ('विसाला') भी कहलाती थी। वैशाली लिच्छवियों की राजधानी थी और उसमें वज्जि गणतंत्र अपनी सफलता और शक्ति की अभिव्यक्ति देखता था। वैशाली के सम्बन्ध में विनय-पिटक के महावग्ग में कहा गया है, "उस समय वैशाली ऋद्ध, स्फीत, बहुत जनों से आकीर्ण, अन्नपान-सम्पन्न थी। उसमें ७७०७ प्रासाद, ७७०७ कूटागार, ७७०७ आराम और ७७०७ पुष्करिणियाँ थी।"[2] समन्त-पासादिका[3] में कहा गया है कि वैशाली नगरी की चहारदीवारी उसकी जन-संख्या की निरन्तर वृद्धि के कारण तीन बार विशाल की गई थी, इसलिये उसका नाम

सुकुमार और कोमल हाथ-पैर वाले हो जायेंगे। वे गद्देदार बिछावन पर गुलगुले तकिये लगा कर दिन चढ़ जाने तक सोये रहेंगे। तब मगधराज वैदेहिपुत्र अजातशत्रु को उनके विरुद्ध दाँव-पेंच मिल जायेगा।" संयुत्त-निकाय, (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ३०८।

१. पृष्ठ ४० (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण।)

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २६६। (ठीक संख्या वस्तुतः ७७०७ (सत्तसहस्सानि सत्तसतानि सत्त च) ही है, ७७७७ नहीं, जो प्रेस की गलती के कारण रह गई जान पड़ती है। देखिये जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ५०४ भी)।

३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३९३।

"वैशाली" पड़ा था। "विसालीभूतत्ता वेसालीति वुच्चति।" यही बात आचार्य बुद्धघोष ने उदानट्ठकथा[1] तथा पपंचसूदनी[2] में भी कही है। मनोरथपूरणी[3] (अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा) में इसी कारण वैशाली को 'विशाला' (विसाला) कहकर पुकारा गया है। सुत्त-निपात की अट्ठकथा के अनुसार वैशाली का प्रत्येक प्राकार एक-दूसरे से एक-एक गावुत की दूरी पर (गावुतन्तरेन गावुतन्तरेन) स्थित था। जातक[4] के वर्णनानुसार भी इसी प्रकार वैशाली नगर तीन विशाल प्राकारों से वेष्टित था, जो एक-दूसरे से एक-एक गावुत के फासले पर स्थित थे और जिन पर शिखर सुशोभित थे। "वेसालिनगरं गावुतगावुतन्तरे तीहि पाकारेहि परिक्खित्तं।" मूल सर्वास्तिवाद के 'विनय-वस्तु' में भी वैशाली के तीन 'स्कन्धों' का उल्लेख है।[5] जैन ग्रंथ "उवासगदसाओ" में (वैशाली के) दो उपनगरों का उल्लेख है, वाणिय गाम और कोल्लाग। "वाणिय गाम बाहर उत्तर-पूर्व दिशा में कोल्लाग नामक उपनगर था।"[6] यह बहुत सम्भव है कि वैशाली, वाणिय गाम और कोल्लाग, वैशाली के तीन प्राकारों को ही सूचित करते हों। ललितविस्तर (पृष्ठ २१) में वैशाली का काव्यमय वर्णन करते हुए उसे

---

१. पृष्ठ १८४ "तिक्खत्तुं विसालभूतत्ता।"

२. जिल्द पहली, पृष्ठ २५९।

३. जिल्द पहली, पृष्ठ ४७।

४. जिल्द पहली, पृष्ठ ५०४। तिब्बती दुल्व (विनय-पिटक) के अनुसार भी वैशाली तीन भागों में विभक्त थी। पहले भाग में ७,००० घर थे, जिनके शिखर सोने के थे। दूसरे भाग में चाँदी के शिखर वाले १४,००० घर थे। तीसरे भाग में २१,००० घर थे, जिनके शिखर ताँबे के थे। इनमें क्रमशः उच्च, मध्यम और निम्न वर्गों के लोग रहते थे। देखिये रॉकहिल : दि लाइफ ऑव दि बुद्ध, पृष्ठ ६२।

५. देखिये गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स्, जिल्द तीसरी, भाग द्वितीय, पृष्ठ ६ "तेन खलु समयेन वैशाली त्रिभिः स्कन्धैः प्रतिवसति"।

६. "तस्स णं वाणियगामस्स बहिया उत्तर-पुरत्थिमे दिसी भाये एत्थ णं कोल्लाये नामं संनिवेसे होत्था।" उवासगदसाओ, पृष्ठ २।

"वनराजिसंकुसुमिता पुष्पवाटिका" के समान या सुप्रकाशित अमरपुरी के समान (अमरभवनपुरप्राकाश्या) बताया गया है।

भगवान् बुद्ध ने बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद अपनी पाँचवाँ वर्षा वैशाली में बिताई थी। उससे पूर्व भी वे एक बार राजगृह से वैशाली गये थे, जब वहाँ भयंकर बीमारी पड़ रही थी। उनकी इस यात्रा का उल्लेख हम द्वितीय परिच्छेद में कर चुके हैं। इसके अलावा भी भगवान् दो अन्य अवसरों पर राजगृह से वैशाली गये।[१] एक अन्य अवसर पर हम उन्हें कपिलवस्तु से वैशाली जाते देखते हैं।[२] हम पहले (द्वितीय परिच्छेद में) देख चुके हैं कि महापजावती गोतमी की प्रव्रज्या वैशाली में ही हुई थी और वहीं प्रथम बार भिक्षुणी-संघ की स्थापना हुई थी।[३] भगवान् ने अपनी अन्तिम यात्रा में, जो उन्होंने राजगृह से कुसिनारा तक की, वैशाली में कुछ समय तक निवास किया था और उसके समीप वेलुव गामक नामक एक छोटे से गाँव में तो उन्होंने अपना अन्तिम वर्षावास ही किया था। वैशाली से जब भगवान् अपनी यात्रा में आगे बढ़ने लगे तो उन्होंने इस नगरी के पश्चिम द्वार से निकल कर हाथी के समान अपने सारे शरीर को मोड़कर (नागापलोकितं अपलोकेत्वा) वैशाली की ओर देखा था और आनन्द से कहा था, "आनन्द ! यह तथागत का अन्तिम वैशाली दर्शन होगा।" "इदं पच्छिमकं आनन्द ! तथागतस्स वेसालिदस्सनं भविस्सति"। जिस नगरी के सम्बन्ध में भगवान् तथागत ऐसा कह सके, वह सचमुच धन्य थी। भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद उनकी धातुओं का जो अंश लिच्छवियों को मिला, उस पर उन्होंने वैशाली नगर में ही स्तूप रचना की थी। "एको वेसालिया पुरे"।[४] बुद्ध-परिनिर्वाण के एक शताब्दी बाद भी वैशाली ने बौद्ध धर्म को एक विशेष मोड़ देने में सहायता दी। द्वितीय

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २७९, ४६२।

२. वहीं, पृष्ठ ५१९।

३. वहीं, पृष्ठ ५१९-५२१।

४. बुद्धवंस, पृष्ठ ७४ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

संगीति की कार्यवाही वैशाली में ही वैशाली-निवासी वज्जिपुत्तक भिक्षओं के विनय-विपरीत आचरण के परिणाम-स्वरूप हुई थी।[१]

वैशाली के लिच्छवियों की शासन-पद्धति और उनके न्याय-सम्बन्धी आदर्शों में यद्यपि हम इस समय नहीं जा सकते, परन्तु यह कहना आवश्यक है कि लिच्छवियों का विशाल संस्थागार (परिषद्-भवन) जो वैशाली में था, उनका एक विशेष अलंकार और गौरवपूर्ण निर्माण-कार्य था। यह संस्थागार, सुत्त-निपात की अट्ठकथा के अनुसार, नगर के मध्य में स्थित था। "नगर-मज्झे संथागारं।" लिच्छवि परिषद् का प्रत्येक मुख्य सदस्य 'राजा' कहलाता था।[२] ७७०७ लिच्छवि गणराजा उसमें भाग लेते थे और उनको कार्यवाही प्राचीन भारतीय गणतंत्रीय शासन-पद्धति पर विशेष रूप से प्रकाश डालती है, जिसमें हम यहाँ नहीं जा सकते। उनकी बैठकें अक्सर हुआ करती थीं और वे आपस में मिलकर काम किया करते थे। निश्चित वज्जि-धर्म बने हुए थे। (कुरु लोगों के भी कुरु-धर्म और सिवि लोगों के सिवि-धर्म थे, जिनका वर्णन हम इन जनपदों के विवरण-प्रसंग में करेंगे।) इनका उल्लंघन लिच्छवि लोग नहीं करते थे। वे अपनी मर्यादाओं का पालन करते थे। स्त्रियों और वृद्धों और सभी सन्त-महात्माओं का वे आदर करते थे।[३] लिच्छवियों को सुन्दर वस्त्र पहनने का भी शौक था और वे आत्मगौरव-सम्पन्न क्षत्रिय थे। प्रारम्भ में वे संयमी और कठोर अनुशासनमय जीवन बिताने वाले थे। उनके लकड़ी के तख्तों पर सोने और साव-धान और जागरूक रहने की प्रशंसा स्वयं भगवान् ने संयुत्त-निकाय के कलिंगर-सुत्त में की है। यही दिन लिच्छवियों के चरम उत्कर्ष के थे। जब लिच्छवि लोग भगवान् को भोजन के लिये निमंत्रित करने गये तो दूर से ही उन्हें देखकर भगवान् ने भिक्षुओं से कहा था, "भिक्षुओ! अवलोकन करो लिच्छवियों की इस परिषद् को। भिक्षुओ! लिच्छवि-परिषद् त्रायस्त्रिंश देव-परिषद् के समान जान पड़ती है"।[४]

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५४८।

२. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ २१२।

३. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ११८ (महापरिनिब्बाण-सुत्त)।

४. महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ० २।३)।

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में कई विहार और चैत्य वैशाली में विद्यमान थे। भगवान् बुद्ध ने महापरिनिब्बाण-सुत्त में वैशाली के इन स्थानों में अपने पूर्व विचरण की बात कही है, जैसे कि उदयन-चैत्य, गोतमक-चैत्य, सप्ताम्र (सत्तम्ब) चैत्य, बहुपुत्रक (या बहुपुत्र) चैत्य, सारन्दद चैत्य और महावन-कूटागारशाला।[1] इन सब स्थानों को यहाँ रमणीय बताया गया है और इसी प्रकार संयुत्त-निकाय के चेतिय-सुत्त में भी। वैशाली के चापाल चैत्य और उससे पहले अम्बपाली के आम्रवन में तो इस सुत्त में भगवान् को उस समय कुछ काल तक निवास करते दिखाया ही गया है। दीघ-निकाय के पाथिक सुत्त में हमें यह महत्वपूर्ण सूचना मिलती है कि वैशाली के पूर्व-द्वार के समीप उदयन चैत्य, दक्षिण-द्वार के समीप गोतमक चैत्य, पश्चिम-द्वार के समीप सप्ताम्रक (सत्तम्बक) चैत्य और उत्तर-द्वार के समीप बहुपुत्रक-चैत्य अवस्थित थे।[2]

राजगृह और नालन्दा के बीच तथा राजगृह से पौन योजन दूर बहुपुत्तक निग्रोध (बहुपुत्रक न्यग्रोध) के समीप बहुपुत्र या बहुपुत्रक चैत्य का उल्लेख हम कर चुके हैं, जहाँ पिप्पलि माणवक (बाद में महाकाश्यप) ने प्रथम बार भगवान् बुद्ध के दर्शन किये थे और जिसके समीप ही भगवान् ने अपने इस शिष्य के साथ चीवर-परिवर्तन किया था। वैशाली के इस बहुपुत्रक या बहुपुत्र चैत्य को उस स्थान से भिन्न समझना चाहिये।[3] आचार्य बुद्धघोष ने हमें बताया है कि वैशाली का यह बहुपुत्रक चैत्य भी बहुपुत्रक नामक न्यग्रोध (बरगद) के पेड़ के समीप स्थित था। यहाँ बहुत से पुत्रों की प्राप्ति के लिये स्त्रियाँ अक्सर मनौती करने के लिये आया करती थीं, इसीलिये इसका यह नाम (बहुपुत्रक चैत्य) पड़ा था।[4]

वैशाली के सारन्दद चैत्य में भगवान् ने लिच्छवियों को सात अपरिहाणीय

---

१. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३४।

२. वहीं, पृष्ठ २१८।

३. डॉ० लाहा ने इन दोनों को मिलाकर एक में वर्णन कर दिया है, जो ऊपर से ही गलत और अर्थहीन सा लगता है। देखिये उनकी ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, पृष्ठ ७६।

४. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १२८; उदानट्ठकथा, पृष्ठ ३२३।

धर्मों का उपदेश दिया था।[1] एक बार पाँच सौ लिच्छवियों को भी हम वहाँ इकट्ठे होते देखते हैं।[2]

चापाल चैत्य में आनन्द के साथ संलाप करते हम भगवान् को उनकी वैशाली की अन्तिम यात्रा के समय देखते हैं, जबकि वे वेलुव गामक में वर्षावास के बाद वैशाली में भिक्षार्थ प्रविष्ट हुए थे। इस चापाल चैत्य में भगवान् ने आनन्द से कहा था कि तीन मास बाद वे परिनिर्वाण में प्रवेश करेंगे।[3] दिव्यावदान[4] में भी चापाल चैत्य का उल्लेख है।

वैशाली के सब स्थानों में हमारी दृष्टि से सबसे अधिक महत्वपूर्ण महावन की कूटागारशाला थी। कपिलवस्तु के विवरण में हम देख चुके हैं कि महावन वह प्राकृतिक (सयंजात-स्वयंजात) वन था जो कपिलवस्तु से हिमालय के समानान्तर वैशाली तक फैला हुआ था। चूँकि यह एक विशाल (महा) क्षेत्र में फैला हुआ था, इसलिये 'महावन' कहलाता था।[5] वैशाली के समीप इसी महावन में एक शाला बनी हुई थी, जो विशाल स्तम्भों पर एक प्रासाद के रूप में निर्मित थी और जिसके ऊपर एक कूट या शिखर था। इसीलिये यह "महावन-कूटागारशाला" या महावन में स्थित कूटागारशाला कहलाती थी। इसका आकार एक देव विमान (देवताओं के आवास) के रूप में था।[6] वैशाली की यह महावन कूटागारशाला भगवान् बुद्ध और उनके शिष्यों के धर्म-प्रचार कार्य से घनिष्ठ रूप से सम्बन्धित है। मज्झिम-निकाय के चूल-सच्चक सुत्तन्त, महा-सच्चक-सुत्तन्त तथा सुनक्खत्त-सुत्तन्त का उपदेश यहीं दिया गया था। आनन्द के महावन कूटागारशाला में विहार करने का उल्लेख इसी निकाय के गोपक-मोग्गल्लान-सुत्त में है। वैशाली की महावन कूटागारशाला में ही विहार करते

---

१. महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ० २।३)।
२. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १६७।
३. महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ० २।३)।
४. पृष्ठ २०७।
५. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०९।
६. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०९।

समय एक बार हम भगवान् को भिक्षुओं से यह कहते देखते हैं, "भिक्षुओ ! मैं आधा महीना एकान्तवास करना चाहता हूँ। भिक्षान्न लाने वाले को छोड़ मेरे पास कोई न आने पावे।"[1] हम पहले देख चुके हैं कि इसी प्रकार तीन महीने का एकान्तवास भगवान् ने कोसल देश के इच्छानंगल नामक ब्राह्मण-ग्राम में किया था। संयुत्त-निकाय के पज्जुन्नधीतु-सुत्त, चुल्ल-पज्जुन्नधीतु-सुत्त, आयतन-सुत्त, ततियवत-सुत्त, कलिंगर-सुत्त, विसाख-सुत्त, महालि-सुत्त, अनुराध-सुत्त, पठम-गेलञ्ञ-सुत्त, दुतिय-गेलञ्ञ-सुत्त, चेतिय-सुत्त, लिच्छवि-सुत्त और पठम-छिग्गल-सुत्त का उपदेश भगवान् ने वैशाली की कूटागारशाला में विहार करते समय ही दिया था। यहीं पर महाप्रजापती गोतमी को भिक्षुणी बनने की अनुमति मिली थी और भिक्षुणी-संघ की स्थापना का मार्ग खुला था।[2] भगवान् ने तित्तिर जातक का उपदेश महावन की कूटागारशाला में ही दिया था।

वैशाली की गणिका अम्बपाली का आम्रवन वैशाली के समीप, उसकी दक्षिण दिशा में, अवस्थित था। भगवान् बुद्ध अपनी अन्तिम यात्रा में जब वैशाली गये तो सर्वप्रथम इसी आम्रवन में ठहरे और इस गणिका के भोजन को स्वीकार किया। यह आम्रवन, जो इसकी स्वामिनी के नाम पर अम्बपालि वन कहलाता था, बुद्ध-प्रमुख भिक्षु-संघ को इसी अवसर पर दान कर दिया गया था। संयुत्त-निकाय के सब्ब-सुत्त में हम स्थविर अनुरुद्ध और धर्मसेनापति सारिपुत्र को अम्बपालि के आम्रवन में विहार करते देखते हैं।

वालुकाराम (वालिकाराम भी पाठान्तर) नामक एक अन्य विहार वैशाली में था। द्वितीय धर्म-संगीति की कार्यवाही यहीं हुई थी।[3]

अनेक बौद्ध विहारों और आरामों के अलावा वैशाली में एक "एकपुण्डरीक" नामक परिव्राजकाराम भी था जहाँ वच्छगोत्त परिव्राजक रहता था। एक बार भगवान् बुद्ध स्वयं इस परिव्राजकाराम में गये थे और वच्छगोत्त परिव्राजक से

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ७६५।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५१९-५२१।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५५६; महावंस ४।६३ (हिन्दी अनुवाद); दीपवंस ५।२९ के अनुसार यह सभा महावन की कूटागारशाला में हुई।

उनका संलाप हुआ था, जो मज्झिम-निकाय के तेविज्ज-वच्छगोत्त-सुत्त में निहित है।

दीघ-निकाय के पाथिक-सुत्त में वैशाली के "तिन्दुकखाणु" नामक परिव्राजकाराम का उल्लेख है, जहाँ हम अचेल पाथिकपुत्र को जाते देखते हैं।

वैशाली निगण्ठों का भी एक प्रमुख-केन्द्र स्थान था। भगवान् महावीर का जन्म वैशाली के 'कुण्डपुर' नामक एक उपनगर में हुआ था। इसीलिये जैन शास्त्रों में उन्हें "वेसालिय" (वैशालिक) कहकर पुकारा गया है। जैन शास्त्रों के अनुसार भगवान् महावीर ने वैशाली में अपने बारह वर्षावास किये थे। जहाँ तक पालि साहित्य का सम्बन्ध है, हम निगण्ठ नाटपुत्त को अधिकतर नालन्दा में ही निवास करते देखते हैं। हाँ, सच्चक निगण्ठपुत्त को हम अवश्य वैशाली में निवास करते देखते हैं। उसका भगवान् से कई बार संलाप भी हुआ था। मज्झिम-निकाय के चूल-सच्चक-सुत्तन्त और महासच्चक-सुत्तन्त में उन्हें देखा जा सकता है।

अचेल कोरखत्तिय और अचेल पाथिकपुत्त भी, जैसा हमें दीघ-निकाय के पाथिक-सुत्त से विदित होता है, वैशाली में ही निवास करते थे। महालि, अभय, साल्ह जैसे कई प्रभावशाली भिक्षु बुद्ध-धर्म के प्रभाव में आये थे और सीहा, जेन्ती, वासेट्ठी और अम्बपाली जैसी कई वैशालिक महिलाओं ने भिक्षुणी-संघ में प्रवेश किया था।

वैशाली नगर के अन्दर, उसके पश्चिम द्वार के समीप, लिच्छवियों की प्रसिद्ध अभिषेक मंगलपुष्करिणी थी, जिसमें उनकी परिषद् के सदस्यों का अभिषेक कराया जाता था। इस पुष्करिणी पर पहरा रहता था, ऐसा भद्दसाल जातक और धम्मपदट्ठकथा में वर्णित बन्धुल मल्ल की कथा से स्पष्ट विदित होता है।

महाकवि अश्वघोष के वर्णनानुसार भगवान् बुद्ध ने वैशाली के जलाशय में मांस-भक्षक मर्कट नामक राक्षस को दीक्षित किया था।[1] दिव्यावदान[2] में भी भगवान् बुद्ध के वैशाली के मर्कट ह्रद में जाने का उल्लेख है। महाकवि अश्वघोष ने कहा है कि वेणुमती गाँव (पालि का वेलुव गामक) में वर्षावास करने के पश्चात्

---

१. बुद्ध-चरित २१।१६।

२. पृष्ठ १३६, २००।

भगवान् मर्कट जलाशय के किनारे बैठ गये।[1] (पालि परम्परा के अनुसार भगवान् वलुव गाम में वर्षा ऋतु बिताकर वैशाली के चापाल चैत्य में आनन्द के साथ ध्यान के लिये बैठे थे[2]।) दिव्यावदान[3] तथा अवदान-शतक[4] के प्रमाण के आधार पर मर्कट ह्रद के किनारे पर ही (मर्कट ह्रदतीरे) महावन कटागारशाला स्थित थी।

वैशाली के समीप अवरपुर वन-सण्ड नामक एक वन-खण्ड था। मज्झिम-निकाय के महासीहनाद-सुत्तन्त में भगवान् के यहाँ एक बार विचरने का उल्लेख है।

पाँचवी शताब्दी ईसवी में भारत आने वाले चीनी यात्री फा-ह्यान ने वैशाली नगर के उत्तर में एक वन का उल्लेख किया है जिसमें उसने एक दो-मंजिले विहार को देखा था।[5] यह वन महावन था और विहार वहाँ की कूटागारशाला ही थी। यूआन् चुआङ ने, जो सातवीं शताब्दी ईसवी में भारत आया, इस दो मंजिले विहार और उसकी पुरानी बुनियादों पर खड़े एक स्तूप का उल्लेख किया है।[6] यह वर्णन फा-ह्यान द्वारा निर्दिष्ट महावन कूटागारशाला का ही है। यह स्थान आजकल कोल्हुआ कहलाता है और बसाढ़ से करीब ३ मील उत्तर-पश्चिम में स्थित है। उस समय की तरह आज भी एक अशोक-स्तम्भ यहाँ खड़ा है। यूआन् चुआङ द्वारा निर्दिष्ट महायानी परम्परा के अनुसार यहाँ भगवान् बुद्ध ने समन्त-मोक्ष-धरणी-सूत्र का उपदेश दिया था।[7] वैशाली के उत्तर-पश्चिम में यूआन्

---

१. बुद्ध-चरित २३।६३।

२. देखिये पीछे द्वितीय परिच्छेद में भगवान् बुद्ध की चारिकाओं का विवरण।

३. पृष्ठ १३६ "एकस्मिन् समये भगवान्····वैशाल्यां विहरति स्म मर्कटह्रदतीरे कूटागारशालायाम्।"

४. पृष्ठ ८ "बुद्धो भगवान्····वैशालीमुपनिश्रित्य विहरति मर्कटह्रदतीरे कूटागारशालायाम्।"

५. लेग्गे : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ७२; मिलाइये गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४१।

६. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७१।

७. उपर्युक्त के समान।

चुआङ ने उस स्थान को भी देखा था जहाँ खड़े होकर तथागत ने अन्तिम बार वैशाली का अवलोकन किया था।[१] फा-ह्यान ने भी इस स्थान पर निर्मित एक स्तूप का उल्लेख किया है।[२] इस स्थान के दक्षिण में कुछ दूर चलकर यूआन् चुआङ ने एक अन्य स्तूप को देखा था, जो आम्रपालि वन की स्थिति को अंकित करता था।[३] फा-ह्यान ने आम्रपालि (जिसे उसने अम्रदारिका कहकर पुकारा है) के इस वन को नगर के ३ 'ली' दक्षिण में देखा था।[४] अतः इन दोनों यात्रियों के वर्णनानुसार आम्रपालि का वन वैशाली के दक्षिण में ही था, जैसा कि पालि विवरणों से भी उसकी स्थिति के सम्बन्ध में ज्ञात होता है। आम्रपालि-वन के समीप ही वह स्थान एक स्तूप के द्वारा अंकित था, जहाँ तथागत ने कहा था कि तीन मास बाद वे परिनिर्वाण में प्रवेश करेंगे। फा-ह्यान और यूआन् चुआङ दोनों ने इस स्तूप को देखा था।[५] महापरिनिब्बाण-सुत्त में हम देखते हैं कि भगवान् ने यह भविष्य-वाणी चापाल चैत्य मे की थी। अतः फा-ह्यान और यूआन् चुआङ द्वारा निर्दिष्ट यह स्थान चापाल चैत्य ही होना चाहिये। इस स्थान के समीप ही यूआन् चुआङ ने एक अन्य स्तूप का उल्लेख किया है और १००० पुत्रों की कहानी कही है।[६] फा-ह्यान ने भी इसी प्रकार १००० पुत्रों और उनसे सम्बद्ध स्तूप का उल्लेख किया है।[७] इन चीनी यात्रियों द्वारा निर्दिष्ट यह स्तूप सम्भवतः बहुपुत्रक चैत्य स्थिति को सूचित करता था। हम पहले देख ही चुके हैं कि बहुपुत्रक चैत्य वैशाली के उत्तर द्वार के समीप स्थित था। फा-ह्यान ने उस स्थान को भी एक स्तूप के

---

१. वही, पृष्ठ ६८।

२. गाइल्स : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४१-४२।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६९।

४. गाइल्स : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४१।

५. गाइल्स : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४३; वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७१।

६. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङस् ट्रैविल्स इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७०।

७. गाइल्स : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४२-४३।

द्वारा अंकित देखा था जहाँ द्वितीय बौद्ध संगीति बुद्ध-परिनिर्वाण के करीब १०० वर्ष बाद वैशाली में हुई थी।[1]

वैशाली की आधुनिक स्थिति के सम्बन्ध में आज कोई सन्देह नहीं रह गया है। कनिंघम ने उसे आधुनिक बसाढ़ गाँव से मिलाया था, जो बिहार राज्य के मुजफ्फरपुर जिले में है।[2] सन् १९०३-०४ में बसाढ़ के समीप उसकी उत्तर दिशा में 'राजा विशाल का गढ़' नामक स्थान की जो खुदाई हुई उसमें कुछ मिट्टी की मुद्राएँ मिलीं जो विभिन्न युगों से सम्बन्धित हैं। इनमें से कुछ पर स्पष्टतः अंकित है "वेसालि अनु-ट-कारे सयानक" (वैशाली का दौरा करने वाला पदाधिकारी), जिससे आधुनिक बसाढ़ के इस स्थान के प्राचीन वैशाली होने के सम्बन्ध में कोई सन्देह नहीं रह गया है।

वैशाली के विभिन्न स्थानों का परिचय हम पालि स्रोतों के आधार पर पहले दे चुके हैं। चीनी यात्रियों के विवरणों से उन पर जो अधिक प्रकाश पड़ता है, उसका भी उल्लेख कर चुके हैं। अब बसाढ़ की पुरातत्व सम्बन्धी खोजों और उसके परिपार्श्व के साथ उन दोनों का मिलान करने पर वैशाली के विभिन्न बुद्धकालीन स्थानों की आधुनिक स्थिति के सम्बन्ध में जो बातें हमारे सामने आती हैं, उनका कुछ उल्लेख कर देना यहाँ आवश्यक होगा। जैसा हम पहले देख चुके हैं, उदयन-चैत्य वैशाली के पूर्व द्वार के समीप स्थित था। आज इस स्थान की स्थिति पर बसाढ़ के पूर्व में कामन छपरा के चौमुखी महादेव विराजमान हैं। वैशाली के उत्तर में पालि विवरण के अनुसार जहाँ बहुपुत्रक चैत्य था, वहाँ आज बनिया गाँव के बाहर चौमुखी महादेव की स्थिति है। भगवान् बुद्ध ने जहाँ वैशाली का नागावलोकन किया था, वह स्थान, जैसा हम यूआन् चुआङ के साक्ष्य पर देख चुके हैं, वैशाली के उत्तर-पश्चिम में था। फा-ह्यान के विवरण के अनुसार भी बुद्ध वैशाली के पश्चिमी द्वार से बाहर निकले थे और वहीं उन्होंने नागावलोकन किया था।[3] अतः पालि विवरण के सप्ताम्रक चैत्य के आसपास

---

१. वही, पृष्ठ ४३-४४।

२. आर्कोलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया, जिल्द सोलहवीं, पृष्ठ ६।

३. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४१-४२।

ही इस स्थान को होना चाहिये, क्योंकि यह चैत्य जैसा हम पहले देख चुके है, वैशाली के पश्चिम द्वार के समीप ही स्थित था। अतः नागावलोकन के स्थान को, बसाढ़ के समीप इसी दिशा में स्थित बोधा नामक स्थान के आसपास कहीं होना चाहिये। चापाल चैत्य, जहाँ पालि विवरण के अनुसार भगवान् बुद्ध ने यह भविष्यवाणी की थी कि वे तीन मास बाद महापरिनिब्बाण में प्रवेश करेंगे और जिसका उल्लेख यूआन् चुआङ ने भी किया है, जिसका निर्देश हम कर चुके हैं, आधुनिक 'भीमसेन का पल्ला' नामक स्थान के आसपास होना चाहिये, जो अशोक-स्तम्भ से एक मील उत्तर-पश्चिम में है। गोतमक चैत्य के लिये, जो पालि विवरण के अनुसार वैशाली के दक्षिण द्वार के समीप स्थित था, आधुनिक परमानन्दपुर से कोसा के गुप्त महादेव तक की स्थिति को निश्चित कर देना ठीक होगा।[1] सारन्दद चैत्य के लिये आज यह बताना कठिन है कि इसकी ठीक स्थिति क्या थी। जैसा हम पहले देख चुके हैं, कोल्हुआ ही, जहाँ आज अशोक-स्तम्भ खड़ा है, बुद्ध-कालीन महावन कूटागारशाला थी। यदि पूर्वोक्त बौद्ध संस्कृत ग्रन्थों के प्रमाण को हम ठीक मानें तो इसके समीप ही मर्कटह्रद को होना चाहिये। इस प्रकार कोल्हुआ से कुछ दूर आज जो 'रामकुण्ड' नामक पोखर है, उसे आसानी से बुद्ध-कालीन 'मर्कटह्रद' माना जा सकता है। अम्बपालि-वन वैशाली से कुछ दूर दक्षिण दिशा में था ही। इधर दक्षिण दिशा में ही वालुकाराम विहार रहा होगा। सम्भवतः आधुनिक भगवानपुर रत्ती को उसकी स्थिति पर माना जा सकता है। जैसा हम पहले देख चुके हैं, वैशाली की 'मंगल पुष्करिणी' नगर के भीतर और उसके पश्चिमी द्वार के समीप स्थित थी। इसे वर्तमान 'राजा विशाल के गढ़' के पश्चिम में स्थित 'बावन पोखर' से मिलाया जा सकता है।

अभी हाल में (सन् १९५८ ई०) स्वर्गीय डॉ० अनन्त सदाशिव अल्तेकर के निर्देशन में वैशाली की खुदाई हुई है, जिससे लिच्छवियों द्वारा निर्मित स्तूप की प्राप्ति की सम्भावना हुई है। यह स्तूप राजा विशाल के गढ़ और अशोक-स्तम्भ के बीच की स्थिति में प्राप्त हुआ है। आगे खोज जारी है।

---

१. ये स्थितियाँ महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के द्वारा सुझाई गई हैं। देखिये उनकी 'साहित्य-निबन्धावली', पृष्ठ १८४।

वज्जियों की इस महानगरी और उसके कुछ स्थानों के संक्षिप्त परिचय के बाद अब हम उनके कुछ अन्य निगमों और ग्रामों के विवरण पर आते हैं। कोटिगाम (कोटिग्राम) वज्जि जनपद में था। भगवान् ने अपनी अन्तिम यात्रा में, जिसका वर्णन दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में है, पाटलिपुत्र पर गंगा को पार कर वज्जि जनपद के इस गाँव में विश्राम किया था। जैसा हम पहले देख चुके हैं, गंगा नदी मगध राज्य और वज्जि गणतंत्र की सीमा थी। सयुत्त-निकाय के कोटिगाम-वग्ग के दस सुत्तों का उपदेश भगवान् ने कोटिगाम में निवास करते समय ही दिया था।[1] महाकवि अश्वघोष ने बुद्ध-चरित (२२।१३) में कोटिग्राम को 'कुटी' कहकर पुकारा है।

नादिक, नादिका, नातिका या ञातिका गाँव वज्जि जनपद में था। महाकवि अश्वघोष ने इसे 'नादीक' कहकर पुकारा है।[2] महापरिनिब्बाण-सुत्त के अनुसार यह कोटिग्राम और वैशाली के बीच में स्थित था[3]। यह ञातिक लोगों का गाँव था, जो वज्जी संघ के ही एक अंग थे। ञातिगाम होने के कारण ही यह ञातिक या ञातिका कहलाता था। इसी अर्थ को ज्ञापित करते हुए आचार्य बुद्धघोष ने कहा है "ञातिकेति द्विन्नं ञातकानं गामे।"[4] ञातिका गाँव नादिका नामक एक तड़ाग (तलाक) के समीप स्थित था। इसलिये इस तड़ाग के नाम पर (नादिका ति एतं तलाकं निस्साय) इस गाँव का नाम नादिका भी पड़ गया था।[5] इस प्रकार हम देखते हैं कि 'ञातिक' लोगों के नाम पर इस गाँव का नाम 'ञातिक' पड़ा था और 'नादिका' नामक तड़ाग के समीप होने के कारण यही गाँव 'नादिका' कहलाता था। ञातिक (सं० ज्ञातृक) जाति को महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने वर्तमान जथरिया या जैथरिया से मिलाया है और नादिका की आधुनिक स्थिति

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ८११-८१३।

२. बुद्ध-चरित २२।१३।

३. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १२६-१२७।

४. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५६।

५. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४२४; मिलाइये सुमंगलविलासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५४३।

की खोज करते हुए उसे वर्तमान रत्ती परगना, जिला मुजफ्फरपुर, बिहार, से मिलाया है,[१] और एक दूसरी जगह उसे वर्तमान जेथरडीह, मसरख, जिला सारन, बताया है।[२] यूआन् चुआङ् ने वैशाली और पटना के बीच गंगा के किनारे 'नातक' नामक स्थान का उल्लेख किया है।[३] वुडवर्ड का विचार है कि यही बुद्ध-कालीन नादिका था।[४] हम नादिका की इसी स्थिति को अधिक ठीक समझते हैं। नादिका में एक गिंजकावसथ या ईंटों का बना आवास था, जहाँ भगवान् अपनी अन्तिम यात्रा में ठहरे थे और उसके पहले भी कई बार यहाँ गये थे। पहली बार जब भगवान् नादिका में गये तो वहाँ के निवासियों ने उनके आवास के लिये इस विश्राम-गृह को बनवाया था जो बाद में एक महाविहार के रूप में विकसित हो गया।[५] जनवसभ-सुत्त का उपदेश यहीं दिया गया था।[६] एक अन्य अवसर पर भी भगवान् यहाँ गये थे और संयुत्त-निकाय के उपस्सुति-सुत्त का उपदेश दिया था।[७] संयुत्त-निकाय के सभिय-सुत्त में हम आयुष्मान् सभिय कात्यायन को ञातिका (नादिका) के गिंजकावसथ में विहार करते देखते हैं। स्थविर अनुरुद्ध, किम्बिल और नन्दिय ने भी भगवान् के साथ कुछ समय तक यहाँ निवास किया था। संयुत्त-निकाय के पठम, दुतिय और ततिय गिंजकावसथ सुत्तों में हम आनन्द के साथ भगवान् को नादिका के गिंजकावसथ मे विहार करते देखते हैं। इन्हीं सुत्तों से हमें यह सूचना मिलती है कि अशोक, कालिंग, निकत, कटिस्सह, तुट्ठ, सन्तुट्ठ, भद्र और सुभद्र नामक उपासक इस गाँव में रहते थे, जिनकी मृत्यु के सम्बन्ध मे आनन्द ने तथागत से निवेदन किया था। मज्झिम-निकाय के चूल-गोसिंग-सुत्तन्त का उपदेश

---

१. बुद्धचर्या, पृष्ठ ४९३, पद-संकेत २।

२. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १२७, पद-संकेत १; पृष्ठ ६११।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ८६।

४. बुक ऑव ग्रेजुअल सेइंग्स, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २१७, पद-संकेत ४।

५. पपंचसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ४२४।

६. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १६०-१६६।

७. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ४८९।

भगवान् ने यहीं दिया था। इसी प्रकार अंगुत्तर-निकाय[1] के अनेक सुत्तों का उपदेश नादिका में दिया गया।

नादिका के समीप ही "गोसिंग सालवन" (गोशृंग शालवन) नामक एक सुरम्य शाल-वन था, जहाँ भगवान् बुद्ध के कुछ भिक्षु-शिष्यों ने विहार किया था।[2] इस शाल-वन का नाम "गोसिग सालवन" इसलिये पड़ा क्योंकि इसके बीच में एक बड़ा शाल-वृक्ष था जिसकी शाखाएँ गाय (गो) के सींगों (सिंग) की तरह उसके तने से निकली हुई थी।[3]

उक्काचेल (या उक्काचेला) वज्जि जनपद का एक प्रसिद्ध गाँव था, जो गंगा नदी के किनारे राजगृह से वैशाली जाने वाले मार्ग पर स्थित था और वैशाली के अधिक समीप था।[4] मज्झिम-निकाय के चूल-गोपालक-सुत्तन्त[5] और संयुत्त-निकाय के चेल-सुत्त[6] का उपदेश भगवान् ने उक्काचेल गाँव में ही दिया था। धर्मसेनापति सारिपुत्र भी एक बार उक्काचेल गये थे और यहाँ उन्होंने निब्बान-सुत्त का उपदेश सामण्डक नामक परिव्राजक को दिया था।[7] बाद में इस गाँव में गंगा नदी की रेती में विहार करते हुए भगवान् ने कहा था कि बिना सारिपुत्र और मौद्गल्यायन के भिक्षु-मंडली सूनी सी लगती है। निश्चयतः संयुत्त-निकाय के इस चेल-सुत्त में वर्णित भगवान् की यह उक्काचेल की यात्रा युगल अग्र-श्रावकों के परि-निर्वाण के बाद ही हुई थी। इसके बाद भगवान् के भी आयु-संस्कार समाप्त होने में अधिक दिन नहीं थे। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने सुझाव दिया है कि उक्काचेल सम्भवतः विहार राज्य के आधुनिक सोनपुर या हाजीपुर के आसपास कहीं था।[8]

---

१. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३०३, ३०६; जिल्द चौथी, पृष्ठ ३१६, ३२०।
२. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १२७-१३२।
३. परंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २३५।
४. उदान-अट्ठकथा, पृष्ठ ३२२।
५. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३६-१३७।
६. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ६९३-६९४।
७. वहीं, पृष्ठ ५६३।
८. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३६, पद-संकेत १; पृष्ठ ६१५।

वैशाली से अपनी अन्तिम यात्रा पर कुसिनारा की ओर चलते हुए भगवान् जिस प्रथम स्थान पर ठहरे वह भण्डगाम था। अंगुत्तर-निकाय[1] के स्पष्ट साक्ष्य पर यह गाँव वज्जि जनपद में था। भण्डगाम से चलकर भगवान् हत्थिगाम पहुचे थे। अतः भण्डगाम की स्थिति वैशाली और हत्थिगाम के बीच में थी।

हत्थिगाम वज्जि जनपद का एक गाँव था। संयुत्त-निकाय के वज्जि-सुत्त में इसे स्पष्टतः वज्जियों का ग्राम बताया गया है।[2] यह भण्डगाम और अम्बगाम के बीच स्थित था। वैशाली से कुसिनारा को जाते हुए भगवान् यहाँ ठहरे थे।[3] उग्गत या उग्ग गहपति, जो संघ-सेवक उपासकों में श्रेष्ठ था, इसी गाँव का निवासी सेठ था।[4] संयुत्त-निकाय के वज्जि-सुत्त का उपदेश भगवान् ने यहीं दिया था और उस समय उग्ग गहपति उनकी सेवार्थ उपस्थित था। हत्थिगाम के पास ही नागवन था। यह एक प्रमोद-वन था जिसका स्वामी उग्ग गहपति था। यहीं उग्ग गहपति प्रथम बार भगवान् बुद्ध से मिला था और उसकी दीक्षा हुई थी।[5] भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य का मत है कि हत्थिगाम के भग्नावशेष विहार राज्य के आधुनिक हाथीखाल नामक गाँव के रूप में सम्भवतः देखे जा सकते हैं।[6]

हत्थिगाम से आगे चलकर भगवान् अम्बगाम (आम्रग्राम) पहुँचे थे और

---

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ १।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ४९७।

३. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३५। ऊपर से इक्कीसवीं पंक्ति में "जहाँ" और "अम्बगाम" के बीच में "हत्थिगाम" छपने से रह गया है, जिससे यह शब्द नामानुक्रमणी में भी नहीं आ सका है। मिलाइये बुद्धचर्या, पृष्ठ ४९७ भी।

४. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ४९६।

५. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ २१३; मनोरथपूरणी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७६२।

६. कुशीनगर का इतिहास, पृष्ठ १७।

उससे आगे जम्बुगाम में।[1] इन दोनों गाँवों को वज्जि जनपद में ही मानना अधिक ठीक जान पड़ता है,[2] यद्यपि भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य ने अम्बगाम को मल्ल राष्ट्र में माना है,[3] जिसका तात्पर्य यह है कि उसके उत्तर मे स्थित जम्बुगाम को भी वे निश्चयतः मल्ल राष्ट्र में ही मानते हैं।[4] इन दोनों गाँवों के बारे में वस्तुतः हम निश्चयतः नहीं कह सकते कि ये वज्जि गणतंत्र में थे या मल्ल राष्ट्र में। पालि तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओं में इसके सम्बन्ध में कोई उल्लेख नहीं है। हम केवल इतना जानते हैं कि वज्जियों के हत्थिगाम से क्रमशः अम्बगाम और जम्बुगाम होते हुए भगवान् भोगनगर पहुँचे थे। भोगनगर के सम्बन्ध में भी यह अनिश्चित है कि वह वज्जि जनपद में था या मल्ल राष्ट्र में, यद्यपि हमने उसे मल्ल राष्ट्र में ही माना है, और उसका विवेचन भी हम पहले मल्ल राष्ट्र के प्रसंग में कर चुके हैं। अम्बगाम और जम्बुगाम को बिहार राज्य के क्रमशः अमया और जमुनही

---

१. देखिये प्रथम परिच्छेद में दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त के भौगोलिक महत्व का विवेचन तथा द्वितीय परिच्छेद में भगवान् बुद्ध की चारिकाओं का भौगोलिक विवरण। मिलाइये दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १३५। भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य ने अम्बगाम को हत्थिगाम और भोगनगर के बीच में तथा जम्बुगाम को भण्डगाम और हत्थिगाम के बीच में बता कर (कुशीनगर का इतिहास, पृष्ठ १७) उस क्रम मे उलट-पुलट कर दिया है, जो इन स्थानों का महापरिनिब्बाण-सुत्त में पाया जाता है। महापरिनिब्बाण-सुत्त के अनुसार क्रम है, भण्डगाम, हत्थिगाम, अम्बगाम, जम्बुगाम और भोगनगर। "कुशीनगर का इतिहास" (पृष्ठ १७) में इस क्रम को इस प्रकार रक्खा गया है, भण्डगाम, जम्बुगाम, हत्थिगाम, अम्बगाम और भोगनगर। यद्यपि यह प्रूफ की अशुद्धि ही है, परन्तु इससे उनकी सब पहचानें सन्देह का कारण बन गई हैं।

२. लाहा ने भी ऐसा ही माना है, देखिये उनकी "इंडिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज्म", पृष्ठ ५३।

३. बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय, पृष्ठ ४।

४. वस्तुतः है भी ऐसा ही। देखिये उनका "कुशीनगर का इतिहास" पृष्ठ ५७।

नामक ग्रामों से मिलाने का प्रस्ताव भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य ने किया है,[1] जो नाम-साम्यके विचार से तो ठीक जान पड़ता है, परन्तु भौगोलिक दृष्टि से स्थिति अभी स्पष्ट नहीं हुई है।

वेलुव (बेलुव भी) गाम या गामक वज्जि जनपद का एक छोटा सा गाँव था, जहाँ भगवान् ने अपना अन्तिम वर्षावास किया था। जैसा दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त में वर्णित है, यहीं वर्षावास करते समय भगवान् को कड़ी बीमारी उत्पन्न हुई थी। संयुत्त-निकाय के गिलान-सुत्त में भी इसी बात का उल्लेख है। आचार्य बुद्धघोष ने हमें बताया है कि वेलुव गाम वैशाली नगरी के समीप उसके दक्षिण की ओर स्थित था। "वेसालिया दक्खिणपस्से अविदूरे वेलुव गामको नाम अत्थि।"[2] एक बार आयुष्मान् आनन्द को भी हम इस गाँव मे विहार करते देखते हैं, जहाँ अट्ठक नगर निवासी दसम गृहपति पाटलिपुत्र होता हुआ उनसे मिलने आया था।[3] एक अत्यन्त काव्यमय उद्गार मे अमितोदन शाक्य के पुत्र स्थविर अनुरुद्ध ने इस गाँव में निर्वाण प्राप्त करने की इच्छा प्रकट की थी। "जीवन के अन्त में वज्जियों के वेलुव गाँव में, बाँस की झाड़ी के नीचे, आस्रव रहित हो मैं निर्वाण को प्राप्त करूँगा।"[4] महाकवि अश्वघोष ने इस वेलुव गाम को "वेणुमती' ग्राम कह कर पुकारा है,[5] जिसे इसका ठीक संस्कृत प्रतिरूप माना जा सकता है।

वज्जि जनपद का एक गाँव पुब्बविज्झन[6] नामक था। संयुत्त-निकाय के

---

१. कुशीनगर का इतिहास, पृष्ठ १८।

२. पपंचसूदनी, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १२।

३. अट्ठक-नागर-सुत्तन्त (मज्झिम० २।१।२); मिलाइये अंगुत्तर-निकाय, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३४२।

४. थेरगाथा, पृष्ठ २१६ (हिन्दी अनुवाद)।

५. बुद्ध-चरित २३।६२।

६. छन्नोवाद-सुत्तन्त (मज्झिम० ३।५।२) में भी नालन्दा से प्रकाशित संस्करण में 'पुब्बजिर' पाठ है। देखिये मज्झिम-निकाय पालि, तृतीय भाग, पृष्ठ ३५६। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने अपने अनुवाद में पब्बजितट्ठित भी पाठ दिया है। देखिये मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५८६। पुब्बविज्झन (या पुब्बविज्जन) पाठ संयुत्त-निकाय के छन्न-सुत्त के अनुसार है।

छन्न-सुत्त से हमें सूचना मिलती है कि यह गाँव आयुष्मान् छन्न, जिन्होंने कठिन बीमारी में आत्महत्या कर ली थी,[1] की जन्म-भूमि था। इसी सुत्त में धर्म-सेनापति सारिपुत्र भगवान् से कहते हैं, "भन्ते, पुब्बविज्झन नामक वज्जियों का एक ग्राम है। वहाँ आयुष्मान् छन्न के मित्र-कुल, सुहृद्-कुल और उपगन्तव्य (जिनके पास जाया जाये) कुल हैं।[2]"

कलन्दक गाम नामक एक गाँव वज्जियों के देश में वैशाली के समीप ही (अविदूरे) स्थित था। श्रेष्ठिपुत्र सुदिन्न कलन्दपुत्त यहीं का निवासी था। वह एक बार वैशाली आया था और भगवान् के उपदेश को सुनकर माता-पिता की अनुमति लेकर प्रव्रजित हो गया था।[3] विनय-पिटक[4] से हमें पता चलता है कि बाद में इस सुदिन्न कलन्दपुत्त को लेकर ही प्रथम पाराजिका प्रज्ञप्त की गई थी। कलन्दक गाम के नाम के बारे में आचार्य-बुद्धघोष ने कहा है कि कलन्दक (गिलहरियों) की अधिकता के कारण इस गाँव का यह नाम पड़ा था।[5]

मल्ल जनपद का परिचय हम मल्ल गणतंत्र का विवेचन करते समय दे चुके हैं। अतः यहाँ पुनरुक्ति करना इष्ट न होगा।

कुरु जनपद सूरसेन और मच्छ जनपदों के उत्तर तथा पंचाल जनपद के पश्चिम में स्थित था। पंचाल उसका निकट पड़ोसी था, इसलिये दीघ-निकाय के जनवसभ-सुत्त में उसे पंचाल के साथ मिलाकर "कुरुपंचालेसु" जैसा प्रयोग किया गया है। कुरु जनपद के उत्तर तथा पश्चिम में उत्तरापथ था। पालि तिपिटक तथा उसकी अट्ठकथाओं में जिस कुरु जनपद का परिचय हमें मिलता है, उसमें हम आधुनिक मेरठ, मुजफ्फरनगर, बुलन्दशहर, सहारनपुर, दिल्ली राज्य, कुरुक्षेत्र और थानेश्वर को सम्मिलित मान सकते हैं। द्वितीय परिच्छेद में चार महाद्वीपों का विवरण देते समय हम दिखा चुके हैं कि राजा मान्धाता के साथ उत्तरकुरु

---

१. देखिये छन्नोवाद-सुत्तन्त (मज्झिम० ३।५।२) भी।
२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ४७७।
३. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ २०२।
४. पृष्ठ ५४२ (हिन्दी अनुवाद))
५. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ २०२।

महाद्वीप से कुछ लोग चले आये थे जो यहीं जम्बुद्वीप में बस गये थे। इन्हीं लोगों ने कुरु राष्ट्र को बसाया था। महासुतसोम जातक में कुरु राष्ट्र का विस्तार ३०० योजन बताया गया है। "तियोजनसते कुरुरट्ठे"। मज्झिम-निकाय के रट्ठपाल-सुत्तन्त से हमें पता चलता है कि बुद्ध के जीवन-काल में कुरु एक समृद्ध राष्ट्र था। सुमंगलविलासिनी में कहा गया है कि इस जनपद की जलवायु अच्छी है और यहाँ के लोग स्वस्थ और प्रसन्नचित्त होते हैं.. "कुरुदेशवासी भिक्षु, भिक्षुणी, उपासक और उपासिकाएँ, ऋतु आदि के अनुकूल होने से, देश के अनुकूल ऋतु आदि युक्त होने से, हमेशा स्वस्थ-शरीर और स्वस्थ-चित्त होते हैं"।[1] भगवान् बुद्ध ने स्मृति-प्रस्थान तथा अन्य गम्भीर विषयों से सम्बन्धित कई उपदेश कुरु देश में दिये थे, क्योंकि वहाँ के स्वस्थ और प्रज्ञावान् भिक्षु उन्हें ग्रहण करने में समर्थ थे, ऐसा सुमंगलविलासिनी मे कहा कहा गया है। कुरु देश के जन-साधारण तक का जीवन अध्यात्म से इतना आप्लावित था कि "दास और कर्मकर तथा नौकर-चाकर भी स्मृति-प्रस्थान सम्बन्धी कथा को ही कहते हैं। पनघट और सूत कातने के स्थान आदि में भी व्यर्थ की बात नहीं होती"[2]। धूमकारि-जातक और दस-ब्राह्मण जातक में कहा गया है कि कुरु देश के राजा युधिट्ठिल गोत्त (युधिष्ठिर गोत्र) के थे। कुरुधम्म जातक, धूमकारि-जातक, सम्भव-जातक और विधुरपंडित-जातक में कुरु देश के राजा धनंजय कोरव्य का उल्लेख है। दस-ब्राह्मण जातक तथा महा-सुतसोम-जातक में कुरु देश के कोरव्य नामक राजा का उल्लेख है। इसी प्रकार कुरु देश के सुतसोम नामक राजा का उल्लेख भी महासुतसोम-जातक में पाया जाता है। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में कुरु देश में शासन करने वाले राजा का नाम कोरव्य (कौरव्य) था, जो कुरु देश के थुल्लकोट्ठित नामक प्रसिद्ध निगम में रहता था। जिस समय आयुष्मान् रट्ठपाल उससे मिले थे, उसकी आयु अस्सी वर्ष की थी।[3] इससे मालूम पड़ता है कि वह आयु में भगवान् बुद्ध से सम्भवतः

---

१. बुद्धचर्या, पृष्ठ ११०-१११, पद-संकेत १; मिलाइये पपंचसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १८४।

२. बुद्धचर्या, पृष्ठ ११, पद-संकेत १।

३. रट्ठपाल-सुत्तन्त (मज्झिम० २।४।२)।

काफी बड़ा था। धम्मपदट्ठकथा में हम कोसलराज महाकोसल के पुरोहित अग्गिदत्त (अग्निदत्त) को अपने दस हजार शिष्यों के साथ कुरु और अंग-मगध देशों की सीमा पर आश्रम बनाकर निवास करते देखते हैं। आचार्य बुद्धघोष ने पपंचसूदनी में कहा है कि भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में कुरु राष्ट्र में किसी विहार की स्थापना नहीं हुई थी। इसलिये इस राष्ट्र में आने पर भगवान् निश्चित निवास न प्राप्त कर सकने के कारण अक्सर इसके कस्बे कम्मासदम्म के समीप एक वन में ठहरते थे, जिसके सम्बन्ध में हम अभी आगे कहेंगे।

कुरु राष्ट्र की राजधानी, जातक के अनुसार, इन्दपत्त या इन्दपट्ट (इन्द्र-प्रस्थ) नामक नगरी थी। इस नगर को महाभारत के इन्द्रप्रस्थ से मिलाया गया है, जिसकी स्थिति दिल्ली के पुराने किले के आसपास ही होनी चाहिये। महासुतसोम जातक के अनुसार इन्दपत्त नगर का विस्तार सात योजन था। "सत्तयोजनिके इन्दपत्तनगरे"। विधुर-पंडित जातक मे भी इन्दपत्त नगर का विस्तार सात योजन बताया गया है। इन्दपत्त "उत्तरापथ" मार्ग पर पडने वाला एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव था। अंग, मगध, विदेह, कोसल और वाराणसी के व्यापारी इन्दपत्त होते हुए ही तक्षशिला जाते थे।

इन्दपत्त या सम्भवतः हस्तिनापुर के समीप थुल्लकोट्ठित या थुल्लकोट्ठिक नामक कुरु जनपद का एक प्रसिद्ध निगम था, जहाँ राजा कौरव्य (कोरब्य) निवास करता था। स्थविर रट्ठपाल का जन्म इस कस्बे मे एक वैश्य-कुल में हुआ था। मज्झिम-निकाय के रट्ठपाल-सुत्त में हम भगवान् बुद्ध को इस कस्बे में विहार करते देखते हैं। इसी समय रट्ठपाल की प्रव्रज्या हुई थी। थुल्लकोट्ठित के समीप राजा कौरव्य का "मिगाचीर" नामक एक सुरम्य उद्यान था। एक बार स्थविर रट्ठपाल जब अपनी जन्म-भूमि में आये तो यही ठहरे थे।[१] "मिगाचीर" नामक एक उद्यान वाराणसी में भी था, जिसका उल्लेख हम काशी जनपद के विवरण-प्रसंग में कर चुके हैं। थुल्लकोट्ठित कुरु राष्ट्र का एक अत्यन्त समृद्ध और धनधान्यसम्पन्न कस्बा था। आचार्य बुद्ध-

---

१. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३३२; मिलाइये थेरगाथा, गाथाएँ ७६९-७९३ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

घोष ने कहा है कि इस कस्बे का नाम "थुल्लकोट्ठित" इसलिये पड़ा कि यहाँ के लोगों के कोठे अनाज से सदा भरे रहते थे। "थुल्लकोट्ठं, परिपुण्णकोट्ठागारं"[1]। महाकवि अश्वघोष ने थुल्लकोट्ठित का नाम 'स्थूलकोष्ठक' दिया है और यहाँ राष्ट्रपाल की दीक्षा का वर्णन किया है।[2] इस कस्बे की आधुनिक पहचान अभी नहीं हो सकी है। परन्तु रट्ठपाल-सुत्तन्त में हम रट्ठपाल को अपने पिता से यह कहते सुनते हैं कि अच्छा होगा कि वह अपनी सारी सम्पत्ति को गंगा में डलवा दे। इससे लगता है कि थुल्लकोट्ठित को हमें हस्तिनापुर के आसपास ही कहीं ढूँढ़ना पड़ेगा। इन्दपत्त के समान हस्तिनापुर के आसपास भी राजा कोरव्य का निवास-स्थान हो सकता है।

कम्मासदम्म कुरुओं का एक अन्य प्रसिद्ध निगम था। भगवान् यहाँ कई बार गये थे और उपदेश दिया था। दीघ-निकाय के महानिदान-सुत्त तथा महासतिपट्ठान-सुत्त जैसे गंभीर उपदेश इस कस्बे मे दिये गये थे। इसी प्रकार मज्झिम-निकाय के सतिपट्ठान-सुत्तन्त, मागन्दिय-सुत्तन्त तथा आनञ्ज-सप्पाय-सुत्तन्त के उपदेश यहीं दिये गये थे। मज्झिम-निकाय के मागन्दिय-सुत्तन्त से हमें पता लगता है कि इस कस्बे के पास भारद्वाज गोत्र के एक ब्राह्मण का आश्रम था जहाँ भगवान् ने निवास किया था। मागन्दिय परिव्राजक से भगवान् का संलाप इसी स्थान पर हुआ था। संयुत्त-निकाय के निदान-सुत्त और सम्मसन-सुत्त का उपदेश भगवान् ने कम्मासदम्म में विहार करते समय ही दिया था। अंगुत्तर-निकाय[3] में भी भगवान् के कुरुओं के इस निगम में जाने और उपदेश करने का उल्लेख है। नन्दुत्तरा और मित्तकाली नामक भिक्षुणियों का जन्म कुरु राष्ट्र के इस प्रसिद्ध निगम में ही हुआ था।[4] परमत्थदीपनी (थेरीगाथा की अट्ठकथा) में कहा गया है कि नन्दुत्तरा ने पहले निर्ग्रन्थ प्रव्रज्या ग्रहण की थी।[5] इससे विदित होता है कि जैनधर्म का प्रसार बुद्ध-काल में कुरु राष्ट्र में भी था।

---

१. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७२२।

२. बुद्ध-चरित २१।२६।

३. जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २९-३०।

४. थेरीगाथा, पृष्ठ ५६-५७ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

५. उपर्युक्त के समान।

दिव्यावदान[1] में कल्माषदम्य कस्बे का उल्लेख है। और इसी प्रकार बुद्ध-चरित (२१।२७) में महाकवि अश्वघोष ने भी इस कस्बे का नाम 'कल्माषदम्य' दिया है और भारद्वाज नामक एक विद्वान् के बुद्ध-धर्म में दीक्षित होने की बात कही है। हम पालि परम्परा के आधार पर इस गाँव के पास एक भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण के आश्रम का उल्लेख पहले कर ही चुके हैं। उसी से अभिप्राय सम्भवतः अश्वघोष के भारद्वाज नामक विद्वान् का हो सकता है। यह उल्लेखनीय है कि भारद्वाज गोत्रीय ब्राह्मण आज भी मेरठ-बुलन्दशहर जिलों में काफी संख्या में रहते हैं।

जयद्दिस जातक की कथा से 'कम्मासदम्म' कस्बे के नामकरण के इतिहास पर प्रकाश पड़ता है। इस जातक की कथा के अनुसार एक बार बोधिसत्व कम्पिल्ल के राजा जयद्दिस के पुत्र होकर उत्पन्न हुए थे। इस राजा का एक अन्य पुत्र भी था जिसे एक यक्षिणी (यक्खिणी) पकड कर ले गई थी और उसे एक नर-भक्षी दैत्य बना लिया था। इस राजकुमार के पैर (पाद) में एक बार घाव लग जाने के कारण धब्बा (कम्मास) पड़ गया था, इसलिये वह 'कम्मासपाद' कहलाता था। राजा ने उसे घर लाने के अनेक उपाय किये। अन्त में बोधिसत्व ने उसे दमित कर अपने वश में किया। जिस स्थान पर बोधिसत्व ने यह कार्य किया, वह कम्मासदम्म (कल्माषदम्य) कहलाया, क्योंकि वहाँ कम्मास या कम्मासपाद को दमित किया गया था। महासुतसोम जातक में भी इसी प्रकार सुतसोम बोधिसत्व के द्वारा कल्माषपाद यक्ष का दमन करना दिखाया गया है और इसी कारण उस स्थान का 'कम्मासदम्म' नाम पड़ना बताया गया है। यहाँ यह अन्तर द्रष्टव्य है कि जयद्दिस जातक में स्थान का नाम चुल्लकम्मासदम्म दिया गया है जब कि महासुतसोम जातक में महाकम्मासदम्म। इन जातकों से यह विदित होता है कि कम्मासदम्म नामक दो कस्बे अलग-अलग थे, जिनमें एक छोटा था जो कम्पिल्ल राष्ट्र में था और दूसरा बड़ा, जो कुरु राष्ट्र में था और दोनों ही दैत्य कल्माषपाद की स्मृति से जुड़े हुए थे। कुरु राष्ट्र का कम्मासदम्म ही वास्तव में महाकम्मासदम्म है। इस कम्मासदम्म कस्बे के नाम के दो पाठ पालि परम्परा में मिलते हैं, "कम्मासदम्म" और "कम्मासधम्म"। "कम्मासदम्म" नाम इस कस्बे का क्यों पड़ा, इसका कारण बताते

---

१. पृष्ठ ५१५।

हुए आचार्य बुद्धघोष ने जातक का ही अनुसरण करते हुए कहा है कि कम्मास (कल्माष) या कम्मासपाद ((कल्माषपाद) नामक एक नरभक्षी दानव था, जिसका यहाँ दमन किया गया था, इसलिये इस कस्बे का नाम "कम्मासदम्म" पड़ा। "कम्मासोति कम्मासपादो पोरिसादो वुच्चति। कम्मासो एत्थ दमितो ति कम्मासदम्मं"। "कम्मासधम्म" की उनके द्वारा की हुई व्याख्या भी इसी अनुश्रुति पर आधारित है और वह इस प्रकार है. . .कुरु राष्ट्र वासी लोगों का "कुरु धम्म" या "कुरुवत्थ धम्म" नामक एक नैतिक मर्यादा-विधान था। उसमें कम्मास दैत्य उत्पन्न (दीक्षित) हुआ, इसलिये यह स्थान "कम्मास यहाँ धम्म में उत्पन्न (दीक्षित) हुआ" इस कारण कम्मासधम्म कहलाता है"। "कुरुरट्ठवासीनं किर कुरुवत्थधम्मो, तस्मिं कम्मासो जातो, तस्मा तं ठानं कम्मासो एत्थ धम्मे जातो ति कम्मासधम्मं ति वुच्चति"[1] इस प्रकार हम देखते है कि कम्मासदम्म कस्बे के साथ कल्माषपाद नामक दैत्य की कहानी संग्रथित है। बौद्ध साहित्य के बाहर भी कल्माषपाद का नाम प्रसिद्ध है। वाल्मीकि-रामायण मे राजा कल्माषपाद को रघु का पुत्र बताया गया है। महाभारत के आदि-पर्व में भी कल्माषपाद को इक्ष्वाकुवंशी राजा बताया गया है और उसकी पत्नी और वशिष्ठ के संयोग से उत्पन्न पुत्र अश्मक के द्वारा पौदन्य (पोतन या पोदन) नामक नगर की स्थापना का उल्लेख किया गया है। इसी कथा का कुछ अल्प अन्तर के साथ वर्णन नारद-पुराण में है। यहाँ कहा गया है कि इक्ष्वाकुवंशीय राजा सुदास के पुत्र मित्रसह का ही नाम उसके राक्षसी रूप प्राप्त कर लेने के बाद 'कल्माषपाद' पड़ गया था। एक बार इस राजा ने अनजान में वशिष्ठ को नर-मांस परोस दिया था, जिस पर वशिष्ठ ने उसे नरभक्षी राक्षस होने का शाप दे दिया था। "नृमांसं रक्षसामेव भोज्यं दत्तं मम त्वया। तद्याहि राक्षसत्वं त्वं तदाहारोचितं नृप।" नारद-पुराण ९।२६। इस प्रकार शप्त होने पर राजा मित्रसह ने भी वशिष्ठ को शाप देना चाहा, परन्तु उसकी रानी मदयन्ती ने उसे रोक दिया। शाप के जल को राजा ने कहीं अन्यत्र

---

१. सुमंगलविलासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४८३; कुरु-धर्म के समान वज्जि-धर्म और शिवि-धर्म जैसे विधान क्रमशः वज्जि और शिवि राष्ट्रों में भी प्रचलित थे। देखिए इन राष्ट्रों के इसी परिच्छेद में दिये गये विवरण।

न गिरा कर अपने पैरों पर ही गिरा दिया, जिससे उसके पैर चितकबरे हो गये। तभी से उसका नाम 'कल्माषपाद' पड़ गया। "इति मत्वा जलं तत्तु पादयोर्न्यक्षिपत्स्वयम्। तज्जलस्पर्शमात्रेण पादौ कल्मषतां गतौ। कल्माषपाद इत्येवं ततः प्रभृति विस्तृतः"। नारद-पुराण ९।३५-३६। इसमें कोई सन्देह नहीं कि नारद-पुराण का नरभक्षी राक्षस कल्माषपाद ही पालि परम्परा का 'कम्मासपादो पोरिसादो' है। महासुतसोम जातक के अनुसार इस राक्षस का दमन 'कम्मासदम्म' कस्बे के स्थान पर कुरु देश में हुआ, जब कि नारद-पुराण के अनुसार उसने वाराणसी मे छह मास तक गंगा में स्नान करने के बाद पवित्रता प्राप्त की। परन्तु महासुतसोम जातक में भी मनुष्य-मांस के प्रेमी इस राक्षस को पहले वाराणसी का राजा ही बताया गया है। यह एक भारी समानता है। नारद-पुराण में राजा कल्माषपाद के नर्मदा के वन में मृगया के लिये जाने का भी उल्लेख है।

मज्झिम-निकाय के मागन्दिय-सुत्त से हमें पता चलता है कि कम्मासदम्म निगम के पास एक वन-खण्ड था। भगवान् कम्मासदम्म में जाते समय इस वन-खण्ड में ही दिन का ध्यान करते थे।

कम्मासदम्म कस्बे की आधुनिक पहचान अभी निश्चित नहीं की जा सकी है। परन्तु इस लेखक का अनुमान है कि कस्बा बागपत (जिला मेरठ) से सात-आठ मील दूर यमुना के उस पार पंजाब राज्य में स्थित कमासपुर या कुमासपुर कस्बा बुद्धकालीन कम्मासदम्म हो सकता है। समीप में वन-खण्ड होने की शर्त को यह गाँव आज तक पूरी करता है। यहाँ कुछ भारद्वाज गोत्री ब्राह्मण भी निवास करते हैं।

कुण्डो, कुण्डिय या कुण्डिकोल नामक ग्राम कुरु राष्ट्र में था। इस गाँव के समीप एक वन था, जहाँ स्थविर अंगणिक भारद्वाज रहते थे। इसीके समीप उग्गाराम था।[१] सम्भवतः आधुनिक कुण्डली नामक गाँव, जो जिला रोहतक की सोनीपत तहसील में है, बुद्धकालीन कुण्डो, कुण्डिय या कुण्डिकोल गाम है।

हत्थिपुर या हत्थिनीपुर कुरु जनपद का एक प्रसिद्ध निगम था। चेतिय जातक के अनुसार चेदि नरेश उपचर के सबसे बड़े पुत्र ने इस नगर को बसाया था। इसी जातक के अनुसार यह नगर चेति (चेतिय) राज्य की राजधानी सोत्थिवती के पूर्व में स्थित था। दीपवंस के वर्णनानुसार हत्थिपुर में महासम्मत वंश के ३६ राजाओं

---

१. थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ३३९।

ने राज्य किया, जिनमें अन्तिम कम्बलवसभ नामक राजा था। पेतवत्थु की अट्ठकथा के अनुसार हत्थिनीपुर में सेरिणी नामक एक गणिका रहती थी। पालि के हत्थिपुर या हत्थिनीपुर को प्रायः निश्चित रूप से प्रसिद्ध हस्तिनापुर से मिलाया जा सकता है, जिसे महाभारत के आदि-पर्व में कुरुजांगल (कुरुवन) में स्थित बताया गया है और जो आज मेरठ जिले की मवाना तहसील में मेरठ से २२ मील उत्तर-पूर्व गंगा के दायें तट पर स्थित है। हाँ, पालि विवरणों में इसके समीप गंगा के होने का कोई उल्लेख नहीं है, जैसा कि रामायण, महाभारत और पुराणों में निश्चित रूप से है।

वारणवती नगरी सम्भवतः कुरु राष्ट्र में थी। 'थेरीगाथा' में इस नगरी का उल्लेख है। सुमेधा का विवाह इसी नगरी के राजा अनिकरत्त के साथ होने वाला था, ऐसा यहाँ कहा गया है। "उट्ठेहि पुत्तक किं सोचितेन दिन्नासि वारणवतिम्हि। राजा अनिकरत्तो अभिरूपो तस्स त्वं दिन्ना"।[1] थेरीगाथा की अट्ठकथा (परमत्थ-दीपनी) के अनुसार सुमेधा मन्तावती नगरी के कौञ्च (कोञ्च) नामक राजा की पुत्री थी। परन्तु यह मन्तावती नगरी कहाँ थी, इसका भी कुछ निर्णय नहीं किया जा सकता। जहाँ तक वारणवती का सम्बन्ध है, उसे हम कदाचित् महाभारत के उद्योग-पर्व के वारणावत से, जिसे वहाँ कुरु राष्ट्र का एक गाँव बताया गया है, मिला सकते हैं। और इस प्रकार उसका आधुनिक रूप बरनावा नामक गाँव के रूप में माना जायगा, जो मेरठ से १९ मील उत्तर-पश्चिम में स्थित है। यह भी सम्भव है कि वारणवती का सम्बन्ध वरणावती नदी से हो। इस अवस्था में उसे वाराणसी के आसपास मानना पड़ेगा।

महाकवि अश्वघोष ने वरणा में भगवान् बुद्ध के प्रचार कार्य का उल्लेख किया है।[2] अंगुत्तर-निकाय के दुक-निपात के एक सुत्त में भी हम स्थविर महाकात्यायन को वरणा में कद्दम दह के तट पर विहार करते देखते हैं। यह वरणा आधुनिक बुलन्द-शहर नगर ही है। यहाँ एक बौद्ध विहार के भग्नावशेष और काफी संख्या में बुद्ध-मूर्तियाँ मिली हैं, जो स्थानीय शिक्षा-संग्रहालय में सुरक्षित हैं। इस नगर के एक अंश

---

१. थेरीगाथा, गाथा ४६२ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

२. बुद्ध-चरित २१।२५; मिलाइये वहीं २१।२१।

में एक प्राचीन तालाब भी दबा पड़ा है। सम्भव है वह कद्दम दह (कर्दम ह्रद) की स्थिति पर ही हो। महाकवि अश्वघोष ने वाराणसी से पृथक् वरण या वरणा का उल्लेख किया है।[1] अतः वरणा या अथर्ववेद (१४।७।१) की वरणावती नदी से सम्बद्ध कर हम उसे वाराणसी से सम्बन्धित नहीं कर सकते। पालि का वरणा निश्चयतः एक नगर था, नदी नहीं, और उसे कुरु जनपद के अन्तर्गत वर्तमान बुलन्दशहर नगर मानना ही भौगोलिक और पुरातात्विक दृष्टियों से युक्तिसंगत है।

मध्य-देश की पश्चिमी सीमा पर स्थित थूण नामक ब्राह्मण-ग्राम कुरु जनपद में ही था। द्वितीय परिच्छेद में हम उसका विवरण उपस्थित कर चुके हैं। अतः उसकी पुनरुक्ति करना यहाँ आवश्यक न होगा।

पंचाल जनपद सूरसेन और कोसल जनपदों के बीच में स्थित था। पंचाल के पश्चिमोत्तर मे कुरु राष्ट्र था और दक्षिण-पूर्व में वंस राज्य। पंचाल जनपद दो भागों में विभक्त था, उत्तर पंचाल और दक्षिण पंचाल। भागीरथी (भागीरसी) नदी इन दोनों को एक दूसरे से अलग करती थी। पूर्व काल में पंचाल और कुरु राष्ट्रों में उत्तर पंचाल के लिये काफी संघर्ष चला था। कई बार उत्तर पंचाल कुरु राष्ट्र में सम्मिलित हो गया था। सोमनस्स जातक में इसी स्थिति का वर्णन है। कुम्भकार जातक में उत्तर पंचाल की राजधानी कम्पिल नगर बताई गई है, परन्तु सोमनस्स जातक में कहा गया है कि उत्तर पंचाल की राजधानी उत्तर-पंचाल नामक नगर ही था। उत्तरपंचाल नगर को चेतिय जातक के अनुसार चेति (चेदि) देश के राजा उपचर के एक पुत्र ने बसाया था। जातक में कम्पिल्ल रट्ठ का भी उल्लेख हुआ है। उससे या तो दक्षिण पंचाल का ही अभिप्राय हो सकता है, या संभवतः सम्पूर्ण पंचाल राष्ट्र का भी। ब्रह्मदत्त जातक, जयद्दिस जातक और गण्डतिन्दु जातक में उत्तरपंचाल को कम्पिल्ल रट्ठ का नगर बताया गया है। कुम्भकार जातक में कहा गया है कि कभी-कभी कम्पिल्ल रट्ठ के राजा उत्तरपंचाल नगर में दरबार लगाते थे और कभी-कभी उत्तर पंचाल के राजा कम्पिल्ल नगर में। इस विवरण से स्पष्ट है कि "कम्पिल्ल" को नगर और राष्ट्र दोनों का नाम देने के कारण और उत्तर और दक्षिण पंचाल को कभी-कभी अलग और कभी संयुक्त

---

१. देखिये बुद्ध-चरित २१।२५ तथा मिलाइये वहीं, २१।२१।

रूप से प्रयुक्त करने के कारण जातकों के विवरणों में कहीं-कहीं अस्पष्टता आ गई है। नगर के रूप में कम्पिल्ल को उत्तरपंचाल की राजधानी बताया गया है, परन्तु रट्ठ के रूप में कम्पिल्ल की राजधानी उत्तरपंचाल नगर को बताया गया है। उत्तर पंचाल का भी नगर और राष्ट्र के रूप में दुहरा वर्णन कर देने के कारण और अस्पष्टता आ गई है।

ऊपर हम सोमनस्स जातक के आधार पर प्राचीन काल में उत्तर पंचाल के कुरु राष्ट्र में सम्मिलित होने की बात कह चुके है। दिव्यावदान[1] में इसी स्थिति की ओर निर्देश करते हुए उत्तर पंचाल की राजधानी हस्तिनापुर नगरी बताई गई है। जातकों में पंचाल देश के दो राजाओं के विवरण भी प्राप्त हैं। कुम्भकार जातक में पंचालराज दुम्मुख (दुर्मुख) का उल्लेख है, जिसका राज्य उत्तर पंचाल रट्ठ कहकर पुकारा गया है और राजधानी कम्पिल्ल नगर। इस राजा को यहाँ गन्धार के राजा नग्गजि (नग्नजित्) और विदेह के राजा निमि का समकालीन बताया गया है। महा उम्मग्ग जातक में पंचालराज चूलनि ब्रह्मदत्त का उल्लेख है, जिसके अमात्य केवट्ट ने उसे सम्पूर्ण जम्बुद्वीप का सम्राट् बनने की प्रेरणा दी और इसी उद्देश्य से चूलनि ब्रह्मदत्त ने मिथिला का घेरा भी डाला। इस घटना में ऐतिहासिक तथ्य कितना है, यह नहीं कहा जा सकता और यदि हो भी तो इसे बुद्ध-पूर्व काल की घटना ही माना जा सकता है। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में तो ऐसा लगता है कि दक्षिण पंचाल का कुछ भाग वंस राज्य में सम्मिलित हो गया था और सम्भवतः उत्तर पंचाल का कुछ भाग, जो वन-प्रदेश के रूप में था, कोसल राज्य में।

पालि साहित्य में जिस पंचाल राष्ट्र का उल्लेख है, उसकी सीमाओं के अन्तर्गत आधुनिक एटा, मैनपुरी, फर्रुखाबाद और आसपास के जिलों को रक्खा जा सकता है।[2] डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने रुहेलखंड और गंगा-यमुना के दोआब के कुछ भाग को पंचाल देश में सम्मिलित माना है।[3] प्रारंभिक रूप में पंचाल जनपद से

---

१. पृष्ठ ४३५।

२. मिलाइये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४१२, ७०५।

३. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १३४।

तात्पर्य उस प्रदेश से लिया जाता था जो दिल्ली से उत्तर और पश्चिम, हिमालय की तराई से लेकर चम्बल तक फैला हुआ था।[1] पालि परम्परा के पंचाल को इससे भिन्न समझना चाहिये।

जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, सोमनस्स जातक के आधार पर उत्तर पंचाल की राजधानी उत्तरपंचाल नामक नगर ही था। महाभारत के आदि-पर्व में उत्तर पंचाल की राजधानी अहिच्छत्र या छत्रवती नामक नगर बताया गया है, जिसे वर्तमान रामनगर (जिला बरेली, उत्तर-प्रदेश) से मिलाया जाता है। इसलिये हम पालि के उत्तरपंचाल नगर को महाभारत के अहिच्छत्र या छत्रवती नगर से अभिन्न मान सकते है।

कम्पिल्ल नगर को जातक में अनेक जगह उत्तर पंचाल की राजधानी बताया गया है। परन्तु इसे भौगोलिक दृष्टि से सम्पूर्ण पंचाल या दक्षिण पंचाल की राजधानी ही माना जा सकता है। कम्पिल्ल नगर को जनरल कनिङ्घम के द्वारा आधुनिक काम्पिल से मिलाया गया है, जो उत्तर-प्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में, फतेहगढ़ से २८ मील उत्तर-पूर्व, गंगा के समीप स्थित है।[2] संयुत्त-निकाय के दुतिय-दारुक्खन्ध-सुत्त में हम भगवान् बुद्ध को गंगा नदी के तट पर किम्बिला में विहार करते देखते हैं।[3] यहाँ या पालि तिपिटक में कहीं अन्यत्र यह उल्लेख नही किया गया है कि यह किम्बिला नामक स्थान किस जनपद में था। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने मज्झिम-निकाय के हिन्दी-अनुवाद के आरम्भ मे बुद्धकालीन मध्य-मंडल का जो मानचित्र दिया है, उससे विदित होता है कि वे किम्बिला को ही कम्पिल्ल या आधुनिक काम्पिल मानते हैं। गंगा नदी पर कम्पिल्ल नगर (आधुनिक काम्पिल) की स्थिति उसे किम्बिला से मिलाने के लिये हमें आकृष्ट करती है, परन्तु इसकी समुचित व्याख्या नहीं मिलती कि यदि ये दोनों स्थान एक ही थे तो स्वयं

---

१. नन्दोलाल दे : ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया, पृष्ठ १४५।

२. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४१३; आर्कलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया की रिपोर्ट, जिल्द पहली, पृष्ठ २५५।

३. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५२६।

जातक[1] में अलग से किम्बिला नगरी का उल्लेख क्यों है? फिर भी इन दोनों नामों में शब्द-साम्य इतना अधिक है कि वर्ण-परिवर्तन के आधार पर इन दोनों की अभिन्नता सिद्ध की जा सकती है। जैसे किमिकाला के लिये किपिल्लिका के पाठान्तर को हम स्वीकार करते हैं और उन दोनों को एक समझते हैं,[2] उसी प्रकार किम्बिला को भी कम्पिल्ल मान सकते हैं। कम्पिल्ल नगर को किम्बिला मानकर हमें यह और कह देना चाहिये कि किम्बिला (कम्पिल्ल नगर) में एक वेणुवन भी था, जहाँ संयुत्त-निकाय के किम्बिल-सुत्त के अनुसार भगवान् ने आयुष्मान् किम्बिल के साथ विहार किया था। इस वेणुवन का ही दूसरा नाम सम्भवतः निचेलुवन था। या निचेलुवन को किम्बिला में स्थित एक पृथक् वन भी हम मान सकते हैं। एक बार भगवान् को हम यहाँ विहार करते अंगुत्तर-निकाय के पंचक-निपात में देखते हैं। "एकं समयं भगवा किम्बिलायं विहरति निचेलुवने।" यहीं आयुष्मान् किम्बिल का भगवान् से संवाद हुआ था।[3] अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा (मनोरथपूरणी)[4] के अनुसार सेट्ठिपुत्त किम्बिल का जन्म-स्थान किम्बिला नगरी ही थी। इस श्रेष्ठिपुत्र किम्बिल को उन आयुष्मान् किम्बिल से पृथक् समझना चाहिये जो शाक्य-कुल से प्रव्रजित कपिलवस्तु के भिक्षु थे।

बौद्ध धर्म की दृष्टि से पंचाल देश का काफी महत्व है। भगवान् बुद्ध के प्रसिद्ध शिष्य स्थविर विसाख पंचालपुत्त पंचाल देश के ही निवासी थे। भगवान् जब वैशाली की महावन कूटागारशाला में विहार कर रहे थे तो विसाख पंचालपुत्त ने वहाँ की उपस्थानशाला में भिक्षुओं के समक्ष उपदेश दिया था, जिसका भगवान् ने अनुमोदन किया था।[5]

---

१. जिल्द छठी, पृष्ठ १२१।

२. देखिये आगे चेति (चेतिय) जनपद का विवेचन।

३. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २४७, ३३९; जिल्द चौथी, पृष्ठ ८४।

४. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६४२।

५. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ३१४।

संकस्स (या संकिस्स) पंचाल देश का एक मुख्य नगर था। तावतिंस (त्राय-स्त्रिंश) लोक में अपना सातवाँ वर्षावास कर भगवान् महाप्रवारणा के दिन पंचाल देश के इस नगर में ही उतरे थे। स्थविर मुहेमन्त ने इस नगर में ही भगवान् बुद्ध से उपदेश प्राप्त किया था।[1] वाल्मीकि-रामायण के आदि-काण्ड (अध्याय ७०) तथा पाणिनीय अष्टाध्यायी (४।२।८०) में भी सांकाश्य नगर का उल्लेख है, जो प्राचीन भारत में इसकी प्रसिद्धि का द्योतक है। सरभमिग जातक में संकस्स नगर का दूरी श्रावस्ती से तीस योजन बताई गई है। संकस्स (संकाश्य) नगर को आधुनिक पहचान संकिसा या संकिसा-बसन्तपुर नामक गाँव से की गई है, जो उत्तरप्रदेश के फर्रुखाबाद जिले में[2], उत्तरी रेलवे के मोटा स्टेशन से करीब ५ मील दूर स्थित है। स्टेशन और गाँव के बीच काली या कालिन्दी नदी पड़ती है। सम्पूर्ण गाँव ४१ फुट ऊँचे टीले पर बसा हुआ है। चारो ओर दूसरे भी टीले हैं, जिनका घेरा मिलाकर करीब दो मील है। संकस्स या संकिस्स के रूप में संकिसा-बसन्तपुर की पहचान सर्वप्रथम जनरल कनिंघम ने की थी।[3] स्मिथ ने इस पहचान को स्वीकार नहीं किया था। उनका कहना था कि यूआन् चुआङ् ने जिस संकाश्य नगर (सेंग्-क-शे) को देखा था, उसे एटा जिले के उत्तर-पूर्व में होना चाहिये।[4] वस्तुतः हमारे लिये समस्या दुहरी जटिल है। एक तो यह कि क्या वर्तमान संकिसा वही "सेंग-क-शे" या "कपिथ" है, जिसे यूआन् चुआङ् ने देखा था और दूसरी यह कि जिस संकाश्य या कपिथ को यूआन् चुआङ् ने देखा था, क्या वह बुद्धकालीन संकस्स नगर ही था। स्थिति और नाम-साम्य के आधार पर और

---

१. थेरगाथा, पृष्ठ ४६ (हिन्दी अनुवाद)।

२. डा० विमलाचरण लाहा ने उसे एटा जिले में लिखा है। ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज़्म, पृष्ठ ३३। भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य ने भी उसे एटा जिले में दिखाया है। बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय, पृष्ठ ९। यह ठीक नहीं है। आधुनिक संकिसा-बसन्तपुर गाँव वस्तुतः फर्रुखाबाद जिले में ही है।

३. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४२३-४२७।

४. देखिये वाटर्सः औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३३८।

सबसे अधिक इस आधार पर कि वर्तमान संकिसा में ही अशोक-स्तम्भ का शीर्ष भाग मिला है, प्रायः सब विद्वान् वर्तमान संकिसा को ही बुद्धकालीन संकस्स नगर मानते हैं। संकस्स नगर में देव-लोक से उतरते हुए भगवान् बुद्ध ने जहाँ अपना पहला दायाँ पैर रक्खा था, वहाँ धम्मपदट्ठकथा के अनुसार "पद चैत्य" की स्थापना की गई थी। कनिंघम ने माना है कि यह वही स्थान है जहाँ आज "बिसारी देवी" (बिसह्री देवी) का मन्दिर विद्यमान है।[1]

पाँचवीं और सातवीं शताब्दी ईसवी में क्रमशः फा-ह्यान और यूआन् चुआङ् ने संकाश्य नगर की यात्रा की थी। फा-ह्यान ने संकिस (कपिथ) नगर को मथुरा से १८ योजन दक्षिण-पूर्व में देखा था।[2] यूआन् चुआङ् ने उसे "पि-लो-शन्-न" (भिलसर या भिलसन्द, जिला एटा) से २०० 'ली' अर्थात् करीब ३३ या ३४ मील दक्षिण-पूर्व में देखा था।[3] यूआन् चुआङ् ने भगवान् के अवतरण के सम्बन्ध में कुछ पौराणिक कथाओं का भी उल्लेख किया है।[4]

भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में संकाश्य नगर की स्थिति उस समय के व्यापारिक मार्गों की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण थी। तीन प्रसिद्ध मार्ग यहाँ मिलते थे। सर्व प्रथम संकाश्य नगर उत्तरापथ मार्ग पर अवस्थित था जिसके एक ओर सोरेय्य (सोरों) और दूसरी ओर कण्णकुज्ज (कन्नौज) नगर स्थित थे। इन दोनों के बीच में संकाश्य नगर था। वेरंजा में बारहवाँ वर्षावास करने के बाद भगवान् वहाँ से क्रमशः सोरेय्य, संकाश्य और कण्णकुज्ज होते हुए इसी मार्ग के द्वारा प्रयाग-प्रतिष्ठान और फिर वाराणसी गये थे। दूसरी ओर संकाश्य नगर से एक सीधा मार्ग साकेत होता हुआ श्रावस्ती तक जाता था। भगवान् ने संकाश्य में अवतरण के बाद इसी मार्ग के द्वारा श्रावस्ती के लिये गमन किया था। संकाश्य नगर से होकर गुजरने वाला एक तीसरा मार्ग वह था जो सोरेय्य से चलकर

---

१. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४२४-४२५।

२. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ २४।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३३३।

४. वहीं, पृष्ठ ३३५-३३९।

क्रमशः संकाश्य, कण्णकुज्ज, उदुम्बर नगर और अग्गलपुर होता हुआ सहजाति तक जाता था।

संकस्स के अलावा पंचाल देश के आलवी, कण्णकुज्ज और सोरेय्य अन्य प्रसिद्ध नगर थे। आलवी में भगवान् बुद्ध ने अपना सोलहवाँ वर्षावास किया था। आलवी पंचाल देश में ही थी, यह इस बात से विदित होता है कि दीघ-निकाय के आटानाटिय-सुत्त में आलवक को "पंचालचण्डो आलवको" कहा गया है।[1] महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने आलवी को वर्तमान अर्वलपुर से, जो कानपुर और कन्नौज के बीच में है, मिलाया है।[2] कनिंघम ने उसे उन्नाव जिले के नवल या नेवल से मिलाया था। कुछ विद्वान् उसे इटावा से २७ मील उत्तर-पूर्व अवीा से भी मिलाते हैं। आलवी एक राज्य भी था और नगर भी। राज्य के रूप में आलवी पर भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में आलवक नामक यक्ष का अधिकार था, जिसका वर्णन हम सुत्त-निपात के आलवक-सुत्त में पाते है। यह एक छोटा सा प्रदेश था जो सम्भवतः गंगा के किनारे स्थित था, क्योंकि आलवक यक्ष को हम भगवान् बुद्ध के प्रति उपर्युक्त सुत्त में यह कहते देखते हैं, "मैं तुम्हें पैरों से पकड़ कर गंगा के पार फेंक दूँगा"। "पादेसु वा गहित्वा पारगंगाय खिप्पेय्य"। यह भी सम्भव है कि "गंगा-पार" का प्रयोग यहाँ एक मुहावरे के रूप में हो किया गया हो।[3] उस हालत में हमे उसके भौगोलिक अभिप्राय पर जोर नहीं देना पड़ेगा।

डा० हेमचन्द्र रायचौधरी का सुझाव है कि सम्भवतः आलवी राज्य वह प्रदेश था जिसका यूआन् चुआङ् ने "चङ्-चु" या "चैङ्-चु" राज्य के रूप में वर्णन किया है।[4] यदि डा० हेमचन्द्र रायचौधरी का यह सुझाव मान लिया जाय तो

---

१. देखिये बुद्धचर्या, पृष्ठ २४२, पद-संकेत २; डा० नलिनाक्ष दत्त और श्री कृष्णदत्त वाजपेयी ने आलवी को कोसल राज्य में माना है (उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास, पृष्ठ ५ तथा ८)। इसे पालि परम्परा के अनुसार ठीक नहीं माना जा सकता।

२. बुद्धचर्या, पृष्ठ २४२, पद-संकेत २।

३. देखिये द्वितीय परिच्छेद में गङ्गा नदी का विवरण।

४. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १९७-१९८।

आलवी प्रदेश को हमें वाराणसी से ३०० 'ली' या करीब ५० मील पूर्व में मानना पड़ेगा, क्योंकि "चङ्-चु" या "चैङ्-चु" प्रदेश की यही स्थिति यूआन् चुआङ् ने अपने-यात्रा विवरण में दी है।[1] पालि परम्परा के अनुसार यह स्थिति निश्चयतः काशी या कोसल राज्य की है, अतः जहाँ तक बुद्धकालीन भारत की भौगोलिक स्थिति का सम्बन्ध है, हम डा० हेमचन्द्र रायचौधरी के सुझाव को नहीं मान सकते। इसी प्रकार कनिंघम और स्मिथ ने जो आलवी राज्य को वर्तमान गाजीपुर प्रदेश से मिलाया है,[2] वह यूआन् चुआङ् के यात्रा-विवरण की दृष्टि से तो ठीक है, परन्तु इससे बुद्धकालीन पंचाल जनपद की स्थिति ठीक प्रकट नहीं होती।

"आलवी" का संस्कृत प्रतिरूप महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने "आलम्भिकापुरी" दिया है,[3] परन्तु डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने उसे संस्कृत "अटवी" से व्युत्पन्न मानकर या तो उसके आटविक राज्य होने की सूचना दी है, या उसे आलभिय मानकर जैन ग्रन्थ "उवासगदसाओ" के "आलभिया" के समीप लाने का प्रयत्न किया है।[4] "उवासगदसाओ"[5] में आलभिया नामक नगरी (आलभिया नामं नगरी) का उल्लेख अवश्य है, परन्तु उसके पास यहाँ संखवण नामक उद्यान (संखवणे उज्जाणे) स्थित बताया गया है। अतः इससे आलवी को आलभिया मानने का कोई निश्चित आधार तो नहीं मिलता। अभिधानप्पदीपिका के साक्ष्य

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५९।

२. कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५०२-५०३, ७१५; मिलाइये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५९, ३४०।

३. बुद्धचर्या, पृष्ठ २४२, पद-संकेत २।

४. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १९८; थॉमस वाटर्स ने भी "आलवी" का संस्कृत प्रतिरूप "अटवी" दिया है। देखिये उनका औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रैविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ६१, १८१।

५. पृष्ठ ३४।

पर हम पाँचवें परिच्छेद मे देखेंगे कि आलवी की गणना बुद्धकालीन भारत के २० प्रसिद्ध नगरों मे की जाती थी।

पालि साहित्य में आलवी नगरी का उल्लेख कई स्थलों पर हुआ है। जैसा हम पहले कह चुके हैं, भगवान् बुद्ध ने अपना सोलहवाँ वर्षावास आलवी में ही किया था। आलवी का एक प्रसिद्ध चैत्य अग्गालव चेतिय नामक था। आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि पहले यहाँ यक्षों का निवास था, जिनका निष्कासन कर बुद्ध-काल में यहाँ विहारों का निर्माण किया गया।[1] अट्ठकथाकार के इस कथन से इस बात को बल मिलता है कि आलवी पहले एक जंगली प्रदेश था, और इसलिये उसका संस्कृत प्रतिरूप 'अटवी' मानना ही सम्भवतः अधिक युक्तिसंगत है। महाकवि अश्वघोष ने आलवी में बुद्ध के प्रचार-कार्य का उल्लेख करते हुए कहा है, "एक अत्यन्त अकुशल अटवी मे बुद्ध ने आटविक यक्ष को और कुमार हस्तक को उपदेश दिया।"[2] इससे आलवी का संस्कृत प्रतिरूप 'अटवी' के रूप में प्रायः निश्चित ही है। विनय-पिटक[3] में हम एक बार भगवान् बुद्ध को कीटागिरि से आलवी और फिर वहाँ से राजगृह जाते देखते हैं। भगवान् बुद्ध की चारिकाओं का विवरण देते समय हम उनके आलवी जाने और वहाँ से विभिन्न स्थानों को जाने का उल्लेख कर चुके हैं। सुत्त-निपात के आलवक-सुत्त तथा इसी नाम के एक संयुत्त-निकाय के सुत्त का उपदेश भगवान् ने आलवी के अग्गालव चैत्य में दिया था। संयुत्त-निकाय के वंगीस-सुत्त का उपदेश भी भगवान् के द्वारा यहीं दिया गया था। इसी निकाय के निक्खन्त-सुत्त तथा अतिमञ्ञना-सुत्त में हम स्थविर न्यग्रोध कप्प को आलवी के अग्गालव चैत्य में विहार करते देखते हैं। संयुत्त-निकाय के वंगीस-सुत्त से हमें सूचना मिलती है कि स्थविर न्यग्रोध कप्प की मृत्यु आलवी के अग्गालव चैत्य में ही हुई थी। मणिकण्ठ जातक में उल्लेख है कि भगवान् ने आलवी के अग्गालव चेतिय में कुछ समय तक निवास किया था और मणिकण्ठ, ब्रह्मदत्त तथा अट्ठिसेन जातकों का उपदेश यहीं दिया गया था। यह

---

१. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ २६८।
२. बुद्धचरित २१।१८।
३. पृष्ठ ४७२-४७४ (हिन्दी अनुवाद)।

भी उल्लेखनीय है कि भगवान् की शिष्या भिक्षुणी शैला (सेला) आलवी राष्ट्र को ही निवासिनी थी। वह आलविक राजा की पुत्री थी। इसलिये 'आलविका' भी कहलाती थी।[1] आलवी के समीप एक सिंसपा-वन भी था। अंगुत्तर-निकाय के आलवक-सुत्त में हम भगवान् को यहाँ विहरते देखते हैं।

पाँचवीं और सातवीं शताब्दी ईसवी में क्रमशः फा-ह्यान और यूआन् चुआङ् ने आलवी की यात्रा की थी। फा-ह्यान ने कौशाम्बी से आठ योजन पूर्व दिशा में उस स्थान को देखा था जहाँ आलवक यक्ष दमित किया गया था।[2] अतः उसके अनुसार आलवी के अग्गालव चैत्य की यही स्थिति माननी पड़ेगी। यूआन् चुआङ् के यात्रा-विवरण के आधार पर हम पहले आलवी की सम्भावित स्थिति पर विचार कर ही चुके हैं। बुद्धकालीन परिस्थिति को देखते हुए हम आलवी को महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार कानपुर और कन्नौज के बीच में ही कहीं देखने के पक्षपाती हैं।

कण्णकुज्ज (कान्यकुब्ज) पंचाल देश का एक प्रसिद्ध नगर था। कण्णकुज्ज बुद्धकालीन दो प्रसिद्ध मार्गों पर पड़ता था। एक तो वह उत्तरापथ मार्ग का एक महत्त्वपूर्ण पड़ाव था, जिसके पूर्व में प्रयाग-प्रतिष्ठान और पश्चिम में संकाश्य नगर थे। इन दोनों नगरों के बीच में कण्णकुज्ज स्थित था। दूसरे उस मार्ग पर भी कण्णकुज्ज पड़ता था जो सोरेय्य (सोरों) से सहजाति तक जाता था और जिसके पड़ाव सोरेय्य से प्रारम्भ कर क्रमशः संकाश्य, कण्णकुज्ज, उदुम्बर नगर, अग्गलपुर और सहजाति थे। कण्णकुज्ज नगर निश्चयतः आधुनिक कन्नौज ही है। कण्णकुज्ज की यात्रा सातवीं शताब्दी ईसवी में यूआन् चुआङ ने की थी और उसने इसे संकस्स से २०० 'लो' या करीब ३३ या ३४ मील उत्तर-पश्चिम दिशा में बताया है।[3] चूंकि आधुनिक कन्नौज संकस्स (संकिसा) से उत्तर-पश्चिम में न होकर दक्षिण-पूर्व में है, अतः उत्तर-पश्चिम के स्थान पर दक्षिण-पूर्व दिशा के

---

१. देखिये थेरीगाथा, पृष्ठ ५३ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

२. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ६२।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३४०।

परिवर्तन का सुझाव कनिंघम ने दिया है,[1] जिसे वाटर्स ने भी स्वीकार किया है।[2] वैसे यूआन् चुआङ् की दिशाओं में परिवर्तन करने को हम किसी प्रकार वैध नहीं समझते, परन्तु यहाँ एक विशेष बात यह है कि उसके यात्रा-विवरण के एक संस्करण में 'उत्तर-पश्चिम' पाठ न होकर 'दक्षिण-पूर्व' ही है। अतः हम इस पाठ को ठीक मानकर कनिंघम और वाटर्स के दिशा-परिवर्तन सम्बन्धी सुझाव से सहमत हो सकते हैं। कण्णकुज्ज को यूआन् चुआङ् ने "कन्याकुब्ज" ("क-नो-कु-शे") कहकर पुकारा है और उसके यह नाम पड़ने के सम्बन्ध में एक मनोरंजक अनुश्रुति का उल्लेख किया है,[3] जिसके विवरण में जाना हमारे लिये यहाँ आवश्यक न होगा। फा-ह्यान ने भी पाँचवीं शताब्दी ईसवी में कन्नौज की यात्रा की थी और उसने भी इसे कुबड़ी कन्याओं का नगर कहकर पुकारा है।[4] परन्तु इस सम्बन्धी अनुश्रुति का विस्तार के साथ उल्लेख उसने नहीं किया है। फा-ह्यान ने केवल दो बौद्ध विहार कण्णकुज्ज में देखे थे, परन्तु यूआन् चुआङ् ने इस नगर में १०० बौद्ध विहारों का उल्लेख किया है और कहा है कि यहाँ हीनयान और महायान सम्प्रदायों के १०,००० भिक्षु निवास करते थे। २०० देव-मन्दिर भी यहाँ थे, ऐसा उसने लिखा है।[5]

पालि साहित्य से हमें पता लगता है कि सोरेय्य (सोरों) एक अत्यन्त प्राचीन नगर था। भगवान् बुद्ध से पूर्व अनोमदस्सी बुद्ध और वेस्सभू बुद्ध ने भी सोरेय्य नगर में धर्म-प्रचार किया था। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में सोरेय्य उत्तरापथ मार्ग का एक महत्वपूर्ण पड़ाव था, जो वेरंजा और संकाश्य नगर के बीच में स्थित था। श्रावस्ती से सोरेय्य होते हुए तक्षशिला तक निरन्तर शकटसार्थ चलते रहते थे।[6] पूर्व में सोरेय्य राजगृह और श्रावस्ती से व्यापारिक मार्गों के द्वारा जुड़ा

---

१. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ४३०।
२. ऑन् यूआन् चुआङ्स ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३४०।
३. वहीं, जिल्द पहली, पृष्ठ ३४०-३४२।
४. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ २९।
५. उपर्युक्त दो पद-संकेतों के समान।
६. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ३२६।

हुआ था ही। अहोगंग पर्वत (हरिद्वार) से सोरेय्य तक मार्ग था, जो आगे चलकर क्रमशः संकाश्य, कण्णकुज्ज, उदुम्बर नगर और अग्गलपुर होता हुआ सहजाति तक जाता था।[1] अशोककालीन स्थविर रेवत सोरेय्य में ही निवास करते थे।[2] भगवान् बुद्ध के शिष्य महाकात्यायन को भी हम एक बार सोरेय्य नगर में विहार करते देखते हैं। आधुनिक सोरों ही निश्चित रूप से बुद्धकालीन सोरेय्य है।[3]

वेरंजा उत्तरापथ मार्ग पर पड़ने वाला बुद्ध-काल में एक महत्वपूर्ण पड़ाव था, जो मथुरा और सोरेय्य के बीच स्थित था। पालि तिपिटक या उसकी अट्ठ-कथाओं में कहीं यह उल्लेख नहीं किया गया है कि यह किस जनपद में था। चूँकि मथुरा सूरसेन जनपद में थी और सोरेय्य (सोरों) पंचाल जनपद में, अतः वेरंजा को इन दोनों जनपदों में से किसी में रक्खा जा सकता है। सोरों के समीप और श्रावस्ती की ओर का ध्यान रखते हुए उसे पंचाल जनपद में रखने की प्रवृत्ति होती है, परन्तु अंगुत्तर-निकाय के वेरंजक-ब्राह्मण-सुत्त में मथुरा से वेरंजा को गये मार्ग को देखकर और मथुरा से उसकी निकटता के कारण उसे सूरसेन जनपद में भी मानने की प्रवणता होती है। पालि परम्परा में यद्यपि कोई स्पष्ट उल्लेख नहीं

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५५१।

२. उपर्युक्त के समान।

३. सोरों (गंगा के किनारे, जिला एटा, उत्तर प्रदेश) के रूप में सोरेय्य की पहचान प्रायः निर्विवाद मानी जाती है। अतः यह एक खेदजनक आश्चर्य ही है कि डा० नलिनाक्ष दत्त और श्री कृष्णदत्त वाजपेयी ने बिना किसी कारण का उल्लेख किये सोरेय्य को उत्तर प्रदेश में ही नहीं माना है। 'उत्तर-प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास' (पृष्ठ १३) में वे लिखते हैं, "विनय-पिटक (३, ११) में एक अन्य मार्ग का वर्णन है जिससे होकर स्वयं बुद्ध गये थे। यह पश्चिम में वेरंज से आरम्भ होकर सोरेय्य, संकस्स, कण्णकुज्ज, पयाग तित्थ होते हुए बनारस को जाता था, जिनमें सोरेय्य को छोड़ कर शेष सभी उत्तर प्रदेश के अन्तर्गत हैं।" पता नहीं विद्वान् लेखकों ने ऐसा किस आधार पर लिखा है? डा० लाहा ने सोरों को उत्तर प्रदेश के जिला इटावा में बताया है। 'हिस्टोरिकल ज्योग्रेफी ऑव एन्शियन्ट इण्डिया', पृष्ठ १२८। यह ठीक नहीं है। सोरों जिला इटावा में न होकर एटा में है।

है, परन्तु मूल सर्वास्तिवाद की परम्परा वेरंजा (वैरम्भ्य) को निश्चयतः शूरसेन जनपद से बाहर और सम्भवतः दक्षिण पंचाल में मानती है। बुद्ध शूरसेन प्रदेश में अपनी चारिकाएँ समाप्त करने के बाद ओतला होते हुए वैरम्भ्य को जाते हुए यहाँ दिखाये गये हैं।[1] इसे एक पूरक साक्ष्य मानकर हम वेरंजा को पंचाल जनपद में मान सकते हैं, जिसके विपरीत पालि के वेरंजा-सम्बन्धी विवरण भी नहीं जाते।

जैसा हम पहले (दूसरे परिच्छेद में) देख चुके हैं, भगवान् बुद्ध ने अपना बारहवाँ वर्षावास वेरंजा में किया था। वे श्रावस्ती से यहाँ आये थे और वेरंजा में वर्षावास करने के समय के आसपास ही उन्होंने मथुरा की यात्रा की थी, जहाँ से लौटकर वे फिर वेरंजा आ गये थे। अंगुत्तर-निकाय के वेरंजक-ब्राह्मण-सुत्त में हम भगवान् को मथुरा और वेरंजा के बीच रास्ते में जाते देखते हैं। यह उनकी इसी यात्रा से सम्बद्ध है। वेरंजा में वर्षावास करने के बाद भगवान् क्रमशः सोरेय्य, संकस्स, कण्णकुज्ज और पयाग पतिट्ठान होते हुए वाराणसी चले गये थे। वाराणसी से वे वैशाली गये थे और वहाँ से श्रावस्ती। इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि वेरंजा श्रावस्ती से मथुरा आनेवाले मार्ग में मथुरा और सोरों के बीच स्थित था। वेरंजा उत्तरापथ मार्ग का एक महत्वपूर्ण पड़ाव था, यह इस बात से विदित होता है कि हम यहाँ उत्तरापथ के घोड़ों के सौदागरों को वर्षावास में पड़ाव डाले देखते हैं।

मथुरा और सोरों के बीच तथा इन दोनों स्थानों और श्रावस्ती से मार्ग के द्वारा जुड़ा हुआ यह वेरंजा क्या स्थान हो सकता है, इसके सम्बन्ध में अभी पूरी खोज नहीं हुई है। एक महत्वपूर्ण पूरक सूचना जो हमें इस सम्बन्ध में मूल सर्वास्तिवादी परम्परा में मिलती है और जिसका हम ऊपर उल्लेख कर चुके हैं, यह है कि भगवान् बुद्ध इस परम्परा के अनुसार मथुरा से ओतला होते हुए वेरंजा (वैरम्भ्य) गये थे। इस प्रकार यह ओतला नामक स्थान हमारे लिये एक नई समस्या भी है और वेरंजा की पहचान कराने में एक सम्भाव्य सहायक साधन भी। परन्तु इस स्थान का भी कोई ठीक पता अभी नहीं लग सका है। मूल सर्वास्तिवाद के विनय-पिटक (गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स्, जिल्द तीसरी, भाग प्रथम,

---

१. गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स्, जिल्द तीसरी, भाग प्रथम, पृष्ठ १७-२५।

पृष्ठ २५) में वैरम्भ्य का शासक ब्राह्मणराज अग्निदत्त बताया गया है। इसका भी कुछ न कुछ उपयोग इस स्थान की खोज के सम्बन्ध में किया जा सकता है।

भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के आधार पर निष्कर्ष निकालते हुए हम ऊपर देख चुके हैं कि वेरंजा नामक स्थान श्रावस्ती से मथुरा आने वाले मार्ग पर मथुरा और सोरेय्य के बीच था। इस प्रकार वेरंजा की दिशा मथुरा से पूर्व या पूर्व-उत्तर ही हो सकती है।[1]

उपर्युक्त बातों को ध्यान में रखते हुए वेरंजा के सम्बन्ध में खोज-पड़ताल करने पर विदित होता है कि आज जहाँ ग्रांड ट्रंक रोड अलीगढ़ और एटा के बीच सिकन्दरा-राव कस्बे (जिला अलीगढ़) के पास मथुरा और सोरों के बीच के मार्ग को काटती

---

१. परन्तु डा० नलिनाक्ष दत्त और श्री कृष्णदत्त वाजपेयी ने उसे मथुरा से पश्चिम दिशा में बताया है। लेखक-द्वय का कहना है, "पालि अनुश्रुति में बुद्ध के मथुरा में किये गये उपर्युक्त कार्यों का एकदम उल्लेख नहीं है, यद्यपि कई ग्रन्थों में, जिनमें महावग्ग भी है, मथुरा के पश्चिम वेरंज (वैरम्भ) नामक स्थान में उनके जाने का वर्णन किया गया है।" उत्तर-प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास, पृष्ठ ११९। विनय-पिटक के महावग्ग में यह तो कहीं उल्लेख नहीं है कि वेरंज या वेरंजा मथुरा के पश्चिम में था, यह तो लेखकों की अपनी व्याख्या है। श्रावस्ती और मथुरा तथा मथुरा और सोरेय्य के बीच स्थित वेरंजा मथुरा से पश्चिम दिशा में किस प्रकार होगा? वेरंजा या वैरम्भ (गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स में वैरम्भ्य पाठ है) का पंचाल (दक्षिण पंचाल) जनपद में स्थित होना सर्वास्तिवादी परम्परा के अनुसार स्वयं इन लेखक-द्वय ने स्वीकार किया है (उत्तर-प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास, पृष्ठ ७८)। फिर वेरंजा को मथुरा से पश्चिम दिशा में किस प्रकार माना जा सकता है? स्वयं गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स् (जिल्द तीसरी, भाग प्रथम) में बुद्ध मथुरा से क्रमशः ओतला, वैरम्भ्य, अयोध्या और साकेत होते हुए श्रावस्ती पहुँचते हैं। अतः वैरम्भ्य का मथुरा से पश्चिम में होने का तो कोई सवाल ही नहीं उठता। वस्तुतः इस स्थान को मथुरा के पूर्व या पूर्वोत्तर दिशा में ही होना चाहिए, वहाँ पड़ने वाले उत्तरापथ मार्ग पर या उसके आसपास।

है, वहीं सम्भवतः कहीं वेरंजा था। इस स्थिति से पालि-विवरणों की सब शर्तें पूरी हो जाती हैं।

समन्तपासादिका[1] में कहा गया है कि वेरंजा में वर्षावास करते समय भगवान् ने कुछ समय उसके समीप नलेरुपुचिमन्द नामक चैत्य में बिताया था। यह चैत्य एक पुचिमन्द (नीम) के पेड़ के नीचे बना था और नलेरु नामक यक्ष को समर्पित था। इसलिये इसका नाम 'नलेरुपुचिमन्द' पड़ा था। इस चैत्य से लगते हुए ही उत्तर-कुरु की ओर मार्ग जाता था, जिससे तात्पर्य यहाँ उत्तरापथ मार्ग से ही हो सकता है। इसी मार्ग से उत्तरापथ के घोड़ों के व्यापारी यहाँ आये होंगे, जो उस समय वर्षाकाल में यहाँ पड़ाव डाले हुए थे। इस चैत्य के विवरण से भी यह स्पष्ट होता है कि वेरंजा उत्तरापथ मार्ग पर मथुरा और सोरों के बीच स्थित था। अतः ऐसा स्थान आधुनिक सिकन्दरा राव कस्बे (जिला अलीगढ़) के आसपास ग्रांड ट्रंक रोड से लगता हुआ ही कहीं हो सकता है। यह भी सम्भव है कि शाहगढ़ का खेड़ा ही प्राचीन वेरंजा हो। यहाँ गुप्तकालीन मूर्तियाँ आदि भी मिली हैं और यह एक प्राचीन स्थान भी है।

"धर्मदूत" के फर्वरी, १९५९, के अंक में श्री बनारसीदास 'करुणाकर' ने अतरंजी के खेड़े को वेरंजा बताने का प्रयत्न किया है। यह खेड़ा काली नदी के तट पर जिला एटा में ही है और मथुरा और सोरों के बीच होने की शर्त को पूरा करता है। ओतला की पूरक सूचना के सम्बन्ध में लेखक ने कोई विचार नहीं किया है। वेरंजा को उत्तरापथ मार्ग पर पड़ना चाहिए। अतरंजी का खेड़ा इस पर नहीं पड़ सकता, इसकी लेखक को अनुभूति रही है। परन्तु इसको उसने कम महत्व देने का प्रयत्न किया है। अभी इस सम्बन्ध में आगे और खोज की आवश्यकता है।

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ १०८, १८४; मिलाइये अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ १७२, १९७ भी। गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स, जिल्द तीसरी, भाग प्रथम, पृष्ठ २५ में 'नलेरुपुचिमन्द चैत्य को 'नडेरपिचुमन्द' कहकर पुकारा गया है।

चेति (चेदि) या चेतिय (चैद्य) जनपद वंस जनपद के दक्षिण में, यमुना नदी के पास, उसकी दक्षिण दिशा में, स्थित प्रदेश था।[१] इसके पूर्व में काशी जनपद, दक्षिण में विन्ध्य पर्वत, पश्चिम में अवन्ती और उत्तर-पश्चिम में मच्छ (मत्स्य) और सूरसेन जनपद थे। चेदि जनपद का सबसे समीपी पड़ोसी वंस (वत्स) जनपद ही था। इसीलिये सम्भवतः दीघ-निकाय के जनवसभ-सुत्त में वंस और चेदि का साथ-साथ मिलाकर द्वन्द्व समास के रूप में वर्णन किया गया है . . . "चेतिवंसेसु"। चेदि जनपद का विस्तार साधारणतः आधुनिक बुन्देलखण्ड और उसके आसपास के प्रदेश के बराबर माना जा सकता है। चेतिय जातक में चेदि देश के राजाओं की वंशावली दी गई है जिसमें महासम्मत और मन्धाता (मान्धाता) राजाओं को उनके आदि पूर्वज बताया गया है। इसी जातक में अन्तिम चेदि नरेश उपचर या अपचर के पाँच पुत्रों द्वारा प्राचीन भारत के पाँच नगरों के बसाये जाने का उल्लेख है। जिन पाँच नगरों को उपचर या अपचर के इन पाँच पुत्रों ने बसाया, उनके नाम हैं हत्थिपुर,[२] अस्सपुर,[३] सीहपुर,[४] उत्तरपंचाल[५] और दद्दरपुर।[६] वेदब्भ जातक से हमें पता लगता है कि चेदि देश से काशी जनपद को जाने वाला मार्ग वन में होकर जाता था और लुटेरों से भरा था। चेतिय जातक से ही हमें पता

---

१. डा० मललसेकर ने चेति जनपद को यमुना के समीप, उसके पूर्व की ओर स्थित बताया है (...'lay near the यमुना, to the east' डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ १११)। पूर्व की ओर कहना ठीक नहीं है। वस्तुतः यमुना के पूर्व में न होकर उसके दक्षिण में ही चेति जनपद था। यमुना के पूर्व में तो वत्स जनपद था। उसके नीचे चेति था।

२. या हत्थिनीपुर हस्तिनापुर, कुरु राष्ट्र में।

३. अंग जनपद में।

४. लाल राष्ट्र में, उत्तरी पंजाब में भी।

५. उत्तर पंचाल की राजधानी, जिसे महाभारत के अहिच्छत्र से मिलाया गया है।

६. हिमवन्त प्रदेश में (सम्भवतः दर्दिस्तान में। देखिए पीछे द्वितीय परिच्छेद में उत्तरापथ के प्राकृतिक भूगोल का विवेचन)।

चलता है कि चेतिय जनपद की राजधानी सोत्थिवती नामक नगरी थी। इस नगरी को नन्दोलाल दे ने महाभारत (३।२०।५०; १४।८३।२) की नगरी शुक्तिमती या शुक्तिसाहृवय से मिलाया है।[१] पार्जिटर ने उसकी स्थिति आधुनिक बाँदा के समीप बताई थी, जिससे डा० हेमचन्द्र रायचौधरी भी सहमत हैं।[२] परन्तु पालि साक्ष्यों का ध्यान रखते हुए हमें यह पहचान ठीक नहीं जान पड़ती। इसका कारण यह है कि चेतिय जातक में स्पष्ट रूप से सोत्थिवती नगर से पूर्व दिशा में हत्थिपुर (हस्तिनापुर) को स्थित बताया गया है।[३] इसका अर्थ यह है कि पालि विवरण के अनुसार सोत्थिवती को हस्तिनापुर के पश्चिम में होना चाहिये। अतः बाँदा के पास उसे नहीं माना जा सकता। यह सम्भव है कि हस्तिनापुर के पश्चिम में चेतिय (चेत) लोगों की कोई अन्य बस्ती रही हो और उसी की राजधानी सोत्थिवती नगरी हो। हर हालत में हमें पालि के सोत्थिवती नगर को हस्तिनापुर के पश्चिम में ही ढूँढ़ने का प्रयत्न करना होगा।

सहजाति या सहजातिय चेदि राज्य का एक दूसरा प्रसिद्ध नगर था। अंगुत्तर-निकाय[४] में उसे स्पष्टतः चेदि राष्ट्र का निगम बताया गया है। सहजाति को आधुनिक भीटा के भग्नावशेषों से मिलाया गया है, जो इलाहाबाद से करीब ८ या ९ मील दक्षिण-पश्चिम में स्थित है। ये भग्नावशेष ही प्राचीन सहजाति नगर हैं, यह इस बात से विदित होता है कि यहाँ करीब तीसरी शताब्दी ईसवी-पूर्व की एक मुद्रा मिली है, जिस पर अंकित है "सहजातिये निगमस।" सहजाति बुद्ध-काल में एक महत्वपूर्ण नगर था, जो स्थलीय और जलीय दोनों व्यापारिक मार्गों पर स्थित था। एक स्थलीय मार्ग उसे सोरों (सोरेय्य) से मिलाता था। इसी मार्ग पर चलते हुए स्थविर रेवत सोरेय्य से सहजाति गये थे। बीच में जो

---

१. ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडीवल इण्डिया, पृष्ठ १९६; मिलाइये रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १२९।

२. देखिये उनकी पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १२९; मिलाइये उनकी स्टडीज इन इण्डियन एण्टिक्विटीज, पृष्ठ ११४।

३. जातक, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ १२० (हिन्दी अनुवाद)।

४. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३५५।

स्थान पड़े थे. वे सोरेय्य से प्रारम्भ कर इस प्रकार हैं, सोरेय्य, संकाश्य, कण्ण-कुज्ज, उदुम्बरपुर, अग्गलपुर और सहजाति[1]। वेदब्भ जातक में चेदि देश से काशी जनपद को जाने वाले जिस मार्ग का उल्लेख है, वह सम्भवतः सहजाति होकर ही जाता था। सहजाति कौशाम्बी से, जो उससे थोड़ी दूर पर ही स्थित थी, स्थल मार्ग से जुड़ा हुआ था और इस प्रकार उसका सम्बन्ध तत्कालीन भारत के प्रायः सभी महा-नगरों से था। पालि विवरणों से ज्ञात होता है कि बुद्ध-काल में सहजाति नगर गंगा-यमुना के संगम के समीप स्थित था। गंगा में चम्पा से लेकर यहाँ तक नावें आती थीं। वैशालीवासी वज्जिपुत्तक भिक्षु नावों में बैठकर ही स्थविर रेवत से मिलने सहजाति आये थे।[2] बाद के काल में चम्पा तक ही नहीं, तामलित्ति (ताम्रलिप्ति) तक सहजाति से गंगा में होकर नावें जाती थी और इस प्रकार उसके व्यापारिक सम्बन्धों को सुवर्णद्वीप (दक्षिणी बर्मा) तक पूर्व में जोड़ती थीं। अंगुत्तर-निकाय[3] के अनुसार भगवान् बुद्ध सहजाति नगर गये थे और वहाँ उन्होंने चेतिय लोगों को उपदेश दिया था। भगवान् बुद्ध के शिष्य महाचुन्द भी चेदि देश के सहजाति नगर में गये थे, ऐसा हमें अंगुत्तर-निकाय[4] से स्पष्टतः विदित होता है। "आयस्मा महाचुन्दो चेतिसु विहरति सहजातियं"।

संयुत्त-निकाय के गवम्पति-सुत्त में हम स्थविर गवाम्पति (गवम्पति) तथा कुछ अन्य भिक्षुओं को चेदि या चेत राष्ट्र के (चेतेसु) सहंचनिक या सहंचनिका नामक नगर में निवास करते देखते हैं।[5] इस सहंचनिक या सहंचनिका को मलल-सेकर ने सहजाति का ही विकृत या गलत रूप माना है।[6] परन्तु इसे हम एक अलग नगर भी मान सकते हैं।

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५५१।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५५७; महावंश ४।२७ (हिन्दी अनुवाद)।

३. जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ४१, १५७।

४. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३५५; मिलाइये जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ४१, १५७, १६१ भी।

५. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ८१३।

६. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १०८०।

बालकलोणकार गाम कौशाम्बी के समीप एक गाँव था। यह कौशाम्बी और पाचीनवंस दाय के बीच में था। कौशाम्बी तो वंस राज्य में थी ही, पाचीनवंस दाय को निश्चित रूप से चेति राष्ट्र में कहा गया है। बालकलोणकार गाम के बारे में निश्चित सूचना नहीं मिलती कि वह वंस और चेदि में से किस राष्ट्र में था। हम उसे इन दोनों राज्यों की सीमा पर मान सकते हैं। भगवान् कौशाम्बी के कुछ भिक्षुओं की कलहप्रियता से खिन्न होकर जब वहाँ से श्रावस्ती के लिये चल दिये तो प्रथम स्थान जहाँ पर वे टिके वह बालकलोणकार गाम ही था। यहाँ से वे पाचीनवंस दाय में चले गये। मज्झिम-निकाय के उपालि-सुत्तन्त से हमें पता लगता है कि उपालि गहपति, जो निगण्ठ नाटपुत्त का एक प्रसिद्ध शिष्य था, बालकलोणकार गाम का ही निवासी था। वह, उपर्युक्त सुत्त के अनुसार, नालन्दा में, जहाँ निगण्ठ नाटपुत्त (जैन तीर्थंकर भगवान् महावीर) उस समय ठहरे हुए थे, उनके दर्शनार्थ गया था।

पाचीन वंस (मिग) दाय चेतिय राज्य में एक मृगोपवन था।[१] यह बालकलोणकार गाम और पारिलेय्यक वन के बीच स्थित था। बुद्धत्व-प्राप्ति के नवें वर्ष में, जब भगवान् बुद्ध कौशाम्बी के कलहप्रिय भिक्षुओं से ऊबकर श्रावस्ती की ओर जा रहे थे तो मार्ग में कौशाम्बी के बाद बालकलोणकार गाम में ठहरते हुए यहाँ आये थे। यहाँ आयुष्मान् अनुरुद्ध, नन्दिय और किम्बिल नामक भिक्षु पहले से ही विहार कर रहे थे। भगवान् ने उन्हें उपदेश दिया और कुछ दिन ठहर कर पारिलेय्यक वन की ओर चल दिये, जहाँ दसवाँ वर्षावास करने के उपरान्त क्रमशः चारिका करते हुए हम उन्हें श्रावस्ती पहुँचते देखते हैं।[२] अंगुत्तर-निकाय[३] में भी आयुष्मान् अनुरुद्ध के चेतिय देश के पाचीनवंस (मिग) दाय में विहार का उल्लेख है।

कौशाम्बी के समीप पारिलेय्यक नगर के पास पारिलेय्यक नामक वन था, जहाँ भगवान् कौशाम्बी से क्रमशः बालकलोणकार गाम और पाचीनवंसदाय में होते

१. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द चौथी, पृष्ठ २२८।
२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३३१-३३४।
३. जिल्द चौथी, पृष्ठ २२८।

हुए पहुँचे थे। इस वन के रक्षित वनखण्ड में भद्दसाल नामक वृक्ष के नीचे भगवान् ठहरे थे। यहीं उन्होंने अपना दसवाँ वर्षावास किया। तदनन्तर भगवान् श्रावस्ती चले गये।[१]

पारिलेय्यक नगर कौशाम्बी के समीप था। पारिलेय्यक नामक वन भी इसके समीप था, जिसके रक्षित वनखण्ड में भगवान् ने अपना दसवाँ वर्षावास किया था। भगवान् कौशाम्बी से चलकर बालकलोणकार गाम और पाचीनवंस (मिग) दाय में होते हुए पारिलेय्यक नगर और उसके समीप पारिलेय्यक वन में पहुँचे थे। चूंकि पाचीनवंसदाय को अंगुत्तर-निकाय में निश्चयतः चेतिय (चेति) राज्य में बताया गया है, इसलिये पारिलेय्यक वन और पारिलेय्यक नगर को भी चेति राष्ट्र में मानना ठीक जान पड़ता है।

भद्दवती या भद्दवतिका एक व्यापारिक कस्बा था जो कौशाम्बी के समीप स्थित था। परन्तु उसे चेतिय राज्य में सम्मिलित बताया गया है। सामावती का पिता भद्दवतिय सेट्ठि यहीं रहता था। सामावती से कौशाम्बी-नरेश उदयन ने विवाह किया था। भगवान् बुद्ध एक बार भद्दवती गये थे जहाँ के "अम्बतित्थ" नामक स्थान में जाने से ग्वालों ने उन्हें रोका था, क्योंकि वहाँ एक भयंकर नाग रहता था। स्थविर स्वागत ने इस नाग को अपने वश में कर लिया था। सुरापान जातक में वर्णन है कि काफी दिन भद्दवती में रहकर भगवान् कौशाम्बी चले गये थे जहाँ उन्होंने सुरापान-निषेध का उपदेश दिया था। भद्दवती से कौशाम्बी को एक सड़क जाती थी और दोनों के बीच व्यापारिक सम्बन्ध थे।[२] यह सम्भव है कि वर्तमान भाँदक नामक गाँव, जो मध्य-प्रदेश के जिला चाँदा में है, बुद्धकालीन भद्दवती हो। अनुश्रुति इसे भद्रावती से संयुक्त मानती है, जिससे हम पालि की भद्दवती को मिला सकते हैं।

चालिका नामक एक गाँव चेति (चेतिय) देश में था, जिसके समीप ही चालिक या चालिय नामक पर्वत था जहाँ भगवान् ने अपने तेरहवें, अठारहवें और उन्नीसवें वर्षावास किये। चालिका के समीप होकर ही किमिकाला नदी बहती थी। चालिका

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३३३।

२. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ १८७।

गाँव के पास एक चलपङ्क (दलदल) था, जिसके कारण इस गाँव का नाम "चालिका" पड़ा था।

चालिका से लगा हुआ ही एक दूसरा गाँव जन्तुगाम था, जो किमिकाला नदी के समीप ही था। इसी गाँव में भिक्षाटन के लिये जाते समय आयुष्मान् मेघिय की इच्छा किमिकाला नदी के किनारे स्थित आम्रवन में ध्यान करने की हुई थी। मनोरथपूरणी[1] में कहा गया है कि जन्तुगाम पाचीनवंस दाय में था। इसमें कोई विरोध नहीं है, क्योंकि पाचीन वंसदाय भी चेति राष्ट्र में ही था। इससे हमें पाचीन वंसदाय, चालिय पर्वत, चालिका गाँव, जन्तुगाम और किमिकाला नदी, इन सब के कुछ-कुछ दूरी पर चेतिय राष्ट्र में ही स्थित होने की उपयोगी सूचना मिलती है।

किमिकाला (किमिल्लिका) नदी चेतिय देश में होकर बहती थी। चालिय (चालिक) पर्वत के यह समीप थी। किमिकाला नदी के तट पर वह आम्रवन था, जहाँ आयुष्मान् मेघिय भगवान् की इच्छा के विरुद्ध ध्यान करने के लिये चले गये थे और बाद में बुरे संकल्प उठने के कारण लौट आये थे।[2] जन्तुगाम भी किमिकाला नदी के पास ही था। उदान-अट्ठकथा में कहा गया है कि इस नदी में काले रंग के कीड़े (कालकिमि) बहुलता से पाये जाते थे, इसलिये इसका नाम "कालकिमीनं बाहुलताय" अर्थात् काले कृमियों की बहुलता के कारण "किमिकाला" पड़ा था।[3]

चालिक (चालिय) पब्बत, चेतिय देश में, चालिका नामक गाँव के पास स्थित था, जहाँ भगवान् ने अपने तेरहवें, अठारहवें और उन्नीसवें वर्षावास किये।[4]

---

१. जिल्द पहली, पृष्ठ १६३।

२. उदान, पृष्ठ ४७-४९ (हिन्दी अनुवाद)।

३. देखिए मललसेकर : डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ६०४।

४. डा० नलिनाक्ष दत्त और श्री कृष्णदत्त वाजपेयी ने चालिय गिरि को कपिलवस्तु के समीप बताया है, जिसे समझना कठिन है। वे कहते हैं "बुद्ध ने... तेरहवीं वर्षा कपिलवस्तु के निकट चालिय गिरि पर बिताई।" उत्तर-प्रदेश में

मनोरथपूरणी[1] में कहा गया है कि यह पर्वत सफेद रंग का था और अमावस्या की काली रात को चलता जैसा दिखाई पड़ता था। इसीलिये इसका नाम "चालिक," या "चालिय" पड़ा था।

सुत्त-निपात की अट्ठकथा (परमत्थजोतिका)[2] में कहा गया है कि चेति जनपद में 'चेति' या 'चेतिय' नाम धारण करने वाले राजाओं ने शासन किया था, इसलिये उसका यह नाम (चेति) पड़ा। ऋग्वेद (८।५।३७-३९) में चेदि जनों और उनके राजा काशु चैद्य का उल्लेख है। उन्हीं के प्रदेश से हम पालि के चेति या चेतिय जनपद को साधारणतः अभिन्न मान सकते हैं। यह आधुनिक बुन्देलखण्ड ही हो सकता है।

वेस्सन्तर (महावेस्सन्तर) जातक में चेति या चेत जनपद के विषय में एक ऐसी बात कही गई है जिसने कई विद्वानों को काफी भ्रम में डाल दिया है। इस जातक के अनुसार कुमार वेस्सन्तर सिवि राष्ट्र के जेतुत्तर नगर से हिमालय में निर्वासन के लिये जाते हुए चेत रट्ठ में होकर गुजरा था और यह राष्ट्र जेतुत्तर से ३० योजन की दूरी पर स्थित था। इसके आधार पर प्रो० रायस डेविड्स् ने यह निष्कर्ष निकाला था कि इस चेत रट्ठ या चेति राज्य को पहाड़ों में होना चाहिये और उन्होंने इसे वर्तमान नेपाल से मिलाने का प्रयत्न भी किया। इस प्रकार प्रो० रायस डेविड्स् को दो चेति राज्य मानने पड़े। एक तो वही यमुना के पास का, जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं और दूसरा यह पर्वत प्रदेश का। इस पर्वत प्रदेश वाले चेति राज्य को उन्होंने चेतिय लोगों का पुराना निवास और यमुना के पास के चेतिय राज्य को उनका उसके बाद का निवास माना।[3] डा० मललसेकर ने रायस डेविड्स् की

बौद्ध धर्म का विकास, पृष्ठ ७९। इसी प्रकार महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने 'महामानव बुद्ध' (पृष्ठ १०) में चालिय पर्वत को बिहार में लिखा दिया है, जो भी उतना ही समझने में कठिन है। पालि परम्परा के स्पष्ट साक्ष्य पर यह पर्वत चेतिय जनपद में था।

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७९३।

२. जिल्द पहली, पृष्ठ १३५।

३. बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ १९ (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०)

इन सब मान्यताओं से सहमति दिखाई है और साथ ही सोत्थिवती नगर को प्राचीन चेतिय जनपद की राजधानी निश्चित किया है।[1] परन्तु ये सब मान्यताएँ अप्रामाणिक हैं और प्रथम गम्भीर परीक्षण को भी सहन नहीं करतीं। चित्तौड़ के रूप में जेतुत्तर की पहचान प्रायः निश्चित हो चुकी है। यदि यह ठीक है तो इस स्थान से ३० योजन दूर चेति राज्य को वेस्सन्तर जातक के अनुसार होना चाहिये।[2] उस हालत में हम उसे नेपाल में किस प्रकार स्थित मान सकते हैं? फिर इस तथाकथित प्राचीन चेति राज्य (नेपाल) की राजधानी मललसेकर ने सोत्थिवती नगर को माना है। परंतु चेतिय जातक में हम स्पष्टतः यह उल्लेख पाते हैं कि सोत्थिवती से पूर्व मे हत्थिपुर (हस्तिनापुर) था।[3] अतः सोत्थिवती को हस्तिनापुर से पश्चिम में होना चाहिये। सोत्थिवती राजधानी वाले चेतिय जनपद को नेपाल मानकर इसकी क्या संगति होगी? अतः रायस डेविड्स् द्वारा प्रतिपादित और मललसेकर द्वारा समर्थित यह मत हमें मान्य नहीं हो सकता।

उनके प्रतिकूल हमें सोत्थिवती नगर के रूप में राजधानी वाले जनपद को तो, जिसका चेतिय जातक में उल्लेख है, हस्तिनापुर के पश्चिम में ही कहीं मानना पड़ेगा। सम्भवतः वेस्सन्तर जातक का चेत रट्ठ भी यही था, जिसका मातुल नामक नगर जेतुत्तर से ३० योजन दूर था। इस प्रकार चेतिय जातक और वेस्सन्तर जातक के सम्मिलित साक्ष्य से हम इस निष्कर्ष पर आते हैं कि हस्तिनापुर के पश्चिम में चेति या चेत लोगों का एक अन्य जनपद था, जिसकी राजधानी सोत्थिवती नामक नगरी जेतुत्तर (चित्तौड़) से ३० योजन दूर थी। इस जनपद को हम प्राचीन न मान कर बाद का ही मानेंगे। इसका कारण यह है कि इसका उल्लेख केवल जातक में हुआ है, जब कि वत्स से लगे हुए का प्रथम चार निकायों में। ऊपर उद्धृत "चेतिवंसेसु" से यह स्पष्ट ही है। चेत या चेतिय लोगों का पश्चिम भारत में स्थित यह बाद का जनपद ही

---

१. देखिये डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ९११।

२. जातक, षष्ठ खण्ड, पृष्ठ ५५९ (हिन्दी अनुवाद); जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ५१४ (पालि टैक्सट् सोसायटी संस्करण)

३. जातक, चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ १२० (हिन्दी अनुवाद)।

है जिसके सम्बन्ध में जातक में कहा गया है कि यह एक ऋद्ध और स्फीत जनपद था, जहाँ मांस बहुलता से मिलता था और सुरा और ओदन भी सुलभ थे। "इद्धं फीतं जनपदं बहुमांसं सुरोदनं।"

चेतिय जातक और वेस्सन्तर जातक के आधार पर ही आचार्य धर्मानन्द कोसम्बी ने चेतिय राज्य के सम्बन्ध में एक ऐसी बात कही है जिससे अधिक अवैज्ञानिक और तथ्यों से विरहित बात बुद्धकालीन भारत के सम्बन्ध अब तक नहीं कही गई है। उन्होंने शिवियों के राज्य के साथ-साथ (जिसके सम्बन्ध में उनका कहना अंशतः ठीक हो सकता है) चेतियों के राज्य के सम्बन्ध में भी यह कहा है, "बुद्ध के समय में शिवियों और चेतियों के नाम विद्यमान थे, मगर ऐसा प्रतीत नहीं होता कि बुद्ध भगवान् उनके राज्यों में गये हों... बुद्ध भगवान् की जीवनी के साथ इन राज्यों का किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं था।"[1] चेतिय राष्ट्र का जो भौगोलिक विवरण पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर हम दे चुके हैं, उससे तो सब प्रकार यही सिद्ध होता है कि न केवल भगवान् बुद्ध और उनके अनेक शिष्य चेतिय लोगों के प्रदेश में गये ही थे और उनके सहजाति, भद्दवती और पाचीनवंस दाय जैसे कई नगरों और स्थानों में उन्होंने उपदेश ही दिये थे, बल्कि बुद्ध के जीवन-काल में चेतिय जनपद बौद्ध धर्म का एक महत्वपूर्ण केन्द्र भी हो गया था। यदि भगवान् बुद्ध की जीवनी के साथ चेतिय लोगों के प्रदेश का किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है तो अंगुत्तर-निकाय के उन सुत्तों का क्या होगा जिनमें स्पष्टतः भगवान् चेतिय लोगों को उनके नगर सहजाति में उपदेश करते दिखाये गये हैं। "आयस्मा महाचुन्दो चेतिसु विहरति सहजातियं।" अंगुत्तर-निकाय के इस वाक्य का क्या होगा? इसी प्रकार पाचीनवंस दाय और भद्दवती के अम्बतित्थ में बुद्ध और उनके शिष्यों के विहार का क्या होगा? दीघ-निकाय के जनवसभ-सुत्त का क्या होगा? अतः सब प्रकार से अयुक्तियुक्त होने के कारण आचार्य धर्मानन्द कोसम्बी का चेतिय लोगों के बारे में यह सामान्य

---

१. भगवान् बुद्ध, पृष्ठ ४० (हिन्दी अनुवाद)।

कथन हमें मान्य नहीं कि भगवान् बुद्ध उनके प्रदेश में नहीं गये थे और न भगवान् की जीवनी से उनके राज्य का कोई सम्बन्ध था। चेतियों के जनपद को हम मुख्यतः वंस जनपद से लगा हुआ आधुनिक बुन्देलखण्ड के आसपास का प्रदेश मानते हैं। चेतिय जातक और वेस्सन्तर जातक के 'चेत' रट्ठ को हमें हस्तिनापुर के पश्चिम में स्थित मानना पड़ेगा। इनमें से पहला चेति या चेतिय ही वस्तुतः प्राचीन चेदि राष्ट्र है जो यमुना के समीप स्थित था और सोलह महाजनपदों की गणना में आने वाला बुद्धकालीन चेतिय जनपद भी यही है। प्रथम चार निकायों में इसी का वर्णन हुआ है। दूसरे चेत रट्ठ को, जिसका उल्लेख केवल उपर्युक्त दो जातकों में हुआ है, उससे मिलाना या उसकी भौगोलिक स्थिति का निश्चय करना अभी एक समस्या ही माना जा सकता है। अतः चेतिय जातक और वेस्सन्तर जातक के अनिश्चित चेत रट्ठ को ही सब कुछ मान कर कम से कम प्रकृत चेतिय जनपद को हम अपनी दृष्टि से सर्वथा ओझल तो नहीं कर सकते, जैसा आचार्य कोसम्बी ने खेदजनक रूप से किया है

वंस जनपद, जैसा हम पहले देख चुके हैं, भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में एक राज-तंत्र था। राज्य के रूप में वंस जनपद की सीमाओं, विस्तार और मुख्य नगरों आदि का विवरण हम पहले दे चुके है। अंगुत्तर-निकाय[1] में वंस लोगों की भूमि को सप्त रत्नों से युक्त, समृद्ध और धन-धान्य से पूर्ण बताया गया है। वंस लोगों का भग्ग लोगों से गहरा सम्बन्ध था और भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण से पूर्व भग्ग जनपद के, जो एक गण राज्य था, वंस राज्य में सम्मिलित होने या उसकी अधीनता में आने के लक्षण मिलते हैं, यह हम भग्ग गणतंत्र के विवेचन में देख चुके है। भौगोलिक दृष्टि से महत्वपूर्ण अन्य सब बातो का उल्लेख हम वंस राज्य के विवरण के प्रसंग में कर चुके हैं।

मच्छ (मत्स्य) जनपद कुरु राष्ट्र के दक्षिण और सूरसेन के पश्चिम मे स्थित था। मच्छ के पूर्व में यमुना नदी थी जो उसे दक्षिण पंचाल से विभक्त करती थी। दक्षिण में उसकी सीमा सम्भवतः चम्बल नदी तक थी। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में इस जनपद का विशेष महत्व दिखाई

---

१. जिल्द चौथी, पृष्ठ २५२, २५६, २६०।

नहीं पड़ता। दीघ-निकाय के जनवसभ-सुत्त में मच्छ जनपद का प्रयोग सूरसेन जनपद के साथ मिलाकर किया गया है। "मच्छसूरसेनेसु"। जातक[1] में मच्छ जनपद का उल्लेख पंचाल, सूरसेन, मद्द और केकय के साथ किया गया है। विधुर पंडित जातक में उल्लेख है कि मच्छ लोगों के समक्ष कुरु राजा धनंजय और पुण्णक यक्ष के बीच द्यूत का खेल हुआ था। इससे डा० लाहा ने यह निष्कर्ष निकाला है कि मच्छ लोगों ने कुरु और सूरसेन जनपदों के साथ गठबन्धन कर लिया था।[2] इसके लिये इस कहानी में तो कोई विशेष अवकाश मिलता नहीं। वैदिक साहित्य और उसकी परम्परा के ग्रंथों में मत्स्य जनपद का उल्लेख है।[3] मच्छ जनपद में हम आधुनिक अलवर, भरतपुर, धौलपुर और करौली राज्यों को, जो अब राजस्थान में अन्तर्भुक्त हैं, सम्मिलित मान सकते हैं।[4] पालि तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओं में मच्छ जनपद के किसी नगर का विशिष्ट रूप से उल्लेख नहीं किया गया है।

सूरसेन जनपद मच्छ जनपद के दक्षिण-पश्चिम और कुरु राष्ट्र के दक्षिण में स्थित था। उसके पूर्व में पंचाल जनपद था और दक्षिण में अवन्ती महाजनपद का दसण्ण (दशार्ण) जनपद। जातक[5] में मच्छ, मद्द और केकय लोगों के साथ सूरसेन जनपद का नामोल्लेख किया गया है। दीघ-निकाय के जनवसभ-सुत्त में उसका उल्लेख मच्छ जनपद के साथ (मच्छसूरसेनेसु) किया गया है। पुराणों के अनुसार शूरसेन जनपद का यह नाम शत्रुघ्न के पुत्र शूरसेन के नाम पर पड़ा

---

१. जिल्द छठी, पृष्ठ २८०।

२. इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, पृष्ठ ९९।

३. जिसके विवरण के लिये देखिये वैदिक इण्डैक्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १२१-१२२।

४. मिलाइये नन्दोलाल दे : ज्योग्रेफिकल डिक्शनरी, पृष्ठ १२८; कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रैफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ३८७; रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ६६-६७।

५. जिल्द छठी, पृष्ठ २८०।

था। ऐसा कोई उल्लेख हमें पालि तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओं में तो नहीं मिलता, परन्तु दीपवंस[1] में यह अवश्य कहा गया है कि राजा साधिन (स्वाधीन) के वंशजों ने मथुरा नगरी में शासन किया। सर्वास्तिवादी परम्परा में शूरसेन जनपद के आदिम राजा का नाम महासम्मत बताया गया है। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में, जैसा मज्झिम-निकाय के माधुरिय-सुत्तन्त से प्रकट होता है, सूरसेन जनपद का राजा माथुर अवन्तिपुत्र था, जो इसी निकाय की अट्ठकथा के अनुसार अवन्ती-नरेश चण्ड प्रद्योत का दौहित्र था[2]। ग्रीक लोगों ने सूरसेन जनपद का नाम "सोरसेनोय" और उसकी राजधानी का नाम "मेथोरा" दिया है। सूरसेन जनपद को हम आधुनिक व्रज-मण्डल से मिला सकते हैं, जिसमें परम्परा से मथुरा के चारों ओर का चौरासी कोस का प्रदेश सम्मिलित माना जाता है। "व्रज चौरासी कोस में मथुरा मण्डल माँह।" सूर-सारावली में भी कहा गया है "चौरासी ब्रज कोस निरन्तर खेलत हैं बल मोहन।"

सूरसेन जनपद और विशेषतः उसकी राजधानी मधुरा (मथुरा) का बौद्ध धर्म के साथ उसके आविर्भाव-काल से लेकर कई शताब्दियों तक, विशेषतः अशोक के काल से लेकर कुषाण-युग तक, महत्वपूर्ण सम्बन्ध रहा है। मूल सर्वास्तिवादियों का तो यह एक प्रधान केन्द्र ही हो गया और मूर्तिकला के सम्बन्ध में मथुरा का एक युग ही प्रसिद्ध है। यहाँ हम अपने विषय के अनुसार भगवान् बुद्ध के जीवन-काल तक की

---

१. पृष्ठ २७।

२. ललित-विस्तर, पृष्ठ २१-२२ (लेफमेन का संस्करण) से जान पड़ता है कि भगवान् बुद्ध के आविर्भाव के समय या उससे कुछ पूर्व मथुरा में कंस-कुल का शूरसेनों का राजा सुबाहु राज्य करता था। पौराणिक वर्णनों से इसका मेल नहीं खाता। पुराणों में राजा सुबाहु को शूरसेन का भाई और शत्रुघ्न का पुत्र बताया गया है। अतः ललितविस्तर का कंसकुल का शूरसेनों का राजा सुबाहु वह नहीं हो सकता। सम्भव है यह कोई अन्य बुद्ध-पूर्वकालीन शूरसेन जनपद का राजा रहा हो। ऐतिहासिक रूप से हमें पालि विवरण को ही प्रामाणिक मानना चाहिए।

परिस्थितियों तक ही सीमित रहकर पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर सूरसेन जनपद का कुछ भौगोलिक विवरण देंगे।

सर्व प्रथम उसकी राजधानी मधुरा (मधुरा—पैशाची रूप) या उत्तर मधुरा[1] (उत्तर मथुरा) को लेते हैं। यहाँ सबसे पहली बात यह है कि जैसे हम "रमणीय है राजगृह"!, "रमणीय है वैशाली"!, "रमणीय है अम्बाटक वन"! आदि वाणियाँ भगवान् बुद्ध और उनके शिष्यों के मुख से कई अन्य स्थानों के सम्बन्ध में सुनते हैं, वैसी उदार वाणी मधुरा या उसके "गुन्दावन" के सम्बन्ध मे सुनाई नहीं पड़ती। स्वयं भगवान् बुद्ध मथुरा आये थे,[2] परन्तु उससे प्रभावित नहीं हुए। उन्होंने मथुरा के पाँच दोष गिनाते हुए अंगुत्तर-निकाय के पंचक-निपात में कहा है, "पञ्चिमे भिक्खवे आदीनवा मधुरायं। कतमे पञ्च? विसमा, बहुरजा, चण्डसुनखा, बालयक्खा, दुल्लभपिण्डा। इमे खो भिक्खवे पञ्च आदीनवा मधुरायं ति।"[3] इसका अर्थ है,

---

१. उत्तर मधुरा नाम दक्षिणापथ की मधुरा (जिसे आजकल मदूरा भी कहा जाता है) से पृथक् करने के लिए प्रयुक्त किया गया है। घट जातक में तथा विमानवत्थु की अट्ठकथा में 'उत्तर मधुरा' का उल्लेख है। इससे प्रसंग के अनुसार तात्पर्य सूरसेन जनपद की राजधानी मधुरा से ही हो सकता है। परन्तु यह भी सम्भव है कि उत्तरापथ में इस नाम का कोई अन्य नगर भी रहा हो। मज्झिम-निकाय के मधुर या माधुरिय सुत्त में केवल 'मधुरा' का उल्लेख है, जिससे तात्पर्य स्पष्टतः शूरसेन की राजधानी मथुरा से ही है। दक्षिण की मधुरा (मदूरा) के लिए भी केवल 'मधुरा' शब्द का प्रयोग महावंश ७।४८-५१ (हिन्दी अनुवाद) में किया गया है। अतः ऐसा लगता है कि भ्रम के निवारण के लिये ही शूरसेन जनपद की राजधानी 'मधुरा' के लिये 'उत्तर मधुरा' शब्द का प्रयोग किया गया है।

२. भगवान् बुद्ध ने मथुरा की यह यात्रा सम्भवतः बुद्धत्व-प्राप्ति के बारहवें वर्ष में वेरंजा में वर्षावास करने के समय की। मूल सर्वास्तिवाद की परम्परा की मान्यता इससे कुछ भिन्न है। देखिये द्वितीय परिच्छेद में भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के भूगोल का विवेचन।

३. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २५६।

"भिक्षुओ! मथुरा में ये पाँच दोष हैं। कौन से पाँच? यहाँ के मार्ग विषम हैं, धूल बहुत उड़ती है, कुत्ते बड़े भयंकर हैं, अज्ञानी यक्ष हैं और भिक्षा मुश्किल से मिलती है। भिक्षुओ! मथुरा में ये पाँच दोष हैं।" मूल सर्वास्तिवादी परम्परा में ये दोष, जिनकी संख्या यहाँ भी पाँच ही है, कुछ भिन्न प्रकार से बताये गये हैं।[1]

मथुरा का बौद्ध धर्म के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में ही स्थापित हो गया था और यह उस नगरी के अनुरूप भी था जो राजगृह से तक्षशिला तक जाने वाले उस समय के और आज के भी सबसे बड़े व्यापारिक मार्ग पर स्थित थी। भगवान् बुद्ध के एक प्रमुख शिष्य महाकात्यायन, जिनका प्रमुख कार्य-क्षेत्र यद्यपि अवन्ति प्रदेश था और जिन्हें हम राजगृह के तपोदाराम,[2] श्रावस्ती[3], सोरेय्य[4], वरण।[5] तथा अन्य कई स्थानों में विहार करते देखते हैं, मथुरा में भी बुद्ध-शासन का प्रचार करने आये थे। जातिवाद पर एक ओजस्वी भाषण महाकात्यायन ने राजा माथुर अवन्तिपुत्र को दिया था, जो मज्झिम-निकाय के मधुरिय या माधुरिय-सुत्तन्त में निहित है। जिस समय यह उपदेश दिया गया था, भगवान् परिनिर्वृत्त हो चुके थे। इसलिये उपदेश के अनन्तर जब माथुर अवन्तिपुत्र ने

---

१. ये दोष इस प्रकार हैं, (१) ऊँचे-नीचे कुलों का भेद है, (२) मार्गों में झाड़ियाँ और काँटे अधिक हैं, (३) पत्थर और कंकड़ियाँ अधिक हैं, (४) रात्रि के पिछले पहर में भोजन करने वाले लोग यहाँ हैं और (५) यहाँ स्त्रियों की अधिकता है। "पञ्चेमे भिक्षव आदीनवा मथुरायाम्। कतमे पञ्च? उत्कुल-निकुला, स्थाणुकण्टकप्रधाना, बहुपाषाणशार्करकठल्ला, उच्चन्द्रभक्ता, प्रचुरमातृग्रामा इति"। गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स, जिल्द तीसरी, भाग प्रथम, पृष्ठ १४-१५। मूल सर्वास्तिवादी परम्परा के अनुसार इन दोषों के विवरण के लिए देखिए वाटर्स: औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३१२ भी।

२. महाकच्चायन-भद्देकरत्त-सुत्तन्त (मज्झिम० ३।४।३)।

३. आनापान-सति-सुत्तन्त (मज्झिम० ३।२।८); उद्देस-विभंग-सुत्तन्त (मज्झिम० ३।४।८)।

४. देखिये पीछे सोरेय्य नगर का वर्णन।

५. देखिये पीछे कुरु जनपद का विवरण।

महाकात्यायन से पूछा, "हे कात्यायन ! वे भगवान् अर्हत्, सम्यक्-सम्बुद्ध इस समय कहाँ विहार करते हैं ?", तो महाकात्यायन ने उत्तर दिया, "महाराज ! वे भगवान् अर्हत् सम्यक्-सम्बुद्ध तो निर्वाण को प्राप्त कर चुके हैं।"[१] जब आर्य महाकात्यायन मथुरा में निवास कर रहे थे उसी समय कण्डरायण नामक ब्राह्मण उनसे मिलने आया था।[२] विमानवत्थु—अट्ठकथा[३] में उल्लेख है कि एक बार भगवान् बुद्ध ने श्रावस्ती से मथुरा (उत्तर मथुरा) आकर एक मरणासन्न नारी के भोजन को ग्रहण किया था, जिससे उसे स्वर्ग की प्राप्ति हुई। बुद्ध-चरित (२१।२५) में मथुरा में एक भयानक गर्दभ नामक यक्ष के भी दीक्षित किये जाने का उल्लेख है।

मज्झिम-निकाय के उपर्युक्त मधुर-सुत्त या माधुरिय-सुत्तन्त में हम स्थविर महाकात्यायन को मथुरा के "गुन्दावन" या "गुन्दवन" नामक स्थान में विहार करते देखते हैं, "एकं समयं आयस्मा महाकच्चानो मधुरायं विहरति गुन्दावने।"[४] यहीं राजा माथुर अवन्तिपुत्र मथुरा से सवारी में बैठकर उनके दर्शनार्थ गया। यह 'गुन्दावन" या "गुन्दवन" आधुनिक क्या स्थान हो सकता है ? डा० मलल-सेकर ने हमें बताया है कि पपंचसूदनी[५] में "गुन्दावन" का एक पाठ "कण्हगुन्दा-वन" भी है।[६] इसे हम संस्कृत "कृष्णकुण्डवन" का प्रतिरूप मान सकते हैं।[७] इस महत्वपूर्ण पाठान्तर से हमें "गुन्दावन" की आधुनिक स्थिति की पहचान का

---

१. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३४३।

२. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द पहली, पृष्ठ ६७-६८।

३. पृष्ठ ११८-११९।

४. मज्झिम-निकायो (मज्झिम-पण्णासकं), पृष्ठ २६८ (बम्बई विश्व-विद्यालय संस्करण)।

५. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ७३८।

६. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ७७८।

७. डा० विमलाचरण लाहा ने 'गुन्दावन' का संस्कृत प्रतिरूप 'गुणावन' दिया है (इण्डोलोजीकल स्टडीज़, भाग तृतीय, पृष्ठ ३९) जो इस स्थान की पहचान में तो हमारी सहायता करता ही नहीं, व्याकरण की दृष्टि से भी उसे चिन्त्य कहा जा सकता है।

एक आधार मिलता है। मूल सर्वास्तिवाद के विनय-पिटक, दिव्यावदान तथा अशोकावदान के चीनी अनुवाद में उल्लेख है कि भगवान् बुद्ध शूरसेन जनपद में चारिका करते हुए एक बार मथुरा गये थे जहाँ आनन्द ने उन्हें उरुमुण्ड नामक पर्वत पर स्थित एक हरा-भरा वन दिखलाया था जो गहरे नील वर्ण का था। इस वन को देखकर भगवान् बुद्ध ने भविष्यवाणी की थी कि मेरे परिनिर्वाण के एक सौ वर्ष बाद नट और भट नाम के दो धनवान् भाई यहाँ विहार बनवायेंगे। उन्होंने यह भी कहा था कि यहीं (उरुमुण्ड पर्वत पर) उपगुप्त की दीक्षा होगी और यह भिक्षु दूर-दूर तक बुद्ध-शासन का प्रचार करेगा।[1] यदि भविष्यवाणी की बात हम छोड़ दें और केवल ऐतिहासिक् दृष्टि से ही विचार करें तो इतना उपर्युक्त कथन से कम से कम अवश्य निश्चित हो जाता है कि अशोक के समय मे सर्वास्तिवादी परम्परा मथुरा के उरुमुण्ड पर्वत को भगवान् बुद्ध की पद-रज से पवित्र किया हुआ स्थान मानती थी और इसीलिये वहाँ नट-भट विहार की स्थापना की गई थी। वहीं उपगुप्त की उपसम्पदा हुई थी और वहीं उपगुप्त विहार नामक बौद्ध धर्म का प्रसिद्ध प्रचार-केन्द्र बना था। यद्यपि उरुमुण्ड पर्वत को ग्राउज ने वर्तमान मथुरा का कंकाली टीला माना था (देखिए उनका 'मथुरा', अध्याय ६), परन्तु यह समझ में नहीं आता कि यह टीला बौद्ध संस्कृत परम्परा का उरुमुण्ड 'पर्वत' किस प्रकार हो सकता है? यह बहुत सम्भव है कि कंकाली देवी का मंदिर किसी भग्न बौद्ध विहार के ऊपर बना हो, परन्तु उसे उरुमुण्ड पर्वत पर स्थित उपगुप्त-विहार मानना उचित नहीं है। हमारी समझ में 'नीलनीलाम्बरराजि' (दिव्यावदान, पृष्ठ ३४९) के समान दिखाई देने वाला 'रुरुमुण्ड' या उरुमुण्ड पर्वत गोवर्द्धन पर्वत ही है, जैसा उसके इस वर्णन से अपने आप सिद्ध हो जाता है। अब चूँकि इस गोवर्द्धन पर्वत के समीप ही प्रसिद्ध राधाकुण्ड के पास श्याम कुण्ड या कृष्ण कुण्ड (कण्हकुण्ड) है जिससे लगा हुआ हरा-भरा वन है, जो यद्यपि

---

१. गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स्, जिल्द तीसरी, भाग प्रथम, पृष्ठ ३-१७; दिव्यावदान, पृष्ठ ३४८-३४९। मिलाइये वाटर्स: ऑन् युआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०६-३१३; रॉकहिल: दि लाइफ ऑव दि बुद्ध, पृष्ठ १६४।

आज उतना गहरा नीला नहीं है, जितना बुद्ध-काल में रहा होगा, फिर भी उत्तर-प्रदेश राज्य-सरकार के शुभ प्रयत्न से जिसे फिर नीला बनाये जाने का उद्योग किया जा रहा है और उसमें काफी सफलता भी मिली है। क्या कृष्ण-कुण्ड के पास अवस्थित यह वन ही पालि का 'कण्हकुण्डवन' नहीं हो सकता, जिसका ही दूसरा नाम केवल 'गुन्दावन' (कुण्डवन) या कण्हगुन्दावन (कृष्ण कुण्ड-वन) था ? जब हम मूल सर्वास्तिवाद के पूरक साक्ष्य पर स्पष्टतः जानते हैं कि मथुरा के उरुमुण्ड या रुरुमुण्ड पर्वत के समीप के वन में भगवान् बुद्ध ने विहार किया था, तो हमें पालि परम्परा के मथुरा के गुन्दावन के बारे में, जिसकी स्थिति के बारे मे वहाँ कुछ नहीं कहा गया है, यह समझने में देर नहीं लगनी चाहिये कि वह गोवर्द्धन पर्वत के समीप स्थित कृष्णकुण्ड के पास का वन ही था, जिसका स्पष्टतः नाम 'कण्हगुन्दावन' पालि परम्परा में भी पाठान्तर के रूप में दिया गया है। यहीं अपने शास्ता के पद-चिह्नों का अनुसरण करते हुए आर्य महाकात्यायन ने विहार किया था। यह असम्भव नहीं है कि भगवान् बुद्ध और स्थविर महाकात्यायन के द्वारा गोवर्द्धन पर्वत को पवित्र किया जाना ही इस स्थान के अशोककालीन नट-भट विहार और उपगुप्त विहार के लिये उपयुक्त भूमि के रूप में चुनाव के लिये उत्तरदायी रहा हो। अतः गोवर्द्धन पर्वत से कुछ दूर 'राधा कुण्ड' से लगे हुए कृष्ण कुण्ड के पास के वन को हम बुद्धकालीन गुन्दावन मान सकते हैं। अन्यथा हमें उसकी स्थिति को कंकाली टीले के पास खोजना पड़ेगा, जिसके लिये कम अवकाश ही जान पड़ता है। गुन्दावन को वृन्दावन मानने का लोभ भी हो सकता है, परन्तु इसके लिए कोई प्रमाण नहीं है। हाँ, एक बात और हो सकती है। पालि शब्द 'गुन्दा' का अर्थ मौथा या नागर-मौथा घास होता है। सम्भव है मथुरा के पास इस घास का कोई वन रहा हो। जहाँ तक व्रज के बारह वनों और चौबीस उपवनों का सम्बन्ध है, उनमें गुन्दावन, कुण्डवन या गुणावन से मिलता-जुलता कोई नाम नहीं है। एक जगह "कुन्दवन" का उल्लेख अवश्य है, जो निश्चयतः पालि का गुन्दावन हो सकता है, परन्तु इस लेखक को बहुत खोजबीन करने पर भी इस नाम का कोई वन आज नहीं मिल सका है।

घट जातक में उत्तर मथुरा के महासागर नामक राजा का वर्णन

है, जिसके सागर और उपसागर नामक दो पुत्र थे। राजा महासागर की मृत्यु के पश्चात् उसका ज्येष्ठ पुत्र सागर राजा बना और उपसागर उपराज। बाद में उपसागर अपने बड़े भाई से लड़-झगड़कर उत्तरापथ के कंसभोग नामक राज्य में भाग गया। हम इस कथा और उसके भौगोलिक अर्थ का विवेचन आगे करेंगे। 'मिलिन्दपञ्हो' में प्रसिद्ध नगरों और उनके निवासियों के नामोल्लेख के एक प्रसंग में 'माधुरका' (मथुरा के निवासी) भी आया है।[1] इससे विदित होता है कि राजा मिलिन्द (मिनाण्डर) के समय (१५० ई० पूर्व) या कम से कम 'मिलिन्द-पञ्हो की रचना के समय (१५० ई० पूर्व और ४०० ई० के बीच) मथुरा नगर पालि परम्परा में एक प्रसिद्ध और सुप्रतिष्ठित नगर के रूप में प्रसिद्ध था।

मधुरा (मथुरा) या उत्तर-मधुरा के सम्बन्ध मे पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में केवल उतनी ही सूचना मिलती है, जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। पाँचवीं और सातवीं शताब्दी ईसवी में क्रमशः फा-ह्यान और यूआन् चुआङ् ने इस ऐतिहासिक नगर की यात्रा की। फा-ह्यान ने इसे "म-तो-लो" या मयूर-नगर कहकर पुकारा है।[2] यूआन् चुआङ् ने इसका नाम "मो-तु-लो" दिया है।[3] फा-ह्यान ने मथुरा में कई बौद्ध विहार देखे थे जिनमें भिक्षुओं की संख्या काफी थी।[4] यूआन् चुआङ् ने मथुरा नगरी का विस्तार २० 'ली' और पूरे प्रदेश का ५००० 'ली' बताया है। उसने यहाँ की जलवायु को गरम बताया है। भूमि को उपजाऊ बताया है और यहाँ का मुख्य उद्यम खेती बताया है। यहाँ के निवासियों के बारे में उसने कहा है कि वे कर्म के सिद्धान्त में विश्वास करते हैं। यहाँ

---

१. पृष्ठ ३२४ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण); देखिए मिलिन्द-प्रश्न (भिक्षु जगदीश काश्यप-कृत हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ ४०७ (द्वितीय संस्करण)।

२. लेग्ज़े : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४२।

३. वाटर्स : ऑन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०१।

४. लेग्ज़े : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ४२।

के बौद्ध विहारों और देव-मन्दिरों का भी उसने उल्लेख किया है।[1] अशोक के काल में स्थापित मथुरा के उरुमुण्ड पर्वत पर स्थित नट-भट-विहार और उपगुप्त विहार का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। पीछे के युग में हम वसुबन्धु के शिष्य गुणप्रभ को भी मथुरा के अग्रपुर विहार में निवास करते देखते हैं।[2] मथुरा के इस अग्रपुर विहार को हम वर्तमान आगरा के आसपास स्थित मानने के लोभ का संवरण नहीं कर सकते, क्योंकि आज जहाँ आगरा स्थित है वह स्थान प्राचीन काल में शूरसेन या मथुरा-प्रदेश में ही माना जाता था। परन्तु बुद्ध-काल से इतनी दूर जाकर जाँच-पड़ताल करने की अनुमति हमारा विषय हमें नहीं देता। हाँ, हमें यह और कह देना चाहिए कि यूआन् चुआङ ने मथुरा में कई स्तूपों का उल्लेख किया है, जिनमें सारिपुत्र के स्तूप को विद्वानों ने वर्तमान भूतेश्वर के मन्दिर से अभिन्न मानने की प्रवृत्ति दिखाई है।

प्राचीन मथुरा को वर्तमान मथुरा नगर से कुछ परिमित रूप में मिलाया जा सकता है। इसका कारण यह है कि गत शताब्दियों में यमुना नदी का प्रवाह काफी परिवर्तित हो गया है। यह आश्चर्यजनक है कि कुछ बातें जो बुद्ध ने मथुरा के बारे में बताई, आज भी पाई जाती हैं। आज भी मथुरा में धूल बहुत उड़ती है। वह 'बहुरजा' है। इससे विदित होता है कि रेगिस्तान का प्रभाव मथुरा पर बुद्ध के काल में भी पड़ना आरम्भ हो गया था। आज तो ब्रज की रज प्रसिद्ध ही हो गई है। मथुरा में बुद्ध को भिक्षा मुश्किल से मिली। इससे लगता है कि अपने नाम को सार्थक इस नगरी 'मथुरा' में उस समय भी मधुर भाव की प्रतिष्ठा रही होगी। वह दूसरे अर्थ में भी 'बहुरजा' होगी। विराग और शून्य की बातें यहाँ कौन सुनता? कुछ भी हो, बाद में चल कर मथुरा ने "सर्वास्तिवाद" के रूप में बौद्धधर्म को एक नया मोड़ दिया और अफगानिस्तान और मध्य एशिया तक उसका

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ३०१।

२. बील : बुद्धिस्ट रिकार्ड्स् ऑव दि वैस्टर्न वर्ल्ड, जिल्द पहली, पृष्ठ १९१, टिप्पणी।

प्रचार किया। पालि के स्थान पर संस्कृत को बौद्ध धर्म का वाहन बनाने का काम भी सम्भवतः मथुरा में ही आरम्भ किया गया।

कंस के राज्य (कंसभोग) का उल्लेख घट जातक में है। यह कंस महाकंस का पुत्र था और उपकंस नामक इसका एक भाई और देवगब्भा नामक एक बहिन थी। वासुदेव के द्वारा कंस के वध का भी उपर्युक्त जातक में उल्लेख है। विशेषतः वासुदेव के द्वारा कंस के वध की बात हमें पालि साहित्य के कंस को महाभारत और पुराणों के कंस से मिलाने को प्रेरित करती है। परन्तु कंस के राज्य को पालि विवरण में उत्तरापथ में स्थित बताया गया है तथा उसकी राजधानी असितंजन नामक नगरी बताई गई है, जब कि महाभारत और पुराणों का राजा कंस मथुरा नगरी में राज्य करता था। यही कुछ कठिनाई है। ऐसा लगता है कि उत्तर मधुरा, कंसभोग और गोवड्ढन (गोवर्द्धन—देखिये आगे विवरण) को लेकर पालि विवरण में काफी भ्रामकता है। ऊपर घट जातक के आधार पर हम इनके सम्बन्ध की कथा का विवरण दे ही चुके हैं, पेतवत्थु की अट्ठकथा में इससे भी विभिन्न इसका एक रूप मिलता है, जिससे भ्रामकता अधिक बढ़ती ही है। अधिक विस्तार में न जाकर हमें इस समस्या का यही समाधान उचित जान पड़ता है कि जैसे "मधुरा" में "उत्तर" शब्द लगा रहने पर भी "उत्तर मधुरा" को हम मज्झिम-देस के सूरसेन जनपद की नगरी ही मानते हैं, उसी प्रकार कंसभोग के उत्तरापथ में होने पर भी उसे सूरसेन जनपद का ही एक अंग माना जा सकता है। मथुरा में स्थित भग्नावशिष्ट 'कंस का किला', 'कंस का टीला' और 'कंस का कारागार' आदि स्थान भी इसी तथ्य की ओर संकेत करते हैं। डा० मललसेकर ने 'अपदान' के कम्बोज और घट-जातक के कंसभोज को एक देश मानने का सुझाव दिया है।[1] उत्तरापथ के अन्तर्गत कंसभोग या कंसभोज (कंस-राज्य) की राजधानी असितंजन नगरी थी। इस नगरी का आधुनिक पता लगाना कठिन है। अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा[2] में असितंजन को तपस्सु और भल्लिक की जन्मभूमि बताया गया है।

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ११२६; देखिये आगे कम्बोज और सुरट्ठ जनपदों के वर्णन भी।

२. जिल्द पहली, पृष्ठ २०७।

गोवड्ढमान या गोवड्ढन को घट जातक में उत्तरापथ का एक गाँव बताया गया है। यह गाँव कंस के राज्य (कंसभोग) में था। कंस और उसके छोटे भाई उपकंस ने अपनी बहिन देवगब्भा का विवाह उत्तर मधुरा के राजा महासागर के छोटे पुत्र उपसागर से, जो अपने बड़े भाई सागर से (जो महासागर की मृत्यु के बाद राजा बना था) लड़-झगड़ कर उत्तर मथुरा से कंसभोग के असितंजन नगर में आकर बस गया था, कर दिया और गोवड्ढमान या गोवड्ढन गाँव भेंट स्वरूप दिया। हम पालि के इस गोवड्ढमान या गोवड्ढन गाँव को आधुनिक गोवर्द्धन गाँव से मिला सकते हैं, जो मथुरा से १४ मील दूर गोवर्द्धन पर्वत के समीप स्थित है।

दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त में बुद्ध-पूर्व काल के भारत के जिन सात खण्डों और उनकी राजधानियों का उल्लेख है, उनमें एक अस्सक राज्य और उसकी राजधानी पोतन भी है। "अस्सकानं च पोतनं"। अस्सक जनपद भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में, जैसा सुत्त-निपात से प्रकट होता है, गोदावरी के तट के आसपास बसा हुआ प्रदेश था। इस प्रकार यह जनपद दक्षिणापथ में था। जैसा सुत्त-निपात की अट्ठकथा से प्रकट होता है, अस्सक जनपद गोदावरी नदी के दक्षिण मे स्थित था और अलक (जिसका बरमी प्रति में पाठान्तर मूलक भी है) नामक जनपद गोदावरी के उत्तर में था। ये दोनों जनपद सुत्त-निपात की अट्ठकथा के अनुसार अन्धक (आन्ध्र) राज्य में सम्मिलित थे। अस्सक जातक में कहा गया है कि एक बार अस्सक राज्य और उसकी राजधानी पोतन नगरी काशी राज्य की अधीनता में आ गये थे। चुल्ल-कालिंग जातक में हम अस्सक राजा को कलिंग-राजा पर विजय प्राप्त करते देखते हैं। निश्चयतः ये घटनाएँ विभिन्न युगों से सम्बन्धित हैं। पालि "अस्सक" शब्द के संस्कृत प्रतिरूप "अश्वक" (घोड़ों का प्रदेश) और "अश्मक" (पाषाणों का प्रदेश) दोनों ही हो सकते हैं। परन्तु वस्तुतः 'अश्मक' ही ठीक और भ्रामकता से रहित है। 'अश्वक' देश तो हमें वस्तुतः उसे ही मानना चाहिये जिसका उल्लेख ग्रीक इतिहासकारों ने "अस्सकेनस" या "अस्सकेनोइ" राज्य के रूप में किया है और जो पूर्वी अफगानिस्तान या स्वात की घाटी में कहीं स्थित था। पालि परम्परा के आधार पर भी हम जानते हैं कि अश्वों के लिये विशेष ख्याति बुद्ध-काल में कम्बोज और सिन्धु नदी के घाटी के प्रदेश की थी। अतः 'अश्वक' देश को भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रान्त में ही कहीं मानना

संगत है। परन्तु 'अश्मक' और 'अश्वक' का इतना स्पष्ट और निश्चित प्रयोग हमें प्राचीन साहित्य में नहीं मिलता। हम जानते हैं कि पाणिनि ने अपने एक सूत्र "साल्वावयवप्रत्यग्रथकलकूटाश्मकादिञ् (४।१।१७३) में अश्मक जनपद का उल्लेख किया है और इसी प्रकार मार्कण्डेय पुराण और बृहत्संहिता में भी अश्मक राज्य का उल्लेख है। असंग के महायान सूत्रालंकार में भी "अश्मक" राज्य का उल्लेख किया गया है। महाभारत के विभिन्न पर्वों में 'अश्मक' और 'अश्वक' दोनों ही नामों का प्रयोग किया गया है और उसके वर्णनों से हम किसी निश्चित भौगोलिक निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते। कुछ भी हो, पालि का अस्सक जनपद निर्विवाद रूप से गोदावरी के तट के आसपास दक्षिणापथ में स्थित था और उसे भारत के पंजाब या उत्तर-पश्चिम प्रान्त में स्थित अश्वक राज्य से अलग समझना चाहिये। यह सम्भव हो सकता है, जैसा कुछ विद्वानों का विचार है, कि यह दक्षिणापथ का अस्सक जनपद और उत्तर-पश्चिम या पंजाब का अश्वक जनपद, दोनों एक ही जाति की विभिन्न शाखाओं के द्वारा बसाये गये हों, परन्तु इसके लिये कोई निश्चित प्रमाण हमारे पास नहीं है। सोणनन्द जातक में निश्चित रूप से अस्सक राज्य को अवन्ती से युक्त किया गया है।[1] "अस्सकावन्ती" इससे डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अस्सक राज्य का प्रदेश अवन्ती की दक्षिणी सीमा तक फैला था।[2] चुल्ल-कालिंग जातक और अस्सक जातक में अस्सक जनपद की राजधानी पोटलि (पोतलि) नामक नगरी बतायी गई है, जो महागोविन्द-सुत्त के पोतन के प्रायःसमान ही है। पोतन या पोटलि आधुनिक क्या स्थान हो सकता है, इसके सम्बन्ध में अभी सम्यक् निर्णय नही हो पाया है। नन्दोलाल दे ने उसे पतिट्ठान (प्रतिष्ठान—आधुनिक पैठन) से मिलाया था,[3] जो ठीक नहीं कहा जा सकता, क्योंकि पतिट्ठान

---

१. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३१७।

२. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १४३।

३. ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी, पृष्ठ १५७, १५९। पोतन (या पोटलि) और पतिट्ठान (प्रतिष्ठान) को एक नगर दे को इसलिये मानना पड़ा, क्योंकि उन्होंने बिलकुल गलत रूप से अस्सक (अश्मक) और अलक

का एक भिन्न नगर के रूप में स्वयं सुत्त-निपात में वर्णन है।[1] अतः पालि वर्णनों के आधार पर हम पोतन या पोटलि और पतिट्ठान को एक स्थान कभी नहीं मान सकते। डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने महाभारत के आदि-पर्व के पोतन या पोदन (पौदन्य पाठ, जो महाभारत के संस्करणों में प्रायः पाया जाता है, डा० सुक्थंकर के मतानुसार उत्तरकालीन है और प्राचीनतम प्रतियों में पोतन या पोदन ही पाठ है) नामक नगर को पालि के पोतन या पोटलि से मिलाकर उसे आधुनिक बोधन नामक नगर बताया है, जो हैदराबाद राज्य में मंजिरा और गोदावरी नदियों के संगम के दक्षिण में स्थित है।[2] इस पहचान को हम सर्वथा ठीक मान सकते हैं, क्योंकि पालि विवरणों के अनुसार यह बैठ जाती है और पोतन या पोटलि का बोधन के रूप में शब्द-विकार भी अत्यन्त स्वाभाविक ही है।[3] अस्सक राज्य में स्थित बावरि के आश्रम का और गोदावरी नदी और बावरि के आश्रम के पास उसमें बनने वाले एक टापू का, जिसमें कविट्ठ वन स्थित था, हम विस्तृत परिचय पहले दे चुके हैं।

अलक (मूलक भी पाठान्तर), जैसा ऊपर उल्लेख किया जा चुका है, अस्सक के उत्तर में, विंध्याचल के नीचे, स्थित था। पतिट्ठान (प्रतिष्ठान) नगर अलक राज्य की राजधानी था, जैसा सुत्त-निपात के पारायण वग्गो की वत्थुगाथा के "अलकस्स पतिट्ठानं" प्रयोग से स्पष्ट प्रकट होता है। पतिट्ठान दक्षिणापथ मार्ग का

राज्यों को (जिनकी ये नगर क्रमशः राजधानियाँ थे) एक मान लिया है। देखिये वहीं पृष्ठ ३, १३, १५७। पालि परम्परा के स्पष्ट साक्ष्य पर अस्सक और अलक भिन्न राज्य थे और स्वभावतः उनकी राजधानियाँ पोतन (या पोटलि) और पतिट्ठान भी भिन्न-भिन्न नगर थे।

१. देखिये प्रथम परिच्छेद में सुत्त-निपात के भौगोलिक महत्व का निर्देश।

२. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ८९, १४३।

३. महाभारत के आदि-पर्व के अनुसार पोतन, पोदन या पौदन्य नगर को इक्ष्वाकुवंशीय राजा कल्माषपाद की पत्नी मदयन्ती और वशिष्ठ के संयोग से उत्पन्न पुत्र राजर्षि अश्मक ने बसाया था। इस प्रकार यहाँ भी अश्मक (अस्सक) और पौदन्य (पोतन, पोटलि) का सम्बन्ध सुनिश्चित ही है।

अन्तिम पड़ाव था। बावरि ब्राह्मण के शिष्यों ने यहीं से अपनी श्रावस्ती तक की यात्रा शुरू की थी। प्रतिष्ठान से चलकर उनके मार्ग में श्रावस्ती तक क्रमशः माहिष्मती, उज्जयिनी, गोनद्ध, विदिशा (वेदिसं), कौशाम्बी और साकेत नगर पड़े थे, जिससे स्पष्ट विदित होता है कि इन सब नगरों के साथ पतिट्ठान व्यापारिक मार्ग के द्वारा जुड़ा हुआ था और दक्षिणापथ को उत्तरापथ से जोड़ने वाला वह दक्षिण में मुख्य और अन्तिम स्थान बुद्ध-काल में था। पतिट्ठान (प्रतिष्ठान) नगर तौलेमी को "बैठन" के नाम से विदित था और उसका आधुनिक नाम पैठन ही है।

अवन्ती जनपद का विवेचन हम अवन्ती राज्य का परिचय देते समय कर चुके हैं। एक जनपद के रूप में अवन्ती उज्जेनी (उज्जयिनी) से लेकर माहिष्मती तक का प्रदेश माना जाता था। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त से यह स्पष्ट हो जाता है कि बुद्ध-पूर्व काल में यह जनपद दक्षिण में नर्मदा नदी की घाटी तक फैला हुआ था, क्योंकि इस नदी के किनारे स्थित माहिष्मती नगर को इस सुत्त में अवन्ती की राजधानी बताया गया है, जिसे राजा रेणु के ब्राह्मण मन्त्री महागोविन्द ने बुद्ध-पूर्व काल में स्थापित किया था। अवन्ती जनपद एक समृद्ध भूमि-भाग था। दूसरी शताब्दी ईसवी तक अवन्ती का यही नाम रहा। करीब आठवीं शताब्दी ईसवी से हम उसे मालव नाम से पुकारा जाते देखते हैं। अवन्ती के दो भागों, अवन्ति दक्षिणापथ और (उत्तर) अवन्ती का उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। एक राज्य के रूप में उसके नगरों आदि का परिचय भी पहले दिया जा चुका है।

गन्धार जनपद की गणना जम्बुद्वीप के सोलह महाजनपदों में है। मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा (पपंचसूदनी)[1] में गन्धार राष्ट्र को एक 'पच्चन्तिम' जनपद अर्थात् सीमान्त में स्थित जनपद बताया गया है। पालि साहित्य में गन्धार शब्द का प्रयोग अक्सर कस्मीर (कश्मीर) के साथ मिलाकर किया गया है, जैसे अंग और मगध का, या काशी और कोसल का। "कासिकोसले पि कस्मीरे गन्धारे पि।"[2] कस्मीर तो आधुनिक कश्मीर है ही, गन्धार को हम स्वात नदी

---

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ९८२।

२. मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ ३२१ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

से झेलम नदी तक का प्रदेश मान सकते हैं। इस प्रकार उसमें पश्चिमी पंजाब और पूर्वी अफगानिस्तान के भाग सम्मिलित थे।

गन्धार राष्ट्र के दो राजाओं का उल्लेख पूर्ववर्ती पालि साहित्य में है। एक राजा नग्गजि (नग्नजित्) का, जिसे कुम्भकार जातक में विदेह के राजा निमि तथा पंचाल के राजा दुम्मुख (दुर्मुख) का समकालीन बताया गया है। यह बहुत सम्भव है कि पालि का यह नग्गजि वही हो जिसे शतपथ-ब्राह्मण (८।१।४।१०) में नग्नजित् कहकर पुकारा गया है और जिसे वहाँ गन्धार का राजा भी बताया गया है। दूसरा प्रसिद्ध राजा, जिसका उल्लेख पालि साहित्य में है, पुक्कुसाति है। पुक्कुस उसकी जाति बताई गई है। मज्झिम-निकाय के धातु-विभंग-सुत्त की अट्ठकथा में पुक्कुसाति को बिम्बिसार का समकालीन और मित्र बताया गया है। इसी राजा को मूल सर्वास्तिवाद के 'विनय-वस्तु' में पुष्करसारिन् कह कर पुकारा गया है।[1] बिम्बिसार ने गन्धार राष्ट्र के इस राजा को भगवान् बुद्ध के आविर्भाव की सूचना देते हुए तक्षशिला के व्यापारियों के हाथ, जो राजगृह में व्यापारार्थ आये थे, एक सन्देश भेजा था। बाद में इन दोनों राजाओं में भेंटों का आदान-प्रदान भी हुआ। बुद्ध के सुने हुए उपदेशों से ही पुक्कुसाति संवेगापन्न हो गया और साधु होकर पैदल मगध आया। एक बार हम उसे राजगृह के भार्गव नामक कुम्भकार के घर में ठहरते देखते हैं, जहाँ भगवान् भी रात भर टिकने के लिये जा निकले और दोनों में संलाप हुआ, जिसके अन्त में ही पुक्कुसाति जान पाया कि जिनके नाम पर उसने घर छोड़ा था वही तो भगवान् बुद्ध उससे बात कर रहे हैं। इसी को उसने अपने लिये बुद्ध का उपदेश माना। खेद है कि इसके कुछ काल पश्चात् ही पुक्कुसाति की मृत्यु एक पागल गाय के द्वारा चोट पहुँचाये जाने के कारण हो गई।[2] कई जातक कथाओं में बिना नाम लिये 'गन्धार राजा' शब्द का प्रयोग कई जगह किया गया है[3], जिससे यह ज्ञात होता है कि गन्धार जनपद

---

१. गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स, जिल्द तीसरी, भाग द्वितीय, पृष्ठ ३१।

२. धातु-विभंग-सुत्तन्त (मज्झिम० ३।४।१०)।

३. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २१९; जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३६४; जिल्द चौथी, पृष्ठ ९८।

और उसके राजाओं के बारे में पालि परम्परा सुपरिचित थी। पुक्कुसाति के राज्य का विस्तार पपंचसूदनी[1] में १०० योजन बताया गया है। बुद्धकालीन भारत में गन्धार राष्ट्र अपने लाल ऊनी दुशालों और कम्बलों के लिये प्रसिद्ध था।[2] जातक[3] में गन्धार के गहरे लाल (इन्द्रवधू नामक कीड़ों के से रंगवाले) और पाण्डु वर्ण कम्बलों (इन्दगोपकवण्णाभा गन्धारा पण्डुकम्बला) की प्रशंसा की गई है। यह उल्लेखनीय है कि ऋग्वेद (१।१२६।७) में भी गन्धारि लोगों के प्रदेश की भेड़ों की सुन्दर ऊन का उल्लेख किया गया है। मज्झिम-निकाय के धातु-विभंग-सुत्तन्त की अट्ठकथा में कहा गया है कि गन्धार के राजा पुक्कुसाति ने अपने नौकरों के हाथ आठ पंचरंगी कीमती दुशालों की भेंट महाराज बिम्बिसार के पास भेजी थी।

जातक[4] में विदेह के साथ गन्धार के व्यापारिक सम्बन्धों का उल्लेख है। वस्तुतः अंग, मगध, कोसल और लाल रट्ठ तक के व्यापारियों के व्यापारार्थ गन्धार जाने के उल्लेख मिलते हैं। अशोक के समय में स्थविर मज्झन्तिक ने गन्धार और कश्मीर (कस्मीर) में बुद्ध-धर्म का प्रचार किया।[5]

---

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ९८८।

२. परमत्थजोतिका (सुत्तनिपात की अट्ठकथा), जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४८७।

३. जिल्द छठी, पृष्ठ ५००-५०१।

४. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३६५।

५. महावंश १२।९-२६ (हिन्दी अनुवाद); सर्वास्तिवाद की परम्परा के अनुसार स्थविर मध्यन्दिन ने (जिन्हें पालि के मज्झन्तिक से मिलाया जा सकता है) अशोक के समय में और स्थविर धीतिक ने राजा मिनाण्डर के समय में गन्धार और कश्मीर में बुद्ध-धर्म का प्रचार किया। स्थविर मध्यन्दिन आनन्द के शिष्य थे। मध्यन्दिन के शिष्य मथुरा के उरुमुण्डवासी प्रसिद्ध अशोककालीन भिक्षु उपगुप्त थे। उपगुप्त के शिष्य धीतिक थे। (सर्वास्तिवादी परम्परा की एक अन्य शाखा के अनुसार जिसका अनुगमन दिव्यावदान (पृष्ठ ३४९) में किया गया है, उपगुप्त शाणकवासी के शिष्य थे)।

गन्धार राष्ट्र की राजधानी तक्कसिला (तक्षशिला) नगरी थी। नन्दिविसाल जातक और सारम्भ जातक में गन्धारराज को इस नगरी में रह कर राज्य करते दिखाया गया है। तक्षशिला शिक्षा और व्यापार दोनों ही दृष्टियों से दूर-दूर तक विख्यात थी। यह नगरी अधिकतर अपने ग्रीक रूपान्तर "टेक्सिला" के नाम से भी पुकारी जाती है और आजकल इस प्राचीन वैभवशालिनी नगरी और शिक्षा-केन्द्र का जो कुछ बच रहा है, वह रावलपिंडी (पश्चिमी पाकिस्तान) के १२ मील उत्तर-पश्चिम "शाह की ढेरी" के रूप में देखा जा सकता है।[1] भगवान् बुद्ध और उनके पूर्व के युग में तक्षशिला की ख्याति एक विशाल विश्वविद्यालय और शिक्षा-केन्द्र के रूप में सम्पूर्ण जम्बुद्वीप में फैली हुई थी। वहाँ तीनों वेद और अठारहों विद्याएँ पढ़ाई जाती थीं, जिनमें धनुर्वेद, आयुर्वेद आदि सभी महत्वपूर्ण शिल्प सम्मिलित थे।[2] जैसा हम पहले एक बार कह चुके हैं, कोसलराज प्रसेनजित्, महालि लिच्छवि और बन्धुल मल्ल की शिक्षा तक्षशिला में ही हुई थी।[3] जीवक वैद्य तो तक्षशिला का एक प्रसिद्ध स्नातक था ही।[4] कण्हदिन्न, यसदत्त और अवन्ती-निवासी धम्मपाल आदि अनेक बुद्धकालीन स्थविरों ने भिक्षु-संघ में प्रवेश से पूर्व तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त की थी। अनेक देशों से विद्यार्थी तक्षशिला में पढ़ने आते थे। इस प्रकार लाल (लाट) देश[5] कुरु देश[6] और सिवि देश[7] से विद्यार्थियों को तक्षशिला में शिक्षा प्राप्त करने के लिये आते हम देखते हैं। कण्ह जातक में वाराणसी के एक ब्राह्मण-पुत्र के विद्या-प्राप्ति के हेतु तक्षशिला जाने का उल्लेख है। तिलमुट्ठि-जातक में हम वाराणसी के एक राजकुमार को भी तक्षशिला में अध्ययन के लिये

---

१. कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ६८०-६८१; मिलाइये मार्शल : गाइड टू टैक्सिला, पृष्ठ १-४।

२. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १५९।

३. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ ३३७।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २६७।

५. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ४४७।

६. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द चौथी, पृष्ठ ८८।

७. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २१०।

जाते देखते हैं और इसी प्रकार निग्रोध जातक में उल्लेख है कि राजगृह के एक सेठ ने अपने दो पुत्रों को तक्षशिला में अध्ययनार्थ भेजा था। दरीमुख जातक और संखपाल जातक में मगध के राजकुमारों के तक्षशिला में अध्ययनार्थ जाने के उल्लेख हैं। एक अन्य जातक-कथा में मगध के राजकुमार दुय्योधन के भी शिल्प सीखने के लिये तक्षशिला जाने का उल्लेख है।[१] ब्रह्मदत्त जातक से पता चलता है कि कम्पिल्ल रट्ठ से भी लोग तक्षशिला में अध्ययनार्थ जाते थे। इसी प्रकार तित्तिर जातक में तक्षशिला का एक शिक्षा-केन्द्र के रूप में उल्लेख है तथा भीमसेन जातक और राजोवाद जातक में भी। उद्दालक जातक में उद्दालक की तक्षशिला-यात्रा का वर्णन है, जहाँ उसने एक लोक-प्रसिद्ध आचार्य के विषय मे सुना। इसी प्रकार सेतकेतु जातक में उद्दालक के पुत्र श्वेतकेतु के तक्षशिला जाने और वहाँ सम्पूर्ण शिल्पों को सीखने का उल्लेख है। यह महत्वपूर्ण बात है कि उद्दालक आरुणि छान्दोग्य उपनिषद् (६।१४) में गन्धार देश का उल्लेख करते दिखाये गये हैं और शतपथ-ब्राह्मण (११।४।१।१) में उन्हें उत्तरी (उदीच्य) देश में भ्रमण करते भी दिखाया गया है। इससे तक्षशिला के बुद्ध-पूर्वकालीन महत्व पर प्रकाश पड़ता है और हमको यह देखने का अवसर मिलता है कि वैदिक और बौद्ध दोनों ही परम्पराओं के अनुसार उद्दालक और उनके पुत्र श्वेतकेतु सम्भवतः तक्षशिला से सम्बद्ध थे। पाणिनि ने भी (जो गन्धार राष्ट्र के निवासी थे) अपने एक सूत्र (४।३।९३) में तक्षशिला का उल्लेख किया है। चाणक्य का नाम भी तक्षशिला विश्वविद्यालय से सम्बद्ध है।

पाँचवीं और सातवीं शताब्दी में क्रमशः फा-ह्यान और यूआन् चुआङ् ने तक्षशिला की यात्रा की। फा-ह्यान ने लिखा है कि तक्षशिला के चीनी नाम (शि-श-चेंग्) का अर्थ है शिर का तक्षण। इस चीनी यात्री के अनुसार बोधिसत्व ने एक बार एक प्राणी के लिए अपना सिर काट कर यहाँ बलिदान कर दिया था, इसीलिए इसका नाम 'तक्षशिला' पड़ा।[२] दिव्यावदान (बाईसवाँ अवदान—चन्द्रप्रभबोधिसत्वचर्याव-दानम्) के अनुसार भी बोधिसत्व ने अपने एक पूर्व जन्म में चन्द्रप्रभ के रूप में एक

---

१. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १६१-१६२।

२. गाइल्स : ट्रैविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ १२।

ब्राह्मण याचक के लिए अपना सिर यहाँ अर्पित कर दिया था, जिससे यह स्थान बाद में तक्षशिला कहलाया। यूआन् चुआङ् ने भी तक्षशिला का विस्तार से वर्णन किया है।[1] अशोक के काल में कुणाल की आँखें तिष्यरक्षिता के द्वारा इसी नगर में निकलवाई गई थीं। दिव्यावदान के कुणालावदान में तथा अवदानकल्पलता के भी कुणालावदान में इस तथ्य का उल्लेख है। आज शाह की ढेरी के समीप कमलि नामक स्थान पर एक स्तूप के भग्नावशिष्ट पाये जाते हैं, जो यह सिद्ध करते हैं कि यहीं कुणाल की आँखें निकलवाई गई थीं। 'कमलि' में कुणाल की पूर्ण ध्वनि भी विद्यमान है। रामायण के उत्तर-काण्ड के अनुसार भरत के पुत्र तक्ष के नाम पर इस नगर का नाम तक्षशिला पड़ा था। महाभारत के आदि-पर्व में जनमेजय के नाग-यज्ञ के प्रसंग में इस राजा के द्वारा तक्षशिला की विजय का वर्णन किया गया है।

तक्षशिला की दूरी, पालि विवरणों में, श्रावस्ती से १९२ योजन बताई गई है।[2] वाराणसी से उसकी दूरी के सम्बन्ध में हम वाराणसी के विवरण में निवेदन कर चुके हैं। तक्षशिला नगर उत्तरापथ मार्ग द्वारा श्रावस्ती और राजगृह से मिला हुआ था। इस मार्ग का विस्तृत परिचय, उसके बीच में पड़ने वाले स्थानों के विवरण-सहित, हम पाँचवें परिच्छेद में बुद्धकालीन व्यापारिक मार्गों का उल्लेख करते समय देंगे। अशोक के पाँचवें शिलालेख में कहा गया है कि उसने अपने धर्ममहामात्रों को यवन और कम्बोज लोगों के साथ-साथ गन्धार निवासियों के प्रदेश में भी (योनकंबोजगन्धालानं ए वा पि) नियुक्त किया था। इससे विदित होता है कि बुद्ध-काल के समान अशोक के युग में भी गन्धार राष्ट्र जम्बुद्वीप या भारतवर्ष का एक अंग माना जाता था।

पोक्खरवती (उत्तरापथ के अन्तर्गत) गन्धार जनपद की एक प्रसिद्ध नगरी थी। सम्भवतः यह गन्धार जनपद की प्राचीन राजधानी भी थी। थेरगाथा-अट्ठकथा में इसे तपस्सु और भल्लिक का जन्म-स्थान बताया गया है। परन्तु अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा (मनोरथपूरणी) में तपस्सु और भल्लिक के

---

१. देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ २४०।

२. पपंचसूदनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ९८७।

जन्म-स्थान का नाम असितंजन नामक नगर बताया गया है।[1] इससे पोक्खरवती को असितंजन नगर से मिलाने की प्रवृत्ति हो सकती है, परन्तु इसको इस कारण अवकाश नहीं मिल सकता क्योंकि पालि विवरणों में असितंजन को गन्धार जनपद में स्थित न बताकर उत्तरापथ के कंसभोग में स्थित और उसकी राजधानी बताया गया है।[2] कंसभोग को सूरसेन जनपद के अन्तर्गत मानें या उसे कंसभोज या कम्बोज का ही एक रूपान्तर, यह पालि परम्परा के भूगोल की एक समस्या ही है। कुछ भी हो, जहाँ तक पोक्खरवती से सम्बन्ध है, हम उसे ग्रीक इतिहासकार एरियन की प्यूकेलेओटिस और संस्कृत परम्परा की पुष्करावती या पुष्कलावती नगरी से मिला सकते हैं और इस प्रकार उसकी स्थिति को निश्चयतः आधुनिक प्रांग और छरसद्दा से मिला सकते हैं, जो स्वात नदी के तट पर पेशावर से १७ मील उत्तर-पूर्व में स्थित हैं।[3] पुष्करावती नगरी को वायु-पुराण में पुष्कर के नाम से सम्बद्ध किया गया है। "पुष्करस्यापि वीरस्य विख्याता पुष्करावती।" वाल्मीकि-रामायण के उत्तरकाण्ड के अनुसार भरत के पुत्र पुष्कल को यहाँ का राजा बनाया गया था, जिससे इसका नाम पुष्कलावती पड़ा। इस प्रकार यह नगरी पुष्कर या पुष्कल के नाम से सम्बद्ध है। दिव्यावदान (पृष्ठ ४७९) में भी इसे उत्तरापथ जनपदों में स्थित मानते हुए इसका नाम पुष्कलावतं भी दिया गया है और कहा गया है कि इसका प्राचीन नाम उत्पलावतं (या उत्पलावती) भी था। बोधिसत्व ने यहाँ एक भूखी व्याघ्री के लिए अपना शरीर दे दिया था, ऐसा भी यहाँ कहा गया है।

कम्बोज (सं० काम्बोज) जनपद गन्धार से लगा हुआ, सम्भवतः उसके पश्चिम का, प्रदेश था। डा० राधाकुमुद मुकर्जी ने उसे काबुल नदी के तट पर स्थित प्रदेश माना है।[4] परन्तु हम उसे बिलोचिस्तान से लगा ईरान का प्रदेश मानना

---

१. देखिये पीछे सूरसेन जनपद का विवरण।

२. देखिये जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ७९।

३. कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५७-६०; फूशेर : नोट्स् औन् दि एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव गन्धार, पृष्ठ ११; शिलाइबे शॉफः दि पेरीप्लस ऑव दि इरीथ्रियन सी, पृष्ठ १८३-८४।

४. अशोक (गायकवाड़ लेक्चर्स), पृष्ठ १६८, पद-संकेत १।

ही अधिक ठीक समझते हैं, जैसा हम आगे के विवेचन से देखेंगे। बुद्ध के जीवन-काल में, जैसा मज्झिम-निकाय के अस्सलायण-सुत्तन्त से प्रकट होता है, कम्बोज और उसके साथ-साथ यवन (योन) जनपद, जिनका उल्लेख यहाँ 'योनकम्बोजेसु' के रूप में साथ-साथ किया गया है, दोनों सीमान्त में स्थित माने जाते थे और वहाँ की सामाजिक व्यवस्था में भारतीय समाज के चातुर्वर्ण्य के स्थान पर केवल दो ही वर्ण होते थे—आर्य और दास। "तो क्या मानते हो आश्वलायन ! तुमने सुना है कि यवन और कम्बोज में और दूसरे भी सीमान्त देशों में दो ही वर्ण होते हैं, आर्य और दास। आर्य होकर दास हो सकता है, दास होकर आर्य हो सकता है।"[1] रायस डेविड्स् ने द्वारका को कम्बोज जनपद की राजधानी बताया है।[2] पेतवत्थु[3] में द्वारका का नाम कम्बोज के साथ लिया तो अवश्य गया है, परन्तु वहाँ उसे न तो कम्बोज की राजधानी बताया गया है और न इस जनपद में उसके होने का ही उल्लेख है। जैसा हम आगे देखेंगे, उससे हम केवल यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि कम्बोज और द्वारका एक दूसरे से व्यापारिक मार्ग के द्वारा संयुक्त थे[4]। पेतवत्थु की अट्ठकथा से हम कदाचित् यह भी निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि द्वारका कम्बोज में थी। परन्तु यह सर्वथा निश्चित नहीं है। डा० मोतीचन्द्र ने कम्बोज को पामीर प्रदेश मानकर (उनसे पूर्व प्रो० जयचन्द्र विद्यालंकार ने भी कम्बोज की आधुनिक स्थिति के सम्बन्ध में ऐसा ही मत प्रकट किया था) द्वारका को आधुनिक दरवाज नामक नगर से मिलाया है, जो बदख्शां से उत्तर में स्थित है।[5] डा० वासुदेवशरण अग्रवाल ने इस पहचान को सही मान कर यह कह दिया है कि

---

१. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३८७।

२. बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ २१ (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर, १९५०)।

३. पृष्ठ १८ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण); देखिये आगे सुरट्ठ जनपद का विवरण भी।

४. देखिए आगे सुरट्ठ जनपद का विवेचन।

५. देखिये उनकी ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महाभारत, पृष्ठ ३२-४०।

कम्बोज देश की स्थिति अब "किसी भी सन्देह की सम्भावना के परे" निश्चित हो चुकी है।[1] परन्तु यह ठीक नहीं है। सबसे पहली बात तो यह है कि डा० मोती-चन्द्र ने रायस डेविड्स् के जिस कथन से इशारा लेकर अपनी कल्पना दौड़ाई है, वह स्वयं अनिश्चित और अनुमानाश्रित है, अर्थात् यह कि द्वारका कम्बोज की राजधानी थी। यदि दरवाज़ को द्वारका मान भी लें तो उसके आसपास का प्रदेश कम्बोज किस प्रकार हो जायगा, जब तक कि हम द्वारका को कम्बोज में न मानें जो स्वयं रायस डेविड्स् का एक अनुमान मात्र था। इसकी अपेक्षा एक दूसरा संगत अनुमान तो डा० मललसेकर ने ही किया है। उन्होंने कहा है कि 'अपदान' में जिस कम्बोज का उल्लेख है, वह कदाचित् जातक के 'अन्धकवेण्हुदासपुत्ता' का देश कंसभोज (कंसभोग) ही है।[2] इस प्रकार तो अपदान का कम्बोज स्वयं वह कंसभोज या कंसभोग हो जायगा जिसकी राजधानी महाकंस और उसके उत्तराधिकारियों द्वारा शासित असितंजन नामक नगरी थी। तब फिर "सन्देह की सम्भावना के परे" की बात कहाँ रही? दूसरी बात यह है कि महाभारत और पुराणों की द्वारिका का तो कहना क्या, पालि की द्वारका या द्वारवती तक कृष्ण वासुदेव (कण्ह वासुदेव) के नाम के साथ अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है।[3] यदि दरवाज़ को हम द्वारका मानेंगे तो इसकी क्या संगति होगी? घट जातक[4] के विवरण के अनुसार द्वारवती (द्वारका) के एक ओर समुद्र था और दूसरी ओर पर्वत। उसकी इस स्थिति को मानने या न मानने का कोई प्रश्न ही नहीं उठता। यह सर्वथा निश्चित है और इसके आधार पर ही इसकी पहचान का प्रयत्न आरम्भ किया जा सकता है। डा० मललसेकर ने भी इस भौगोलिक स्थिति को

---

१. "beyond the possibility of any doubt", देखिए डा० मोतीचन्द्र की उक्त पुस्तक में उनके द्वारा लिखित 'प्राक्कथन', पृष्ठ दस।

२. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ११२६।

३. देखिये आगे इसी परिच्छेद में सुरट्ठ जनपद का विवरण।

४. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ८२, ८३, ८४, ८५ (पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण); हिन्दी अनुवाद—चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २८४।

स्वीकार किया है।[1] यदि दरवाज को हम द्वारका मानेंगे तो पालि के इस विवरण का क्या होगा? डा० रायस डेविड्स् ने अपने अनुमान से जो लिख दिया उसे बिना समझे-बूझे प्रामाणिक मानकर उससे निकाले गये निष्कर्ष सन्देह के परे होने की अवस्था को कभी प्राप्त नहीं कर सकते, जब तक कि वे पूरी तरह मौलिक विवरणों से मेल न खा जायँ और उनसे पूरी संगति प्राप्त न कर लें। डा० मोतीचन्द्र को दरवाज को द्वारका सिद्ध करने के प्रयत्न में एक मध्ययुगीन अरबी लेखक के एक पाठ तक को गलत मानना पड़ा है।[2] हमारा अनुमान है कि यदि हम डा० मललसेकर के उपर्युक्त (कम्बोज को कंसभोज मानने सम्बन्धी) सुझाव को मान सकें तो डा० मोतीचन्द्र द्वारा उपर्युक्त अरबी लेखक के पाठ को बिना गलत माने हम उसकी समुचित व्याख्या कर सकते हैं। परन्तु इस सम्बन्धी विस्तार में यहाँ जाने की आवश्यकता प्रतीत नहीं होती। हम पालि की द्वारका की पहचान को दरवाज के रूप में अन्तिम तो मान ही नहीं सकते, उसे निश्चित रूप से गलत ही समझते हैं। इसका कारण यही है कि यह पालि के पूरे विवरणों से मेल नहीं खाती। द्वारका की भौगोलिक स्थिति को देखते हुए हम उसे सुरट्ठ जनपद में ही मानना अधिक ठीक समझते हैं। अतः हम इस नगर का उल्लेख आगे सुरट्ठ जनपद के विवरण-प्रसंग में ही करेंगे।

पालि तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओं में कम्बोज जनपद के अन्य किसी नगर का उल्लेख नहीं किया गया है। हाँ, यदि हम डा० मललसेकर के सुझाव पर अपदान के कम्बोज को जातक के 'अन्धकवेण्हुदासपुत्ता' के देश कंसभोज या कंसभोग के साथ एकाकार कर सकें[3] तो हमें कंसभोज की राजधानी असितंजन को कम्बोज का एक नगर मानना पड़ेगा। हम इस नगर का उल्लेख वस्तुतः सूरसेन और गन्धार जनपदों के प्रसंग में कर चुके हैं।

कम्बोज जनपद की ख्याति, सिन्धु-सोवीर और गन्धार के समान, उसके अच्छी नस्ल के वेगगामी घोड़ों के कारण, बुद्ध-काल में अधिक थी। अनेक जातक-कथाओं

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ११२५।

२. ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महाभारत, पृष्ठ ३९।

३. देखिये उनकी डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ११२६।

में हमें कम्बोज के सुन्दर जाति के घोड़ों (कम्बोजका अस्सं) और खच्चरों (कम्बोजके अस्सतरे) के उल्लेख मिलते हैं।[१] आचार्य बुद्धघोष ने तो इस जनपद को "अश्वों का घर" (अस्साणं आयतनं) ही कहा है।[२] कुणाल जातक से पता लगता है कि कम्बोज जनपद के लोग जंगली घोड़ों को पकड़ने में सिद्धहस्त थे। तण्डुलनालि जातक में कम्बोज के व्यापारियों द्वारा वाराणसी आदि नगरों में इन घोड़ों के बेचे जाने के भी उल्लेख हैं। यह एक महत्वपूर्ण बात है कि अन्यत्र बौद्ध साहित्य तथा अन्य भारतीय साहित्य में भी कम्बोज जनपद की ख्याति घोड़ों के लिये मानी गई है। महावस्तु[३] में कम्बोज के श्रेष्ठ घोड़ों (कम्बोजक अश्ववर) का उल्लेख है। महाभारत के सभापर्व में कम्बोज राष्ट्र के घोड़ों का उल्लेख है, जिन्हें वहाँ के लोग युधिष्ठिर को भेंट करने के लिये लाये थे[४]। इसी प्रकार जैन उत्तराध्ययन-सूत्र में भी कम्बोज के वेगगामी घोड़ों का वर्णन है।[५] भूरिदत्त जातक से हमें पता लगता है कि कम्बोज जनपद के मनुष्य हिंस्र स्वभाव के थे और लूटमार का काम करते थे। इस जातक की एक गाथा में कहा गया है, "कीड़े, पतंगे, साँप, मेंढक, कृमि और मक्खियाँ मारने से मनुष्य शुद्ध होता है, इस प्रकार का अनार्य एवं मिथ्या धर्म कम्बोज के बहुजन मानते हैं।"[६] सातवीं शताब्दी ईसवी के चीनी यात्री यूआन् चुआङ का राजपुर (राजौरी, कश्मीर के दक्षिण) के निवासियों

---

१. देखिये जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ४४५; जिल्द छठी, पृष्ठ २०८; जिल्द चौथी, पृष्ठ ६५४।

२. सुमंगलविलासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १२४; मिलाइये मनोरथपूरणी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३९९।

३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ १८५।

४. उद्धरणों के लिए देखिये मोतीचन्द्र : ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महाभारत, पृष्ठ ३५, ११९।

५. जैन सूत्राज, भाग द्वितीय, पृष्ठ ४७ (सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट सीरीज)।

६. कीटा पतंगा उरगा च भेका हन्त्वा किमिं सुज्झति मक्खिका च। एते हि धम्मा अनरियरूपा कम्बोजकानं वितथा बहुन्नं॥

के बारे में ऐसा ही विचार था।[1] विद्वानों ने अनुसन्धान कर पता लगाया है कि प्राचीन काल में ईरान में कुछ कीड़े-मकोड़ों को मारना एक कर्तव्य माना जाता था। जातक के उपर्युक्त कथन को इस मिथ्या विश्वास के साथ मिलाते हुए डा० कुहन् ने कम्बोज को ईरान से मिलाने का प्रयत्न किया था।[2] उनकी इस मान्यता में हमें बहुत कुछ तथ्य मालूम पड़ता है। काफिरिस्तान में आजकल भी कोमोजी, केमोजे और केमोजे जैसी जन-जातियाँ मिलती हैं, ऐसा पता एल्फिन्स्टन ने लगाया था। इनका अचूक सम्बन्ध कम्बोज जनपद से है। अतः उसकी स्थिति बिलोचिस्तान से लगे ईरान के प्रदेश से निर्विवाद रूप से मान सकते हैं। महावंस[3] के अनुसार स्थविर महारक्षित ने अशोक के काल में यवन-देश में बुद्ध-शासन का प्रचार किया था। समन्तपासादिका में भी ऐसा ही उल्लेख है। जैसा हम देख चुके हैं, अस्सलायण-सुत्तन्त में योन (यवन) और कम्बोज को एक साथ मिलाकर (योनकम्बोजेसु) प्रयोग किया गया है। अशोक के तेरहवें शिलालेख में भी ऐसा ही उल्लेख है।" योनकम्बोजेसु" (मनसेहर पाठ)। अशोक ने अपने पंचम शिलालेख मे योन (यवन) और कम्बोज के साथ-साथ गन्धार जनपद को भी अपने राज्य की सीमा में सम्मिलित प्रदेश बताया है। "योन कम्बोजगन्धा-लेसु" (धौली पाठ) तथा "योनकम्बोजगन्धारानं।" (गिरनार पाठ)। कम्बोज देश से एक सड़क द्वारका तक बुद्ध-काल में जाती थी, ऐसा पेतवत्थु[4] से स्पष्ट प्रकट होता है।

सोलह महाजनपदों के इस विवरण के बाद अब हम बुद्धकालीन भारत के

---

१. वाटर्स : औन्यूआन् चूआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ २८४।

२. जर्नल ऑव रॉयल एशियाटिक सोसायटी, १९१२, पृष्ठ २५५-२५७; मिलाइये मेकडोनल और कीथ : वैदिक इण्डेक्स, जिल्द पहली, पृष्ठ १३८ भी।

३. १२।५, ३९ (हिन्दी अनुवाद)।

४. पृष्ठ १८ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण); देखिये आगे सुरट्ठ जनपद का विवरण भी।

कुछ अन्य छोटे जनपदों का परिचय देंगे, जिनका उल्लेख पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में मिलता है।

थुलू, जिसे पाठ-भेद से "बुमू" भी पुकारा गया है और सुमंगलविलासिनी में जिसका पाठान्तर "खुलू" भी है, जनपद किस प्रदेश में स्थित था, इसके सम्बन्ध में पालि तिपिटक या उसकी अट्ठकथाओं में कोई स्पष्ट सूचना नहीं मिलती। दीघ-निकाय के पाथिक-सुत्त से हमें केवल इतना मालूम होता है कि भगवान् बुद्ध एक बार सुनक्षत्र लिच्छविपुत्र के साथ थुलू लोगों के उत्तरका नामक कस्बे में गये थे और अचेल कोरखत्तिय भी उस समय वहीं निवास कर रहा था।[1] मोटे तौर पर हम थुलू, बुमू या खुलू जनपद को मध्य देश में कोई छोटा सा प्रदेश मान सकते हैं।

पानियत्थ (पाठान्तर पादियत्थ) नामक जनपद का उल्लेख थेरगाथा-अट्ठकथा[2] में है। इसे यहाँ स्थविर जोतिदास का जन्म-स्थान बताया गया है। इस जनपद के सम्बन्ध में अधिक सूचना प्राप्त नहीं है।

वंकहार (वंगहार भी पाठान्तर) जनपद मगध के दक्षिण मे स्थित था।[3] चापा की जन्मभूमि यही जनपद था। उपक आजीवक भी यहाँ कुछ दिन चापा के साथ वैवाहिक जीवन बिताते हुए रहा था।[4] आचार्य बुद्धघोष ने इस जनपद में पाई जाने वाली भयंकर मक्खियों का उल्लेख किया है।[5] वंकहार जनपद को डा० वेणीमाधव बड़ुआ ने वर्तमान हजारीबाग जिले से मिलाया है।[6]

दसण्ण (दशार्ण) जनपद का उल्लेख दो जातक-कथाओं में हुआ है।[7] दसण्णक

---

१. दीघ-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २१६-२१७।

२. जिल्द पहली, पृष्ठ २६४।

३. मललसेकर : डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ८०१।

४. देखिये थेरीगाथा, पृष्ठ २७-२८, ७३-७४ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

५. पपंचसूदनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३८८।

६. गया एण्ड बुद्धगया, प्रथम भाग, पृष्ठ १०६।

७. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३३८; जिल्द छठी, पृष्ठ २३८।

जातक में दसण्ण को तीक्ष्ण धार वाली तलवारों "दसण्णकं तिखिणधारं असिं" का उल्लेख है, जो बुद्ध-काल में प्रसिद्ध मानी जाती थीं। रामायण, महाभारत और मार्कण्डेय पुराण में भी दशार्ण जनपद का उल्लेख है। "पेरिप्लस ऑव दि इरीथ्रियन सी"[१] (प्रथम शताब्दी ईसवी) में "दोसरीन" नामक जनपद को हाथी-दाँत के लिए प्रसिद्ध बताया गया है। सम्भवतः यह हमारा दसण्ण जनपद ही है। मेकक्रिंडल ने बताया है कि ग्रीक लोगों को भारत का "दोसरियन्स" नामक जनपद विदित था।[२] इससे तात्पर्य दशार्ण जनपद से ही है। महावस्तु[३] में दशार्ण जनपद को जम्बुद्वीप के सोलह महाजनपदों में गिनाया गया है। कालिदास ने 'मेघदूत'[४] में दशार्ण जनपद का परिचय देते हुए उसकी राजधानी विदिशा (आधुनिक भिलसा) नामक नगरी को बताया है। "दशार्णाः. . . तेषां दिक्षु प्रथितविदिशालक्षणां राजधानीम्"। इसी आधार पर विद्वानों ने दसण्ण जनपद को वर्तमान भिलसा प्रदेश से मिलाया है, जिससे सहमत होने में कोई कठिनाई नहीं हो सकती। वर्तमान धसान नदी, जो बुन्देलखण्ड में होकर बहती है, अपने नाम के कारण हमें दसण्ण (दशार्ण) जनपद की पूरी याद दिलाती है। अतः बुन्देलखण्ड में धसान नदी के आसपास के प्रदेश को हम बिना किसी संकोच के बुद्धकालीन दसण्ण (दशार्ण) जनपद की स्थिति मान सकते हैं।

पेतवत्थु में दसण्ण जनपद के प्रसिद्ध नगर एरकच्छ का उल्लेख है। "नगरं अत्थि दसण्णानं एरकच्छं ति विस्सुतं।"[५] भिक्षुणी इसिदासी (ऋषिदासी) ने भी अपने पूर्व जन्म की कथा कहते हुए "थेरीगाथा" में बताया है कि एक बार पुरुष रूप में एरकच्छ या एरककच्छ नगर में वह एक बहुत धनी स्वर्णकार बनकर उत्पन्न

---

१. पृष्ठ ४७, २५३।

२. एन्शियन्ट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन क्लासीकल लिटरेचर, पृष्ठ १९८।

३. जिल्द पहली, पृष्ठ ३४।

४. पूर्वमेघ २३-२४।

५. पेतवत्थु, पृष्ठ १६ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन और भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

हुई थी। "नगरम्हि एरककच्छे सुवणकारो अहं बहुतधनो"। एरकच्छ या एरक-कच्छ नगर को महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने आधुनिक एरच बताया है।[1] एरच झाँसी से करीब ४० मील उत्तर-पूर्व में है। अतः यह पहचान बिलकुल ठीक जान पड़ती है। विदिशा (वेदिसं) से सम्बन्धित होने के कारण दसण्ण जनपद को पालि परम्परा के अनुसार अवन्ती महाजनपद का एक अंग ही मानना ठीक होगा। बुद्धकालीन विदिशा के सम्बन्ध में हम अवन्ती के प्रसंग में विवरण दे चुके हैं।

जातक में कोटुम्बर रट्ठ का उल्लेख है और उसे क्षौम वस्त्रों (खोमकोटुम्बराणि) के लिये प्रसिद्ध बताया गया है।[3] मिलिन्दपञ्हो में भी माधुरक जनों के साथ मिलाकर कोटुम्बर जनपद का उल्लेख किया गया है। "कोटुम्बरमाधुरका।"[4] इसी ग्रन्थ में कोटुम्बर जनपद के सुन्दर वस्त्रों का काशिक वस्त्रों के साथ उल्लेख करते हुए सागल नगर के वर्णन-प्रसंग में कहा गया है कि वहाँ "काशी और कोटुम्बर आदि स्थानों के बने कपड़ों की बड़ी-बड़ी दूकानें थीं।"[5] प्रो० जे० प्रजुलुस्की ने कोटम्बर को औदुम्बर से मिलाने का प्रस्ताव किया है।[6] यदि यह एकात्मता मान भी ली जाय, फिर भी कोटुम्बर जनपद की आधुनिक स्थिति का इससे कुछ निश्चित

---

१. थेरोगाथा, पृष्ठ ३८ (बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित देवनागरी संस्करण)।

२. देखिये मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद) के आरम्भ में संलग्न मानचित्र।

३. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ४७-५१।

४. मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ ३२४ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

५. मिलिन्द-प्रश्न, पृष्ठ २ (भिक्षु जगदीश काश्यप का हिन्दी अनुवाद)। मूल पालि इस प्रकार है "कासिक-कोटुम्बरकादिनानाविधवत्थापणसम्पन्नं।" मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ २ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

६. जर्नल एशियाटीक, १९२६, पृष्ठ २८-४८; डा० मोतीचन्द्र ने महाभारत के सभापर्व में 'औदुम्बरा' के लिए 'कुटुम्बरा' पाठान्तर होने की ओर ध्यान आकृष्ट किया है और इस प्रकार औदुम्बर लोगों को कोटुम्बर लोगों से मिलाने का एक और निश्चित आधार प्रदान किया है। देखिये उनकी 'ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महाभारत' पृष्ठ ९०, १२२।

अनुमान हमें नहीं हो सकता, क्योंकि औदुम्बर जनपद की स्थिति भी प्रायः उतनी ही अनिश्चित है। औदुम्बर जनपद को शक-सिथियन लोगों के आक्रमण के समय हम उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रान्त में स्थित मान सकते हैं[१], मार्कण्डेय पुराण के अनुसार उसे कुरु देश मे भी रख सकते हैं[२] और मंजुश्रीमूलकल्प के अनुसार मगध जनपद में भी,[३] जिन सबसे हमारे कोटुम्बर जनपद की आधुनिक स्थिति पर कुछ निश्चित प्रकाश नहीं पड़ता। औदुम्बर लोगों का पाणिनि के गण-पाठ (४।२।५३) मे उल्लेख है, परन्तु इससे भी उनकी भौगोलिक स्थिति के बारे में कुछ निश्चित प्रकाश नहीं पड़ता। महाभारत के सभापर्व मे 'औदुम्बरा दुर्विभागाः' के रूप में औदुम्बर लोगों का उल्लेख है। डा० मोतीचन्द्र ने इसका विवेचन करते हुए औदुम्बर (जिसका पाठान्तर उन्होंने "कुटुम्बरा" स्वीकार किया है) लोगों को प्रायः पठानकोट प्रदेश या काँगड़ा जिले के आसपास के प्रदेशों से सम्बद्ध किया है, जिसकी पुष्टि इन स्थानों में प्राप्त औदुम्बर लोगों के सिक्कों से भी होती है।[४] प्रथम चार निकायों में कोटुम्बर जनपद का उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु विनय-पिटक के चुल्लवग्ग में उदुम्बर नगर का उल्लेख है। विनय-पिटक का यह उदुम्बर नगर कण्णकुज्ज (कन्नौज) और सहजाति (भीटा, जिला इलाहाबाद) के बीच कहीं स्थित था। सोरेय्य से संकस्स, कण्णकुज्ज, उदुम्बर और अग्गलपुर होते हुए एक मार्ग बुद्ध-काल में सहजाति तक जाता था।[५] इसी मार्ग पर उदुम्बर नगर था। इस स्थिति को देखते हुए महा-पण्डित राहुल सांकृत्यायन का उदुम्बर नगर को कानपुर जिले में कोई स्थान मानना[६]

---

१. केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ ५२८-५२९। कनिष्क के समय में औदुम्बर लोग पंजाब के काँगड़ा और होशियारपुर आदि जिलों में, सतलज और रावी के बीच के प्रदेश में, बसे हुए थे। देखिए "दि हिस्ट्री एण्ड कल्चर ऑव दि इण्डियन पीपुल", जिल्द दूसरी, पृष्ठ १६१। पद-संकेत ४; मिलाइये मोतीचन्द्र : ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महाभारत, पृष्ठ ८८।

२, ३. देखिए लाहा : ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ३५५।

४. ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महाभारत, पृष्ठ ८८-९०।

५. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५५१।

६. बुद्धचर्या, पृष्ठ ५४६।

ठीक ही जान पड़ता है। यदि इस उदुम्बर नगर को हम औदुम्बर या कोटुम्बर से मिलायें तो हमें कोटुम्बर या औदुम्बर जनपद को मध्य देश के अन्तर्गत पंचाल देश में मानना पड़ेगा। परन्तु एक आश्चर्यजनक और हमारे लिये अधिक समस्या पैदा करने वाली बात यह भी है कि तिब्बती परम्परा के अनुसार एक उदुम्बरा नगर रोहतक (रोहितक या रोहीतक) के उत्तर में पंजाब में भी था। मूल सर्वास्तिवादी विनयपिटक के अनुसार जीवक ने तक्षशिला से भद्रंकर, उदुम्बरिका और रोहीतक होते हुए मधुरा तक यात्रा की थी।[1] अतः हमारे वर्तमान ज्ञान की अवस्था में कोटुम्बर या औदुम्बर जनपद की ठीक भौगोलिक स्थिति को निश्चित करना प्रायः असम्भव ही कहा जा सकता है।

वंग जनपद पूर्व देश में था। वह अंग के पूर्व और सुह्म के उत्तर-पूर्व में स्थित था। वंग जनपद को हम आधुनिक मध्य या पूर्वी बंगाल से मिला सकते हैं। प्रथम चार निकायों में वंग जनपद का उल्लेख नहीं है। महावंस में वंग जनपद के राजा सीहबाहु (सिंहबाहु) का उल्लेख है, जिसके पुत्र विजय ने लंका में जाकर प्रथम राज्य स्थापित किया।[2] अंगुत्तर-निकाय में वंग जनों (वंगा) का उल्लेख है,[3] परन्तु सोलह महाजनपदों में उनकी गिनती नहीं की गई है। दीपवंस[4] में भी वंग जनपद का उल्लेख है। मिलिन्दपञ्हो में अन्य अनेक जनपदों के साथ वंग का भी उल्लेख है और वहाँ नाविकों का नावें लेकर व्यापारार्थ जाना दिखाया गया है।[5] महानिद्देस में भी वंग जनपद का उल्लेख आया है।[6] दीपवंस[7] और महावंस[8]

---

१. देखिये गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स्, जिल्द तीसरी, भाग द्वितीय, पृष्ठ ३२-३३।

२. देखिये महावंस ६।१, १६, २०, ३१ (हिन्दी अनुवाद)।

३. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द पहली, पृष्ठ २१३।

४. पृष्ठ ५४।

५. मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ ३५१ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

६. जिल्द पहली, पृष्ठ १५४।

७. पृष्ठ ८२।

८. १५।९२ (हिन्दी अनुवाद)।

में वद्धमान (वर्द्धमान) नामक नगर का उल्लेख है। इसे आधुनिक बंगाल के बर्द-वान नगर से मिलाया जा सकता है।

पूर्व या दक्षिण-पूर्व देश में सबसे अधिक महत्वपूर्ण जनपद जिसका उल्लेख निकायों में है, सुह्म (सुम्भ) जनपद है। यह मज्झिम देस के दक्षिण-पूर्व में, अंग देश के नीचे, वंग और उक्कल के बीच, स्थित था। सुह्म जनपद और उसके प्रसिद्ध कस्बे सेतक, सेदक या देसक का भौगोलिक परिचय हम मज्झिम देस की सीमाओं का विवेचन करते समय दे चुके हैं। कजंगल को भी हमने सुह्म जनपद में ही माना है और उसका तथा उसके प्रसिद्ध वेणुवन[1] या सुवेणुवन और मुखेलुवन का भी, जहाँ भग-वान् ने विहार किया था, परिचय हम मज्झिम देस की सीमाओं का विवेचन करते समय दे चुके हैं। प्रसिद्ध प्राचीन भारतीय बन्दरगाह तामलित्ति (ताम्रलिप्ति) को भी उसकी भौगोलिक स्थिति को देखते हुए सुह्म जनपद में ही रखना ठीक होगा।[2]

तामलित्ति (ताम्रलिप्ति) का उल्लेख विनय-पिटक की अट्ठकथा (समन्त-पासादिका) में है। अशोक-पुत्री भिक्षुणी संघमित्रा बोधिवृक्ष की शाखा को लेकर पाटलिपुत्र से नाव में बैठकर गंगा के मार्ग से तामलित्ति पहुँची थी और फिर वहाँ से समुद्र के मार्ग से लंका गई थी। लंका में वह जम्बुकोलपट्टन (वर्तमान सम्बल-तुरि, लंका के उत्तर में) नामक बन्दरगाह पर उतरी थी।[3] इससे ज्ञात होता है कि पाटलिपुत्र से गंगा नदी के मार्ग से नावों पर बैठकर तामलित्ति तक आवागमन अशोक के काल में होता था। तामलित्ति से जहाज में बैठकर यात्री सिंहल के

---

१. हम देख चुके हैं कि एक वेणुवन राजगृह में भी था, जिसका एक भाग कलन्दक-निवाप कहलाता था। किम्बिला में भी एक वेणुवन था, जिसका उल्लेख हम पंचाल देश के प्रसंग में कर चुके हैं। यह तीसरा वेणुवन था, जो कजंगल में स्थित था।

२. देखिये कनिंघम-कृत "एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया" में सुरेन्द्रनाथ मजूमदार लिखित "नोट्स्", पृष्ठ ७३२; मिलाइये लाहा : ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ २६३।

३. समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ ९०।

जम्बुकोलपट्टन नामक बन्दरगाह पर उतरते थे। इसी तथ्य की पुष्टि दीपवंस[1] और महावंस[2] के वर्णनों से भी होती है। महावंस के ग्यारहवें परिच्छेद में सिंहली राजा देवानंपिय तिस्स और अशोक के बीच भेंटों के आदान-प्रदान का वर्णन है। उसमें राजा देवानं पिय तिस्स के अमात्य लंका के जम्बुकोल बन्दरगाह से नाव पर बैठ कर सात दिन में तामलित्ति बन्दरगाह में पहुँचते दिखाये गये हैं और फिर वहाँ से सात दिन में उनका पाटलिपुत्र पहुँचना दिखाया गया है। इसी क्रम से उनकी वापसी यात्रा का भी वर्णन किया गया है। महावंस के उन्नीसवें परिच्छेद में तथा समन्तपासादिका[3] में जहाँ भिक्षुणी संघमित्रा का बोधिवृक्ष की डाल को लेकर गंगा के मार्ग से सात दिन में तामलित्ति पहुँचना दिखाया गया है, वहाँ यह बात भी कही गई है कि राजा अशोक उन्हे बिदाई देने के लिये स्थल-मार्ग से तामलित्ति तक गया था और इस यात्रा में भी उसे सात दिन लगे थे। इससे ज्ञात होता है कि पाटलिपुत्र और ताम्रलिप्ति के बीच स्थलीय मार्ग भी था। तामलित्ति से एक स्थल-मार्ग गया होता हुआ वाराणसी तक जाता था और इस प्रकार उसके सम्बन्ध को उस महत्वपूर्ण मार्ग से जोड़ता था जो राजगृह से गन्धार देश के तक्षशिला नगर तक और सम्भवतः उसके परे पश्चिमी और मध्य एशिया तक जाता था। पालि निकायों में, यहाँ तक कि जातक में भी, तामलित्ति का निर्देश नहीं मिलता। परन्तु जैसा हम अंग जनपद के विवरण में देख चुके हैं, चम्पा के व्यापारियों का सुवण्णभूमि (दक्षिणी बर्मा) तक व्यापारार्थ जाने का उल्लेख वहाँ है। अतः यह निश्चित जान पड़ता है कि चम्पा के व्यापारी तामलित्ति होते हुए ही सुवण्णभूमि तक जाते होंगे। यही बात विदेह के व्यापारियों के सम्बन्ध मे कही जा सकती है, जिनका भी सुवण्णभूमि तक व्यापारार्थ जाना जातकों के आधार पर सिद्ध है। समन्तपासादिका में तामलित्ति और सुवर्णभूमि जाने का एक साथ उल्लेख किया गया है।[4]

---

१. पृष्ठ २८।
२. ११।२३-२४; ११।३८-३९; १९।६ (हिन्दी अनुवाद)।
३. जिल्द पहली, पृष्ठ ९०।
४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २५, पद-संकेत १।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि भारतीय व्यापारी तामलित्ति होकर ही सुवण्णभूमि जाते थे।

ऊपर पालि विवरण के आधार पर तामलित्ति बन्दरगाह का जो वर्णन दिया गया है, उससे ज्ञात होता है कि वह गंगा नदी के मुहाने पर, समुद्र के किनारे, स्थित था। आजकल बंगाल के मेदिनीपुर जिले के तमलुक नामक स्थान से तामलित्ति को मिलाया गया है।[1] तमलुक रूपनारायण नदी के मुहाने के पश्चिम की ओर स्थित है। सिलई और दलकिशोर नदियाँ मिलकर मेदिनीपुर जिले में बहती हुई रूप-नारायण नदी कहलाती हैं। फा-ह्यान, यूआन् चुआङ्, इ-त्सिङ् तथा अन्य कई चीनी यात्री तामलित्ति आये थे। फा-ह्यान चम्पा से पूर्व दिशा में चलकर यहाँ पहुँचा था और उसने इसे चम्पा से ५० योजन दूर बताया है। यहाँ से एक व्यापारिक जहाज में बैठ कर दक्षिण-पश्चिम दिशा में यात्रा करता हुआ फा-ह्यान चौदह दिन और रातों में सिंहल पहुँचा था।[2] इ-त्सिङ् कुछ दिन तक ताम्रलिप्ति मे ठहरा था और उसने इसकी दूरी नालन्दा से ६० या ७० योजन बताई है।[3] चीनी यात्री यूआन् चुआङ् "सन्-मो-त-च" अर्थात् समतट (जसौर) से ९०० 'ली' या करीब १५० मील पश्चिम में यात्रा करते हुए ताम्र-लिप्ति पहुँचा था, जिसे उसने "तन-मो-लिह्-ति" कहकर पुकारा है।[4] भारत से चीन जाने वाले यात्री अक्सर ताम्रलिप्ति से ही नाव में बैठते थे और इसी प्रकार चीन से भारत आने वाले यात्री यहाँ उतरते थे। पालि निकायों में हमें चीन के साथ भारतीय व्यापार का उल्लेख नहीं मिलता। परन्तु बुद्धवंस में कोणागमन बुद्ध और उनके शिष्यों को सुमेध बोधिसत्व द्वारा चीनपट्ट भेंट किये जाने का

---

१. कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५७७; वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९०।

२. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ६५।

३. देखिये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९०।

४. वहीं, पृष्ठ १८९-१९०; कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५७४-५७७।

उल्लेख है। इससे लगता है कि इस ग्रन्थ की रचना या संकलन के काल तक भारत और चीन के व्यापारिक सम्बन्ध काफी विकसित हो चुके होंगे। मिलिन्दपञ्हो (ईसवी सन् के करीब) में तो चीन के साथ-साथ कई अन्य देशों के साथ भारतीय व्यापारिक सम्बन्धों की स्पष्ट बात कही गई है।[1] इतना तो निश्चित है कि ताम्रलिप्ति से भारतीय व्यापारी सुवर्णभूमि तक तो जाते ही थे, बंगाल की खाड़ी में होते हुए ताम्रपर्णि द्वीप (श्रीलंका) तक भी उनका जाना उतना ही निश्चित है। इसी प्रकार इस बात के भी साक्ष्य हैं कि वे मलय प्रायद्वीप, पूर्वी द्वीप-समूह तथा हिन्द-चीन तक अपनी सुदृढ़ और विशाल आकार की नावें लेकर जाया करते थे। चीन के साथ भी हमारी सामुद्रिक व्यापारिक परम्परा, जिसका एक पड़ाव तामलित्ति था, काफी प्राचीन है।

हिमालय (हिमवा) के समीप, सीमा-प्रान्त में, बुद्ध-काल में कुक्कुट या कुक्कुटवती नामक नगरी थी। डा० मललसेकर का विचार है कि कुक्कुट देश का नाम था और उसकी राजधानी कुक्कुटवती कहलाती थी।[2] महाकप्पिन का जन्म कुक्कुटवती नगरी में हुआ था। जिस राज्य की यह राजधानी थी, उसका विस्तार ३०० योजन बताया गया है। श्रावस्ती के व्यापारियों से, जो कुक्कुटवती नगर में व्यापारार्थ जाया करते थे, महाकप्पिन ने बुद्ध के आविर्भाव के सम्बन्ध में सुना था और संवेगापन्न होकर वह उनके दर्शनार्थ चल पड़ा था। मार्ग में उसने क्रमशः अरवच्छा, नीलवाहना और चन्दभागा (चन्द्रभागा) नदियाँ पार कीं। चन्द्रभागा (चिनाब) नदी के तट पर भगवान् बुद्ध अपने ऋद्धि-बल से गये और महाकप्पिन की अगवानी की।[3] जातक[4] में श्रावस्ती से इस स्थान की दूरी १२० योजन बताई

---

१. "सम्पन्नो नाविको पट्टने सुट्ठु कतसुंको महासमुद्दं पविसित्वा वंगं तक्कोलं चीनं सोवीरं सुरट्ठं अलसन्दं कोलपट्टनं सुवण्णभूमिं गच्छति"। पृष्ठ ३५१ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

२. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ६१४।

३. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १७७; मनोरथपूरणी, जिल्द पहली, पृष्ठ १७५।

४. जिल्द चौथी, पृष्ठ १८०।

गयी है। श्रावस्ती से कुक्कुटवती नगर तक व्यापारिक मार्ग था, जिस पर पैदल घूम-घूम कर माल बेचने वाले व्यापारी (जंघवाणिजा) भी आते-जाते थे। मज्झिम देस से कुक्कुटवती नगर व्यापारिक मार्ग द्वारा संयुक्त था।[१] कुक्कुटवती नगर के उपर्युक्त विवरण से स्पष्ट है कि वह और कुक्कुट देश अफगानिस्तान के आसपास कहीं स्थित थे। संयुत्त-निकाय के कप्पिन-सुत्त में हम भगवान् बुद्ध को दूर से आते कप्पिन के सम्बन्ध में भिक्षुओं से यह कहते सुनते हैं, "तुम इस गोरे, पतले, ऊँची नाक वाले भिक्षु को देखते हो ? यह भिक्षु बड़ी ऋद्धि वाला, बड़े अनुभाव वाला है. . . . इसने ब्रह्मचर्य के अन्तिम फल को पा लिया है।"[२] महाकप्पिन के इस रूप-रंग और आकृति के वर्णन से भी यही प्रकट होता है कि वे उत्तर-पश्चिम सीमाप्रान्त के ही निवासी थे। महाभारत के सभा-पर्व (अध्याय ४८) में कुक्कुर (कुक्कुराः) लोगों का उल्लेख है। यह सम्भव हो सकता है कि इन लोगों का सम्बन्ध पालि की कुक्कुटवती नगरी से रहा हो। महाभारत के 'कुक्कुर' लोगों को डा० मोतीचन्द्र ने पंजाब के खोखर लोगों से मिलाया है, जो झेलम और चिनाब नदी की घाटी में बसे हैं।[३] पालि विवरण के अनुसार कुक्कुट देश को चिनाव (चन्द्रभागा) नदी के काफी पश्चिम में होना चाहिये, क्योंकि इन दोनों के बीच में, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, अरवच्छा और नीलवाहना नामक अन्य दो नदियाँ महाकप्पिन ने पार की थीं। अतः हम मोटे तौर पर चन्द्रभागा नदी से लेकर झेलम नदी तक ही नहीं, बल्कि उसके कुछ और पश्चिम भाग को भी पालि का कुक्कुट देश मान सकते हैं।

मद्द रट्ठ (मद्र राष्ट्र) बुद्ध-काल में उत्तरापथ का एक प्रसिद्ध राष्ट्र था। वैदिक साहित्य में इस राष्ट्र का प्रभूत महत्व माना गया है। उद्दालक आरुणि ने इस राष्ट्र में शिक्षा पाई थी।[४] ऐतरेय ब्राह्मण (८।१४।३) में भी मद्र लोगों

---

१. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ११६।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ३१६।

३. ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महाभारत, पृष्ठ ४६।

४. बृहदारण्यक उपनिषद् ३।७।१

का उल्लेख है।[1] पालि साहित्य मे विशेषतः इसकी ख्याति सुन्दर स्त्रियों के लिये अधिक है। पिप्पलि माणवक की कल्पना की स्त्री (भद्रा कापिलायिनी) मद्र देश में ही पाई गई थी। मगधराज बिम्बिसार ने भी मद्र राष्ट्र की राजकुमारी खेमा से विवाह किया था। कलिंग-बोधि-जातक में हम कलिंग देश के एक राजकुमार को मद्र देशकी राजकुमारी से विवाह करते देखते हैं। इसी प्रकार छद्दन्त जातक में वाराणसी के राजकुमार का मद्र देश की एक राजकुमारी के साथ विवाह का वर्णन है। वेस्सन्तर जातक के अनुसार सिवि देश के राजा वेस्सन्तर की रानी मद्दी (माद्री) भी मद्र राष्ट्र की राजकन्या थी। कुक्कुटवती नगर के राजा महाकप्पिन की पत्नी अनोजा भी मद्र राष्ट्र के सागल नगर की राजकन्या थी। इसी प्रकार कोसल और कुरु जनपदों के राज-परिवारों के अनेक व्यक्तियों के मद्र देश की राजकुमारियों के साथ विवाह के वर्णन है। सम्भवतः इसी आधार पर आचार्य बुद्धघोष ने मद्र राष्ट्र को स्त्रियों का आगार ही कहा है। 'मद्दरट्ठं नाम इत्थागारो।"[2]

मद्द रट्ठ मध्य पंजाब में, रावी और चिनाब नदियों के बीच, स्यालकोट के आसपास स्थित प्रदेश था। उसकी राजधानी सागल नामक नगरी थी, जिसे ईसवी सन् के करीब यवनराजा मिलिन्द (ग्रीक मीनाण्डर) ने अपनी राजधानी बनाया। ग्रीक इतिहासकार एरियन ने सागल नगर को "संगल" कहकर पुकारा है और तोलेमी ने उसका ग्रीक रूपान्तर 'यूथुमेदिया" दिया है। मिलिन्दपञ्हो[3] में हमें सागल नगर की व्यापारिक समृद्धि का "अत्थि योनकानं नानापुटभेदनं सागलं नाम नगरं" आदि रूप से सुन्दर काव्यमय वर्णन मिलता है, जिसमें कहा गया है कि इस नगर में काशी और कोटुम्बर जनपदों में बने नानाविध सुन्दर कपड़ों की दूकानें थीं।

---

१. वैदिक साहित्य में मद्र राष्ट्र के वर्णन के लिए देखिये मेकडोनल और कीथः वैदिक इण्डेक्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १२३।

२. थेरगाथा-अट्ठकथा, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १४२; थेरीगाथा-अट्ठकथा, पृष्ठ ६८।

३. पृष्ठ २ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण); देखिये मिलिन्द-प्रश्न (भिक्षु जगदीश काश्यप का हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २।

इसे ईसवी सन् के करीब का ही चित्र समझना चाहिए। जातक[1] में भी हमें मद्द रट्ठ और उसकी राजधानी सागल का वर्णन मिलता है, जिसे हम बुद्ध-काल की परिस्थितियों का सूचक मान सकते हैं। डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने पालि सागल को महाभारत के शाकल से मिलाया है।[2] कनिंघम ने सागल की पहचान आधुनिक स्यालकोट से की थी[3], जिससे प्रायः सभी विद्वान् सहमत हैं। तक्षशिला से मथुरा आने वाले प्रसिद्ध व्यापारिक मार्ग पर सागल पड़ता था। तक्षशिला से एक सीधा मार्ग सागल (स्यालकोट) होता हुआ सम्भवतः श्रावस्ती तक भी जाता था।[4]

जैसा हम पहले देख चुके हैं, मज्झिम-निकाय के अस्सलायण-सुत्तन्त में योन (सं० यवन) जनपद का उल्लेख कम्बोज जनपद के साथ एक सीमान्त (प्रत्यन्त) देश के रूप में किया गया है और कहा गया है कि वहाँ भारतीय समाज-व्यवस्था के चार वर्णों के स्थान पर दो ही वर्ण होते थे, आर्य और दास। "आर्य होकर दास हो सकता है और दास होकर आर्य हो सकता है।" (अय्यो हुत्वा दासो होति, दासो हुत्वा अय्यो होति)। पालि "योन" शब्द संस्कृत "यवन" शब्द का प्रतिरूप है जो अपने मौलिक रूप में प्राचीन पारसी शब्द "यौन" का ही रूप है और जिसका अर्थ एशिया मायनर के अन्तर्गत आयोनिया के निवासी ग्रीक से है। बाद में यह शब्द ग्रीक मात्र के लिये प्रयुक्त किया जाने लगा। इसी अर्थ मे बैक्ट्रिया (बलख)-निवासी ग्रीक मीनाण्डर को मिलिन्दपञ्हो में "योनकानं राजा मिलिन्दो" कहकर पुकारा गया है। योन जनपद बुद्ध-काल में भारत के उत्तर-पश्चिम में काबुल नदी के आसपास स्थित था। भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में यवन प्रदेशों का पालि परम्परा को स्पष्ट ज्ञान था, यह हमें मज्झिम-निकाय के अस्सलायण-सुत्तन्त से साफ तौर पर मालूम हो जाता है। भगवान् शाक्यमुनि के उपदेशों की ओर भारत के उत्तर-पश्चिमी सीमा-प्रान्त में बसे ग्रीक लोग आरम्भ से ही आकृष्ट होने लगे थे।

---

१. जिल्द चौथी, पृष्ठ २३०; जिल्द छठी, पृष्ठ २८०।

२. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ६४-६५।

३. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ६८६।

४. मिलाइये इस सम्बन्ध में प्रज़ुलुस्की का लेख, जर्नल एशियाटीक, १९२१, पृष्ठ १७-१८।

अशोक के समय में हम ग्रीक भिक्षु धर्मरक्षित (योन धम्मरक्खित) को अपरान्तक प्रदेश में धर्म-प्रचारार्थ जाते देखते हैं। अशोक ने अपने द्वितीय और त्रयोदश शिला-लेखों में सिरिया के अन्तियोकस द्वितीय और मेसीडन के एंटीगोनस गोनेटस आदि पाँच ग्रीक राजाओं का उल्लेख किया है, जिनके पास उसने भगवान् शाक्यमुनि के सन्देश को भेजा था। मिलिन्दपञ्हो में यवनराजा मिनाण्डर की राजधानी सागल का वर्णन किया गया है, जिसका उल्लेख हम पहले कर चुके हैं। मिलिन्दपञ्हो के अनुसार राजा मिलिन्द (मिनाण्डर) का जन्म अलसन्द द्वीप (दोआब) के कलसिगाम में हुआ था। "अत्थि भन्ते अलसन्दो नाम दीपो। ....कलसिगामो... तत्थाहं जातो ति।"[1] यहीं उसकी दूरी सागल से २०० योजन बताई गई है। अलसन्द (अलैक्जेण्डरिया) को हम आधुनिक कन्धार से मिला सकते हैं। कुछ विद्वानों ने उसे सिन्धु नदी में एक टापू भी माना है और कुछ ने काबुल से पच्चीस मील उत्तर बेगराम भी, जहाँ एक भग्न नगर के विशाल अवशेष पाये जाते हैं। कुछ विद्वान् वामियान को भी, अलसन्द बताना चाहते हैं।

सिवि (शिवि) जनपद का उल्लेख अंगुत्तर-निकाय में दी गई सोलह महा-जनपदों की सूची में नहीं है, परन्तु महावस्तु[2] में बुद्ध-ज्ञान के जिन देशों और जनपदों में वितरित किये जाने की बात कही गई है, उनमें शिवि देश सम्मिलित है। जैसा हम पहले कह चुके हैं, महावस्तु की सूची में अंगुत्तर-निकाय के गन्धार और कम्बोज जनपदों का उल्लेख न होकर उनकी जगह शिवि और दशार्ण नामक दो अन्य जनपदों का उल्लेख है। शेष नाम दोनों में समान हैं। विनय-पिटक से पता लगता है कि बुद्ध-काल में सिवि देश बहुमूल्य और सुन्दर दुशालों के लिए प्रसिद्ध था। अवन्ती-नरेश चण्ड प्रद्योत ने शिवि देश का एक सुन्दर और बहुमूल्य दुशाले का जोड़ा (सिवेय्यक दुस्स) जीवक को उसके द्वारा पाण्डुरोग से उसे मुक्त किये जाने के कृतज्ञता-स्वरूप भेंट किया था। जीवक ने यह दुशाला लाकर भगवान् को अर्पित किया था।[3]

---

१. मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ ८५-८६ ; मिलिन्द-प्रश्न (हिन्दी अनुवाद, द्वितीय संस्करण), पृष्ठ १०४।

२. जिल्द पहली, पृष्ठ ३४।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २७२-२७४।

इसी प्रकार सिवि जातक में कोसल देश के राजा प्रसेनजित् के द्वारा भगवान् बुद्ध (दशवल[1]) को एक लाख मूल्य के शिवि राष्ट्र में बने कपड़े (सिवेय्यक वत्थं) के भेंट करने का उल्लेख है।

उम्मदन्ती जातक से हमें पता लगता है कि सिवियों के राज्य में सिवि-धम्म (शिवि-धर्म) नामक नैतिक विधान प्रचलित था, जिसका पालन करना सिवि राज्य का प्रत्येक नागरिक अपना कर्तव्य और सम्मान समझता था। इसी जातक में सिवि कुमार कहता है, "नेता पिता उग्गतो रट्ठपालो धम्मं सिवीनं अपचायमानो। सो धम्ममेवानुविचिन्तयन्तो तस्मा सके चित्तवसे न वत्ते।" अर्थात् "मैं शिवियों का नेता, पिता और राष्ट्रपालक हूँ। अतः शिवियों के धर्म का मान रखकर और उस धर्म का अच्छी प्रकार सोच-विचार कर मैं अपने चित्त-विकार के अधीन नहीं हूँ"। शिवि-धर्म के समान कुरु राष्ट्र के लोगों के कुरु-धर्म और वज्जियों के वज्जि-धर्म नामक नैतिक विधान प्रचलित थे, जिनका सम्मान करना ये लोग भी अपना कर्तव्य और गौरव समझते थे। इससे यह विदित होता है कि सिवियों का राज्य, इस जातक के अनुसार, एक सुसंस्कृत और नैतिक मर्यादाओं से युक्त देश था।

सिवि जातक, उम्मदन्ती जातक और वेस्सन्तर या महावेस्सन्तर जातक में

---

१. दशवल (पालि दसबल, दस बलों को धारण करने वाले) भगवान् बुद्ध का एक प्रसिद्ध उपपद है, जिसे पालि साहित्य में केवल उनके लिये प्रयोग किया गया है। सिवि-जातक के अनुसार प्रसेनजित् ने यह दुशाला भगवान् बुद्ध को ही अर्पित किया था। अतः डा० मोतीचन्द्र ने सिवि जातक का ही उद्धरण देते हुए यह जो लिखा है कि कोसल देश के राजा ने "दशवल नाम के एक व्यक्ति को" सिवि देश का वस्त्र उपहार में दिया, (प्राचीन भारतीय वेशभूषा, पृष्ठ २९, भारती भण्डार, लीडर प्रेस, प्रयाग, सं० २००७ वि०) ठीक नहीं है और भ्रामक भी है। इसी प्रकार उन्होंने अपनी पुस्तक "ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महाभारत" (पृष्ठ ९४) में भी लिखा है "....the king of Kosala is said to have presented one Dasabala with a cloth piece from Sivi"। यह उचित नहीं है। दसबल अन्य कोई साधारण व्यक्ति नहीं, बल्कि स्वयं भगवान् सम्यक् सम्बुद्ध ही हैं। उनके लिए ऐसा कथन-प्रयोग उचित नहीं है।

सिवि देश और उसके राजाओं का वर्णन है। इन जातकों में सिवि देश के दो नगरों का भी उल्लेख है, जिनके नाम हैं अरिट्ठपुर (सिवि जातक तथा उम्मदन्ती जातक) और जेतुत्तर (वेस्सन्तर जातक)। सिवि जातक तथा उम्मदन्ती जातक में अरिट्ठपुर को सिवि राष्ट्र की राजधानी बताया गया है। दोनों ही जगह कहा गया है, "पूर्व समय में सिवि राष्ट्र के अरिट्ठपुर नगर में सिवि महाराजा राज्य करता था।" अरिट्ठपुर (सं० अरिष्टपुर) को नन्दोलाल दे ने तोलेमी के एरिष्टोबोथा से मिलाकर उत्तरी पंजाब में स्थित बताया है।[1] वोगल के मत का अनुसरण कर डा० हेमचन्द्र रायचौधरी तथा अन्य विद्वानों ने इसे पतंजलि के शिवपुर से मिलाया है और इस प्रकार इसकी पहचान झेलम और चिनाब नदियों के संगम के नीचे झंग प्रदेश के समीप शोरकोट (पश्चिमी पंजाब) से की है।[2] लाहा ने नन्दोलाल दे के एक सुझाव पर अरिट्ठपुर को द्वारावती से भी मिलाने का प्रयत्न किया है।[3] परन्तु वह ठीक नहीं जान पड़ता।

ऋग्वेद (७।१८।७) में 'शिव' लोगों का उल्लेख है। इन्हें पालि के 'सिवि' लोगों से मिलाया जा सकता है। महाभारत के वन-पर्व में भी शिवि राष्ट्र और उसके राजा उशीनर का उल्लेख है। नन्दोलाल दे ने महाभारत के इस 'शिवि' राष्ट्र को स्वात की घाटी में स्थित बताया है।[4] बाज के लिये शिवि औशीनर के बलिदान की कथा महाभारत के वन-पर्व में आई है। फा-ह्यान ने उद्यान के दक्षिण में, जिसे आधुनिक स्वात नदी की घाटी का प्रदेश माना जा सकता

---

१. ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडीवल इण्डिया, पृष्ठ ११।

२. रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ २५२-२५३; मिलाइये कनिंघम-कृत "एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया" में सुरेन्द्रनाथ मजूमदार लिखित "नोट्स्" पृष्ठ ६६९; लाहा : ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ८३।

३. ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ८३; मिलाइये दे : ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी, पृष्ठ १८७।

४. ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडीवल इण्डिया, पृष्ठ १८८।

है, इस घटना का घटित होना दिखाया है।[1] अतः महाभारत के शिवि राष्ट्र को स्वात की घाटी का प्रदेश माना जा सकता है। इस मत को इस बात से और भी समर्थन मिलता है कि शिवि औशीनर के बलिदान की घटना को दिखाने वाली एक कला-कृति भी स्वात की घाटी में मिली है। राजा उशीनर और उसके पुत्र शिवि का वर्णन कई जातक-कथाओं में भी है। सिवि जातक में तो राजा शिवि की दान-पारमिता का भी वर्णन है और उसे एक ब्राह्मण को आँख दान करते दिखाया गया है। अतः इस आधार पर हम पालि के उस सिवि देश को, जिसकी राजधानी सिवि जातक तथा उम्मदन्ती जातक में अरिट्ठपुर नामक नगरी बतायी गई है, स्वात की घाटी में स्थित मान कर उसे वर्तमान सीबी (बिलोचिस्तान) के आसपास का प्रदेश मान सकते हैं या पश्चिमी पंजाब के शोरकोट के आसपास का प्रदेश भी और उसकी राजधानी अरिट्ठपुर को, जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, शिवपुर से मिला सकते हैं।

परन्तु वेस्सन्तर या महावेस्सन्तर जातक में जेतुत्तर को सिवि राज्य की राजधानी बताया गया है। "पूर्व समय में सिवि राष्ट्र के जेतुत्तर नगर में राज्य करते समय सिवि नरेश को संजय नामक पुत्र का लाभ हुआ।" जेतुत्तर की गणना, जैसा हम आगे पाँचवें परिच्छेद में अभिधानप्पदीपिका के साक्ष्य पर देखेंगे, बुद्धकालीन भारत के बीस बड़े नगरों में होती थी। वेस्सन्तर जातक में जेतुत्तर को चेत रट्ठ के मातुल नगर से तीस योजन की दूरी पर बताया गया है। नन्दोलाल दे ने जेतुत्तर को आधुनिक चित्तौड़ के ग्यारह मील उत्तर में नागरी नामक स्थान से मिलाया है।[2] अलबरुनी ने जिस जत्तररुर या जत्तरौर नामक स्थान का उल्लेख किया है, वह कुछ विद्वानों के अनुसार यह जेतुत्तर ही है।[3] यह सम्भव है कि बुद्ध-कालीन 'जेतुत्तर' से बिगड़ कर वर्तमान 'चित्तौड़' बना हो। चित्तौड़ के समीप

---

१. गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ११-१२।

२. ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडीवल इण्डिया, पृष्ठ ८१।

३. देखिए कनिंघम-कृत "एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया" में सुरेन्द्रनाथ मजूमदार-लिखित "नोट्स्", पृष्ठ ६६९; नन्दोलाल दे : ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी, पृष्ठ ८१; लाहा : ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ८३।

नागरी में बहुत से ताँबे के सिक्के भी मिले हैं, जिन पर लिखा है "मझिमिकाय सिवि जनपदस"।[१] इससे प्रकट होता है कि चित्तौड़ के समीप मध्यमिका में भी सिवि लोगों का एक जनपद स्थित था। अत: जिस सिवि राज्य की राजधानी वेस्सन्तर जातक में जेतुत्तर नामक नगरी बताई गई है, उसे हम चित्तौड़ के आसपास का प्रदेश ही मानेंगे। इस प्रकार पालि विवरण के आधार पर हमें सिवि लोगों के दो निवास मानने पड़ेंगे, एक स्वात की घाटी में और दूसरा चित्तौड़ के आसपास। 'दशकुमार चरित' से जान पड़ता है कि उत्तर काल में शिवि लोगों का एक जनपद दक्षिण में कावेरी नदी के तट पर भी स्थापित हो गया था। इससे हम, जैसा आधुनिक खोज का ढंग है, यही निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि सिवि जाति मूलत: तो बिलोचिस्तान के आसपास सिवि (वर्तमान सीबी) प्रदेश में ही रहती थी, परन्तु बाद में उसकी कुछ शाखाएँ वहाँ से चलकर चित्तौड़ और दक्षिण-भारत मे कावेरी नदी के तट तक बस गईं।[२] पालि साहित्य में, जैसा हम अभी स्पष्ट कर चुके हैं, सिवि लोगों की केवल दो शाखाओं का ही साक्ष्य हमें मिलता है, एक स्वात की घाटी के प्रान्त में और दूसरी मध्यमिका में, जिनकी राजधानियाँ क्रमश: अरिट्ठपुर और जेतुत्तर नगर थे। सिवि लोगों का वर्णन ग्रीक इतिहासकार एरियन ने "सिबोइ" नाम से किया है, जो प्राय: अलक्षेन्द्र के भारत-आक्रमण के समय से सम्बन्धित है और हमारे काल से काफी बाद का है।

वेस्सन्तर (महावेस्सन्तर) जातक में उल्लेख है कि जेतुत्तर नगर से पाँच योजन की दूरी पर स्वर्णगिरि ताल नामक पर्वत था, जहाँ से पाँच योजन की दूरी पर कोन्ति-मार नामक नदी थी। इस नदी से पाँच योजन की दूरी पर अरंजर गिरि था, जहाँ से भी पाँच योजन की दूरी पर दुन्निविट्ठ नामक ब्राह्मण-ग्राम था। इस ग्राम से दस योजन की दूरी पर मातुल नामक नगर था जो चेत रट्ठ में था।[३] इन सब

---

१. देखिये आर्केलोजीकल सर्वे ऑव इण्डिया रिपोर्ट, जिल्द छठी, पृष्ठ १९६।

२. मिलाइये विशेषत: रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ २५२-२५३; लाहा : ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ८२-८५।

३. जातक, षष्ठ खण्ड, पृष्ठ ५५९ (हिन्दी अनुवाद)

स्थानों की आधुनिक पहचान करना कठिन है। हम केवल यही कह सकते हैं कि उपर्युक्त सब स्थान जेतुत्तर नगर और चेत रट्ठ के बीच में स्थित थे।

बाहिय या बाह्लिक राष्ट्र, जो उत्तरापथ में था, जातक-कथाओं में वनचरों के लिए प्रसिद्ध बताया गया है। भगवान् बुद्ध के शिष्य स्थविर बाहिय दारुचीरिय बाहिय राष्ट्र के निवासी थे। मज्झिम-निकाय के बाहितिय या बाहितिक सुत्तन्त में हमें यह सूचना मिलती है कि इस देश के बने बहुमूल्य वस्त्र भारत में बुद्ध-काल में अधिक पसन्द किये जाते थे। मगधराज अजातशत्रु ने बाहित (या बाहिय) देश में बना एक सोलह हाथ लम्बा और आठ हाथ चौड़ा सुन्दर वस्त्र प्रसेनजित् को भेंट-स्वरूप भेजा था, जिसे उपर्युक्त सुत्त की सूचना के अनुसार प्रसेनजित् आनन्द को भेंट करना चाहता था।[1] अधिकतर विद्वानों की प्रवृत्ति पालि के बाहिय राष्ट्र को शतपथ-ब्राह्मण (१२।९।३।१-३) के वाह्लीक लोगों से मिलाने की है, जो मूलतः बैक्ट्रिया की राजधानी बलख के रहने वाले थे तथा भारत में चिनाब और सतलज नदियों के बीच के मैदान में बस गये थे। महाभारत के सभा-पर्व मे भी वाह्लीक लोगों (वाह्लिकैः सह) का वर्णन है और उनके प्रदेश को भी मूलतः बलख और बाद में भारत के उत्तर-पश्चिम भाग तथा पंजाब को माना गया है।[2]

पाणिनि ने अपने दो सूत्रों यथा "वाहीकग्रामेभ्यश्च" (४।२,११७) तथा "आयुधजीविसंघाञ्ञ्यड्वाहीकेष्वब्राह्मणराजन्यात्" (५।३,११४) में वाहीक जनपद का उल्लेख किया है, जिसे भाष्यकार पतंजलि के आधार पर अक्सर पंजाब प्रदेश में स्थित बताया जाता है। इसकी ठीक स्थिति ब्यास और सतलज नदियों के बीच निश्चित की गई है। इस वाहीक से भी पालि के वाहिय या बाह्लिक को मिलाया जाता है।[3] भाषा-विज्ञान की दृष्टि से पालि का 'बाहिय'

---

१. मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३६२।

२. देखिये डा० मोतीचन्द्र : ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महाभारत, पृष्ठ ९१।

३. देखिये राहुल सांकृत्यायन : मज्झिम-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३६२, पद-संकेत १।

शब्द संस्कृत 'वाहीक' के अधिक निकट है, जब कि 'वाल्हीक' उससे कुछ दूर पड़ता है। परन्तु इस पाणिनीय वाहीक से शतपथ-ब्राह्मण और महाभारत के वाल्हीक का क्या सम्बन्ध है, यह एक समस्या है जिसके समाधान के प्रयत्न में यदि एक ओर कुछ विद्वानों ने वाहीक और वाल्हीक या वाल्हीक को एक ही प्रदेश मानकर सीधा समाधान निकाल लिया है तो दूसरी ओर कुछ लोगों ने वाल्हीकों को बैक्ट्रियन लोगों से ही मिलाने का आग्रह कर उनके प्रदेश को गन्धार और कम्बोज से परे अर्थात् अफगानिस्तान के उत्तर में ही बताने का प्रयत्न किया है। हम पालि के बाहिय राष्ट्र को कम से कम ब्यास और सतलज नदियों के बीच के प्रदेश तक तो सीमित रख ही नहीं सकते, क्योंकि पालि विवरणों में बाहिय दारुचीरिय को, जो बाहिय राष्ट्र के निवासी थे, सात बार सिन्धु नदी में होकर समुद्री यात्रा करते हुए दिखाया गया है। अतः बाहिय राष्ट्र वाहीक के समान वाल्हीक में भी हो सकता है। अर्थात् सिन्धु नदी के इस पार या उस पार भी।

केक, केकक या केकय जनपद का वर्णन हमें कई जातकों में मिलता है। यहाँ के निवासियों को 'केकका' कह कर पुकारा गया है। केकक लोगों की दो शाखाएँ थीं, जिनमें से एक उत्तरापथ में बसी हुई थी और दूसरी दक्षिण के महिंसक मण्डल में। जातक के अनुसार केकक (केकय) जनपद की राजधानी केकक (केकय) नामक नगरी ही थी और उसकी गणना जम्बुद्वीप के तीन अत्यन्त प्रसिद्ध नगरों में की जाती थी। शेष दो नगर थे उत्तर-पंचाल और इन्दपत्त।[1] महिंसक मण्डल के अन्तर्गत केककों के राजा अज्जुन सहस्सबाहु (अर्जुन सहस्रबाहु-

---

१. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २१३; रामायण (२।६७।७ "केकेयेषु··· पुरे राजगृहे रम्ये" तथा वहीं "गिरिव्रजं पुरवरं·····।" २।६८।२२) में केकय जनपद की राजधानी गिरिव्रज या राजगृह नामक नगरी बताई गई है जिसे कनिंघम ने झेलम नदी के समीप स्थित गिर्जाक या जलालपुर नामक स्थान से मिलाया है। एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ १८८। यह नगरी इस प्रकार अपने ही नाम वाली मगध की प्रसिद्ध राजधानी से पृथक् थी, जिसे, जैसा हम पहले देख चुके हैं, "मगधानं गिरिब्बजो" कहकर पालि साहित्य में

कार्तवीर्य अर्जुन) का वर्णन सरभंग जातक और संकिच्च जातक में है। उत्तरापथ का केकक (केकय) जनपद सम्भवतः व्यास और सतलज नदियों के बीच में स्थित था।

कोकनद जनपद का वर्णन एक जातक-कथा में आया है और यहाँ उसे वीणा बनाने की कारीगरी के लिए प्रसिद्ध बताया गया है।[1] पाजिटर ने इस कोकनद जनपद को मार्कण्डेय पुराण के कोकंकन जनपद से मिलाया है, जो उत्तर-पश्चिम भारत में स्थित था। यूआन् चुआङ ने "फ-ल-न" (बन्नू) की पश्चिमी सीमा पर स्थित "कि-क्यङ्ग्-न" नामक स्थान की यात्रा की थी।[2] सुरेन्द्रनाथ मजूमदार ने इस "कि-क्यङ्ग्-न" नामक स्थान को मार्कण्डेय पुराण के उपर्युक्त कोकंकन जनपद से मिलाया है।[3] इस प्रकार जातक के कोकनद जनपद, मार्कण्डेय पुराण के कोकंकन और यूआन् चुआङ के यात्रा-विवरण में निर्दिष्ट "कि-क्यङ्ग्-न" को एक स्थान माना जा सकता है। स्टीन ने "कि-क्यङ्ग्-न" को वर्तमान वजीरि-स्तान से मिलाया था। अतः यही स्थिति इस आधार पर पालि के कोकनद जनपद की भी होगी।

उद्दियान (सं० उद्यान) जनपद का उल्लेख पालि साहित्य में केवल प्रासंगिक रूप से आया है। महावाणिज जातक में उद्दियान के कम्बलों का उल्लेख है। "उद्दियानि च कम्बला।" यह उद्दियान जनपद वस्तुतः संस्कृत का उद्यान प्रदेश ही है। स्वात की घाटी से लेकर पूर्व में सिन्धु नदी तक यह प्रदेश फैला था। 'अश्वक' प्रदेश भी सम्भवतः यही कहलाता था और ग्रीक

पुकारा गया है। यूआन् चुआङ ने एक तीसरी राजगृह का भी उल्लेख किया है, जो बलख (पो-हो) में स्थित थी। देखिये बील : बुद्धिस्ट रिकार्ड्स् ऑव दि वेस्टर्न वर्ल्ड, जिल्द पहली, पृष्ठ ४४।

१. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २८१-२९०।

२. कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ९९; मिलाइये वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २६२।

३. देखिये कनिंघम-कृत "एन्शियन्ट ज्योग्रफी ऑव इण्डिया" में उनके द्वारा लिखित टिप्पणियाँ, पृष्ठ ६७९।

लोगों ने इसी का "अस्सकेनस" या "अस्सकेनोइ" नाम से उल्लेख किया है। फा-ह्यान ने उद्यान प्रदेश का उल्लेख करते हुए उसे उत्तर भारत का एक अंग बताया है। इस चीनी यात्री ने यहाँ ५०० संघाराम देखे थे, जहाँ हीनयान सम्प्रदाय के भिक्षु निवास करते थे। फा-ह्यान ने उद्यान प्रदेश में भगवान् बुद्ध के जाने का उल्लेख किया है। उसने यहाँ पर एक पत्थर भी देखा था, जिस पर भगवान् बुद्ध ने अपने वस्त्र सुखाये थे। बुद्ध ने अपने चरण-चिह्न भी, फा-ह्यान के कथनानुसार इस प्रदेश में छोड़े थे।[1] यूआन्-चुआङ ने भी उद्यान प्रदेश की यात्रा की और उस समय यहाँ महायान धर्म का आधिक्य देखा।[2]

उत्तर कालीन बौद्ध तान्त्रिक धर्म में 'ओडियान' नामक स्थान या प्रदेश की ख्याति एक सिद्ध-पीठ के रूप में बहुत अधिक रही है। परन्तु उसकी स्थिति के सम्बन्ध में मतैक्य नहीं है। यदि यह तान्त्रिक 'ओडियान' हमारी पालि का 'उद्दियान' और संस्कृत का उद्यान ही हो, तब तो उसका स्वात की घाटी में होना अनिवार्य है; परन्तु अन्य कारणों को ध्यान में रखते हुए (जिनका यहाँ प्रसंग नहीं है) कुछ विद्वानों ने उसे उड़ीसा, बंगाल या असम में भी स्थित माना है।

सिन्धु और सोवीर (सं० सौवीर) देश बुद्ध-काल में, विशेषतः व्यापार की दृष्टि से, अत्यन्त महत्वपूर्ण जनपद थे। "सिन्धवा" जनों का उल्लेख अपदान में है। सारत्थप्पकासिनी[3] में सिन्धु और सोधिक (सोवीर) देश के राजा सेरि का उल्लेख किया गया है। सिन्धु देश को जातक में अच्छी नस्ल के तेज दौड़ने वाले घोड़ों के लिये विशेषतः प्रसिद्ध बताया गया है।[4] सिन्धु नदी की ख्याति भी अच्छी नस्ल के घोड़ों के लिए थी, यह हम द्वितीय परिच्छेद में देख चुके है।

सिन्धु देश के ऊपर सोवीर देश स्थित था। दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त

---

१. गाइल्स : दि ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ११।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ २२५।

३. जिल्द पहली, पृष्ठ ९०।

४. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १२४, १७८, १८१; जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३१, २८७; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २५९-२६०; जिल्द छठी, पृष्ठ २६५।

में सोवीर देश का उल्लेख है और उसकी राजधानी रोरुक नामक नगरी बताई गई है। यहीं कहा गया है कि राजा रेणु के ब्राह्मण मंत्री महागोविन्द ने इस नगर की स्थापना की थी। आदित्त-जातक में भी सोवीर राष्ट्र और उसकी राजधानी रोरुव (दीघ-निकाय का रोरुक) का उल्लेख है।[1] दिव्यावदान[2] में भी रोरुक नगर का उल्लेख है, जिसे हम जातक के रोरुव और महागोविन्द-सुत्त के रोरुक से मिला सकते हैं। भगवान् बुद्ध के शिष्य स्थविर तिस्स, जिनकी गाथाएं थेरगाथा में सन्निहित हैं, रोरुक के राजा के पुत्र थे। सोवीर प्रदेश को, जैसा हम पहले देख चुके हैं, सिन्धु और झेलम नदियों के बीच का या सिन्धु नदी के पूर्व में मुल्तान तक फैला हुआ प्रदेश मान सकते हैं।[3] कनिंघम ने उसे सोफिर और ओफिर से मिलाते हुए गुजरात के वद्रि या इडर नामक जिले से मिलाया था[4], जो अब प्रामाणिक नहीं माना जाता। इसका कारण यह है कि कनिंघम ने पालि साहित्य के रोरुक नगर का कुछ ध्यान अपनी उक्त पहचान को करते समय नहीं रक्खा था और वैसे भी सोवीर देश को गुजरात में रखने की कोई संगति नही है। बाद की खोजों से यह निश्चित जान पड़ता है कि बुद्धकालीन रोरुव या रोरुक नगर आधुनिक रोरा या रोरी गाँव ही है, जो सिन्धु देश के उत्तरी भाग में स्थित है। इस नगर का उल्लेख स्वयं कनिंघम ने यूआन् चुआङ् द्वारा निर्दिष्ट "पि-चेन्-पी-पु-लो" या अभिजनपुर के प्रसंग में किया है।[5]

सुरट्ठ (सुराष्ट्र) जनपद का उल्लेख अपदान[6] में है। इन्द्रिय जातक में भी

१. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४७०।

२. पृष्ठ ५४४-५४५।

३. देखिये दूसरे परिच्छेद में उत्तरापथ का विवेचन।

४. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५६९।

५. देखिये उनकी "एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया", पृष्ठ २९४-२९७; मिलाइये वाटर्स:औन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २५३।

६. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३५९।

उसका निर्देश किया गया है। यहाँ उसकी सीमा पर सातोडिका नामक नदी बहती दिखाई गई है। सुरट्ठ को हम आधुनिक काठियावाड़ से मिला सकते हैं, यद्यपि इसका नाम "सुट्ठ" केवल "सूरत" के रूप में, जो उसका अरबी प्रतिरूप है, आज बच गया है। सुरट्ठ जनपद का एक प्रसिद्ध बन्दरगाह भरुकच्छ था, जो काठियावाड़ का आधुनिक भड़ौंच ही है। सुसन्धि जातक में भरुकच्छ बन्दरगाह का उल्लेख है और सग्ग की वाराणसी से भरुकच्छ तक की यात्रा का वर्णन किया गया है। मिलिन्द-पञ्हो के अनुमानपञ्हो में भी भारुकच्छ (भरुकच्छ) का उल्लेख आया है। भरुकच्छ के व्यापारियों का समुद्री मार्ग से माल लेकर सुवण्णभूमि (दक्षिणी बर्मा) तक व्यापारार्थ जाना भी जातक (जिल्द तीसरी, पृष्ठ १८८) में वर्णित है। पश्चिम में यहाँ के व्यापारी फ़ारिस की खाड़ी तक जाते थे। स्थलीय मार्ग के द्वारा भरुकच्छ माहिष्मती से जुड़ा हुआ था। "पेरीप्लस ऑव दि इरीथ्रियन सी"[१] में भरुकच्छ को बेरीगाज़ा कह कर पुकारा गया है और ग्रीक लोगों को यह बरीगाज़ा तथा बरगोज़ा के नामों से विदित था।[२] भरु जातक के अनुसार भरुकच्छ भरु नामक जनपद में स्थित था। दिव्यावदान[३] में भरु जनपद को 'भिरु' और भरुकच्छ को 'भिरुक' या 'भिरुकच्छ' कह कर पुकारा गया है। 'भरु' जनपद को हमें सुरट्ठ के अन्तर्गत ही मानना पड़ेगा। भरुकच्छ नगर में बुद्ध-धर्म का प्रचार भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में भी काफी हो गया प्रतीत होता है। स्थविर मलित-वम्भ, जिनके उद्गार थेरगाथा में सन्निहित हैं, भरुकच्छ के एक ब्राह्मण-कुल में उत्पन्न हुए थे।[४] इसी प्रकार एक अन्य स्थविर वड्ढ भी भरुकच्छ के एक साधारण कुल में उत्पन्न हुए थे। उनकी माता बचपन में ही उन्हें परिवार वालों को सौंप कर भिक्षुणी हो गई थी।[५] सुरट्ठ मुख्यतः एक व्यापारिक देश था, जिसकी समृद्धि का

---

१. पृष्ठ ४०, २८७।

२. मेकक्रिण्डल : इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन क्लासीकल लिटरेचर, पृष्ठ ७८।

३. पृष्ठ ५७६।

४. थेरगाथा, पृष्ठ ४५ (हिन्दी अनुवाद)।

५. वहीं, पृष्ठ १०६।

वर्णन जातक[1] और अपदान[2] में किया गया है। तोलेमी को सुरट्ठ जनपद सिरस्त्रीन के नाम से विदित था और ग्रीक इतिहासकार स्ट्रेबो ने उसे सरोस्टोस कह कर पुकारा है। यूआन् चुआङ् ने सुरट्ठ को "सु-ल-च" कह कर पुकारा है और उसके विस्तार को ४००० 'ली' अर्थात् करीब ६६७ मील बताया है।[3] जातक में द्वारका[4] या द्वारवती[5] नगरी का उल्लेख है। इसे हमें सुरट्ठ या सौराष्ट्र जनपद का ही एक नगर मानना चाहिए।

घट जातक के अनुसार द्वारवती (द्वारका) नगरी के एक ओर समुद्र था और दूसरी ओर पर्वत।[6] इन दोनों के बीच यह सुदृढ़ नगरी बसी हुई थी। आज भी द्वारिका कस्बा पश्चिमी समुद्र के किनारे बसा हुआ है। यह एक महत्वपूर्ण बात है कि जातक में द्वारका को कृष्ण वासुदेव के (कण्हस्स वासुदेवस्स) निवास से सम्बद्ध किया गया है। कहा गया है कि एक बार कृष्ण वासुदेव जब द्वारवती से अपने उद्यान की ओर जा रहे थे तो मार्ग में उन्होंने जम्बावती नामक चाण्डाली को देखा और उससे विवाह कर लिया। बाद में उसके एक पुत्र हुआ जिसका नाम सिवि रक्खा गया और वह अपने पिता की मृत्यु के बाद द्वारवती या द्वारका का राजा हुआ।[7] वस्तुतः पालि की द्वारका या द्वारवती को देवगब्भा और उपसागर के दस पुत्रों ने बसाया था, जिनमें से दो के नाम वासुदेव और बलदेव थे। देवगब्भा और उपसागर के दस पुत्र देवगब्भा की सेविका नन्दगोपा और उसके पति अन्धकवेण्हु के पुत्रों के रूप में पाले गये थे, अतः उनका नाम

---

१. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४६३; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १३३।

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३५९।

३. वाटर्स : ऑन् यूआन् चुआङस् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २४८-२४९; कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ३७३।

४. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ८५।

५. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ८२, ८३।

६. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ८२, ८३, ८४, ८५ (पालि टैक्स्ट सोसायटी संस्करण); हिन्दी अनुवाद—चतुर्थ खण्ड, पृष्ठ २८४।

७. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ४२१।

'अन्धकवेण्हुदासपुत्ता' पड़ गया था । वासुदेव और बलदेव, उन्हीं दस पुत्रों में से थे जिन्होंने द्वारवती को जीत कर उसे अपनी राजधानी बनाया ।[1] अतः यह निश्चित जान पड़ता है कि काठियावाड़ के पश्चिमी किनारे पर स्थित आधुनिक द्वारिका नगरी ही पालि की 'द्वारका' या 'द्वारवती' है। महाभारत और पुराणों की 'द्वारिका' या 'द्वारावती' भी निश्चयतः यही नगरी है। पुराणों के वर्णनानुसार कृष्ण जब मगध के राजा जरासन्ध को पराजित न कर सके तो वे मथुरा छोड़कर यहाँ चले आये थे, और अपना राज्य स्थापित किया था। इसी कहानी का एक विकृत या परिवर्तित रूप हमें जातक में मिलता है। पेतवत्थु[2] में कहा गया है "यस्स अत्थाय गच्छाम कम्बोजं धनहारका. . . यानं आरोपयित्वान खिप्पं गच्छाम द्वारकं।' इससे स्पष्ट विदित होता है कि द्वारका नगरी और कम्बोज राष्ट्र व्यापारिक मार्ग के द्वारा एक दूसरे से जुड़े हुए थे। पेतवत्थु की अट्ठकथा[3] से यह भी ध्वनित होता है कि द्वारवती कम्बोज राष्ट्र की ही एक नगरी थी। मललसेकर ने सुझाव दिया है कि पेतवत्थु और उसकी अट्ठकथा में 'कम्बोज' से तात्पर्य कंसभोज से है, जो 'अन्धकवेण्हुदासपुत्ता' का देश था।[4] कंसभोज या कंसभोग के सम्बन्ध में हम घट जातक में देखते ही हैं कि वह उत्तरापथ का एक भाग था जिसकी राजधानी असितंजन नामक नगरी थी और जहाँ महाकंस नामक राजा राज्य करता था।[5] पालि विवरणों की संगति को देखते हुए हमें डा० मललसेकर का सुझाव युक्तियुक्त जान पड़ता है। कम्बोज में द्वारका के होने पर अनावश्यक बल दे कर और कम्बोज को पामीर प्रदेश में मान कर दरवाज़ के रूप में द्वारका को खोजने की जो परिकल्पना डा० मोतीचन्द्र ने की है, उसका निराकरण हम पहले कर ही चुके हैं।

ऊपर हम जातक के आधार पर कह चुके हैं कि एक बार जब कृष्ण

---

१. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ७९-८२।

२. पृष्ठ १८ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

३. पृष्ठ ११३।

४. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ११२६।

५. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ७९।

वासुदेव द्वारवती से अपने उद्यान की ओर आ रहे थे, तो मार्ग में उन्होंने जम्बावती नामक स्त्री को देखा और उससे विवाह कर लिया। वर्तमान द्वारिका कस्बे से आगे २० मील की दूरी पर कच्छ की खाड़ी में एक छोटा सा टापू है। उसमें एक दूसरी द्वारिका बसी हुई है, जिसे बेट द्वारिका कहते हैं। अनुश्रुति है कि यहाँ भगवान् कृष्ण सैर करने के लिये आया करते थे। निश्चय ही जिस उद्यान का जातक में उल्लेख है, वह यह बेट द्वारिका ही हो सकती है। यह एक सात मील लम्बा पथरीला टापू है और इसकी प्राकृतिक शोभा रमणीय है। यह एक उल्लेखनीय और अत्यन्त महत्वपूर्ण बात है कि द्वारिका और बेट द्वारिका दोनों नगरों में राधा, रुक्मिणी और सत्यभामा के साथ-साथ जामवन्ती के भी मन्दिर पाये जाते हैं। कहने की आवश्यकता नही कि यह जामवन्ती पालि की जम्बावती ही है।

लाल (लाट) देश का उल्लेख महावंस[१] में है। इसे मध्य और दक्षिण गुजरात से मिलाया गया है। महावंस के वर्णनानुसार लाल देश का एक नगर सिंहपुर (सीहपुर) नामक था, जहाँ से विजय ने सिंहल के लिये प्रस्थान किया था।[२]

चेतिय जातक में चेदि नरेश उपचर या अपचर के पाँच पुत्रों में से एक के द्वारा सीहपुर नामक नगर के बसाये जाने का उल्लेख है। इस सीहपुर (सिंहपुर) को लाल देश के उपर्युक्त सीहपुर नामक नगर से मिलाया गया है।[३] यहाँ यह ध्यान रखना आवश्यक है कि एक सीहपुर नामक नगर उत्तरी पंजाब में भी था, जिसकी यात्रा यूआन् चुआङ् ने की थी और जिसका नाम उसने "सिंग्-हु-लो" दिया है तथा तक्षशिला से जिसकी दूरी ७०० 'ली' या करीब ११७ मील बताई है।[४] चेतिय जातक में सीहपुर को सोत्थिवती नगर से पश्चिम दिशा में स्थित बताया गया है।

---

१. ६।५ (हिन्दी अनुवाद)।

२. महावंस ६।३५; ८।६-७ (हिन्दी अनुवाद)।

३. हेमचन्द्र रायचौधरी : पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ १३०, पद-संकेत २।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ २४८; कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ १४४।

अतः उसका पश्चिमी प्रदेश में होना प्रायः निश्चित है और उसे हम पूर्वोक्त दोनों नगरों में से किसी से मिला सकते हैं।

सूनापरान्त (पालि सुनापरन्त) बुद्ध-काल में एक सुविदित जनपद था। यह अपरान्त (पालि अपरन्त) प्रदेश का एक अंग था, या कुछ अवस्थाओं में इसे उसके साथ एकाकार भी किया जा सकता है। भिक्षु पूर्ण सूनापरान्त जनपद के सुप्पारक नगर के निवासी थे। पाँच सौ गाड़ियाँ लेकर व्यापारार्थ श्रावस्ती आये थे। परन्तु भगवान् बुद्ध के उपदेशों से प्रभावित होकर भिक्षु हो गये। बाद में शास्ता से आदेश लेकर अपने देश में धर्म-प्रचारार्थ गये। सूनापरान्त जनपद के मनुष्य क्रोधी और प्रचण्ड स्वभाव के होते थे, ऐसा हमें मज्झिम-निकाय के पुण्णोवाद-सुत्तन्त और संयुत्त-निकाय के प्रण्ण-सुत्त से विदित होता है। स्थविर पूर्ण की सहिष्णुता की पूर्ण परीक्षा लेकर ही भगवान् ने उन्हें सूनापरान्त जनपद में धर्म-प्रचारार्थ जाने की अनुमति दी। अपनी मातृभूमि सूनापरान्त में जाकर स्थविर पूर्ण ने मंकुलकाराम नामक विहार में निवास करते हुए धर्म-प्रचार का कार्य किया। सूनापरान्त जनपद के समुद्र-गिरि विहार, मातुगिरि और पदचैत्य जैसे कई स्थानों के और सच्चबन्ध या सच्चबद्ध पब्बत के नाम संयुत्त-निकाय की अट्ठकथा (सारत्थप्पकासिनी) में दिये गये हैं। हम पहले, सारत्थप्पकासिनी के साक्ष्य पर, देख चुके हैं कि स्थविर पूर्ण के निमन्त्रण पर भगवान् बुद्ध मंकुलकाराम गये थे, परन्तु केवल सात दिन तक वहाँ ठहर सके थे। मंकुलकाराम को मंकुल पर्वत से, जहाँ भगवान् ने अपनी छठी वर्षा बिताई थी, मिलाना कहाँ तक ठीक है, इसकी मीमांसा हम द्वितीय परिच्छेद में भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के भूगोल का विवेचन करते समय कर चुके हैं। यद्यपि मललसेकर द्वारा मंकुलकाराम को मंकुल पर्वत मानने के हम काफी हद तक पक्ष में हैं और इस प्रकार इस पर्वत को हम सूनापरान्त जनपद में रक्खेंगे, परन्तु दे ने मंकुल या मकुल पर्वत को जो वर्तमान कलुहा पहाड़ (बुद्ध-गया से २६ मील दक्षिण में, बिहार के हजारीबाग जिले में) से मिलाया है,[1] वह भी काफी विचारोत्तेजक और अधिक सम्भाव्य भी है और इस ओर अधिक खोज को प्रेरणा देने वाला है। मंकुलकाराम के समीप ही

१. ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडिवल इण्डिया, पृष्ठ १२१।

व्यापारियों का एक गाँव था, जहाँ स्थविर पुण्ण के छोटे भाई चुल्ल पुण्ण रहते थे। इस गाँव के निवासियों ने एक 'गन्धकुटी' और 'चन्दनशाला' बनवाई थी जहाँ, सारत्थप्पकासिनी के अनुसार, भगवान् मंकुलकाराम जाते समय ठहरे थे। स्थविर इसिदिन्न की जन्मभूमि भी सूनापरान्त जनपद बताया गया है।

सूनापरान्त जनपद की राजधानी सुप्पारक नामक नगरी थी, जिसे आधुनिक सोपारा से, जो बम्बई के ३७ मील उत्तर में जिला ठाणा में है, मिलाया गया है। 'उदान' के बोधि-वग्ग में हम बाहिय दारुचीरिय नामक साधु को सुप्पारक तीर्थ में वास करते देखते हैं। सुप्पारक बुद्धकालीन भारत का एक अत्यन्त प्रसिद्ध बन्दरगाह था। दीपवंस[1] और महावंस[2] में इस बन्दरगाह का उल्लेख है और इसी प्रकर उदान[3] में भी। धम्मपदट्ठकथा[4] में सुप्पारक की दूरी श्रावस्ती से १२० योजन बताई गई है। पालि साहित्य की परम्परा में भगवान् बुद्ध के सुप्पारक जाने का कोई उल्लेख नहीं है। परन्तु महाकवि अश्वघोष ने कहा है कि भगवान् बुद्ध ने शूर्पारक नगर में जाकर वहाँ के स्तवकर्णी नामक श्रेष्ठी को उपदेश दिया था जिसने मुनिवर (बुद्ध) के लिये एक गगनचुम्बी चन्दन-विहार बनवाया।[5] सूनापरान्त जनपद को महापंडित राहुल सांकृत्यायन ने वर्तमान थाना (ठाणा) और सूरत के जिलों तथा उनके आसपास के प्रदेश से मिलाया है,[6] जो ठीक जान पड़ता है। सासनवंस (जो उन्नीसवी शताब्दी में बर्मा में लिखी गई रचना है) के आधार पर बर्मी लोग सूनापरान्त जनपद को अपने देश में स्थित इरावती नदी के आसपास पगान के समीप का प्रदेश मानते हैं,[7] जिसके लिये पूर्वकालीन पालि परम्परा में कोई

---

१. पृष्ठ ५५।

२. ६।४६ (हिन्दी अनुवाद)।

३. पृष्ठ ११ (हिन्दी अनुवाद)।

४. जिल्द दूसरी, पृष्ठ २१३।

५. बुद्ध-चरित २१।२२-२३।

६. बुद्धचर्या, पृष्ठ ३७६, पद-संकेत ३; पृष्ठ ५४३।

७. देखिये मललसेकर : डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १२११।

आधार प्राप्त करना कठिन है। हाँ, यह सम्भव है कि भारतीय प्रदेश (सूनापरान्त) के नाम पर ही पगान का यह नाम प्राचीन काल में रक्खा गया हो।

महारट्ठ (महाराष्ट्र प्रदेश) में स्थविर महाधर्मरक्षित को धर्म-प्रचारार्थ भेजा गया था।[1] पालि के महारट्ठ को हम आधुनिक महाराष्ट्र से मिला सकते हैं। पालि निकायों में महारट्ठ के सम्बन्ध में कोई अधिक महत्वपूर्ण सूचना नहीं दी गई है।

महिंसक राष्ट्र का उल्लेख कई जातक-कथाओं में है।[2] वहाँ सकुल नामक नगर को उसकी राजधानी बताया गया है। जातक में महिंसक राष्ट्र को मगध राष्ट्र से अलग देश बताया गया है। जैसा हम दक्षिणापथ के प्राकृतिक भूगोल में देख चुके हैं, कण्णपेण्णा या कण्णवेण्णा नदी इस प्रदेश में होकर बहती थी और इसी में चन्दक नामक पर्वत था। महिंसक राष्ट्र की आधुनिक पहचान के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है। कुछ विद्वानों ने इसे माहिष्मती से मिलाया है। सम्भवतः इसी आधार पर महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने महिष-मण्डल की आधुनिक सीमाओं का उल्लेख करते हुए उसके बारे में लिखा है, "महेश्वर (इन्दौर राज्य) राज्य से ऊपर का प्रान्त, जो कि विन्ध्याचल और सतपुड़ा की पहाड़ियों के बीच में पड़ता है।"[3] हम महिंसक राष्ट्र को माहिष्मती से इसलिये नहीं मिला सकते कि जातक के विवरण में उसके अन्दर बहने वाली नदी का नाम कण्णपेण्णा या कण्णवेण्णा बताया गया है, न कि नर्मदा। माहिष्मती नर्मदा नदी पर स्थित थी। कुछ दूसरे विद्वान् महिंसक राष्ट्र को मैसूर या खानदेश से मिलाना अधिक उपयुक्त समझते हैं। परन्तु इसके लिये भ: कोई ठोस कारण नहीं दिया जाता। वस्तुतः जब तक कण्णपेण्णा नदी और चन्दक पर्वत की आधुनिक स्थितियों की पूरी जाँच-पड़ताल नहीं हो जाती, तब तक पालि के महिंसक मण्डल की सीमा और विस्तार के बारे में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता। विनय-पिटक की अट्ठकथा (समन्तपासादिका)[4] के अनुसार तृतीय

---

१. महावंस १२।५ (हिन्दी अनुवाद)।

२. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ३५६; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १६२, ३३७।

३. बुद्धचर्या, पृष्ठ ५३७, पद-संकेत २।

४. जिल्द पहली, पृष्ठ ६३।

बौद्ध संगीति के बाद महादेव स्थविर को महिसक मण्डल में धर्म-प्रचारार्थ भेजा गया था। महावंस[1] और दीपवंस[2] में भी इस बात का उल्लेख है। जैसा हम पहले देख चुके हैं, महिसक राष्ट्र की राजधानी सकुल नामक नगरी थी, जिसे एक जातक-कथा में शिकारियों के एक गाँव के पास स्थित बताया गया है। मानुसिय झील इसके पास ही थी।[3] इस राष्ट्र में जाड़े का मौसम अधिकतर रहता था।

वनवास या वनवासि प्रदेश में, समन्तपासादिका[4] के अनुसार, स्थविर रक्षित को धर्म-प्रचारार्थ भेजा गया था। महावंस[5] और दीपवंस[6] में भी इस घटना का उल्लेख है। वनवास या वनवासि प्रदेश को हम आधुनिक उत्तरी कनारा के अन्दर मान सकते हैं, क्योंकि यहाँ आज इस नाम का एक पुराना गाँव भी है। इस स्थान पर कदम्बवंशीय कीर्तिवर्मा के दो अभिलेख भी मिले हैं।[7] सासनवंस[8] में, जो उन्नीसवीं शताब्दी में बर्मा में लिखित एक रचना है, वनवासि देश को दक्षिण बर्मा में प्रोम के आसपास स्थित बताया गया है। निश्चयतः समन्तपासादिका और पूर्ववर्ती वंस-साहित्य के वनवास या वनवासि प्रदेश से इसकी कोई संगति नहीं है। परन्तु, जैसा हम सूनापरान्त के सम्बन्ध में कह चुके हैं, यह बहुत सम्भव है कि भारतीय वनवास प्रदेश की अनुस्मृति में बर्मा के एक प्रदेश का प्राचीन काल में यह नाम रक्खा गया हो। श्री लंका, बर्मा, और थाई देश तक में यह प्रवृत्ति काफी मात्रा में पाई जाती है। वीरपुरुषदत्त के नागार्जुनीकोण्ड-अभिलेखों में वनवासि प्रदेश का उल्लेख है। इसे हम पालि के वनवास या वनवासि से अभिन्न मान सकते हैं, क्योंकि दोनों का ही सम्बन्ध दक्षिण भारत से है।

---

१. १२।३ (हिन्दी अनुवाद)।
२. ८।५
३. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३३७-३३८।
४. जिल्द पहली, पृष्ठ ६३, ६६।
५. १२।४ (हिन्दी अनुवाद), मिलाइये वहीं १२।३१ भी।
६. ८।६।
७. एपिग्रेफिया इण्डिका, जिल्द सोलहवीं, पृष्ठ ३५३।
८. पृष्ठ १२।

हम ऊपर देख चुके हैं कि भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में गोदावरी के तट पर दक्षिणापथ में अस्सक और अलक नामक दो राज्य थे, जो सुत्त-निपात की अट्ठकथा के अनुसार अन्धक (आन्ध्र) राज्य कहलाते थे। इनमें अलक (या मूलक) राज्य गोदावरी के ऊपर की ओर था और अस्सक उसके दक्षिण की ओर। गोदावरी दोनों राज्यों की सीमा में होकर बहती थी। इनके अतिरिक्त सेरिवाणिज जातक में सेरिव रट्ठ का उल्लेख है[1], जिसे डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने श्रीराज्य या मैसूर के गंगा-राज्य से मिलाने का प्रस्ताव किया है[2]। जातक के विवरण के अनुसार इस राज्य के व्यापारी तेलवाह नामक नदी को पार करने के बाद उसके दूसरे किनारे पर स्थित अन्धपुर नामक नगर में पहुँचे थे।[3] दक्षिणापथ के प्राकृतिक भूगोल का विवेचन करते समय हम देख चुके हैं कि तेलवाह नदी को तेल, तेलनगिरि या तुंगभद्रा-कृष्णा से मिलाया गया है और इस प्रकार प्रत्येक दशा में हमें अन्धपुर को आन्ध्र राज्य में मानना पड़ेगा[4]। डा० हेमचन्द्र रायचौधरी ने अन्धपुर को आधुनिक विजयवाड़ा (बेजवाड़ा) या उसके किसी पड़ोसी नगर से मिलाने का प्रस्ताव किया है[5]। अन्धक और दमिल (तमिल) लोगों की भाषा को सुमंगलविलासिनी[6] में "मिलक्खाणं भासा" (म्लेच्छों की भाषा) कहकर पुकारा गया है। इससे पता चलता है कि इन लोगों को पालि परम्परा विदेशी या अपरिचित भाषा बोलने वाला समझती थी और उसे इनके सम्बन्ध में अधिक प्रत्यक्ष ज्ञान नहीं था।

जैसा हम पहले देख चुके हैं, "दमिल विसय" को पेतवत्थु की अट्ठकथा में

---

१. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १११।

२. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ९२।

३. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १११।

४. परन्तु डा० लाहा ने "ज्योग्रफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म", पृष्ठ २४ में तथा भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य ने "बुद्धकालीन भारत का भौगोलिक परिचय", पृष्ठ ६ में इस नगर को मज्झिम-देस के अन्तर्गत रक्खा है, जिसे चिन्त्य ही कहा जा सकता है।

५. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ९२।

६. जिल्द पहली, पृष्ठ १७६।

दक्षिणापथ में बताया गया है। "अपदान"[1] में भी दमिल राष्ट्र का उल्लेख है। अकित्ति जातक में दमिल रट्ठ को कावीरपट्टन के आसपास का राज्य बताया गया है। धम्मपदट्ठकथा[2] में भी इस तथ्य की पुष्टि है। कावीरपट्टन दमिल रट्ठ का मुख्य बन्दरगाह था। इसके पास ही कारदीप नामक एक द्वीप भी बताया गया है।[3]

सतियपुत्त, केरलपुत्त, पण्डिय और चोल राष्ट्रों का उल्लेख स्वतन्त्र जनपदों के रूप में हमें सर्वप्रथम अशोक के अभिलेखों में मिलता है। वस्तुतः इन्हें भी "दमिल" राष्ट्र की परिधि में रक्खा जा सकता है। जहाँ तक पालि निकायों और भगवान् बुद्ध के जीवन-काल की परिस्थितियों से सम्बन्ध है, इन जनपदों के सम्बन्ध में अधिक परिचय की सूचना हमें नहीं मिलती।

जातक[4] में एक जगह भेण्णाकट नामक जनपद का उल्लेख है। इसे नासिक के अभिलेखों के "वेण्णाकटक" से मिलाकर कोल्हापुर के आसपास का प्रदेश माना जा सकता है। जबलपुर (मध्य-प्रदेश) से १४ मील दूर नर्मदा नदी के तट पर भेड़ाघाट नामक प्रसिद्ध स्थान है जहाँ अन्य अनेक मूर्तियों के साथ एक मूर्ति कुशाण-काल की भी मिली है। यह भी सम्भव है कि पालि का भेण्णाकट यह भेड़ाघाट ही हो। अन्य कोई सूचना इस भेण्णाकट जनपद के सम्बन्ध में नहीं मिलती।

गोदावरी नदी से लेकर महानदी तक का प्रदेश बुद्ध-काल में कलिंग जनपद कहलाता था। इस प्रकार इस जनपद के दक्षिण में आन्ध्र (अन्धक) राष्ट्र था और उत्तर में उत्कल (उक्कल) प्रदेश। दूसरे शब्दों में, बुद्ध-काल में उड़ीसा का उत्तरी भाग उक्कल (उत्कल) कहलाता था और दक्षिणी भाग कलिंग। जैसा हम पहले देख चुके हैं, दीघ-निकाय के महागोविन्द-सुत्त में कलिंग राज्य, उसके राजा सत्तभू और राजधानी दन्तपुर का उल्लेख है। इसी प्रकार दीघ-निकाय के महापरिनिब्बाण-सुत्त तथा संयुत्त-निकाय के ओकिलिनी-सुत्त में भी कलिंग राज्य और उसकी राजधानी

---

१. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३५८-३५९।
२. जिल्द चौथी, पृष्ठ ५०।
३. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ २३८।
४. जिल्द छठी, पृष्ठ २३७।

दन्तपुर का उल्लेख आया है। अनेक जातक-कथाओं[1] में भी कलिंग और उसकी राजधानी दन्तपुर का उल्लेख है तथा निद्देस[2] में भी। इन सब से मालूम पड़ता है कि दन्तपुर काफी प्राचीन और सुविदित नगर था। महापरिनिब्बाण-सुत्त में भगवान् बुद्ध की डाढ़ (दाठा) के कलिंग देश के राजा के राज्य में पूजित होने का उल्लेख है। सिंहली वंश-ग्रन्थों से पता चलता है कि भगवान् बुद्ध के परिनिर्वाण के बाद ही उनका दन्त-धातु कलिंग देश में ले जाया गया था, जहाँ के राजा ब्रह्मदत्त ने उस पर एक चैत्य की स्थापना की थी। उत्तरकालीन "दाठावंस" के अनुसार लंका के राजा कीर्तिश्री मेघवर्ण के शासन-काल में यह दन्त-धातु चतुर्थ शताब्दी ईसवी में दन्तपुर से लंका के अनुराधपुर नगर में ले जाया गया और आज वह काण्डी के एक भव्य चैत्य में सुरक्षित बताया जाता है। दन्तपुर की आधुनिक पहचान अभी पूर्ण निश्चित ढंग से नहीं की जा सकी है। कनिंघम ने इसे गोदावरी के तट पर स्थित राजामहेन्द्री नामक स्थान से मिलाया था।[3] कुछ विद्वानों के मतानुसार दन्तपुर सम्भवतः मेदिनीपुर जिले का आधुनिक दाँतन नामक स्थान है। गंजाम जिले के दन्तवक्त्र नामक जिले के रूप में प्राचीन दन्तपुर नगर की स्मृति सुरक्षित है, ऐसा डा० हेमचन्द्र रायचौधरी का अभिमत है।[4] परन्तु वस्तुतः प्राचीन कलिंग राज्य की राजधानी दन्तपुर वर्तमान जगन्नाथ पुरी ही है, ऐसा निश्चयतः कहा जा सकता है।[5]

कुम्भकार जातक में कलिंग देश के राजा करण्ड का उल्लेख है और उसे विदेहराज निमि का समकालीन बताया गया है। कलिंग-बोधि जातक के अनुसार कलिंग देश के एक राजकुमार ने मद्र देश की एक राजकुमारी से विवाह किया

---

१. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३६७, ३७१, ३८१; जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३७६; जिल्द चौथी, पृष्ठ २३०, २३१, २३२, २३६।

२. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३७।

३. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५९०-५९३।

४. पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, पृष्ठ ८९, पद-संकेत १।

५. देखिये दे : ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियन्ट एण्ड मेडीवल इण्डिया, पृष्ठ ५३।

था। महावंस[1] में कलिंग और वंग देश के राजाओं के बीच भी वैवाहिक सम्बन्धों के वर्णन हैं।

सातवीं शताब्दी ईसवी में चीनी यात्री यूआन् चुआङ् ने कलिंग देश की यात्रा की थी। उसने इस प्रदेश में "कुग्-यु-तो" (गंजाम) से १४०० या १५०० 'ली' (करीब २३३ से लेकर २५० मील तक) घने जंगल में यात्रा करते हुए प्रवेश किया था।[2] कलिंग देश का विस्तार यूआन् चुआङ् ने, जैसा उसने उसे उस समय देखा, ५००० 'ली' (करीब ८३३ मील) और उसकी राजधानी का २० 'ली' (करीब ३ मील) बताया है।[3] यूआन् चुआङ् ने कलिंग देश को अधिकतर एक उजड़े हुए प्रदेश के रूप में पाया था। एक महायानी सूत्र के आधार पर यूआन् चुआङ् ने कहा है कि एक पूर्वकालीन ऋषि के क्रोधपूर्वक शाप दे देने के कारण दण्डकारण्य, कलिंगारण्य और मातंगारण्य उजाड़ हो गये थे।[4] इसी प्रकार की अनुश्रुति मज्झिम-निकाय के उपालि-सुत्तन्त में, मिलिन्दपञ्हो में तथा मातंग जातक में भी निहित है।[5] कलिंगारण्य का परिचय हम दक्षिणापथ के प्राकृतिक भूगोल का विवरण देते समय दे चुके हैं। यह गोदावरी और महानदी के बीच का वन था।

वेस्सन्तर (महावेस्सन्तर) जातक में कलिंग राष्ट्र के एक दुन्निविित्थ या दुन्निविट्ठ नामक गाँव का उल्लेख है।[6] इसी जातक में दुन्निवित्थ या दुन्निविट्ठ नामक ब्राह्मण-ग्राम का उल्लेख है, जिसे जेतुत्तर नगर से बीस योजन, कोन्तिमार नदी से दस योजन और अरंजरगिरि से पाँच योजन दूर बताया गया है।[7] जातक

---

१. ६।१ (हिन्दी अनुवाद)।

२. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९८; कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रफी ऑव इंडिया, पृष्ठ ५९०।

३. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९९।

४. उपर्युक्त के समान।

५. देखिये द्वितीय परिच्छेद में दक्षिणापथ के प्राकृतिक भूगोल का विवेचन।

६. जातक, षष्ठ खण्ड, पृष्ठ ५६७-५६८ (हिन्दी अनुवाद)

७. वहीं, पृष्ठ ५५९

के इस विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि एक ही नाम के ये दो गाँव भिन्न-भिन्न थे।[१] दुन्निविट्ठ ब्राह्मण-ग्राम को हमें जेतुत्तर और चेत रट्ठ के बीच में मानना चाहिये, जब कि हमारा यह गाम निश्चित रूप से कलिंग राष्ट्र में था।

कुम्भवती नामक नगर को भी हमें कलिंग जनपद में ही मानना चाहिए। यह राजा दण्डकी की राजधानी था।[२] इस राजा की दुष्टता के कारण ही कलिंग जनपद उजाड़ हो गया था, यह हम पहले (दक्षिणापथ के विवेचन में) देख चुके हैं। इन्द्रिय जातक के अनुसार ऋषि किसवच्छ ने कुम्भवती नगर में निवास किया था।

उक्कल (उत्कल) जनपद बुद्ध-काल में महानदी और सुह्म (सुम्भ) जनपद के बीच का प्रदेश माना जाता था। इसे आधुनिक उड़ीसा का उत्तरी भाग समझना चाहिए। तपस्सु और भल्लिक नामक व्यापारी, जिन्होंने भगवान् बुद्ध को बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद, उरुवेला में राजायतन वृक्ष के नीचे, प्रथम आहार दिया था, उक्कल जनपद से ही व्यापारार्थ मध्य देश की ओर आ रहे थे।[३] हम पहले देख चुके हैं कि महावस्तु[४] में इन व्यापारियों को उत्कल देश के अधिष्ठान नामक नगर का निवासी बताया गया है और उत्कल देश को वहाँ उत्तरापथ में बताया गया है। यह बात पालि परम्परा से मेल नहीं खाती, केवल इतना कहकर डा० मललसेकर ने इसे छोड़ दिया है।[५] परन्तु डा० लाहा ने एक महत्वपूर्ण तथ्य की ओर हमारा ध्यान दिलाया है और वह यह है कि थेरगाथा की अट्ठकथा[६] में इन दोनों व्यापारियों को पोक्खरवती नगर का निवासी बताया गया है, जो गन्धार

---

१. देखिये पीछे सिवि जनपद का विवेचन।

२. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४६३; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १३४।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ७७; जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ १०३ (हिन्दी अनुवाद)।

४. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३०३।

५. देखिये उनकी डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ३३०।

६. जिल्द पहली, पृष्ठ ४८।

राष्ट्र का एक प्रसिद्ध नगर था।[1] दूसरी ओर अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा[2] में इन दोनों उपासकों को असितंजन नामक नगर का निवासी बताया गया है। घट जातक के आधार पर हम देखते हैं कि असितंजन नगर कंसभोग की राजधानी था और उत्तरापथ में था। यह बहुत सम्भव है कि तपस्सु और भल्लिक निवासी तो उत्तरापथ के ही रहे हों, परन्तु व्यापार करते हुए वे उक्कल जनपद से मज्झिम देस की ओर आ रहे हों। इस प्रकार उक्कल जनपद के उड़ीसा के उत्तरी भाग होने में और इन व्यापारियों के उत्तरापथ के निवासी होने में कोई विरोध नहीं होगा। "अपदान[3]" में ओड्ड (सं० ओड्र) और ओक्कल (सं० उत्कल) जनपदों को संयुक्त रूप से प्रयुक्त किया गया है, जिन दोनों से तात्पर्य उड़ीसा के दो भागों से ही हो सकता है। यूआन् चुआङ् के यात्रा-विवरण से भी इस तथ्य की पुष्टि होती है। यूआन् चुआङ् ने कर्णसुवर्ण (सम्भवतः रांगामाटि, मुर्शिदाबाद के समीप) से ७०० 'ली' दक्षिण-पश्चिम में यात्रा करने के पश्चात् "वु-तु", "उ-तु" या "उ-छ" प्रदेश में प्रवेश किया था।[4] यह "वु-तु" प्रदेश अपदान का ओड्ड ही है, जिसे महाभारत में 'उड्र' और मनुस्मृति में 'ओड्र' कह कर पुकारा गया है और जिसे प्लाइनी ने 'ओरितिस' कहकर पुकारा है।[5] लामा तारानाथ ने इसी देश को ओडिविश कहकर पुकारा है, जो संस्कृत "ओद्र विषय" का विकृत रूप ही है। यहाँ यह ध्यान में रखना चाहिए कि उक्कल के समान पालि अपदान का ओड्ड जनपद भी उत्तरी उड़ीसा में ही था, जब कि संस्कृत परम्परा के उत्कल, ओड्र या लामा तारानाथ के ओडिविश नामों

---

१. इण्डिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टेक्स्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एण्ड जैनिज्म, पृष्ठ १०९।

२. जिल्द पहली, पृष्ठ २०७।

३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३५८-३५९।

४. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९३; मिलाइये कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५८४।

५. देखिये कनिंघम-कृत "एन्शियन्ट ज्योग्रफी ऑव इण्डिया" में सुरेन्द्रनाथ मजूमदार लिखित "नोट्स्" पृष्ठ ७३३; वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९४-१९५।

से तात्पर्य उत्तरकालीन इतिहास में पूरे उड़ीसा से भी लिया जाने लगा। यूआन् चुआङ् का "वु-तु" प्रदेश भी उड़ीसा के उत्तर में ही था, क्योंकि उसके दक्षिण-पश्चिम १२०० 'ली' की यात्रा के पश्चात् चीनी यात्री ने अपना आना "कुंग्-यु-तो" अर्थात् कोङ्गोद नामक देश में दिखाया है।[1] और फिर इसके भी १४०० या १५०० 'ली' दक्षिण-पश्चिम चलने के पश्चात् उसने अपना कलिंग पहुँचना दिखाया है[2], जिसे हम उड़ीसा राज्य का दक्षिणी भाग ही मान सकते हैं। उक्कल जनपद भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में एक सुविदित जनपद था। स्वयं भगवान् ने इस जनपद के वस्स और भञ्ञ नामक दो नास्तिकवादियों (नत्थिकवादा) का उल्लेख संयुत्त-निकाय के निरुत्तिपथ-सुत्त में किया है।[3]

---

१. वाटर्स : औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९६; कनिंघम : एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ५८७।

२. उपर्युक्त के समान, पृष्ठ क्रमशः १९८ तथा ५९०।

३. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ३५३।

चौथा परिच्छेद

मानव-भूगोल

प्राकृतिक पृष्ठभूमि के अनुरूप मनुष्य तथा उसकी क्रियाओं का अध्ययन मानव-भूगोल का विषय है। उसका मुख्य उद्देश्य उन अवस्थाओं का अध्ययन करना है जिन्हें मनुष्य ने धरातल को अपने जीवन की आवश्यकताओं के अनुरूप परिवर्तित कर उत्पन्न किया है। इस प्रकार मानव-भूगोल एक सामाजिक विज्ञान है और उसका प्रवेश इतिहास, राजनीति और समाज-शास्त्र जैसे विषयों में आसानी से हो जाता है। यहाँ अपने विषय को निश्चित भौगोलिक परिधि में रख कर हम केवल बुद्धकालीन भारत की जनसंख्या, लोगों के मुख्य पेशे और विशेषतः श्रमिकों की अवस्था का चित्र उपस्थित करेंगे

बुद्धकालीन भारत की जनसंख्या, विशेषतः नगरों में, घनी बसी हुई थी। हमने देखा है कि प्रायः सभी मुख्य बुद्धकालीन नगरों के वर्णन के प्रसंग में उन्हें 'बहुजना' और 'आकिण्ण मनुस्सा' कह कर पुकारा गया है।[1] बुद्धकालीन भारत के सब छोटे-बड़े नगरों की संख्या पालि-परम्परा के अनुसार ८४,००० बताई गई है।[2]

---

१. केवट्ट-सुत्त (दीघ० १।११) में यह वर्णन नालन्दा के लिये प्रयुक्त किया गया है और महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ० २।३) में कुशावती के लिये। विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ २६६) में यही बात वैशाली के सम्बन्ध में कही गई है। अम्बट्ठ-सुत्त (दीघ० १।३) में कोसल देश के उक्कट्ठा नामक नगर को 'जनाकीर्ण' कहा गया है और कूटदन्त सुत्त (दीघ० १।४) में यही बात चम्पा नगरी के सम्बन्ध में कही गई है।

२. परमत्थजोतिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५९; मिलाइये समन्तपासादिका, जिल्द पहली, पृष्ठ १११; दीपवंस, पृष्ठ ४९; महावंस ५।१७६।

डा० मललसेकर का कहना है कि इस संख्या को पालि विवरणों में कहीं-कहीं घटा कर ६०,००० और ४०,००० तक तो लाया गया है, परन्तु इससे कम कभी नहीं।[1] 'अभिधानप्पदीपिका' में बुद्धकालीन भारत के बीस बड़े नगरों का उल्लेख है, जिनके नाम हैं, वाराणसी, श्रावस्ती, वैशाली, मिथिला, आलवी, कौशाम्बी, उज्जयिनी, (उज्जेनी), तक्षशिला, चम्पा, सागल, सुंसुमारगिरिनगर, राजगृह, कपिलवस्तु, साकेत, इन्द्रप्रस्थ (इन्दपत्त या इन्दपट्ट), उक्कट्ठा, पाटलिपुत्र, जेतुत्तर, संकस्स और कुसिनारा। जहाँ तक भगवान् बुद्ध के जीवन-काल की स्थिति से सम्बन्ध है, हम इन बड़े नगरों की सूची को बिलकुल ठीक नहीं मान सकते, क्योंकि जैसा हमें महापरिनिब्बाण-सुत्त से पता लगता है, बुद्ध के जीवन-काल में पाटलिपुत्र एक ग्राम मात्र था और उसकी भावी उन्नति की, जिसके सम्बन्ध में भगवान् बुद्ध ने भविष्यवाणी की, इस समय नींव ही डाली जा रही थी। इसी प्रकार इसी सुत्त के आधार पर हम जानते हैं कि कुसिनारा भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में एक क्षुद्र नगला मात्र था, यद्यपि बुद्ध-पूर्व युग में कुशावती नाम से वह एक महान् नगर रह चुका था। दूसरी ओर उपर्युक्त सूची में आपण (अंगुत्तराप), भद्रवती (चेदि राष्ट्र), सोत्थिवति नगर (चेदि राष्ट्र), सहजाति (चेदि राष्ट्र), सोरेय्य (पंचाल), वेरंजा (सूरसेन और पंचाल की सीमा पर, सम्भवतः दक्षिण पंचाल में) और सेतव्या (कोसल) जैसे कई नगरों और निगमों का उल्लेख नहीं है, जो पालि विवरणों के अनुसार बुद्ध-काल में महत्त्वपूर्ण स्थान माने जाते थे और अधिकतर व्यापारिक मार्गों पर बसे हुए थे। अतः इस सूची की बात छोड़कर यदि हम केवल पालि तिपिटक के आधार पर देखें तो इतना तो निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि महापरिनिब्बाण-सुत्त में वर्णित चम्पा, राजगृह, श्रावस्ती, साकेत, कौशाम्बी और वाराणसी, इन छह महानगरों (महानगरानि) के अतिरिक्त कम से कम बीस अन्य बड़े नगर बुद्धकालीन भारत में थे और उन सब के सम्बन्ध में 'मनुस्साभिकिण्णा', 'बहुजना' और 'आकिण्णमनुस्सा' जैसे विशेषण लगाये जा सकते थे। किस नगर की कितनी जनसंख्या थी, इसके निश्चित विवरण हमें नहीं मिलते और जो मिलते भी हैं वे भी निश्चित संख्याओं के रूप में अधिक प्रामाणिक नहीं माने

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द पहली, पृष्ठ ९४१।

जा सकते। उदाहरणार्थ आचार्य बुद्धघोष ने कहा है कि श्रावस्ती में ५७-लाख परिवार रहते थे और उसकी जनसंख्या १८ करोड़ थी,[1] जो अत्यन्तातिशयोक्ति का उदाहरण ही माना जा सकता है। इतनी आबादी तो हम पूरे काशी-कोसल की भी नहीं मान सकते। ७७०७ लिच्छवि-राजाओं की वैशाली नगरी के सम्बन्ध में हम देख ही चुके हैं कि जनसंख्या को निरन्तर वृद्धि के कारण उसके प्राकार को तीन बार बढ़ाया गया था, जिससे उसका नाम वैशाली पड़ा था। विनय-पिटक में कहा गया है कि मगधराज बिम्बिसार राजगृह नगर के एक लाख बीस हजार (१२ नयुत) प्रतिष्ठित नागरिकों को लेकर भगवान् बुद्ध के स्वागतार्थ लट्ठि-वन-उद्यान में उनसे मिलने गया था।[2] इसका अर्थ यह है कि राजगृह की जनसंख्या उस समय एक लाख बीस हजार से अधिक होनी चाहिए,परन्तु आचार्य बुद्धघोष का यह कहना कि राजगृह की जनसंख्या १८ कोटि (करोड़) थी,[3] ठीक नहीं माना जा सकता, जब तक कि हम कोटि को करोड़ से भिन्न संख्या न मानें, जिसके लिए हमारे पास कोई आधार नहीं है।[4] अन्य बुद्धकालीन नगरों की जनसंख्या सम्बन्धी विवरणों को संकलित करने पर भी हम संख्याओं के सम्बन्ध में किसी निश्चित निष्कर्ष पर नहीं पहुँच सकते। परन्तु इतना निश्चित जान पड़ता है कि सभी मुख्य व्यापारिक नगर घने बसे हुए थे और उनकी जनसंख्या उस समय की परिस्थिति को देखते हुए काफी अधिक थी।

अब हम गाँवों में बसी हुई आबादी पर आते हैं। बुद्ध-काल में छोटे से छोटे और बड़े से बड़े गाँव थे। जातक-कथाओं में हमें ऐसे अनेक गाँवों के उल्लेख मिलते

---

१. परमत्थजोतिका (सुत्त-निपात की अट्ठकथा), जिल्द पहली, पृष्ठ ३७१; समन्तपासादिका, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६१४।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ९६।

३. समन्तपासादिका, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६१४; सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ ३१३; मिलाइये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १४, पद-संकेत २।

४. मिलाइये ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर : कन्साइज पालि-इंगलिश डिक्शनरी, पृष्ठ ८४।

हैं, जिनमें से किन्हीं के परिवारों की संख्या कुल तीस ही थी,[१] किन्हीं की ५००[२] और किन्हीं में एक हजार परिवार तक रहते थे।[३] सब से छोटे गाँव को 'गामक' कहा जाता था। साधारणतः तीस से लेकर ५० तक घर ही उसमें होते थे। आजकल जिसे हम नगला कहते हैं, उसे गामक समझना चाहिए। 'गाम' साधारण गाँव होता था, जिसमें गामक से अधिक, सम्भवतः ५० और २०० के बीच, परिवार होते थे। 'द्वार गाम' वे कहलाते थे जो किसी बड़े नगर के द्वार पर स्थित हों। इन्हें आजकल के उप-नगर जैसे समझना चाहिए। 'पच्चन्तगाम' (प्रत्यन्त ग्राम) वे गाँव कहलाते थे, जो दो राष्ट्रों या जनपदों की सीमा पर स्थित हों। इस प्रकार के गाँवों का जीवन, विशेषतः युद्ध-काल में, अस्तव्यस्त हो जाता था और उनकी जनसंख्या भी प्रायः अल्प और बिखरी हुई होती थी। सब से बड़े गाँव वे थे जो 'निगम-गाम' कहलाते थे, जिनकी जनसंख्या निगम से कम और गाँव से अधिक होती थी। इनकी जनसंख्या कम से कम २००० अवश्य होती होगी। इन्हें आजकल के छोटे कस्बों के समान समझना चाहिए। इन सभी गाँवों की आबादी नगरों और निगमों के समान घनी तो नहीं थी, परन्तु उनकी संख्या इतनी अधिक थी कि कुल मिला कर बुद्धकालीन भारत की जनसंख्या हमें उस समय को देखते हुए काफी अधिक माननी पड़ेगी। आज के समान भारत की अधिकांश जनसंख्या उस समय भी गाँवों में ही निवास करती थी।

भगवान् बुद्ध ने एक बार भविष्यवाणी की थी कि मैत्रेय बुद्ध के आविर्भाव के समय "यह जम्बुद्वीप समृद्ध और सम्पन्न होगा। ग्राम, निगम, जनपद और राजधानी इतने निकट होंगे कि एक मुर्गी भी कुदान भर कर एक घर से दूसरे घर तक पहुँच जाय..... सरकंडे के वन की तरह जम्बुद्वीप मानो नरक तक मनुष्यों की आबादी से भर जायगा।"[४] भगवान् बुद्ध की यह भविष्यवाणी उनके समय की समृद्धि और निरन्तर बढ़ती हुई जन-संख्या के आकलन पर ही आधारित हो सकती थी। आचार्य

---

१. 'तस्मिं च गामे तिंस एव कुलानि होन्ति', जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १९९।
२. 'एकस्मिं पंच पंच कुलसतानि होन्ति', जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ७१।
३. 'सहस्सकुटिको गामो', जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ २८१।
४. चक्कवत्ति-सीहनाद सुत्त (दीघ० ३।३)।

बुद्धघोष ने कहा है कि भगवान् बुद्ध के पिता और माता के जाति-सम्बन्धियों के परिवारों की संख्या अस्सी-अस्सी हजार थी।[1] डा० टी० डबल्यू० रायस डेविड्स् ने इस अस्सी हजार संख्या को मोटी संख्या मात्र न मान कर, जैसी कि वह वास्तव में है, प्रकृत रूप में ठीक मान लिया है और फिर गणना कर उन्होंने हिसाब लगाया है कि यदि एक परिवार में हम औसतन ६ सदस्य मानें तो अकेले शाक्य जनपद की आबादी बुद्ध-काल में करीब १० लाख बैठेगी, जिसे उन्होंने सत्य के समीप माना है।[2] यदि डॉ० रायस डेविड्स् की कसौटी को हम ठीक मानें और उसी हिसाब से अंग को सम्मिलित कर मगध के ८०,००० गाँवों[3] की आबादी का हिसाब लगाएँ तो वह भी बहुत अधिक बैठेगी। यदि एक परिवार में हम ६ सदस्य मानें और एक गाँव में औसतन १०० परिवार, तो मगध राज्य के ८०,००० गाँवों की आबादी ४ करोड़ ८० लाख बैठेगी, जिसे भी हम ठीक ही मान सकते हैं। समन्तपासादिका[4] के अनुसार काशी-कोसल के गाँवों की संख्या भी ८०,००० ही थी और सुमंगलविलासिनी[5] के अनुसार उसका विस्तार भी मगध के समान ३०० योजन था। अतः मगध के समान कोसल राज्य की आबादी भी चार करोड़ ८० लाख माननी पड़ेगी, जिसे भी ठीक माना जा सकता है। जातक-कथाओं में १६०००[6] और ६०,०००[7] गाँवों की संख्या वाले अनेक जनपदों के विवरण हैं। यदि इसी प्रकार बुद्धकालीन भारत के अन्य सब

---

१. मिलाइये विसुद्धिमग्ग ७।५५ (धर्मानन्द कोसम्बी का देवनागरी संस्करण)।

२. बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ १३ (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर, १९५०); मिलाइये, केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १७५।

३. देखिये पीछे तृतीय परिच्छेद में मगध राज्य का वर्णन।

४. जिल्द तीसरी, पृष्ठ ६१४; मिलाइये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १४; पद-संकेत २।

५. जिल्द पहली, पृष्ठ १४८।

६. "गामसहस्सानि परिपुण्णानि सोळस", जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३६५-३६७।

७. "सट्ठिगामसहस्सानि परिपुण्णानि सब्बस", जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २५८।

राज्यों, जनपदों और गणतन्त्रों के नगरों, निगमों और ग्रामों आदि की जन-संख्या का हिसाब लगाया जाय, (जिसे निश्चित संख्याओं के अभाव में मनमाना ही कहा जा सकता है, और जैसा हम पहले कह चुके हैं, पालि विवरणों की संख्याएं भी अधिक समाश्रयणीय नहीं हैं) तो बुद्धकालीन भारत की जनसंख्या करीब ३० करोड़ से कम नहीं बैठेगी।[१] इस प्रकार बुद्धकालीन भारत की जनसंख्या उस समय को देखते हुए घनी बसी हुई थी। परन्तु हमें यह ध्यान में रखना चाहिए कि अभी पर्याप्त भूमि वनों के रूप में खेती के योग्य बनाने के लिए पड़ी हुई थी। अंगुत्तर-निकाय के एकक निपात के एक सुत्त में हम स्वयं भगवान् बुद्ध को यह कहते देखते हैं कि जम्बुद्वीप की अधिकतर भूमि तो ऊँची-नीची और झाड़-झंखाड़ से भरी हुई है और समतल मैदानी भूमि तो थोड़ी ही है। अनेक जातक-कथाओं में हम वन-भूमि को साफ कर किसानों को कृषि-कर्म करते देखते हैं।[२] समृद्धि के साथ आबादी बढ़ रही थी। लोगों को अधिक से अधिक सन्तान की अभिलाषा रहती थी।[३] परन्तु अभी जम्बुद्वीप 'नरक-पर्यन्त' आबादी से नहीं भरा था।

---

१. देखिये केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ २००-२०१; रतिलाल मेहता : प्री-बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ १८४; रतिलाल मेहता ने अपनी इसी पुस्तक के पृष्ठ २०५ में बुद्धकालीन भारत की जनसंख्या का अनुमान १५ करोड़ लगाया है। उन्होंने उस समय भारत के गाँवों की संख्या ६०,००० मान कर हिसाब लगाया है, जो किसी प्रकार ठीक नहीं माना जा सकता। नगरों की जनसंख्या को भी यहाँ बिलकुल छोड़ दिया गया है।

२. मिलाइये, "सब्बं वनं छिन्दित्वा खेत्तानि कारित्वा कसिकम्मं करिंसु" जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३५८; मिलाइये जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ २५९।

३. देखिये उदान (हिन्दी अनुवाद, पृष्ठ २२-२६) में कोलिय-दुहिता सुप्रवासा का उदाहरण, जो वर्षों की पीड़ा के बाद किसी प्रकार एक पुत्र को जन कर बची थी, परन्तु फिर भी ऐसे ही अन्य सात पुत्रों को प्राप्त करने की उसे अभिलाषा थी। किसा गोतमी को अपने पति के घर में तब तक सम्मान नहीं मिला जब तक उसने सन्तान-प्रसव नहीं किया। देखिये थेरीगाथा की अट्ठकथा (परमत्थदीपनी) में इस भिक्षुणी का जीवन-परिचय। निग्रोध जातक से भी इसी

आज की तरह बुद्ध-काल में भी भारतीय जनता का मुख्य पेशा कृषि था। राजा का यह कर्तव्य माना जाता था कि उसके जनपद में जो लोग कृषि करना चाहते हों, उन्हें वह बीज-भात (बीज-भत्तं) दे।[1] कृषि-कर्म (कसि कम्म) उस समय किसी जाति-विशेष का पेशा नहीं माना जाता था। हम मगध के एकनाला ब्राह्मण-ग्राम के कसि भारद्वाज ब्राह्मण को ५०० हल (पंचमत्तानि नंगलसतानि) लेकर जुताई करवाते देखते हैं।[2] मज्झिम-निकाय के गोपक-मोग्गल्लान-सुत्तन्त से हम जानते हैं कि मगध का गोपक मोग्गल्लान ब्राह्मण भी कृषक था। पिप्पलि माणवक (बाद में स्थविर महाकाश्यप) के यहाँ भी खेती होती थी। बुद्ध-काल में भूमि छोटे-छोटे टुकड़ों के रूप में बँटी हुई थी, जिन पर अलग-अलग परिवार खेती करते थे और फसल काट कर अपने-अपने घर लाते थे। परन्तु एक प्रकार का सामूहिक अधिकार भी सम्पूर्ण गाँव की भूमि पर माना जाता था, जिसे 'गाम खेत्त' कहा जाता था और जिसके सम्बन्ध में 'गामिक' या 'गामभोजक' के विशेष कर्तव्य और अधिकार होते थे और एक व्यक्ति या परिवार को अपने भाग की भूमि को बेचने के अधिकार सीमित थे। पूरे गाँव के सामूहिक खेत या 'गाम-खेत्त' में भिन्न-भिन्न परिवारों के अलग-अलग खेतों के टुकड़े होते थे जो मेंड़ों या पानी की नालियों के द्वारा एक दूसरे से विभक्त होते थे या कहीं-कहीं स्तम्भ (पालि, थम्भे) भी लगा दिये जाते थे। मगध के खेतों का यह दृश्य भगवान् बुद्ध को बड़ा सुहावना लगा था और इसी के प्रेरणा स्वरूप उन्हें भिक्षुओं के चीवर बनवाने की कल्पना मिली थी। "देखते हो आनन्द ! मगध के इन मेंड़-बँधे, कतार-बँधे, मर्यादा-बँधे, चौमेंड़ बँधे खेतों को . . . क्या आनन्द, भिक्षुओं के लिए ऐसे चीवर बना सकते हो ?"[3] कपड़े के भिन्न-भिन्न टुकड़ों को सींकर बनाये

प्रकार की बात प्रकट होती है। वैशाली के बहुपुत्रक चैत्य का तो यह नाम ही इसलिये पड़ा था कि उसके समीप इसी (बहुपुत्रक) नाम का एक बर्गद का पेड़ था जिसके देवता से बहुत से पुत्रों की प्राप्ति के लिए मनौतियाँ की जाती थीं।

१. कूटदन्त-सुत्त (दीघ० १।५)।

२. कसिभारद्वाज-सुत्त (सुत्त-निपात); देखिये संयुत्त-निकाय में कसि-सुत्त भी, संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ १३८-१३९।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २७९।

गये भिक्षु-चीवर सचमुच आकार में मेंड़-बँधे (अच्चिबद्धं), कतार-बँधे (पालि-बद्धं), मर्यादा में बँधे (मरियादा-बद्धं) और चौमेंड़ बँधे (सिघाटकबद्धं) 'मगध खेत्तं' के समान ही लगते थे, जिसमें छोटे-छोटे आकार के अनेक खेत जुड़े हुए होते थे। मललसेकर का कहना है कि प्रत्येक 'मगध-खेत्त' विस्तार में एक गावुत (करीब दो मील) होता था।[1] सुवण्ण-कक्कट जातक और सालिकेदार जातक में एक हजार करीस (लगभग ८००० एकड़) क्षेत्रफल के एक खेत का उल्लेख है। यह खेत राजगृह की पूर्व या उत्तर-पूर्व दिशा में सालिन्दिय नामक ब्राह्मण-ग्राम में था। सालिकेदार जातक मे कहा गया है कि इस खेत में नौकरों के द्वारा खेती कराई जाती थी। मललसेकर ने १००० करीस को लगभग ८००० एकड़ के बराबर माना है।[2]

जिस ढंग से बुद्ध-काल में खेती की जाती थी, वह प्रारम्भिक और उस युग के अनुरूप होते हुए भी आजकल के भी प्रायः समान था। जोतने-बोने से लेकर अन्न को इकट्ठा करने तक की सब क्रियाएँ प्रायः आजकल के समान ही की जाती थीं। महानाम शाक्य अपने छोटे भाई अनुरुद्ध को गृहस्थी की जानकारी देते हुए कहता है, "पहले खेत को जोतवाना चाहिए। जोतवा कर बोवाना चाहिए। बोवा कर पानी देना चाहिए। पानी भर कर निकालना चाहिए, निकाल कर (फसल को) सुखाना चाहिए। सुखाकर कटवाना चाहिए। कटवा कर ऊपर लाना चाहिए। ऊपर लाकर सीधा करवाना चाहिए। सीधा कर मर्दन करवाना (मिसवाना) चाहिए, मिसवा कर पयाल हटाना चाहिए। पयाल हटवा कर भूसी हटानी चाहिए।

---

१. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४०३।

२. डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ४०४; इस प्रकार उनके मतानुसार १ करीस ८ एकड़ के बराबर होगा। ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर ने एक करीस को लगभग १ एकड़ के बराबर माना है। देखिये उनकी कन्साइज पालि-इंगलिश डिक्शनरी, पृष्ठ ७५। डॉ० टी० डबल्यू० रायस डेविड्स् और विलियम स्टीड ने पालि-इंगलिश डिक्शनरी (पालि टैक्सट् सोसायटी, लंदन, १९२५) में 'करीस' शब्द का अर्थ करते हुए उसे "भूमि का एक वर्गाकार माप" (a square measure of land) मात्र कह कर छोड़ दिया है।

भूसी हटा कर फटकवाना चाहिये। फटकवा कर जमा करना चाहिए।"[१] हल और बैल तो भारतीय कृषि-कर्म के अनिवार्य अंग हैं। उस समय भी हलों में बैल जोड़ कर खेत जोते जाते थे जैसे कि आज। सीहचम्म जातक तथा अन्य कई जातकों[२] में इस प्रकार खेत जोतने के उल्लेख हैं। साधक भिक्षु-भिक्षुणियों को अनेक बार याद दिलाया गया है, "हलों से खेत को जोत कर और धरती में बीज बोकर मनुष्य धन प्राप्त करते हैं और अपने स्त्री-पुत्रों का पालन-पोषण करते हैं... तुम भी बुद्ध-शासन को क्यों नहीं करते, जिसे कर के पीछे पछताना नहीं पड़ता।"[३] आश्चर्यकर लगते हुए भी यह सत्य है कि हल जोतने के काम को बुद्ध-काल में राष्ट्रीय महत्त्व का काम समझा जाता था। शाक्य लोग तो बोने का एक उत्सव (वप्पमंगलं) ही मनाते थे, जिसमें एक हजार हल साथ-साथ चलते थे और अमात्यों के सहित राजा भी स्वयं हल चलाता था।[४] यह महापर्व इस बात का द्योतक है कि कृषि-कर्म उस समय अत्यन्त गौरवास्पद काम समझा जाता था और जनता के समान राजा भी उसमें भाग लेना अपना कर्तव्य समझता था। सुत्त-निपात के कसि-भारद्वाज सुत्त में हम भारद्वाज ब्राह्मण को दक्षिणागिरि जनपद के एकनाला ब्राह्मण-ग्राम में खेती करते देखते ही हैं। जोतने के बाद खेत की गुराई करने के उदाहरण भी पालि तिपिटक, विशेषतः जातकों,[५] में मिलते हैं और इसी प्रकार फावड़े के उपयोग का भी उल्लेख है।[६] खड़ी फसल को (विशेषतः धान की फसल का उल्लेख किया गया है) हिरन आदि जानवर नष्ट न करें, इसके लिए बुद्ध-कालीन किसान इन्हें पकड़ने आदि का प्रबन्ध भी करते थे, ऐसा हमें लक्खण जातक

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४७७।

२. उदाहरणतः जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १६५।

३. "नंगलेहि कसं खेत्तं बीजानि पवपं छमा। पुत्तदारानि पोसेन्ता धनं विन्दन्ति मानवा........करोथ बुद्धसासनं यं कत्वा नानुतप्पति", थेरीगाथा, गाथाएँ ११२, ११७ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

४. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ७५ (भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)

५. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५९।

६. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ६८।

से विदित होता है। खलिहानों (खलमंडल) में फसल को इकट्ठा कर उसे आज के समान ही उसाया जाता था[1] और फिर अनाज को घर लाकर कोठों (कोट्ठा) या धान्यागारों (धञ्ञागारा) में भर लिया जाता था।[2] मुसलों से धान को आज के समान ही कूटा जाता था। "मुसलानि गहेत्वान धञ्ञं कोट्टेन्ति मानवा।"[3] बुद्धकालीन भारत में किसानों का जीवन सुखी और समृद्ध था और वे शस्य की सम्पन्नता से युक्त थे। स्थविर ब्रह्मालि ने 'थेरगाथा' में उद्‌गार करते हुए अत्यन्त अनायास रूप मे कहा है, "मैंने सुना है मगध के सब निवासी शस्य को सम्पन्नता से युक्त हैं, वे सुखजीवी हैं।"[4]

क्या-क्या फसलें बुद्ध-काल में भारतीय किसान पैदा करते थे, इसके सम्बन्ध में महत्त्वपूर्ण सूचना यत्र-तत्र बिखरी हुई हमें जातकों में प्रभूत रूप से मिलती है। विशेषतः मगध और पूर्वी उत्तर-प्रदेश का वर्णन ही चूँकि पालि तिपिटक में अधिक हुआ है, अतः मुख्य फसल जिसके अधिक वर्णन आये है, धान ही है। उसके विभिन्न प्रकार, जैसे सालि (शालि), वीहि (व्रीहि) और तंडुल (तंदुल) आदि उस समय बहुतायत से उगाये जाते थे। शालि-मांस-ओदन उस समय स्वादिष्ट और बड़े लोगों के खाने योग्य भोजन माना जाता था। धान के अतिरिक्त यव (जौ) और कंगु (बाजरा) की भी खेती होती थी। चने (कलाये) भी उगाये जाते थे और दालों मे मूँग और उरद (मुग्ग-मास) का उत्पादन किया जाता था। तिल, सरसों (सिद्धट्ठक) और एरण्ड (अरंडो) की भी खेती होती थी। मसालों में मिर्च (मरिच) और जोरे (जीरक) की भी खेती होती थी। पान (तम्बुलं) और सुपारी (पूग) का प्रचार था, अतः उनके पेड़ भी काफी संख्या में उगाये जाते थे। ईख की खेती काफी बड़े पैमाने पर मगध में उस समय होती थी और गुड़ और शक्कर (सक्कर)

---

१. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३४१।

२. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ २४०।

३. थेरीगाथा, गाथा ११७ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

४. "सम्पन्नसस्सा मगधा केवला इति मे सुतं...सुखजीविनो", थेरगाथा, गाथा २०८ (भिक्षु उत्तम द्वारा प्रकाशित, महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन और भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित, देवनागरी संस्करण)।

भी गांवों में बनाए जाते थे। गुड़ से भरी पाँच सौ गाड़ियों को राजगृह से अन्धकविन्द के मार्ग में जाते हुए विनय-पिटक में हम देखते हैं।[1] गुड़ के बनाये जाने का भी विनय-पिटक में उल्लेख है।[2] ईख के यन्त्रों (उच्छु-यन्ते) का, जिनसे गुड़ शक्कर आदि बनाये जाते थे, जातक में उल्लेख है।[3] सालि (धान) और उच्छु (ईख) की फसल को होने वाली क्रमशः दो बीमारियों 'सेतट्ठिका' (सफेदा रोग) और मांजेट्ठिका (लाल रोग) का वर्णन विनय-पिटक के चुल्लवग्ग और अंगुत्तर-निकाय के पजावती-पब्बज्जा-सुत्त में है। कपास (कप्पास) की खेती बुद्ध-काल में काफी बड़े पैमाने पर होती थी। उस समय का विस्तृत वस्त्र-उद्योग, जिसका वर्णन हम अगले परिच्छेद में करेंगे, इसी पर आधारित था। तुण्डिल जातक में हमें वाराणसी के आसपास कपास के खेतों का वर्णन मिलता है। महाजनक-जातक में कपास की रखवाली करने वाली (कप्पासरक्खिका) स्त्रियों का भी उल्लेख है। प्याज और लशुन (लमुण) की भी खेती होती थी और मगध में एक विशेष प्रकार के लशुन के उगाये जाने का भी उल्लेख है। लौकी (अलाबु) और ककड़ी (तिपुस) जैसे कई शाक उस समय काफी मात्रा में पैदा किए जाते थे और फलों की भी खेती होती थी। वाराणसी के राजा का एक माली खट्टे आमों को मीठा और मीठे आमों को खट्टा करने की विधि जानता था।[4] पाटलि, किंशुक (किंसुक) कर्णिकार (कण्णिकार), जयसुमन और केतक जैसे अनेक फूलों के वृक्ष और पौधे भी उस समय लगाये जाते थे। विभिन्न फूलों की सुन्दर मालाएँ भी बनाई जाती थीं। आठ गुरु-धर्मों (गरु धम्मा) को स्वीकार करते हुए महाप्रजावती गौतमी कहती है कि वह उन्हें उसी प्रकार सिर पर रक्खेगी जिस प्रकार कोई शौकीन पुरुष उत्पल की माला को या जूही की माला को या मोतिये की माला को।[5] फल और फूल बेचने वाले लोगों को उस समय क्रमशः 'पण्णिका' और 'मालाकारा' कहा जाता था।

---

१. देखिये आगे पाँचवें परिच्छेद में अन्तर्देशीय व्यापार का वर्णन।
२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २२५-२२६।
३. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २४०।
४. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३।
५. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ५२१।

'मालाकारा' लोग, जैसा उनके नाम से स्पष्ट है, फूल बेचने के साथ-साथ मालाएँ भी बनाते थे।

सिंचाई का यद्यपि प्रबन्ध था, परन्तु अधिकांश किसान वर्षा पर ही निर्भर करते थे। शाक्य और कोलियों के रोहिणी नदी के बाँध पर हुए झगड़े से स्पष्ट मालूम पड़ता है कि नदियों को बाँध कर नहरें निकालने का ढंग उस समय लोगों को विदित था, भले ही वह कितनी ही प्रारम्भिक अवस्था में क्यों न रहा हो। पुष्करिणियों से भी सिंचाई का काम लिया जाता था। चूँकि अधिकतर खेती आज के समान वर्षा पर ही निर्भर थी, अतः अकालों के पड़ने के भी विवरण हमें मिलते हैं। वेरंजा का अकाल तो प्रसिद्ध है ही, जहाँ भिक्षु-संघ सहित भगवान् को उत्तरापथ के व्यापारियों के द्वारा प्रदत्त प्रस्थ भर जौ पर निर्भर करना पड़ा था और इस प्रकार जहाँ उन्हें केवल जौ ही खानी पड़ी थी। वज्जि प्रदेश में भी भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में एक बार भयंकर अकाल पड़ा था। विनय-पिटक के प्रथम पाराजिक में इसका उल्लेख है। इसी प्रकार संयुत्त-निकाय के कुल-सुत्त में नालन्दा के भीषण अकाल का वर्णन है, जिसके सम्बन्ध में कहा गया है कि "उस समय लोगों के प्राण निकल रहे थे। मरे हुए मनुष्यों की उजली-उजली हड्डियाँ बिखरी हुई थीं। लोग सूख कर सलाई बन गये थे"।[१] वीरक जातक में काशी देश में अकाल पड़ने का उल्लेख है। इसी प्रकार वेस्सन्तर जातक में भी अकाल का वर्णन है और अन्य कई जातकों में भी।[२] बौद्ध संस्कृत ग्रन्थ दिव्यावदान[३] से हमें पता लगता है कि वाराणसी में एक बार लगातार १२ वर्ष तक अकाल पड़ा था।

बुद्ध-काल में खेती पर राजा की ओर से जो लगान लगता था उसे 'रञ्ञोभाग' (राजा का भाग) या (राज-बलि) कहा जाता था। यह अक्सर उत्पादित फसल के एक अंश के रूप में लिया जाता था।[४] मुद्रा के रूप में लेने के उदाहरण नहीं मिलते,

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५८५।

२. देखिये विशेषतः जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १३५, १४९, ३६७; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १८३, ४०१।

३. पृष्ठ १३२।

४. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३७८।

यद्यपि अनाज का क्रय-विक्रय मुद्रा के द्वारा बुद्ध के काल में होता था और अनाज खरीदने और बेचने का काम करने वाले व्यापारी 'धञ्ञवाणिजा' कहलाते थे।[१] सालक जातक में धान्य बेच कर जीविका चलाते बोधिसत्व को एक पूर्व जन्म में दिखाया गया है। जब फसल तैयार हो जाती थी तो राजा के कर संग्रह करने वाले अधिकारी जिन्हें 'निग्गाहका' या 'बलि-साधिका' कहा जाता था, खेतों में आकर फसल का आकलन कर लेते थे या खलिहानों में तैयार अनाज का निश्चित भाग राज-कर के रूप में ले लेते थे। कभी-कभी इस काम को राज कर्मचारी न कर स्वयं गाँव का मुखिया, जिसे 'गाम-भोजक', 'गामिक' या 'जेट्ठक' कहा जाता था और जो प्रायः निर्वाचित होता था, राज-बलि को अलग-अलग किसान-परिवारों से इकट्ठा कर (राजबलिं लभित्वा) राजा को दे देता था।[२] उपज का कितना अंश राजा कर के रूप में लेता था, इसके सम्बन्ध में आचार्य बुद्धघोष ने कहा है, "दसवाँ भाग देना जम्बुद्वीप का पुराना रिवाज (पोराण चारित्तं) है। इसलिए दस भाग में एक भाग भूमि के मालिकों को देना चाहिए।[३]" "पोराण चारित्तं" से यहाँ तात्पर्य बिम्बिसार-अजातशत्रु के काल से है, जैसा कि हम आगे के परिच्छेद में देखेंगे, आचार्य बुद्धघोष द्वारा प्रयुक्त शब्द 'पोराणस्स नीलकहापणस्स' में 'पोराण' शब्द का अर्थ बुद्ध या बिम्बिसार-अजातशत्रु के काल से है। जब आचार्य बुद्धघोष किसी विशेष वस्तु के सम्बन्ध में बुद्ध के जीवन-काल और उसके उत्तर काल में विभिन्नता प्रकट करना चाहते हैं तो दोनों की तुलना करते हुए वे प्रथम के लिए 'पोराण' (प्राचीन) शब्द का प्रयोग करते हैं। अतः इससे हमें यही मानना उचित है कि उपज का दसवाँ भाग बुद्ध-काल में राजांश के रूप में लिया जाता था। छठे भाग की जो बात कही गई है,[४] उसे उसके उत्तर काल की समझनी चाहिए। विशेष अवस्थाओं में राजा भूमि-कर से लोगों को मुक्त भी कर देता था।[५]

---

१. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २६७; जिल्द तीसरी, पृष्ठ १९८।
२. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ३८४, ४८३।
३. देखिये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २५४, पद-संकेत १।
४. देखिये हिस्ट्री एंड कल्चर ऑव दि इंडियन पीपुल, जिल्द दूसरी, पृ० ५९८।
५. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १२१।

कृषि के साथ गोरक्षा का अटूट और अनिवार्य सम्बन्ध है। इसीलिए सम्भवतः दीघ-निकाय के कूटदन्त-सुत्त तथा मज्झिम-निकाय के एसुकारि-सुत्तन्त में 'कसि-गोरक्खे' (कृषि-गोरक्ष्य) का सार्थक द्वन्द्व समास प्रयुक्त किया गया है।[१] बुद्ध-काल में गौ का सम्मान था। स्वयं भगवान् बुद्ध ने गायों को माता, पिता, भाई और बन्धु-बान्धवों की तरह परम मित्र और अन्नदा, वलदा, वर्णदा तथा सुखदा बताया था।[२] बुद्ध-काल में समृद्ध लोग गौओं को चादर उढ़ाते थे और उन पर काँसे की कण्ठियाँ बाँधते थे।[३] गौ पशु-पालन का प्रतीक है और बुद्ध-काल में हम पशु-पालन के कार्य को अत्यन्त उन्नत और व्यवस्थित अवस्था में पाते हैं। प्रत्येक गाँव में निश्चित भूमि गोचर-भूमि के रूप में अलग छोड़ दी जाती थी जिस पर उस गाँव के सब पशु चर सकते थे।[४] प्रतिदिन गोप या गोपालक (ग्वाला) आकर प्रत्येक घर के पशुओं को ले जाता था और चरागाह में दिन भर उन्हें चराने के बाद फिर वापस घरों पर पहुँचा जाता था। इसी प्रकार का एक ग्वाला, जिसका नाम नन्द था, भगवान् बुद्ध को एक बार मार्ग में गंगा के किनारे पशु चराते मिला था, जिसने भगवान् के उपदेश को सुना था। ग्वाला संविग्न होकर प्रव्रज्या के लिए याचना करने लगा, परन्तु भगवान् ने उससे कहा, "नन्द, पहले तुम मालिक की गायें लौटा आओ।" ग्वाले ने जब कहा कि गायें तो अपने बछड़ों के प्रेम में बँधी स्वयं चली जायेंगी, तो सामाजिक नीति के मर्म को समझने वाले भगवान् ने फिर उससे कहा था, "तुम अपने मालिक की गाएँ तो

---

१. मज्झिम-निकाय के महादुक्खक्खन्ध-सुत्तन्त और अंगुत्तर-निकाय के दोण-सुत्त में कृषि और गोरक्षा के साथ-साथ वाणिज्य को भी रक्खा गया है। मिलाइये "कृषि-गोरक्ष्य-वाणिज्यम्"। गीता १८।४४।

२. ब्राह्मण-धम्मिय-सुत्त (सुत्त-निपात)।

३. दीघ-निकाय के महासुदस्सन-सुत्त में कहा गया है कि महासुदर्शन नामक क्षत्रिय राजा के पास अन्य बहुमूल्य वस्तुओं के अलावा, काँसे की घंटी पहने, चादर ओढ़े, दूध देने वाली चौरासी हजार गायें थीं। "चतुरासीतिधेनुसहस्सानि अहेसुं दुकूलसन्दनानि कंसूपधारणानि।"

४. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १९३-१९४।

लौटा कर ही आओ।"[1] ग्वालों के जीवन का भगवान् बुद्ध को गहरा और सूक्ष्म ज्ञान था। एक चतुर गोपालक के ग्यारह गुणों का वर्णन, जिनके द्वारा वह गोयूथ की रक्षा करने के योग्य होता है, भगवान् ने मज्झिम-निकाय के महा-गोपालक सुत्तन्त में किया है। उन्होंने बताया है कि एक चतुर गोपालक को किस प्रकार गायों के वर्ण और लक्षण को जानने वाला होना चाहिए, घाव को ढाँकने वाला, काली मक्खियों को हटाने वाला, मार्ग, चरागाह और पानी को जानने वाला, सब दूध को न दुहने वाला और गायों के पितर और स्वामी जो वृषभ हैं, उनकी अधिक सेवा करने वाला होना चाहिए, आदि। इसी प्रकार इसी निकाय के चूल-गोपालक सुत्तन्त में भगवान् ने मगध के एक मूर्ख और एक बुद्धिमान् ग्वाले की उपमा देकर बताया है कि किस प्रकार मूर्ख ग्वाले ने वर्षा के अन्तिम मास में बेघाट गायें विदेह देश की ओर हाँक दीं जिससे सब गायें गंगा की बीच धार में भँवर में पड़ कर बह गईं, जब कि बुद्धिमान् ग्वाले ने घाट आदि के बारे में ठीक प्रकार सोच कर उन्हें हाँका, जिससे वे कुशलतापूर्वक पार चली गईं। कुछ ग्वाले भगवान् बुद्ध के समय में ऐसे भी होते थे जो स्वयं अपनी गायें और अन्य पशु रखते थे। धनिय गोप ऐसा ही समृद्ध ग्वाला दिखाई पड़ता है, जिसने अपने साफ-सुथरे घर, पशु-धन और सुखी जीवन का वर्णन इस प्रकार स्वयं भगवान् के सामने किया था, "भात मेरा पक चुका है, दूध दुह लिया गया है। मही (गण्डक) नदी के तीर पर स्वजनों के साथ वास करता हूँ....मक्खी-मच्छर यहाँ नही हैं....कछार में उगी घास को गायें चरती हैं.. मैं आप अपनी ही मजदूरी करता हूँ ...मेरे तरुण बैल और बछड़े हैं। गाभिन गायें हैं और तरुण गायें भी और सब के बीच वृषभराज भी हैं।"[2] हम जानते हैं कि १२५० गायों को आगे किए मेण्डक गृहपति ने भिक्षु-संघ सहित भगवान् का अंगुत्तराप प्रदेश में धारोष्ण दूध से सत्कार किया था।[3] भोजन के समय से पूर्व किसी अतिथि के आजाने पर अक्सर उसे पहले दूध पिला कर बाद में भोजन के समय भोजन कराया जाता

१. संयुत्त-निकाय, (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ५२६ (पठम-दारुक्खन्ध-सुत्त)।

२. धनिय-सुत्त (सुत्त-निपात)।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २४९-२५०।

था।[1] देश में पंच गोरसों—दूध, दही, तक्र, नवनीत और घी—की कमी नहीं थी। गोपालों के समान अजपाल भी होते थे जो बकरियों और भेड़ों को चराते थे,[2] और उनकी ऊन को इकट्ठा करते थे जिससे ऊन सम्बन्धी गृह-शिल्प चलता था और बहुमूल्य कम्बल आदि बनते थे, जिनका उल्लेख हम व्यापारिक भूगोल का विवेचन करते समय पाँचवें परिच्छेद में करेंगे।

कृषि-गोरक्षा के बाद बुद्धकालीन भारत के तीन मुख्य पेशे वाणिज्य, शिल्पकारी और मजदूरी थे। राज-सेवा भी उस समय निःसन्देह एक महत्त्वपूर्ण पेशा था। कूटदन्त-सुत्त (दीघ० १।५) से मालूम पड़ता है कि अनेक मनुष्य उस समय राज-सेवा में (राज पोरिसे) उत्साह रखते थे और राजा उन्हें उचित भत्ता और वेतन (भत्त-वेतनं) देकर सन्तुष्ट रखने का प्रयत्न करते थे। राज-सेवा से सम्बन्धित मुख्य महत्त्वपूर्ण पद पुरोहित, अमात्य (अमच्च) और सेनापति के थे। राज-सेना से सम्बन्धित १३ पेशों का उल्लेख हमें सामञ्ञफल-सुत्त में मिलता है। सिपाहियों और सेनाध्यक्षों की नियुक्ति में योग्यता का ध्यान रक्खा जाता था, वर्ण आदि का नहीं। वाराणसी का एक पुरोहित-पुत्र, जो श्रेष्ठ धनुर्धर (धनुग्गहानं अग्गो) था, सेनाध्यक्ष बनाया गया था।[3] अध्यापक (अज्झापक) का पेशा भी उस समय आदरणीय माना जाता था। विद्यार्थी या तो गुरुओं को शुल्क के रूप में कुछ देते थे या शारीरिक सेवा द्वारा शिक्षा के ऋण से उऋण होते थे।[4] राजा की ओर से कर संग्रह करने वाले लोग भी नियुक्त थे, जो 'निग्गाहका' कहलाते थे। राजसेवा से सम्बन्धित अन्य अनेक पेशे भी उस समय थे, जिनके विवरण में तत्कालीन शासन-व्यवस्था में जा पड़ने के भय से हम नहीं जा सकते।

वाणिज्य (वणिज्जा) और शिल्पों (सिप्पानि) सम्बन्धी उद्योग-धन्धों का

---

१. धानंजानि-सुत्तन्त (मज्झिम० २।५।७)।

२. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ३६३।

३. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १२७; सुत्त-निपात के वासेट्ठ-सुत्त से हमें पता चलता है कि योधाजीवी होने के अतिरिक्त ब्राह्मण लोग बुद्ध-काल में अन्य अनेक पेशे भी करते थे।

४. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २७७।

विवरण हम आगे के परिच्छेद में देंगे, क्योंकि उनका सम्बन्ध आर्थिक और व्यापारिक भूगोल से ही अधिक है। मानव-भूगोल की दृष्टि से यहाँ इतना कह देना आवश्यक जान पड़ता है कि बुद्ध-काल में यद्यपि सभी शिल्पों का आदर होता था और वर्णों के साथ उनका सम्बन्ध नहीं जुड़ा था, परन्तु फिर भी बाँस और बेंत का सामान बनाने वाले, नाई, कुम्हार, जुलाहे और चमड़े का काम करने वाले "हीन शिल्प" (हीनं सिप्पं) करने वालों की श्रेणी में आते थे, ऐसा हमें विनय-पिटक के पाचित्तिय काण्ड (द्वितीय पाचित्तिय) से विदित होता है। ब्रह्मजाल-सुत्त (दीघ० १।१) में मिथ्या जीविकाओं के द्वारा अनेक लोगों को रोजी कमाते दिखाया गया है (मिच्छाजीवेन जीविकं कप्पेन्ति) जिससे भी उस समय हीन समझे जाने वाले अनेक पेशों पर प्रकाश पड़ता है। इस प्रकार की हीन जीविकाओं के रूप में अंग-विद्या, उत्पाद-विद्या, मणि-लक्षण, वस्त्र-लक्षण, अनेक प्रकार की भविष्यवाणियाँ करना, अंजन तैयार करना, नाक में तेल डालकर छिकवाना आदि पेशों की लम्बी सूची दी गई है, जिनका वस्तुतः शिल्पकारी से कोई सम्बन्ध नहीं है। बुद्ध-काल के सम्बन्ध में यह ध्यान रखना आवश्यक है कि कोई व्यक्ति किसी समय किसी पेशे को छोड़कर दूसरे पेशे को कर सकता था और इससे उसकी सामाजिक स्थिति में कोई अन्तर नहीं पड़ता था। उग्रसेन श्रेष्ठिपुत्र एक रस्सी पर नाच दिखाने वाली नटिनी के प्रेम में फँस कर उसी काम को करने लगा था, परन्तु इससे वह अपने परिवार से बहिष्कृत नहीं किया गया था।[1] इसी प्रकार एक सेठ (सेट्ठि) को हम दर्जी और कुम्हार का पेशा करते और अपनी उच्च सामाजिक स्थिति बनाये देखते हैं।[2] एक जातक-कथा में एक ऐसे क्षत्रिय का उल्लेख है जो पहले कुम्भकार था, फिर डलिया बनाने वाले का काम करने लगा और अन्त में वह मालाकार और रसोइया भी बना।[3] ब्राह्मणों को हम खेती करते[4] और व्यापार करते[5] भी बुद्ध-काल में देखते हैं। ऐसे अन्य अनेक उदाहरण भी दिये जा

---

१. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द चौथी, पृष्ठ ५९।

२. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ३७२।

३. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २९०।

४. कसिभारद्वाज-सुत्त (सुत्त-निपात); जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १६३; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ६८।

५. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ४७१।

सकते हैं। मज्झिम-निकाय के घटिकार-सुत्तन्त में हम देखते हैं कि घटिकार नामक एक कुम्हार का ज्योतिपाल नामक एक ब्राह्मण तरुण प्रिय मित्र था और ज्योतिपाल उसे "सौम्य घटिकार!" कह कर पुकारता था। अब हम बुद्धकालीन भारत के मजदूरों की अवस्था पर आते हैं।

पहले हम खेतों पर काम करने वाले मजदूरों को लेते हैं। जातक के विवरणों से मालूम पड़ता है कि खेतों पर काम करने के लिए मजदूरी पर आदमी रक्खे जाते थे।[१] खेतों की रखवाली करने के लिए जो आदमी नियुक्त किए जाते थे, उन्हें 'खेतरक्खका'[२] या 'खेत्तगोपका'[३] कहा जाता था। इस प्रकार खेतों पर काम करने के लिए जो आदमी मजदूरी पर रक्खे जाते थे, उन्हें मजदूरी अक्सर अनाज के रूप में दी जाती थी,[४] यद्यपि मासक आदि के रूप में 'भतकों' को मजदूरी देने के उल्लेख भी प्राप्त हैं।[५] भद्दसाल जातक से स्पष्ट विदित होता है कि दिन भर काम करने के बाद सन्ध्या समय 'भतक' अपने घर चले जाते थे। खेती के अलावा अन्य काम के लिए भी मजदूरी पर लोग रक्खे जाते थे। कई जातकों में हम ऐसे मजदूरों को प्रतिदिन एक मासक या पण का चतुर्थ भाग मजदूरी के रूप में मिलते देखते हैं।[६] यद्यपि बुद्ध-काल में इन छोटे-छोटे सिक्कों की क्रय-शक्ति भी काफी अधिक थी, फिर भी बुद्ध-काल में मजदूरों और श्रमिकों को हम आर्थिक रूप से अच्छा जीवन व्यतीत करते नहीं देखते। बुद्धकालीन मजदूर (भतक) कठिनता से ही जीवन व्यतीत करता था। गंगमाल जातक में कहा गया है, "भतिं कत्वा किच्छेन जीवति।" अर्थात् "मजदूरी कर के कठिनता से ही जीया जीता है।" काम कर देने के बाद वह अपनी मजूरी पाने के लिए किस प्रकार

---

१. देखिये विशेषतः जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ २७७; जिल्द तीसरी, पृष्ठ १६२।

२. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ११०; जिल्द तीसरी, पृष्ठ १६३; जिल्द छठी, पृष्ठ ३३६।

३. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ५२; जिल्द चौथी, पृष्ठ २७७।

४. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४४६; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २१२।

५. देखिये आगे पाँचवें परिच्छेद में मुद्रा और विनिमय का विवेचन।

६. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ४७५; जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३२५।

प्रतीक्षा करता था, इसे धर्मसेनापति सारिपुत्र ने पूरी संवेदनशीलता के साथ देखा था। तभी तो अपने अनासक्त जीवन का वर्णन करते हुए उन्होंने अपनी तुलना एक मजदूर (भतक) से करते हुए कहा है, "न मुझे मरने की चाह है और न जीने की। काम करने के बाद अपनी मजूरी पाने की प्रतीक्षा करने वाले नौकर के समान मैं तो अपने समय की प्रतीक्षा कर रहा हूँ।" "मरणं नाभिकंखामि नाभिकंखामि जीवितं। कालं च पटिकंखामि निब्बिसं भतको यथा।"[1]

मजदूरी पर काम करने वालों के अलावा एक दूसरा वर्ग श्रमिकों का बुद्ध-काल में और था, जिन्हें 'कम्मकर' और 'दास' कह कर पुकारा जाता था। ये पुरुष भी होते थे और स्त्रियाँ भी। इनका भाग्य 'भतकों' की अपेक्षा अधिक दुःख-पूर्ण जान पड़ता है। अधिकतर वे घरेलू नौकरों के रूप में होते थे और हर समय घर में रहते थे या बाहर भी स्वामी के कार्य से जाते थे। इनके साथ दुर्व्यवहार के उदाहरण मिलते हैं। श्रावस्तीवासिनी गृहपत्नी वैदेहिका ने अपनी दासी काली को जिस प्रकार पीटा था, उस प्रकार की पिटाई अक्सर बुद्ध-काल में दासियों को सहन करनी पड़ती थी।[2] भिक्षुणी पुण्णिका, जो पहले पनिहारिन थी, अपने पूर्व के जीवन के सम्बन्ध में जब सोचती है, तो उसे अनिवार्य रूप से अपनी स्वामिनी के द्वारा पीड़ित होने की और कठिन शीत में पानी में उतरने की याद आती है।[3] नामसिद्धि जातक में हम एक दासी को रस्सी से पिटते देखते हैं। अट्ठकथाओं में ऐसी दासियों तक के उदाहरण मिलते हैं जिन्होंने अपनी स्वामिनियों के दुर्व्यवहार से तंग आकर आत्म-हत्या करने का प्रयत्न किया। बड़े-बड़े यज्ञों तक में, जिन्हें लोग पुण्य अर्जन करने के लिए करते थे, दास-दासियों को दण्ड और भय से तर्जित होकर, आँसू गिराते हुए, काम करना पड़ता था। इन अश्रुमुख निरीह प्राणियों ने तथागत की करुणा को कितना आकृष्ट

---

१. थेरगाथा, गाथा १००३ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण); मिलाइये मिलिन्द-प्रश्न, पृष्ठ ५५ (भिक्षु जगदीश काश्यप का हिन्दी अनुवाद)।

२. ककचूपम-सुत्तन्त (मज्झिम० १।३।१)।

३. उदकहारी अहं सीते सदा उदकमोतरिं। अय्यानं दण्ड-भय-भीता वाचादोसभयट्टिता। थेरीगाथा, गाथा २३६ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)

किया था, इसे दीघ-निकाय के कूटदन्त-सुत्त तथा संयुत्त-निकाय के यञ्ञ-सुत्त में भली प्रकार देखा जा सकता है। दासों और दासियों के पुत्र भी दास और दासी ही होते थे।[1] इस प्रकार यह प्रथा परम्परागत रूप से चलती थी। खण्डहाल जातक से पता लगता है कि कुछ आदमी भय के कारण भी दास हो जाते थे। राजा जिन लोगों को युद्ध में बन्दी बनाते थे, वे भी अक्सर दास बना कर रक्खे जाते थे। इसी प्रकार दण्ड के रूप में भी लोगों को दास बना लिया जाता था। कुलावक जातक में हमें ऐसा ही एक उदाहरण मिलता है। दासों को अक्सर दान या भेंट में भी दिया जाता था। जीवक ने साकेत के श्रेष्ठि (सेठ) की पत्नी के सात वर्ष पुराने सिर दर्द को ठीक किया था। इसके बदले में उसे सोलह हजार अशर्फी मिलने के अलावा एक दास और एक दासी भी भेंट-स्वरूप मिले थे।[2] राजाओं और ब्राह्मण-महाशालों की तो कोई बात ही नहीं, साधारण गृहस्थ तक भी बुद्ध-काल में दास रखते थे।[3] स्वामियों के घर से दासों के भागने के भी उदाहरण मिलते हैं[4] और इस प्रकार के वर्णन भी मिलते हैं जिनसे प्रकट होता है कि कुछ मूल्य देकर या विशेष अवस्थाओं में दास मुक्त भी कर दिये जाते थे।[5] दासता से मुक्ति उसी प्रकार सुख और सौभाग्य का प्रतीक मानी जाती थी जिस प्रकार ऋण या रोग से मुक्त हो जाना या किसी वीरान मरु प्रदेश को पार कर जाना, या बन्धनागार से छूट जाना। दास पुरुष का तो वह निर्वाण ही था। निर्वाण की उपमा इसीलिए दास की मुक्ति से दी गई है।[6] रायस डेविड्स् ने यह कहा है कि बुद्ध-काल में दासों के साथ दुर्व्यवहार नहीं होता था, और उनकी संख्या भी नगण्य थी।[7] दासों के साथ जो दुर्व्यवहार होता था, उसके कुछ

---

१. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ २२५; जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४०९।
२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २६८।
३. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १०५; जिल्द छठी, पृष्ठ ११७।
४. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ४५२।
५. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३१३; जिल्द छठी, पृष्ठ ५४७।
६. महा-अस्सपुर-सुत्तन्त (मज्झिम० १।४।९)।
७. "For the most part the slaves were household servants, and not badly treated; and their numbers seem to have been

उदाहरण हम पहले दे चुके हैं और उनकी संख्या अल्प नहीं थी, यह इस बात से विदित होगा कि ५०० दासियाँ तो अकेली विशाखा ही अपने पिता के घर से लाई थी,[1] और कौशाम्बी-नरेश उदयन के रनिवास में ५०० दासियाँ थीं। पिप्पलि माणवक के यहाँ दासों के पूरे चौदह गाँव थे जिनकी संख्या उन्हीं के शब्दों में इतनी अधिक थी कि "यदि तुममें से एक-एक को पृथक्-पृथक् दासता से मुक्त करें, तो सौ वर्ष में भी न हो सकेगा।[2]" अन्य अनेक उदाहरण भी इसी प्रकार के दिये जा सकते हैं। भगवान् बुद्ध ने अपने समतावादी धर्म के प्रचार से समाज में जिस व्यापक समभाव और पर-शोषण-विरति की भावनाओं को उत्पन्न किया और दास-दासी-प्रतिग्रहण को अनुचित बतलाया, उन सब का समाज पर कुछ प्रभाव अवश्य पड़ा। अनाथपिण्डिक की दासी पुण्णिका दासी-भाव से मुक्त कर दी गई और उसने श्रेष्ठि की पुत्री का पद पाया। बुद्ध-धर्म की महिमा से ही खुज्जुत्तरा दासी से राज-माता बनी, और न जाने कितने अज्ञात दास-दासी-पुत्र उन लोगों के द्वारा मुक्त किये गये जो भगवान् बुद्ध के प्रभाव में आये। पिप्पलि माणवक के समान न जाने कितने बुद्ध-प्रभाव में आने वाले मनुष्यों ने अपने दासों से कहा, "अब तुम अपने आप सिरों को धोकर मुक्त हो जाओ।"[3] इस प्रकार भगवान् बुद्ध के प्रभाव से यद्यपि दास-दासियों के भाग्य में एक नया परिवर्तन आया और दास-दासी-प्रतिग्रहण को बुरा मानने की विचारधारा समाज में चली, परन्तु फिर भी जब कि समाज में चारों ओर सुख और समृद्धि थी, किसानों के कोट्ठागार धन-धान्य से और सेठों के निष्क-हिरण्य से भरे हुए थे, तो दास-दासियों के रूप में सत्वों का यह वाणिज्य (सत्त-वणिज्जा), मनुष्यों का यह विक्रय (मनुस्स-विक्कय) और विशेषतः भय-तर्जित दासों और कर्मकरों की आँखों से गिरते हुए आँसू, हमारे हृदय पर पीड़ा की एक रेखा अवश्य छोड़ जाते हैं।

---

insignificant." बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ ४० (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०); रायस डेविड्स् के इस मत का अनुसरण या अन्धानुसरण करते हुए डा० नलिनाक्ष दत्त और श्री कृष्णदत्त वाजपेयी ने भी अक्षरशः लिख दिया है। "इनके अतिरिक्त दास भी थे,......उनके साथ अच्छा व्यवहार किया जाता था। इनकी संख्या अधिक न थी।" उत्तर-प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास, पृष्ठ १९।

१. बुद्धचर्या, पृष्ठ ३०८।

२. बुद्धचर्या, पृष्ठ ४१।

३. उपर्युक्त के समान।

पाँचवाँ परिच्छेद

आर्थिक और व्यापारिक भूगोल

बुद्ध-काल में भारतीय जनता का आर्थिक जीवन सुखी और समृद्ध था। अनेक बुद्धकालीन मनुष्यों, विशेषतः सेठों, की प्रभूत सम्पत्ति का वर्णन मिलता है। चम्पा-निवासी श्रेष्ठि-पुत्र सोण कोटिविंश बीस करोड़ का धनी था।[1] अस्सी गाड़ी अशर्फियाँ (हिरण्य) उसके यहाँ थीं।[2] साकेत के सेठ धनंजय ने, अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा के अनुसार, अपनी पुत्री विशाखा के लिए ९ करोड़ के मूल्य से महालता नामक आभूषण को बनवाया था और उसके स्नान-चूर्ण के मूल्य के लिए ५४०० गाड़ी धन दिया था। इसी विशाखा के लिए उसके श्वसुर मृगार श्रेष्ठी ने केवल एक आभूषण एक लाख का बनवाया था। श्रावस्ती के प्रसिद्ध व्यापारी अनाथपिण्डिक ने जेतवन की सारी भूमि को सोने की मुहरों से किनारे से किनारा मिला कर ढाँक कर जेत कुमार से उसे खरीदा था और इसमें उसकी १८ करोड़ मुहरें लगी थीं।[3] कुल मिला कर सेठ को ५४ करोड़ धन जेतवनाराम के बनवाने में व्यय करना पड़ा था।[4] धम्मपदट्ठकथा की 'विसाखाय वत्थु' में कहा गया है कि विशाखा अपने घर से दहेज के रूप में ताँबे, चाँदी और सोने के बर्तनों की पाँच-पाँच सौ गाड़ियाँ, इतनी ही गाड़ियाँ रेशमी और बहुमूल्य वस्त्रों की और ६०,००० बैल और इतनी ही संख्या की

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ १९९।

२. वहीं, पृष्ठ २०४।

३. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४६१; जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ११९ (भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)।

४. सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १३; जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ११९-१२१ (भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)।

गायें लेकर आई थी। धम्मपदट्ठकथा के अनुसार विशाखा मृगारमाता ने १८ करोड़ के मूल्य से पूर्वाराम प्रासाद बनवाया था। संयुत्त-निकाय में श्रावस्ती के दो कंजूस सेठों के मर जाने का उल्लेख है, जिन्होंने क्रमश: अस्सी लाख और सौ लाख अशर्फियाँ छोड़ी थीं। इन दोनों सेठों के सन्तान-हीन होने के कारण यह सब धन राजकोष में चला गया था।[१] इसी प्रकार बब्बु जातक में कहा गया है कि काशी देशके एक धनवान् सेठ का गाड़ा हुआ खजाना ४० करोड़ के सोने का था। असम्पदान जातक में मगध के संख नामक एक सेठ का उल्लेख है जिसके पास १८ करोड़ सम्पत्ति थी और इतनी ही सम्पत्ति उसके एक मित्र वाराणसी के सेठ की बताई गई है। 'असीति कोटि विभवो सेट्ठि' अर्थात् अस्सी करोड़ सम्पत्ति वाले सेठों के अनेक विवरण हमें जातक-कथाओं में मिलते हैं। पेतवत्थु की अट्ठकथा[२] में बताया गया है कि राजगृह के एक व्यापारी के पास इतनी सम्पत्ति थी कि यदि प्रतिदिन एक हजार मुद्राएँ व्यय की जातीं तब भी वह समाप्त नहीं हो सकती थी। धम्मपदट्ठकथा में मगध राज्य के कुम्भघोसक नामक व्यक्ति का उल्लेख है जो फटे पुराने कपड़े पहनता था, परन्तु जिसके पास उसके पिता के द्वारा छोड़ी हुई ४० करोड़ सम्पत्ति जमीन में गड़ी हुई थी। वाराणसी के श्रेष्ठिपुत्र यश और कौशाम्बी के घोषक, कुक्कुट और पावारिक (पावारिय) नामक सेठों की इसी प्रकार प्रभूत सम्पत्ति का वर्णन किया गया है। सुमंगलविलासिनी[३] के अनुसार वही सेठ बुद्ध-काल में वास्तविक रूप से धनवान् माना जाता था जिसके पास ४० करोड़ धन हो और जो प्रतिदिन ५ अम्मण (अनाज नापने का एक माप) से लेकर एक तुम्ब (अनाज नापने का एक अन्य माप) तक कार्षापणों की खरीद-बिक्री करता हो।

बड़े-बड़े सेठ (सेट्ठि) और वणिक् (वाणिजा) ही नहीं, अन्य लोगों की भी प्रभूत सम्पत्ति का वर्णन मिलता है। पिप्पलि माणवक (बाद में आर्य महाकाश्यप) जो मगध देश के महातित्थ (महातीर्थ) नामक ग्राम के निवासी थे, ८७ करोड़ सम्पत्ति के स्वामी थे। इसी प्रकार सारिपुत्र के यहाँ ५०० सोने की पाल-

---

१. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ८०-८२।

२. पृष्ठ २-९।

३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८६।

कियाँ और महामोग्गल्लान के यहाँ ५०० गाड़ियाँ थीं। उरुवेला के सेनानी निगम की तरुणी सुजाता ने बरगद के पेड़ के देवता से यह मनौती की थी कि यदि प्रथम गर्भ में वह पुत्र प्रसव करेगी तो प्रति वर्ष एक लाख के व्यय से उसकी पूजा करेगी।[१]

अनेक बुद्धकालीन ब्राह्मण-महाशालों की भी प्रभूत सम्पत्ति के वर्णन मिलते हैं। उन्हें अक्सर 'अड्ढा', 'महद्धना' और 'महाभोगा' कहकर पुकारा गया है। अनेक जातक-कथाओं में ऐसे ब्राह्मणों के उल्लेख हैं जिन्हें 'असीति-कोटि-धन-विभवा' अर्थात् अस्सी करोड़ धन-वैभव वाले कहा गया है।[२] आचार्य बुद्धघोष ने परमत्थ-जोतिका[३] में ब्राह्मण-महाशाल की परिभाषा करते हुए ऐसे ब्राह्मणों को महाशाल (महासाल) बताया है जिनके पास अस्सी करोड़ धन हो। अंग देश के चम्पा नगर का स्वामी सोणदण्ड, जिसे वह नगर मगधराज श्रेणिक बिम्बिसार की ओर से दान के रूप में मिला हुआ था, इसी प्रकार का ब्राह्मण-महाशाल था। इसी प्रकार मगध देश के खाणुमत गाँव का ब्राह्मण कूटदन्त था। कोसल देश में तो ऐसे ब्राह्मण महाशाल काफी संख्या में थे। ओपसाद का चंकि ब्राह्मण, इच्छानंगल का तारुक्ख, उक्कट्ठा का पोक्खरसादि, सालवतिका का लोहिच्च, ये सब ब्राह्मण महाधनी और महा-ऐश्वर्य वाले थे।

जहाँ तक कृषकों की अवस्था का सम्बन्ध है, हम मगध के उर्वर खेतों और वहाँ के शस्यसम्पन्न, अकंटक, अपीड़ित, क्षेमयुक्त और हस्तिकाय, अश्वकाय और रथकाय से युक्त, हिरण्य-सुवर्ण-मय, द्रव्य-सम्भार-सुलभ (दब्बसम्भारसुलभा) जनपदों को देख चुके हैं। धनधान्यपूर्ण, समृद्ध और स्फीत बुद्धकालीन नगरों के चित्र को भी हम देख चुके हैं। श्रावस्ती में ऐसी कोई वस्तु नहीं थी जो मिल न सकती हो। आपण जैसे निगमों का व्यस्त व्यापारिक जीवन था। वाराणसी का कला-कौशल और धन-वैभव अनुपम था। मिथिला के चार महाद्वारों के

---

१. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ८९ (भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)।

२. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ३४९, ४६६; जिल्द दूसरी, पृष्ठ २७२; जिल्द चौथी, पृष्ठ १५, २२।

३. जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३१३; मिलाइये सुमंगलविलासिनी, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५८६।

बाहर 'यवमज्झक' बाजारों की रचना आधुनिक योजनाबद्ध जैसी लगती है। सुत्त-निपात में धनिय गोप के सुखमय जीवन को भी हमने देखा है। पंच गोरस सर्वत्र सुलभ थे। लिच्छवियों की वैशाली के भरे हुए ७७०७ धान्यागारों और अनाज से भरे हुए कोठों के कारण ही 'थुल्लकोट्ठित' नाम प्राप्त करने वाले कुरु राष्ट्र के प्रसिद्ध निगम को देखकर यह कहना कुछ अधिक नहीं होगा कि भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में भारतीय जनता का आर्थिक जीवन सुखी और समृद्ध था और देश में स्वर्ण-रजत, धन-धान्य और पशु-धन की कमी नहीं थी। महापरिनिब्बाण-सुत्त में कहा गया है कि कुशावती नगरी 'अशन करो, पान करो, भोजन करो', 'अस्नाथ ', पिबथ, खादथ', इन तीन शब्दों से गुंजायमान रहती थी। ऐसा ही अन्य अनेक बुद्धकालीन महानगरों के सम्बन्ध में कहा जा सकता है। दीघ-निकाय के कूटदन्त-सुत्त में कहा गया है, "मनुष्य हर्षित, मोदित, गोद में पुत्रों को नचाते, खुले घर विहरते थे।[1] इसे सुखी और समृद्ध आर्थिक जीवन का हम प्रतीक मान सकते हैं।

शिल्पकारी का बुद्धकालीन समाज के जीवन में महत्त्वपूर्ण और आदरणीय स्थान था। एक ओर शिल्पकारी कृषि द्वारा उत्पादित कच्चे माल पर आधारित थी तो दूसरी ओर कृषकों की आवश्यकताओं की पूर्ति कर वह तत्कालीन ग्रामीण जीवन को आत्मभरित भी बनाने वाली थी। बुद्धकालीन व्यापार और उद्योग इन्हीं शिल्पकारियों पर और कृषि द्वारा उत्पादित कच्चे माल पर निर्भर थे। छोटा हो या बड़ा, सब को अपने प्रारम्भिक जीवन में बुद्ध-काल में यह चिन्ता रहती थी, "बिना शिल्प के जीविका करना मुश्किल है। क्यों न मैं शिल्प सीखूं।[2]" लड़की देते समय तो यह विशेष रूप से देखा जाता था कि लड़का कोई शिल्प जानता है या नहीं। जिस प्रकार वंकहार जनपद के बहेलिये ने अपनी लड़की चापा को उपक आजीवक को देने से पूर्व उससे पूछा था, "क्या कोई शिल्प भी जानते हो ?[3]" उसी प्रकार सुप्रबुद्ध शाक्य

---

१. मूल पालि इस प्रकार है, "मनुस्सा च मुदा मोदमाना उरे पुत्ते नच्चेन्ता अपारुतघरा मञ्ञे विहरिंसु।"

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २६७।

३. जानासि पन किंचि सिप्पं ति, थेरीगाथा, पृष्ठ ७३ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

भी तब तक अपनी पुत्री भद्रा कात्यायनी को कुमार सिद्धार्थ को देने को तैयार नहीं हुआ था जब तक शिल्पों में भी उन्होंने अपनी दक्षता का पूरा परिचय नहीं दे दिया। शाक्य लोग इस बात से बड़े चिन्तित हो गये थे कि कुमार सिद्धार्थ शिल्पों के सीखने में मन नहीं लगाते, परन्तु जब कुमार ने कई विशेष शिल्पों में दक्षता दिखाई, तो उन लोगों की शंका दूर हुई।[1] कोसलराज प्रसेनजित् ने, जैसा हम पहले देख चुके हैं, तक्षशिला में शिक्षा पाई थी और वहाँ उसने शिल्पों को भी सीखा था। राजकुमारों के लिए उस समय शिल्प सीखना प्रायः अनिवार्य माना जाता था। पुरुषों के समान स्त्रियों के लिए भी शिल्प, गृह-शिल्प, सीखना आवश्यक माना जाता था। भगवान् बुद्ध ने विवाह-योग्य बालिकाओं को उपदेश देते हुए उनसे कहा था कि वे जिस घर में जायँ और वहाँ जो कपास या ऊन के गृहशिल्प चलते हों, उनमें उन्हें पूरी दक्षता और कुशलता प्राप्त करनी चाहिए।[2] अपने हाथ से काम करने में स्त्रियाँ उस समय कितना गौरव समझती थीं, यह इस बात से जाना जा सकता है कि महापजावती गोतमी ने अपने हाथ से कते-बुने एक धुस्से के जोड़े को भगवान् को अर्पित किया था।[3]

अनेक प्रकार की शिल्पकारियाँ (सिप्पायतनानि) भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में प्रचलित थीं। सामञ्ञफल-सुत्त (दीघ० १।२) में शिल्पकारों के २५ प्रकार इस प्रकार वर्णित हैं :—

१. हत्थारोहा——हाथी की सवारी करने वाले।

२. अस्सारोहा-–अश्वारोही।

---

१. जातक,प्रथम खण्ड, पृष्ठ ७६ (भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)। इसी प्रकार ललितविस्तर में उल्लेख है कि शुद्धोदन ने जब दण्डपाणि शाक्य से प्रार्थना की कि वह अपनी कन्या को कुमार सिद्धार्थ के लिये दे, तो दण्डपाणि ने कहा, "अस्माकं चायं कुलधर्मः शिल्पज्ञस्य कन्या दातव्या, नाशिल्पज्ञस्येति। कुमारश्च न शिल्पज्ञो....तत्कथमशिल्पज्ञायाहं दुहितरं दास्यामि"। पृष्ठ १४३।

२. अंगुत्तर-निकाय, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३७-३८; जिल्द चौथी, पृष्ठ २६५; मिलाइये आनन्द कुमारस्वामी तथा आई० बी० हॉर्नर : दि लिविंग थॉटस् ऑव गौतम दि बुद्ध, पृष्ठ १२३।

३. पपंचसूदनी, बुद्धचर्या, पृष्ठ ७१ में उद्धृत।

३. रथिका—रथ को चलाने वाले।
४. धनुग्गहा—धनुष चलाने वाले।
५-१३. चेलका. . .योधिनो—युद्ध में विभिन्न काम करने वाले लोग।
१४. दासकपुत्ता—दास लोग।
१५. आलारिका—रसोइया।
१६. कप्पका—नाई।
१७. नहापका—स्नान कराने वाले।
१८. (सूदा या सुदा)—हलवाई।
१९. मालाकारा—माला बनाने वाले।
२०. रजका—धोबी।
२१. पेसकारा—जुलाहे (रँगरेज भी)।
२२. नलकारा—बेंत और बाँस की वस्तुएँ बनाने वाले।
२३. कुम्भकारा—कुम्हार।
२४. गणका—हिसाब-किताब की जाँच करने वाले।
२५. मुद्दिका—मुनीम।

उपर्युक्त शिल्पों या पेशों के अतिरिक्त अन्य अनेक पेशे बुद्ध-काल में प्रचलित थे, जैसा कि उपर्युक्त सुत्त के ही इन शिल्पों के संगणन के बाद राजा अजातशत्रु के इन शब्दों से प्रकट होता है, "यानि वा पन अञ्ञानि पि एवंगतानि पुथु सिप्पायतनानि", अर्थात् "इनके अलावा भी अन्य अनेक शिल्प-स्थान हैं।" पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं के आधार पर हम यहाँ कुछ मुख्य शिल्पों का उल्लेख करेंगे, जो बुद्ध-काल में प्रचलित थे।

सबसे पहले वस्त्र-उद्योग से सम्बन्धित शिल्पों को लेते हैं। इस उद्योग से सम्बन्धित सबसे महत्वपूर्ण शिल्प बुनकरों (तन्तवाया या पेसकारा) का था। साथ में धुनने, कातने आदि के काम भी चलते थे। अनेक प्रकार के सूक्ष्म वस्त्र बुद्ध-काल में बनाये जाते थे, जैसे कि क्षौम या अलसी की छाल के सूक्ष्म वस्त्र (खोमसुखुमानं), कपास के सूक्ष्म वस्त्र (कप्पासिकसुखुमानं), कौशेय सूक्ष्म वस्त्र (कोसेय्यसुखुमानं) और ऊन के सूक्ष्म वस्त्र (कम्बलसुखुमानं)।[1] कपास, कौशेय, क्षौम तथा कोटुम्बर नगर के

१. देखिये महासुदस्सन-सुत्त (दीघ० २।४)।

वस्त्रों का उल्लेख महाजनक जातक में है। "कप्पासकोसियं खोमकोटुम्बरानि च।" हम पहले देख चुके हैं कि काशी जनपद बुद्ध-काल में अपने बहुमूल्य वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध था। काशी के कोमल वस्त्र (कासिकं च मुदुवत्थं) अपनी ख्याति के लिये विदेशों तक प्रसिद्ध थे। उनका मूल्य एक लाख कहापण तक (सतसहस्सग्घनिकं) होता था। गन्धार और कोटुम्बर जनपद अपने बहुमूल्य कम्बलों और ऊनी वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध थे।[1] सिवि के दुशालों[2] और बाहित या बाहिय के महीन वस्त्रों[3] को भी हम देख चुके हैं। शाक्य जनपद का खोमदुस्स नगर तो अपने क्षौम वस्त्रों के लिए प्रसिद्ध ही था। कौशेय (कोसेय्य) वस्त्रों में उस समय सोने का काम भी किया जाता था। मणियों से जटित, दोनों ओर से पालिश किये, चिकने, नीले और लोहित वर्ण के काशी वस्त्रों को हम पहले देख ही चुके हैं।[4] राजाओं की पगड़ियाँ भी स्वर्णजटित वस्त्र (कंचनपट्ट) की होती थीं।[5] और उनके हाथियों की झूलें भी इसी प्रकार सोने से जड़ी होती थीं।[6] बड़े-बड़े रोयें वाले आसन, चित्रित आसन, उजले कंबल, फूलदार विछावन, सिंह-व्याघ्र आदि के चित्र वाले आसन, झालरदार आसन, काम किए हुए आसन, लम्बी दरी, हाथी के साज, घोड़े के साज, रथ के साज, कदलि मृग की खाल के बने आसन, चँदवेदार आसन,[7] आदि वस्तुएँ उस समय पूरी कलात्मकता के साथ बनाई जाती थीं। इसी प्रकार पलंगों पर बिछाने के लम्बे बालों वाले बिछौने, सफेद ऊनी बिछौने, फूल-बूटे कढ़े बिछौने, कदलि मृग-चर्म के बिछौने, यहाँ तक कि मसहरियाँ (उत्तरच्छदनानि) और लाल रंग के तकिये (लोहितकूपधानानि) भी उस समय बनते थे और समृद्ध लोग उनका उपयोग

---

१. देखिये तृतीय परिच्छेद में इन जनपदों के विवरण।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २७२।

३. बाहितिय-सुत्तन्त (मज्झिम० २।४।८)।

४. महापदान-सुत्त (दीघ० २।१); महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ० २।३); संगीति-परियाय-सुत्त (दीघ० ३।१०)।

५. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३२२।

६. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ ४०४।

७. ब्रह्मजाल-सुत्त (दीघ० १।१)।

करते थे।[1] पाँच सौ के मूल्य तक के क्षौम-मिश्रित कम्बल बुद्ध-काल में बनाए जाते थे।[2] बड़े बड़े कालीन बनाने में सिद्धहस्त कारीगर उस समय थे। बोधि राजकुमार को हमने सुंसुमारगिरिनगर में तथागत का पाँवड़े बिछाकर स्वागत करते देखा है। हम पहले देख ही चुके हैं कि अभिजात कुल की स्त्रियाँ भी अपने हाथ से कातने-बुनने के काम को करना सम्माननीय समझती थीं और बालिकाओं को उपदेश देते समय भगवान् बुद्ध ने उन्हें गृह-शिल्पों में दक्षता प्राप्त करने के लिए कहा था। रुई को धुनने के लिए स्त्रियाँ एक धनुषाकार यन्त्र का उपयोग करती थीं, जो आजकल के पींजन या धुनकी के समान होता था। जातक[3] में स्त्रियों के कपास धुनने के इस धनुष (इत्थीनं कप्पास-पोत्थन-धनुका) का उल्लेख है। महीन सूत कात कर (सुखुम सुत्तानि कन्तित्वा) उनकी गुण्डी (गुलं) बनाने की भी क्रिया बुद्ध-काल में ज्ञात थी[4]। कपड़े बेचने वाले व्यापारी 'दुस्सिक' कहलाते थे। बड़े-बड़े लोगों के यहाँ बहुमूल्य वस्त्रों के गोदाम भरे रहते थे। साकेत के धनंजय सेठ के यहाँ ऐसे कई 'दुस्स कोट्ठागार' (कपड़े के गोदाम) थे। कपड़े के बुनने के साथ ही रँगने का काम भी बुद्ध-काल में अत्यन्त उत्कृष्ट कला के साथ किया जाता था। विनय-पिटक में चीवर के रँगने के सम्बन्ध में जो निर्देश दिये गये हैं[5], उनसे पता चलता है कि बुद्ध-काल में कपड़े के रँगाई की कला अत्यन्त उच्च स्तर पर थी। मज्झिम-निकाय के वत्थ-सुत्तन्त से भी यही बात प्रकट होती है। काले (काल), नीले (नील), सफेद (सेत), पिंगल (किशमिशी), हल्दी के रंग के (हलिद्द), सुनहली (सोवण्ण), चाँदी के रंग के (रजतमय), लाल (रत), मंजिष्ठा रंग (मांजेट्ठ) जैसे अनेक रंगों का ज्ञान उस समय था और विभिन्न रंगों में कपड़े रँगे जाते थे। वाराणसी के नीले रंग के और कुसुम्भी बहुमूल्य वस्त्रों के सम्बन्ध में हम तृतीय परिच्छेद में कह चुके हैं। रजक या

---

१. देखिये महासुदस्सन-सुत्त (दीघ० २।४)।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २७४।

३. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ४१।

४. देखिये जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ३३६।

५. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २७७-२७८; देखिये विहार की रंगाई के सम्बन्ध में भी, वहीं पृष्ठ ४५४-४५८।

रजकार (धोबी) लोग ही प्रायः रँगने का काम भी करते थे। रंगरेजों या कुशल चित्रकारों के द्वारा तख्तों और दीवालों पर स्त्री-पुरुषों के सुन्दर चित्र बनाये जाने का उल्लेख संयुत्त--निकाय के दुतिय गद्दुल-सुत्त में है। कपड़े सीने वाले दर्जी भी उस समय होते थे और वे 'तुण्णकारा' कहलाते थे। विनय-पिटक के महावग्ग में बौद्ध भिक्षु और भिक्षुणियों के वस्त्रों के सम्बन्ध में जो निर्देश दिये गये हैं, उनसे स्पष्ट विदित होता है कि सिलाई की कला एक उच्च रूप में बुद्ध-काल में लोगों को ज्ञात थी। दीघ-निकाय के कस्सप-सीहनाद-सुत्त से भी यही बात विदित होती है।

धातुकारी का काम करने वाले लोग साधारणतः कम्मार (कर्मार) कहलाते थे। कम्मार शब्द का प्रयोग मज्झिम-निकाय के संखारुप्पत्ति-सुत्तन्त में तो निश्चयतः सुवर्णकार के लिए ही किया गया है, परन्तु कुछ जातकों में लुहार के लिए भी इस शब्द का प्रयोग किया गया है। वैसे, साधारणतः लुहार के लिये लोहकार और सुनार के लिए सुवण्णकार, सोण्णकार या मणिकार शब्द का प्रयोग किया गया है। बुद्ध-कालीन स्वर्णकार अधिकतर बहुत धनवान् व्यक्ति होते थे। भिक्षुणी इसिदासी (ऋषिदासी) ने अपने एक पूर्व पुरुष-जन्म की बात सुनाते हुए कहा है, "मैं बहुत धनवाला स्वर्णकार थी।" "सुवण्णकारो अहं बहुतधनो।"[1] बुद्ध-काल में आभूषण बमाने की कला अत्यन्त उच्च कोटि की थी। अनेक प्रकार के आभूषण उस समय बनाये जाते थे, जैसे कि, चूड़ियाँ (हत्थत्थरण), मुद्रिकाएँ (मुद्दिका), मालाएँ, कुण्डल, मेखला, बिछुए (कायूर), आदि। मज्झिम-निकाय के धातु-विभंग-सुत्तन्त में पट्टिका, कुण्डल, ग्रैवेयक और सुवर्णमाला नामक आभूषणों के भी वर्णन हैं। विशाखा के महालता आभूषण का उल्लेख हम पहले कर ही चुके हैं। स्वर्ण के आभूषणों में बहुमूल्य रत्न और मणियाँ भी जड़ी जाती थी।[2] रत्नों के बहुमूल्य हार बनाये जाते थे।[3] नील, पीत, लोहित, अवदात और पांडु रंग के सूत में पिरोई हुई, सुन्दर पालिश की हुई (सुपरिकर्मकृत) वैदूर्य मणियों के भी उल्लेख हैं।[4] मज्झिम-

---

१. थेरीगाथा, गाथा ४३५ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।
२. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ २३३।
३. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ३८५।
४. महासकुलुदायि-सुत्तन्त (मज्झिम० २।३।७)।

निकाय के धातु-विभंग-सुत्तन्त में बताया गया है कि किस प्रकार एक चतुर स्वर्णकार अपनी अँगीठी (उल्कामुख) को बाँधता है, उसे लीपता है, सँडासी से सोने को पकड़कर अँगीठी में डालता है, समय-समय पर धौंकता है, समय-समय पर पानी से छींटे देता है, समय-समय पर उसे चुपचाप छोड़ देता है, आदि। इसी निकाय के संखारुप्पत्ति-सुत्त में एक चतुर सुनार द्वारा भट्टी (उल्कामुख) में सोने को डालकर उसे शुद्ध करने का उल्लेख है। ताँबे, काँसे और लोहे की धातुओं के अनेक प्रकार के बर्तनों के बनने के उल्लेख हैं। कृषि में काम आने वाले औजार लोहे से बनाये जाते थे और महीन काम के लिए भी धातुओं का उपयोग होता था। सुइयाँ (सूची) बनाई जाती थी, जिनके पैनेपन और हल्केपन की प्रशंसा की गई है। सूचि जातक में हम एक कुशल लुहार को वाराणसी के बाजार में अपनी सुइयों को बेचते हुए और उनकी इस प्रकार प्रशंसा करते देखते हैं, "कौन है जो यह सुई खरीदेगा ? अकर्कश, गोल, अच्छे सुन्दर पत्थर से रगड़ी हुई, चिकनी तथा तीखी नोक वाली ! कौन है जो यह सुई खरीदेगा? अच्छी तरह मँजी हुई, सुन्दर छेद वाली, क्रमशः गोल, (वस्त्र आदि में) प्रवेश कर जाने वाली तथा मजबूत !" इसी प्रकार वीणा के तार (तन्ति) बड़ी सूक्ष्म कला के साथ बनाये जाते थे।[1] चापकार या उसुकार (वाण बनाने वाले लोग) जिस कुशलता से सीधे वाण बनाते थे और इस कार्य में उन्हें जो विभिन्न क्रियाएँ करनी पड़ती थीं, उनका वर्णन जातक में किया गया है।[2] निहाई (अधिकरणिय) और भट्टी (उखा) का भी उल्लेख किया गया है। हाथीदाँत का काम करने वाले (दन्त-कारा) बुद्ध-काल में कुशल कारीगर माने जाते थे। मज्झिम-निकाय के महासकुल-दायि-सुत्तन्त में बताया गया है कि किस प्रकार एक चतुर दन्तकार सिझाये दाँत से जिस किसी वस्तु को चाहता है, बना सकता है। दन्तकार लोग एक प्रकार की आरी (खरकच) से अपना काम करते थे और भारत की बनी हुई हाथीदाँत की वस्तुएँ बाहर निर्यात की जाती थीं।

अनेक प्रकार के घड़े और बर्तन, जो उपयोगी होने के साथ-साथ कलापूर्ण भी होते थे, बुद्धकालीन कुम्भकार बनाते थे। चाक (चक्क) पर आजकल के समान ही

१. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २४९।
२. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ६६।

प्रायः बर्तन बनाये जाते थे। अनेक प्रकार की रंग-बिरंगी चित्रकारी भी बर्तनों पर की जाती थी। मज्झिम-निकाय के महासुकुलुदायि-सुत्तन्त में बताया गया है कि किस प्रकार एक चतुर कुम्भकार सिझाई मिट्टी से जो भाजन चाहता है, बना लेता है।

लकड़ी का काम करने वाले लोग अक्सर वड्ढकी या बढ़ई कहलाते थे। उनका काम अधिकतर भवन-निर्माण-कला से सम्बन्धित था। बड़े निर्माण-कार्यों को करने वाले बढ़ई (महावड्ढकी) कहलाते थे। भवन-निर्माण से ही सम्बन्धित पत्थर को काटकर काम करने वाले 'पासाणकोत्तका' और ईंटों का काम करने वाले 'इट्ठकवड्ढकी' लोग होते थे। राज लोग गृहपति-शिल्पकार (गहपति सिप्पकार) कहलाते थे। ईट (इट्ठक) और मिट्टी (मत्तिका) मे प्रायः घर बनाये जाते थे। चूने (उदुक्खल, उल्लोक) का भी प्रयोग किया जाता था। बढ़ई लोग लकड़ी के खिलौने भी बनाते थे। कृषकों के लिए यन्त्र (यन्तानि) और वस्त्र-उद्योग से सम्बद्ध औजार बनाना भी वड्ढकि लोगों का ही काम था। लकड़ी काट कर विभिन्न वस्तुएं बनाने का काम करने वाले तच्छक (तच्छका) भी एक प्रकार के बढ़ई होते थे। इसी प्रकार कुशलतापूर्वक खराद करने वालों के भी उल्लेख हैं और रथ के अंग-प्रत्यंग बनाने वालों के भी।

उपर्युक्त शिल्पों के अतिरिक्त अन्य अनेक शिल्प बुद्ध-काल में विद्यमान थे। अनेक प्रकार के चिकित्सक (तिकिच्छका) और वैद्य (वेज्ज) उस समय थे, जो जड़ी-बूटियों से ओषधोपचार करते थे। चीर-फाड़ करने वाले (मल्लकत्ता) वैद्य भी उस समय थे। बाल-रोगों के विशेषज्ञ वैद्य 'दारक तिकिच्छका' कहलाते थे। माला बनाने वाले 'मालाकारा' और फूल, काशिक चन्दन, अगरु आदि सुगन्धित वस्तुएँ बेचने वाले 'गन्धिका' लोग काफी संख्या में थे। खश भी खोदी जाती थी और इस सम्बन्धी उद्योग भी सम्भवतः चलता था।[1] इसके अलावा नृत्य-गीत और वाद्य में कुशल 'नच्च-गीत-वादित-कुसला' कलाकार होते थे, जो नाटकीय अभिनय और 'समज्जा' जैसे खेलों से जनता का मनोरंजन करते थे। रस्सी पर नाच दिखाने

---

१. स्थविर मालुंक्यपुत्त ने कहा है, "जैसे खश के लिए लोग उशीर को खोदते हैं, वैसे ही तुम तृष्णा की जड़ को खोदो।" थेरगाथा, पृष्ठ १२० (हिन्दी अनुवाद)।

वाले 'लंघन नटका' और बाँस पर चढ़कर खेल दिखाने वाले नट भी उस समय थे। एक ऐसे नट और उसके शिष्य मेदकथालिका के खेल और मनोरंजक परिसंवाद का आँखों देखा हाल स्वयं भगवान् बुद्ध ने अपने मुख से एक उपदेश को समझाने के लिए वर्णन किया है,[1] जो उस चित्र को आज भी हमारे लिए सजीव बनाता है। बुद्ध-काल में नाना शिल्पों की शिक्षा उसी प्रकार महत्वपूर्ण मानी जाती थी, जिस प्रकार तीन वेदों की (तयो वेदा सिप्पानि च) और उनके आचार्यों का प्रायः समान ही आदर होता था।

भिन्न-भिन्न शिल्पो को करने वाले लोगों के संघ बुद्ध-काल में बने हुए थे, जो 'सेणियो' (श्रेणयः) या 'पूगा' कहलाते थे। जातक के वर्णनानुसार १८ प्रकार के शिल्पकारों के संघ (अट्ठारस सेणियो) बुद्ध-काल में विद्यमान थे।[2] इनमें से केवल चार का स्पष्टतः उल्लेख पाया जाता है, जैसे कि (१) वड्ढकि-सेणि, (२) कम्मार-सेणि (३) चम्मकार-सेणि और (४) चित्तकार-सेणि।[3] इस प्रकार बढ़ई, धातुकार, चर्मकार और चित्रकार, इन चार प्रकार के कारीगरों के संघ या श्रेणियाँ बुद्ध-काल में निश्चित रूप से विद्यमान थी। शेष १४ 'सेणियो' के सम्बन्ध में हम केवल अनुमान लगा सकते हैं, निश्चयतः नहीं कह सकते कि इन्ही शिल्पकारों के केवल संघ थे। चूँकि बुद्ध-काल में प्रचलित शिल्पों की संख्या १८ से बहुत अधिक थी, इसलिए यह भी सम्भव है कि शिल्पकारों के संघों की संख्या भी १८ से ऊपर रही हो। रायस डेविड्स् ने बुद्धकालीन शिल्पों का १८ भागों में वर्गीकरण किया है और कहा है कि इनमें से प्रायः प्रत्येक के संघ या 'सेणियो' थे[4], जिसे अनुमानाश्रित ही कहा जा सकता है। जैसा हम पहले कह चुके हैं, केवल चार शिल्पों के सम्बन्ध में हमें यह निश्चित सूचना मिलती है कि उनके संघ थे। शेष १४ श्रेणियाँ किन शिल्पों से सम्बन्धित

---

१. संयुत्त-निकाय के सेदक-सुत्त में। देखिये संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), दूसरा भाग, पृष्ठ ६९५-६९६।

२. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ २२, ४२७।

३. उपर्युक्त के समान।

४. बुद्धिस्ट इण्डिया पृष्ठ ५७-६० (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०)।

थीं, इसके बारे में आज केवल अनुमान लगाया जा सकता है। व्यावसायिक संगठन-विशेष के रूप में 'पूग' शब्द का प्रयोग विनय-पिटक के पाचित्तिय-काण्ड (पाचित्तिय पालि, श्री नालन्दा संस्करण, पृष्ठ ३४४) में 'पूगपरिक्खारनिक्खिपनवत्थु' में है। अंगुत्तर-निकाय के तिक-निपात के एक सुत्त में भी पूग में जाकर किसी व्यक्ति के द्वारा झूठी गवाही देने की बात कही गई है, जिससे विदित होता है कि झगड़ा होने पर गवाहियाँ पूगों में ली जाती होंगी।

बुद्ध-काल में अधिकतर शिल्प पितृक्रमागत ढंग से चलते थे। एक कुम्भकार या चम्मकार का पुत्र प्रायः उसी काम को करता था जो उसके परिवार में होता चला आता था। यही कारण है कि 'कुम्भकार-कुलं', 'सत्थवाह-कुलं', 'पण्णिक-कुलं' जैसे प्रयोग, जिनमें विशिष्ट शिल्पों का सम्बन्ध विशिष्ट परिवारों के साथ कर दिया गया है, हमें जातकों में देखने को मिलते हैं। विभिन्न शिल्पों का स्थानीयकरण भी बुद्ध-काल में प्रायः देखा जाता है। एक विशेष शिल्प को करने वाले लोग विशिष्ट ग्रामों और नगरों की वीथियों में रहते थे, जिनके नाम उनके नाम पर ही अक्सर पड़ जाते थे। कुम्भकार जातक में हम देखते हैं कि वाराणसी के समीप 'कुम्भकार गाम' नामक एक गाँव कुम्भकारों का ही बसा हुआ था। इसी प्रकार अलीन-चित्त-जातक के अनुसार 'वड्ढकिगाम' नामक एक बढ़इयों का गाँव भी वाराणसी के समीप बसा हुआ था। समुद्दवाणिज जातक में भी इस गाँव का उल्लेख हुआ है। इसी प्रकार एक 'नेसादगाम' (निषाद-ग्राम) भी था।[1] सूचि जातक के अनुसार दो 'कम्मारगाम' भी थे, जो एक दूसरे के पास बसे हुए थे। इसी प्रकार मज्झिम-निकाय के सुभ-सुत्तन्त में एक 'नलकारगाम' का उल्लेख है, जो श्रावस्ती के समीप स्थित था। इस गाँव में, जैसा उसके नाम से स्पष्ट है, अधिकतर निवासी बाँस की टोकरी आदि बनाने का काम करते थे। विभिन्न नगरों की वीथियों के नाम अक्सर उनमें बसने वाले शिल्पकारों के नाम पर पड़ जाते थे। इस प्रकार जातकों में हम दन्तकार-वीथि[2], (हाथीदाँत का काम करने वाले कारीगरों की गली), रजक-वीथि और तन्तविततट्ठानं[3] (जुलाहों का स्थान) जैसे स्थानों के प्रयोग देखते हैं।

---

१. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३६; जिल्द छठी, पृष्ठ ७१।
२. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १९७।
३. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ३५६।

एक विशेष प्रकार के शिल्पकारों का प्रधान 'जेट्ठक' या 'पमुख' ('पामुख' भी) (प्रमुख) कहलाता था। समुद्दवाणिज जातक के वर्णनानुसार वाराणसी से थोड़ी दूर एक वड्ढकिगाम में बढ़इयों के १००० परिवार रहते थे, जिनमें से प्रत्येक ५००-५०० बढ़इयों के ऊपर एक-एक जेट्ठक के हिसाब से दो बढ़ई जेट्ठक थे। "कुलसहस्से पञ्चन्नं पञ्चन्नं कुलसतानं जेट्ठका द्वे वड्ढकि अहेसुं।" विशिष्ट शिल्प के साथ जेट्ठक का नाम जोड़ कर अक्सर प्रयोग किया जाता था, जैसे कम्मारजेट्ठक, मालाकारजेट्ठक, वड्ढकिजेट्ठक आदि। व्यापारिक समुदायों के जेट्ठक 'सत्थवाह जेट्ठक' कहलाते थे। इन जेट्ठकों के, जो प्रायः निर्वाचित होते थे, काफी अधिकार थे और राज-दरबार में उन्हें प्रायः एक पदाधिकारी माना जाता था। उरग जातक में व्यावसायिक संघों के दो प्रमुखों को हम राजा के मन्त्रियों के रूप में देखते हैं। कारीगरों में कोई झगड़ा होने पर उसका निर्णय जेट्ठक लोग ही करते थे और सामान्यतः एक विशिष्ट शिल्प से सम्बन्धित सब बातों पर उसके जेट्ठक का अधिकार होता था। रायस डेविड्स[1] और रिचार्ड फिक[2] ने बुद्धकालीन शिल्पकार-संघों या 'पूगों' या 'सेणियों' की तुलना मध्ययुगीन यूरोप के गिल्डों (guilds) से की है।

व्यापार या वाणिज्य (वणिज्जा) की एक उच्च विकसित अवस्था हमें बुद्ध-काल में देखने को मिलती है। उस समय देश का प्रायः सारा व्यापार गहपति (गृहपति-वैश्य) लोगों के हाथ में था, जिनकी प्रभूत सम्पत्ति का हम पहले वर्णन कर चुके हैं। राजगृह, श्रावस्ती, कौशाम्बी, वाराणसी, चम्पा, वैशाली, तक्षशिला, भद्रवती, मिथिला और आपण जैसे नगरों में अनेक धनी सेठ उस समय थे, जिनका सामाजिक जीवन में महत्वपूर्ण स्थान था। जनपदों में भी इसी प्रकार सेठ होते थे, जिन्हें 'जनपद सेट्ठि' कहा जाता था। ये व्यापार का काम करते थे और लेन-देन का काम भी। सामाजिक जीवन के अधिक जटिल न होने के कारण अभी उस शोषण के दुष्परिणाम दृष्टिगोचर नहीं हो रहे थे जो एक पूंजीवादी समाज से सम्बन्धित है। यह इस

---

१. बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ ६० (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०)।

२. दि सोशल आर्गेनिजेशन इन नौर्थ-ईस्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम, पृष्ठ २८४।

बात से प्रकट होता है कि इस समय किसी जनपद की समृद्धि के लिए उसके अन्दर सेठ या सेठों का होना आवश्यक माना जाता था। धम्मपदट्ठकथा में कहा गया है कि राजा प्रसेनजित् के राज्य में कोई बड़ा सेठ नहीं था। इसलिए उसकी प्रार्थना पर मगध-राज बिम्बिसार ने अपने राज्य के प्रसिद्ध सेठ धनंजय को कोसल में बसने भेज दिया था, जिसने साकेत में आकर अपना व्यवसाय आरम्भ किया।[१] समाज में सेठों का कितना आदर था और उनकी कितनी बड़ी शक्ति थी, यह इसी से जाना जा सकता है कि राजाओं से उनके प्रायः मित्रता के सम्बन्ध रहते थे और एक दूसरे के यहाँ निमन्त्रण आदि में आना-जाना होता था। श्रावस्ती के मृगार श्रेष्ठी के पुत्र की बारात में, जो साकेत के धनंजय सेठ के यहाँ गई थी, राजा प्रसेनजित् बराती बन कर गया था और कई महीने तक वहाँ ठहरा था। राजगृह का सेठ जब भगवान् बुद्ध और उनके भिक्षु-संघ के लिए भोजन तैयार करवा रहा था तो अनाथपिण्डिक ने उससे पूछा था, "क्या आपके यहाँ महाराज बिम्बिसार भोजन के लिए आने वाले है ?"[२] धम्मपद-ट्ठकथा के अनुसार राजा बिम्बिसार का भी इतना सुन्दर महल नहीं था जितना उसी के राज्य के राजगृह-निवासी श्रेष्ठी जोतिक का। राजा बिम्बिसार लकड़ी के बने महल में रहता था, जबकि जोतिक का भवन पत्थर का बना हुआ था। इस पर ईर्ष्या करते हुए कुमार अजातशत्रु को यह कहते दिखाया गया है, "अहो ! कितना अन्धा और मूर्ख है मेरा पिता! गृहपति तो रहते हैं सप्तरत्नमय प्रासाद में और यह राजा होकर लकड़ी के बने घर में रहता है।" "अहो अन्धबालो मम पिता! गहपतिका नाम सत्तरतनमये पासादे वसति। एसो राजा हुत्वा दारुमये गेहे वसति।" आज की तरह उस समय भी सेठ शब्द का प्रयोग किसी भी धनवान् वैश्य व्यापारी के लिये होता था, परन्तु जैसा हम आगे देखेंगे, बुद्ध-काल में वह विशेषतः एक पद का भी सूचक था, जो पितृक्रमागत होता था।

बुद्धकालीन भारत के अन्तर्देशीय व्यापार का विचार करने पर सर्वप्रथम चित्र जो हमारे सामने आता है वह है, माल (भण्ड) से भरी हुई ५०० गाड़ियों (पञ्चम-

---

१. देखिये तृतीय परिच्छेद में साकेत नगर का वर्णन।

२. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४५९।

सानि सकटसतानि) के काफिलों (शकट-सार्थ) को लिये हुए देश के एक कोने से दूसरे कोने को जाने वाले व्यापारियों का। इस प्रकार हम सूनापरान्त जनपद (ठाणा और सूरत के जिलों का अंश) के दो व्यापारी भाइयों को क्रमश: ५००-५०० गाड़ियाँ लेकर श्रावस्ती व्यापारार्थ जाते देखते हैं।[१] ५०० गाड़ियों को ही साथ लेकर जाता हुआ पुक्कुम मल्लपुत्र व्यापारी भगवान् को पावा और कुसिनारा के बीच रास्ते पर मिला था। भगवान् पावा से कुसिनारा की ओर जा रहे थे और वह कुसिनारा से पावा की ओर आ रहा था।[२] जातकट्ठकथा की निदान-कथा में हम देखते हैं कि श्रावस्ती का प्रसिद्ध व्यापारी अनाथपिण्डिक राजगृह अपने किसी व्यापारिक कार्य से ५०० गाड़ियों को साथ लेकर गया था और इसी समय प्रथम बार उसने भगवान् बुद्ध के दर्शन किये थे।[३] विनय-पिटक में हम बेलट्ठ कच्चान नामक व्यापारी को गुड़ के घड़ों से भरी ५०० गाड़ियों के साथ राजगृह से अन्धकविन्द ग्राम की ओर जाने वाले रास्ते पर जाते देखते हैं[४]। तपस्सु और भल्लिक नामक व्यापारी, जिन्होंने भगवान् बुद्ध को बुद्धत्व-प्राप्ति के बाद सर्वप्रथम आहार दिया था, ५०० गाड़ियों के साथ उत्कल (उक्कल) जनपद से मध्य देश में व्यापारार्थ ही आ रहे थे।[५] लाल वस्त्रों से लदी ५०० गाड़ियों को साथ लिए वाराणसी के एक व्यापारी का श्रावस्ती जाने का उल्लेख है, जो बीच में नदी पार न कर सकने के कारण किनारे पर ही माल

---

१. बुद्धचर्या, पृष्ठ ३७६, पद-संकेत ३।

२. महापरिनिब्बाण-सुत्त (दीघ० २।३)।

३. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ ११९ (भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद); विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ४५८-४५९ में तथा संयुत्त-निकाय, पहला भाग, पृष्ठ १६८ (हिन्दी अनुवाद) में जहाँ अनाथपिण्डिक के द्वारा भगवान् बुद्ध के प्रथम दर्शन का वर्णन है, केवल राजगृह के सेठ के यहाँ उसका अपने किसी काम से आना दिखाया गया है, परन्तु ५०० गाड़ियों का उल्लेख नहीं है।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद) पृष्ठ २३६।

५. जातक, प्रथम खण्ड, पृष्ठ १०३ (भदन्त आनन्द कौसल्यायन का अनुवाद)।

बेचने के लिए रुका रहा।[1] इसी प्रकार वाराणसी के एक अन्य व्यापारी का उल्लेख है, जो ५०० गाड़ियाँ लेकर माल खरीदने सीमान्त (प्रत्यन्त) देश में गया और वहाँ उसने चन्दन खरीदा।[2] दीघ-निकाय के पायासि राजञ्ञ सुत्त में ५००-५०० गाड़ियों को साथ लिये दो मालिक व्यापारियों का पूर्व देश से पश्चिम देश को (पुब्बन्ता अपरन्तं) जाने का उल्लेख है। ५०० गाड़ियों की बात छोड़ कर वैसे भी एक प्रान्त से दूसरे प्रान्त को व्यापारार्थ जाने वाले व्यापारियों के अनेक विवरण हमे पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में मिलते हैं। वाराणसी के एक व्यापारी का व्यापारार्थ तक्षशिला जाने का उल्लेख है।[3] इसी प्रकार विनय-पिटक से पता चलता है कि दक्षिणापथ के व्यापारी पूर्व देश में व्यापार के लिये जाते थे।[4] कूटवाणिज जातक, अपण्णक जातक तथा अन्य अनेक जातक-कथाओं में हमें पूर्वान्त से अपरान्त जाने वाले व्यापारियों के उल्लेख मिलते हैं। सेरिवाणिज जातक में सेरिव राष्ट्र के व्यापारियों को व्यापारार्थ तेलवाह नामक नदी को पार कर अन्धपुर नामक नगर में जाते दिखाया गया है। उत्तरापथ के घोड़ों के सौदागरों को ५०० घोड़ों के सहित वर्षा-काल में वेरंजा में पड़ाव डाले हम देखते है।[5] विमानवत्थु की अट्ठकथा में सेरिस्सक की कथा से तथा एक जातक-कथा[6] के विवरण से स्पष्ट मालूम होता है कि अंग-मगध के व्यापारी सिन्धु-सोवीर देश तक व्यापारार्थ जाते थे और उन्हें मार्ग में ६० योजन का मरु-कान्तार (सट्ठियोजनकं मरुकन्तारं) पार करना पड़ता था, जिससे तात्पर्य राजपूताना के रेगिस्तान से ही हो सकता है। वण्णुपथ जातक से भी इस तथ्य की सिद्धि होती है। गन्धार जातक में इस बात का साक्ष्य है कि विदेह के व्यापारी व्यापारार्थ गन्धार तक जाते थे। गंगा और यमुना को

---

१. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४२९।

२. परमत्थजोतिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५२३।

३. धम्मपदट्ठकथा, जिल्द पहली, पृष्ठ १२३।

४. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ ३५४।

५. देखिये द्वितीय परिच्छेद में भगवान् बुद्ध की चारिकाओं का भौगोलिक विवरण।

६. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ९९, १०८।

पार कर मरुस्थल में होते हुए वे गन्धार की राजधानी तक्षशिला में पहुँचते थे। इसी प्रकार वाराणसी और उज्जेनी (उज्जयिनी),[1] विदेह और कश्मीर-गन्धार[2], वाराणसी और श्रावस्ती,[3] वाराणसी और चेति देश,[4] राजगृह और श्रावस्ती,[5] तथा अन्य बीसों नगरों के बीच व्यापारिक सम्बन्धों को हम बुद्ध-काल में देखते हैं।

विनय-पिटक से स्पष्ट विदित होता है कि राजा की ओर से आवागमन के मुख्य नाकों पर, यथा नदी के घाटों पर और गाँवों और नगरों के प्रवेश-द्वार पर चुंगी (सुक) वसूल करने की चौकियाँ (सुंकट्ठान) बनी हुई थी जहाँ यात्रियों और व्यापारियों को चुंगी चुकानी पड़ती थी। विनय-पिटक की पाचित्तिय पालि (पृष्ठ १७६, श्री नालन्दा संस्करण) में उल्लेख है कि एक भिक्षु कुछ यात्रियों के साथ पकड़ा गया था जो चोरी से कुछ चीजें ले जा रहे थे। अंगुत्तर-निकाय के दुक-निपात के एक सुत्त में भी अपराधी भिक्षु की उपमा उस व्यक्ति से दी गई है जो बिना चुंगी चुकाये माल ले जाने का अपराधी होता है।

ऊपर हम बुद्ध-काल के अन्तर्देशीय व्यापार का और उस समय व्यापारी जिन मार्गों का अनुगमन करते थे, उनका कुछ उल्लेख कर चुके हैं। द्वितीय परिच्छेद में हमने भगवान् बुद्ध की चारिकाओं का विवरण दिया है, जिससे बुद्ध-काल में विद्यमान मार्गों के सम्बन्ध में हमें काफी सूचना मिलती है। इसी प्रकार तृतीय परिच्छेद में हमने जम्बुद्वीप के अनेक नगरों का वर्णन किया है, जो विभिन्न मार्गों के द्वारा एक दूसरे से जुड़े हुए थे। इन सब बातों की पुनरुक्ति करना यहाँ ठीक न होगा। इसलिए सब बुद्धकालीन मार्गों का दुबारा उल्लेख न कर हम यहाँ केवल कुछ महामार्गों का ही निर्देश करेंगे।

सब से प्रधान मार्ग बुद्ध-काल में वह था जो पूर्व से पश्चिम तक (पुब्बन्ता अपरन्तं) जाता था। मगध की राजधानी राजगृह से चल कर यह मार्ग उत्तर-

---

१ जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २४८।
२. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३६५।
३. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २९४।
४. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ २५३-२५४।
५. सुत्त-निपात (पारायण-वग्गो)।

पश्चिम में गन्धार राष्ट्र की राजधानी तक्षशिला तक पहुँचता था। श्रावस्ती से साकेत होते हुए एक मार्ग संकाश्य नगर पर इस मार्ग को कोसल देश की राजधानी श्रावस्ती से भी जोड़ता था। यही मार्ग उत्तरापथ कहलाता था और इसे हम प्राचीन ग्रांड ट्रंक रोड कह सकते हैं। राजगृह से चलकर यह मार्ग पहले नालन्दा आता था, फिर पाटलिपुत्र, वाराणसी, पयाग पतिट्ठान (प्रयाग प्रतिष्ठान), कण्णकुज्ज (कन्नौज), संकाश्य, सोरों (सोरेय्य) और वेरंजा होता हुआ मथुरा पहुँचता था। मथुरा से आगे चल कर इन्द्रप्रस्थ (इन्दपत्त) और सम्भवतः सागल (स्यालकोट) होते हुए गन्धार राष्ट्र के तक्षशिला नगर तक पहुँचता था। बीच में पाटलिपुत्र, वाराणसी और प्रयाग प्रतिष्ठान पर गंगा पार करने के अतिरिक्त अन्य कई नदियाँ भी मार्ग में पार करनी पड़ती थीं, जहाँ घाटों पर नावें तैयार मिलती थीं। राजगृह का जीवक वैद्य सम्भवतः इसी मार्ग के द्वारा राजगृह से तक्षशिला में विद्या प्राप्त करने गया था, यद्यपि उसकी यात्रा का कोई विवरण पालि तिपिटक में नहीं दिया गया है। इस परम्परा से केवल इतना मालूम पड़ता है कि लौटते हुए जीवक साकेत होते हुए राजगृह आया था।[1] परन्तु मूल सर्वास्तिवाद के 'विनय-वस्तु' में हमें तक्षशिला से लेकर राजगृह तक की जीवक की वापसी यात्रा का पूरा विवरण मिलता है। इस ग्रन्थ के अनुसार जीवक तक्षशिला से चलकर पहले भद्रङ्कर नगर में आया,[2] फिर वहाँ से उदुम्बरिका पहुँचा।[3] उदुम्बरिका से जीवक रोहीतक (वर्तमान रोहतक) आया।[4] वहाँ से चल कर वह मथुरा आया[5] और फिर यमुना के तट पर गया।[6] यहाँ से चलने के बाद वह वैशाली पहुँचा[7] और फिर क्रमशः

---

१. विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २६७।

२. ततो जीवकोऽनुपूर्वेण भद्रंकरं नगरमनुप्राप्तः। गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स्, जिल्द तीसरी, भाग द्वितीय, पृष्ठ ३२।

३. सोऽनुपूर्वेण उदुम्बरिकामनुप्राप्तः। वहीं, पृष्ठ ३३।

४. ततो जीवको रोहीतकमनुप्राप्तः। वहीं, पृष्ठ ३३।

५. ततो जीवकोऽनुपूर्वेण मथुरामनुप्राप्तः। वहीं, पृष्ठ ३५।

६. ततो जीवकोऽनुपूर्वेण यमुनातटमनुप्राप्तः। वहीं, पृष्ठ ३६।

७. सोऽनुपूर्वेण वैशालीं गतः। वहीं, पृष्ठ ३७।

यात्रा करता हुआ राजगृह पहुँचा।[1] इस प्रकार तक्षशिला से प्रारम्भ कर जीवक के मुख्य पड़ाव थे भद्रङ्कर, उदुम्बरिका, रोहीतक, (दिव्यवदान में 'रोहितक' पाठ है) मथुरा, वैशाली और राजगृह। यद्यपि यह विवरण भी पूरा नहीं है, परन्तु फिर भी इससे हम राजगृह से तक्षशिला जाने वाले मार्ग के बीच के महत्वपूर्ण नगरों का परिचय अवश्य प्राप्त कर लेते हैं। हम पहले अपण्णक जातक तथा दीघ-निकाय के पायासि-राजञ्ञ-सुत्त के आधार पर देख चुके हैं कि पूर्व देश के व्यापारी पश्चिम देश में व्यापारार्थ जाते थे। अन्य कई पालि स्रोतों में भी इसी प्रकार के उल्लेख हैं। ये सब व्यापारी उपर्युक्त 'उत्तरापथ' मार्ग से ही आते-जाते होंगे। विमानवत्थु की अट्ठकथा में सेरिस्सक की कथा तथा पहले उद्धृत जातक के विवरण से हम अंग-मगध के जिन व्यापारियों को ६० योजन मरुकन्तार पार करके सिन्धु-सोवीर और गन्धार जनपद मे पहुँचते देखते हैं, वे भी इसी मार्ग से राजपूताना के रेगिस्तान को पार करके सम्भवतः गये होंगे। उत्तरापथ के जिन ५०० घोड़ो के व्यापारियों को हम वेरंजा में पड़ाव डाले देखते हैं, वे भी उत्तरापथ मार्ग के द्वारा ही वेरंजा तक आये होंगे। कहने की आवश्यकता नहीं कि राजगृह के व्यापारी रोरुक (रोरुव) तक इसी मार्ग के द्वारा पहुँचते थे और वाराणसी और मथुरा आदि इस मार्ग पर पड़ने वाले नगरों का गन्धार और सिन्धु-सोवीर देशों के साथ जो व्यापार चलता था, वह भी इसी मार्ग से होता था। भगवान् ने वेरंजा से सोरेय्य, संकस्स, कण्णकुज्ज और पयाग पतिट्ठान होते हुए वाराणसी तक की जो यात्रा की थी[2], वह इसी महामार्ग के बीच का एक अंग थी। राजगृह से तक्षशिला तक जाने वाला यह महामार्ग वस्तुतः यहीं तक सीमित न था। पूर्व में हम जानते हैं कि राजगृह चम्पा से स्थलीय मार्ग के द्वारा सम्बन्धित था और चम्पा से जलीय मार्ग द्वारा ताम्रलिप्ति तक आवागमन था। ताम्रलिप्ति से समुद्री मार्ग द्वारा व्यापारी सुवर्णद्वीप (दक्षिणी बर्मा) तक तो जाते ही थे, मिलिन्दपञ्हो (ईसवी सन् के करीब) में चीन के साथ व्यापारिक सम्बन्धों का स्पष्ट उल्लेख है[3] और बाद में चलकर भारत से चीन जाने वाले और

---

१. सोऽनुपूर्वेण राजगृहं गतः। वहीं, पृष्ठ ३८।

२. देखिये द्वितीय परिच्छेद में भगवान् बुद्ध की चारिकाओं का विवरण।

३. "सम्पन्नो नाविको. . .वङ्गं तक्कोलं चीनं सोवीरं सुरट्ठं अलसन्दं

चीन से भारत आने वाले यात्रियों के जहाज बदलने के स्थान के रूप में तो ताम्रलिप्ति बन्दरगाह प्रसिद्ध ही था, ऐसा चीनी यात्रियों के विवरणों से स्पष्ट विदित होता है। उत्तर में यह महामार्ग तक्षशिला से आगे चलकर पश्चिमी तथा मध्य एशिया तक जाता था। इस प्रकार राजगृह से तक्षशिला जाने वाला यह मार्ग पूर्व और उत्तर-पश्चिम दोनों ओर शेष संसार से भारत का सम्बन्ध जोड़ता था। भारत के प्रायः सब महानगर इस मार्ग से दूसरे मार्गों के द्वारा जुड़े हुए थे, यह नीचे के विवरण से स्पष्ट होगा।

राजगृह से श्रावस्ती जाने वाला बुद्ध-काल का एक दूसरा प्रसिद्ध मार्ग था। बावरि ब्राह्मण के सोलह शिष्य प्रतिष्ठान से श्रावस्ती पहुँचने के बाद फिर श्रावस्ती से राजगृह तक इसी मार्ग के द्वारा गये थे। इस मार्ग में पड़ने वाले स्थान श्रावस्ती से आरम्भ कर इस प्रकार थे, श्रावस्ती, सेतव्या कपिलवस्तु, कुसिनारा, पावा, भोगनगर, जम्बुगाम, अम्बगाम, हत्थिगाम, भण्डगाम, वैशाली, नादिका, कोटिगाम, पाटलिपुत्र, नालन्दा और राजगृह। इन स्थानों में से कुछ पर बावरि ब्राह्मण के शिष्य नहीं रुके थे। भगवान् बुद्ध अपनी अन्तिम यात्रा में जब राजगृह से कुसिनारा गये, तो इसी मार्ग पर होकर गये थे। राजगृह और नालन्दा के बीच भगवान् अम्बलट्ठिका में भी ठहरे थे। हम पहले देख चुके है कि राजगृह से तक्षशिला तक जाने वाला महामार्ग भी नालन्दा और पाटलिपुत्र में होकर गुजरता था, अतः ये दोनों स्थान उसके साथ-साथ इस दूसरे मार्ग पर स्थित वैशाली, कपिलवस्तु और श्रावस्ती जैसे नगरों के साथ भी जुड़े हुए थे। नालन्दा से एक सड़क गया को भी जाती थी, जो उसे उस मार्ग से जोड़ती थी, जो ताम्रलिप्ति से गया होता हुआ वाराणसी तक जाता था। वैशाली से पाटलिपुत्र होते हुए भी यात्री वाराणसी जाते थे।

बुद्ध-काल का तीसरा प्रसिद्ध मार्ग दक्षिणापथ था, जो उत्तर भारत को दक्षिण भारत से जोड़ता था। यह मार्ग उत्तर में श्रावस्ती से चल कर दक्षिण में प्रतिष्ठान (पैठन) तक जाता था। बावरि ब्राह्मण के १६ शिष्य इसी मार्ग के द्वारा

कोलपट्टनं सुवण्णभूमिं गच्छति।" मिलिन्दपञ्हो, पृष्ठ ३५१ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

प्रतिष्ठान से श्रावस्ती गये थे। बीच में पड़ने वाले स्थान प्रतिष्ठान से प्रारम्भ कर इस प्रकार थे, प्रतिष्ठान, माहिष्मती, उज्जेनी, गोनद्ध, विदिशा (वेदिसं), वनसाह्वय या वनसव्हय, कौशाम्बी, साकेत और श्रावस्ती[1]। इस मार्ग पर पड़ने वाली कौशाम्बी नगरी व्यापारिक मार्ग द्वारा एक ओर वाराणसी से जुड़ी हुई थी और दूसरी ओर राजगृह से। माहिष्मती से एक मार्ग भरुकच्छ को भी जाता था। इसी मार्ग के द्वारा उज्जेनी (उज्जयिनी) पश्चिमी समुद्र तट के भरुकच्छ और सुप्पारक जैसे बन्दरगाहों से जुड़ी हुई थी।

उपर्युक्त तीन महामार्गों के अलावा अन्य कई मार्ग भी बुद्ध-काल में विद्यमान थे। एक मार्ग अहोगंग पर्वत (हरिद्वार) से सोरों (सोरेय्य) तक आता था और सोरों से क्रमशः संकाश्य, कन्नौज, उदुम्बर और अग्गलपुर होता हुआ सहजाति या सहजातिय तक जाता था। हम पहले देख चुके हैं कि सोरों, संकाश्य और कन्नौज उस मार्ग पर भी पड़ते थे जो मथुरा से वेरंजा होता हुआ इन तीनों स्थानों को क्रमशः पार कर प्रयाग प्रतिष्ठान और उसके बाद वाराणसी तक पहुँचता था, जहाँ से पाटलिपुत्र, चम्पा और ताम्रलिप्ति तक के लिए नावें मिलती थीं। विदेह के व्यापारी मिथिला से स्थल-मार्ग के द्वारा पहले चम्पा पहुँचते थे, जहाँ से वहाँ की दूरी ६० योजन बताई गई है और फिर चम्पा से नदी के द्वारा ताम्रलिप्ति तक जाते थे जहाँ से वे सुवर्णभूमि की समुद्री यात्रा करते थे। हमने देखा है कि श्रावस्ती से चलकर कुमार प्रसेनजित्, बन्धुल मल्ल और महालि लिच्छवि विद्या प्राप्त करने तक्षशिला गये थे। उनके मार्ग का उल्लेख नहीं किया गया है। श्रावस्ती से वैशाली हो कर वाराणसी तक आना और फिर वहाँ से प्रयाग प्रतिष्ठान, कान्यकुब्ज, संकाश्य, सोरेय्य, वेरंजा और मथुरा होते हुए जाना अवश्य ही लम्बा मार्ग पड़ता होगा। अतः श्रावस्ती से कोई सीधा मार्ग भी तक्षशिला के लिये था, जिसकी दूरी कुल १९२ योजन बताई गई है। सम्भवतः यह मार्ग तक्षशिला से सागल (स्यालकोट) होता हुआ सोरेय्य से होकर जाता होगा। हम पहले सोरेय्य के विवरण में देख चुके हैं कि यहाँ होकर श्रावस्ती से तक्षशिला को निरन्तर शकट-सार्थ चलते रहते

---

१. उद्धरण के लिए देखिये पहले परिच्छेद में सुत्त-निपात के भौगोलिक महत्व का विवेचन।

थे। इसी प्रकार वेरंजा के विवरण में हम देख चुके हैं कि वहाँ के नलेरुपुचिमन्द नामक चैत्य के पास से होकर उत्तरकुरु की ओर मार्ग जाता था। उसी से उत्तरापथ के घोड़ों के व्यापारी, जो वहाँ पड़ाव डाले हुए थे, आये होंगे। अतः तक्षशिला और श्रावस्ती को जोड़ने वाला यह मार्ग अलीगढ़ जिले के वर्तमान कस्बे सिकन्दराराव के आसपास से होकर गुजरता होगा (जहाँ होकर ग्रांड ट्रंक रोड आज भी जाती है), यह प्रायः निश्चित जान पड़ता है। श्रावस्ती से साकेत होते हुए एक मार्ग संकाश्य नगर तक भी आता था। भगवान् संकाश्य में अवतरण के बाद इसी मार्ग के द्वारा श्रावस्ती गये थे। इस प्रकार श्रावस्ती से संकाश्य आने के बाद वहाँ से मथुरा होते हुए भी बुद्ध-काल में गन्धार राष्ट्र तक जाया जा सकता था। हम पहले देख चुके हैं कि सिन्धु-सोवीरं देश और सूनापरान्त जनपद भी व्यापारिक मार्गों के द्वारा श्रावस्ती और राजगृह से जुड़े हुए थे। अन्य मार्गों के सम्बन्ध में हम द्वितीय परिच्छेद में भगवान् बुद्ध की चारिकाओं के विवरण के प्रसंग में तथा तृतीय परिच्छेद में बुद्धकालीन नगरों का परिचय देते समय कह चुके हैं।

नदियों के द्वारा माल भी बुद्ध-काल में लाया ले जाया जाता था और उनसे यात्रा का काम भी लिया जाता था। गंगा नदी के मुहाने से लेकर चम्पा, पाटलिपुत्र, वाराणसी और सहजाति तक माल का परिवहन होता था। यमुना में कौशाम्बी तक नावों के द्वारा माल लाया ले जाया जाता था और यात्री भी आते-जाते थे। हम पहले देख चुके हैं कि वैशाली के वज्जिपुत्तक भिक्षु नावों में बैठ कर वाराणसी होते हुए गंगा के मार्ग के द्वारा सहजाति आये थे। पाटलिपुत्र से ताम्रलिप्ति (तामलित्ति) तक गंगा के मार्ग के द्वारा भिक्षुणी संघमित्रा गई थी।[1] इसी प्रकार देवानं पिय तिस्स के राजदूत तामलित्ति तक लंका से समुद्री मार्ग द्वारा आकर तामलित्ति से पाटलिपुत्र तक गंगा के मार्ग द्वारा ही गये थे और इसी मार्ग से होकर लौटे थे। समुद्द-वाणिज जातक और अकीनचित्त जातक में हमने देखा है कि वाराणसी के समीप के वड्ढकिगाम के सब बढ़ई अपने परिवारों को लेकर एक बड़ी नाव में बैठ कर

---

१. पाँचवीं शताब्दी ईसवी में फा-ह्यान भी गंगा के मार्ग से पाटलिपुत्र से चम्पा नगर तक आया था और फिर वहाँ से ताम्रलिप्ति (तमलक) गया था। देखिये गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ ६५।

गंगा के मार्ग द्वारा भाग गये थे और समुद्र के समीप एक उर्वर द्वीप में जाकर बस गये थे। इसी प्रकार महाजनक जातक और संख जातक के क्रमशः चम्पा (काल चम्पा नगर) और वाराणसी (मोलिनी) के व्यापारियों का सुवर्णभूमि (दक्षिणी बरमा) जाने का उल्लेख है। ये व्यापारी गंगा नदी के द्वारा पहले ताम्रलिप्ति पहुँचते थे और फिर वहाँ से सुवण्णभूमि जाते थे। सीलानिसंस जातक से भी गंगा नदी के द्वारा समुद्र से लेकर वाराणसी तक का आवागमन सिद्ध है।

समुद्री यात्रा और उसके द्वारा विदेशों के साथ व्यापारिक सम्बन्धों के अनेक विवरण हमें पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में मिलते हैं। वाराणसी और चम्पा के व्यापारी, सम्भवतः ताम्रलिप्ति होते हुए, सुवण्णभूमि (दक्षिणी बरमा) तक व्यापारार्थ जाते थे, यह हम पहले देख चुके हैं। महाजनक जातक में चम्पा के व्यापारियों का सुवण्णभूमि जाना वर्णित है। इसी प्रकार संख जातक से हमें पता लगता है कि वाराणसी के व्यापारी भी व्यापारार्थ सुवण्णभूमि तक जाते थे। बुद्ध-काल में भारतीय व्यापारी धन के लिए समुद्री यात्रा करने के लिए कितने लालायित रहते थे, इसके वर्णन हमें सुधाभोजन-जातक और समुद्द-जातक में मिलते हैं। छह-छह मास की लम्बी समुद्री यात्रा भारतीय व्यापारी बुद्ध-काल में करते थे। वलाहस्स जातक में हम वाराणसी के ५०० व्यापारियों को तम्बपण्णि (ताम्रपर्णि-लंका) के सिरिसवत्थु नामक नगर में पहुँचते देखते हैं। इसी जातक में तम्बपण्णि दीप की कल्याणी नदी का भी उल्लेख किया गया है।[१] इससे प्रकट होता है कि लंका के साथ समुद्री मार्ग द्वारा सम्बन्ध भारत के जातक-काल में थे। बाद के ग्रीक लोगों के विवरणों से, जिनमें ताम्रपर्णि द्वीप को टेप्रोबेन कह कर पुकारा गया है, इसी तथ्य की सिद्धि होती है।[२] प्रसिद्ध बावेरु जातक से यह सिद्ध ही है कि भारतीय व्यापारी जहाजों के द्वारा फारस की खाड़ी में होकर बेबीलान तक व्यापारार्थ समुद्री यात्रा करते थे। सुप्पारक जातक में भरुकच्छ के व्यापारियों का ६०० यात्रियों से भरे एक विशाल जहाज को लेकर एक लम्बी यात्रा पर जाना वर्णित है,

१. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ १२७-१२८।

२. मेकक्रिंडल : इण्डिया ऐज़ डिस्क्राइब्ड इन क्लासीकल लिटरेचर, पृष्ठ १०२।

जिसमें उन्हें खुरमाल, अग्गिमाल आदि छह समुद्र पड़े थे, जिनकी आधुनिक स्थितियों के सम्बन्ध में हम द्वितीय परिच्छेद में विवेचन कर चुके हैं और यहाँ पुनरुक्ति करना ठीक न होगा। इन पहचानों के आधार पर कहा जा सकता है कि भारत के व्यापारिक सम्बन्ध समुद्री मार्ग के द्वारा बेबीलान, अरब, मिश्र, यूनान और भूमध्यसागर के कतिपय देशों के साथ थे।[1] इधर दक्षिण में ताम्रपर्णि द्वीप के साथ तो भरुकच्छ और सुप्पारक के व्यापारियों का समुद्री मार्ग द्वारा घनिष्ठ सम्पर्क था ही, हम भरुकच्छ के व्यापारियों को, सुसन्धि जातक में, सुवर्णभूमि (दक्षिणी बरमा) तक जाते देखते हैं।[2] स्वाभाविक तौर पर वे पूरे पश्चिमी और पूर्वी समुद्री तट के सहारे चल कर, ताम्रपर्णि द्वीप में होते हुए सुवण्णभूमि तक पहुँचते होंगे। उदान की अट्ठकथा[3] से विदित होता है कि बाहिय दारुचीरिय, जिनका जन्म बाहिय राष्ट्र में (एक अन्य सूचना के अनुसार भारुकच्छ में) हुआ था, सात बार सिन्धु नदी में होकर समुद्री यात्रा पर गये थे और आठवीं बार जब वे सुवण्णभूमि की ओर जा रहे थे तो उनका जहाज टूट गया और उन्होंने सुप्पारक में शरण ली। इस प्रकार सिन्धु नदी के समीपवर्ती बाहिय राष्ट्र तक से व्यापारी सुवर्णभूमि तक जाते थे।

महानिद्देस[3] में योन और परम योन देशों के साथ भारत के व्यापारिक सम्बन्धों की बात तो कही ही गई है, पूर्व में काल-मुख (अराकान), सुवण्ण-भूमि (दक्षिणी वर्मा), वेसुंग, वेरापथ, तक्कोल, तमलि (ताम्रलिंग-मलाया में), तम्बपण्णि और जव (यव-जावा) देशों तक के साथ समुद्री मार्ग के द्वारा व्यापार की परम्परा का उल्लेख है। चीन के साथ भारत के समुद्री मार्ग के द्वारा व्यापारिक सम्बन्ध की बात मिलिन्दपञ्हो[4] में तो है ही, अपदान[5] में भी मलय प्रायद्वीप और चीन के देश के साथ भारत के समुद्री व्यापार का उल्लेख है। दिशाओं का ज्ञान करने के लिए नाविक

---

१. मिलाइये राधाकुमुद मुकर्जी : हिस्ट्री ऑव इण्डियन शिपिंग, पृष्ठ ८२।

२. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १८८।

३. पृष्ठ १५४-१५५, ४१५।

४. पृष्ठ ३५१ (बम्बई विश्वविद्यालय संस्करण)।

५. जिल्द पहली, पृष्ठ २।

लोग कभी-कभी अपने साथ कौओं (दिसा काका) को ले जाते थे, ऐसा बम्मद्धज जातक से स्पष्ट मालूम पड़ता है। तारों को देखकर भी दिशाओं का ज्ञान किया जाता था, ऐसा वण्णुपथ जातक से विदित होता है।

जैसा हम ऊपर देख चुके हैं, भारत के पश्चिमी तट पर भरुकच्छ और सुप्पारक जैसे प्रसिद्ध बन्दरगाह थे और एक ओर अरब और बेबीलान तक भारतीय व्यापारी यात्रा करते थे तो दूसरी ओर तम्बपण्णि दीप तक और पूर्वी किनारे होते-होते ताम्रलिप्ति तक और फिर वहाँ से सुवण्णभूमि तक जाते थे। ताम्रलिप्ति के सम्बन्ध में हम पहले तृतीय परिच्छेद में काफी कह चुके हैं। कावीरपट्टन का भी उल्लेख तृतीय परिच्छेद में किया जा चुका है। अन्य बन्दरगाहों में करम्बिय,[1] गम्भीर[2] और सेरिव[3] जैसे स्थानों के नाम जातक-कथाओं के आधार पर आसानी से लिये जा सकते हैं। इनमें से कुछ का परिचय हम पहले दे चुके हैं।

बुद्ध-काल में स्थलीय और समुद्री दोनों प्रकार का व्यापार अत्यन्त विकसित और संघबद्ध अवस्था में था। स्थल-पथ के द्वारा व्यापार का कार्य करने वाले व्यापारी 'थलपथकम्मिका' और जलमार्ग के द्वारा व्यापार करने वाले 'जलपथकम्मिका' कहलाते थे। शिल्पकारों के समान व्यापारियों (वाणिजा) के भी संघ थे। उनका प्रधान 'जेट्ठक' या 'सेट्ठि' कहलाता था। सेठ धनी व्यापारी होने के अतिरिक्त एक पदाधिकारी भी होता था। वणिक्-संघों का वह एक प्रकार से प्रतिनिधि होता था जिसे एक उच्च पदाधिकारी के रूप में राजा के पास भी इस सम्बन्ध में जाना पड़ता था।[4] सेठ या सेट्ठि का पद प्रायः पितृक्रमागत होता था।[5] अनेक जातक-कथाओं में हमें सेठों के उत्तराधिकारियों के सम्बन्ध में इस प्रकार के वर्णन मिलते हैं "सो सेट्ठिनो अच्चयेन तस्मिं नगरे सेट्ठिट्ठानं लभि" अर्थात्

१. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ७५।

२. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ २३९।

३. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १११।

४. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४७५; जिल्द चौथी, पृष्ठ ६२।

५. देखिये जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ २३१; जिल्द तीसरी, पृष्ठ ४७५; जिल्द चौथी, पृष्ठ ६२।

"सेठ के मरने के बाद उसने उस नगर में सेठ का स्थान प्राप्त किया।" समाज में सेट के पद का बड़ा सम्मान होता था और एक जातक-कथा में उसे 'राजपूजितो नगर-जनपद-पूजितो' कहा गया है।[1] सेट्ठि के नीचे उसका एक सहायक पदाधिकारी होता था, जिसे 'अनुसेट्ठि' कहा जाता था।[2] चूंकि मार्ग बुद्ध-काल में दुर्गम थे और हम पहले देख चुके हैं कि चेदि देश से वाराणसी जाने वाले और श्रावस्ती से साकेत तथा राजगृह जानें वाले जैसे मार्गों में चोरों और लुटेरों का भय रहता था। अनेक जातक-कथाओं में चोरों और लुटेरों के भय का वर्णन है।[3] सतपत्त जातक में ५०० लुटेरों के एक गिरोह का वर्णन है। इसी प्रकार का वर्णन सत्तिगुम्ब जातक में भी है। इन चोरों से बचने के लिए भिन्न-भिन्न शकट-सार्थों के नेता एक संयुक्त जेट्ठक की अधीनता में चलते थे और अपने साथ चौकीदारों का भी प्रबन्ध रखते थे। घने वनों में होकर निकलते हुए मार्ग के सम्बन्ध में उनकी सहायता वनवासी (अटवीमुखवासि) लोग करते थे, जिन्हें व्यापारियों को पारिश्रमिक स्वरूप कुछ देना भी पड़ता था।[4] जहाँ तक पड़ाव आदि डालने का सम्बन्ध था, उसके लिए एक अलग अधिकारी होता था, जो 'थल निय्यामक' कहलाता था। यही अधिकारी शकट-सार्थ की सुरक्षा के लिए उत्तरदायी होता था। समुद्री यात्रा के समान अक्सर तारों के मार्ग को देखकर वह शकट-सार्थ की दिशा के सम्बन्ध में निर्णय करता था।[5] जल-यात्रा के सम्बन्ध में इसी प्रकार का अधिकारी 'जल निय्यामक' कहलाता था।[6] कूटवाणिज जातक में हमें सूचना मिलती है कि दो वणिकों ने आपस में साझेदारी करके वाराणसी से ५०० गाड़ियों में माल खरीद कर भरा था और फिर वे उसे बेचने के लिए दूसरे जनपदों में गये थे। महावाणिज जातक, सेरिवाणिज जातक और गुत्तिल जातक

---

१. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३८२।
२. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ ३८४।
३. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ १८५; जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ १६४।
४. जातक, जिल्द पाँचवीं, पृष्ठ २२, ४७१।
५. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ १०७। (वण्णुपथ जातक)
६. जातक, जिल्द चौथी, पृष्ठ १३८।

में हमें व्यापारियों के स्थायी या अस्थायी संघों की सूचना मिलती है। कई जातकों में हम किसी व्यापारी के सम्बन्ध में अक्सर ऐसा पढ़ते हैं कि "वह किसी अन्य व्यापारी के साथ मिलकर वाणिज्य करता है।" "अञ्ञेन वाणिजेन सद्धि एकतो हुत्वा वाणिज्जं करोति।" महावाणिज जातक में तो अत्यन्त साधारण रूप से कहा गया है "नाना राष्ट्रों से आये हुए व्यापारियों ने एक समिति बनाई और एक को प्रधान बनाकर धन कमाने के लिये चल पड़े[1]।"

भारतीय व्यापारी सामुद्रिक व्यापार के द्वारा भारत में विदेशों से किन वस्तुओं का आयात करते थे, इसका कोई निर्देश पालि विवरणों में नहीं मिलता। हम उन्हें विदेशों से सोना लाते ही देखते हैं। सुप्पारक जातक से पता लगता है कि समुद्रों से रत्न और मूंगे आदि भी भारतीय व्यापारी खोज कर लाते थे। जिन वस्तुओं का वे इस देश से निर्यात करते थे, उनमें बहुमूल्य वस्त्रों का एक मुख्य स्थान था। काशी के वस्त्र ये व्यापारी विदेशों में ले जाते थे और उनका प्रभूत मूल्य वसूल करते थे। इसी प्रकार गन्धार के कम्बलों, सिवि देश के दुशालों, दशार्ण जनपद की छुरियों और तलवारों तथा ऐसी ही अन्य वस्तुओं का भी ये व्यापारी निर्यात करते थे। मोर और अन्य चिड़ियों के विदेशों में ले जाये जाने के उदाहरण भी जातक में मिलते हैं।[2] साधारणतः रेशमी कपड़े, मलमल, हाथीदाँत की चीजें और सोने के आभूषण आदि भारत से विदेशों के लिए निर्यात किये जाते थे।

बुद्ध-काल में यद्यपि वस्तु-विनिमय के द्वारा अदला-बदली का रिवाज भी, विशेषतः ग्रामीण और वन्य समाज में, कुछ न कुछ चल रहा था, जैसा आज तक भी है, और इसके कुछ उदाहरण भी, जैसे किसी ने कपड़ा देकर कुत्ता ले लिया, आदि, जातक-कथाओं में मिल जाते हैं, परन्तु साधारणतः समाज में सिक्कों का प्रचलन था, जिनका प्रयोग क्रय-विक्रय के लिए किया जाता था। भारत में सिक्कों का प्रचार वस्तुतः ताम्र-युग से ही चला आ रहा था।[3] हिरण्य (अशर्फी) के द्वारा क्रय-विक्रय

---

१. "वाणिजा समितिं कत्वा नाना रट्ठतो आगता।
धनाहरा पक्कमिंसु एकं कत्वान गामणिं"॥

२. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १२६-१२७।

३. डॉ० डी० आर० भण्डारकर के मतानुसार भारत में सिक्कों का प्रचलन

बुद्धकालीन भारत में निश्चयतः प्रचलित था। तभी तो प्रेत-लोक के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता था, "न हि तत्थ कसी अत्थि गोरक्ख एत्त न विज्जति। वणिज्जा तादिसी नत्थि हिरण्णेन कयक्कयं"।[१] अर्थात् "वहाँ प्रेत-लोक में कृषि नहीं है और न गौ-रक्षा (पशु-पालन) वहाँ है। न वहाँ यहाँ का-सा वाणिज्य-व्यापार है और न है हिरण्य के द्वारा क्रय-विक्रय।" इससे स्पष्ट प्रकट होता है कि हिरण्य के द्वारा क्रय-विक्रय बुद्धकालीन भारतीय व्यापार में प्रचलित था। सर्वाधिक प्रचलित सिक्का कहापण (सं० कार्षापण) कहलाता था। कहापण के मूल्य-निर्धारण का प्रयत्न कई विद्वानों ने किया है,[२] परन्तु तथ्य यह है कि हम आज उसके मूल्य के सम्बन्ध में निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कह सकते। कहापण बुद्ध-काल का एक अति प्रचलित सिक्का था और जिस प्रकार आज हम साधारणतः धन के लिए पैसे शब्द का प्रयोग कर देते हैं, उसी प्रकार बुद्ध-काल में लोग कहापण का प्रयोग करते थे। उदाहरणतः, जातकट्ठकथा की निदान-कथा में कहा गया है, "परलोकं

ईसा के पूर्व द्वितीय सहस्राब्दी के आरम्भ से था। देखिये उनके "लैक्चर्स औन् एन्शियन्ट इण्डियन न्यूमिसमेटिक्स", (१९२१), पृष्ठ १०९।

१. पेतवत्थु, पृष्ठ ३ (महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित देवनागरी संस्करण)।

२. महापण्डित राहुल सांकृत्यायन के मतानुसार कहापण की क्रय-शक्ति आजकल के प्रायः बारह आने के बराबर थी। देखिये बुद्धचर्या, पृष्ठ २७८, पद-संकेत ३; रायस डेविड्स् ने कहा है कि कहापण में लगे ताँबे का मूल्य प्रायः ५/६ पेनी के बराबर होता था, परन्तु उसकी क्रय-शक्ति आजकल के एक शिलिंग के बराबर थी। बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ ६२ (प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०)। ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर ने कहापण का मूल्य आधा क्राउन (२॥ शिलिंग) आँका है। देखिये उनकी "कंसाइज पालि-इंग्लिश डिक्शनरी", पृष्ठ ७६। महाथेर महोदय ने इसी कोश के पृष्ठ १९८ में मासक को एक सिक्का मानकर उसका मूल्य करीब एक आने के बराबर बताया है। इस प्रकार उनके मतानुसार एक कहापण करीब सवा रुपये के बराबर होगा, क्योंकि वह बीस मासक का होता था। यही मत हमें ठीक जान पड़ता है।

गच्छन्ता एकं कहापणं पि गहेत्वा न गता।" अर्थात् "परलोक जाने वाले अपने साथ एक भी कहापण नहीं ले गये।" पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में इतनी अधिक जगह कहापण का उल्लेख हुआ है कि उनका परिगणन करना कठिन है।

विनय-पिटक की अट्ठकथा (समन्तपासादिका) में भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में अर्थात् राजा बिम्बिसार और अजातशत्रु के शासन-काल में प्रचलित मुद्रा-प्रणाली पर प्रकाश डालते हुए कहा गया है, "तदा राजगहे वीसतिमासको कहापणो होति। तस्मा पंचमासको पादो। एतेन लक्खणेन सब्बजनपदेसु कहापणस्स चतुत्थो भागो पादो ति वेदितब्बो।[1]" इसका अर्थ यह है, "उस समय राजगृह में एक कहापण २० मासे (मासक) का होता था, जबकि एक पाद पाँच मासे (मासक) के बराबर होता था। इस लक्षण से यह समझ लेना चाहिए कि उस समय सब जनपदों में एक कहापण का चतुर्थ भाग पाद कहलाता था।" इस उद्धरण से प्रकट होता है कि भगवान् बुद्ध के जीवन-काल में जो मुद्रा-प्रणाली प्रचलित थी, उसके अनुसार पाँच मासे (मासक) का एक पाद और चार पाद का एक कहापण होता था। इस प्रकार एक कहापण २० मासक का होता था।[2] यहाँ यह ध्यान रखना चाहिए कि मासक या मासा उस समय धातुओं के वजन की एक तौल थी, जैसी कि आज भी हमारे देश में है और विभिन्न धातुओं के सिक्कों के लिए विभिन्न वजन मासों (माशों) के रूप में निश्चित थे।

समन्तपासादिका से जो उद्धरण हम ऊपर दे चुके हैं, उसके ठीक आगे यह आता है "सो च खो पोराणस्स नीलकहापणस्स वसेन, न इतरेसं रुद्रदामकादीनं।" इससे यह विदित होता है कि आचार्य बुद्धघोष ने बुद्धकालीन कहापण सिक्के के लिये "प्राचीन नील कहापण" (पोराणस्स नीलकहापणस्स) शब्द का प्रयोग किया है और उसे रुद्रदामक आदि सिक्कों से विभिन्न प्रकार का बताया है। रुद्रदामक सिक्कों से आचार्य बुद्धघोष का तात्पर्य निश्चयतः रुद्रदामा के द्वारा चलाये गये सिक्कों से है। परन्तु यह रुद्रदामा कौन था, इसके सम्बन्ध में विद्वानों में निश्चित

---

१. समन्तपासादिका, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २०७।

२. पण, पाद और माष नामक सिक्कों का उल्लेख पाणिनि ने एक सूत्र 'पणपादमाषशताद्यत्' (५।१।३४) में भी किया है।

एक मत नहीं है और न इसका विवेचन हमारे विषय के अनुकूल ही होगा। अधिकतर विद्वानों की यही राय है कि आचार्य बुद्धघोष द्वारा उल्लिखित 'रुद्रदामक' सिक्कों का चलाने वाला प्रसिद्ध शक राजा महाक्षत्रप रुद्रदामा प्रथम था, जिसने १३० ई० से १५० ई० तक मालवा में शासन किया। उसके समय के कई अभिलेख भी मिले हैं और जूनागढ़ में प्राप्त एक अभिलेख में उसके नाम और उपाधि का स्पष्ट उल्लेख है। पुरातत्व की खोजों से यह भी सिद्ध हो चुका है कि उसने चाँदी और ताँबे के सिक्के चलाये थे, जिनमें से कुछ आज प्राप्त हैं।

आचार्य बुद्धघोष ने अट्ठसालिनी[1] में सफेद (पण्डर) रंग के, बड़े आकार वाले (पुथुल) तथा चौकोर शकल के (चतुरस्स) कहापणों का उल्लेख किया है। सफेद (पण्डर) रंग से उनका चाँदी के सिक्के होना ही सिद्ध होता है। अट्ठसालिनी में ही एक दूसरी जगह बुद्धघोषाचार्य ने 'रजत' शब्द की व्याख्या करते हुए उसे 'कहापण' ही बताया है। "रजतं वुच्चति कहापणो।"[2] इससे स्पष्ट विदित होता है कि कहापण अक्सर चाँदी के ही होते थे। यह उल्लेखनीय है कि प्राङ्-मौर्य काल के अनेक चाँदी के कहापण मिले भी हैं। यद्यपि पालि साहित्य के आधार पर कहापणों का चाँदी के सिक्के होना ही सिद्ध होता है, परन्तु यह भी प्रायः सुनिश्चित है कि प्राङ्-मौर्य-काल के कुछ ताँबे के कहापण भी मिले हैं। अतः हम ऐसा मान सकते हैं कि कहापण चाँदी और ताँबे दोनों ही धातुओं से बुद्ध-काल में बनाये जाते थे। कहापण के अलावा अद्धकहापण, पाद कहापण, मासक, अद्धमासक और काकणिका नामक सिक्के भी प्रचलित थे। काकणिका सम्भवतः उस समय का सबसे छोटा सिक्का था। अट्ठसालिनी के प्रमाण पर हम जानते हैं कि 'मासक' नामक सिक्के ताँबे, लकड़ी और लाख के भी बनाये जाते थे। "लोहमासको, दारुमासको, जतुमासको।"[3]

कहापण की उस समय की क्रय-शक्ति के सम्बन्ध में हमें अनेक उदाहरण जातक-कथाओं में मिलते हैं। उदाहरणतः बैलों की एक जोड़ी चौबीस कहापण

---

१. ३।६२२ (पृष्ठ २२६)।
२. वहीं, ४।५४ (पृष्ठ २५६)।
३. उपर्युक्त के समान।

में आ जाती थी।[1] एक गधे की कीमत प्रायः आठ कहापण थी।[2] घास का एक गट्ठर एक मासक में आ जाता था।[3] एक मजदूर की दैनिक मजदूरी प्रायः मासक या अर्द्धमासक होती थी।[4] घोड़ों की उस समय अधिक कीमत मालूम पड़ती है। अच्छी जाति के घोड़े एक हजार कहापण से लेकर ६००० कहापण तक के आते थे।[5] काशी के बहुमूल्य वस्त्रों की कीमत एक लाख कहापण तक होती थी[6] और उनका उपभोग उच्च वर्ग के लोग ही कर सकते थे। जैसा हम पहले कह चुके हैं, काशी के वस्त्र भारतीय विदेशी व्यापार के निर्यात की मुख्य वस्तु थे। बुद्धकालीन सिक्कों के मूल्य और उनकी क्रय-शक्ति के सम्बन्ध में विनय-पिटक के पाराजिक काण्ड (पाराजिक पालि, पृष्ठ ३११-३२०, श्री नालन्दा संस्करण) में 'चीवर चेतापन्न' शब्द की व्याख्या वाले अंश से महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है। परन्तु इस विषय में हम यहाँ विस्तार से नहीं जा सकते।

ताँबे (लोह) और रजत (चाँदी) के अतिरिक्त स्वर्ण की मुद्राएँ भी बुद्ध-काल में प्रचलित थीं। स्वर्ण-मुद्राएँ हिरण्य (हिरञ्ञ) कहलाती थीं, जिन्हें हम अशर्फी कह सकते हैं। हम पहले देख चुके हैं कि अनाथपिण्डिक ने हिरण्यों से ही धरती को ढँक कर जेतवन की भूमि को खरीदा था। सबसे बड़ा सोने का सिक्का बुद्ध-काल में निक्ख (निष्क) कहलाता था और उसका वजन प्रायः २५ धरण या करीब १० औंस होता था।[7] अंगुत्तर-निकाय में "नेक्खं जम्बोनदस्सेव" (सोने के निष्क की भाँति), ऐसा एक उपमा के प्रसंग में कहा गया है।

अनाज के माप (तौल के उदाहरण नहीं मिलते) के लिये सर्वाधिक लोकप्रिय

---

१. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ३०५-३०६।

२. जातक, जिल्द छठी, पृष्ठ ३४३।

३. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १३०।

४. जातक, जिल्द पहली, पृष्ठ ४७५; जिल्द तीसरी, पृष्ठ ३२६।

५. जातक, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २८९।

६. जातक, जिल्द तीसरी, पृष्ठ १०।

७. देखिये ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर : कंसाइज पालि इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ १३१; मिलाइये वहीं, पृष्ठ १२६।

साधन बुद्ध-काल में नालि था। जैसे पैसे के लिये लोग 'कहापण' शब्द का प्रयोग करते थे, वैसे ही वे "नालि भर भात" की बात किया करते थे। विनय-पिटक[1] और जातक[2] में अनेक जगह 'नालि' शब्द का प्रयोग हुआ है। आचार्य बुद्धघोष ने अन्धट्ठकथा के प्रमाण पर कहा है कि मगध की एक नालि का वजन १२½ पल होता था। उन्होंने यह भी कहा है कि सिंहल की नालि इससे कुछ बड़ी होती थी और दमिल (तमिल) राष्ट्र की कुछ छोटी।[3] एक पल, ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर के अनुसार, करीब ४ औंस के बराबर होता था[4]। इस प्रकार मगध नालि का वजन उनके मतानुसार करीब ५० औंस का होगा। ५० औंस अर्थात् हमारी भारतीय तौल में करीब डेढ़ सेर। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन ने मगध नालि का वजन करीब एक सेर के बराबर बताया है[5]। परन्तु सम्भव है कि मगध की नालि करीब डेढ़ सेर के बराबर ही होती थी। इसका कारण यह है कि अलमोड़ा तथा उसके आसपास कुछ अन्य पहाड़ी जिलों के गाँवों में आज भी अनाज को नापने के लिए 'नाली' नामक एक माप का प्रयोग किया जाता है। यह एक डमरू के आकार का एक ओर से बन्द लकड़ी का पात्र होता है जिसमें, प्रचलित रिवाज के अनुसार, ३० मुट्ठी अनाज आता है। ३० मुट्ठी अनाज करीब डेढ़ सेर के बराबर बैठता है। अतः लगभग इतना ही वजन हमें मगध-नालि का मानना युक्ति-युक्त जान पड़ता है।[6] अनाज का एक छोटा माप पत्थ या पसत (सं०

---

१. (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २०।

२. जिल्द चौथी, पृष्ठ ६७; जिल्द छठी, पृष्ठ ३६०।

३. समन्तपासादिका, जिल्द तीसरी, पृष्ठ ७०२; मनोरथपूरणी, जिल्द पहली, पृष्ठ १०१; सारत्थप्पकासिनी, जिल्द पहली, पृष्ठ १५२-१५३; मिलाइये विनय-पिटक (हिन्दी अनुवाद), पृष्ठ २०, पद-संकेत २।

४. कन्साइज पालि-इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ १६८।

५. बुद्धचर्या, पृष्ठ ५९२। इसी ग्रन्थ के पृष्ठ ४०, पद-संकेत १ तथा पृष्ठ ५५९ में २ सेर लिखा है, जो प्रूफ की अशुद्धि मालूम पड़ती है। इसका कारण यह है कि पृष्ठ ५९२ में शब्दों में "प्रायः सेर भर" लिखा है।

६. नालि के ही आकार का अनाज को नापने का एक धातु-निर्मित बर्तन

प्रस्थ) भी होता था, जिसका शाब्दिक अर्थ तो पसों भर है, परन्तु जिसका वजन ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर के अनुसार करीब पाव भर होता था, क्योंकि उन्होंने कहा है कि चार पत्थ या पसत का वजन आज के करीब एक सेर के बराबर होता था।[1] कितने पत्थ या पसत की एक नालि होती थी, इसका कोई उल्लेख नहीं मिलता। बुद्ध-काल में अनाज नापने का एक अन्य माप दोण (सं० द्रोण) नामक था। यह दोण नालि से बड़ा होता था, यह बात संयुत्त-निकाय के दोणपाक-सुत्त से स्पष्ट प्रकट होती है। इस सुत्त में कहा गया है कि (खाने का शौकीन) राजा प्रसेनजित् पहले द्रोण भर खाता था और खाने के बाद लम्बी-लम्बी साँसें लिया करता था, परन्तु बाद में भगवान् से परिमित आहार की प्रशंसा सुनकर कम खाने लगा और इस प्रकार कम खाते-खाते क्रमशः एक नालि भर ही भोजन करने लगा।[2] तुम्ब नामक एक अन्य माप भी अनाज नापने का बुद्ध-काल में था।[3] दोण से बड़ा एक माप अम्मण होता था। एक अम्मण का वजन, या ठीक कहें तो माप, ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर के मतानुसार, करीब ५ बुशल होता था[4] और एक दोण $\frac{1}{2}$ बुशल का होता था।[5] दोण और अम्मण का इस प्रकार बुशल में परिवर्तित करना पूर्णतः

गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय के संग्रहालय में सुरक्षित है, जिसको देखने का अवसर लेखक को सुहृद्वर प्रोफेसर हरिदत्त वेदालंकार के सौजन्य से प्राप्त हुआ। यह बर्तन गढ़वाल जिले के भृगुखाल नामक स्थान में प्राप्त हुआ था और काफी अर्वाचीन युग (सम्वत् १७८८) का है। इस पर एक लेख है जिससे विदित होता है कि इस प्रकार के बर्तनों के माप की प्रामाणिकता के सम्बन्ध में तत्कालीन राजा की ओर से बर्तन पर एक छाप विशेष भी होती थी। प्रस्तुत बर्तन में करीब डेढ़ सेर अन्न आ सकता है, ऐसा मेरा अनुमान है।

१. कन्साइज पालि-इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ १५४, १७०।

२. संयुत्त-निकाय (हिन्दी अनुवाद), पहला भाग, पृष्ठ ७६।

३. देखिये ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर : कन्साइज पालि इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ ११३।

४. वहीं, पृष्ठ ३०।

५. वहीं, पृष्ठ १२३।

अनुमानाश्रित ही माना जा सकता है। परन्तु इससे एक बात स्पष्ट है और वह यह कि श्री ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर ने ४० दोण का एक अम्मण माना है। महापण्डित राहुल सांकृत्यायन अम्मण का अर्थ आजकल का एक मन ही करते हैं।[1] परन्तु इस विषय में विद्वानों में एक मत नहीं है और न हो सकता है। रतिलाल मेहता ने अम्मण का वजन, ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर के पाँच बुशल के स्थान पर, केवल चार बुशल बताया है[2] और भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने जातक के हिन्दी अनुवाद में ११ दोण के बराबर एक अम्मण बताया है[3], जो श्री ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर के स्पष्ट विरोध में है। डॉ० टी० डब्ल्यू० रायस डेविड्स् तथा विलियम स्टीड द्वारा सम्पादित पालि-इंगलिश डिक्शनरी (पालि टैक्स्ट सोसायटी, १९२५) में 'अम्मण' शब्द का अर्थ करते हुए उसे अनाज भरने की शक्ति का एक माप विशेष (a certain measure of capacity) मात्र कहा है। वस्तुतः अनाज के बुद्धकालीन मापों के सम्बन्ध में हम आज की भाषा में कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कह सकते, क्योंकि अपने प्रारम्भिक रूप में जिन पसों भर (पत्थ या पसत) या बाँस की नली (नालि) या तुम्बी (तुम्ब) या दोण (दोनी) पर वे आधारित थे, वे माप ही थे, बाँट नहीं। अतः उनका प्रामाणिक वजन क्या मानना चाहिए, इसके सम्बन्ध में सुनिश्चित रूप से आज निर्णय नहीं किया जा सकता। परन्तु इतना तो निश्चित जान पड़ता है कि पालि का अम्मण ही कुछ घट-बढ़ कर हमारा आज का मन बना है।

लम्बाई और दूरी की माप बुद्ध-काल में अंगुल, विदट्ठि, यट्ठि, कुक्कु, हत्थ, उसभ, धनु, गावुत और योजन के रूप में की जाती थी। अंगुल के सम्बन्ध में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। आज भी गाँवों में छोटी लम्बाई की नाप अंगुलों के रूप में की जाती है। मध्यम आकार के अंगुल की लम्बाई करीब .७२ इंच कनिंघम ने निश्चित की है,[4] जो ठीक मानी जा सकती है। विदट्ठि, यट्ठि, कुक्कु

---

१. बुद्धचर्या, पृष्ठ ९।

२. प्री-बुद्धिस्ट इण्डिया, पृष्ठ २३७।

३. प्रथम खण्ड, पृष्ठ ८१, पद-संकेत १।

४. एन्शियन्ट ज्योग्रफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ६५९ (परिशिष्ट 'बी')।

और उसभ की लम्बाई के सम्बन्ध में कुछ निश्चयपूर्वक नहीं कहा जा सकता। हत्थ और धनु की भी लम्बाई की नाप गज, फुट और इंचों में होनी मुश्किल है। फिर भी 'अभिधानप्पदीपिका' के अनुसार पालि की दूरी की मापों को कुछ हद तक समझा जा सकता है। इसके अनुसार ७ अंगुल = १ रतन; ७ रतन = १ यट्ठि (यष्टि); २० यट्ठि = १ उसभ; ८० उसभ = १ गावुत; ४ गावुत = १ योजन। यदि एक यट्ठि (यष्टि) को साढ़े दस फुट मान कर हम गणना करें तो एक उसभ २१० फुट का होगा और एक गावुत १६,८०० फुट या ५६०० गज का होगा। एक योजन इस प्रकार २२,४०० गज का या १२ मील से कुछ अधिक का बैठेगा। परन्तु इसे हम पालि परम्परा का प्रतिनिधि दूरी-माप नहीं मान सकते।

गावुत (सं० गव्यूति) और योजन स्थानों की दूरी नापने के बुद्ध-काल में दो प्रचलित माप थे, जिनका प्रयोग पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में किया गया है। उदाहरणतः, जैसा हम पहले देख चुके हैं, पावा से कुसिनारा की दूरी ३ गावुत बताई गई है, गया से बुद्धगया की तीन गावुत, वैशाली के तीन परकोटों में से प्रत्येक को एक दूसरे से एक गावुत दूर बताया गया है और कहा गया है कि कौशाम्बी के घोसिताराम और बदरिकाराम के बीच की दूरी एक गावुत थी, आदि। योजनों के रूप में एक नगर या ग्राम से दूसरे नगर या ग्राम की दूरी के सम्बन्ध में अनेक विवरण हम तीसरे परिच्छेद में दे चुके हैं। जैसा हम अभी देख चुके हैं, पालि परम्परा के अनुसार एक योजन चार गावुत का होता था। धम्मपदट्ठकथा में कहा गया है, "योजनं पि चतुगावुतमत्तमेव।" गावुत या योजन की दूरी आजकल के मीलों की परिभाषा में क्या मानी जाय, इसके सम्बन्ध में विद्वानों में निश्चित एक मत नहीं है। श्री ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर के अनुसार एक गावुत आजकल के दो मील से कुछ कम का होता था।[1] डा० विमलाचरण लाहा के मतानुसार वह दो मील से कुछ अधिक होता था।[2] इस प्रकार इन दोनों विद्वानों के मतानुसार योजन, जैसा उसे पालि परम्परा ने प्रयुक्त किया है, ८ मील से कुछ कम या अधिक

---

१. कन्साइज पालि इंगलिश डिक्शनरी, पृष्ठ ९१।

२. इण्डोलोजीकल स्टडीज, भाग द्वितीय, पृष्ठ ३३३, पद-संकेत ३।

होता था। डॉ० टी० डब्ल्यू रायस डेविड्स् तथा श्रीमती रायस डेविड्स् ने भी पालि के योजन को ७ और ८ मील के बीच की दूरी ही माना है।[1] चीनी यात्री फा-ह्यान ने अपने यात्रा-विवरण में स्थानों की दूरियों का उल्लेख योजन के रूप में किया है। कनिंघम की गणना के अनुसार फा-ह्यान का एक योजन ६.७१ मील के बराबर था।[2] यूआन् चुआङ् ने योजनों के रूप में भी स्थानों की दूरी का विवरण दिया है और साथ ही चीनी माप 'ली' का भी, ४० 'ली' को एक योजन के बराबर मानकर[3], प्रयोग किया है। यद्यपि यूआन् चुआङ् ने योजन की निश्चित दूरी के सम्बन्ध में स्पष्टतापूर्वक कुछ नहीं कहा है, उसने उसे इतनी दूरी बताया है जितनी एक राज-सेना एक दिन में चल सके।[4] फिर भी यूआन् चुआङ् ने अपने विवरणों में योजन को एक निश्चित माप मानकर प्रयुक्त किया है, जिसमें एकरूपता है। इसी आधार पर कनिंघम ने यूआन् चुआङ् के द्वारा योजनों के रूप में दी गई विभिन्न स्थानों की दूरी का तुलनात्मक अध्ययन करने के पश्चात् यह निष्कर्ष निकाला है कि यूआन् चुआङ् का एक योजन ७.७५ मील के बराबर था।[5] ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर ने एक योजन को ७ मील के बराबर माना है।[6] इस प्रकार हम देखते हैं कि पालि परम्परा के योजन और चीनी यात्रियों

---

१. बुद्धिस्ट बर्थ स्टोरीज, दि स्टोरी ऑव दि लिनियेज पृष्ठ १९, पाद-टिप्पणी।

२. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ६५६ (परिशिष्ट 'बी')।

३. वहीं, पृष्ठ ६५४। इस प्रकार ज्ञात होगा कि यूआन् चुआङ् के करीब ५ या ६ 'ली' एक मील के बराबर होंगे। फा-ह्यान की 'ली' की माप इससे भिन्न है। उसके अनुसार तीन 'ली' एक मील के बराबर मानने पड़ेंगे। देखिये गाइल्स : ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, पृष्ठ उन्नीस (टर्म्स यूज्ड बाई फा-ह्यान)।

४. वाटर्सः ऑन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, जिल्द पहली, पृष्ठ १४१।

५. एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया, पृष्ठ ६५७ (परिशिष्ट 'बी')।

६. कन्साइज पालि-इंग्लिश डिक्शनरी, पृष्ठ २०५; मिलाइये ई० जे० थॉमस : दि लाइफ ऑव बुद्ध ऐज लीजेण्ड एण्ड हिस्ट्री, पृष्ठ १७।

के द्वारा प्रयुक्त योजन में अधिक अन्तर नहीं है। दोनों प्रायः ७ मील या उसके आसपास ८ मील के बीच में बैठते हैं।[1] यहाँ यह कह देना आवश्यक होगा कि एक योजन को सात या आठ मील का मान कर योजनों के रूप में विभिन्न स्थानों की वह

---

१. डा० मललसेकर ने अपनी 'डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स' की दोनों जिल्दों में बीसों जगह पालि विवरणों के अनुसार विभिन्न स्थानों की दूरियों का उल्लेख करते हुए पालि के 'योजन' के लिये अंग्रेजी 'लीग' शब्द का प्रयोग किया है, जिसे ठीक नहीं माना जा सकता, क्योंकि एक 'लीग' करीब ३ मील के बराबर होता है। श्री ए० पी० बुद्धदत्त महाथेर ने अपनी 'कन्साइज पालि-इंगलिश डिक्शनरी' (पृष्ठ ९१) में पालि 'गावुत' के लिये अंग्रेजी 'लीग' शब्द का पर्याय दिया है। यह कितना आश्चर्यजनक है कि जब कि एक योजन में चार गावुत होते हैं, उक्त दोनों विद्वान् इन दोनों के लिए एक ही 'लीग' शब्द का प्रयोग करते हैं। मललसेकर ने तो और भी गड़बड़ी की है। योजन के साथ-साथ कहीं-कहीं गावुत के लिये भी 'लीग' शब्द का व्यवहार कर उन्होंने उसके भौगोलिक महत्व को ही नष्ट कर दिया है। उदाहरणतः, पालि विवरण के आधार पर हम जानते हैं कि राजगृह से नालन्दा एक योजन पर था और राजगृह और नालन्दा के बीच में राजगृह से तीन गावुत अर्थात् पौन योजन की दूरी पर बहुपुत्तक निग्रोध था। अब इस सम्बन्ध में डा० मललसेकर लिखते हैं कि नालन्दा राजगृह से एक 'लीग' पर था ("......A town near राजगह, one league away." डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ ५६) और राजगृह और नालन्दा के बीच में राजगृह से तीन 'लीग' के फासले पर बहुपुत्तक निग्रोध था! ("Was on the road from राजगह to नालन्दा and was three leagues from राजगह।" डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, जिल्द दूसरी, पृष्ठ २७३)। कितना असम्भव और असंगत और सम्पूर्ण वैज्ञानिक भाव को उच्छिन्न करने वाला है यह विवरण! डा० नलिनाक्ष दत्त और श्री कृष्णदत्त वाजपेयी ने "उत्तर-प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास" पुस्तक के पृष्ठ ३, १२ और १३ में पालि योजन को तीन मील के बराबर मान कर गणना की है, जिसे पालि परम्परा या चीनी यात्रियों के विवरणों से कोई समर्थन नहीं मिल सकता।

दूरी जो पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में दी गई है, मार्गों के सीधे या चक्करदार रूप को समझते हुए, उन स्थानों की आधुनिक स्थिति के सम्बन्ध में भी प्रायः ठीक बैठ जाती है। अतः पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में स्थानो की दूरियों के सम्बन्ध में योजन-सम्बन्धी जो विवरण दिये गये हैं, उनका निश्चित भौगोलिक महत्व है। उनकी प्रामाणिकता इस बात से प्रकट होती है कि जिन बौद्ध स्थानों की खोज हो चुकी है, उनकी पालि परम्परा में निर्दिष्ट दूरी आज भी प्रायः उतनी ही है जितनी पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में उसे बताया गया है। बल्कि यह कहना चाहिए कि जिन बौद्ध स्थानों की आज निश्चित रूप से पहचान हो चुकी है, उनकी प्रामाणिकता की कसौटी ही यह है कि पालि तिपिटक और उसकी अट्ठकथाओं में उनकी जो पारस्परिक दूरी योजनों के रूप में वर्णित है, वह उनकी आधुनिक स्थिति के सम्बन्ध में भी लगभग ठीक बैठे। जिन स्थानों के सम्बन्ध में ऐसा नहीं हो सकता, उनकी पहचान की प्रामाणिकता सन्दिग्ध ही मानी जायगी। पालि परम्परा के अलावा भारतीय साहित्य के अन्य अंगों जैसे रामायण, महाभारत, पुराणों और जैन साहित्य में भी दूरी की माप के लिए योजनों का प्रयोग किया गया है, परन्तु पालि परम्परा के निश्चित और भौगोलिक योजन से उनकी अनेक विभिन्नताएँ हैं, जिनके तुलनात्मक अध्ययन में जाना यहाँ ठीक न होगा।

परिशिष्ट

१—भौगोलिक नामों की अनुक्रमणिका

आ

भ

२—उद्धृत ग्रन्थों की सूची

लेखक ने प्रयत्न किया है कि जिन पालि ग्रन्थों के मूल संस्करण देवनागरी लिपि में उपलब्ध हैं, उनका इस प्रबन्ध में उपयोग किया जाय। यही बात पालि ग्रन्थों के हिन्दी अनुवादों के सम्बन्ध में भी है। जिन ग्रन्थों के मूल संस्करण देवनागरी लिपि में उपलब्ध नहीं हैं, केवल उनके लिये अन्य संस्करणों का उपयोग किया गया है। पालि, प्राकृत, संस्कृत, हिन्दी और अंग्रेजी में लिखित जिन ग्रन्थों से इस निबन्ध में उद्धरण दिये गये हैं, उनका विवरण इस प्रकार है :

पालि

मूल ग्रन्थ और उनके अनुवाद

दीघ-निकाय—(मूल) दीघ-निकायो......पठमो भागो...सीलक्खन्धो, एन० के० भागवत द्वारा सम्पादित, प्रथम संस्करण, बम्बई विश्वविद्यालय, १९४२। इस भाग में सुत्त-संख्या १-१३ संकलित हैं। दीघ-निकायो... दुतियो विभागो...एन० के० भागवत द्वारा सम्पादित, प्रथम संस्करण, बम्बई विश्वविद्यालय, १९३६। इस भाग में सुत्त-संख्या १४-२३ संकलित हैं। सुत्त-संख्या २४-३४ अभी तक देवनागरी लिपि में अप्रकाशित हैं।[1]

हिन्दी अनुवाद...भिक्षु राहुल सांकृत्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप, एम० ए०-कृत, प्रथम संस्करण, महाबोधि सभा, सारनाथ, १९४२। यह पूरे दीघ-निकाय का हिन्दी अनुवाद है।

१, २. यह प्रसन्नता की बात है कि इस पुस्तक के प्रेस में दिये जाने के कुछ समय पूर्व ही दीघ और मज्झिम निकायों के देवनागरी संस्करण भिक्षु जगदीश काश्यप के प्रधान सम्पादकत्व में सम्पादित होकर, क्रमशः तीन-तीन जिल्दों में, बिहार

मज्झिम-निकाय—(मूल) मज्झिम निकायो—मज्झिम पण्णासकं, एन० के० भागवत द्वारा दो भागों में सम्पादित, प्रथम संस्करण, बम्बई विश्वविद्यालय, १९३७-१९३८। इन दोनों भागों में केवल सुत्त ५१-१०० संगृहीत हैं। पहले भाग में सुत्त ५१-७० तथा दूसरे में सुत्त ७१-१००। सुत्त १-५० तथा १०१-१५२ अभी अपने मूल रूप में नागरी लिपि में नहीं आ पाये हैं[१]।

हिन्दी अनुवाद . . . राहुल सांकृत्यायन-कृत, प्रथम संस्करण, महाबोधि सभा, सारनाथ, १९३३। यह अनुवाद पूरे मज्झिम-निकाय का है।

संयुत्त-निकाय—देवनागरी लिपि में अभी इस निकाय के मूल पालि का कोई संस्करण नहीं निकला है[१]। रोमन लिपि में संयुत्त-निकाय का संपादन लियोन फियर ने पाँच भागों में किया है। पालि टैक्स्ट् सोसायटी, लन्दन, १८८४-१८९८। छठा भाग अनुक्रमणी के रूप में है, जिसे श्रीमती रायस डेविड्स् ने तैयार किया है। लन्दन, १९०४।

हिन्दी अनुवाद (दो भाग) भिक्षु जगदीश काश्यप एम० ए० और त्रिपिटकाचार्य भिक्षु धर्मरक्षित-कृत, महाबोधि सभा, सारनाथ, १९५४। यह संयुत्त-निकाय का पूरा अनुवाद है।

अंगुत्तर-निकाय—इस निकाय का अभी कोई संस्करण देवनागरी लिपि में नहीं निकला है। हिन्दी अनुवाद भी प्रथम तीन निपातों का ही अब तक हुआ है, जिसे भदन्त आनन्द कौसल्यायन ने किया है। महाबोधि सभा, कलकत्ता, ने सन् १९५७ में इसे प्रकाशित किया है। रोमन लिपि में इस निकाय का सम्पादन रिचार्ड मॉरिस तथा एडमंड हार्डी ने पाँच जिल्दों में किया है। पालि टैक्स्ट् सोसायटी, लन्दन, १८८५-१९००। एम० हण्ट ने छठे भाग के

राज्य के पालि प्रकाशन मण्डल द्वारा प्रकाशित कर दिये गये हैं (सन् १९५८ई०)। उद्धरणों को मिलाने में मैंने अब तक के प्रामाणिकतम इन संस्करणों से सहायता ली है।

३. अभी हाल में (सन् १९५९ ई० में) चार जिल्दों में प्रकाशित। प्रकाशक तथा सम्पादक उपर्युक्त ही। यह संस्करण मुझे प्रूफ देखते समय उपलब्ध हुआ, अतः इसका मैं अंशतः ही उपयोग कर सका हूँ।

रूप में अनुक्रमणी तैयार की है, पालि टैक्स्ट् सोसायटी, लन्दन, १९१०। उद्धरण इसी रोमन संस्करण से दिये गये हैं।

खुद्दक-निकाय[1]

खुद्दक-पाठ—मूल पालि और हिन्दी अनुवाद, भिक्षु धर्मरत्न एम० ए० कृत, महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस, १९४५। इस लघु ग्रन्थ का देवनागरी संस्करण महापण्डित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप ने किया है, जिसे उत्तम भिक्षु ने प्रकाशित किया है, बुद्धाब्द २४८१ (१९३७ ई०)।

धम्मपद—मूल पालि तथा हिन्दी अनुवाद, महापंडित राहुल सांकृत्यायन-कृत, प्रथम संस्करण, प्रयाग, १९३३। अन्य कई संस्करण और अनुवाद भी उपलब्ध हैं, परन्तु लेखक ने इसका ही उपयोग किया है।

उदान—मूल पालि देवनागरी लिपि में महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन और भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित, भिक्षु उत्तम द्वारा प्रकाशित, २४८१ बुद्धाब्द (१९३७ ई०)।

हिन्दी अनुवाद...भिक्षु जगदीश काश्यप-कृत, महाबोधि सभा, सारनाथ, बुद्धाब्द, २४८२।

इतिवुत्तक—मूल पालि...देवनागरी लिपि में महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित, बुद्धाब्द २४८१ (१९३७ ई०)।

हिन्दी अनुवाद...भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य-कृत, महाबोधि सभा, सारनाथ, बुद्धाब्द २४९९।

सुत्त-निपात—मूल पालि पाठ तथा हिन्दी अनुवाद, भिक्षु धर्मरत्न एम० ए०-कृत, महाबोधि सभा, सारनाथ, १९५१।

---

१. खुद्दक-निकाय के कई ग्रन्थों (जिनमें जातक—मूलगाथामात्र—भी सम्मिलित है) के देवनागरी संस्करण इस पुस्तक की छपाई समाप्त होने के कुछ पूर्व ही निकले हैं, जिनका मैंने यथाशक्य उपयोग किया है।

विमानवत्थु-पेतवत्थु-थेरगाथा—ये तीनों ग्रन्थ महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित हैं, बुद्धाब्द २४८१। थेरगाथा का हिन्दी अनुवाद भिक्षु धर्मरत्न एम० ए० ने किया है, जिसे महाबोधि सभा, सारनाथ ने बुद्धाब्द २४९९ में प्रकाशित किया है।

थेरीगाथा—इस ग्रन्थ का भी उपर्युक्त विद्वानों ने देवनागरी लिपि में सम्पादन किया है, बुद्धाब्द २४८१। परन्तु लेखक को वह उपलब्ध न हो सकने के कारण उसने इस ग्रन्थ का दूसरा देवनागरी संस्करण प्रयुक्त किया है, जिसे एन० के० भागवत ने सम्पादित किया है। बम्बई विश्वविद्यालय, १९३७। प्रस्तुत लेखक ने इस ग्रन्थ का हिन्दी अनुवाद "थेरी-गाथाएँ" शीर्षक से किया है, जिसे सस्ता साहित्य मंडल, नई दिल्ली, ने प्रकाशित किया है, १९५१।

जातक—रोमन लिपि में वी० फॉसबाल द्वारा सम्पादित, ६ जिल्दें, लन्दन, १८७७-९६। सातवीं जिल्द, जो अनुक्रमणी के रूप में है, एण्डरसन द्वारा तैयार की गई है, लन्दन, १८९७। नागरी लिपि में जातक या जातकट्ठकथा का केवल प्राथमिक अंश ही एक खण्ड के रूप में अभी तक प्रकाशित हो सका है। जातकट्ठकथा, पठमो भागो, भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य द्वारा सम्पादित, भारतीय ज्ञानपीठ, काशी, जुलाई १९५१।

अभी हाल में (सन् १९५९ ई०) मूल जातक (केवल गाथा भाग) भी दो जिल्दों में भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित होकर श्री नालन्दा से निकला है, जिसका उपयोग (केवल गाथा भाग होने के कारण) मैं अंशतः ही कर सका हूँ, विशेषतः तत्सम्बन्धी उद्धरणों को मिलाने में।

हिन्दी अनुवाद...भदन्त आनन्द कौसल्यायन-कृत, छह खण्डों में प्रकाशित। हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग। चूँकि अभी इस अनुवाद की अनुक्रमणी नहीं निकली है, इसलिये सब जगहों पर इसका प्रयोग करना सम्भव नहीं हो सका है। जहाँ इस अनुवाद का प्रयोग किया गया है, वहाँ वैसा स्पष्टतः उल्लेख कर दिया गया है। अन्य सब स्थानों पर, जहाँ कोई निर्देश नहीं किया गया है, उद्धरणों को फॉसबाल द्वारा सम्पादित रोमन संस्करण से समझना चाहिए।

निद्देस––महानिद्देस. . .लुई डे ला वेली पूसें तथा ई० जे० थॉमस द्वारा रोमन लिपि में सम्पादित, पालि टैक्स्ट् सोसायटी, लन्दन, १९१६-१७।

चुल्लनिद्देस––डॉ० स्टीड द्वारा सम्पादित, पालि टैक्स्ट् सोसायटी, लन्दन, १९१८।

अपदान––दो भागों में रोमन लिपि में एम० ई० लिले द्वारा सम्पादित, पालि टैक्स्ट् सोसायटी, लन्दन।

बुद्धवंस––
चरियापिटक–– } ये दोनों ग्रन्थ महापंडित राहुल सांकृत्यायन, भदन्त आनन्द कौसल्यायन तथा भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा देवनागरी लिपि में सम्पादित हैं, बुद्धाब्द २४८१ (१९३७ ई०)।

विनय-पिटक––एच० ओल्डनबर्ग द्वारा रोमन लिपि में पाँच जिल्दों में सम्पादित, लन्दन, १८७९-८३। बम्बई विश्वविद्यालय ने विनय-पिटक के केवल महावग्ग का देवनागरी लिपि में दो भागों में प्रकाशन किया है। महावग्गो (विनय पिटकं), पठमो भागो, खन्धका १-५, एन० के० भागवत द्वारा सम्पादित, प्रथम संस्करण, बम्बई, १९४४। महावग्गो (विनय पिटकं), दुतियो भागो, खन्धका ६-१०, एन० के० भागवत द्वारा सम्पादित, प्रथम संस्करण, बम्बई १९५२। अभी हाल में (१९५६-५८) सम्पूर्ण विनय-पिटक पाँच जिल्दों में भिक्षु जगदीश काश्यप द्वारा सम्पादित हो कर श्री नालन्दा से निकला है, जिसका उपयोग उद्धरणों को मिलाने में मैंने किया है।

हिन्दी अनुवाद. . .महापंडित राहुल सांकृत्यायन-कृत, महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस, १९३५। यह अनुवाद सम्पूर्ण विनय-पिटक का है।

धम्मसंगणि––प्रोफेसर पी० वी० बापट तथा आर० डी० बड़ेकर द्वारा देवनागरी लिपि में सम्पादित, प्रथम संस्करण, भण्डारकर ओरियण्टल सीरीज़, संख्या २, पूना, १९४०।

विभंग––श्रीमती सी० ए० एफ० रायस डेविड्स् द्वारा रोमन लिपि में सम्पादित, पालि टैक्स्ट् सोसायटी, लन्दन, १९०४।

कथावत्थु––ए० सी० टेलर द्वारा रोमन लिपि में दो जिल्दों में सम्पादित, पालि टैक्स्ट् सोसायटी, लन्दन, १८९४, १८९७।

दीघ-निकाय की अट्ठकथा—

(**सुमंगलविलासिनी**)—पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण, तीन जिल्दें।

मज्झिम-निकाय की अट्ठकथा—

(**पपंचसूदनी**)—अलुविहार सीरीज़ में प्रकाशित सिंहली संस्करण, दो जिल्दें।

संयुत्त-निकाय की अट्ठकथा—

(**सारत्थप्पकासिनी**)—पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण, तीन जिल्दें।

अंगुत्तर-निकाय की अट्ठकथा—

(**मनोरथपूरणी**)—साइमन हेवावितरणे बिक्वेस्ट सीरीज़, कोलम्बो, में प्रकाशित सिंहली संस्करण।

खुद्दक-पाठ और सुत्त-निपात की अट्ठकथा (**परमत्थजोतिका**)—पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण, दो जिल्दें।

धम्मपदट्ठकथा—पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण, पाँच जिल्दें।

उदान-अट्ठकथा—पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण।

विमानवत्थु-अट्ठकथा, **पेतवत्थु-अट्ठकथा** } उपर्युक्त के समान।

थेरगाथा-अट्ठकथा—साइमन हेवावितरणे बिक्वेस्ट सीरीज़ में प्रकाशित सिंहली संस्करण।

थेरीगाथा-अट्ठकथा—पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण।

अपदान-अट्ठकथा, **बुद्धवंस-अट्ठकथा** } साइमन हेवावितरणे बिक्वेस्ट सीरीज़ में प्रकाशित सिंहली संस्करण।

विनय-पिटक की अट्ठकथा—

(**समन्तपासादिका**)—पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण, चार जिल्दें।

धम्मसंगणि की अट्ठकथा—प्रो० पी० वी० बापट तथा आर० डी० वडेकर द्वारा (**अट्ठसालिनी**)—देवनागरी लिपि में सम्पादित, भण्डारकर ओरियन्टल सीरीज़, संख्या ३, प्रथम संस्करण, पूना, १९४२।

मिलिन्दपञ्हो—आर० डी० वडेकर द्वारा देवनागरी लिपि में सम्पादित, प्रथम संस्करण; बम्बई विश्वविद्यालय, १९४०।

हिन्दी अनुवाद . . . भिक्षु जगदीश काश्यप-कृत, भिक्षु उ कित्तिमा द्वारा प्रकाशित, बनारस, १९३७। कहीं-कहीं इस अनुवाद के द्वितीय संस्करण का भी उल्लेख किया गया है, जिसे भिक्षु महानाम, प्रधान मन्त्री, धर्मोदय सभा ने सन् १९५१ में प्रकाशित किया है। जहाँ इस संस्करण से उद्धरण हैं, वहाँ वैसा (द्वितीय संस्करण) उल्लेख कर दिया गया है। अन्य सब स्थलों पर प्रथम संस्करण से ही उद्धरण समझने चाहिये।

विसुद्धिमग्ग—देवनागरी लिपि में धर्मानन्द कोसम्बी द्वारा सम्पादित, भारतीय विद्याभवन, बम्बई, १९४०।

दीपवंस—एच० ओल्डनबर्ग द्वारा सम्पादित, लन्दन, १८७९।

महावंस—मूल पालि, महावंसो, बम्बई विश्वविद्यालय द्वारा प्रकाशित।

हिन्दी अनुवाद . . . भदन्त आनन्द कौसल्यायन-कृत, हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, १९४२।

महावंस टीका—
अनागतवंस—
सासनवंस—
महाबोधिवंस— } पालि टैक्स्ट् सोसायटी संस्करण।

अभिधम्मत्थसंगह—देवनागरी संस्करण, धर्मानन्द कोसम्बी-सम्पादित, महाबोधि सभा सारनाथ, बनारस, बुद्धाब्द २४८५।

विसुद्धिमग्गदीपिका—विसुद्धिमग्ग की टीका . . . धर्मानन्द कोसम्बी-कृत, महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस, १९४३।

प्राकृत

भगवती-वियाहपण्णत्ति—आगमोदय समिति, बम्बई, १९२१।

उवासगदसाओ—एन० ए० गोरे द्वारा सम्पादित, पूना, १९५३।

जम्बुदीवपण्णत्ति—बम्बई, १९२०।

उत्तराध्ययन-सूत्र और सूत्रकृतांग सूत्र—एच० जेकोबी द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित, सेक्रेड बुक्स ऑव दि ईस्ट, जिल्द पैंतालीसवीं, १८९५।

विविधतीर्थकल्प (संस्कृत और प्राकृत)—प्रथम भाग, मुनि जिनविजय द्वारा सम्पादित, सिंघी जैन ग्रन्थमाला, ग्रन्थांक १०, शान्तिनिकेतन, विक्रमाब्द १९९१।

संस्कृत

अभिधर्म-कोश——महापंडित राहुल सांकृत्यायन द्वारा स्वकीय नालन्दिका टीका-सहित सम्पादित, काशी विद्यापीठ, बनारस, सं० १९८८।

अवदान-शतक——जे० एस० स्पेयर द्वारा सम्पादित (बिबलियोथेका बुद्धिका), दो जिल्दें। १९०६-९। डॉ० प० ल० वैद्य के सम्पादकत्व में इस ग्रन्थ का देवनागरी संस्करण सन् १९५८ में मिथिला विद्यापीठ से निकला है, जिससे उद्धरणों को मिलाने में मैंने सहायता ली है। उद्धरण स्पेयर के संस्करण से ही दिये गये हैं।

अष्टसाहस्रिका प्रज्ञापारमिता राजेन्द्रलाल मित्र—सम्पादित, बिब्लियोथेका इण्डिका, १८८८।

काव्यमीमांसा (राजशेखर-कृत)——गायकवाड़ ओरीयन्टल सीरीज, संख्या १।

गिलगित मेनुस्क्रिप्ट्स्——डॉ० नलिनाक्ष दत्त द्वारा, प्रोफेसर डी० एम० भट्टाचार्य तथा विद्यावारिधि पं० शिवनाथ शर्मा की सहायता से, सम्पादित, जिल्द पहली; जिल्द दूसरी; जिल्द तीसरी, भाग प्रथम, द्वितीय, तृतीय।

दिव्यावदान——ई० बी० कॉवल तथा आर० ए० नील द्वारा सम्पादित, केम्ब्रिज, १८८६। उद्धरण इसी संस्करण से दिये गये हैं। अभी हाल में (१९५९ ई०) डॉ० प० ल० वैद्य द्वारा सम्पादित होकर दिव्यावदान का देवनागरी संस्करण मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा से निकला है, जो कॉवल और नील के संस्करण का प्रायः पुनर्मुद्रण ही है। उद्धरण मिलाने में मुझे इस संस्करण से सहायता मिली है।

नारद-पुराण——मूल, हिन्दी अनुवाद-सहित, अनुवादक ऋ० कु० रामचन्द्र शर्मा, मुरादाबाद, १९४०।

बुद्धचरित——मूल संस्कृत और हिन्दी अनुवाद . . . सम्पादक और अनुवादक, सूर्यनारायण चौधरी, प्रथम भाग, जनवरी १९४८, द्वितीय संस्करण, संस्कृत भवन, कठौतिया (बिहार); द्वितीय भाग, मार्च १९५३, द्वितीय संस्करण।

महावस्तु——ई० सेनां द्वारा सम्पादित, तीन जिल्दें, पेरिस, १८८२-९७।

मेघदूतम्——पं० रामतेजपाण्डेयेन संस्कृतम्, पंडित पुस्तकालय काशी, प्रथमावृत्ति, सं० २००६।

मञ्जुश्रीमूलकल्प--टी० गणपति शास्त्री द्वारा सम्पादित, त्रिवेन्द्रम संस्कृत सीरीज (१९२७)।

ललितविस्तर--एस० लैफमैन द्वारा सम्पादित, दो खण्ड, हाल, १९०२-१९०८। उद्धरण इसी संस्करण के पहले खण्ड से दिये गये हैं। दूसरे खण्ड में पाठ-भेद हैं। अभी हाल में (१९५८ ई०) मिथिला विद्यापीठ, दरभंगा से डॉ० प० ल० वैद्य के सम्पादकत्व में इस ग्रन्थ का देवनागरी संस्करण निकला है, जिससे उद्धरणों को मिलाने में मैंने सहायता ली है, यद्यपि नाम-सूची न होने के कारण कुछ कठिनाई हुई है।

सौन्दरनन्द--मूल संस्कृत और हिन्दी अनुवाद......सम्पादक और अनुवादक, सूर्यनारायण चौधरी, अगस्त १९४८, प्रथम संस्करण, संस्कृत भवन, कठौतिया (बिहार)।

हिन्दी

महापण्डित राहुल सांकृत्यायन--बुद्धचर्या, द्वितीय संस्करण, महाबोधि सभा, सारनाथ, बनारस १९५२ (बुद्धाब्द २४९५)।

साहित्य निबन्धावली, किताब महल, इलाहाबाद, द्वितीय संस्करण, १९४९ ई०।

महामानव बुद्ध, बुद्ध विहार, रिसालदार पार्क, लखनऊ, १९५६ ई०।

डॉ० राजबली पाण्डेय--गोरखपुर जनपद और उसकी क्षत्रिय जातियों का इतिहास, प्रकाशक ठाकुर महातम राव, पब्लिशर और बुक्सेलर, गोरखपुर, सं० २००३ वि०।

भिक्षु धर्मरक्षित त्रिपिटकाचार्य--कुशीनगर का इतिहास, द्वितीय संस्करण, कुशीनगर प्रकाशन, कुशीनगर, देवरिया, बुद्धाब्द २४९३।

धर्मानन्द कोसम्बी--भगवान् बुद्ध (श्रीपाद जोशी-कृत हिन्दी अनुवाद), साहित्य अकादेमी की ओर से राजकमल प्रकाशन, दिल्ली, इलाहाबाद, बम्बई, प्रथम हिन्दी संस्करण, १९५६।

भारतीय संस्कृति और अहिंसा (हिन्दी अनुवाद), हिन्दी ग्रन्थ रत्नाकर कार्यालय, बम्बई, जून १९४८।

डॉ० नलिनाक्ष दत्त और श्री कृष्णदत्त बाजपेयी---उत्तर प्रदेश में बौद्ध धर्म का विकास, प्रकाशन ब्यूरो, उत्तर प्रदेश सरकार, लखनऊ, प्रथम संस्करण, १९५६।

शान्ति भिक्षु शास्त्री--महायान, विश्वभारती, शान्तिनिकेतन। (प्रकाशन-तिथि नहीं दी गई है)

अंग्रेजी

कनिंघम (ए०)--एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव इण्डिया (सुरेन्द्रनाथ मजूमदार शास्त्री द्वारा सम्पादित), चक्रवर्ती चटर्जी एंड कं० कलकत्ता, १९२४।

कुमारस्वामी (आनन्द) तथा हार्नर (आई० बी०)--दि लिविंग थॉट्स् ऑव गौतम दि बुद्ध, केसिल एण्ड कम्पनी, लन्दन, १९४८।

गाइल्स (एच० ए०)--दि ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान, केम्ब्रिज, १९२३। द्वितीय आवृत्ति, रटलेज एण्ड केगन पॉल, लन्दन, १९५६।

गायगर (विल्हेल्म)--पालि लिटरेचर एण्ड लैंग्वेज, (बटाकृष्ण घोष-कृत अंग्रेजी अनुवाद), कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९४३।

घोष (नगेन्द्रनाथ)--एन अली हिस्ट्री ऑव कौशाम्बी, इलाहाबाद, १९३५।

थॉमस (ई० जे०)--दि लाइफ ऑव बुद्ध ऐज लीजेण्ड एण्ड हिस्ट्री, रटलेज एण्ड केगन पॉल लिमिटेड, लन्दन, तृतीय संस्करण, पुनर्मुद्रित, १९५२। हिस्ट्री ऑव बुद्धिस्ट थॉट, लन्दन, १९३३।

दे (नन्दोलाल)--ज्योग्रेफीकल डिक्शनरी ऑव एन्शियण्ट एण्ड मेडीवल इण्डिया, लन्दन, १९२७।

पार्जिटर (एफ० ई०)--एन्शियन्ट इण्डियन हिस्टोरीकल ट्रेडीशन, लन्दन, १९२२।

फिक (रिचार्ड)--दि सोशल ऑर्गेनिजेशन इन नार्थ-ईस्ट इण्डिया इन बुद्धाज टाइम (शिशिर कुमार मैत्र का अंग्रेजी अनुवाद), कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९२०।

फुशेर (ए०)--नोट्स औन् दि एन्शियन्ट ज्योग्रेफी ऑव गन्धार, एच० हारग्रीव्स का अंग्रेजी अनुवाद, सुपरिण्टेण्डेण्ट, गवर्नमेन्ट प्रिंटिंग, कलकत्ता, १९१५।

बड़ुआ (वेणीमाधव)—गया एण्ड बुद्धगया, संशोधित संस्करण, कलकत्ता, १९३५।
ओल्ड ब्राह्मी इन्सक्रिप्शन्स इन दि उदयगिरि एण्ड खण्डगिरि, केव्स, कलकत्ता, १९२९।

बड़ुआ और सिंह—भरहुत इन्सक्रिप्शन्स, कलकत्ता, १९२६।

बील (एस०)—बुद्धिस्ट रिकार्डस् ऑव दि वैस्टर्न वर्ल्ड, लन्दन, १८८०।

बुद्धदत्त महाथेर (ए० पी०)—कंसाइज पालि-इंगलिश डिक्शनरी, कोलम्बो, १९४९।

भण्डारकर (डी० आर०)—कारमाइकेल लेक्चर्स औन् एन्शियन्ट हिस्ट्री ऑव इण्डिया, १९१८। कलकत्ता, १९१९।
कारमाइकेल लेक्चर्स औन् एन्शियण्ट इण्डियन न्यूमिस्मेटिक्स, १९२१। कलकत्ता, १९२२।
अशोक (कारमाइकेल लेक्चर्स, १९२३), कलकत्ता, १९२५।

मजूमदार (रमेशचन्द्र) तथा पुसल्कर (ए० डी०)—दि कल्चर एण्ड हिस्ट्री ऑव दि इण्डियन पीपुल, जिल्द दूसरी, भारतीय विद्याभवन, द्वितीय संस्करण, १९५३।

मललसेकर (जी० पी०)—डिक्शनरी ऑव पालि प्रॉपर नेम्स, दो जिल्दें, लन्दन, १९३७।

मुकर्जी (राधाकुमुद)—ए हिस्ट्री ऑव इण्डियन शिपिंग, लन्दन, १९१२।

मुखर्जी (पूर्णचन्द्र)—ए रिपोर्ट औन् ए टूर ऑव एक्सप्लोरेशन ऑव दि एण्टि-क्विटीज इन दि तराई, नेपाल, एण्ड दि रिजन ऑव कपिलवस्तु (सुपरिण्टेण्डेण्ट ऑव गवर्नमेण्ट प्रिंटिंग, कलकत्ता, १९०१)।

मेक्रिण्डल (जे० डब्ल्यू०)—एन्शियण्ट इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन क्लासीकल लिटरेचर, वेस्टमिंस्टर, १९०१।

मेहता (रतिलाल)—प्री-बुद्धिस्ट इण्डिया, बम्बई, १९३९।

मेकडोनल (ए० ए०) तथा कीथ (ए. बी.)—दि वैदिक इण्डेक्स ऑव नेम्स एण्ड सब्जेक्ट्स्, दो जिल्दें, लन्दन, १९१२।

मोतीचन्द्र—ज्योग्रेफीकल एण्ड इकोनोमिक स्टडीज इन दि महाभारत, उपायन पर्व; यू० पी० हिस्टोरिकल सोसायटी, लखनऊ, १९४५।

रॉकहिल (डब्ल्यू० डब्ल्यू०)—दि लाइफ ऑव दि बुद्ध, लन्दन, १८८४ (ट्रबनर्स ऑरियन्टल सीरीज)।

रायचधौरी (हेमचन्द्र)—पोलिटिकल हिस्ट्री ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, कलकत्ता विश्वविद्यालय, १९५३ (छठा संस्करण)।

स्टडीज इन इंडियन एंटिक्विटीज, कलकत्ता, १९३२।

रायस डेविड्स् (टी० डब्ल्यू०)—बुद्धिस्ट इंडिया, सुशील गुप्त, इण्डिया लिमिटेड, कलकत्ता, द्वारा प्रकाशित, प्रथम भारतीय संस्करण, सितम्बर १९५०।

रायस डेविड्स् (टी० डब्ल्यू०) और विलियम स्टीड द्वारा सम्पादित—पालि-इंगलिश डिक्शनरी, पालि टैक्स्ट् सोसायटी, लन्दन, १९२५।

रायस डेविड्स (सी० ए० एफ०, श्रीमती)—ए बुद्धिस्ट मेनुअल ऑव साइकोलोजीकल एथिक्स, (धम्मसंगणि का अंग्रेजी अनुवाद), लन्दन, १९००।

रैप्सन (ई० जे०) सम्पादित—केम्ब्रिज हिस्ट्री ऑव इण्डिया, जिल्द पहली, एन्शियन्ट इण्डिया, केम्ब्रिज, १९२२।

लाहा (विमलाचरण)—ज्योग्रेफी ऑव अर्ली बुद्धिज्म, केगन पाल, ट्रेंच ट्रबनर एण्ड कम्पनी, लन्दन, १९३२।

इण्डिया ऐज डिस्क्राइब्ड इन अर्ली टैक्ट्स् ऑव बुद्धिज्म एंड जैनिज्म, लुजाक एण्ड कम्पनी, लन्दन, १९४१।

ज्योग्रेफीकल एसेज, प्रथम भाग, कलकत्ता, १९३८।

सम क्षत्रिय ट्राइब्स ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, थेकर स्पिंक एंड कम्पनी, कलकत्ता और शिमला, १९२३।

ट्राइब्स इन एन्शियन्ट इण्डिया, प्रथम संस्करण, पूना, १९४३ (भण्डारकर ओरियन्टल सीरीज, संख्या ४)।

हिस्ट्री ऑव पालि लिटरेचर, दो जिल्दें, केगन पॉल, लन्दन, १९३३।

इण्डोलोजीकल स्टडीज, प्रथम भाग, इण्डियन रिसर्च इन्स्टीट्यूट, कलकत्ता, १९५०. . ., द्वितीय भाग, इण्डियन रिसर्च इन्स्टीट्यूट, कलकत्ता, १९५२. . , तृतीय भाग, गंगानाथ झा रिसर्च इन्स्टीट्यूट, इलाहाबाद, १९५४।

दि लाइफ एण्ड वर्क ऑव बुद्धघोष, थेकर स्पिंक एण्ड कम्पनी, कलकत्ता और शिमला, १९२३।

हिस्टोरिकल ज्योग्रेफी ऑव एन्शियन्ट इण्डिया, सोसायटी एशियाटिक डि पेरिस, फ्रांस, १९५४।

—सम्पादित, बुद्धिस्टिक स्टडीज, कलकत्ता, १९३१।

लेग्ज (जे०)——दि ट्रेविल्स ऑव फा-ह्यान (ऑक्सफर्ड १८८६)।

वाटर्स (थॉमस)——औन् यूआन् चुआङ्स् ट्रेविल्स इन इण्डिया, दो जिल्दें, टी० डब्ल्यू० रायस डेविड्स् तथा एस० डब्ल्यू० बुशल द्वारा सम्पादित, रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन, १९०४-१९०५।

शोफ (डब्ल्यू० एच०)——द्वारा अंग्रेजी में अनुवादित तथा सम्पादित "दि पेरीप्लस ऑव दि इरीथ्रियन सी" लन्दन, १९१२।

स्मिथ (वी० ए०)——अर्ली हिस्ट्री ऑव इण्डिया, चतुर्थ संस्करण, ऑक्सफर्ड, १९२४।

हरप्रसाद शास्त्री——मगधन लिटरेचर, कलकत्ता, १९२३।

शुद्धि-पत्र

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७	१२	महासाकवनखण्डो	महासाकवनसण्डो
३१	१	कुण्डिधान वन	कुण्डधान वन
४१	२७	पंचसूदनी	पपञ्चसूदनी
६७	११	अम्बखतिय	अम्बरवतिय
९२	१२	मल्लब	मल्ल
९७	आरम्भिक पाद-टिप्पणी—	यह पृष्ठ ९६ की आरम्भिक पाद-टिप्पणी का ही आगे का अंश है	
१०७	पद-संकेत की तीसरी पंक्ति	विरिच	विरिंच
११५	११	जीवकम्बन	जीवकम्बवन
१४०	पद-संकेत की छठी पंक्ति	नागपुप्फसमय	नागपुप्फसमये
१४२	१३	गन्धमादन को (कैलाश) नन्दोलाल दे ने	गन्धमादन को नन्दो-लाल दे ने
१५१	१०	पण्डकर	पण्डरक
१५४	६	दक्षिणपथ	दक्षिणापथ
१५९	१३	दक्षिणपथ	दक्षिणापथ
२१४	१	प्रस्कन्दन	प्रस्कन्दक
२१४	२	बलाकत्थ	बलाकल्प
२२९	३	पटिलिपुत्र	पाटलिपुत्र
२३९	२	विच्छवियों	लिच्छवियों
२७२	१	कामभूम-सुत्त	कामभू-सुत्त

३२७	३	पाव	पावा
३३९	१८	चेतिया चेतिय	चेति या चेतिय
३४०	४	कुरुसु	कुरूसु
३९४	२	वलुव	वेलुव
४२९	११	सुवर्णद्वीप	सुवर्णभूमि
४८४	३	"सुट्ठ"	"सुरट्ठ"
५३९	२	दिव्यवदान	दिव्यावदान
५३९	२२	सुवर्णद्वीप	सुवर्णभूमि